ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च,
दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

अंक : जनवरी 1999

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका
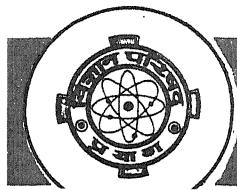
विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 84 अंक 10
जनवरी 1999
मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत,
1000 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

■

प्रकाशक
डॉ० शिव गोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

■

सम्पादक
डॉ० दिनेश मणि, डी० एस–सी०

■

मुद्रक
अनिल
अनिल प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद

■

सम्पर्क
विज्ञान परिषद प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद – 211002

इस अंक में

सम्पादकीय

नव वर्ष 1999 के मंगल प्रभात की पावन किरणों से परिपूर्ण आपके उज्ज्वल पथ पर एक दीप हमारी शुभकामनाओं का।

प्रत्येक नये वर्ष के लिये हम कोई न कोई संकल्प लेते हैं अपनी–अपनी इच्छानुसार। इस वर्ष हम सभी विज्ञान लेखक एक समान संकल्प लें–जनसाधारण तक उनकी अपनी भाषा में विज्ञान को पहुँचाने का।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि विज्ञान के नियम सार्वभौमिक होते हैं उन्हें विदेशी या स्वदेशी नहीं कहा जा सकता किन्तु उन नियमों को स्पष्ट रूप से तभी समझा जा सकता है जब उनको व्यक्त करने वाले शब्द हमारे अपने हों, हमारी सोच से जुड़े हों और उन्हें बोलते समय हम पूरी तरह अपने दिलो–दिमाग से ही नहीं बल्कि सभ्यता, संस्कृति और विरासत से जुड़े हों।

क्या हम सौ में से नब्बे लोगों को सिर्फ इस कारण विज्ञान से वंचित कर देंगे कि उन्हें अंग्रेजी नहीं आती? क्या विज्ञान इतना नीरस विषय है? क्या हिन्दी में वह बात नहीं है कि विज्ञान को चन्द अंग्रेजी भक्तों की गिरफ्त से छुड़ाकर सहज–सरल रूप में आम आदमी के सामने रखा जा सके? सच इनमें से कुछ भी नहीं है–कमी न विज्ञान में है न हिन्दी में। सच तो यह है कि इस दिशा में ईमानदार प्रयास कम हुये हैं।

आइये, हम सभी एक जुट होकर एक ऐसे मंच की स्थापना करें, जहाँ से अपने ईमानदार प्रयत्नों द्वारा हम न केवल इस मिथ्या धारणा का खंडन कर दें कि विज्ञान आम आदमी की पहुँच से बाहर की चीज है, बल्कि इस भ्रामक प्रचार का भी दो टूक उत्तर दें कि विज्ञान की भाषा हिन्दी हो ही नहीं सकती।

"मणियों की देदीप्यमान लड़ियों में हम भी गुँथ जायें
तेजपुंज को करें समाहित सबका जीवन चमकायें।"

(डॉ० दिनेश मणि)

विज्ञान-साहित्य
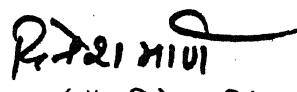
हिन्दी की विज्ञान पत्रिकाएँ

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

प्राय: यह जानने की उत्सुकता बनी रहती है कि विज्ञान की सबसे पुरानी पत्रिका कौन सी है और कुल कितनी पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। इस जिज्ञासा की शान्ति के लिए कुछ जानकारी प्रस्तुत है।

यद्यपि हम 1826 से 1925 के बीच के सौ वर्षों में प्रकाशित विज्ञान पत्रिकाओं की सूची बनावें तो कुल 42 पत्रिकाएँ होंगी। इनमें से 1900 के पूर्व केवल 6 विज्ञान पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं। ये हैं —

'आरोग्य दर्पण' (प्रयाग 1881), 'आरोग्य जीवन' (लखनऊ 1889), 'आरोग्य सुधाकर' (मुजफ्फरनगर 1889), 'कृषि हितकारक' (अमरावती 1890), 'गौरक्षा' (नागपुर 1891), तथा 'गोसेवक' (काशी 1894)।

इनके अतिरिक्त 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (1874), 'काशीपत्रिका' तथा 'सारसुधानिधि' (1878) में भी विज्ञान विषयक लेख छपते थे।

1901 से 1909 के बीच 3,1910-1920 के बीच 20, 1920-1925 के बीच 13 पत्रिकाएँ और निकलीं। इस तरह 1901-1925 के मध्य 36 पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं। इनमें स्वास्थ्यविषयक 21, कृषि विषयक 10, उद्योग परक 3, भूगोल विषयक 1, तथा शुद्ध विज्ञान की 1 पत्रिका थी। शुद्ध विज्ञान की यह एक मात्र पत्रिका "विज्ञान" थी जिसका प्रकाशन विज्ञान परिषद् प्रयाग की स्थापना (1913) के दो वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ। उस समय हिन्दी में 20 पत्रिकाएँ निकल रही थीं जिनमें से 4 प्रयाग से ही छपती थीं।

1925 के बाद विज्ञान पत्रिकाओं में विशेष वृद्धि हुई। 1950 में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार चिकित्सा और स्वास्थ्य की पत्रिकाओं की संख्या 24 से बढ़कर 44 हो गई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद कृषि क्षेत्र में "खेती" पत्रिका (1948) शुरू हुई। फिर भोपाल से 'किसान समाचार' (1948), दिल्ली से 'उन्नत कृषि' पन्तनगर से 'किसान भारती' (1968), राजस्थान से 'कृषि लोक' (1974) प्रकाशित हुईं।

'चिकित्सा' के क्षेत्र में प्रकाशित हुई पत्रिकाओं में 'आरोग्य' (1974), लखनऊ से 'प्राकृतिक जीवन' (1948), पटना से 'सचित्र आयुर्वेद' (1940), बनारस से 'आपका स्वास्थ्य' (1956) उल्लेखनीय हैं। 'आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका' (1913) से लगातार प्रकाशित होती रही है। इस काल में शुद्ध विज्ञान की पत्रिकाओं में कोई बढ़ोत्तरी या स्थिरता नहीं दिखी। हाँ, इधर 'साइंस फीचरों' का प्रचार बढ़ा है और कुछ हिन्दी समाचार पत्रों में विज्ञान का एक पृष्ठ छपने लगा है। बच्चों के लिए भी 'चकमक' पत्रिका का सूत्रपात (1985) हुआ है।

1980 के सर्वेक्षण के अनुसार चिकित्सा विज्ञान में 142, कृषि पशुपालन में 101, और शुद्ध विज्ञान में कुल 69 पत्रिकाएं निकल रही थीं। शुद्ध

विज्ञान विस्तृत विवरण आगे दिया जा रहा है।

सामान्य विज्ञान 21, व्यवहृत विज्ञान 37, वनस्पति विज्ञान 2, प्राणि विज्ञान 3, भौतिकी 4, रसायन 7, गणित 1,

इनमें से अनेक पत्रिकाएं बन्द हो चुकी हैं तो कुछ नवीन पत्रिकाएं प्रकाश में आई हैं

अनुसन्धान पत्रिकाएँ

सर्वप्रथम 1958 में विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया जो तबसे लगातार छप रही है। इसके बाद अन्य एक दर्जन अनुसन्धान पत्रिकाएं विविध विषयों में प्रकाशित होती रही हैं। ये हैं– आयुर्वेद अनुसन्धान पत्रिका (हापुड़ 1960), सुगणितम (अहमदाबाद 1963), गणित सन्देश (अजमेर1986), रसायन समीक्षा (जयपुर 1974), वनस्पति (दरभंगा 1979), जीवन्ती (कुरुक्षेत्र 1978), भारतीय कृषि अनुसन्धान पत्रिका (कर्नाल 1973), रसायनी (कुरूक्षेत्र 1971), कृषि चयनिका (दिल्ली– 1979), वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद (दिल्ली 1993) इनमें से कुछ पत्रिकाओं का प्रकाशन बन्द हो चुका है।

सामान्य लोकप्रिय विज्ञान की पत्रिकाएं (1915 से अब तक)

यहाँ उन लगभग तीन दर्जन पत्रिकाओं की सूची जिन्होंने विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में अभूतपूर्व भूमिका निभाई है। इनमें से भी कतिपय पत्रिकाएं अब बन्द हो चुकी हैं।

विज्ञान (1915), उद्यम (1919), प्राणिशास्त्र(1952), विज्ञान जगत(1961), स्नेह सन्देश (1959), खाद्य विज्ञान(1959), वैज्ञानिक बालक(1964), भूविज्ञान (1969), वैज्ञानिक (1969) आविष्कार(1971) भगीरथ (1975), विज्ञान भारती (1978), ग्राम शिल्प (1979), मानकदूत (1979), विज्ञान परिचय(1979), विज्ञान वैचारिकी (1980), विज्ञानदूत (1982), पर्यावरण दर्शन (1982), विज्ञान वीथिका (1986), तकनीक (1985), साइफन (1986), विज्ञान गरिमा सिन्धु (1986), जिज्ञासा (1987), विज्ञान गंगा (1988), वनस्पति वाणी (1990) मलेरिया पत्रिका (1992), साइंस जागृति (1993), क्षितिज (1992) वेट और पेट(1996) विज्ञान आलोक (1998)।

आशा है कि भविष्य में नई–नई पत्रिकाएँ निकलेंगी जिससे बहुआयामी विज्ञान को जन–जन तक पहुँचाने में तथा नये–नये लेखकों को प्रकाश में लाने का अवसर प्राप्त होगा।

□□□

डॉ० माशेलकर को जे०आर०डी० टाटा पुरस्कार

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सी.एस.आई.आर.) के महानिदेशक डॉ० रघुनाथ अनन्त माशेलकर को सामूहिक नेतृत्व के लिए वर्ष 1998 का जे.आर.डी.टाटा–98 के पुरस्कार के लिए चुना गया है। डॉ० माशेलकर को सीएसआईआर के तंत्र में परिवर्तन लाने तथा विज्ञान एवं व्यापार में तालमेल को बढ़ावा देने के लिए इस पुरस्कार हेतु चुना गया है। जब से पुरस्कार की स्थापना हुई है यह पहला अवसर है कि एक वैज्ञानिक को इसके लिए चुना गया है। सीएसआईआर द्वारा जारी विज्ञप्ति में यह जानकारी दी गयी है। पुरस्कार में एक प्रशस्ति पत्र, एक ट्राफी तथा दो लाख रुपये की नकद राशि प्रदान की जाती है। उपराष्ट्रपति कृष्ण कांत आगामी 21 फरवरी को अखिल भारतीय प्रबंधन संस्था की स्थापना दिवस के अवसर पर यह पुरस्कार प्रदान करेंगे। विज्ञान परिषद् परिवार की ओर से डॉ० माशेलकर को बहुत–बहुत बधाई।

विज्ञान कथा

विनाश का इतिहास

मनीष मोहन गोरे
22/2, स्टेशन रोड, देवरिया - 274001

रॉकेट और अंतरिक्ष यात्रा के अन्वेषक गोड्डार्ड ने एक बार कहा था कि यह कहना असंभव है कि असंभव क्या है, बीते कल के सपने आज की आशायें हैं और आने वाले कल की वास्तविकता।

"अंतरिक्ष में कॉलोनी बनाने का विचार भविष्य की बात है। अभी यह एक स्वप्न है—परंतु कभी न कभी यह सपना वास्तविकता में बदल सकता है। असंभव कुछ भी नहीं होता— कल तक लोहे की मशीन के आसमान में उड़ने की बात करने वाले व्यक्ति पर लोग हँसते थे, मगर आज के वैज्ञानिक युग ने वह मशीन ईजाद कर दी है— वायुयान के रूप में। विज्ञान तो असंभव को संभव बनाता है— रॉकेट और अंतरिक्ष के अन्वेषक गोड्डार्ड ने एक बार कहा था कि यह कहना असंभव है कि असंभव क्या है, बीते कल के सपने आज की आशाएं और आने वाले कल की वास्तविकता..... यह सब मैं तुम्हें इसलिए बता रहा हूँ, क्योंकि तुममें मैंने उम्मीद की एक नवज्योति देखी है। न केवल मुझे, बल्कि सम्पूर्ण विज्ञान जगत को तुमसे अपेक्षाएँ है— तुम्हारी दुनिया को जरूरत है ....."

पिता के द्वारा कही गयी उक्त बातें, बहुधा निरंजन के मस्तिष्क में बिजली की कड़कड़ाहट के समान कौंध उठती थीं— निरंजन विज्ञान से बेपनाह मुहब्बत करता था। उसने दुनिया को नया आविष्कार देने की ठानी थी। वह अपनी प्रयोगशाला में बैठा अंतरिक्ष कॉलोनी के निर्माण की गुत्थियों को सुलझाने में लगा था.. उसकी नजर में पृथ्वी पर दिनोंदिन बढ़ रही जनसंख्या दूसरी अन्य समस्याओं से कहीं अधिक खतरनाक और भयावह थी .....वह उस दिन की अभिकल्पना करता था जब धरती पर लोगों को पैर रखने की जगह मयस्सर नहीं होगी.... ऐसा विचार मन में आते ही वह बुरी तरह भयाक्रांत हो उठता और मन बहलाने के लिए दूसरी कोई बात सोचने लगता. .....

'अनलिमिटेड पापुलेशन ग्रोथ' फिर 'पापुलेशन ट्रांस्फर' की बात निरंजन अपने साथियों को सुझाता। साथी इसे 'दूर के ढोल' कहकर टाल देते... केवल एक मित्र था— प्रभात जो निरंजन की बातों की गहराई को नापता........... वह उसे अंतरिक्ष कॉलोनी निर्माण के क्षेत्र में हमेशा अभिप्रेरित करता..........

एक शाम प्रयोगशाला से निकलकर निरंजन जब मुख्य सड़क पर टैक्सी पकड़ने आया तो टैक्सियों की आवाजाही बड़ी विरल हो गयी थी..... शाम गहराती जा रही थी और अंधेरा बढ़ रहा था .. ठण्ड इतनी थी कि लोग घरों में दुबके हुए थे...... बेहद जरूरी काम के वास्ते ही लोग घर से बाहर कदम रखने को बाध्य होते .... बर्फीली हवा में, पास से गुजरकर दूर जाती हुई गाड़ियाँ मोमबत्ती के लौ की तरह लहराती हुई सी नजर आ रही थीं।

कई—एक टैक्सी ड्राइवरों को निरंजन ने आवाज लगाई, पर दुर्भाग्य से वे सारी पहले से ही भरी रहतीं..... सहसा उसने सोचा कि पैदल ही घर तक मार्च कर दिया जाय.... पर दूसरे ही पल बर्फीली सर्दी के बारे में सोचकर उसका खून ही जम जाता.. .. द्विविधा की स्थिति थी.... किंकर्तव्यविमूढ़, वह कुछ दूर पैदल ही चल पड़ा... उसे ऐसा महसूस हुआ कि ठण्डी हवा उसकी हड्डियों को भेदकर निकल रही है....

तभी एक टैक्सी तेजी से आयी, धीमी हुयी फिर निरंजन के पास आकर रुक गयी... निरंजन अवाक्। उसके मन में विचार उठा 'ईश्वर की अजब माया, कहीं पर धूप तो कहीं छाया'.....

"कहां जाइयेगा साहब?" खिड़की से बाहर सिर निकालकर ड्राइवर ने आवाज लगायी....

"छतरपुर जाना है, चलोगे....?

"चलिए साहब! बैठ जाइए...." कहकर उसने भीतर से ही पिछला दरवाजा खोल दिया....

कोट, मफलर में वह ड्राइवर किसी कार्टून फिल्म का पात्र लग रहा था...

टैक्सी कुछ ही क्षणों में हवा से बातें करने लगी। रास्तें में निरंजन को अजीबोगरीब अनुभूति ने चारों ओर से घेर लिया... उसे लगा जैसे वह किसी के वश में आ गया है... उस पर सम्मोहन किया जा रहा है.. वह लगभग अर्धचेतना की अवस्था में पहुँच गया. . टैक्सी कब रुकी, उसको पता भी न चला... उसे केवल ड्राइवर की आवाज सुनाई दी...

"मंजिल आ गई है साहब, बाहर निकल आइये..."

निरंजन अनमना–सा बाहर निकला। अंधेरी रात में चारों तरफ बर्फ ही बर्फ था... तूफानी झोंकों के कारण वह सीधा खड़ा नहीं रह पा रहा था। मगर अचरज की बात यह थी कि जितनी सर्दी थी, उतनी उसे लग नहीं रही थी... चारों ओर अंधेरे का साम्राज्य था.... अचानक ड्राइवर को न पाकर निरंजन विचलित हो उठा... "ड्राइवर ..ओ ड्राइवर.. कहां चले गये तुम?" तभी कानों में वही परिचित आवाज सुनाई दी.... "क्या हुआ साहब! डरने की बात नहीं है... नाक की सीध में ठीक पन्द्रह कदम चलिये..."

"बढ़ते जाइये, साहब! दरवाजा खुद–ब–खुद खुल जायेगा...." कहीं पास से ही वही परिचित आवाज फिर उभरी।

न चाहते हुए भी निरंजन के कदम आगे बढ़ गये... दरवाजे के बाहर पांव रखते ही दरवाजा खुल गया... सामने एक सीढ़ी नीचे की ओर जा रही थी... सीढ़ी पर पांव रखते ही वह लगभग सत्तर किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से दौड़ने लगी... कभी दांये– कभी बायें... चंद मिनटों के बाद वह रुक गयी... अन्तिम दरवाजा सामने दिखाई देने लगा था...।

"आगे बढ़िये, पूर्वज !!" यह आवाज दरवाजे के उस पार से आयी। निरंजन के दरवाजे पर कदम रखते ही 'खटाक' की ध्वनि के साथ दरवाजा खुल गया.. प्रकाश फैला हुआ था.. पृथ्वी के समान हरे पेड़–पौधे और पशु–पक्षी भी मौजूद थे...। हां, पक्की सड़कें और ऊँची अट्टालिकायें नदारद थीं... शायद, यह स्थान अपने विकास के प्रारंभिक दौर में था....

वास्तविकता भी यही थी।

"पूर्वज! आपका हमारे लोक में स्वागत है..." चार–पाँच सफेद रंग का चोगा धारण किये हुए लोग अब बहुत नजदीक आ गये थे... उनकी शक्लें साधारण मानव पृथ्वीवासी जैसी ही थीं... फर्क केवल ओढ़ने–पहनावे और रहन–सहन में था...।

शुरू में तो निरंजन डर से कांप रहा था, मगर बाद में कोई खतरा न जानकर वह सहज हो गया और फिर उसका स्वर–यंत्र गतिशील हुआ, मुख से आवाज निकल पड़ी – "आ .. आप... लोग कौन हैं? मैं यहां कैसे आया...? और यह कौन–सी जगह है....?

"धीरज धरें पूर्वज! आपको यहां किसी बात का कोई खतरा नहीं है.... हमारे साथ आप बिल्कुल सुरक्षित हैं... दरअसल आपकी हमें बेहद आवश्यकता थी... इसलिये हमें आपको यहां चन्द्रमा पर ले आना पड़ा...."

"चन्द्रमा...!!!" निरंजन एक क्षण के लिए चौंक उठा। प्राकृतिक उपग्रह– चन्द्रमा, जहां पानी होनेके संकेत 1998 में मिले, आज यहां जीवन मौजूद है... वह टैक्सी ड्राइवर, जिसने आपको 'टाइम मशीन' के जरिये यहां तक पहुँचाया, वह हमारा ही आदमी है और हमारे ही निर्देश पर उसने ऐसा किया आपको यकीन नहीं होगा... कि आप हमसे उम्र में पांच सौ वर्ष आगे (भविष्य) में आ पहुँचे हैं... अर्थात आप हमसे उम्र में पांच सौ साल बड़े हैं और हमारे पुरखों में से

एक... हमारा प्रणाम स्वीकारें।.....!
इतना कहकर उन सभी चन्द्रवासियों ने अपने हाथ जोड़कर निरंजन को नमन किया।

यह देखकर, निरंजन कुछ विचलित हुआ... उससे 20-30 वर्ष अधिक उम्र के वृद्ध उससे आशीर्वाद ग्रहण करना चाहते थे, लेकिन जब निरंजन को याद हो आया कि वह उनसे पाचं सौ साल बड़ा है, तब उसके स्वभाव में बुजर्गपन आया... उसने उन सभी नतमस्तक चन्द्रवासियों को आशीर्वाद दिया।

निरंजन अब उनसे उनके अतीत और वर्तमान के विषय में और विस्तार से जानना चाहता था...

न जाने किस विधि से चन्द्रवासी निरंजन के इस मनोभाव को भाँप गये...

उनमें से सबसे वृद्ध दिखने वाला चन्द्रवासी अपने पास के कुटिया जैसे घर में से एक बड़ी किताब उठा लाया और उनके पृष्ठों को पलटने लगया....

"पूर्वज! यह ग्रन्थ हमारा इतिहास स्वयं में समेटे हुए है... हम अतीत में कहां और कैसे रहते थे, यह हमें इस ग्रन्थ से ही मालूम हुआ है। इसके प्रारम्भिक अध्यायों में पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति का व्यौरा है... वहीं फिर बाद में अध्यायों में पृथ्वी पर 'विनाश लीला' तथा अन्त में चन्द्र और मंगल–पलायन का लेखा – जोखा है......."

वृद्ध चन्द्रवासी के इस कथन ने निरंजन को उद्वेलित कर दिया... पृथ्वी की विनाश लीला की बात सोचकर उसका दिल–दहल उठा.... वह उसी उहापोह की स्थिति में गोते लगा रहा था कि तभी चन्द्रवासी की ध्वनि सुनायी पड़ी, वह कुछ बता रहा था...

"इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में जब पृथ्वी पर प्रदूषण, जनसंख्या और अन्तर्राष्ट्रीय द्वेष–भाव जैसी विकराल समस्याओं ने अपनी जड़े मजबूत कर लीं तो उन्हें एक साथ उखाड़ना असंभव–सा हो गया... प्रदूषण और जनसंख्या तो अपने उफान पर था ही, लेकिन परमाणु परीक्षण और परमाणु हथियारों का भंडारण इतना विनाशकारी सिद्ध होगा, इस बात का खुलासा 2030 ई० में हुआ जब तीसरा विश्व युद्ध छिड़ गया.. अमेरिका, रूस, चीन और ब्रिटेन जैसे परमाणु अस्त्र सम्पन्न राष्ट्रों ने इसमें अपनी विशेष भूमिका निभायी... इन सबके पास इतने परमाणु हथियार तब मौजूद थे जिनकी मदद से पूरी पृथ्वी को अनेकों बार नष्ट किया जा सकता था... गनीमत तो यह हुयी कि ये अपने सारे के सारे परमाणु हथियार को प्रयोगों में न ला सके.... अधिकांश दुश्मन राष्ट्रों द्वारा बेकार कर दिए गए... फिर भी युद्ध के तीन वर्षों में जो तबाही हुयी, वह हिरोशिमा और नागासाकी वाली त्रासदी से कई गुना भयंकर थी.. फलस्वरूप आधे से अधिक पृथ्वी की जनसंख्या असमय काल–कवलित हो गयी... भारत में कुछ ज्यादा ही विनाश के बादल मंडराये... लगभग पूरा भारत तबाह हो गया... बस, उतने ही सौभाग्यशाली भारतवासी जीवित बचे रह गए... उस सदी के बाद के वर्षों में जीवित बचे हुए पृथ्वीवासी उच्च तकनीक के जरिये चन्द्रमा और मंगल के पलायन करने लगे... लोगों की अधिक संख्या को ध्यान में रखकर अंतरिक्ष में कालोनियों का निर्माण किया गया... क्षेत्रफल के अनुसार 10 हजार से लेकर 50 हजार तक मानव इन सुविधासम्पन्न अंतरिक्ष कालोनियों में बस गए... पृथ्वी पर इसके बाद जितने लोग छूट गये, उनका अंजाम और बुरा हुआ... बीस–तीस–चालीस वर्षों के बाद जो बच्चे पैदा होकर बड़े हुए, उनकी जिन्दगी मौत से भी बदतर हो गयी... घातक परमाणु–विकिरणों के प्रभाव से वे सभी लूले–लंगड़े, काने और अन्धे हो गए... जीवन नारकीय हो गया... नियत ने बहुब बड़ा अन्याय किया उन मासूम और निर्दोष पृथ्वीवासियों के साथ..."

इतना सुनकर निरंजन शोक–संतप्त हो उठा। पृथ्वी पर आगामी बत्तीस साल के बाद परमाणु विनाश लीला सुनिश्चित था... इसे टालना इतिहास को बदलने जैसा काम था जो कभी मुमकिन नहीं....।

निरंजन की स्थिति मार खाने के बाद सुबकते हुए बच्चे जैसी थी.... ऐसा आभास होता था कि अभी वह बिलख उठेगा... वह भीतर ही भीतर टूट रहा था.

"...चन्द्रवासी!! तुम मुझे दुबारा पृथ्वी पर भेज दो ... मैं अपने परिवार, अपनी पत्नी और बच्चों के साथ ही मरना पसन्द करूंगा...."

"आदरणीय पूर्वज! हमें बड़े अफसोस के साथ क़हना पड़ रहा है के आप दुबारा पृथ्वी अब कभी नहीं जा सकते... अभी थोड़ी देर पहले सूचना मिली है कि हमारी 'टाइम मशीन' फेल कर गयी है – सारी मशीनरी और प्रणालियां चौपट हो गयी है.... इसे पुनः निर्मित करने में सहस्त्रों वर्ष लगेंगे, तब तक आप....."

बाकी के शब्द हवा में लटक गए... उस अंतिम अधूरे वाक्य को निरंजन ने समझ लिया...

"आप हमारे लोक में निश्चिन्तता के साथ रहें... आपको कोई तकलीफ न होगी... खिदमत में कोई कमी नजर आये तो आप बेखटके हमें इत्तला करें.... आपके रहने का हमने पूरा बन्दोबस्त कर दिया है..."

धीरे–धीरे दिन, सप्ताह, महीने और फिर साल खिसकते चले गए... पैंतीस बरस बीत गए और कुछ पता ही न चला.... निरंजन के बालों में सफेदी और त्वचा पर झुर्रियां स्पष्ट दिखने लगी थीं– उसकी उम्र 65 वर्ष को चुकी थी.......।

विज्ञान के क्षेत्र में नये–नये आविष्कार कर लोगों के मन में वैज्ञानिक चेतना का संचार करना निरंजन का एक मात्र लक्ष्य था... गुजरे पैंतीस सालों में उसने अगणित वैज्ञानिक उपलब्धियां हासिल कर लीं थी... चन्द्रवासियों को यह कहते फख्र होता कि निरंजन जैसा उत्कृष्ट वैज्ञानिक उनकी धरती पर एक प्रहरी के रूप में मौजूद है... जिसने चन्द्रमा को वैज्ञानिक स्तर पर आत्मनिर्भर बना दिया...।

जीवन अपनी नियत गति से चल रहा था– सुबह होती, फिर दोपहर के बाद शाम और पूरा एक दिन रात के अंधेरे में कहीं खो जाता...।

निरंजन धीरे–धीरे अपना पुराना जीवन भूल चुका था या यूँ कहं कि भुला चुका था.... कभी–कभार एक धुँधली स्मृति, पुरानी बीती जिन्दगी की, उसके मानस पटल पर उभरती– जिसमें उसके दोनों नन्हें बच्चे–रानू और शालू, पत्नी रूमा और दोस्तों की छायाएं रहा करतीं.. कुछ ही देर में वे धुंधली और धुंधली हो जातीं, फिर निरंजन किसी अनिच्छित और अज्ञात संकट को सोचकर भयभीत हो उठता... ऐसा यदा–कदा देर रात को होता, जब निरंजन को रात में काफी देर बाद नींद आती, और वह कोई सपना देखता....

एक सुबह निरंजन ने जब बिस्तर छोड़ा तो उसका सिर कुछ भारी था... बात यह थी कि बीती रात उसे देर में आँख लगी थी और उसने फिर वही पुराना सपना देखा था...।

हालांकि, सुबह के समय मौसम बहुत ही खुशनुमा था। चारों ओर हरियाली बिखरी हुयी थी... फूलों की मधुर सुगन्ध हर दिशा में फैली जा रही थी. ..तितली और भौरें फूलों के साथ अठखेलियां कर रहे थे..मन्द गति से हवा का झोंका भी बह निकला था..

वह सब कुछ देखकर निरंजन का मन हल्का हो गया, सिर का भारीपन भी अब दूर छिटक गया था...

तभी... कोई निरंजन की ओर तेज कदमों से बढ़ा चला आ रहा था... यह एक चन्द्रवासी और निरंजन का चाकर था... उसके हाथ में कोई पुराना कागज था जो बड़ी ही जीर्ण–शीर्ण अवस्था में था...।

"नमस्कार हुजूर! आपके लिए एक पत्र लाया हूँ जो हमें पृथ्वी से प्राप्त हुआ है....."

निरंजन ने वह पत्र ले लिया... चन्द्रवासी थोड़ी देर बाद जा चुका था......

निरंजन ने पत्र का हुलिया देखा... वह कोई प्राचीन दस्तावेज लग रहा था– अपनी मुड़ी–तुड़ी अवस्था में। सफेद लिफाफा, जो अब पीला पड़ चुका था... कई स्थानों से फट गया था...। छिद्रों में से भीतर का गाज झांक रहा था...

लिफाफे के अग्रभाग पर मोटे अक्षरों में लिखा था–

श्री निरंजन कुमार
वैज्ञानिक प्रमुख
चन्द्रमा

निरंजन ने लिफाफा खोला और भीतर रखे पत्र को निकालकर पढ़ने लगा, एक साथ समस्त भाव उसके चेहरे पर उस समय विराजमान हो गये थे... भौंहे तन गयीं थीं....आँखे ऐसी लग रही थीं जैसे वे संसार का आठवां अजूबा देख रही हैं...

पत्र पर कुछ वाक्य अंकित किया गया था, हस्तलेख में... जो इस प्रकार था...

दिनांक -2 अगस्त 2033

प्रिय निरंजन,

आशा है सकुशल होंगे।

पैंतीस साल हुए तुम्हें पृथ्वी से गायब हुए। बिना किसी पूर्वसूचना के तुम अचानक ऐसे लुप्त हो गए जैसे गधे के सर से सींग। शुरू में हमें उम्मीद थी कि तुम एक न एक दिन जरूर लौटोगे। तुमने हमें जब बरसों तक कोई चिट्ठी न भेजी तो हमारी यह आशा भी टूट गयी कि तुम जीवित भी हो...

हमारी कलम शब्द नहीं उगल पा रही है... बात ही कुछ ऐसी है... 2030 के परमाणु युद्ध ने पूरी दुनिया को तबाह कर डाला... यह तीसरा विश्व युद्ध लगभग पूरे भारत को ही निगल गया। भाभी और बच्चे भी मौत के मुंह में समा गये... मैं अनुभव कर रहा हूँ कि तुम्हारा हृदय इस वक्त कष्ट से फट जा रहा होगा... लेकिन हम कर भी क्या सकते हैं... नियत को यही मंजूर था... मानव शक्ति लाचार साबित हुई। मैं अभागा न जाने कैसे. जिन्दा रह गया... मर गया होता तो अच्छा होता... भगवान से रोज दुआ करता हूँ कि जल्द से जल्द वह मुझे अपने पास बुला ले....।

विषादग्रस्त,

प्रभात

पत्र खत्म करने के साथ ही निरंजन बेसुध पास रखी कुर्सी पर गिर पड़ा .. उसकी आँखों से आंसू भी सूख गये थे.. इसलिये उसे रोना भी नहीं आया... उसके दिमाग ने जैसे, काम करना बन्द कर दिया... हृदय की धड़कन धीमी पड़ती गयी और फिर बन्द हो गयी... उसका शरीर ठण्डा हो चला था... हाथ की अंगुलियों के शिथिल और बेजान होते ही पत्र भी छूटकर जमीन पर आ गिरा..

तभी हवा का एक तूफानी झोका आया और पत्र को अपने साथ दूर आसमान में उड़ा ले गया.. रूमा, रानू और शालू के साथ निरंजन की आत्मा भी मुक्त हो गयी थी...। पत्र आसमान में बहुत दूर उड़ती हुई सफेद तितली जैसा दिखाई पड़ रहा था..

❑❑❑

डॉ० आशुतोष मिश्र का व्याख्यान सम्पन्न

दिनांक 10-12--98 को विज्ञान परिषद् प्रयाग के सभागार में सुप्रसिद्ध विज्ञान लेखक एवं टेक्सास इन्स्ट्रुमेण्ट कम्पनी (यू० एस० ए०) के वैज्ञानिक डॉ० आशुतोष मिश्र का व्याख्यान सम्पन्न हुआ। व्याख्यान का विषय था – " अर्द्धचालक उद्योग में रसायन"। समारोह की अध्यक्षता विज्ञान परिषद प्रयाग के उपसभापति प्रो० चन्द्रिका प्रसाद ने की। डॉ० प्रभाकर द्विवेदी ने सरस्वती वन्दना प्रस्तुत की।

डॉ० आशुतोष मिश्र ने अपने व्याख्यान में बड़ी ही रोचक शैली में बताया कि दैनिक जीवन में हम प्रतिदिन अनेक इलेक्ट्रानिक सामानों का उपयोग करते हैं किन्तु क्या हमने कभी यह सोचा है कि इन समस्त इलेक्ट्रानिक सामानों में सिलिकॉन चिप इस्तेमाल होती है जो अर्द्धचालक का काम करती है। इसके निर्माण में आवर्त सारणी के ग्रुप तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम के तत्वों का उपयोग किया जाता है। डॉ० मिश्र ने MOSFET (मॉस्फेट)–"मेटल ऑक्साइड सेमीकण्डक्टर फील्ड इफेक्ट ट्रान्सफर" के निर्माण की प्रक्रिया पर विस्तार से प्रकाश डाला।

अन्त में विज्ञान परिषद के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

इलेक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी

हैम रेडियो : संचार का वैकल्पिक साधन

कपिल कुमार त्रिपाठी
वैज्ञानिक, विज्ञान प्रसार, सी –24, कुतुब इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली – 11 0016

किसी देश की प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि वहाँ संचार की कैसी व्यवस्था है। वर्तमान संसार में संचार की अनेक अत्याधुनिक प्रणालियाँ हैं। क्या आपने कभी इस बात पर विचार किया है कि किसी कारणवश यदि संचार के प्रचलित साधन ठप्प पड़ जायें, तो इस स्थिति में संचार के लिए कौन सी विधि उपयुक्त होगी? इस वैकल्पिक रेडियो संचार का नाम है ''हैम रेडियो अथवा शौकिया रेडियो''।

"हैम रेडियो" एक प्रकार की रुचि है, जिसकी सहायता से व्यक्ति घर बैठे ही दुनिया के किसी कोने से सम्पर्क स्थापित कर सकता है। "हैम" शब्द कहाँ से लिया गया है, इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। कुछ लोगों के अनुसार यह शब्द भौतिक विज्ञान के तीन महान वैज्ञानिक हर्त्स, आंग्रस्ट्रॉम व मारकोनी, के नामों के पहले अक्षर को मिलाकर बनाया गया है। जो व्यक्ति इस शौकिया रेडियो का संचालन करता है, "हैम" कहलाता है। रेडियोकर्मी, इस रेडियो की सहायता से किसी भी समय रेडियो आवृत्तियों के निश्चित बैण्डों पर आपस में संदेशों का आदान–प्रदान करके दुनिया भर में पत्र–मित्र बनाते हैं। अतः इस रुचि के माध्यम से एक दूसरे के बारे में जानने और विचारों के आदान–प्रदान में सहायता मिलती है। हैम रेडियो की सहायता से रेडियोकर्मी, अन्तरिक्ष, महासागर, प्रयोगशाला आदि कहीं से भी सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि संचार के अन्य पारम्परिक साधन के समान इसमें कोई शुल्क नहीं लगता है।

अन्य संचार के साधनों के समान हैम रेडियो में ट्रांसीवर (ट्रांसमीटर+ रिसीवर) होता है। हैम रेडियो, से व्यक्ति अपना संदेश ध्वनि तरंगों अथवा मोर्सकाड में भेज सकता है। यह कार्य उपकरण के साथ जुड़े एन्टीना के द्वारा होता है। वायुमण्डल में पृथ्वी से 150 किमी ऊँचाई पर आयनित गैसों की परत होती है। यह परत भेजे जाने वाले संकेत के लिए परावर्तित सतह का कार्य करती है। प्रकाश तरंगों की भाँति रेडियो तरंग भी सीधी रेखा में चलती हैं, और उपस्थित बाधाओं को भेद सकने में असमर्थ होती है। प्रायोगिक दृष्टि से यह आयनमण्डल एक प्रकार की बाधा होती है, जिससे यह संकेत परावर्तित होकर उस निश्चित आवृत्ति पर ट्यूनड रिसीवर द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। हैम रेडियो में संचार के लिए सूक्ष्म तरंग, दीर्घतरंग व माध्यमतरंग की अपेक्षा अच्छी होती हैं, क्योंकि जैसे–जैसे तरंगदैर्घ्य घटती जाती है उसके द्वारा संकेत को अधिक दूरी तक ले जाने की क्षमता बढ़ती जाती है सूक्ष्म तरंग के लिए 160 मीटर, 80 मीटर, 40 मीटर, 30 मीटर, 20 मीटर, 16 मीटर, 15 मीटर, 12 मीटर, 10 मीटर, तरंगदैर्घ्य उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त माइक्रोतरंग के लिए 2 मीटर, 60 सेमी, 23 सेमी तरंग दैर्घ्य पर भी संचार सम्भव होता है। वातावरण की ठंडी व गर्म सतह परावर्तित संकेतों को प्रभावित करती है। हैम रेडियो की विशेषता यह है कि विपरीत परिस्थितियों में भी 1000-2000 किमी क्षेत्र में बात करना सम्भव हो जाता है। इस यंत्र के लिए विभिन्न आवृत्ति स्पेक्ट्रम इस प्रकार है–

1820 - 1860 किलो हर्ट्ज

3500 - 3700	किलो हर्ट्ज
3890 - 3900	किलो हर्ट्ज
7000 - 7100	किलो हर्ट्ज
14,000 - 14,350	किलो हर्ट्ज
18,68 - 18,168	किलो हर्ट्ज
21,000 - 21,450	किलो हर्ट्ज
24,890 - 29,700	किलो हर्ट्ज
28,000 - 29,700	किलो हर्ट्ज
144 - 146	मेगा हर्ट्ज
434 - 438	मेगा हर्ट्ज
1,260 - 1,300	मेगा हर्ट्ज
5,725 - 5,800	मेगा हर्ट्ज

हैम प्रायः उपरोक्त अंकित आवृत्तियों पर संकेत भेजते हैं और सुदूर बैठे किसी व्यक्ति से विचार विनिमय करने में सक्षम होते हैं। एक बार सम्पर्क स्थापित हो जाने के उपरान्त हैम एक दूसरे को पावती पत्र भेजते हैं जिसे QSL कार्ड कहा जाता है। इस कार्ड में बात किये जाने वाले दिन, जगह, समय आवृत्ति, उपकरण व कॉलशाइन आदि का उल्लेख होता है। इसकी सहायता से व्यापार या राजनीतिक वार्तालाप नहीं किया जा सकता है न ही किसी तीसरे व्यक्ति का संकेत भेजा जा सकता है।

हैम उपकरण का संचालन वही व्यक्ति कर सकता है जिसके पास इसका लाइसेंस हो। यह लाइसेंस संचार मंत्रालय द्वारा प्रतिमाह आयोजित प्रवीणता परीक्षा उत्तीर्ण करके ग्रहण किया जा सकता है। इस लाइसेंस को 12 वर्ष से अधिक उम्र का कोई भी व्यक्ति ग्रहण कर सकता है। लाइसेंस प्राप्त करने वाला व्यक्ति "हैम" कहलाता है। लाइसेंस प्राप्त करने के उपरान्त संचार मंत्रालय द्वारा एक कॉलशाइन दिया जाता है। भारतवर्ष में दिये गये कॉलशइन का प्रारम्भ VU2 या VU3से होता है। जैसे VU2MSYयहाँ VU2 भारत को प्रकट करते हैं। प्रत्येक देश के कॉलशाइन का प्रारम्भ एक निश्चित अक्षरों से होता है। रिकार्ड के रूप में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय कॉल पुस्तक होती है। जिसमें कॉलशाइन के साथ व्यक्ति का नाम व पते का उल्लेख होता है। हैम उपकरण, खुले तौर पर हमारे देश में उपलब्ध नहीं है। एक आयतित उपकरण का मूल्य 40,000 रुपये है। वर्तमान में, हमारे देश के हैम अपने उपकरण का निर्माण स्वयं कर रहे हैं। इससे एक ओर उन्हें अपना उपकरण अपेक्षाकृत कम मूल्य अर्थात 2000-3000 रुपये तक प्राप्त होता है, वहीं अपने द्वारा बनाये गये उपकरण पर बात करने की सुखद अनुभूति होती है। शौकिया रेडियोकर्मी, अपनी इस रुचि का प्रयोग जनसेवा में भी कर सकते हैं। युद्ध व अन्य प्राकृतिक विपदाओं के समय हैमो को सक्षम रेडियोकर्मी माना जाता है। शौकिया रेडियोकर्मियों ने अनेक अभियानों और रोमांचक यात्राओं के समय सहायता की है। अंटार्टिका की कुछ खोज यात्रायें विशेषतौर पर उल्लेखनीय हैं। प्राकृतिक आपदाओं जैसे चक्रवात, भूकम्प, बाढ़ आदि के समय जब प्रचलित संचार की सभी व्यवस्था ठप्प पड़ जाती है, यह हैम रेडियो उपकरण काफी उपयोगी होता है। आपदा के तुरन्त बाद प्रभावित क्षेत्रों में हैम पहुँचकर अपना केन्द्र स्थापित कर राहत कार्यों का संयोजन करते हैं। रेडियोकर्मियों ने उत्तरकाशी और महाराष्ट्र में लातूर तथा आसपास के क्षेत्रों में भूकम्प के समय तुरन्त पहुँचकर कई सप्ताह तक संचार अधिकारियों के बचाव कार्यों के समन्वय, दवाइयों, कपड़े की जन स्वास्थ्य, सम्पत्ति आदि की वस्तुस्थिति से अवगत होने में सहायता मिली। शौकिया रेडियो की मुख्य भूमिका समाज के प्रति जीवन सुरक्षा क्षेत्र में रही है। ऐसे कई मामले हैं, जिनमें हैमों के नेटवर्क तत्काल सक्रिय होने के कारण दुर्लभ दवाओं को दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने में भेजा जा सका और मरणासन्न रोगियों को बचा लिया गया जो कि संचार के पारम्परिक तरीकों से कठिन था।

संसार में इस समय लगभग 2.7 मिलियन लोग हैम हैं। मुख्य देशों में उपस्थिति हैमों की क्रमवार स्थिति इस प्रकार है,

देश	हैमो की संख्या (हजार में)
जापान	1350,126
संयुक्त राज्य अमेरिका	674,652
जर्मनी	75,254
इंग्लैण्ड	72,093
स्पेन	59,325
कनाडा	45,000
रूस	38,000
इटली	32,000
ब्राज़ील	30,000
अर्जेन्टीना	29,475
भारत	15,000

देश में हैम रेडियो के क्षेत्र में अनेक संस्थायें कार्य कर रही हैं। "विज्ञान प्रसार" (विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग भारत सरकार के अन्तर्गत स्वायत्त संस्थान) हैम रेडियो के प्रोत्साहन के लिए कार्य कर रहा हैं। इस संगठन का मुख्य कार्य लोगों को इस रुचि के विषय में अवगत कराना व सस्ते मूल्य के हैम उपकरण उपलब्ध कराना है। इसके अतिरिक्त नेशनल इन्स्ट्टीयूट ऑफ अमेच्योर रेडियो हैदराबाद भी इस दिशा में कार्यरत है।

निस्संदेह, बड़ी संख्या में प्रशिक्षित, शौकिया रेडियोकर्मी देश के लिए एक संसाधन है। देश के भीतर और बाहर लोगों से बातचीत कर पाने का आनन्द विशेषकर छोटी उम्र में, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में रुचि जागृत करने के लिए एक महत्वपूर्ण कारक हो सकता है। रुचिवान व्यक्तियों और विद्यार्थियों की क्षमताओं और सृजनशीलता को शौकिया रेडियो से सम्बन्धित विभिन्न प्रयोज़नों के माध्यम से उजागर करने की सम्भावना है। हमें आशा करनी चाहिए कि भविष्य में अधिक से अधिक लोग हैम रेडियो से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना योगदान देंगे।

❑❑❑

शोक समाचार

विज्ञान परिषद प्रयाग से जुड़े सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध विज्ञान लेखक श्री पं० राम स्वरूप चतुर्वेदी दिनांक 10 दिसम्बर, 1998 को परलोक सिधार गये। हिन्दी के माध्यम से विज्ञान के प्रचार–प्रसार में विगत सात दशकों से संलग्न श्री चतुर्वेदी को डॉ० आत्माराम पुरस्कार सहित अनेक सम्मान प्राप्त हो चुके हैं। "सादा जीवन, उच्च विचार" की भावना से प्रेरित श्री चतुर्वेदी एक स्वतंत्रता सेनानी, कई संस्थाओं के संस्थापक एवं प्रणेता थे।

परिषद्–परिवार की ओर से श्री चतुर्वेदी को भावभीनी श्रद्धांजलि।

एड्स के इलाज की नई संभावनायें

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद – 2

'एड्स' विश्वव्यापी रोग है। वर्तमान में एक चौंकाने वाला तथ्य जो उभरकर सामने आया है कि प्रतिदिन सारे संसार में 8,000 से अधिक एड्स रोगियों की पहचान की जा रही है। इस प्रकार यह रोग किस तेजी से बढ़ रहा है इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। एड्स से सम्बन्धित और अधिक नवीनतम जानकारी दी गई है प्रस्तुत आलेख में।

हमारा पर्यावरण अनेक प्रकार के रोगजनक कारकों से भरा पड़ा है। ये कारक हैं वायरस (विषाणु), बैक्टीरिया (जीवाणु), फंजाई, (कवक या फफूंद) और अनेक तरह के पदार्थ। हवा, पानी, भोजन अथवा मच्छर आदि के काटने से ये रोगजनक कारक शरीर में प्रवेश कर हमारे प्रतिरक्षण तंत्र को क्षत–विक्षत कर देते हैं। आमतौर से प्रतिरक्षण तंत्र इन रोगजनक कारकों के विरुद्ध जाग्रत हो जाता है और इनके विरुद्ध एंटीबॉडी तथा कुछ अन्य प्रकार के रसायनों के संश्लेषण के द्वारा हमारे शरीर को सुरक्षा प्रदान करता है और शरीर को स्वास्थ और निरोग बनाये रखता है। शरीर की इसी क्षमता को वैज्ञानिकों ने उपार्जित तौर से प्रतिरक्षण क्षमता उसी समय जाग्रत होती है, जब कोई बाहरी तत्व शरीर में प्रवेश करता है। ऐसे तत्व एण्टीजन कहलाते हैं और ये एण्टीजन जो रसायन अथवा प्रोटीन वाले पदार्थ बनाते हैं, उन्हें एण्टीबॉडी कहते हैं।

एण्टीजन रासायनिक तौर पर एण्टीजन–प्रोटीन, न्यूक्लियो–प्रोटीन, लाइमो–प्रोटीन, ग्लायको–प्रोटीन या बड़े पॉलीसैकेराइड होते हैं। एण्टीबॉडी इन्हीं इम्यूनोग्लोब्यूलिन से क्रिया करके एण्टीजन को निष्क्रिय कर सकते हैं। यहाँ एक बात याद रखने की आवश्यकता है कि सभी एण्टीबॉडी इम्यूनोग्लोब्यूलिन होते हैं, किन्तु इम्यूनोग्लोब्यूलिन एण्टीबॉडी नहीं होते हैं।

इस लेख में विषाणु से उत्पन्न होने वाले सर्वाधिक घातक रोग 'एड्स' की चर्चा करेंगे। 'एड्स' ऐसा रोग है जो विषाणु "एच आई वी–HIV द्वारा उत्पन्न किया जाता है। प्रारंभ में यह अल्पकाल के लिए शरीर के प्रतिरक्षण–तंत्र को प्रभावित करता है, इस रोग में ज्वर का आना, शरीर पर छोटे–छोटे दानों का निकलना, कोमल लिम्फ गाँठों में सूजन आम बात है। उपार्जित प्रतिरक्षण "एक्वायर्ड इम्यूनिटी" थोड़े समय के लिए प्रभावित होती है बाद में शरीर स्वस्थ दिखता है किन्तु रोग के विषाणु शरीर की कोशिकाओं में पड़े रहते हैं और अनेक वर्षों के अंतराल के बाद शरीर पुनः रोगग्रस्त हो सकता है।
'एड्स' विश्वव्यापी रोग है। वर्तमान् में एक चौंकाने वाला तथ्य जो उभर कर सामने आया है वह यह है कि प्रतिदिन सारे संसार में 8,000 से अधिक 'एड्स' रोगियों की पहचान की जा रही है। इस प्रकार यह रोग किस तेजी से बढ़ रहा है, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि पिछले एक दशक में इस रोग के प्रति आम जन की जानकारी बढ़ी है, किन्तु इस रोग पर विजय के सारे प्रयास विफल रहे हैं और इस रोग के बढ़ने पर अंकुश नहीं लगाया जा सका है।

एक और चौंकने वाली बात। यूनाइटेड नेशन्स के एचआई वी 'एड्स' से संबंधित कार्यक्रम के निदेशक डॉ० पीटर पिओट के अनुसार भारत में एचआईवी

–संक्रमित रोगियों की संख्या विश्व में सर्वाधिक है। पूरे विश्व में इस समय 30 मिलियन एड्स रोगी हैं जिसमें से 4 मिलियन एड्स रोगी भारत में ही हैं। इनमें भी लगभग एक तिहाई रोगी युवा हैं। यही नहीं, भारत में प्रतिवर्ष 25000 महिलायें इस रोग की चपेट में आ जाती हैं, 30000 नवजात शिशु एड्स रोगी होते हैं और 20000 लोगों की प्रतिवर्ष मृत्यु हो जाती है। किन्तु एड्स रोगियों को उनके कार्यस्थल अथवा घर परिवार से अलग रखने की आवश्यकता नहीं। रोग से बचने के लिए यौन शिक्षा की आवश्यकता है।

प्रसन्नता की बात यह है कि वैज्ञानिक खोजों के फलस्वरूप पिछले दिनों कुछ औषधियाँ बना ली गई हैं जिनके प्रयोग से एड्स पर विजय पाने की संभावनाओं में नए द्वार खुले हैं किन्तु ये औषधियाँ अत्यधिक मँहगी हैं और तीसरी दुनिया के देशों के लिए पहुँच से बाहर, जहाँ बहुत से विशेषज्ञों का मानना है कि टीका "वैक्सीन" ही इस रोग पर विजय दिला सकती है किन्तु प्रश्न है कि क्या 'एड्स' का टीका तैयार किया जा सकता है?

'एड्स' का टीका तैयार करने संबंधी अनुसंधानों में जुटे हुए लंदन के 'इम्पीरियल कॉलेज स्कूल ऑव मेडिसिन' के चार्ल्स बैंघम और ऑक्सफोर्ड में जॉन रेडक्लिफ हॉस्पिटल के रॉडनी ई० फिलिप्स का मत है कि मनुष्यों में 'एड्स' रोग उत्पन्न करने वाला विषाणु बड़ा ही 'छलिया' है और इसी कारण काबू में आसानी से नहीं आ रहा है। ऐसा मत इन दोनों वैज्ञानिकों ने विश्व प्रसिद्ध पत्रिका लैंसेट "lancet में व्यक्त किया है।

कठिनाई की बात पहली तो यह है कि वाइरस की संख्या में वृद्धि अथवा अपनी प्रतिकृति बनाते समय भूलें भी बहुत करता है, इस कारण कुछ का कुछ बन जाता है और उत्परिवर्तन "म्यूटेशन–Mutation" की दर भी तेज है। साथ ही बहुत से उत्परिवर्तित विषाणुओं पर औषधियों का असर नहीं हो पाता इस कारण यदि प्रारंभ में कोई दवा विषाणु पर प्रभावी भी होती है तो विषाणु में बदलाव के कारण बेअसर हो जाती है। यहाँ यह समझ लेना अच्छा है कि उत्परिवर्तन जीनों "Genes" में अचानक परिवर्तन से होता है और जीन एक पीढ़ी के गुण दूसरी पीढ़ी में ले जाने वाले "वाहक होते हैं। और तो और, एक विशेष प्रक्रिया "रीकम्बिनेशन" "Recombination" के द्वारा मानव कोशिकाओं में नए विषाणु तैयार होते रहते हैं। इस प्रकार एड्स विषाणु की अनेक किस्में " स्ट्रेंस – Strains" हैं अतएव यदि किसी "स्ट्रेन" के विरुद्ध कोई टीका तैयार भी जाये तो कोई एक टीका विषाणु की सभी किस्मों पर कारगर नहीं हो सकता। टीका तैयार करने की दिशा में यह बहुत बड़ी बाधा है।

बैंघम और फिलिप्स का कहना है कि टीका ऐसा होना चाहिए जो मानव शरीर में नष्ट न हो और एक भी विषाणु को प्रभावी न रहने दे और साथ ही जो शरीर की एक्वायर्ड इम्यूनिटी को सक्षम भी बनाए किन्तु ऐसा टीका बनाना आसान हीं। फिर भी वैज्ञानिक प्रयासरत तो हैं ही। और चिकित्सा विज्ञान का इतिहास साक्षी है सभी ऐसे असाध्य रोगों पर विजय पाने में वैज्ञानिकों को अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है।

ब्रिटिश वैज्ञानिक शोध पत्रिका "न्यू साइंटिस्ट"New Scientist" के एक ताजे अंक में प्रकाशित एक शोध–पत्र के हवाले से कैलिफोर्निया यूनिर्वसिटी के डॉ० शैरॉन स्टैनफोर्ड बताते हैं कि एड्स रोगियों के संसर्ग में आने अथवा उनके साथ संभोग के बाद भी अनेक लोग रोग के प्रकोप से बचे रहते हैं। इसका कारण उनके रक्त में टी–सेल्स ("T-Cells") के साथ एक प्रोटीन सी डी 8 "cd-8" का पाया जाना। इनके प्रभाव से विषाणु संख्या में वृद्धि नहीं कर पाते और विषाणु कोशिकाओं के भीतर कैद हो जाते हैं। वास्तव में ये एक विशेष प्रकार का एन्जाइम स्रावित करते हैं जो विषाणुओं को अपनी अनुकृति बनाने से रोकता है।

अमेरिकी वैज्ञानिकों का मानना है कि इससे रोग पर विजय पाने के लिए प्रभावी टीका तैयार

करने की निकट भविष्य में संभावना प्रबल दीख पड़ती है किन्तु जहाँ साधन सम्पन्न देशों के वैज्ञानिक दवाइयों की खोज में जुटे हैं वहीं भारत के "सिद्ध–चिकित्सा" के विशेषज्ञ डॉ० के० वेंकटेसन भी इस दिशा में पीछे नहीं हैं। डॉ० वेंकटेसन ने 16 वीं और 11 वीं शताब्दी ए०डी० के तमिल साहित्य में "एड्स" का उल्लेख ढूँढ़ निकाला है जहाँ 20 से अधिक यौन रोगों के संदर्भ मिलते हैं। इनमें से एक की समानता "एड्स" से जान पड़ती है। इस प्रकार कुछ पौधों से तैयार दवा के द्वारा डॉ. वेंकटेसन कुछेक एड्स रोगियों का इलाज कर रहे हैं और उनका कहना है कि परिणाम आशाजनक हैं। साथ ही उनका यह मानना है कि एलौपैथ, होमियोपैथ, वैद्य, हकीम और सिद्ध चिकित्सकों को मिलजुलकर "एड्स" की दवा खोजनी चाहिए।

एक शुभ समाचार पेरिस, फ्रांस के सेण्ट जोसेफ अस्पताल के डॉ० एल्बर्ट बरेटा " Dr. Alberto Barrea" ने अपने शोधों के आधार पर 'लैंसेट' "Lancet" पत्रिका के माध्यम से, यह बताया है कि एचआई वी "HIV" का इलाज ढूँढ़े जाने की संभावना नजर आ रही है। एक नया जेनेटिक उत्परिवर्तन एड्स विषाणु के प्रति प्रतिरोध पैदा कर सकता है। अतएव निकट भविष्य में वैज्ञानिक विधि से उत्परिवर्तन करा कर एड्स रोग पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

किन्तु यहाँ एक सहज–सा प्रश्न उठता है कि एड्स की जब तक कोई कारगर दवा नहीं तैयार कर ली जाती तब तक क्या करें? 'एड्स' रोगियों के साथ अनेक भ्रांतियाँ भी जुड़ी हुई हैं। एड्स रोगी समाज की दृष्टि से हीन समझा जाता है। आमतौर से यह समझा जाता है कि एड्स रोगी के सम्पर्क में आने, हाथ मिलाने, साथ खाने–पीने से रोग फैलता है किन्तु ऐसा नहीं है। एड्स के रोगी को आप घर में रख सकते हैं। हाँ इस रोग से बचने के लिए समलैंगिकता, वैश्यागमन, एक ही ब्लेड से दाढ़ी बनाने, किसी इलाज के लिए पुरानी सुई के इस्तेमाल, बिना परीक्षण के रक्त चढ़ाने आदि से बचना चाहिए। हमें एड्स रोगी के प्रति प्यार और करुणा का रुख अख्तियार करना होगा और जनमानस को शिक्षित करना होगा।

❑❑❑

परिषद् की जोधपुर शाखा से –

विज्ञान लोकप्रियकरण कार्यक्रम

विज्ञान परिषद् की जोधपुर शाखा राष्ट्रभाषा के माध्यम से विज्ञान के लोकप्रियकरण एवं जन मानस में विशेषतः छात्रों में विज्ञान चेतना जागृत करने हेतु सतत् प्रयत्नशील हैं। जोधपुर के कई उच्च माध्यमिक विद्यालयों यथा –गीतांजली, आदर्श एवं हनवन्त विद्यालय तथा कई पारिस्थितिकी विकास शिविरों में जाकर परिषद् के वैज्ञानिक इं. के. एम.एल. माथुर, डॉ. डी.डी. ओझा, डॉ. अचलेश्वर बोहरा, डॉ. नरेन्द्र सिंह राठौड़ एवं श्रीमती नीलम वासन ने क्रमशः जल एवं उसका यथार्थ उपयोग, लोकप्रिय रसायन एवं दैनिक जीवन में रसायन, लोकप्रिय वनस्पतियाँ, मरुस्थल में हानिकारक एवं उपयोगी कीट पतंगों तथा संतुलित पोषक के तत्वों का जीवन में महत्व के बारे में अत्यन्त ही सरल भाषा में रोचक जानकारियाँ प्रदान की। इस कार्यक्रम से न केवल विद्यार्थी वरन् शिक्षक समुदाय भी लाभान्वित हो रहा है। इस ज्ञानयज्ञ की लोकप्रियता को देखते हुए जोधपुर के कई अन्य विद्यालयों तथा स्वयं सेवी संस्थाओं ने भी परिषद् के वैज्ञानिकों को व्याख्यान देने हेतु आमंत्रित किया है। जोधपुर स्थित विज्ञान परिषद् की शाखा के सभापति डॉ. रामगोपाल भी हिन्दी के माध्यम से विज्ञान के प्रचार प्रसार में सक्रिय है तथा वर्तमान कार्यकारिणी के सभी सभ्यों में रचनात्मक कार्यों को करने में बहुत उत्साह तथा निष्ठा भी हैं।

(डॉ. डी.डी. ओझा)
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् जोधपुर शाखा

कीट जगत

मानव-कल्याण में जंगल के कीट

डॉ० दीपक कोहली व रिम्मी कोहली

लघु उद्योग अनु० 3 उ०प्र० सचिवालय एनेक्सी (चतुर्थ तल) लखनऊ - 226001

प्रकृति में अनेक लाभदायक कीट पाये जाते हैं। जैसे-जैसे हमारी वैज्ञानिक जानकारी बढ़ती गई, वैसे-वैसे इनका आर्थिक महत्व भी अधिक महसूस किया जाता रहा, उपलब्ध तकनीकों और साधनों से लोग इनका पालन-पोषण भी करने लगे। आइये जाने कि ये छोटे-छोटे कीट किस तरह मानव के काम आते हैं।

मानव की सेवा में वन के पारिस्थितिक तंत्र का प्राणी घटक भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वन का यह प्राणी घटक वन के वृक्षों पर जीवन बिताता है वन के प्राणीजात से कई किस्म के औद्योगिक और व्यापारिक उत्पाद प्राप्त होते हैं। कुछ छोटे-छोटे कीट वन और राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं क्योंकि वे अनेक उद्योगों के लिए कच्ची सामग्री प्रदान करते हैं। इस प्रसंग में मधुमक्खियों या मक्षिकाओं, शलभों (मॉथ) तथा लाख कीट के नाम लिये जा सकते हैं। प्राचीन समय से ही ये कीट प्राकृतिक रूप से वनों में पाये जाते हैं। जैसे-जैसे हमारी वैज्ञानिक जानकारी बढ़ती गयी, वैसे-वैसे इनका आर्थिक महत्व भी अधिक महसूस किया जाता रहा। उपलब्ध तकनीकों और साधनों से लोग इनका पालन-पोषण भी करने लगे। आइये जाने कि ये छोटे कीट किस तरह मानव के काम आते हैं और कैसे उसके रहन-सहन को उत्तम बनाते हैं।

सर्वप्रथम मधुमक्षिपालन पर नजर डालते हैं। मधु मक्षिकाएं शहद और मोम उत्पन्न करती हैं, इसलिए इन्हें शहद की मक्खी या मधुमक्खी कहते हैं। प्राचीन ग्रन्थों यथा-वेदों और रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मधुमक्खी पालन उस समय भी प्रचलित था। लेकिन उस समय इन्हें पालने के तरीके बड़े अपरिष्कृत और अलाभकारी थे। विश्व में मधुमक्खियों कई प्रजातियां पायी जाती हैं। हमारे देश में पायी जाने वाली प्रसिद्ध प्रजातियाँ हैं- एपिस, डौर्सेटा, ए०फ्लोरिया, ए०इण्डिका इत्यादि। ये कीट मकरन्द उत्पन्न करने वाले फूलों के परागण में सहायता करते हैं। मधु या शहद सुगंध वाला, गाढ़ा और मीठा पदार्थ है, जो पौधों के मकरन्द से प्राप्त होता है। इसमें दो मुख्य शर्कराएं-डैक्सट्रोज व लीवुलोस, वर्णक, एंजाइम, पराग-कण आदि पदार्थ होते हैं, इसमें जो शर्कराएं होती हैं वह आसानी से स्वांगीकृत हो जाती हैं और रक्त में सोख ली जाती है, जो तुरन्त ऊर्जा देती है। शहद रक्त के के हीमोग्लोबिन-निर्माण में सहायक होता है। डबलरोटी, बिस्कुट आदि बनाने मे भी इसका उपयोग होता है। इसे मृदु विरेचक (लक्सेटिव), रक्त का शोधन करने वाला तथा खाँसी-जुकाम् का विरोधी पदार्थ भी कहा जाता है। एल्कोहलीय पेयों, त्वचा व सौन्दर्य सम्बन्धी लोशनों और फलों के परिरक्षण-पदार्थ के रूप में भी इसका उपयोग होता है।

मधुमक्खियां वैक्स बनाती हैं, जिसे सामान्य भाषा में मोम, सिंथी, लेलिन आदि कहते हैं। यह पदार्थ मक्षिकाओं द्वारा मधुमक्खियों के मोम का मुख्य स्रोत एपिस डौर्सेटा है क्योंकि इसका छत्ता बड़ा होता है। मोम के कई उपयोग हैं। मन्दिरों और गिरजाघरों में इसका चढ़ावे के रूप में उपयोग होता है। विभिन्न प्रकार के सोने, चांदी व पीतल के साँचों की मोम द्वारा परिष्कृति की जाती है। मरहम, प्लास्टर और छपाई उद्योग में भी इसका प्रयोग किया जाता है। वह स्थान जहाँ मधुमक्खियों का संवर्धन किया जाता है और व्यापारिक उत्पाद प्राप्त करने के लिए उनका

पालन—पोषण किया जाता है, मधुक्षिशाला (एपियरी) कहलाता है। मधुमक्खी पालने वालों के पास यदि निम्नलिखित बातें हों तो वे अपने व्यवसाय को उन्नत करके उसके बहुत लाभकारी बना सकते हैं— (1) यदि उनके पास काफी संख्या में बड़ी व स्वस्थ कालोनियां और अच्छे विभेद (स्ट्रेन) हों, (2) यदि उनके पास शुद्ध शहद निकालने तथा उसको बेचने के उपयुक्त साधन हों (3) यदि उन्हें मधुमक्खियों के व्यवहार, प्रजातियों के सुधार तथा शहद उत्पन्न करने वाले पुष्पित पौधों की सम्यक जानकारी हो।

मानव के लिए लाभकारी वन—कीटों में द्वितीय स्थान रेशम—कीटों के द्वितीय स्थान रेशम—कीटों का आता है, जिसे वैज्ञानिक भाषा में बौम्बिक्स मोराई कहते हैं। रेशम उत्पादन हेतु कीटों का प्रजनन और प्रबन्ध रेशम कीट पालन या सेरिकल्चर कहलाता है। रेशम—कीट सर्वप्रथम चीन में परपोषी वृक्षों यानि शहतूत (मोरस एल्बा) के पेड़ों पर देखे गए। चूँकि इन से भारत में अंडों के रूप में एक राजकुमारी द्वारा लाए गए थे। अपने आरम्भ से ही रेशम कीटों ने अपनी रेंगने की आदतें नहीं बदली हैं। शहतूत का पेड़ बिना अच्छा रेशम उत्पन्न नहीं कर सकते। परपोषी—खाद्य के आधार पर इसे शहतूत खाने वाले (पालतू) और शहतूत न खाने वाले (वन्य) रेशम कीटों में वर्गीकृत किया जा सकता है। रेशम कीट के जीवन—चक्रमें 'कोकून' निर्माण की एक स्थिति आती है, इसी 'कोकून' से रेशम प्राप्त किया जाता है। "जे० ओरिंकट्न" ने ज्ञात किया कि भारत की जलवायु में एक वर्ष में इसकी कई पीढ़ियाँ उत्पन्न होती हैं, जबकि इंग्लेण्ड में यह साल में केवल एक बार ही प्रजनन कर पाता है। एक पीढ़ी में रेशम की जितनी प्राप्ति होती है उसे 'बैन्ड' कहते हैं।

मधुमक्खी एवं रेशम—कीट के अतिरिक्त 'लाख—कीट' भी मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। लाख कीट का वैज्ञानिक नाम लैसीफर लैका या टैकार्डिया लैका भी है। यह कीट भारत के लिए वस्तुतः विशेष क्षेत्री (एन्डीमिक) है। जिन परपोषी पौधों पर यह कीट पनपता है वे हैं — पलाश (ब्युटिया फ्रन्डोसा), बेर (जिजिफस जुजुबा) और कुसुम (श्लेईहेरा ओलिओसा)। इस कीट से जो पदार्थ प्राप्त होता है उसे 'लाख' की संज्ञा दी गई है। लाख शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'लाक्षा शब्द से हुई है। पौराणिक ग्रन्थ 'महाभारत' में भी "लाक्षा —गृह" घटना का विवरण मिलता है, जिसमें पाण्डवों को छल से मारने के लिए दुर्योधन "लाख के घर" (लाक्ष—गृह) का निर्माण करवाता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि लाख आग के सम्पर्क में आते ही तुरन्त पिघलना शुरू कर देता है। वैसे 'लाक्षा' शब्द का अर्थ है, 'सैकड़ो हजार', और यह नाम संभवतया लाख की पपड़ी से असंख्य डिम्भको (लार्वा) के निकलने के आधार पर ही पड़ा है।

लाख—संवर्धन का आरम्भ जनन—लाक्षा (ब्रूड लैक) से होता है, जो कि परपोषी पौधों की टहनी पर कीओं वाली पपड़ी होती है। कीट फिर परपोषी पेड़ों पर फैल जाते हैं, प्रजनन करते हैं और शलदार परत का स्रवण करते हैं जिससे लाख प्राप्त होता है। कच्चे उत्पाद को टहनियों पर से खुरच लिया जाता है और फिर गन्दे पदार्थों को साफ करने के लिए इसे विलेयक —पानी से धो लिया जाता है, और इस तरह कण लाक्षा या सीड लैक प्राप्त कर ली जाती है। चपड़ा (शैलेक) प्राप्त करने हेतु कण—लाक्षा को तप्त प्रजनन—प्रक्रम (हॉट स्मेल्टिंग प्रोसेस) द्वारा संशोधित किया जाता है। वार्निश की पौलिश, ग्रामोफोन के रिकार्ड और छपाई की स्याही बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है। फेल्ट हैट को कड़ा करने और चमड़े को परिष्कृत करने में भी इसका उपयोग किया जा सकता है। इससे लाल रंजक (डाई) और रालदार लाख प्राप्त होती है। रालदार लाख को सामान्य राल (रेजिन) और मोम को अपमिश्रित करने में प्रयुक्त किया जाता है।

सारांशतः हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त वर्णित वन—कीट, मानव—कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हमारी दिन—प्रतिदिन की जिदंगी में कहीं न कहीं इन कीटों के उत्पादों का प्रयोग अवश्यमेव होता है।

❑❑❑

स्वास्थ्य

पोलियो मुक्त इक्कीसवीं शताब्दी का सपना

ज्योति भाई

स्वतंत्र पत्रकार, ग्रामोदय प्रकाशन, घूरपुर, इलाहाबाद - 212110

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने *1998* में सन् *2000* तक पोलियो मुक्त विश्व का लक्ष्य निर्धारित किया था। तब से अब तक इस मामले में अच्छी खासी प्रगति हुई है। अधिकांश पश्चिमी देश पोलियो मुक्त हो भी चुके हैं। भारत सहित कुछ ही देश ऐसे बचे हैं जहाँ अभी भी इक्का दुक्का पोलियो के रोगी निकल आते हैं। बहरहाल, भारत में भी पोलियो अन्तिम साँस गिन रहा है। इस सफलता के पीछे पल्स पोलियो टीकारण के उन महाअभियानों की बहुत बड़ी भूमिका है जो पिछले कुछ वर्षों से चलाये जा रहे हैं। इस वर्ष भी *7* दिसम्बर *1998* तथा *18* जनवरी *1999* को पल्स पोलियो टीकाकरण का महाअभियान चलाया जा रहा है।

पोलियो रोग विषाणु संक्रमण से फैलता है। पोलियो का विषाणु सिर्फ मनुष्य के शरीर में पलता बढ़ता है। यह मानव देह में अधिकतर मुख द्वारा भी प्रवेश कर जाता है। परन्तु कभी–कभी यह सांस द्वारा भी प्रवेश करता है। संक्रमण का मुख्य कारण मानव मल है। यही कारण है कि यह अधिकतर गंदी दशाओं में फैलता है।

पोलियो का विषाणु सबसे पहले गले में अड्डा जमाकर अपनी संख्या बढ़ाता है। संक्रमण के तीन दिन बाद विषाणु को मानव के मल तथा गले से प्राप्त किया जा सकता है। इसके पश्चात विषाणु आंत और लसीका ग्रन्थियों में पहुँच जाता है। इस समय तक व्यक्ति के शरीर में पोलियो के कोई विशेष लक्षण नहीं उभरते। ज्यादा से ज्यादा गला खराब, सिरदर्द और हल्के बुखार की शिकायत होती है। लक्षणों का उभार उस समय होता है जब पोलियो विषाणु लसीका ग्रन्थि से निकलकर रक्त में आ जाते हैं और केन्द्रीय तंत्रिका–तंत्र पर हमला कर देते हैं। उस अवस्था तक पहुँचने में आम तौर पर 7 से 14 दिन तक लग जाते हैं। लेकिन कभी–कभी यह अवधि 3 से 35 दिन की भी हो सकती है। केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में पहुँच कर ये विषाणु उसे नष्ट करना शुरू करते हैं जिसके फलस्वरूप रोगी की पेशियों को लकवा मार जाता है। अगर संक्रमण बहुत उग्र नहीं होता तो पेशियाँ 4 से 6 माह के भीतर फिर से कार्य करने लग जाती हैं। अगर कपाल "क्रैनियल" तंत्रिकायें भी पोलियो विषाणु की चपेट में आ जाय तो इसे "बल्बर पोलियो" कहा जाता है। यह 20 प्रतिशत मामलों में घातक पाया गया है। वैसे साधारण पोलियो में भी 5 से 10 प्रतिशत तक की मृत्यु दर देखी गयी है। मारने वाले रोगी अधिकतर एक वर्ष से कम आयु के शिशु होते है।

पोलियो का कोई इलाज नहीं है। इससे बचने का तरीका सिर्फ टीका ही है। पोलियो से बचाव के टीके दो तरह के हैं। एक डॉ० जोनास सॉक द्वारा विकसित टीका जो इंजेक्शन द्वारा लगाया जाता है। दूसरा डॉ० अल्बर्ट साबिन द्वारा विकसित टीका जिसकी खुराक मुँह से पिलायी जाती है। अपने देश में यही दूसरा वाला टीका ही बच्चों को दिया जा रहा हैं डॉ० सॉक ने अपना टीका 1953 में बनाया था। 1954 में इस टीके को लाखों स्कूली बच्चों पर अपनाया गया। 12 अप्रैल 1955 यह ऐतिहासिक दिन था जब अमेरिका के राष्ट्रपति 'रुजवेल्ट' ने इस सफल टीके की घोषणा की थी। डॉ० साक ने यह टीका पोलियो के मृत विषाणुओं से बनाया था। उपरोक्त के विपरीत डॉ० अलबर्ट बी० साबिन ने जीवित विषाणुओं से मुँह से पीने वाला टीका बनाया। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1957 से इस टीके का परीक्षण शुरू करवा दिया। 1964 से दोनों का व्यापक इस्तेमाल शुरू हो गया।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पोलियो उन्मूलन के लिए चार चरणों का कार्यक्रम बनाया है। अपने देश भारत में इस पर गंभीरता से कार्यवाही भी हो

रही है। अन्य देश भी इसे अपना रहे हैं। पहले चरण में अस्पताल और अन्य स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से नियमित टीकाकरण कार्यक्रम चलाया जाता है। इसके तहत शिशुओं को टीके की 3-4 खुराकें निश्चित अन्तराल पर पिलायी जाती हैं। हमारे देश में पहले चरण पर काफी पहले से काम चल रहा है।

दूसरे चरण में राष्ट्रीय स्तर पर टीकाकरण अभियान चलाये जाते हैं। इसके लिये टीकाकरण दिवस का आयोजन किया जाता है और प्रयास किया जाता है कि उन दिवसों पर कोई भी बच्चा टीकाकरण से वंचित न रह जाय। भले ही पहले से वह नियमित टीका ले रहा हो। इस अभियान में पाँच साल से कम आयु के सभी बच्चों को निश्चित अन्तराल पर पोलियो ड्राप पिलायी जाती है। अपने देश में पहला अभियान दिल्ली राज्य में 2 अक्टूबर और 4 दिसम्बर 1994 को चलाया गया था। दूसरा अभियान पूरे देश में 9 दिसम्बर 1995 और 20 जनवरी 1996 को तीसरा अभियान 7 दिसम्बर 1996 और 19 जनवरी 1997 को चलाया गयाथा। इस तीसरे अभियान में 12.7 करोड़ बच्चों का टीकाकरण किया गया था जो एक विश्व रिकार्ड है। इस वर्ष मानव 7 दिसम्बर 1998 तथा 18 जनवरी 1999 का टीकाकरण देश का पाँचवां महा अभियान है।

विश्व का पश्चिमी गोलार्द्ध 1994 में ही पोलियो मुक्त घोषित किया जा चुका है। यह सफलता सघन टीकाकरण अभियानों द्वारा ही संभव हो पायी है इस क्षेत्र में पोलियो मुक्त नहीं हो जाता तब तक शेष दुनिया से यहाँ पोलियो के विषाणुओं के प्रवेश का खतरा बना हुआ है।

पश्चिमी प्रशान्त क्षेत्र में सबसे व्यापक अभियान चीन में छेड़ा गया है। यहाँ दिसम्बर 1993 और जनवरी 1994 के पहले दौर के टीकाकरण में आठ करोड़ बीस लाख बच्चों को टीका लगायागया था। जबकि दूसरे दौर के दो दिनों में चार वर्ष से कम आयु के आठ करोड़ तीस लाख बच्चों को टीका लगाया गया था। फिलीपींस, कम्बोडिया आदि देशों में भी सघन टीकाकरण में फलस्वरूप यह पूरा क्षेत्र अब लगभग पोलियो मुक्त हो चुका है। दक्षिण पूर्वी एशियायी क्षेत्रों में भारत पोलियो का सबसे बड़ा केन्द्र है। दुनिया के कुल पोलियो पीड़ित का सबसे बड़ा केन्द्र है। दुनिया के कुल पोलियो पीड़ित बच्चों में 75 प्रतिशत भारतीय होते हैं लेकिन सघन टीकाकरण अभियानों के फलस्वरूप यहाँ भी पोलियो रोगियों की संख्या तेजी से गिर रही है। 1990 के बाद से तो पोलियो के कारण मृत्यु की खबरें नहीं आ रही हे। इस तरह पोलियो के प्रकोप के मामले भी लगातार कम होते जा रहे हैं। कारण यहाँ पोलियो टीकाकरण अभियान में लोग बढ़–चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं।

पोलियो पीड़ित बच्चे को सामान्य बच्चों की अपेक्षा अधिक प्यार–दुलार और देखभाल की आवश्यकता है। पोलियो से किसी बच्चे का पीड़ित हो जाना कोई अभिशाप अथवा पिछले जन्म का फल नहीं है। जो लोग ऐसा कहते हैं वे अंधविश्वासी और समाज विरोधी हैं। दकियानूसी बातों को छोड़कर यदि पोलियोग्रसत बच्चे की समय से उचित देखभाल शुरू कर दी जाय तो उसका बहुत कुछ ठीक हो जाना संभव है। चिकित्सा विज्ञान ने पोलियो ग्रस्त अंगों को ठीक करने की अनेक विधियाँ विकसित की हैं। अनेक व्यायाम बनाये गये हैं जिनके नियमित अभ्यास से पोलियो ग्रस्त अंगों में काफी सुधार किया जा सकता है। यही नहीं, शल्य क्रिया द्वारा भी पोलियो ग्रस्त अंगों का ठीक हो जाना संभव है। इन सब के बावजूद अनेक तरह के कृत्रिम अंग विकसित किये गये हैं किन्तु सबसे बड़ी आवश्यकता पोलियोग्रस्त बच्चे में आत्मविश्वास भरने की है। पोलियो–ग्रस्त बच्चे को यदि घर, परिवार और समाज से उचित प्यार मिलेगा तो उसमें कुंठा की भावना नहीं पनपेगी। उसके अन्दर पूर्ण आत्मविश्वास रहेगा और वह अन्य सामान्य बालकों की तरह ही जीवन यापन करेगा। तब न तो वह अपने जीवन को भार समझेगा और न समाज ही उसे भार समझेगा। सौभाग्य से भारत सरकार ने देश में जगह–जगह विकलांग केन्द्र खोल रखा है। यही नहीं, अनेक सरकारी नौकरियों में भी विकलांगों के लिए आरक्षण की व्यवस्था है। अनेक स्वयं सेवीसंगठन भी विकलांगो के हित में काम कर रहे हैं।

भारत सहित अन्य विकासशील देशों से पोलियो के उन्मूलन में सभी विकसित देशों को बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेना चाहिए। यह उनके हित में भी है क्योंकि पोलियो उन्मूलन के बावजूद अभी भी उन्हें अपने–अपने देशों में टीकाकरण के ऊपर भारी धनराशि खर्च करनी पड़ती है। यह राशि उन्हें तब तक खर्च करनी पड़ेगी जब तक कि दुनिया पूर्णतया पोलियो मुक्त नहीं हो जाती है।

❑❑❑

विज्ञान समाचार

नवीनतम वैज्ञानिक जानकारियाँ

श्रीमती अर्पिता मोहन द्वारा श्रीमती प्रभा देवी
224 बी०, तुलाराम बाग, इलाहाबाद

(1) क्या धरती का वातावरण सिकुड़ रहा है?

लंदन के "डेली टेलीग्राफ" नामक समाचार पत्र में प्रकाशित एक रिपोर्ट चौंकाने वाली है। कैम्ब्रिज में ब्रिटिश अंटार्कटिक सर्वे में वैज्ञानिकों ने अंटार्कटिका फाकलैण्ड द्वीपसमूह के पिछले 40 वर्षों में डाटा का अध्ययन करके पता लगाया है कि पृथ्वी का वातावरण 8 किलोमीटर सिकुड़ चुका है। इस सिकुड़ाव का कारण है कार्बन डाइऑक्साइड गैस का जमाव, जिसके कारण वातावरण ठंडा हो गया और परिणामस्वरूप वातावरण सिकुड़ गया। शोध दल के एक वैज्ञानिक डॉ० जार्विस का कहना है कि ऐसे आमतौर से तो इससे मानव जाति को कोई खास खतरा नहीं है, किन्तु यह इस बात का प्रमाण है कि मानव किस प्रकार पर्यावरण को प्रभावित कर रहा है क्योंकि हरित पौधगृह गैसों के उत्सर्जन का मूल कारण मानव गतिविधियाँ ही हैं।

(2.) अगली सदी के मध्य तक सुधार होगा पृथ्वी के सुरक्षा कवच में :

ओजोन की परत हमारी पृथ्वी को एक सुरक्षा कवच की तरह घेरे हुए है और सूर्य की पराबैंगनी किरणों से हमारा बचाव करती है। इस बात का भी अक्सर जिक्र होता रहा है वैज्ञानिक समुदाय और राजनीतिक नेताओं और आम जनता में भी इस सम्बन्ध में अहसास गहरा होता जा रहा है कि मानव द्वारा निर्मित रसायन पृथ्वी की इस संरक्षक परत को नष्ट कर रहे हैं। लेकिन एक आशाजनक धारणा यह भी है कि ओजोन का यह कवच अगली शताब्दी के मध्य तक फिर से बहाल हो जाएगा।

वैज्ञानिक कहते हैं कि स्थिति बेहतर होने से पहले कुछ बिगड़ेगी भी। उनके अनुसार ओजोन का क्षय करने वाले रसायनों की बहुतायत सन् दो हजार तक अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाएगी। उसके बाद इन गैसों की मात्रा में कमी आना शुरू हो जाएगा। लेकिन विश्व मौसम संगठन के एक जाने–माने विशेषज्ञ विमेन वॉचकॉफ का कहना है कि बदहाली की इस प्रक्रिया के सामने आने में अभी कोई बीस साल का समय लग जाएगा, तब कहीं जाकर ओजोन की मात्रा में वृद्धि का पता मिलेगा।

वॉचकॉफ कहते हैं कि ओजोन की परत इस समय अपनी सबसे अधिक दुर्बल स्थिति में है। इसलिए अगले एक दो दशकों में हम ऐसे वर्षों की प्रत्याशा कर सकते हैं जब ओजोन के क्षय की मात्रा अब तक देखी गई कमी की अपेक्षा अधिक गहरी होगी। श्री वॉचकॉफ कहते हैं कि ओजोन की परत को 1960 के दशक के संरक्षक के स्तर तक पहुँचने में अभी और पचास साल लग जाएंगे।

ओजोन की ये परत सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी यानि अल्ट्रा वायलेट किरणों से हमारी रक्षा करती है जिनके प्रकाश के परिणाम में मनुष्यों को त्वचा का कैसंर हो सकता है, और वनस्पतियों और अन्य प्राणियों को नुकसान पहुँच सकता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि दक्षिणी ध्रुव का वातावरण बसन्त के दौरान होने वाले ओजोन का क्षय अगले दो दशकों तक ज्यों का त्यों होना जारी रहेगा। श्री वॉचकॉफ कहते हैं उत्तरी गोलार्ध में यह स्थिति गंभीर बनी रहेगी। उनके अनुसार उत्तरी ध्रुव के क्षेत्र में सर्दी और बसन्त के पिछले 9 मौसमों में से 6 में

ओजोन की परत में 25 प्रतिशत से अधिक की कमी आई है। ऐसे भी महीने आते रहे हैं जब ओजोन की मात्रा 1960-70 की औसत संख्या से 35 प्रतिशत कम होती रही है, और उत्तरी ध्रुव की ये स्थिति भी आगामी एक दो दशकों तक जारी रहेगी।

जिनेवा में जारी एक अध्ययन में 'मॉन्ट्रीयल प्रोटोकाल' कहलाने वाले उस अन्तर्राष्ट्रीय समझौते में आशा की गई जो 1987 में लागू हुआ था। इस समझौते के तहत औद्योगिक देशों को क्लोरोफ्लोरोकार्बन(CFC) यानि सी.एफ.सी. कहलाने वाले ऐसे रसायनों का उत्पादन और इस्तेमाल चरणों में बंद करने के लिए 1995 के अन्त तक समय दिया गया था। ये सी.एफ.सी. रसायन ओजोन की परत को क्षति पहुँचाते हैं। विकासशील देशों को इन हानिकारक गैसों का वातावरण में उत्सर्जन बंद करने के लिए दस वर्षों का अतिरिक्त समय दिया गया है।

(3) पर्यावरण मित्र कागज

नेशनल केमिकल लैबोरेटरी, पुणे के माइक्रोबियल टेक्नोलॉजी यूनिट से सम्बद्ध एम. सी. श्रीनिवासन ने एक ऐसे फफूँद "कवक" की एक किस्म ("स्ट्रेन") की खोज विलग कर लिया है, जिसके प्रभाव से जहाँ एक ओर अच्छे रेयान ग्रेड कागज बनाने में सफलता प्राप्त हो गई है वहीं दूसरी ओर कवक द्वारा स्रावित एंजाइम के असर से कागज उद्योग में विषैले रसायनों का इस्तेमाल भी कम हो जायेगा। इस तरह तैयार किए जाने वाली प्रक्रिया से पर्यावरण को भी कोई क्षति नहीं होगी। कवक को विलग करने की इस विधि को पेटेंट भी कर लिया गया है।

(4) प्रदूषण से भारत को प्रतिवर्ष 80 बिलियन डॉलर की क्षति :

विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवर्ष पर्यावरण प्रदूषण से होने वाली बीमारियों और मौतों के कारण 80 बिलियन डॉलर की क्षति होती है। यह क्षति शहरी और ग्रामीण क्षेत्र तथा समुद्रतटीय क्षेत्रों में होती है। पर्यावरण प्रदूषण का मुख्य कारण है बढ़ते उद्योग, कटते वन, प्रदूषित जल, कूड़े–कचरे के निपटान की उचित व्यवस्था का अभाव और जनचेतना की कमी।

(5) भारत में अम्ल वर्षा की संभावना अधिक :

वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि यदि उद्योगों, कोयले से चलने वाले बिजली घर, वाहनों से पेट्रोल और डीजल के दहन से उत्सर्जित विषैली गैसें इसी प्रकार हवा में मिलती रहीं तो तो अम्ल वर्षा में निश्चित रूप से वृद्धि होगी। अम्ल वर्षा के लिए सल्फर और नाइट्रोजन के ऑक्साइड्स कार्बनिक अम्ल और किसी सीमा तक हाइड्रोक्लोरिक एसिड जिम्मेदार है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक स्रोतों में लावा फूटने "वाल्कैनिक इरप्शन्स" से निकलने वाले सल्फर से भी अम्ल वर्षा बढ़ रही है। 'करेन्ट साइन्स' Current Science" नामक शोध–पत्रिका में बताया है के जोधपुर से मिलिक्वाय, और श्रीनगर से कोडाई कैनाल तक सारे भारत में अम्ल वर्षा में वृद्धि हो रही है। और तो और, कोडाई कैनाल और पेर्टब्लेयर जैसे कम प्रदूषित स्थानों से भी अम्ल वर्षा की सूचनायें प्राप्त हुई हैं।

(6) विटामिन रोकेंगे कैंसर रोग को :

एडवर्ड गियोवान्नुस्सी नामक एक शोधकर्ता बोस्टन में महिलाओं के एक अस्पताल में कोलन के कैंसर रोगियों पर परीक्षण से इस नतीजे पर पहुँचे कि मल्टी विटामिनों के प्रयोग से कोलन कैंसर के खतरे को कम किया जा सकता है। 15 वर्षों तक लगातार जिन महिलाओं ने मल्टीविटामिनों का सेवन किया उनमें कोलन कैंसर का खतरा 75 प्रतिशत कम हो गया। इसका कारण संभवतः फोलिक एसिड है। इस फोलिक एसिड के प्रयोग की सलाह माँ बनने वाली महिलाओं को दी जाती है क्योंकि इस विटामिन के प्रयोग से होने वाली शिशुओं में जन्मजात गड़बड़ियों के होने की आशंका नहीं रहती है। वैसे यह परीक्षण महिलाओं पर ही किया गया है, किन्तु इस बात की पूरी संभावना है कि फोलिक एसिड का प्रभाव पुरुषों पर भी ऐसा ही होगा। यह विचार शोधकर्ता एडवर्ड गियोवान्नुस्सी ने व्यक्त किया है, जिन्होंने यह शोध–कार्य

बोस्टन में महिलाओं के एक अस्पताल में सम्पन्न किया है।

(7) <u>अदिलाबाद के निकट डायनोसार के जीवाश्मों की नई खोज</u> :

पिछले दिनों 'भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण' के जीवाश्म विज्ञानियों को 160 मिलियन वर्ष प्राचीन सारोपॉड समूह के डायनोसार के कंकाल अदिलाबाद जिले के किस्तापुर नामक स्थान पर खुदाई के दौरान प्राप्त हुए हैं।

भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण (G.S.I.) के जीवाश्म विज्ञान विभाग के निदेशक डॉ० ए.के.मोइत्रा के अनुसार इस नई खोज से इस बात की पुष्टि होती है कि डायनासोर लोअर जूरेसिक काल में पाये जाते थे। यह जीवाश्म अपने आप में काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि बहुत सी हड्डियाँ बिखरी न होकर जुड़ी हुई पाई गई हैं। कंकाल में दुम की हड्डी जुड़ी पायी गयी। डॉ० मोइत्रा का कहना है कि भारत विश्व के उन देशों में से एक है जिनमें डायनोसार के कंकाल पाये गए हैं।

❑❑❑

जैव रासायनिक अनियमितता पागलपन का कारण हो सकती है।

ब्रिटेन में चल रहे अनुसंधानों से यह बात सामने आई है कि शरीर में जैव रासायनिक अनियमितता स्किजोफ्रीनिया एक गम्भीर मानसिक बीमारी है। इसके रोगी वास्तविक सामाजिक जीवन से काटकर अपने विचारों में अपनी अलग दुनिया बना लेते हैं। उनके सोचने और समझने का ढंग, प्रेरणा और मूड बड़ा विकृत और अव्यवस्थित होता है। वे वास्तविकता से दूर अपने भ्रमों में खोए रहते हैं उनकी यह दशा पागलपन में शामिल की जाती है।

इनवरनेस, स्कॉटलैण्ड में हाइलैण्ड मनोरोग विज्ञान अनुसंधान दल के डॉ० इयन ग्लेन का कहना है कि स्किजोफ्रीनिया के लिये जिम्मेवार जैवरासायनिक अनियमितता जीन की खराबी के कारण होती है, अब इसके मरीजों पर शोध करके इस रोग के लिये जिम्मेवार जीन का पता लगाया जा रहा है।

कृषि

गन्ने की फसल को सफेद भृंग (व्हाइट ग्रब) से बचाव करें-

डॉ आर० के० वर्मा
प्रवक्ता, कीट विज्ञान विभाग, कृषि संकाय
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म०प्र०) 458331

गन्ना भारत की प्रमुख व्यावसायिक फसलों में से एक महत्वपूर्ण फसल हैं इसकी खेती लगभग 3.5 मिलियन हेक्टेयर में की जाती है। गन्ने का प्रतिवर्ष उत्पादन लगभग 205 मिलियन टन है, इस फसल से 10.2 प्रतिशत चीनी की खपत पूरी की जाती है। ज्ञात हो कि यह फसल प्रति वर्ष कई कीटों एवं रोगों से ग्रसित होती है।

गन्ने की फसल में लगने वाले विभिन्न कीटों में से, सफेद भृंग भी एक प्रमुख कीट है। इसकी निम्नवत जातियां विभिन्न राज्यों में गन्ने की फसल प्रभावित करती है।

सफेद भृंग की जातियां प्रभावित राज्य
1-होलोट्राइका कान्सेनकोनिया—बिहार,उ०प्र०, राजस्थान
2-होलोट्राइका सिराटा — उ०प्र० कर्नाटक, महाराष्ट्र
3- ल्यूकोफोलिस लेपिडोफोर — महाराष्ट्र

सफेद भृंग का वयस्क नीम, बबूल अमरूद आदि की पत्तियों को खाता है जबकि इसका गिडार (ग्रब) गन्ने की जड़ वाले भाग को खाता है। भृंग की निष्क्रिय अवस्था प्यूपा मिट्टी में रहती है। अप्रैल माह में जैसे ही ग्रीष्मकालीन की पहली वर्षा होती है वैसे ही प्यूपा (कोकून) से वयस्क निकलना प्रारम्भ हो जाते हैं। ये वयस्क मुख्यतः उक्त पेड़ों की पत्तियों को रात्रि में खाना शुरू करते हैं तथा दिन के समय वयस्क कीट मिट्टी में सड़े—गले कार्बनिक पदार्थों को खाना सुरू करते हैं। इन सफेद गिडारों का आकार अंग्रेजी के 'सी' अक्षर जैसा होता है इसलिये इनको आसानी से पहचाना जा सकता है।

नुकसान

सफेद भृंग की गिडारें तीव्रता से गन्ने की जड़ों को खाते हैं जिससे गन्ने के ऊपरी भाग की पत्तियाँ पीली पड़कर, मुरझाने से लगती है और गन्ने का पौधा धीरे—धीरे सूखकर कमजोर हो जाता है। प्रभावित पौधे आसानी से उखड़ आते हैं। जब इस कीट का प्रकोप ज्यादा होता है तो गन्ने की फसल को लगभग 80-100 प्रतिशत तक हानि हो जाती है।

जीवन चक्र

सफेद भृंग कीट एक वर्ष में केवल एक ही पीढ़ी पूरा करती है इसके चक्र की विभिन्न अवस्थाएं निम्नवत दिनों में पूर्ण होती हैं—

1-	अण्डकाल	—	8-30 दिन
2-	गिडार अवस्था	—	56-292 दिन
3-	प्यूपा अवस्था	—	10-35 दिन
4-	पूर्ण जीवन काल	—	96-357 दिन

बचाव के तरीके व प्रबन्ध

1- भृंग के वयस्कों को रात्रि के समय तीव्र रोशनी वाली टार्च की मदद से इसके परपोषी पौधे से एकत्रित कर पानी में पड़े मिट्टी के तेल वाले बर्तन में डालकर नष्ट कर देना चाहिए।
2- इस कीट से प्रभावित गन्ने की फसल को काटने के पश्चात तुरन्त बार—बार जुताई करते रहना चाहिए जिससे कीट की गिडारें एवं प्यूप, कीटभक्षी चिड़ियों द्वारा लिये जायें।
3- गन्ने की रेटून फसल (गन्ने की फसल की पहली पेड़ी से दूसरी फसल लेना) बिल्कुल नहीं लेना चाहिए।
4- खेत में गन्ने की फसल लेने के बाद धान फसल लेकर फसल—चक्र जरूर अपनाना चाहिए।

❑❑❑

विश्लेषण

रसायन विज्ञान से दूर रहे दो वैज्ञानिकों को रसायन शास्त्र का मिला नोबेल पुरस्कार

वर्ष 1998 के लिए रसायन शास्त्र में दिया गया नोबेल पुरस्कार ठोस महत्व का कहा जा सकता है। यद्यपि रसायनशास्त्र का यह पुरस्कार भी क्वांटम थ्योरी अर्थात प्रमात्रा सिद्धांत के क्षेत्र में किए गए कार्य का ही प्रतिफल है।

आस्ट्रिया में जन्मे किन्तु नाजी अत्याचार से बचने के लिए अमेरिका चले गए 75 वर्षीय वाल्टर कोहेन और ब्रिटेन के 73 वर्षीय जॉन पोपल ने ऐसी विधियां विकसित करने के लिए रसायनशास्त्र का नोबल पुरस्कार पाया है जिसकी सहायता से अणुओं परमाणुओं की प्रमात्रा विशेषताओं और रासायनिक प्रक्रियाओं में उनकी आपसी क्रियाओं का अध्ययन किया जा सकता है। वाल्टर कोहेन ने रासायनिक क्रियाओं के समय अणुओं के आकार, प्रकार एवं उनके आचार–व्यवहार की गणना करने और कम्प्यूटर पर उनकी नकल करने का एक सरलीकृत सिद्धांत निरूपित किया। उन्होंने यह काम 60 वाले दशक में ही कर लिया था लेकिन उसका व्यावहारिक इस्तेमाल करने में करीब 30 वर्ष लग गए। वाल्टर कोहेन की तरह ब्रिटेन के जॉन पोपल ने भी 60 वाले दशक में गॉसियन नाम से एक कम्प्यूटर प्रोग्राम तैयार किया जिसकी सहायता से प्रयोगशाला में कोई प्रयोग करने के पहले ही कम्प्यूटर पर शुद्ध भारी अणुओं के आकार–प्रकार की नकल या डिजाईन बनाई जा सकती है या उनके आकार–प्रकार तथा गुण धर्म की भविष्यवाणी की जा सकती है। नब्बे वाले दशक के आरम्भ में कोहेन के सिद्धांत एवं पोपल के कम्प्यूटर प्रोग्राम के मेल से अत्यंत जटिल और बड़े आकार वाले अणुओं तथा विकट वाले अणुओं तथा विकट रासायनिक क्रियाओं का भी कम्प्यूटर पर अनुकरण संभव हो गया। इस विधि से नई–नई दवाओं को पहले ही कम्प्यूटर पर डिजाईन करना संभव हो गया है। अन्तर नक्षत्रीय अन्तरिक्ष में व्याप्त पदार्थ पृथ्वी की ओजोन पट्टी को क्षति पहुँचा सकते हैं। कोहेन और पोपल का कार्य क्षेत्र क्वांटम रसायन कहलाता है। हॉलाकि दोनों रसायन शास्त्री नहीं रहे हैं।

कोहेन अपनी खोज के समय सेन्टा बारबरा में सैद्धांतिक भौतिक विज्ञान संस्थान के अध्यक्ष थे और पोपल कहते हैं कि मैं गणित की दुनिया से आया हूँ मेरे पास तो रसायन शास्त्र की कोई डिग्री तक नहीं है। रसायन शास्त्र के पुरस्कार की राशि इस वर्ष 73 लाख स्वीडिश क्राउन है जो करीब पौने दस लाख डालर के बराबर होती है।

साभार : व्हॉइस ऑफ जर्मनी

❑❑❑

वैज्ञानिक खोज में उपयोगिता कोई स्थान नहीं है। उदाहरणार्थ एक्स रेज की खोज उसके शल्यक्रिया या चिकित्सा शास्त्र में उपयोगों को ध्यान में रखकर नहीं हुई वरन् विद्युत स्वभाव से सम्बन्धित शुद्ध खोज द्वारा हुयी।

जे० जे० थामसन

प्रौद्योगिकी

अब बन रही हैं समझदार इमारतें

जगदीप सक्सेना
अभियान, बी - 2 वैलकम अपार्टमेण्ट सेक्टर. 9 रोहिणी, दिल्ली - 110085

आधुनिक इमारतों में बिजली, पानी हवा और रोशनी की स्वचालित और 'समझदार' व्यवस्था की जा रही है। आग लगने की सूचना देने और आग बुझाने की 'बुद्धिमान' तकनीकें लगाई जा रही हैं। इमारत की कंप्यूटर नियंत्रित सुरक्षा प्रणाली में भूल-चूक की गुंजाइश नहीं होती। कम्प्यूटरों के जरिए इन इमारतों की पहुंच दुनिया के कोने-कोने तक में होगी। प्रस्तुत है समझदार इमारतों की रोमांचक दुनिया पर सामयिक लेख।

आपके कमरे की खिड़की से सीधी धूप जाते ही इस पर लगा पर्दा (वेनेशियन ब्लाइंड्स) अपने आप धीरे-धीरे पूरा खुल गया ताकि खूब रोशनी आने लगे।

पर्याप्त रोशनी होने पर कमरे की बत्तियां अपने आप बुझ गईं।

इसी तरह आरामदायक तापमान होने पर एयर कंडीशनर ने अपने आप काम करना बंद कर दिया।

रात में ठंडी हवा चली तो कमरे की खिड़कियां अपने आप खुल गई ताकि कमरा रात भर में अच्छा खासा ठंडा हो जाए। सुबह एयर कंडीशनर चलाने की जरूरत ही न पड़े.....।

बुद्धिमान इमारतों में तीन व्यवस्थाओं पर सबसे ज्यादा जोर दिया जाता है, ऊर्जा की बचत, संचार और सुरक्षा। ऊर्जा की बचत के लिए प्राकृतिक हवा ओर रोशनी का अधिकतम उपयोग किया जाता है। साथ ही बिजली की काफी जरूरत सौर ऊर्जा से पूरी करने की कोशिश की जाती है।

पुणे के टाटा रिसर्च सेंटर में रात की ठंडी हवा रात में इमारत में घुसकर अगले दिन एयर कंडीशनर पर खर्च होने वाली बिजली की बचत करती है। इसके अलावा केन्द्रीय कंप्यूटर प्रणाली द्वारा इमारत के विभिन्न हिस्सों के तापमान पर लगातार निगाह रखी जाती है। उपयुक्त तापमान होते ही उस हिस्से का एयर कंडीशनर अपने आप बंद हो जाता है। इन तकनीकों का कारगर उपयोग करके इस इमारत के बिजली के खर्च में 45 प्रतिशत तक कटौती करना मुमकिन हुआ है।

यह कोई कल्पना की उड़ान नहीं बल्कि हकीकत है। कंप्यूटर नियंत्रित प्रबंध प्रणालियों और सूक्ष्म इलेक्ट्रानिक 'सेंसरों' या संवेदकों के जरिये ऐसी स्वचालित व्यवस्था करना मुमकिन हो गया है। आजकल की आधुनिक बहुमंजिली इमारतों में ऐसी स्वचालित व्यवस्थाएं बड़ी तेजी से लोकप्रिय होती जा रही है। इसे वैज्ञानिक भाषा में समेकित भवन प्रबंध प्रणाली कहते हैं और जिन इमारतों में यह प्रणाली लगा कर इन्हें कुशल बनया जा रहा है उन इमारतों को 'बुद्धिमान इमारतें' कहा जाने लगा है।

हमारे देश में पहल बुद्धिमान इमारत मुंबई में बनाई गई थी सी०एम०सी० हाउस। राजधानी दिल्ली में आई०एफ०सी० मुख्यालय, अमेरिकन एक्सप्रेस, वर्ल्ड बैंक, 'स्कोप' और हैबिटेट सेंटर की इमारतें भी बुद्धिमान इमारतों की श्रेणी में आती है। पुणे में टाटा रिसर्च सेंटर की इमारत एक अन्य मशहूर बुद्धिमान इमारत है। सी० एम० सी० हाउस में उपयोग के लिए खिड़कियों पर ऐसे शीशे लगाये गये हैं, जो रोशनी तो भीतर से आने देते हैं पर गर्मी को बाहर ही रोक देते है।

इसके अलावा इमारत के भीतर रोशनी के भरपूर आगमन के लिए परावर्तक यानि रिफलेक्टर भी लगाये गये हैं। इमारत में लगा केन्द्रीय कंप्यूटर दिन भर

इमारत पर पड़ने वाली धूप पर निगाह रखता है और सूक्ष्म मोटरों द्वारा उन खिड़कियों के पर्दे (वेनेशियन ब्लाइंड्स) खोलता रहता है जहां से रोशनी की संभावना होती है। यहां की एयर कंडीशनिंग प्रणाली भी कंप्यूटर द्वारा स्वचालित ढंग से चलाई जाती है। इस तरह सी०एम०सी० हाउस में बिजली के खर्च पर 25 प्रतिशत तक कटौती की जाती है।

जानकारी व सूचनाओं का बेहद तेजी से आदान प्रदान और संग्रह आज किसी भी व्यवसायिक प्रतिष्ठान की कामयाबी का मूलमंत्र माना जाता है। इसलिए बुद्धिमान इमारतों में इसकी पक्की व्यवस्था होती है। यहां के टेलीफोन एक्सचेंज (ई० पी० ए० बी०) में ऐसी व्यवस्था होती है कि जब भी किसी व्यक्ति की कॉल आती है उस व्यक्ति की हर सम्भावित स्थान पर तलाश की जाती है। फिर भी अगर वह व्यक्ति नहीं मिलता तो उसके लिए संदेश को कंप्यूटर पर रिकार्ड कर लिया जाता है।

वैसे हर डेस्क कंप्यूटर से जुड़ा होता है, जिसके ज़रिए मौखिक संदेश और आंकड़ों का तुरंत आदान–प्रदान करना संभव होता है।

इमारत से बाहर संचार के लिए मुख्य कंप्यूटर को विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संजालों (नेटवर्क) से जोड़ा जाता है। इसके लिए 'लोकल एरिया नेटवर्क' (लैन) का उपयोग किया जाता है। इसमें 'आप्टिकल फाइबर' पर आधारित तकनीक की मदद से जानकारियों और आंकड़ों का आदान–प्रदान व संग्रह किया जाता है। इस तरह दफ्तर में कागज के उपयोग को न्यूनतम स्तर पर रखने का प्रयत्न किया जाता है। अब बात आती है सुरक्षा की। बहुमंजिली इमारतों को एक बहुत बड़ा खतरा आग से होता है। यूं तो बुद्धिमान इमारतों में अग्नि दुर्घटनाओं की रोकथाम के पक्के उपाय किये जाते हैं, परन्तु अगर फिर भी कहीं आग लगे तो उसका तुरन्त पता लगाने और बुझाने के स्वचालित उपाय भी किए जाते हैं।

इसके लिए इमारत के हर कमरे और गलियारे में थोड़ी–थोड़ी दूर पर 'सेंसर' लगाए जाते हैं जो धुएं या आग की गर्मी के प्रति संवेदनशील होते हैं और पूरी इमारत में खतरे का अलार्म बजने लगता है। कमरों और गलियारों में लगे 'वीडियो' डिस्प्ले टर्मिनल' या 'क्लोज सर्किट टी०वी० पर आग का दृश्य आने लगता है ताकि लोग आग से बचकर इमारत से बाहर निकलने का रास्ता चुन सकें।

इसके अलावा प्राथमिक उपचार के तौर पर आग की जगह पर लगे 'स्प्रिंकलर' पानी की फुहार करने लगता है। इससे आग के जल्दी काबू में आने की संभावना बढ़ जाती है। गैर–अधिकृत व्यक्तियों से सुरक्षा के लिए केन्द्रीय चिप आधारित सुरक्षा प्रणाली अपनाई जाती है। अधिकृत व्यक्ति के पास एक कार्ड होता है जिसे दरवाजे के पास बने खांचे में डालने से ही दरवाजा खुलता है। इसी तरह दरवाजों की खुलने बंद होने की कंप्यूटर नियंत्रित प्रणाली आगंतुकों को सिर्फ वहीं के लए रास्ता देती है, जहां उन्हें अधिकृत रूप से जाना है। इसके अलावा सुरक्षा कर्मी क्लोज सर्किट टी०वी द्वारा आगंतुकों के आवागमन और उनकी चालढाल पर कड़ी निगाह रखते हैं। संदेहास्पद स्थित में आगंतुकों की निकासी बंद कर दी जाती है। बुद्धिमान इमारतों में साफ पेय जल की आपूर्ति की केन्द्रीय व्यवस्था होने के साथ ही गंदे पानी के उपचार की व्यवस्था भी होती है। उपचारित पानी को इमारत में ही दुबारा उपयोग में लाया जाता है।

बुद्धिमान इमारत की सारी व्यवस्था बिजली पर टिकी रहती है। इसलिए यहां बिजली की निरंतर आपूर्ति होना अनिवार्य होता है इसके लिए जनरेटरों की व्यवस्था होती है, जो बिजली जाने पर अपने आप सिर्फ चार सेकेंड में चालू हो जाते हैं।

कंप्यूटरों के साथ ऐसी इलेक्ट्रानिक व्यवस्था लगी होती है कि उन्हें बिजली जाने का पता भी नहीं चलता। इन सब व्यवस्थाओं के अलावा बुद्धिमान इमारतों में हमेशा पर्यावरण की भलाई का ध्यान रखा जाता है। इमारत बनाने सजाने आदि में प्राकृतिक संगतियों का अधिकतम उपयोग किया जाता है।

इन इमारतों को मनुष्य की रचनात्मक प्रवृत्ति की सुन्दर अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।

काश इतनी बुद्धि लगाकर इन इमारतों को इतना बुद्धिमान बना देनो वाला आदमी स्वयं भी इन इमारतों जैसा बुद्धिमान हो पाता। ☐☐☐

खगोल विज्ञान

वृहस्पति के चन्द्रमाओं पर जीवन की संभावना

डॉ० बृजमोहन कुमार प्रसाद
अभियान, बी - 2 वैलकम अपार्टमेण्ट सेक्टर. 9 रोहिणी, दिल्ली - 110085

खगोल विज्ञान की नई खोजों के परिणामस्वरूप अन्तरिक्ष की सीमाओं की अनन्तता से परिचित होते मनुष्य का इस ग्रह पर एकाकीपन बढ़ता लग रहा है तभी तो उसने लगन के साथ अन्तरिक्ष में जीवन की खोज प्रारंभ कर दी है। आइए जानें।

अभी कुछ दिनों पहले तक मंगल पर जीवन की संभावना पर गरमा-गरम बहस करते खगोल वैज्ञानिकों का ध्यान अचानक वृहस्पति के चन्द्रमाओं पर आकर केन्द्रित हो गया।

सौर परिवार के विभिन्न उपग्रहों में वृहस्पति के चंद्रमा सबसे रोचक हैं। अमेरिका अंतरिक्ष यान गैलीलियो ने वृहस्पति के चंद्रमाओं का अवलोकन करने के बाद जो ताजा-तरीन आंकड़े और तस्वीरें भेजी हैं वे न सिर्फ बेहद उत्साहवर्धक हैं बल्कि उनसे वहां पर जीवन के चिन्ह मिलने की नई उम्मीदें जागने लगी हैं।

वृहस्पति के जिस चंद्रमा ने वैज्ञानिकों को सबसे अधिक आकृष्ट किया है उसका नाम है यूरोपा। खगोल वैज्ञानिकों का विचार है के यूरोपा की बर्फीली सतह के नीचे मौजूद गर्म पानी जीवन का पोषक हो सकता है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वृहस्पति के चार प्रमुख चंद्रमाओं में सबसे छोटे यूरोपा की सतह पर पांच मील मोटी बर्फ की पपड़ी जमी है जिसके नीचे तरल जल का 60 मील गहरा समुद्र है।

कुछ विशेषज्ञों का ख्याल है कि यूरोपा के इस समुद्र को संभवतः चन्द्रमा के उष्ण भीतरी भाग से उष्मा मिलती होगी। गैलीलियो द्वारा ली गई तस्वीरों से पता चलता है कि यूरोपा की सतह पर बड़े-बड़े आइसबर्ग अथवा हिम खंड भी मौजूद हैं जो संभवतः समुद्र के कारण इधर-उधर सरकते रहते हैं।

अमेरिका के नासा के वैज्ञानिक रिचर्ड टेराइल का कहना है कि यूरोपा समुद्र में जीवन रचना की सभी आवश्यक सामग्री जैसे जल, उष्मा और कार्बनिक रसायन मौजूद है। वस्तुतः इन्हीं सामग्रियों ने पृथ्वी पर लाखों वर्ष का समय लगा कर जीवन की उत्पत्ति की थी।

एक अन्य वैज्ञानिक का मानना है कि यूरोपा पर मौजूदा जल की मात्रा पृथ्वी के सभी समुद्रो में मौजूद पानी से कहीं ज्यादा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यूरोपा पर जल की उपस्थिति को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जा रहा है क्योंकि जीवन के सभी ज्ञात रूपों के लिए पानी एक बुनियादी आवश्यकता है।

एक अन्य वैज्ञानिक जान डिलानी को भी यूरोपा पर जीवन होने का भरोसा है। उनका विश्वास है कि बर्फीली पपड़ी के नीचे मौजूद पानी ज्वालामुखीय गतिविधियों की वजह से गरम हो रहा है। उनका कहना है कि गहरे समुद्र में किए गए अनुसंधानों से पता चलता है कि ज्वालामुखीय गतिविधियाँ सूरज की रोशनी के बगैर भी जीवन को बनाए रखती हैं।

लेकिन अभी कुल मिला कर यही कहना सही होगा कि यूरोपा के बारे में ठोस प्रमाण इकट्ठे लिए जाने की जरूरत है। यूरोपा पर जीवाणुओं का वास है या नहीं, या अन्य कौन से जीवों का वहां वास है इसकी खोजबीन करना हमारे लिए एक बड़ी चुनौती है। यूरोपा पर जीवन की संभावना की पुष्टि वहां अंतरिक्ष यान भेज कर की जा सकती है।

इस यान को यूरोपा की बर्फीली सतह के नीचे उसके समुद्र के नमूने एकत्र करने का कोई रास्ता ढूंढ़ना होगा।

यूरोपा का अध्ययन करने वाले गैलीलियो यान ने उसकी सतह का बर्फ पर भूरे रंग के धब्बों का पता लगाया है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि ये धब्बे हाइड्रोजन सायनाइड तथा जीवन से जुड़े अन्य कार्बनिक रसायनों के परिचायक हो सकते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि यूरोपा पर कोई "क्रेटर" नहीं है। सौर मंडल के अधिकांश ग्रहों और उपग्रहों पर धूमकेतुओं और क्षुद्र ग्रहों द्वारा की गई बम बारी के निशान साफ दिखाई देते हैं।

वृहस्पति के दो अन्य चन्द्रमा, गेनीमेड और कैलिस्टो भी दिलचस्प संभावनाएं लिए हुए हैं। इन पर भी कार्बन और नाइट्रोजन से युक्त जटिल अणुओं की मौजूदगी के संकेत मिले हैं। गौरतलब है कि जीवन की उत्पत्ति के लिए ऐसे अणुओं को आवश्यक माना जाता है। गेनीमेड और कैलिस्टो दोनों ही वृहस्पति के बड़े उपग्रह है।

जटिल अणुओं की उपस्थिति का अर्थ यह लगाया जा रहा है कि यूरोपा की ही तरह गेनीमेड और कैलिस्टो पर भी या तो जीवन मौजूद है अथवा अतीत में वहां कभी जीवन पनपा होगा। पिछले दिनों खगोली मेहमान हेल बौप धूमकेतु के मध्य भाग में भी कार्बन नाइट्रोजन से युक्त अणुओं की उपस्थिति का पता चला है।

गेनीमेड अपने आप में एक अनोखा उपग्रह है। उसके पास उसका चुम्बकीय क्षेत्र है। इससे यह पता चलता है कि पृथ्वी की ही तरह उसके मध्य भाग में भी पिघला लोहा मौजूद है। वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि गेनीमेड न सिर्फ बहुत बड़ी मात्रा में हाइड्रोजन उत्पन्न कर रहा है बल्कि उसकी सतह पर ऑक्सीजन भी अच्छी खासी मात्रा में मौजूद है। लेकिन चूंकि गेनीमेड एक प्रशीतित चंद्रमा है, उसकी सतह पर मौजूदा अधिकांश ऑक्सीजन तरलावस्था में है।

अमरीकी अंतरिक्ष केन्द्र 'नासा' की योजना यूरोपा पर भी कुछ नए यान भेजने की है। ये यान उसकी सतह के चित्र खीचेंगे तथा रडार के जरिए उसकी सतह के नीचे से उत्पन्न हो रही ध्वनि को रिकार्ड करेंगे।

यद्यपि अभी यह कहना मुश्किल है कि मनुष्य इनके बारे में कितना जान पायेगा। लेकिनइतना तो निश्चित है कि अंतरिक्ष अनुसंधान का हर प्रयास, चाहे वह वृहस्पति के चंद्रमाओं का हो या फिर किसी दूसरे का, इस दिशा में कुछ न कुछ सहायक जरूर हो सकता है। और इसलिए हर एक ऐसा कदम स्वागत योग्य है।

❑❑❑

ग्रीन हाउस प्रभाव

ग्रीन हाउस प्रभाव पिछले कुछ वर्षों से चर्चा में है। ग्रीन हाउस, काँच या प्लास्टिक के बने ऐसे घर हैं, जिनमें पौधों को बाहरी धूप और वर्षा से बचाकर नियमित वातावरण में रखा जाता है। आमतौर पर यहाँ पौधे ठंड ओर पाले से बचाने के लिये उगाये जाते हैं। ग्रीन हाउस की पारदर्शी छत और दीवारों से बाहर की ठंड या गर्मी अन्दर तो घुस जाती है, पर पूरी तरह बाहर नहीं निकल पाती, क्योंकि यह घुसती है प्रकाश कणों या फोटोन के रूप में और लौटती है इन्फ्रारेड (अवरक्त) विकिरणों के रूप में! वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड और मीथेन जैसी गैस ही नहीं, पानी उड़ने से जमा हुई वाष्प भी यही काम करती है। इन गैसों की एक चादर सी तन जाती है, जो धरती से वापस लौटते सौर–विकिरण का अधिकांश भाग रोक लेती है। यही है ग्रीन हाउस प्रभाव जिससे गर्मी बढ़ रही है।

प्रतिक्रियाएं

रा० च० महरोत्रा
डी.फिल. पी.एच.डी., डी.एस.सी.,
एफ.एन.ए.सी., एफ..ए.एस.सी., एफ.एन.ए.,
एफ.एफ.ए.सी.एस.
प्रोफेसर एमेरिटस, राजस्थान विश्वविद्यालय

कार्यालय : 511557
फैक्स : (0141) 511557
दूरभाष : निवास : 650800
4/682, जवाहर नगर,
जयपुर – 302004

प्रिय दिनेश मणि जी

आज अभी 'विज्ञान' का अक्टूबर–1998 अंक मिला। बहुत-बहुत बधाई। छपाई बहुत 'साफ–सुथरी' है। सामग्री भी बड़ी अच्छी कोटि की और साफ है। आशा है कि तुम हम सब की प्रिय पत्रिका विज्ञान का स्तर और भी ऊँचा उठाने में सफल होगे।

तुमको रजिस्ट्री डाक से अपने सहपाठी प्रो० हरीशचन्द्र पर एक लेख कुछ दिन हुए भेजा था। 25 सितम्बर को मेरी आँख में ग्लाउकोमा का दिल्ली में आपरेशन था। इसीलिये बहुत जल्दी में उसे तुमको भेज दिया था। आशा है कि तुमने उसे अपने उच्च स्तर के अनुकूल पाया होगा। यदि जल्दी में भाषा की कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों तो बिना हिचक के सुधार देना। एकाध तस्वीरें मेहता इन्स्टीट्यूट से ले लेना।

इस पत्र के साथ 'हिन्दी की सामर्थ्य और भविष्य' पर 15 अक्टूबर को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का एक अधिवेशन जो जयपुर में आयोजित हुआ था, में एक भाषण के सारांश को आपके पास भेज रहा हूँ। यदि उपयुक्त पाओ तो 'विज्ञान' के किसी अगले अंक में छाप सकते हो।

सस्नेह,

आपका
रामचरण महरोत्रा

V. K. Upadhyay
Prof. of geology
Bhagalpur College of Engeneering
Sabour, Bhagalpur - 813210
Tel. No. (Residence) - 427067

डॉ० विजय कुमार उपाध्याय
प्राध्यापक (भूगर्भ)
इंजिनियरी कॉलेज, भागलपुर
पो० – सबौर, भागलपुर –813210
दूरभाष (आवास) – 427067

Date.........................

दिनांक 23-10-98

प्रिय दिनेश मणि जी!
नमस्कार

आपको एक साथ दो–दो बधाइयाँ देते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। आपको मेरी पहली बधाई हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा हिन्दी दिवस (14 सितम्बर 1998) के अवसर पर 'विज्ञान रत्न' की मानद उपाधि से सम्मानित किये जाने पर है। आपको यह सम्मान दिया जाना न सिर्फ आपका सम्मान है, अपितु विज्ञान तथा हिन्दी भाषा की सेवा से संबंधित सभी भावनाओं एवं निष्ठाओं का सम्मान है।

आपको मेरी दूसरी बधाई अपके द्वारा 'विज्ञान' पत्रिका का सम्पादक पद का दायित्व ग्रहण करने पर है। विज्ञान परिषद, प्रयाग ने आप जैसे युवा, उदीयमान तथा निष्ठावान व्यक्ति को यह महत्वपूर्ण तथा उत्तरदायित्वपूर्ण पद प्रदान कर बहुत ही उचित एवं प्रशंसनीय निर्णय लिया है। आशा है, आपके संपादकत्व काल में भारत की इस प्राचीनतम विज्ञान पत्रिका का चहुँमुखी विकास होगा तथा इसकी लोकप्रियता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ेगी।

उपर्युक्त कुछ शब्दों के साथ मैं आपको एक बार पुनः बधाई देता हूँ तथा आपके दीर्घ जीवन एवं सक्रिय लेखन जीवन की कामना करता हूँ। आशा है, आप पत्रोत्तर शीघ्र देने का कष्ट करेंगे।

भवदीय
(विजय कुमार उपाध्याय)

रासायनिक अभियंत्रिकी विभाग
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई
पवई, मुंबई — 400 076, भारत
Indian Institute of Technology, Bombay
Powai, Mumbai - 400 076, India

EPABX : (+91 -22) 578 2545
FAX : (+ 91 -22) 5783480

दिनांक 15-12-1998

सेवा में
डॉ० दिनेश मणि
संपादक, "विज्ञान"
विज्ञान परिषद्, प्रयाग
इलाहाबाद (उ०प्र०) -211002

प्रिय सुहृद डॉ० मणि,

भारत में हिंदी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका, "विज्ञान" के संपादन का गुरूतर दायित्व आपने बड़ी कुशलता से सँभाल लिया है, इसके लिए आपको बधाई एवं शुभ कामनाएं! "विज्ञान" के संपादकों की श्रेष्ठ श्रेणी में आपका नाम अवश्य सार्थक सिद्ध होगा, यही हमारा विश्वास है एवं मंगल कामना।

"विज्ञान" में प्रकाशन हेतु एक लेख, "मच्छर निवारण हेतु घरेलू विधियों पर उपभोक्ता मार्गदर्शन" आपको विचारार्थ भेज रहा हूँ। कृपया प्राप्ति सूचना भेजिएगा। मैं उपभोक्ता संरक्षण कार्य से जुड़ा हुआ हूँ। उक्त लेख इसी कार्य से संबंधित हैं। विषयानुकूल लेख संभवतः कुछ बड़ा है, अतः आप चाहें तो तालिकाएं/चित्र निकाल दें अथवा इसे दो खंडों में प्रकाशित किया जा सकता है। श्रद्धेय डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी को मेरा सादर प्रणाम!

धन्यवाद, शुभकामनाओं समेत,

आपका
(रामचन्द्र मिश्र)
संपादक, 'क्षितिज'

नई दिल्ली
2.11.98

प्रिय डॉ० मणि,

नमस्कार।

आपके कुशल मार्गदर्शन में प्रकाशित 'विज्ञान' का अक्टूबर, 1998 अंक प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम मेरी बधाई स्वीकार करें– देश प्रतिष्ठित 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक का कार्यभार सम्हालने के लिए। आपके सम्पादन में यह प्रथम अंक अत्यंत रोचक एवं ज्ञानवर्धक प्रकाशित हुआ है। भविष्य में ऐसे ही विज्ञान के गूढ़ एवं जटिल तथ्यों पर आधारित जानकारी को जनमानस तक सरल हिन्दी में पहुँचाते रहेंगे, हमारी शुभकामनाएँ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 'विज्ञान रत्न' की उपाधि से सम्मानित किए जाने हेतु पुनः हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

आदरणीय गुरूजी (डॉ० शिव गोपाल मिश्र) को मेरा प्रणाम प्रेषित कीजिएगा।

शुभकामनाओं सहित,

आपका
कृष्णकान्त
(डॉ० के.एन. पाण्डेय)
अनुसंधान अधिकारी
प्रकाशन एवं सूचना प्रभाग
भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद
नई दिल्ली

प्रो० ओम प्राभात अग्रवाल
प्रोफेसर, रसायनशास्त्र विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

प्रियवर दिनेश मणि जी,

आपके सम्पादन में प्रकाशित विज्ञान का प्रथम अंक (अक्टूबर 1998) देखा। अच्छा बन पड़ा है। सम्पादकीय की बातें हृदय को स्पर्श कर गईं। बधइयाँ।

आपका
(ओम प्रभात अग्रवाल)

परिषद् का पृष्ठ

1. परिषद में निम्नलिखित प्रकाशन समीक्षार्थ प्राप्त हुए –

   (I) कोख [विज्ञान कथाएं], – लेखक – देवेन्द्र मेवाड़ी। प्रकाशक – नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, मूल्य : 75.00 रु०

   (II) एक और क्रौंच वध तथा अन्य विज्ञान कथाएँ : लेखक – डॉ० अरविन्द मिश्र।

   (III) प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प
   लेखक – डॉ० श्यामनारायण कपूर। प्रकाशक – साहित्य निकेतन कानपुर।
   मूल्य 295.00 रु०

   (IV) सी. डी. आर. आई. राजभाषा पत्रिका – अंक 7 (1998)
   सम्पादक – डॉ० विजय नारायण तिवारी, प्रकाशक – केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

   (V) विज्ञान आलोक : द्विमासिक पत्रिका वर्ष 1, अंक 2,3
   सम्पादक : डॉ० मुकुंद शर्मा 510/162, न्यू हैदराबाद लखनऊ–7

2. विज्ञान परिषद प्रयाग इस वर्ष दो विशेषांक निकालने का आयोजन कर रहा है– श्री कृष्ण बल्लभ द्विवेदी सम्मान अंक तथा श्री श्यामनारायण कपूर सम्मान अंक। जो विज्ञान लेखक इन विद्वानों से परिचित हो, वे अपने संस्मरण या उनके व्यक्तित्व, कृतित्व पर लेख भेजने के लिए सादर आमंत्रित हैं।

3. बदले हुए कलेवर के साथ "विज्ञान" में छपी रचनाएं आपको कैसी लगीं? हम आपकी प्रतिक्रिया चाहेंगे जिन्हें हम प्रकाशित भी करेंगे।

4. हमारा अनुरोध है कि जिन सभ्यों का वार्षिक शुल्क बकाया है वे मनी आर्डर द्वारा उसे अवश्य भेज दें।

5. लेखकों से अनुरोध है कि "विज्ञान" में प्रकाशनार्थ उत्तमोत्तम रचनाएँ भेजें। अब हम ऐसी रचनाओं पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था कर रहे हैं।

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

फार्म 4/FORM IV

नियम 8 देखिये (See Rule 8)

1. प्रकाशन स्थान	: विज्ञान परिषद् प्रयाग
2. प्रकाशन अवधि	: मासिक, प्रत्येक मास का 15 दिनांक
3. मुद्रक का नाम	: श्री अनिल
क्या भारत का नागरिक है?	: हाँ
पता	: अनिल प्रिंटिंग प्रेस 31-बी, कचेहरी रोड, इलाहाबाद -2
4. प्रकाशक का नाम	: डॉ० शिवगोपाल मिश्र
पता	: अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद - 2
5. सम्पादक का नाम	: डॉ० दिनेश मणि, डी०एस–सी०
क्या भारत का नागरिक है?	: हाँ
पता	: प्राध्यापक, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद - 2
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	: विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद - 2

मैं शिवगोपाल मिश्र एतत् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक 1 - 3 - 1999

शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान
परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद - 211002

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पता:

डॉ० दिनेश मणि, डी० एस०-सी०
संपादक विज्ञान
विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

सिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च,
नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका

पं0 कृष्ण वल्लभ द्विवेदी सम्मान अंक
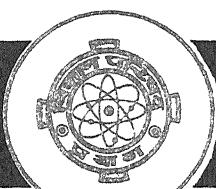
विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 84 अंक 12

फरवरी 1999

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत,
1000 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०
एक प्रति : 5 रु०

■

प्रकाशक
डॉ० शिव गोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

■

सम्पादक
डॉ० दिनेश मणि, डी० एस-सी०

■

मुद्रक
अनिल
अनिल प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद

■

सम्पर्क
विज्ञान परिषद प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद - 211002

इस अंक में

पं० कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

सम्पादकीय

साहस, स्वावलम्बन और स्वाभिमान की प्रतिमूर्ति पं0 कृष्ण वल्लभ द्विवेदी एक आदरणीय नाम ही नहीं अपितु अविस्मरणीय कृतित्व का पर्याय है। द्विवेदी जी मौन साधना करने वाली उस पीढ़ी के प्रतीक हैं जिसने श्रम, लगनशीलता और कर्मठता के बल पर ख्याति के उच्च शिखरों को छुआ है। द्विवेदी जी ने 1938 में "हिन्दी विश्व भारती" नाम से 10 खण्डों वाले विश्वकोश की योजना बनाई और व्यक्तिगत प्रयासों के बल पर अनेक अड़चनों के बावजूद उसे 1964 में पूरा करके ही दम लिया।

हम सबमें एक कमी है कि हम पुस्तकें तो यदा–कदा पढ़ लेते हैं किन्तु व्यक्ति को पढ़ने का प्रयास बहुत कम करते है। जिस साहित्य में व्यक्तित्व को पढ़ने का यत्न नहीं किया जाता, जिसमें व्यक्तित्व के मस्तिष्क की तह तक पहुँचने की कोशिश नहीं की जाती, वहाँ व्यक्तित्व के उत्पन्न होने और पनपने की सम्भावना कम ही होती है। आने वाली पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी के सिद्धहस्त महापुरुषों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रेरणा अवश्य लेनी चाहिए।

द्विवेदी जी की लेखनी अणुशक्ति के एकत्रित प्रभाव की क्षमता रखती है और वाणी साहित्यिकता के अवगुण्ठन में वैज्ञानिकता का तीखापन लिये रहती है। उनकी "सादा जीवन, उच्च विचार" वाली शैली, स्वाभिमान और विनम्रता, मितभाषिता और अटूट कर्त्तव्यनिष्ठा, सरलता और पारखी दृष्टि आदि गुणों का अद्‌भुत संयोग मिलकर उनके व्यक्तित्व को देवोपम उच्चता प्रदान करते हैं।

द्विवेदी जी जीवन के अन्तिम वर्षों तक कार्यशील रहकर अपने बहुआयामी समृद्ध लेखन से सामान्यजन और विशेषज्ञ सभी को समान रूप से लाभान्वित कर रहे हैं। ऐसे संघर्षशील व्यक्तित्व को कोटिशः प्रणाम।

बरबाद हुआ होगा जग तुझसे, पर मैं तो अपवाद रहूँगा,
ओ जीवन संघर्ष ! कृपा तेरी कि सबको याद रहूँगा।
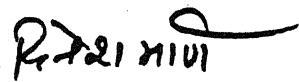
दिनेश मणि

(डॉ० दिनेश मणि)

श्री कृष्ण वल्लभ द्विवेदी हिन्दी जगत के पुण्य धन

डॉ० प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल'
पूर्व विभागाध्यक्ष पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग
के० ए० पी० जी० कालेज, इलाहाबाद
अध्यात्म कुटीर, 439 - ए, वासुकी खुर्द, दारागंज, इलाहाबाद- 6

श्री कृष्ण वल्लभ द्विवेदी हिन्दी जगत के पुण्य धन।
जिसने भरा भण्डार हिन्दी का अभी भी अथक मन।।

हिन्दी के इस अमर पुजारी को युग का शत-शत वन्दन।
'हिन्दी विश्व भारती' के निर्माता का शत अभिनन्दन।।

मध्य प्रदेश मालवा का उपनगर 'बड़नगर' जन्म स्थान।
युग-युग से जन-कल्याणी गौरव शाली परम्परा महान।।

धर्म-संस्कृति पुण्य सभ्यता का उद्भव विकास प्रथम।
पुण्य प्रदेश आदि से सत्यं, शिवं, सुन्दरं का आश्रय।।

कालिदास, विक्रमादित्य, मुंज, भोज आदि की पुण्य धरा।
जिनकी कृतियों से परिप्लावित पुण्यशील शुचि वसुन्धरा।।

युग-युग से देता आया है, धर्म-संस्कृति को सम्बल।
जन्म-स्थान द्विवेदी जी का वही पुनीत श्रेष्ठ अंचल।।

गंगा-जमुना सरस्वती का संगम जहाँ प्रयाग नगर।
उनके कर्म-भूमि के साक्षी हैं साठोत्तर संवत्सर।।

जन्म-भूमि के साथ गौरवान्वित है कर्म-भूमि की छाप।
आज लखनऊ नगर प्रकाशित महिमामण्डित प्रकट प्रताप।।

'मनु-निकुंज' सी 45-ए निराला नगर का भव्य आवास।
जहाँ आप जैसी विभूति का बना आज है सुन्दर वास।।

मातृभूमि की आत्मकथा के गौरव-ग्रन्थ विविध निर्माण।
तेरी मौलिक कृति 'भारत-निर्माता' का अपूर्व यश-गान।।

राष्ट्र-एकता, समरसता, सूत्रता समन्वय स्वर्णिम रूप।
महाकाव्य-सी प्रेरक, ओजस्वी भाषा शैली अनुरूप।।

रेखाचित्र, विशिष्ट अनूठे, कलाकारिता विविध अनूप।
परमप्रकाशित हुईं तुम्हारी कृतियाँ प्रगट कीर्ति यश सूर्य।।

'ज्ञान-लोक', साहित्य-सुधा', 'हिन्दी-धर्म', 'जीवन-डगर' तथा।
'प्रकाशन की जीवन-यात्रा' 'ज्ञान-मूर्ति' आचार्य वासुदेवशरण यथा।।

तुम सम्मानित हुए 'साहित्य-भूषण' सम्मान से योग्य सम्मान।
सूर्य को दीपक यथा स्वयं सम्मानित तुमसे है सम्मान।।

तुम विज्ञान-ज्ञान सम्पादक लेखक मौलिक अथक महान।
नहीं कहीं उपलब्ध राष्ट्र में, आप स्वयं ही स्वयं समान।।

नेहरू जी के 'विश्व इतिहास की झलक', तुम्हारा ही अनुवाद।

जन्म-जात माँ सरस्वती के परम उपासक तुम चिरनाद।।

सतत् लेखनी अब भी सक्रिय तेरे जैसा व्यक्ति न अन्य।
मिलता रहे सतत् मानवता को तेरा सन्देश वरेण्य।।

भरता रहे स्वराष्ट्र कोश हिन्दी का सागर युग परिवेश।
हिन्दी-जगत कृतज्ञ राष्ट्र भी धन्य आज या व्यक्ति विशेष।।

तेरा पुण्य प्रसाद करें हम वितरित संकल्पित युग को।
मधुर युक्त रस रचना तेरी सदा रहे हितकर जग को।।

■■■■■

विश्वकोश प्रणेता द्विवेदी जी

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमन्त्री, विज्ञान परिषद, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

लगभग दो वर्ष पूर्व जब मैंने द्विवेदी जी का नाम 'साहित्य भूषण' की उपाधि पाने वालों की सूची में देखा और उनकी ख्याति 'हिन्दी विश्व भारती' के प्रणेता के रूप में जानी तो मुझे अपनी भूल का सहसा ज्ञान हुआ क्योंकि मैंने विश्वकोश के रचयिताओं में आपका नाम बालकृष्ण द्विवेदी (1958) लिख रखा था। चूंकि मुझे 'हिन्दी विश्व भारती' के खण्ड देखने को नहीं मिल पाये थे अतः मैं संदिग्ध स्थिति में था। फिर भी मन ही मन मैं द्विवेदी जी का मूक प्रशंसक तो था ही—शायद 1945 में मैंने अपने संस्कृत के शिक्षक पं0 रामचन्द्र मालवीय के घर पर इसी विश्व कोश के कुछ अंश देखे थे अतः मैं कल्पना भी कर रहा था कि वे इन्हीं द्विवेदी जी के द्वारा रचित होंगे।

मैंने द्विवेदी जी के पते पर पत्र लिखा। कुछ दिन बाद उधर से कई पृष्ठों का उत्तर आया तो मैं पुलकित हुआ। पत्र में जिस यथार्थ का उल्लेख हुआ था और उसमें एक साहित्यकार का जैसा आत्म—सम्मान झलक रहा था उससे मैं प्रोत्साहित हुआ।

आखिर 5 मई 1998 को मैं उनका घर ढूँढते—ढूँढते शाम को पहुँचा—लखनऊ का निराला नगर। लम्बा शरीर, बड़ी—बड़ी आँखें तथा कुछ—कुछ झुकी कमर वाले व्यक्ति से मेरी भेंट हुई। मैं इस विराट व्यक्ति के सम्मुख एक नगण्य प्राणी प्रतीत हुआ। वे अपने घर में अकेले थे—उनके पुत्र कहीं गये थे।

उन्होंने प्रेम पूर्वक बैठाया। मैंने अपना परिचय दिया, उनके पत्र का उल्लेख किया तो वे खुलकर अपनी बातें बताने लगे कि किन विकट परिस्थितियों में उन्होंने हिन्दी विश्व भारती का सम्पादन किया, किस तरह विज्ञान लेखकों का सहयोग प्राप्त किया। फिर बोले "मेरे पास इसका यही सेट है। यह अब पुस्तकालयों में भी उपलब्ध नहीं है।

फिर बातों—बातों में वे अपनी फाइलें उठा लाये जिनमें उनके द्वारा सम्पादित विश्वकोश के विषय में विभिन्न विद्वानों की सम्मतियाँ थीं। उन्होंने कुछ चित्र भी दिखाये। उन्होंने लिखी जा रही आत्मकथा के कुछ

अंश भी सुनाये। मुझे अतीव आनन्द हुआ। मैंने उन्हें बताया कि मैं प्रो0 भगवती प्रसाद श्रीवास्तव स्मृति अंक के विषय में उनके पुत्र से कुछ सामग्री लेने आया हूँ। यह नाम सुनकर वे गद–गद हो उठे और बोले कि मेरी उनसे अतीव घनिष्ठता थी। उन्होंने मेरे विश्वकोश के लिए बहुत लिखा। तब मैंने मन ही मन संकल्प किया कि द्विवेदी जी की अनूठी विज्ञान सेवा के लिए सम्मानित करना हम हिन्दी लेखकों का कर्तव्य है। मैंने प्रकट होकर उनसे अपना मन्तव्य भी व्यक्त कर दिया और उनसे अनुरोध किया कि आप अपनी सारी सामग्री का हमें अवलोकन करने देंगे तो हमारा कार्य सुगम हो सकेगा। उन्होंने अंततः सहमति जता दी।

मेरे अनुरोध पर उन्होंने शीघ्र ही प्रो0 भगवंती प्रसाद श्रीवास्तव स्मृति अंक के लिए एक संस्मरण लिख भेजा। अत्यन्त सुघर लिखावट–इतनी उम्र में। आश्चर्य हुआ।

अपने उद्देश्य पूर्ति हेतु मैं पुनः 29 अगस्त को प्रातः 8 बजे उनके घर पर पहुँचा। मेरे साथ मेरे शोध छात्र श्री संजीव त्रिपाठी भी थे। हम 1.30 बजे तक उनके घर पर रहे, उन्होंने हमें नाश्ता भी कराया वे 'हिन्दू धर्म' की पाण्डुलिपि तैयार करने में व्यस्त थे। मैंने जाते ही चरण स्पर्श किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया फिर बैठाया और कहने लगे मैं जान गया हूँ क्यों आये हो। किन्तु मैंने कोई ऐसा काम तो नहीं किया जिससे विज्ञान लेखक मेरा सम्मान करें।

वे शिकायती स्वर में हिन्दी साहित्य वालों के बारे में कहने लगे, "लिख रहा हूँ। कौन छापेगा? अभी मीरा पर एक भाषण तैयार किया था। स्वामी दयानन्द पर भी एक भाषण दे आया हूँ। स्वामी विवेकानन्द पर मैंने वो लेख लिखा था उसे राम कृष्ण मिशन वालों ने पुस्तक रूप में छाप लिया है।"

बातों–बातों मैंने प्रयाग के विद्यार्थी जीवन तथा वहीं के परिवेश उल्लेख किया तो द्विवेदी जी बोले, "मैं तो मध्य प्रदेश में पैदा हुआ किन्तु मेरी शिक्षा–दीक्षा प्रयाग में ही हुई। मैंने दारागंज में रहकर उस समय के साहित्यकारों से सम्पर्क साधा था। मेरा छोटा भाई प्रदीप मेरे साथ रहता था (नोट–कवि प्रदीप सिनेगीतों के प्रसिद्ध रचयिता थे और उन्हें फाल्के पुरस्कार मिला था। 11 दिसम्बर 1998 को उनका निधन हो गया। हमारी विनम्र श्रद्धांजलियाँ)। मैं साहित्यिक था, विज्ञान मेरा विषय न था किन्तु छात्र जीवन में मन में हिलोरें उठती रहतीं कि हिन्दी में भी Book of Knowledge जैसी पुस्तक होनी चाहिए। मैं इस कार्य में जुट गया और मैंने अनेक विज्ञान लेखकों से सम्पर्क साधा। फिर उन लेखों को सुधारा, स्वयं भी कुछ लिखा और प्रामाणिक चित्र जुटाये।"

इतना कहते–कहते 'ज्ञान लोक' के चार खण्ड उठा लाये। फिर 'ग्रह नक्षत्र' की प्रति दिखलाई। बोले "देखो न – मैंने विज्ञान को सरल भाषा लिखने में कितना प्रयास किया है।" बीच में उन्होंने उपनी जीवनी

के कुछ अंश सुनाये। फिर बोले लखनऊ विश्वविद्यालय की एक छात्रा, आद्या मिश्रा ने मेरे जीवन तथा कृतित्व पर एम0 फिल थीसिस लिखी है।" मैंने उत्सुकतावश देखने को माँगा तो ले आये। इसमें 9 अध्याय जिसमें प्रथम अध्याय में जीवन परिचय है, द्वितीय में विश्वकोशकार के रूप में और अध्याय सात में बाल साहित्यकार के रूप में द्विवेदी जी के योगदान का विस्तृत विवरण है। थीसिस में कुछ 155 टंकित पृष्ठ है। यह 1995 में स्वीकृत हुई है।

फिर द्विवेदी जी ने एक छोटी सी पुस्तिका दी जिसमें उनके जीवन परिचय तथा कृतित्व का संक्षिप्त विवरण है।

द्विवेदी जी ने बताया कि 'हिन्दी विश्व भारती' का सम्पादन कार्य 1938 में शुरू हुआ। 50 अंकों में 6000 पृष्ठों सामग्री व्यवस्थित करने की योजना बनी किन्तु केवल 22 अंक निकले– 3200 पृष्ठ। तब इसे पुस्तक रूप दिया गया– 4 खण्डों में, प्रत्येक खण्ड में 400 पृष्ठ थे। प्रत्येक का मूल्य 21.00 रू० था।

1958 में भारत सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त करने में सरलता मिली तो पूरी सामग्री 16 खण्डों में प्रकाशित हुईं। अन्तिम खण्ड फरवरी 1964 में छप कर तैयार हुआ। "किन्तु लोग मुझे जल्दी ही भूल गये। पता नहीं कैसे हिन्दी संस्थान ने मुझे ढूँढकर 'साहित्य भूषण' बना दिया।

मैं 'हिन्दी विश्व भारती' तथा 'ज्ञान लोक' जैसे अद्वितीय ग्रन्थों के सम्पादक एवं प्रणेता को नमस्कार करता हूँ और उनके दीर्घ जीवन की ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ।

ऐसे कालजयी मूकसाधकों के बल पर ही हिन्दी में विज्ञान लेखन सम्भव हो सका है। नये विज्ञान लेखकों के लिए आप दर्शनीय एवं वंदनीय हैं।

■■■■■

89 वर्षीय कृष्ण वल्लभ द्विवेदी के जीवन–वृत्तसे यह स्पष्टतया विदित हो जाता है कि उनकी जीवन–यात्रा हमारी मातृभूमि के दो वक्षः स्थल तुल्य प्रदेशों के अंचल में सम्पन्न हुई है– मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश। मध्यप्रदेश ने उन्हें जन्म दिया और सान्दीपनि, कालिदास, वराहमिहिर, विक्रमादित्य, यशोधर्म्मन, भोज की उस लीलाभूमि में ही उनके जीवन प्रारम्भिक बीस वर्ष व्यतीत हुए। वहीं उन्होंने शिक्षा के प्रारम्भिक पाठ भी पढ़े। इधर उत्तर प्रदेश बना उनका कर्म–क्षेत्र। यह गंगा–यमुना–सरयू, राम–कृष्ण और बुद्ध तथा सूरदास–तुलसीदास–कबीर का पुण्यपावन तीर्थतुल्य क्षेत्र ही उनके कृतित्व का प्रांगण बना है। ऐसा नसीब कितनों को प्राप्त हुआ है ?

द्विवेदी जी के कृतित्व की एक झलक

प्रस्तुति : डॉ० दिनेश मणि
सम्पादक, 'विज्ञान'
विज्ञान परिषद प्रयाग, महर्षिदयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

कृष्ण वल्लभ द्विवेदी का कृतित्व

■ संपादन ■

हिन्दी विश्व-भारती
(10 खंड : भारत–सरकार के अनुदान से प्रकाशित विश्व–कोष)

अभ्युदय
(महामना मालवीय ज़ी का पत्र)

ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरण
(स्मारिका)

■ लेखन ■

भारत-निर्माता
(चरित–कोष : 2 भाग)

हिन्दू-धर्म

ज्ञानलोक
(विज्ञान–कोष : 4 भाग)

प्रकाशक की जीवन-यात्रा
(जीवन–चरित)

जीवन-डगर
(आत्मकथा : अप्रकाशित)

गृह-नक्षत्र
(खगोल–विज्ञान : पुरस्कृत)

भगवद्‌वाणी
(ब्रह्मवचन)

सुनहली पगडंडियाँ
(प्रकीर्ण संग्रह)

■ अनुवाद ■

संघर्ष-बंदी-बहिष्कार
(योरपीय उपन्यास)

विश्व-इतिहास की झलक
(नेहरूजी की कृति)

■ भारत-निर्माता

यह कृष्ण वल्लभ द्विवेदी की सर्वाधिक प्रशंसित और बहुचर्चित मौलिक कृति हैं। अपनी ओजस्वी भाषा एवं गद्यकाव्य जैसी भावपरक प्रस्तुति के नाते यह ग्रन्थ–जो एक प्रकार का देश का सांस्कृतिक इतिहास है–बड़ा लोकप्रिय बना है।

इस पुस्तक की एक विशिष्ट खूबी (क्रेयान द्वारा बड़े–बड़े कलाकारों द्वारा विशेष रूप से इसी ग्रंथ के लिए निर्मित कराए गए) प्रत्येक चरित के अत्यन्त आकर्षक चित्र हैं। ग्रंथ दो रंगों में मुद्रित है।

■ ज्ञानलोक

यह किशोरोपयोगी बाल–विश्वकोश कृष्ण वल्लभ द्विवेदी ने परिकल्पित तो किया था बीस भागों में, परन्तु चार पुस्तकें– "आकाश के कौतुक", "धरती माता", "विचित्र जीव–जन्तु" और "अनोखे पेड़–पौधे" ही निकलीं। ये सचित्र वैज्ञानिक प्रस्तुतियाँ बहुत लोकप्रिय बनीं और उनके कई संस्करण हुए।

■ हिन्दू-धर्म :

यह "भारत–निर्माता" के उपरान्त कृष्ण वल्लभ द्विवेदी द्वारा प्रस्तुत सबसे महत्वपूर्ण मौलिक रचना है। यह निश्चय ही उनकी कीर्ति की सुनहली पताका

बनेगी। इस बृहद् कृति में हिन्दू–धर्म–संस्कृति का आद्योपान्त परिचय बड़ी ही ओजस्वी भाषा–शैली में प्रस्तुत किया गया है।

■ **जीवन-डगर**

यह कृष्ण वल्लभ द्विवेदी की "आत्मकथा" है, जो अभी अप्रकाशित है। बड़ी ही प्रभावोत्पादक प्रस्तुति है यह। अपनी जानी–मानी गद्यकाव्य की–सी शैली में रचित इस अद्वितीय आत्मगाथा का प्राक्कथन, गुजरात के भूतपूर्व राज्यपाल और भारत के निवर्तमान मुख्य निर्वाचन आयुक्त, विद्वद्वर डॉ0 रामकृष्ण त्रिवेदी ने लिखा है।

■ **प्रकाशक की जीवन-यात्रा :**

यह है तो "हिन्दी विश्व–भारती" के प्रकाशक श्री राजराजेश्वर प्रसाद भार्गव की जीवनी, परंन्तु साथ ही साथ इसमें उनके समस्त प्रकाशनों का भी विस्तृत परिचय है। चूँकि इसमें कृष्ण वल्लभ द्विवेदी का भी पग–पग पर हाल है, अतः उन्होंने "एक सहयोगी साथी" के छद्मनाम से इसे प्रस्तुत किया है।

■ **साहित्य-सुधाः**

यह कृष्ण वल्लभ द्विवेदी की हिन्दी पाठ्यपुस्तक है, जो उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत होकर छठी–सातवीं कक्षाओं में सात वर्ष तक पढ़ाई गई।

■ **ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरणः**

इस स्मारिका को स्व0 डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल की स्मृति में स्थापित संस्थान द्वारा कृष्ण वल्लभ द्विवेदी से संपादित कराया गया। इसकी सबसे मार्के की सामग्री अग्रवाल जी की देन की द्विवेदी कृत व्याख्या है।

■ **ग्रह-नक्षत्र :**

यह नन्हीं–सी पुस्तक भारत–सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है और नवसाक्षरों के लिए खरीदी जाकर देश के विविध अहिन्दी प्रदेशों के पुस्तकालयों में पहुँचाई गई है। इसमें बड़ी सरल भाषा में खगोल–विज्ञान का सचित्र विवरण प्रस्तुत है।

■ **सुनहली पगडंडियाँ :**

यह कृष्ण वल्लभ द्विवेदी के प्रकीर्ण लेखन की गद्य–पद्यात्मक बानगियों का संकलन है। इस नाम से पहले एक लघु पुस्तिका प्रकाशित भी हो चुकी है। परन्तु प्रस्तुत संग्रह अधिक सामग्री लिए हुए है। अभी यह अप्रकाशित है।

■ **संघर्ष-बन्दी-बहिष्कार :**

तीन यूरोपीय उपन्यासों के ये हिन्दी रूपान्तर कृष्ण वल्लभ द्विवेदी की सन् 1932 ई0 की रचनाएँ हैं। उनका जिक्र "जीवन–वृत्त" में हो चुका है। परन्तु ये अब पैंसठ वर्ष बाद कहीं मिलती ही नहीं हैं– अतीत के गर्त्त में लुप्त हो चुकी हैं।

■ **भगवद्वाणी :**

यह हिन्दू–धर्म–वाङ्मय में यत्र–यत्र मुखरित, विविध देवों, ऋषि–महर्षियों के श्रीमुख से उच्चरित ब्रह्मवचन हैं, जिनका अनुवाद और गहन व्याख्यात्मक परिचय देते हुए, एक ही ग्रथं के संपुट में संकलन किया गया है। यह कृति अभी अप्रकाशित है।

■■■■■

विश्वकोश की परम्परा और द्विवेदी जी

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद - 211002

डॉ0 हरदेव बाहरी ने अपने एक लेख (भाषा त्रैमासिक विश्व हिन्दी सम्मेलन अंक 1975 पृष्ठ 156–162) में भारतीय भाषाओं के कोशों की संख्या 2190 बताई है जिनमें से हिन्दी के 308, बंगला के 209, गुजराती के 125, मराठी के 115, तमिल के 211, तेलुगु के 77, मलयालम के 67 और कन्नड़ के 62 कोश हैं। उन्होंने हिन्दी के कोशों को हिन्दी–हिन्दी, पर्यायवाची, मुहावरा, लोकोक्ति, बोली कोश तथा ज्ञानकोश में विभाजित किये हैं।

'ज्ञानकोश' से डॉ0 बाहरी का तात्पर्य विशिष्ट तथा विविध विषयों के ज्ञान से सम्बन्धित कोशों से है। वे नागरी प्रचारिणी सभा के 'शब्दकोश' की चर्चा करते हुए उससे सन्तुष्ट नहीं दिखते। उसी प्रसंग में विद्यार्थियों के लिए **दो** विश्वकोशों की चर्चा चलाते हैं

1. भारत सरकार का **ज्ञान सरोवर** (चार भाग, 1955)

2. राजपाल एण्ड संस का **सचित्र विश्वकोश** (दस भाग जो अंग्रेजी पुस्तकमाला का अनुवाद है) विशिष्ट विषयों के ज्ञान से सम्बन्धित **दो** कृषि ज्ञान कोशों का भी उल्लेख हुआ है– ये हैं यदुनारायण दुलीचंद्र व्यास कृत **कृषि ज्ञान कोश** (1955) तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद का **कृषिकोश** (1959)।

अपने इसी लेख में विज्ञान के **दो** हिन्दी–अंग्रेजी शब्दकोश–डॉ0 रघुबीर का हिन्दी–अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दकोश (1951) और केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का विज्ञान शब्दावली (1970) भी उल्लिखित हैं। डॉ0 रघुबीर का यह कोश निस्सन्देह कोश साहित्य के विकास में नींव का काम करने वाला रहा है।

स्पष्ट है कि हिन्दी में विज्ञान के क्षेत्र से सम्बद्ध कोशों या विश्वकोशों की संख्या **कम** है और इनका ठीक से समीक्षण नहीं हुआ।

विश्वकोश (Encyclopedia) बहुधा कई खण्डों में प्रकाशित ऐसा ज्ञान भण्डार है जिसमें विविध विषयों पर संक्षिप्त किन्तु आवश्यक सामग्री दी जाती है। ये विषय ग्रन्थ में अकारादि क्रम से या फिर विभिन्न खण्डों में संजोये रहते हैं।

विश्वकोश दो प्रकार के होते हैं– **सामान्य** तथा **विशेष**। **सामान्य** विश्वकोशों में विषयों का चयन सभी क्षेत्रों से किया जाता है जिसमें विज्ञान भी आवश्यक अंग के रूप में रहता है। इनमें पठनीय सामग्री का स्तर पाठक के अनुसार साधारण से लेकर उच्च तक हो सकता है। बच्चों के लिए लिखे गये विश्वकोशों का स्तर उनके अनुरूप रखा जाता है तथा उनमें चित्र भी रहते हैं। **विशेष** विश्वकोशों में विषय प्रतिपादन का क्षेत्र सीमित कर दिया जाता है– जैसे रसायन विश्वकोश, विज्ञान विश्वकोश, आयुर्वेद विश्वकोश आदि। सामान्य विश्वकोश का उदाहरण नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा

प्रकाशित हिन्दी विश्वकोश (12. खण्ड) है। राजपाल एण्ड सन्स द्वारा प्रकाशित सचित्र विश्वकोश (10 खण्ड) बालोपयोगी विश्वकोश है और प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित "रसायन कोश" विशेष कोश की श्रेणी में आते हैं। "भारत की सम्पदा" एक बहुआयामी विश्वकोश है (12 खण्ड)। सरल विज्ञान सागर (1946) यद्यपि अधूरा है किन्तु स्वतन्त्रता पूर्व एक अनूठा प्रयास था जिसे विज्ञान परिषद, प्रयाग ने किया था।

हिन्दी के प्रथम विश्वकोश की रचना का श्रेय श्री नगेन्द्र नाथ वसु को है जिन्होंने बंगला में प्रकाशित विश्वकोश के पैटर्न पर 1915 से 1929 के बीच अठारह खण्डों में प्रकाशित किया। इसमें विज्ञान के विविध विषयों के महत्वपूर्ण शीर्षकों पर सचित्र सामग्री दी गई है। उदाहरणार्थ, भाग 1.के अन्तर्गत अक्षिजेन, अंगार व कार्बोन, अणुवीक्षण, अदरक अन्य ज्वर जैसे शीर्षक हैं। इसी तरह भाग 18 में मूँगफली, मूर्छारोग, मृत्तिका, योनिरोग जैसे शीर्षक समाहित हुए हैं। यह कोश तब रचा गया था जब पारिभाषिक शब्दावली विकसित नहीं हो पाई थी और ज्ञान–विज्ञान का स्तर न्यून था। इसीलिए आज के तमाम नवीन विषय इसमें नहीं मिलेगें।

दूसरा प्रयास भारत सरकार की देखरेख में छपे "ज्ञान सरोवर" के रूप में 1954–58 के मध्य किया गया। इसके चार खण्ड हैं। किन्तु यह बालोपयोगी है, उच्चस्तरीय नहीं।

तीसरा प्रयास श्री कृष्ण वल्लभ द्विवेदी का है। यह सर्वथा अनूठा प्रयास है। उन्होंने 1938 में 'हिन्दी विश्व भारती' नाम से अनेक खण्डों वाले विश्वकोश की योजना बनाई और व्यक्तिगत प्रयासों से अनेक अड़चनों के बाद उसे 1964 में पूरा करके ही दम लिया। (अन्यत्र इस कोश की विस्तार से चर्चा हुई है)। इसके लिए उन्होंने तत्कालीन विषय–विशेषज्ञों के साथ ही प्रसिद्ध हिन्दी विज्ञान लेखकों की सहायता ली और दुर्लभ चित्रों को जुटाया।

इस सदी का अन्तिम प्रयास नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 1960 में शुरू हुआ जिसकी पूर्णाहुति 11 वर्ष बाद 1970 में हुई। इसमें विज्ञान प्रविष्टियों के लिए सामग्री संकलित करने का कार्य डॉ0 गोरख प्रसाद तथा उनकी मृत्यु के बाद प्रो0 फूलदेव सहाय वर्मा ने किया। इस विश्वकोश में विज्ञान का अंश अपेक्षतया अधिक है और इसकी सामग्री विश्वविद्यालयों के विज्ञान–विशेषज्ञों द्वारा लिखी जाने के कारण अधिक प्रामाणिक एवं स्तरीय है। इसमें भारत सरकार द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली का ही प्रयोग हुआ है। केवल अंकों तथा सूत्रों–समीकरणों के मामले में कुछ स्वतन्त्रता बरती गई है–उनका हिन्दीकरण हुआ है जो हिन्दी की अस्मिता का प्रश्न था। इसके बारह खण्डों में कुल 30 हजार प्रविष्टियाँ हैं।

यहाँ पर चिल्ड्रेन नालिज बैंक का भी उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। इसके कई खण्ड प्राप्त है। जिनमें सामान्य ज्ञान, भूगोल, ब्रह्माण्ड आविष्कार अनुभागों के अन्तर्गत अनेक शीर्षकों पर सचित्र जानकारी दी गई है।

इस प्रकार गिने–चुने विश्वकोशों में द्विवेदी जी का विश्वकोश, जाज्वल्यमान नक्षत्र की तरह देदीप्यमान रहेगा।

हम विश्वकोशों की सूची पाठकों के लाभार्थ दे रहे हैं–

1. हिन्दी विश्वकोश (18 भाग) नगेन्द्रनाथ वसु (1915–29) बाघ बाजार, कलकत्ता।

2. सरल विज्ञान सागर (अपूर्ण) : डॉ0 गोरख प्रसाद
: विज्ञान परिषद् 1946

3. ज्ञान सरोवर (4 भाग) भारत सरकार 1955–64

4. हिन्दी विश्व भारती (10 खण्ड) श्री कृष्ण वल्लभ द्विवेदी, लखनऊ 1958–64

5. सचित्र विश्वकोश (अनुवाद) 10 खण्ड, राजपाल एण्ड सन्स 1967 [इसका पुनः प्रकाशन 4 खण्डों में हुआ है (केवल विज्ञान से सम्बन्धित)]।

6. हिन्दी विश्वकोश (12 खण्ड) नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी (1961–70)।

7. भारत की सम्पदा (12 खण्ड), पी0 आई0 डी0 दिल्ली (1970–1998)।

8. चिल्ड्रेन नालिज बैंक (कई खण्ड) पुस्तक महल दिल्ली, 1980

9. बाल विज्ञान एन्साइक्लोपीडिया (3 भाग) राजेन्द्र कुमार राजीव पुस्तकायन, नई दिल्ली (1989–90)।

10. न्यू जूनियर एनसाइक्लोपीडिया (राबर्ट बर्टन कृत का अनुवाद) पीताम्बर प्रकाशन, नई दिल्ली।

■■■■■

श्री कृष्ण वल्लभ द्विवेदी की लेखनी उनकी 67 वर्षीय साहित्य–साधना के दीर्घकाल में कभी भी थमी नहीं। उन्होंने जहाँ उपर्युक्त ग्रंथ रचे या संपादित किए, वहाँ अनेक बड़े मार्के के लिखित संभाषण भी दिए। उनमें स्वामी विवेकानन्द पर प्रस्तुत "महान् ज्योतिर्धर", गोस्वामी तुलसीदास पर दिया गया "विश्ववंद्य महाकवि", महर्षि दयानन्द पर "महर्षि दयानन्द और वेद" तथा मीरा पर दिया गया "राधा की प्रतिमूर्तिः मीरा" सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं। "महान् ज्योतिर्धर" व्याख्यान को छपवाकर रामकृष्ण मिशन ने हजारों की संख्या में वितरित किया। मीरावाला भाषण एक लघु पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ और उसका "कैसेट" भी बना। उधर प्रकीर्ण लेखों की संख्या तो इतनी अधिक है कि यहाँ इतना स्थान ही नहीं है कि उनका परिचय दे सकें।

हिन्दी विज्ञान मनीषी: पं० कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय

संयुक्त मन्त्री, विज्ञान परिषद, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद - 211002

विज्ञान परिषद प्रयाग में विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली द्वारा स्वीकृत एक परियोजना– "हिन्दी विज्ञान लेखन के सौ वर्ष" पर कार्य चल रहा था। इस परिप्रेक्ष्य में परियोजना समन्वयक डॉ0 शिवगोपाल मिश्र जी ने उस वर्ष उ0 प्र0 हिन्दी संस्थान द्वारा साहित्य–भूषण सम्मान से सम्मानित श्री कृष्ण वल्लभ द्विवेदी जी को अपेक्षित जानकारी के लिए पत्र लिखा। शोध सहयोगी होने के कारण उनका लम्बा–चौड़ा पत्रोत्तर डॉ0 साहब ने मुझे भी दिखाया। सुन्दर लिखावट व सुस्पष्ट पत्रोत्तर देखकर ऐसा लगा मानों कृष्ण वल्लभ द्विवेदी जी में अभी भी युवा जैसा ही जोश–खरोश है।

कुछ दिनों पश्चात् डॉ0 साहब ने लखनऊ चलने तथा साथ में द्विवेदी जी से मिलने का कार्यक्रम तय किया। इस प्रकार दिनांक 5 मई 1998 को हम लोग लखनऊ गये। उनका आवास ढूँढ़ने में काफी दिक्कत आयी और जब आवास पर पहुँचकर मैंने घंटी बजायी तो उनके सुपुत्र ने दरवाजा खोला। हम लोगों को उन्होंने बिठाया और अपने पिताजी को हम लोगों के आने की सूचना दी। छोटे कद के कुर्ता, धोती पहने व झुकी कमर वाले एक व्यक्ति ने प्रवेश किया और तत्पश्चात् मैंने भी। इसके पश्चात् डॉ0 साहब ने अपना तथा साथ में मेरा भी परिचय दिया।

हमें काफी थकान आ गयी थी, लेकिन उनके गर्मजोशी व ओजपूर्ण वाणी को सुनकर हमारी थकान दूर भाग गयी। हमें ऐसा आभास हुआ जैसे युवा द्विवेदी बोल रहे हों। उन्होंने हम लोगों को अपने द्वारा रचित आदि महत्वपूर्ण साहित्य दिखाया। फिर उन्होंने विस्तार से यह बताया कि किस प्रकार उन्होंने विश्व–कोष के लिए धन–जुटाया, विभिन्न लेखकों से सम्पर्क किया। चित्रों को जुटाने तथा उनका नामांकन आदि कार्य, सच पूछा जाय तो बहुत आसान नहीं है। विशेषकर उस समय जबकि हमारे पास पारिभाषिक शब्दावली न थी। इन पुस्तकों को तैयार करना अपने आप में एक अनोखा प्रयास था। सच पूछा जाय तो यह कार्य द्विवेदी जी जैसा उत्साही, लगनशील, कर्मठ व साहसी पुरूष ही कर सकता था।

पुस्तकों की भाषा–शैली सरल, स्पष्ट, रोचक, प्रवाहमय, प्रभावपूर्ण है। यथास्थान चित्रों को भी स्थान दिया गया है। सम्भवतः यह हिन्दी भाषा में तैयार विज्ञान का प्रथम विश्वकोष है। परन्तु यह दुरूह

पुस्तक पुस्तकालयों से गायब है और अनेक लोग इस विश्वकोष के रसास्वादन से दूर हैं।

वार्तालाप समाप्त होने के पश्चात् उन्होंने पानी के लिए पूछा व अफसोस व्यक्त किया कि वह वार्तालाप में ही उलझ गये और अभी तक पानी भी न पूँछा। खैर, उस समय एक रहस्योद्घाटन हुआ और वह यह कि उनके घर में कोई महिला नहीं है। भोजन उनके पुत्र बनाते हैं तथा वह भी कुछ सहायता कर देते है। मुझे उन्होंने रसोई दिखाई और मैने डॉ० साहब व अपने लिए पानी लिया। सामान्यतः घर में महिला न हो तो घर अस्त–व्यस्त ही रहता है, परन्तु घर की सफाई व व्यवस्था को देखकर कहीं भी ऐसा नहीं लगा कि घर में कोई महिला नहीं है। शायद ऐसा इसलिएं कि इस 89 वर्ष की आयु में भी द्विवेदी जी ने वृद्धों जैसा मनोभाव अपने ऊपर नहीं आने दिया है। वे कर्म में विश्वास रखते हैं और हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक साहित्य–सृजन के प्रगति आशावान हैं।

द्विवेदी जी से मिलने का एक बार पुनः अवसर उस समय आया, जब जनवरी माह में डॉ० साहब के ही साथ उनके आवास गया। यह वह समय था जब उनके अनुज हिन्दी फिल्मों के प्रसिद्ध गीतकार एवं कवि प्रदीप का निधन हो गया था और हम संवेदना व्यक्त करने गये थे। उनका निधन गत 11 दिसम्बर को मुम्बई में 83 वर्ष की अवस्था में हुआ था। उनका वास्तविक नाम रामचन्द्र नारायण जी द्विवेदी था। उन्हें 1997 के दादा साहब फाल्के पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। द्विवेदी जी ने अपने अनुज से सम्बन्धित ढेर सारी बातों से अवगत कराया। संस्मरण सुनाते–सुनाते द्विवेदी जी अत्यन्त भावुक हो उठते थे। यह व्यथा कि काफी दिनों से अस्वस्थता के कारण उनकी आपस में मुलाकात न हो पायी थी, उनकी अन्तरात्मा को कचोट रही थी। उस समय ऐसा लग रहा था मानों उनकी ओजपूर्ण वाणी को ग्रहण लग गया हो। हम लोगों को विलम्ब हो रहा था, अतः उनसे अनुमति लेकर हमने अपने गन्तव्य के लिये प्रस्थान कर दिया।

विज्ञान परिषद् प्रयाग ने समय–समय पर अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों के व्यक्तित्व को प्रकाश में लाने तथा उनके नाम को अक्षुण्ण बनाये रखने का कार्य किया है। इसी कड़ी में विज्ञान का फरवरी अंक द्विवेदी जी को समर्पित करने का निर्णय विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा लिया गया है। इस विशेषाक को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए डॉ० साहब ने जब मुझसे द्विवेदी जी से सम्बन्धित संस्मरण लिखने को कहा तो मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई। मेरी भगवान से यही प्रार्थना है कि वह ऐसे हिन्दी विज्ञान मनीषी को दीर्घायु प्रदान करें, जिससे हिन्दी विज्ञान साहित्य का और भी भला हो सके। अन्त में मेरी ओर से द्विवेदी जी को कोटिशः प्रणाम।

■■■■■

हिन्दी विश्व भारती के स्वनाम धन्य

प्रकाशक श्री राज राजेश्वर प्रसाद भार्गव

('कहानी एक प्रकाशन की' से संकलित)

'हिन्दी विश्व भारती' के रूप में राष्ट्रवाणी की वेदी पर 'बुक ऑफ नालेज' जैसे अंग्रेजी प्रकाशनों की टक्कर का सर्वप्रथम ज्ञानकोश प्रस्तुत करने का गौरव प्राप्त कर, श्री राजराजेश्वर प्रसाद भार्गव हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र में अपने लिए मुंशी नवलकिशोर, बाबू चिन्तामणि घोष, श्री नाथूराम प्रेमी प्रभृति महान अग्रदूतों की पंक्ति में प्रतिष्ठा का स्थान बना सके। यह ग्रंथ 1939 में शुरू हुआ और 1964 में पूर्ण हुआ।

किसी भी यज्ञानुष्ठान को सम्पन्न करने में जहाँ यजन–प्रक्रिया के निर्देशक होता, 'उद्‌गाता', 'अध्वर्यु' आदि मंत्रोच्चारकों का महिमामय स्थान होता है, वहां उनकी समिधा–सामग्री के अर्थ–भार को उठाने वाले 'यजमान' या 'यजेता' की भी गरिमा किसी से कम नहीं होती। यही सत्य ग्रंथ–प्रकाशन रूपी ज्ञान–यज्ञ के विषय में भी शत–प्रतिशत लागू होता है। यहाँ भी एक ओर यदि एक ग्रंथ के नियामक, लेखक, संपादक, कलासंयोजक आदि उसके सिद्धि–श्रेय के अधिकारी होते हैं, वहां उसके मुद्रण–प्रकाशन एवं अर्थ–व्यवस्था का भगीरथ–भार उठाने वाले 'प्रकाशक' के ललाट पर उसका गौरव तिलक लगाया जाना उतना ही सुसंगत और न्यायोचित हैं।

अतएव इस बात को स्वीकार करते हुए भी कि यद्यपि 'हिन्दी विश्व–भारती' की परिकल्पना उसके नियोजक एवं प्रधान संपादक पं0 कृष्ण बल्लभ द्विवेदी के ही मस्तिष्क की देन थी तथा उसकी पठन–सामग्री की संपूर्ति का श्रेय ग्रंथ के विविध गणमान्य लेखकों को ही दिया जाना चाहिए, तथापि हमें यह तथ्य नही भुला देना चाहिए कि इस ज्ञानानुष्ठान के सूत्रधार तो राजराजेश्वर प्रसाद ही थे। वही इस महान् सारस्वत अधियज्ञ के यजेता थे उन्होंने ही इस अनुष्ठान को सींचा और उसका पोषण किया। यहां तक कि एक कठिन दौर में पहुँचकर, उसकी मंद पड़ती जा रही दीपशिखा को सर्वथा बुझ जाने से बचाने के प्रयास में, वह अपने आपको आर्थिक बर्बादी के कगार तक ले जाने में भी झिझके नहीं।

सच तो यह है कि यदि द्विवेदी जी ने इस अनुष्ठान का 'मंत्र' दिया, तो उसे कार्यान्वित करने वाले 'तंत्र' और 'यंत्र' की आपूर्ति भार्गवजी ने ही की। बल्कि यह कहना भी अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा कि यदि राजेश्वर बाबू इस प्रकाशन को मूर्तिमान् करने का

बीड़ा उठाकर मैदान में नहीं उतरते, तो द्विवेदी जी के मन में बसा हुआ इस ज्ञानकोश के निर्माण का सपना स्वप्न ही बना रह जाता।

उर्दू-भक्त होकर भी हिन्दी के प्रकाशक बने

फिर, मार्के की बात तो यह है कि राष्ट्रवाणी हिन्दी की झोली भरने के प्रयास में जीवन के लगभग पचास वर्ष खपाने वाले राजराजेश्वर प्रसाद अनी शिक्षा--दीक्षा और अभिरूचि के नाते हिन्दी के बजाय उर्दू के अधिक सन्निकट रहे। वे प्रगाढ़ उर्दू–भक्त थे। उनकी शिक्षा का आरंभ एक मौलवी की देखरेख में उर्दू में ही हुआ था। तदनंतर, अंग्रेजी के साथ–साथ फारसी–अरबी का भी दामन उन्होंने पकड़ा था। वस्तुतः हिन्दी में पढ़ने–लिखने में जो भी क्षमता उनमें थी वह उनके अपने निजी प्रयास की ही देन थी किसी शिक्षक या विद्यालय का उसमे हाथ नही था। उन्होंने बड़ौदा के अपने शिक्षाकाल में धर्मपत्नी के हिन्दी पत्रों का आशय समझने के प्रयास में अपने आपको हिन्दी की बारहखड़ी से लैस किया था।

प्रसंगतया यहाँ यह बता देना भी कोई बेमौके की बात न होगी कि हिन्दी के एक प्रतिष्ठित प्रकाशक की स्थिति पर पहुँचकर भी राजेश्वर बाबू को उर्दू से कम लगाव नही था वे एकान्त में उर्दू के रिसाले ही पढ़ते थे। उधर कोई अच्छा–सा मुशायरा (उर्दू–कवि सम्मेलन) हुआ, तो शायरी का लुत्फ लेने वाले उस मजमें में यदि यह भी कहीं दुबके बैठे दिखाई पड़ते तो इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं। ऐसा कट्टर–उर्दू–भक्त एक दिन हिन्दी की वेदी पर हजारों पृष्ठों के विपुल ज्ञान–विज्ञान–साहित्य की भेंट चढ़ाने में महान् योग प्रदान करे, भला, इसे राष्ट्र–सेवा की इनके अंतराल में छिपी हुई उमंग का ही जीवन्त साक्ष्य मानने के अलावा और क्या कहना होगा?

विलक्षण व्यक्तित्व : 'मध्यममान' का आदर्श

अपने अनूठे 'कृतित्व' की नाई राजराजेश्वरप्रसाद का 'व्यक्तित्व' भी एक सर्वथा निरालेपन से अभिभूत था। वे एक विलक्षण व्यक्तित्व थे। उन्हें हम एक प्रकार से जीवन के हर पक्ष में 'मध्यममान' का ही आदर्श प्रस्तुत करते हुए पाते हैं। जान पड़ता है, उन्हें गढ़ते समय विघाता ने 'अति' (या अंग्रेजी भाषा के Extreme) के पैमाने को बाजू में ठेलकर जिसे 'गोल्डन मीन' (स्वर्णिम मध्यम मान) की संज्ञा प्रदान की जाती है उसी साँचे से काम लिया था। वे न ता नाटे थे न कद्दावर। डील में भी न ये एकदम दुबले–पतले कभी दिखाई दिए और न तो मोटे ही। बोली के नाते, ऊँचे स्वर से शब्दोच्चारण करने या बातचीत में डपट के स्तर तक उठके की इनकी कभी आदत नही थी। तो फिर, चीखने–चिल्लाने (या अंग्रेजी में जिसे Shout करना कहा जाता है) अथवा रोष में आकर चिंघाड़ने जैसी आवाज मुंह से निकालने की तो इनके संबध में कल्पना भी नहीं कि जा सकती। मैं उन्हें आधुनिक भामाशाह कहूँ तो अतिशयोक्ति न होगी जिन्होंने हिन्दी में विज्ञान की श्री वृद्धि हेतु अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया।

■■■■■

हिन्दी विश्वभारती के निर्माता:

पं० कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

(संकलनकर्त्ता: डॉ० शिवगोपाल मिश्र)

विधि के विधान का रहस्य कब कौन समझ पाया है? भला जिसका जन्म मध्य प्रदेश के मालवा प्रभाग के सुप्रसिद्ध उज्जैन जनपद के एक छोटे से तहसीली कस्बे—बड़नगर में आज से 89 वर्ष पूर्व 11 जनवरी 1910 को हुआ हो, और जिसके स्वजन—कुटुम्बी, पैतृक जमीन—जायदाद, आदि—आदि सब—कुछ कालिदास और विक्रमादित्य, मुंज और भोज की पुण्यस्मृति से परिप्लावित उस पुण्यशीला भूमि के ही अचल में केन्द्रित—अवस्थित हों, वह ठेठ पाँच सौ मील का मध्यान्तर लांघकर पहले गंगा—यमुना—सरस्वती के त्रिवेणी तट पर और तब गोमती के किनारे आकर अपना डेरा—तम्बू स्थापित करे और वहीं जीवन के साठ से अधिक संवत्सर व्यतीत करे— यह भाग्य का ही विचित्र विधान नहीं, तो और क्या कहा जा सकता है?

वैसे तो कृष्ण वल्लभ द्विवेदी का आज भी मालव भूमि से कोई कम लगाव नहीं है। जब कभी भी उस भूमि का संस्पर्श पाने का सौभाग्य अभी भी पाते हैं, अपनी उस जन्मभू कि मिट्टी को माथे पर चढ़ाने में गर्व और गौरव का अनुभव करते हैं। तथापि उनकी कर्मभूमि तो शत—प्रतिशत गंगा—यमुना—सरयू और गोमती की पुनीत धाराओं से सिंचित उत्तर प्रदेश की यह भूमि ही हैं। यहीं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उन्होंने अपनी उच्च शिक्षा का समावर्तन किया। यहीं उनकी पत्रकारिता की अर्द्धशताब्दिव्यापी साधना का उद्घाटन हुआ। कालान्तर मे, जब यह महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी महाराज के सुविख्यात साप्ताहिक पत्र 'अभ्युदय' के सह—संपादक बने, तो इनका परिचय हुआ पं0 वेंकटेशनारायण तिवारी से, जो पं0 नेहरू की प्रथम कृति 'ग्लिम्पसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री' के हिन्दी अनुवाद का काम सँभालने के लिए कुछ ही समय बाद इन्हें लखनऊ लिवा ले आए। संयोग की बात थी कि यह ग्रन्थ मुद्रित हो रहा था 'अवध प्रिंटिंग वर्क्स' में। अतः यह कोई बड़े अचम्भे की और अनहोनी बात नहीं हुई कि राज राजेश्वर प्रसाद भार्गव इनसे परिचित हो लिए।

बात आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व की हैं। उस समय तक पं0 जवाहर लाल नेहरू की कोई महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी। मात्र एक लम्बा सा लेख 'Whither India' के नाम से एक पुस्तिका के रूप मे निकला था, जिसका 'किधर भारत' के नाम से हिन्दी अनुवाद भी कालान्तर मे प्रकाशित हुआ था। तब 'Glimpses of World history' शीर्षक से उनकी एक बड़ी कृति पहले—पहल निकली। इस ग्रन्थ में अपनी पुत्री इन्दिरा को जेल से लिखे गए अनेक पत्रों के बाने में, दुनिया के इतिहास का सम्पूर्ण चित्रपट धारावाहिक रूप से बड़ी मार्मिक शैली प्रस्तुत किया गया था। इस ग्रंथ का बड़ा स्वागत हुआ और कुछ ही

समयोपरान्त उसका हिन्दी–अनुवाद कराने की चर्चा उठी। परन्तु उसका अनुवाद कौन करे? किसमें इतनी योग्यता थी कि नेहरू जी की भावपूर्ण शैली का रस बनाए रखते हुए, विषयवस्तु को ऐसे निखरे हुए शब्दों में हिन्दी में प्रस्तुत कर सके कि अविकल अनुवाद की शुष्कता का मुलम्मा इस सुन्दर कृति पर न चढ़ने पाए? मौके की बात थी, इस दुष्कर कार्य का बीड़ा उठाने को एक हस्ती पं0 वेंकेटेश नारायण तिवारी के रूप में स्वयं ही सामने आई। जवाहरलाल जी तिवारी से बखूबी परिचित थे। उन्होंने सहर्ष इन्हें न केवल ग्रन्थ का अनुवाद कार्य ही सौंप दिया, अपितु जहाँ चाहे उसे छपवाकर प्रकाशित करा लेने का भी दायित्व उन्हीं पर छोड़ दिया।

तिवारी जी बौद्धिक स्तर पर उच्च प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। वह गोखले की 'सर्वेण्ट ऑफ इंडिया सोसायटी' के सदस्य भी रह चुके थे। कुछ समय तक वह प्रदेश की तत्कालीन 'लेजिस्लेटिव कौसिल' के भी मेम्बर रहे। कहते है जब वह उक्त विधान परिषद् के अधिवेशनों में भाग लेने को लखनऊ आते, तब अक्सर गनेशगंज के प्रतिष्ठित कान्यकुब्ज गृहस्थ पं0 देवदत्त बाजपेयी के यहाँ ही ठहरा करते थे। बाजपेयी जी की समीपस्थ फतहगंज की अनाजमंडी में गल्ले की थोक दुकान थी। उसी मंडी में एक मामूली से मकान में उन दिनों रहा करते थे श्री मदनमोहन शुक्ल 'मदनेश', जो बाबू विशननारायण भार्गव के 'हिन्दुस्तानी बुक–डिपो' से सम्बन्ध रखते थे। उनका देवदत्त जी के यहाँ आना–जाना प्रायः लगा रहता था। जब उन्हें यह पता चला कि उनके यहाँ टिके हुए पं0 वेंकटेशनारायण तिवारी जवाहर लाल जी की एक पुस्तक को निकालने के लिए योग्य प्रकाशक की खोज में हैं, तो उनके कान खड़े हुए और उन्होंने इस स्वर्ण–सुयोग को हाथ से न निकल जाने देने का संकल्प कर लिया। वह तिवारी जी से मिले और उनकी सभी शर्तें स्वीकार करके उन्हें नेहरू जी के इस ग्रंथ को प्रकाशित करने का सौभाग्य अपने को ही प्रदान करने के लिए राजी कर लिया।

इकरारनामा हो गया। तिवारी जी लखनऊ मे ही पं0 देवदत्त जी बाजपेयी के मकान पर अधिकतर अपना डेरा डाले रहते थे, अतः यह मंजूर कर लिया गया कि जो थोड़ी बहुत पांडुलिपि तैयार थी उसे वह दे दें तथा छपाई तुरन्त आरम्भ कर दी जाय। शेष पांडुलिपि वह सुविधानुसार ज्यों–ज्यों अनुवाद होता चला जाय देते रहे, ताकि उन्हें भी कोई अड़चन न हो और प्रेस का भी काम न रूके। श्री मदनेश 'साहित्य–मंदिर प्रेस' के नाम से एक छापाखाना ग्वीन रोड पर स्थापित किये हुए थे। उसी के द्वारा यह ग्रंथ–जिसका नाम 'विश्व इतिहास की झलक' रखा गया था– प्रकाशित होना था। चूंकि अभी पूरी पांडुलिपि तैयार नही थी, अतः ग्रंथ को कई एक भागों में प्रकाशित करने की योजना बनाई गई थी।

काम बड़े जोर–शोर से शुरू हो गया। 'साहित्य–मंदिर प्रेस' के छपाई के साधन उन दिनों सीमित थे। इसलिए ग्रंथ की छपाई की व्यवस्था चार–बाग में स्थित 'अवध प्रिटिंग वर्क्स' में की गई थी। इस तरह शीघ्रता के साथ ग्रंथ के दो भाग मुद्रित होकर बाजार में आ गए और उन्हीं के आधार पर मदनेशजी ने सम्पूर्ण ग्रंथ का पेशगी मूल्य देने वाले अनेक स्थायी ग्राहक भी जुटा लिए। परन्तु जब एकाएक गाड़ी थम गई, क्योंकि कतिपय व्यक्तिगत झमेलों में उलझ जाने से पं0 वेकटेशनारायण तिवारी समय पर आगे की पांडुलिपि दे पा में पिछड़ने लगे। यही नहीं, इतने योग्य होने पर भी, समुचित ध्यान न दे पाने के कारण, अब जो अनुवाद वह करते, वह दोबारा देखने पर उन्हें

स्वयं ही नहीं जँचता और वह प्रूफ–संशोधन के समय झुँझला कर कंपोज हो चुके मैटर में बेतरह काट–छाँट करने लगते। भला, कोई भी छापाखाना इस तरह का उलटफेर क्योंकर स्वीकार करता? अतः एक जिच–सी पैदा होने लगी और आगे का चलना मुश्किल हो गया।

ऐसे में, तिवारी जी को सहसा याद आए 'अभ्युदय' के अपने विश्वसनीय साथी श्री कृष्णवल्लभ द्विवेदी, जिनकी साहित्यिक प्रतिभा तथा संपादन–क्षमता से वह बखूबी परिचित थे। बल्कि गुप्त रूप से, इधर हाल ही में अपना अनुवाद कार्य संतोषजनक न होते पाकर, जिनके ग्रंथ के कुछ अंश का तर्जुमा भी उन्होनें (इलाहाबाद में उनके रहते हुए ही) कराया था। यह अनुवाद तिवारी जी को इतना अधिक जँचा कि उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि अब आगे का शेष अनुवाद वह द्विवेदी जी से ही करा लेंगे तथा स्वयं फुर्सत पा जाएंगे। परन्तु इस समय तो प्रश्न सामने यह था कि जो तिवारी जी का अपना अनुवाद किया हुआ अंश कंपोज होकर प्रेस की गैलियों में पड़ा था, उसके दंडकवन से कौन निबटे? कौन उसे माँजकर ठीक शक्ल दें? स्वयं तिवरी जी के बूते का काम यह नहीं था। इसीलिए उन्हेंाने इलाहाबाद में द्विवेदी का द्वार खटखटाया। उन्हें यह 'सब्ज–बाग' दिखाकर लखनऊ चले आने को फुसलाया कि 'विश्व–इतिहास की झलक' का काम समाप्त होने पर एक दैनिक पत्र निकालने की योजना है , जिसके संपादन का भार इन्हीं पर रहेगा, अतः वापस इलाहाबाद लौटने की कोई जरूरत ही इनके लिए नहीं रहेगी।

इलाहाबाद में द्विवेदी जी उस समय अत्यधिक व्यस्त थे। 'अभ्युदय' पर दिखावे के लिए संपादक के रूप में नाम यद्यपि पं0 कृष्ण कान्त मालवीय का छपता था, परन्तु उसके सम्पादकीय लेख लिखने से लेकर सारी सामग्री की पूर्ति तो करते थे (अपने एक सहयोगी के साथ) द्विवेदी जी ही। इस तथ्य को एक बार पं० कृष्ण कान्त जी ने एक सम्पादकीय लेख लिखकर स्पष्ट शब्दो में जाहिर भी कर दिया था। परन्तु उस पत्र की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ी हुई थी। नीति बहुत उग्र थी, अतः ब्रिटिश सत्ता की चपेट में आकर कब वह बन्द हो जाय, इसका कोई ठिकाना नही था। इन सब बातों को सोचकर द्विवेदी 'अभ्युदय' से त्यागपत्र देकर इलाहाबाद से लखनऊ आ गए। वह, अपनी पत्नी को भी यहीं लाकर गनेशगंज ही में एक किराये के मकान में रहने लगे। कहना न होगा कि उनके द्वारा विश्व–इतिहास की झलक के संपादन, प्रूफ–संशोधन एवं (गुप्त रूप से) अनुवाद का भी समूचा भार ग्रहण कर लेने पर इस ग्रंथ की छपाई का काम फिर पटरी पर आ गया और उसके कई भाग प्रकाशित हो गए, जिससे तिवारी जी ने चैन की साँस ली।

परन्तु आदमी सोचता क्या है और होता क्या है! इसी अनिर्दिष्ट विधान के अधीन अकस्मात् इस खासी अच्छी तरह से चल रही गाड़ी में मानो ब्रेक लग गया और सारा काम एकाएक रूककर थम गया। किस तरह दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी, उसे बता देना, विषयान्तर न होगा।

'विश्व–इतिहास की झलक' का काम इस तरह बीच में ही ठप्प हो जाने पर, द्विवेदी जी पर तो मानो गाज टूट पड़ी। वह इसी काम के भरोसे तिवारी जी के आश्वासन पर इलाहाबाद से अपना डेरा–तम्बू उठा लाए थे और अपने छोटे भाई प्रदीप को (यही टिके रहने के भरोसे पर) लखनऊ युनिवसिंटी मे भरती करा चुके थे। ऐसे में इलाहाबाद वापस लौटने का तो अब प्रश्न ही नहीं रह गया था। इस बीच तिवारी जी ने

इन्हें 'अभ्युदय' से उखाड़ ले आने की अपनी नैतिक जिम्मेदारी महसूस करते हुए इन्हें बीमा–व्यवसाय के काम में लगाने की पहल की। परन्तु किन्हीं कारणों से वह नेक कोशिश फलीभूत नहीं हो पाई। तब संयोग से एक दिन बाबू विश्वनारायण इन्हें फतहगंज के बाजार में राह चलते मिल गए और उन्होंने अपनी कतिपय General Books (जिनमें श्री भद्भागवत का हिन्दी अनुवाद, कुछ अंग्रेजी–हिन्दी के शब्दकोश आदि प्रमुख थीं।) के सम्पादन, मुद्रण आदि का दायित्व ग्रहण करने के लिए इन्हें आमन्त्रित किया। इस प्रकार, द्विवेदी जी, लखनऊ में टिके रहे और लगभग ढाई वर्ष उन्होंने 'हिन्दुस्तानी बुक डिपो' के उक्त प्रकाशनों तथा उनकी पाठ्यपुस्तकों को छपवाने में मदद देते हुए गुजारे। उनके और विशन बाबू के निकट के इस निकट के सम्पर्क की सबसे उल्लेखनीय स्मृति पं0 रूपनारायण पाण्डेय द्वारा अनूदित 'श्री भद्भागवत' के प्रकाशन के साथ जुड़ी हुई है, जिसके दौरान द्विवेदी जी लम्बे समय तक पू0 पं0 मदन मोहन मालवीय जी महाराज के साथ मसूरी, इलाहाबाद और वाराणसी में रहे तथा उन्हें रूपान्तर के अनेक अंश पढ़कर सुनाने के बाद जिसकी चरम उपलब्धि के रूप में उन्होंने महामना से उक्त ग्रंथ की 'भूमिका' प्राप्त कर ली।

बाबू बिशननारायण एवं 'हिन्दुस्तानी बुक डिपो' के साथ अपने ढाई वर्ष के सम्पर्क का अन्य कोई लाभ द्विवेदी जी को हुआ हो या न हुआ हो, परन्तु इसका इतना सुफल तो अवश्य ही हुआ कि इस प्रकार कार्यरत होकर वह लखनऊ में ही टिके रहे और न वापस ही लौटकर गए, न अन्यत्र ही जाकर जीवन–यापन का कोई दूसरा साधन उन्होंने टटोला। आखिर तो लखनऊ ही उनकी जीवन–यात्रा का अंतिम पड़ाव होने का श्रेय प्राप्त करने वाला था। तो क्या यह नियति का विधान ही नहीं था कि 'विश्व–इतिहास की झलक' का काम ठप्प हो जाने पर भी द्विवेदी जी लखनऊ में ही बने रहे? इसका श्रेय वस्तुतः बाबू बिशननारायण को ही था, जो उन्हें थामे रहे।

हिन्दी में भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप ज्ञान-विज्ञान के कोश के निर्माण की द्विवेदी जी की साध

द्विवेदी जी प्रयाग से 'अभ्युदय' का सम्पादन छोड़कर लखनऊ में जो आ बसे थे, सो इसलिए तो नहीं था कि बाबू बिशननारायण की पुस्तकों के प्रूफ देखते रहते ! वह एक साहित्यकार थे, अतः बिना किसी रचनात्मक कार्य के उन्हें क्योंकर चैन मिल सकता था? वह स्वयं बताया करते थे कि 1925–27 ई0 में जिन दिनों इन्दौर के सुप्रसिद्ध 'क्रिश्चियन कॉलेज' के विद्यार्थी वह थे, तभी उनका ध्यान 'ऑर्थर मी' के द्वारा नियोजित अंग्रेजी की विश्वविख्यात एनसाइक्लोपीडिया 'बुक ऑफ नॉलेज' के प्रति प्रगाढ़ रूप से खिंचा था। तब से उस ज्ञानकोश पर वह ऐसे रीझ गए थे कि कॉलेज की लायब्रेरी में घंटों उसके विभिन्न खंडो का पर्यावलोकन करते हुए गुजारा करते थे। जब उच्च शिक्षा के लिए वह प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए तो वहाँ की सुसम्पन्न लायब्रेरी में अंग्रजी के और भी कई एक ज्ञानकोश एवं विश्वकोश उन्हें देखने को मिले, जिनमें 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' भी थी। इन महान् ज्ञानग्रंथें के सैटो को उलटते–पलटते समय, जहाँ उनकी विषयवस्तु के विस्तार को देख–देखकर वह मंत्र मुग्ध होते, वहाँ खोजने पर उन्हें (सिवाय 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के) भारतवर्ष और उसकी हजारों वर्ष पुरानी सांस्कृतिक विरासत के बारे में इतना कम हाल मिलता कि वह झल्ला से उठते थे। उदाहरणार्थ, उनमें प्लेटो और अरिस्टाटल, कान्ट और स्पिनोजा का तो विस्तार से विवरण मिलता,

पर कपिल और कणाद, गौतम और पंतजलि, नागार्जुन और वसुबन्धु, शंकर और रामानुज का कहीं नामोल्लेख तक उपलब्ध नहीं हो पाता। इसी प्रकार से शेक्सपीयर, गेटे, दाँते, वर्जिल, होमर के परिचयार्थ तो कितने ही पन्ने भरे दिखाई देते थे, लेकिन व्यास और वाल्मीकि, कालिदास और भास, बाणभटट और भवभूति जैसे संस्कृत–वाङ्मय के प्राचीन ज्योतिर्धरो की बात तो दूर रही; रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरत. चन्द्र चटटोपाध्याय, प्रेमचन्द जैसे आधुनिक भारतीय साहित्य की अन्यतम विभूतियों तक का जिक्र कहीं ढूँढ़े नहीं मिलता था। फिर, वृक्षों में यहाँ यदि ओक (शाह–बलूत), सिडार, एल्म, ओलिव आदि छाये हुए थे, तो नीम, पीपल, इमली. मोलसिरी (बकुल), पलाश आदि का कहीं अता–पता भी नहीं था। भला, ऐस ज्ञानग्रंथ एक भारतवासी की ज्ञानपिपासा की यथेष्ट पूर्ति एवं उसके अपनी धरती तथा संस्कृति की जानकारी पाने में क्योंकर मददगार हो सकते थे?

पाश्चात्य ज्ञानकोशों की इस जबर्दस्त कमी और पक्षपातपूर्ण एकांगीपन से तिलमिलाकर युवा कृष्णवल्लभ के मन में रह–रहकर यह हूक उठा करती थी कि काश कोई क्षमतावान लेखक, प्रकाशक और संयोजक ऐसा होता, जो कि सामने आकर एक ऐसे ज्ञानकोश की रचना करके जन–जन के हाथों में इसे पहुँचाने का बीड़ा उठाता, जो कि हमारे देश की आवश्यकताओं की संपूर्ति करने की योग्यता रखता। और, जब प्रारब्धवश, द्विवेदी स्वयं एक लेखक और सम्पादक के रूप में पत्रकारिता के प्रांगण में उतरे, तब तो अपनी साहित्यिक साधना की अन्य अनेक भावी योजनाओं के साथ–साथ उन्होंने उक्त आदर्श के अनुरूप एक विराट् ज्ञान–विज्ञान के कोश का भी खाका मन ही मन तैयार कर लिया और उस ज्ञानानुष्ठान के मंत्रो को समाहित करते हुए उसे यजेता की उत्कंठापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

द्विवेदी जी 'विश्व इतिहास की झलक' का काम ठप्प हो जाने पर, 'हिन्दोस्तानी बुक डिपो' की श्री भद्भागवत आदि General Books के मुद्रण–कार्य का दायित्व ग्रहण कर लखनऊ में ही टिके रहे थे। चूँकि 'हिन्दुस्तानी बुक डिपो' का कार्यालय भी उसी भवन में था, जिसमें अवध प्रिंटिंग प्रेस अवस्थित था, अतः अपने काम के सिलसिले में द्विवेदी जी नित यहाँ आते। उन दिनों बाबू बिशननारायण की छपाई इसी प्रेस में होने के फलस्वरूप राजेश्वर बाबू के साथ उनका परिचय हो जाना एक स्वाभाविक बात थी। द्विवेदी जी की यह आदत थी कि जब भी वह काम से फुर्सत पाते, प्रायः राजेश्वर बाबू के उस बरामदे से लगे हुए सामने वाले कमरे मे अन्य लोगों की तरह उसी विशालकाय मेज के समक्ष आ बैठते थे। जब दो व्यक्ति नित ही एक मेज पर आपने–सामने बैठते हो तो वे परस्पर वार्तालाप किए बिना क्यों कर रह सकते थे? यद्यपि बाबू राजराजेश्वरप्रसाद जन्म से ही कुछ रिजर्व्ड प्रकृति के और कम बोलनेवाले व्यक्ति रहे हैं, पर वाक्पटु द्विवेदी जी को उनके मौन के कपाट खुलवाने में अधिक समय नहीं लगा और धीरे–धीरे उनमें घुल मिलकर बातचीत होने लगी।

इसी दौर में एक रोज श्री राजेश्वर प्रसाद बात ही बात में द्विवेदी जी से कह बैठे कि 'मेरे पास बीच–पचीस हजार रूपया उपलब्ध है और मै उसे किसी अच्छे–से हिन्दी–प्रकाशन में लगाना चाहता हूँ। क्या आप कोई ऐसा प्रकाशन सुझा सकते है?'' द्विवेदी जी ने कहा कि ''स्कीम तो मेरे पास एक बहुत ही अनूठी तथा निश्चित रूप से सफल होने वाले प्रकाशन की मौजूद हैं परन्तु उसमें दो–ढाई लाख रूपये से

कम खर्च नही होगा। आप क्या इतने रूपये की व्यवस्था कर सकते है?" जब राजेश्वर जी ने उक्त योजना की कुछ जानकारी चाही और द्विवेदी जी ने अपने मन में बसे हुए 'बुक आफ नॉलेज' की कोटि के हिन्दी ज्ञानकोश की कुछ कैफियत बताई, तो हमारे चरितनायक का चेहरा उल्लास से दमक उठा। वह हिन्दी में अपनी ढंग के इस नायाब प्रकाशन की मौलिकता और उसकी सुनिश्चित सफलता को लेकर ज्यों–ज्यों विचार करते, उसका अंतस्तल यही आवाज उठाता कि इसी की तो तलाश थी–इसी की तो प्रतीक्षा में वह थे। भला, कैसे अचंभे की बात थी कि इनके पूज्य पिताजी ने इनके शैशवकाल में ही 'बुक ऑफ नॉलेज' तथा 'हार्म्स–वर्थेस् पापुलर सायन्स' जैसे ऐसे ही अंग्रेजी प्रकाशनों की खरीद कर अपनी घरेलू लायब्रेरी को सम्पन्न किया था। क्या इसमें भी कोई गुह्य दैवी संकेत इस बात को टकोरता हुआ निहित था कि अपने जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य इन्हें यही करना था कि इसी प्रकार का एक ज्ञान–विज्ञान का कोश कभी हिन्दी में निकालें ?

कहना न होगा कि इस प्रस्ताव को लेकर राजराजेश्वर प्रसाद के पैर जहाँ के तहाँ ठिठके नहीं रहे और शीघ्र ही वह दिन भी आ गया, जबकि उन्होंने यह दृढ संकल्प कर लिया कि इस प्रकाशन योजना का बीड़ा उठाकर ही वह रहेंगे। तब द्विवेदी जी इसकी विधिवत् योजना उन्होंने तैयार कराई और उसका एक खाका–सा संक्षेप में छपवाया, जिसे अपने बड़े भ्राता रघुबरदयाली जी को गुड़गाँव जाकर दिखाया तथा अगले कदम के लिए उनसे गंभीरतापूर्वक विचार–विमर्श किया। तय यह हुआ कि चूँकि ग्रन्थ वहुत बड़ा–लगभग 6000 पृष्ठों का होगा, और उसकी सम्पूर्ण पांडुलिपि एक बार में उपलब्ध होना मुमकिन न होगा, अतः उसे कई भागों में क्रमशः धारावाहिक रूप में निकाला जाय। ऐसा करने से आरम्भ ही में बहुत बड़ी रकम लेकर काम में हाथ डालने की अनिवार्यता न रहेगी। जैसे–जैसे भाग निकलते जाएँगे, उन्हें बाजार में लाकर कुछ रकम अर्जित की जा सकेगी। कोशिश यह भी की जाएगी कि ग्रन्थ के अधिक स्थायी ग्राहक बना लिए जाएँ तथा उनसे अग्रिम शुल्क प्राप्त करके पूंजी की कमी की पूर्ति कर ली जाय। इसके अलावा यह भी तय हुआ कि चूँकि अनुष्ठान बहुत ही बड़ी लागत का है और अकेले किसी के बूते का काम नही हैं कि उसका संपूर्ण भार उठा लें, अतः इस प्रकाशन के लिए एक लिमिटेड कम्पनी का गठन किया जाय, ताकि पूंजी को अन्य सम्पन्न जनों के सहयोग से बढ़ाया जा सके और आर्थिक कठिनाई का सामना न करना पड़े।

इस प्रकार 'एजूकेशनल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड' के नाम से उस प्रकाशन संस्थान का निर्माण हुआ, जिसके झंडे के नीचे ज्ञान–विज्ञान के उस कोश के प्रकाशन का अपना संकल्प कार्यान्वित करने का आयोजन हुआ जिसका कि खाका द्विवेदी जी ने इस समय तक तैयार कर लिया था। चूँकि बाबू रघुबर दयाल जी के सुझाव पर इस लिमिटेड कम्पनी का रजिस्टर्ड ऑफिस गुड़गाँव में ही रखा गया था, अतएव उसका रजिस्ट्रेशन (पंजीकरण) लाहौर में कराना पड़ा था। पर सारा कारोबार तो लखनऊ में ही होने को था। अतः ग्रन्थ पर प्रकाशक 'एजूकेशनल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड' का पता चारबाग, लखनऊ ही देना तय हुआ। वहीं कार्यालय के लिए किराए पर एक मकान भी ले लिया गया, जिसमें राजेश्वर बाबू सपरिवार रहने भी लगे।

परन्तु इस नवनिर्मित कम्पनी उसके लिए उतनी पूँजी कभी भी नहीं जुटा पाई, जितनी कि आशा हमारे चरितनायक और उनके ज्येष्ठ भ्राता को थी। यद्यपि

कुछ शेयर अवश्य बिके और कुछ के आश्वासन भी प्राप्त हुए, परन्तु स्थिति कभी भी दृढ़ नहीं हो सकी। फलतः प्रारभ ही से तंगदस्ती का सामना करना पड़ा और यद्यपि शुरू के कुछ कदम बड़ी मुस्तैदी से आगे बढ़ाए गए, पर थोड़ी समय बाद ही अंततः उसी राह को इन्हें भी अपनाना पड़ा, जो कि ऐसे कठिन समय में हर व्यवसायी को अपनाना पड़ता हैं– अर्थात् इन्हें कर्ज लेकर काम चलाने को विवश हो जाना पड़ा। यह कर्ज का शिंकजा एक ऐसी जकड़ का पाश इनके लिए आगामी कई दशकों तक बना रहा कि ठेठ 'हिन्दी विश्व–भारती' के 'जन–संस्करण' के प्रादुर्भाव की घड़ी तक वह उसी के फंदे में फँसे रहे और उससे उनकी प्रकाशन की गतिविधि निरन्तर आक्रान्त रही। आखिरकार एक दिन ऐसा भी आया जबकि 'एजूकेशनल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड' को समेटकर उसका झंडा उन्हें उतार लेना पड़ा और बाद का सारा व्यवसाय 'हिन्दी विश्व–कार्यालय' के नाम से अपनी निजी पताका के अधीन ही उन्होंने किया। हाँ, प्रारम्भ के कुछ वर्षों तक वह उक्त लिमिटेड कम्पनी का नाम अपने प्रकाशनों के साथ अवश्य संलग्न किए रहे और 'हिन्दी–विश्व भारती' के फुटकर प्रकाशित अंको पर वह नाम प्रकाशक के तौर पर विधिवत् मुद्रित होता रहा।

दृढसंकल्पी राजराजेश्वर प्रसाद ने एक बार इस साहसपूर्ण अनुष्ठान का बीड़ा उठा लिया, तो उन्होंने उसका कार्यारम्भ करने में विलम्ब नहीं किया और शीघ्र ही वे प्रारम्भिक कदम उठाए, जो कि एक मँजे हुए मुद्रक के नाते उन्हें सर्वाधिक महत्वपूर्ण जान पड़े। ये कदम एक तो ग्रन्थ के लिए उपयुक्त कागज के चुनाव तथा उसकी समय पर आपूर्ति का पक्का प्रबन्ध करने के विषय में थे। दूसरे, चूँकि समूचा प्रकाशन सचित्र होने को था, अतः इस बात को लेकर भी उन्हें कदम उठाना था कि चित्रों के ब्लॉक सही और ऊँचे दर्जे के बनें एवं उनकी लागत भी अधिक न हो। उन दिनों उम्दा कागज एवं ब्लॉक मेकिंग का देश का सर्वाधिक प्रतिष्ठित केन्द्र कलकत्ता था। उस नगर से हमारे चरितनायक बखूबी परिचित थे और वहाँ अपने घनिष्ट सजातीय बन्धु बाबू अयोध्याप्रसाद भार्गव से (जो कि चौरंगी पर स्थित एक प्रख्यात फोटोटाइप कम्पनी के मालिक थे) उनका बड़ा सद्भावपूर्ण सम्बन्ध पहले से विद्यमान था। अतः दोनों भाई अपनी कागज की समस्या हल करने के लिए शीघ्र ही कलकत्ता पहुँचे। बाबू अयोध्याप्रसाद के सौजन्य से, उन्हें कलकत्ता के मार्केट में बढ़िया से बढ़िया विलायती 'वुडफ्री प्रिंटिंग पेपर' तथा उसी की टक्कर के असली विदेशी 'आर्ट पेपर' की सप्लाई का आर्डर 'जी. लोचन एण्ड कं.' नामक एक जर्मन फर्म को देकर विभिन्न किस्तों में उसकी आपूर्ति करने की व्यवस्था करने में कोई श्रम नहीं करना पड़ा। उधर हर प्रकार के (बहुरंगे, इकरंगे और हॉफटोन) ब्लॉकों को बनाने का उत्तमोत्तम साधन तो स्वयं उनकी फोटोटाइप कम्पनी में ही उपलब्ध था, अतः इस विषय में चिन्तित होने की कोई जरूरत ही नहीं थी। इस कलकत्ता यात्रा के दौरान एक अति महत्वपूर्ण कार्य दोनों बन्धुओं ने यह किया कि उन्होंने कई नई और पुरानी ज्ञान–विज्ञान–विषयक पुस्तकें खरीदी और उन्हें अपने साथ लखनऊ ले आकर द्विवेदी जी की मदद के लिए एक छोटा–सा संदर्भ–पुस्तकालय 'एजूकेशनल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड' के कार्यालय में स्थापित कर दिया, जो कि आगे चलकर प्रस्तावित ज्ञानकोश के निर्माण में बड़ा मददगार साबित हुआ। परन्तु जो पुस्तकें ये लोग अपनी सूझ–बूझ के अनुसार ले आए थे, उनमें से कुछ तो बड़े काम की थी और अन्य (विशेषकर चित्रों के संयोजन की दृष्टि से) कोई योग नहीं प्रदान कर सकती थी। फलतः हमारे चरितनायक ने पुनः स्वयं द्विवेदी जी को साथ लेकर कलकत्ते का एक चक्कर लगाया और इस बार कई काम के

नए–पुराने ग्रन्थों के अलावा वहाँ के सुविख्यात 'न्यू मार्केट' से अंग्रेजी की (नेशनल ज्याग्राफिक मैगेजिन, रेल्वे मैगेजिन आदि जैसी) पत्रिकाओं की सैकड़ों पुरानी प्रतियाँ छाँटकर लाई गई, जिनसे अनेक विषयों चित्र–फोटोग्राफ आदि जुटाने में बड़ी सहायता मिली।

इधर द्विवेदी जी ने प्रस्तावित ज्ञानकोश के लिए जो विभाग और स्तम्भ निर्धारित किए थे उनके डिजाइन आर्टिस्टों से बनवाना शुरू किया ,साथ ही उनके विषयों की पठन–सामग्री की पूर्ति करने वाले लेखकों की खोज में भी वह जुट गए। अपने इस प्रकाशनानुष्ठान का शुभारम्भ करते समय प्रकाशक राजेश्वर बाबू एवं ग्रन्थ–सम्पादक द्विवेदी जी ने क्या लेख–सामग्री, क्या चित्र और डिजाइन, क्या मुद्रण और क्या रूप–रंग (गेट–अप) आदि सभी बातों में जो ऊँचा मानदण्ड (स्टैण्डर्ड) अपनाया, उसका स्तर उन्होने अंत तक नीचा न होने दिया। केवल कागज के मामले में ही आगे चलकर विलायती कागज के ऊँचे स्तर से हाथ धोकर देशी कागज को काम मे लेने के लिए अनिच्छापूर्वक समझौता करना पड़ा। परन्तु (जैसा कि आगे के प्रकरणों में इंगित किया गया है) यह एक मजबूरी का कदम था– चूँकि 'सिर मुड़ाते ही ओले पड़े' कहावत को चरितार्थ करते हुए, ग्रन्थ के लिए निर्धारित विलायती कागज की दो–एक खेप प्राप्त कागज एक जर्मन फर्म के मार्फत लेने के फलस्वरूप (उक्त फर्म के शत्रुपक्ष के कारोबार के घेरे में चले जाने के कारण) आगे उस कागज की आपूर्ति सर्वथा बंद हो चुकी थी।

जो भी हो, क्या उसके शुरू के भागों की साज–सज्जा में और क्या उसके अनूठे 'विज्ञप्ति पत्र' की धज में 'हिन्दी विश्व–भारती' में यह अद्वितीय सुषमा मुखरित हुई थी कि हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र के लिए वह एक युगान्तकारी घटना–सी जान पड़ी थी। इसका बहुत–कुछ श्रेय हमारे चरितनायक की मुद्रण प्रतिभा और 'अवध प्रिंटिंग वर्क्स' की मदद को ही हमें देना होगा, जिनके बिना यह उपलब्धि संभव नहीं थी।

दोनों द्विवेदी जी की ही देन हैं। जब ग्रन्थ के नामकरण का प्रश्न सामने आया तो उन्होंने कई नाम सुझाए, जिनमें से एक था 'विश्व–भारती'। यह नाम सबको बड़ा पसंद आया। इसके साथ 'हिन्दी' शब्द इसलिए जोड़ना आवश्यक प्रतीत हुआ कि 'विश्व–भारती' के नाम से कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'शान्ति निकेतन' से एक अंग्रेजी पत्रिका निकलती थी। उसमें भ्रम न हो, इसीलिए इस प्रस्तावित ज्ञानग्रंथ का नाम 'हिन्दी विश्व–भारती' रखना तय हुआ।[1]

उधर ग्रंथ के अद्भुत आवरण चित्र का निर्माण द्विवेदी जी ने (विज्ञान की एक पुस्तक में मुखचित्र के रूप में दिए गए इसी से मिलती–जुलती एक तस्वीर से प्रेरणा ग्रहण करके) अपने आर्टिस्ट (श्री टी0 के0 मित्र) से कराया था। इसमें नारी–मूर्ति 'भारती' की प्रतीक है और भाव यह है कि मानव द्वारा निर्मित सम्पूर्ण वैज्ञानिक सृष्टि इसी ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के अवलंब से खड़ी की गई है।

---

1. इस नाम की उपयुक्तता पर आगे चलकर भारत–सरकार द्वारा प्रकाशित 'भाषा' पत्रिका में एक लेखक ने 'मानव सभ्यता में विश्वकोशों की परंपरा' शीर्षक लेख मे निम्न शब्द अंकित किए थे– 'एनसाइक्लोपीडिया' का अक्षरशः हिन्दी रूपान्तर 'ज्ञानमंडल' होगा, जिसे एक उड़िया के 'एनसाइक्लोपीडिया' ने ग्रहण भी किया हैं। यों अब 'विश्वकोश' शब्द चल निकला है, यद्यपि हिन्दी मे एक बड़ा ही सुन्दर शब्द 'विश्व–भारती' अरसा हुआ आया था, जब 'हिन्दी विश्व–भारती' नाम से कई जिल्दों में एक 'एनसाइक्लोपीडिया' श्री कृष्णवल्लभ द्विवेदी के सम्पादन मे निकला था।'

"हिन्दी विश्व–भारती" का सितारा जिन दिनों अपनी पूरी चमक–दमक के साथ दीप्तिमान हो रहा था, उन्हीं दिनों एक अति महत्वपूर्ण कृति की सर्जना इनके द्वारा हुई। यह मौलिक कृति "भारत–निर्माता" के नाम से मुखर हुई। यद्यपि यह कृति भारतीय इतिहास के प्रभातयुग वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के हमारे धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, राजनीति आदि सभी अंगो की महानतम् विभूतियों की एक ही मणिमाला में पिरोये गए चरित्रों की शब्दचित्रावली थी, तथापि उन भावनापरक जीवनियों को संस्कृति और राष्ट्रीयता का एक अटूट अनवरत सूत्र, समन्वय और समरसता के स्वर्णधागे मे इस प्रकार एकीकृत किए हुए कि यह ग्रंथ हमारी मातृभूमि की आत्मकथा का गौरव ग्रन्थ कहा जा सकता था। इसकी सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता एक तो उसकी गद्यकाव्य की–सी प्रेरक ओजस्वी भाषा और हृदय झनझना देने वाली शैली थी। दूसरी महिमा थी विशेष रूप से जाने–माने कलाकारों द्वारा निर्मित कराए गए वे अनूठे रेखाचित्र, जैसे कि अन्य किसी भी हिन्दी ग्रंथ में अभी तक देखने को मिल ही नहीं सकते थे। फलतः यह ग्रन्थ चहुँ ओर प्रशंसा, सराहना और मुग्धता की तरंगो से पगोया जाकर कृष्ण वल्लभ द्विवेदी के यश का कीर्तिकलश बन गया और धड़ाघड़ विक्रय को लेकर उसकी कई आवृत्तियाँ मुद्रित हुई।

उधर, जब "हिन्दी विश्व–भारती" की प्रकाशन की लौ के मंद पड़ जाने पर, कृष्ण वल्लभ द्विवेदी के लिए अकेले उसी पर निर्भर करते हुए जीवन–यापन कठिन हो गया, तो उन्होंने अन्य प्रकाशनों के सृजन में हाथ बढ़ाया। सबसे पहले "साहित्य सुधा" नामक एक हिन्दी पाठ्यपुस्तक रची, जो स्कूलों की छठीं और सातवीं कक्षाओं के लिए यू. पी. के शिक्षा–विभाग द्वारा स्वीकृत होकर सात वर्षों तक पढ़ाई गई। तदन्तर "ज्ञानलोक" के नाम से एक अन्य कृति, किशोर अवस्था के बाल–बालिकाओं को विज्ञान की जानकारी कराने के लिए लिखी। इस सर्वथा मौलिक प्रस्तुति में कृष्ण वल्लभ द्विवेदी बीस भागों मे सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान–राशि को एक बाल–विश्वकोश के रूप मे हिन्दी की वेदी पर अर्पित करना चाहते थे। पर प्रकाशक उसके केवल चार भाग ही निकालकर थंम गए। किन्तु जो चार भाग सामने आए, वे भी क्या अपनी लेखन–शैली क्या दो रंगो में मुद्रित विशेष रूप से निर्मित सैकड़ों रेखाचित्रों और ज्ञान–विज्ञान कीं नवनीततुल्य पठन–सामग्री के नाते, अद्वितीय–अपूर्व–बेजोड़ सिद्ध हुए। इस ग्रन्थमाला में कई संस्करण हुए और उसने लेखक को अपने आर्थिक संकट के दिनों में बड़ा सहारा दिया।

1964 ई. में भारत–सरकार द्वारा सहायता प्राप्त "हिन्दी विश्व–भारती" के बहुखंडी संस्करण के प्रकाशन के समापन के साथ कृष्ण वल्लभ द्विवेदी की जीवन–यात्रा ने पुनः नया मोड़ लिया। अब उनकी जिन्दगी का अवकाश का प्रहर उद्घाटित हो चुका था। उन्हे अब "हिन्दी विश्व–भारती" से सदा के लिए छुटटी मिल चुकी थी। 1954 मे पत्नी का देहान्त हो चुका था। अतः पारिवारिक स्तर पर वह एक प्रकार के वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर चुके थे।

परन्तु एक जन्मजात सरस्वती–उपासक होने के नाते कृष्ण वल्लभ द्विवेदी की लेखनी ने अभी विश्राम नहीं लिया। इसी अवकाशकाल में उन्होंने "हिन्दू–धर्म", "जीवन–डगर", "प्रकाशक की जीवन–यात्रा", "ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरण" आदि कई मार्के की कृतियाँ रची हैं। आयु के स्तर पर अब वह 88 वें वर्ष में हैं। 1996 में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने 'साहित्य भूषण' पुरस्कार से सम्मानित किया हैं।

आपका वर्तमान पता है–

मनु निकुंज, सी-45 (ए) निराला नगर लखनऊ-20

■■■■■

'हिन्दी विश्व-भारती' का ज्ञानयज्ञ

(संकलित - 'कहानी एक प्रकाशन की' से साभार)

आज तो 'हिन्दी विश्व–भारती' ज्ञानकोश का नाम एक जाना–पहचाना नाम बन चुका हैं। कारण, देश के प्रायः सभी हिन्दी–भाषी क्षेत्रों के विद्यासंस्थानों के पुस्तकालयों तथा सार्वजनिक लायब्रेरियों मे यह ग्रन्थ देखने को मिल सकता हैं। यही नहीं, अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के पुस्तकालयों की ग्रन्थ–सूची में भी इस प्रकाशन का नामोल्लेख कोई अनहोनी बात नहीं है। और तो और, विदेशों में भी, विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका की अनेक बड़ी युनिवर्सिटियों की लायब्रेरियों तथा वाशिंगटन की विश्वविख्यात कांग्रेस–लायब्रेरी में भी इस हिन्दी–प्रकाशन के सैट विद्यमान है तथा सोवियत रूस के भी किसी केन्द्रीय ग्रंथ–संग्रहालय में यदि इसके आरम्भिक संस्करण के कुछ खंड अभी भी सँजोकर रखे हुए हों तो यह कोई आश्चर्य की बात नही हैं।

परन्तु कितने लोगों को यह पता होगा कि परवर्ती दिनों मे अद्वितीय प्रतिष्ठा और ख्याति प्राप्त करने वाले, हजारों पृष्ठों के कलेवर में निबद्ध इस अनूठे ज्ञान–विज्ञान–कोश की मूर्त रूप प्रदान करने में उसकी निर्माताओं को क्या कुछ परिश्रम करना पड़ा था तथा उसकी भव्य इमारत को खड़ा करते समय मानो उसकी एक एक ईंट चुनने के कठोर परिश्रम में किस प्रकार अपने आपको खपाना पड़ा था? इस सम्बन्धी गाथा वस्तुतः इतनी लम्बी है कि उसका ब्योरेवार विवरण प्रसतुत करने के लिए तो अलग से पूरी एक स्वतन्त्र पुस्तक रची जाय तभी उसके साथ न्याय हो सकता हैं।

इस उद्देश्य की पूर्ति में, अपने जन्म के लगभग बीस वर्ष बाद (भारत सरकार के अनुदान से प्रकाशित) 'हिन्दी विश्व–भारती' के प्रख्यात जन–संस्करण का 'प्रकाशकीय वक्तव्य' जिसमें ग्रंथ के प्रकाशक ने चुने हुए शब्दों में उसकी मानो सारी जन्म–पत्री ही पेश कर दी है हमें सबसे सार्थक रूप से सहायक प्रतीत होता हैं। अतः हम उसे अवकिल यहाँ उद्धृत कर रहे है–

"आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व, जबकि हिन्दी में उत्तम वैज्ञानिक साहित्य का नितान्त अभाव था, राष्ट्र के उत्थान के लिए तत्सम्बन्धी आवश्यकता का अनुभव करके हमने एक बिलकुल ही अछूते पड़े हुए नए निराले अनुष्ठान का बीडा उठाने का साहस किया था।

हमारी साध थी अपनी ही बोली में अपने ही विद्वानों द्वारा सर्वसाधारण के लिए उच्चकोटि की ज्ञानवर्द्धक एवं लोकरंजन सामग्री की पूर्ति करना, और उसके प्रथम चरण के रूप में ज्ञान–विज्ञान के मुख्य–मुख्य विषयों की प्रामाणिक पठन–सामग्री से युक्त एक विशाल ज्ञानकोश का निर्माण करने के भगीरथ कार्य में हम प्रवृत्त हुए थे।

इस प्रकार 'हिन्दी विश्व–भारती' का जन्म हुआ था। निस्सन्देह, यह घटना विजन में राह खोजते हुए उन दिनों के हिन्दी के प्रकाशन क्षेत्र के लिए एक युगान्तरकारी घटना थी।

किन्तु इस अनुष्ठान के आयोज़न में हमारा अपना योग तो केवल उसकी अर्थ–व्यवस्था, मुद्रण–प्रबन्ध, प्रचार, आदि इन बाह्य या ऊपरी कर्तव्यों ही तक परिमित था, जो कि एक प्रकाकक के दायित्वों की परिधि में आते हैं। वस्तुतः उसके प्राण–प्रतिष्ठापक तो थे इस ग्रन्थ के मूल नियोजक और उसके आद्य तथा वर्तमान संपादक, श्री कृष्णवल्लभ द्विवेदी, जिनकी कल्पना और योजना का ही मूर्त प्रतिरूप यह अपूर्व साहित्यिक अनुष्ठान था।

हमारे मन में कोई नई निराली कृति लेकर हिन्दी के प्रकाशन–क्षेत्र में उतरने के लिए उमंगे तो पहले ही से हिलोरे ले रही थीं। अब द्विवेदी जी ने निकट संपर्क मे आने पर हमारी उन भावनाओं को अनायास ही विशेष बल मिल गया। स्वतः द्विवेदी जी भी हमारी तरह एक विशिष्ट स्वप्न एक युग से अपने मन में बसाए हुए थे। वह 'बुक ऑफ नालेज' आदि प्रख्यात अंग्रेजी प्रकाशनों की कौटि का ज्ञान–विज्ञान का एक वृहत कोश राष्ट्रवाणी हिन्दी में तैयार करने की योजना वर्षों से मन ही मन बुनते रहे थे। बात ही बात मे एक दिन जब उन्होंने अपनी उक्त योजना की रूपरेखा का परिचय हमें कराया, तो हमें ऐसा लगा मानो वह मनचाही वस्तु अप्रयास ही हमारे हाथ लग गई, जिसकी कि तलाश में हमें अब तक यहाँ से वहाँ टटोलते फिर रहे थे। इस प्रकार अगस्त 1939 में 'हिन्दी विश्व–भारती' का आविर्भाव हुआ।

चूँकि ग्रन्थ बहुत बड़ा था और उनमें समाविष्ट विषयों के विवेचन के लिए अनेक विद्वानों का सहयोग अपेक्षित था, अतः सुविधा की दृष्टि से अनेक स्तम्भों और विभागों मे बांटकर धारावाही रूप में 50 भागों में उसे निकालने की योजना बनाई गई थी। ये वे दिन थे, जबकि लोकरंजक शैली में वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लिखने वाले ढूँढ़े नहीं मिलते थे। सर्वत्र अंग्रेजी का ही बोलबाला था और विज्ञान के कई अंगों पर तो उस समय तक किसी ने हिन्दी मे कलम ही नहीं उठाई थी। परन्तु द्विवेदी जी इन सब बाधाओं से हिम्मत हारने वाले व्यक्ति न थे। उन्होंने पहले तो ग्रंथ की संपूर्ण योजना का एक खाका सा बनाया और तब पठन–सामग्री की पूर्ति की क्षमता रखने वाले विद्वानों की खोज में वह निकल पड़े। इसके लिए लखनऊ, प्रयाग, वाराणसी, आदि प्रमुख विद्याकेन्द्रों को उन्होंने टटोलना शुरू किया और हम दंग रह गए, जबकि कुछ ही महीनों में ग्रंथ के प्रत्येक स्तम्भ के लिए उपयुक्त लेखक की व्यवस्था उन्होंने कर ली और बहुतेरे लेख तक जुटा लिए।

'हिन्दी विश्व–भारती' के इस गौरवशाली लेखक–मंडल में सबसे पहले प्रयाग–विश्वविद्यालय के गणित–विभाग के आचार्य एवं हिन्दी–जगत् मे वैज्ञानिक ज्योतिष–सम्बन्धी साहित्य के अग्रदूत, डॉ0 गोरखप्रसाद का सहयोग प्राप्त करने का सौभाग्य हमें मिला। तदुपरान्त उक्त विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के आचार्य डॉ0 राम प्रसाद त्रिपाठी (जो बाद में सागर–विश्वविद्यालय के उपकुलपति के पद पर प्रतिष्ठित हुए) इस अनुष्ठान मे सक्रिय योग देने के लिए सहमत हुए। इसी प्रकार लखनऊ–विश्वविद्यालय के समाज–विज्ञान–विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष एवं बाद को उसके उपकुलपति का आसन ग्रहण करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ0 राधाकमल मुकुर्जी, उसी विश्वविद्यालय के नृतत्व–विज्ञान–विभाग के डॉ0 डी0 एन0 मजूमदार और वनस्पति–विज्ञान–

विभाग के डॉ0 शिवकंठ पांडे जैसे विद्वानों ने भी सहर्ष इस कार्य में सहयोग देने का हाथ बढ़ाया।

उधर हिन्दी–संसार के ख्यातानामा साहित्यसेवी डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल (जो इन दिनों राजकीय पुरातत्व विभाग मे पदाधिकारी थे), भारतीय कला–जगत् में सुप्रतिष्ठित श्री वीरेश्वर सेन (जो इस समय लखनऊ के राजकीय कला–विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे), प्रयाग–विश्वविद्यालय के जीवविज्ञान–विभाग के भू0 प्राध्यापक श्री श्री चरण वर्मा, कान्यकुब्ज कॉलेज, लखनऊ के वर्तमान प्रधानाचार्य श्री मदन गोपाल मिश्र, श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव (प्राध्यापक, भौतिक विज्ञान, धर्म–समाज कॉलेज, अलीगढ़), श्री रामनारायण कपूर (जो बाद में टैरिफ बोर्ड के सलाहाकार नियुक्त हुए), श्री सीतलाप्रसाद सक्सेना (भू0 प्राध्यापक, लखनऊ–विश्वविद्यालय), श्री ब्रजमोहन तिवारी (भू0 प्राध्यापक, कान्यकुब्ज कॉलेज, लखनऊ), श्री श्याम सुन्दर द्विवेदी (सिविल जज, मध्य प्रदेश), डॉ0 सत्यनारायण (प्रसिद्ध पत्रकार, और पर्यटक तथा भूतपूर्व संसद–सदस्य), डॉ0 भगवत शरण उपाध्याय (प्रख्यात लेखक) आदि–आदि गणमान्य महानुभावों ने भी हिन्दी संसार के इस वृहत् ज्ञान–यज्ञ को सफल बनाने में हमारा हाथ बँटाया।

'हिन्दी विश्व–भारती' के पुरानें पाठकों को कदाचित् यह याद होगा कि इस प्रकाशन के आरम्भ के दिनों में उसके कुछ भागों पर द्विवेदी जी के साथ–साथ प्रधान संपादक के रूप में पं0 श्री नारायण जी चतुर्वेदी का भी नाम दिया जाता रहा था, जो उन दिनो उत्तर प्रदेश के शिक्षा प्रसार अधिकारी थे। यह केवल इस लिए हुआ था कि मूलतः शिक्षा–सम्बन्धी पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशक होने के नाते हमने स्वभावतः यह अनुभव किया था कि कदाचित् शिक्षा के क्षेत्र के किसी राजकीय अधिकारी का नाम इस प्रकाशन से सम्बद्ध होने से उसके प्रचार में सहायता मिलेगी। वैसे चतुर्वेदी भी हिन्दी के एक सच्चे हितैषी और विद्वान् तथा अनुभवी लेखक थे और उनसे इस प्रकाशन मे हमें पर्याप्त पथ–निदर्शन प्राप्त हो सकता था। परन्तु कदाचित् अवकाश की कमी एवं अधिकतर लखनऊ से बाहर ही रहने के कारण हमें जैसी आशा थी वैसा सहयोग उनसे प्राप्त न हो सका। फिर भी सौजन्यता के नाते हम उनका नाम बहुत दिनों तक ग्रन्थों के फुटकर भागों पर देते रहे। अन्त में इस क्रम को सदा के लिए बनाए रखना अनुचित समझकर अपने उनका नाम ग्रंथ से हटा दिया। तब से अब तक केवल द्विवेदी जी ही का नाम संपादक के रूप में दिया जाता रहा हैं।

यद्यपि हमारे साधन बहुत ही सीमित थे और कार्य भगीरथ था, तथापि क्या बाह्य रूप–रंग और क्या अंतरंग सामग्री दोनों ही कसौटी पर 'हिन्दी विश्व–भारती' ऐसी खरी उतरी थी और इस प्रकार जनहृदय में पैठने में समर्थ हुई थी कि अपने जन्मकाल के कुछ मास के भीतर ही उसका नाम घर–घर की वस्तु बन गया था। न केवल सर्वसाधारण पाठकों ने ही भूरि–भूरि उसे सराहा था, प्रत्युत राष्ट्रनायक पं0 जवाहरलाल जी नेहरू, डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, श्री संपूर्णानन्दजी, श्री श्री कृष्णसिंह, डॉ, अमरनाथ झा, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, श्री कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी, आदि महान् लोकनायकों और प्रकाण्ड शिक्षाशास्त्रियों ने भी मुक्त कण्ठ से उसे आशीर्वाद दिया था।

परन्तु जहाँ यह कृति अपनी उस अल्पावस्था ही में सबकी स्नेहभाजन बनने में अभूतपूर्व रूप से सफल हुई थी, वहाँ उसकी जन्मकुंडली मे आरम्भ ही से कुछ कुग्रह भी बैठे हुए थे। उदाहरणार्थ, अगस्त

1939 में इधर तो धारावाही रूप से प्रकाशित हो रहे इस ग्रन्थ का प्रथम भाग छपकर बाहर निकला था और उधर महीने भर बाद ही हिटलर द्वारा द्वितीय महायुद्ध की बिगुल बजा दी गई थी।

इस कुचक्र का इस ग्रन्थ के प्रकाशन पर अत्यन्त कुटिल प्रभाव पड़ा। कारण, इसका कागज विशेष रूप से जर्मन में तैयार कराने की पूर्व–व्यवस्था की गई थी, जहाँ से कोई भी सामग्री आना अनिश्चित काल के लिए उन दिनों बन्द हो गया था। इसके बाद तो ज्यों–ज्यों युद्ध के प्रभाव से महँगाई का पारा ऊँचा चढ़ता गया, त्यों–त्यों इस प्रकाशन के लागत की डोर भी उत्तरोत्तर तनती ही चली गई। इसका परिणाम यह हुआ कि लाख चाहने पर भी हम उसका कार्य आगें न बढ़ा पाए। हमने ज्यों–त्यों करके उसके लगभग सवा तीन हजार पृष्ठ तो प्रकाशित कर दिए, परन्तु परिस्थितियों के दबाव से आखिर हमें अपने कार्य में बीच में ही रुक जाना पड़ा।

हमारी मुख्य समस्या थी पुस्तक की निरन्तर बढ़ती हुई लागत, जिसे कम करना हमारे बस की बात नहीं रह गई थी। यदि हम चाहते तो घटिया सामग्री का उपयोग करके और चित्रों आदि में अत्यधिक कटौती करके अपनी इस समस्या का कुछ हल निकाल सकते थे, परन्तु ग्रन्थ का स्तर नीचे उतारना हमें किसी भी दशा मे अभीष्ट न था। ऐसी स्थिति में हमारे लिए एकमात्र चारा यही रह गया था कि प्रकाशन को रोककर अधिक अनुकूल परिस्थितियों की प्रतीक्षा करें।

इस बीच यद्यपि देश में स्वतंन्त्रता का अरुणोदय हो चुका था और राष्ट्रभाषा के स्वर्णसिंहासन पर आसीन होने के कारण हिन्दी के लिए एक महान् भविष्य का उद्घाटन हुआ था, फिर भी दिन प्रतिदिन बढ़ते हुऐ आर्थिक तनाव के कारण प्रकाशन के क्षेत्र में कठिनाइयों का अन्त होते नहीं दिखाई देता था। इसी विवशता में हमने मदद के लिए अपनी लोकप्रिय सरकार का द्वार खटखटाया, और हम इसके लिए आभारी है कि हमारी बात को सुना गया और प्रकाशन के क्षेत्र में हमारी अब तक की सेवाओं का मूल्य सहानुभूतिपूर्वक आँका गया। इस कठिनाई में मदद करने के लिए केन्द्रीय शिक्षा–मंत्रालय ने कुछ हाथ बढ़ाया और उसी का सुफल 'हिन्दी विश्व–भारती' का यह नवनियोजित सस्ता 'जन–संस्करण' हैं।

यह संस्करण इस ग्रंथ की मूल रूपरेखा की ज्यों–की–त्यों आवृत्ति न होकर फिर से नए सिरे से नियोजित एवं पूर्णतया संशोधित एवं परिवर्द्धित उसका सर्वांग–सम्पूर्ण नवीन संस्करण हैं। इंस संस्करण का उद्देश्य एक ओर तो देश की कोटि–कोटि जनता के लिए ज्ञान–विज्ञान के कपाटों को खोलने में योग देना है। दूसरी ओर कम से कम मूल्यों में उपलब्ध करके उसे जन–जन के द्वार तक पहुँचाना हैं। इसी प्रयोजन से इस संस्करण की समस्त ज्ञान–सामग्री को जहाँ इस प्रकार से नियोजित किया गया है कि पाठकों के लिए वह बोझिल न बनकर अधिकाधिक रोचक एवं आकर्षण बन सके, वहाँ दूसरी ओर पुस्तक का मूल्य लागत से भी कम रखकर उसे सबके लिए सुलभ बनाने का भी भरपूर प्रयास किया गया हैं। यद्यपि आज की बढ़ती हुई महगाँई की छाया में इस ग्रंथ को प्रकाशित करने की लागत का खर्च प्रति खंड 11 रूपया पड़ रहा है, फिर भी उसे दो–तिहाई मूल्य पर ही उपलब्ध किया जा रहा हैं यह राजकीय सहायता की बदौलत ही सम्भव हो पाया है, जिससे कि इसकी क्षतिपूर्ति की गई हैं।"

राज राजेश्वर प्रसाद
अध्यक्ष, 'हिन्दी विश्व-भारती'

'हिन्दी विश्व–भारती' के गौरवशाली ज्ञानयज्ञ के यजेता के रूप में श्री राजराजेश्वरप्रसाद भार्गव का यह वक्तव्य बड़े ही ऐतिहासिक महत्व का एक आलेख हैं। कारण, इसमें भविष्य में इस ज्ञानानुष्ठान के विषय में शोध अनुसन्धान करने वाले 'हिन्दी–साहित्य के इतिहास के अध्येताओं के लिए तद्विषयक प्रामाणिक अधिकृत तथ्य सामग्री उपलब्ध करा दी गई हैं। स्वतः ग्रन्थ के प्रकाशन के द्वारा उसके नियोजन, निर्माण, संपादन, प्रकाशन आदि के सम्बन्ध में पूरी तरह से खुलासा कर देने वाला यह वक्तव्य अप्रैल, 1958 ई0 में जन संस्करण के प्रथम खण्ड में प्रकाशित हुआ था। उक्त संस्करण को मुद्रित–प्रकाशित करने में पूरे छः वर्ष लगे थे। (फरवरी 1964 में दसवाँ खण्ड प्रकाशित) आज दैव के दुर्विपाक से, 'हिन्दी विश्व–भारती' के शिलारोपण में योग प्रदान करने वाले उसके बहुतेरे लेखक दिवंगत हो चुके है और ज्ञान–विज्ञान–साहित्य की इस प्रकाशन–संस्था के व्यावसायिक कपाट भी बन्द हो चुके है। अतः देश के स्वातंत्र्योदय के बाद की युवा पीढ़ी को कदाचित् यह जानकारी ही नहीं है कि किसी समय ऐसा एक विलक्षण ज्ञानानुष्ठान राष्ट्रवाणी के प्रांगण में रचा गया था। गनीमत यही है कि बड़े–बड़े पुस्तकालयों की आलमारियों में अभी भी इस ज्ञानकोश के सैट सजे–सँवारे हुए रखे देखे जा सकते है–यद्यपि अन्य कई एक प्रकाशनों की भाँति (जिनके नये संस्करण फिर निकल नहीं पाए) यह अद्वितीय ग्रन्थ भी अब एक दुर्लभ वस्तु बन चुका है। एक समय ऐसा भी आएगा जबकि उसकी इस प्रस्तुत जीवनगाथा को पढ़कर बहुतेरे जिज्ञासु ग्रंथागारों में उसे ढूँढ़ते फिरेंगे और उसे उपलब्ध न कर पाएंगे। व्यक्तियों के आयु–सूत्र की भाँति, ग्रन्थों की भी उम्र की एक डोर निर्धारित हुआ करती हैं। यदि उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती तो वे भी काल के अतल गर्त में सदा के लिए अन्तर्धान हो जाते हैं।

'हिन्दी विश्व-भारती' का प्रारम्भिक विज्ञप्ति-पत्र

ग्रंथ का निर्माण करते समय द्विवेदी जी का रवैया हमेशा यह रहा है कि वह विषय–वस्तु की पांडुलिपि तैयार होने से पहले हीं उसका एक खाका–सा–पूर्वकल्पित करके उसे शब्दबद्ध कर लिया करते हैं। अंग्रेजी में इसी खाके को Synopsis के नाम से पुकारा जाता हैं। ऐसी संक्षिप्त रूपरेखा का चौखटा बन जाने पर भावी कार्य पर्याप्त सरल हो जाता है। इस प्रकार एक सुनिश्चित दिशा निर्धारित हो जाने के कारण फिर उसकी लीक से इधर–उधर खिसकने की गुंजाइश नहीं रहती। उक्त पूर्वनिर्धारित प्रारूप का अनुसरण करते हुए अब मात्र उक्त चौखटे में पाठ्य सामग्री एवं सजधज के चित्र आदि के यथाक्रम समावेश का ही काम शेष रहता हैं। यह काम भी कोई कम श्रमसाध्य व्यायाम नही हुआ करता, तथापि इस प्रकार समग्र अनुष्ठान को योजनाबद्ध स्वरूप प्राप्त हो जाता हैं।

ऐसी योजनाबद्ध कार्यप्रणाली की एक विविध–विषयमूलक ज्ञानकोश या विश्वकोश के लिए तो और भी अधिक आवश्यकता हुआ करती है। इसी बात को दृष्टि मं रखते हुए 'हिन्दी विश्व–भारती' का ज्ञानानुष्ठान आरम्भ करने पर पहला कदम द्विवेदी जी ने उसका एक विशद विज्ञप्ति पत्र तैयार करके उठाया। यह विज्ञप्ति पत्र योजना के स्पष्टीकरण, प्रस्तावित अनुष्ठान

के विज्ञापन और प्रस्तुतीकरण की अभूतपूर्व शैली एवं बड़े मार्के के चित्रों, फोटोग्राफी आदि के नाते इस प्रकार के विलायती पैम्फलैटों के साथ दावे के साथ बाजी बद सकता था। इसे नख से शिख तक आद्योपान्त द्विवेदी जी ने ही रचा था। उन्होंने ही उसकी सम्पूर्ण पाठ्य–सामग्री को लिखकर उसे चित्रों से सजाया था। प्रेस के लिए उसका बहुरंगी जटिल Lay-out भी उन्होंने ही तैयार किया था। मुद्रण के क्रम में पग–पग पर कंपोजिटरों, आदि का पथ–प्रदर्शन किया था तथा पृष्ठ–निर्माण में जहाँ–जहाँ कोई अड़चनें (मैटर के घटने–बढ़ने के फलस्वरूप) उठ खड़ी हुई थी, जिन्हें मौके पर ही तत्काल दूर करके प्रेस की मदद की थी। विज्ञप्ति पत्र में सोलह पृष्ठ थे। मुखपृष्ठ पर 'हिन्दी विश्व–भारती' का बहुरंगा आवरण–चित्र दिया गया था। अंत में भी एक तिरंगा हाफटोन चित्र था, जो नमूनो के तौर पर प्रदर्शित किया गया था– यह जताने के लिए कि किस प्रकार के रंगीन चित्रों का समावेश ग्रन्थ में क्रमशः होने वाला हैं। इसके अलावा सम्पूर्ण पैम्फलेट में बीच–बीच में कई फोटोग्राफी के हॉफटोन ब्लॉक तथा कुछ रेखाचित्र भी सजे हुए थे, जो ग्रन्थ में दिए जाने वाले हजारों चित्रों, फोटोग्राफों आदि के नमूने पेश करते थे।

इस विज्ञप्ति पत्र में 'हिन्दी विश्व–भारती' के सपूर्ण योजना निम्न प्रकार से रेखांकित कर दी गई थी–

विभाग 1
विश्व की कहानी

स्तम्भ 1- आकाश की बातें (इस दृश्य जगत् के व्यापक रूप अनन्त आकाश और उसमें चक्कर काट रहे ग्रह–नक्षत्रों की कहानीः अर्थात् ज्योतिष विज्ञान।)

स्तम्भ 2- भौतिक विज्ञान (उन तत्वों और प्राकृतिक शक्तियों की कहानी, जिनसे विश्व की रचना हुई है और जिनकी क्रिया–प्रक्रिया से सृष्टि का संचालन होता हैं।)

स्तम्भ 3- रसायन विज्ञान (द्रव्य के विभिन्न रूप, गुण एवं विविध पदार्थों की पारस्परिक क्रिया–प्रतिक्रिया का विवेचन)

स्तम्भ 4- सत्य की खोज (इस अचरज–भरे सृष्टि–प्रपंच के रहस्यों के तत्व–ज्ञान की जानकारी।)

विभाग 2
पृथ्वी की कहानी

स्तम्भ 1- पृथ्वी की रचना (जिस पर बसकर हम इस ब्रह्माण्ड के अनन्त प्रसार में भ्रमण कर रहे है, उस ग्रह की भूभौतिक कहानी।)

स्तम्भ 2-- धरातल की रूपरेखा (पृथ्वी की सतह पर के जल–स्थल क्षेत्रों का विवरण, जिसे भूगोल शास्त्र के नाम से अभिहित किया जाता हैं।)

स्तम्भ 3- पेड़-पौधों की दुनिया (पृथ्वी पर विद्यमान जगत् का परिचय।)

स्तम्भ 4- जानवरों की दुनिया (प्रकृति की उस अचरज भरी जन्तुशाला का विवरण, जिसमें चींटी से हाथी तक विविध आकार–प्रकार और रंगरूप वाले स्थल, जल और नभ के निवासी अनगिनत प्राणियों की एक विराट् नुमाइश सी लगी है।

विभाग 3
मनुष्य की कहानी

स्तम्भ 1- हम और हमारा शरीर (मनुष्य के स्थूल भौतिक स्वरूप अर्थात् मानव–शरीर–यंत्र तथा उसके विकास–क्रम की महत्वपूर्ण कहानी।)

स्तम्भ 2- हमारा मस्तिष्क (जिससे अधिक आश्चर्यजनक वस्तु इस दुनिया में अन्य कोई नहीं हैं, मानव को सारे प्राणी जगत् में सर्वोपरि आसन पर बिठाने वाले इस रहस्य–भरे अवयव 'दिमाग' की क्रिया–प्रक्रिया का परिचय।)

स्तम्भ 3- मानव समाज (जिसकी बदौलत मनुष्य के समूचे सामूहिक उद्योग एंवं उसकी आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का सर्जन हुआ हैं, उसके उस अति महत्वपूर्ण सामाजिक पक्ष का लेखा–जोखा।)

स्तम्भ 4- इतिहास की पगडंडी–(युगों और महायुगों को लाँघती हुई आदि काल से आज तक की मनुष्य की उस विकास–यात्रा का विवरण, जिसके दौरान काल की डगर पर उसने अपने पदचिन्ह हमेशा के लिए अंकित कर दिए हैं)

स्तम्भ 5- प्रकृति पर विजय (किस प्रकार अन्य प्राणियों से जितनी ही मंजिले आगे बढ़कर, मनुष्य ने क्रमशः कृषि, उद्योग, निर्माण–कार्य, आविष्कार आदि की अधिकाधिक आश्चर्यजनक उपलब्धियों की एक नुमाइश सी खड़ी करके कालान्तर में प्रकृति पर अपना स्वामित्व सा स्थापित कर लिया और एक नवीन सृष्टि इस भूमण्डल पर सर्जित कर दी; इसकी मनोरंजन कहानी।)

स्तम्भ 6- मनुष्य की कलात्मक सृष्टि (शिल्प, संगीत, नृत्य आदि के रूप में अभिव्यक्ति का मार्ग खोजती हुई चिरंतन मानवीय पिपासा और उसके फलस्वरूप उपजी अद्भुत भावसृष्टि का आलेख।)

स्तम्भ 7- साहित्य-सृष्टि (दृश्यमान् जगत् की अनुभूति के साथ–साथ, विचारों और भावनाओं के कल्पनालोक में हृदयंगम किए गए भावों को भाँति–भाँति के प्रबन्ध–जाल में बुनकर मानव–मस्तिष्क ने जो अक्षरबद्ध–छन्दबद्ध विलक्षण सृष्टि रच डाली है, उसका परिचय।)

स्तम्भ 8- देश और जातियाँ (भूमंडल के विभिन्न क्षेत्रों में पृथक्–पृथक् गिरोहों के रूप में बिखरे हुए मानव जाति के विशाल परिवार एवं उनके अपने–अपने आवास–प्रदेशों के रूप में जाने–पहचाने जाने वाले विविध भूभागों की चित्र–विचित्र झाँकी।)

स्तम्भ 9- भारत भूमि (जिसे हम अपनी मातृभूमि कहकर पुकारते है उस 'शस्यश्यामला सुजला सुफला', धरती एवं उसकी प्यार–भरी गोद में जीवन–यापन

करने वाले अलग–अलग वर्णों, भाषाओं, धर्म–संस्कृतियों, वेशभूषाओं तथा रहन–सहन की अपनी–अपनी विशेषताओं से युक्त होने पर भी एक ही ऐक्य–सूत्र में गठित कोटि–कोटि नर–नारियों का जीवन्त चित्रपट।)

स्तम्भ 10- मानव विभूतियाँ (मनुष्य–जाति के उन महान् प्रकाश–स्तम्भों का परिचय, जो अपनी ज्योति द्वारा युग–युग तक हमारे यात्रा–पथ को आलोकित करते रहेगे।)

स्तम्भ 11- अमर कथाएँ (मानव इतिहास की चमत्कृत करने वाली, असाधारण प्रतिभा साहस, शौर्य, खोज–अन्वेषण, बलिदान आदि की वे प्रेरक गाथाएँ, जो कभी भी मन्द न पड़ने वाली हमारी चिरन्तर दीपशिखाएँ हैं।)

चूँकि सम्पूर्ण ग्रंथ लगभग 6,000 पृष्ठों में पूरा होने का अनुमान लगाया गया था और न तो इतना धन ही उपलब्ध था कि एक साथ समूचा ग्रंथ छापा जा सके, न उसकी पूरी विषय–सामग्री ही तैयार थी, अतः सुविधा की दृष्टि से 50 फुटकर भागों में उसे क्रमशः प्रकाशित करने की योजना बनाई गई थी। इनमें से प्रत्येक भाग में सवा सौ पृष्ठ और लगभग उतने ही चित्र अनुमानतः रखने की परिकल्पना थी। ये फुटकर भाग एक उत्तम मासिक पत्रिका के रूप–आकार के होने को थे तथा उनमें से प्रत्येक में ऊपर उल्लिखित तीन महाविभागों एवं उनके अन्तर्गत नियोजित विविध स्तम्भों के अधीन प्रत्येक निर्धारित विषय पर एक–एक लेख धारावाहिक रूप में देकर क्रमशः प्रस्तुत करने की स्कीम उद्‌घोषित की गई थी। इन स्तम्भों के लिए विशिष्ट लेखकों का चुनाव तो प्रयाग एवं लखनऊ के विश्वविद्यालयों के कई प्रोफेसरों तथा बाहर के भी कुछ विशेषज्ञ विद्वानों से सम्पर्क स्थापित करके द्विवेदी ने पहले से कर लिया था। अतः इस विज्ञप्ति–पत्र में एक तालिका में संक्षिप्त परिचय सहित उनके नाम भी दे दिए गए थे। इस प्रकार यह विज्ञप्ति–पत्र संक्षेप में प्रस्तावित ज्ञानकोश का भूरि–भूरि परिचय दे देने की क्षमता रखता था।

यहाँ कुछ जानकारी पाठकों को हम इस सम्बन्ध में भी करा देना अति आवश्यक समझते हैं कि यद्यपि 'हिन्दी विश्व–भारती' के अन्तर्गत ज्ञान–विज्ञान के विविध विषयों का समावेश होने के कारण, उसे एक 'एनसाइक्लोपीडिया' (या विश्वकोश) की भी संज्ञा प्रदान की जा सकती थी, परन्तु वस्तुतः उसे एक 'ज्ञान कोश' (या बुक आफ नॉलेज) कहकर पुकारना अधिक युक्तिसंगत था। आम तौर पर, कोई भी 'एनसाइक्लोपीडिया' (या विश्वकोश) एक संदर्भ ग्रंथ होने के कारण अकारादिक्रम में बद्ध होता है। वह नख से शिख तक या आरम्भ से अन्त तक नहीं पढ़ा जाता। जब किसी विषय या मुद्‌दे पर कोई जानकारी हासिल करने की आवश्यकता पड़ती हैं, ऐसे विश्वकोश को किसी शब्दकोश (या डिक्शनरी) की भाँति टटोलकर उसमे से उक्त विषय का शीर्षक अकारादि क्रम की तालिका में से ढूँढ़ लिया जाता है और जो कुछ उसके बारे में लिखा होता है, उसे हृदयगंम कर लिया जाता हैं। दूसरे शब्दों में ज्ञानकोश एक प्रकार के शिक्षक की आपूर्ति करता है। वह विषय की केवल पाठ्यपुस्तकों की टकसाली जानकारी कराने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नही मान लेता, वरन् उसकी सम्पूर्ण झाँकी पाठक के मस्तिष्क पर रेखांकित करने का प्रयास करता है–और सो भी ऐसे रोचक ढंग से कि पाठक की न केवल ज्ञानवृद्धि ही हो, अपितु मनोरंजन भी हो सके।

'हिन्दी विश्व–भारती' इस आदर्श को अपने सम्मुख रखकर ही सामने आई थी। उसका क्या

उद्देश्य और लक्ष्य था, किस पृष्ठभूमि में उसका प्रादुर्भाव और सर्जन हुआ, क्यों आज की परिस्थितियों में उसकी आवश्यकता एवं उपादेयता का एहसास उसके निर्माता को हुआ, इस बात को द्विवेदी जी ने पूर्वोल्लिखित 'विज्ञप्ति–पत्र' में बड़े ही मार्के का एक वक्तव्य 'हिन्दी विश्व–भारती' क्या और क्यों शीर्षक से प्रस्तुत करके स्पष्ट कर दिया था। यह वक्तव्य वस्तुतः ग्रंथ का संपादकीय ही था, जिसे कृष्णवल्लभजी ने ग्रंथारम्भ के पूर्व ही लिखकर प्रकाशित कर दिया था। आगे चलकर 'हिन्दी विश्व–भारती' के विविध संस्करणों में 'संपादकीय वक्तव्य' के रूप में यह बराबर मुद्रित और प्रकाशित हुआ। यह वक्तव्य अपनी ओजपूर्ण शैली के नाते ही नहीं, अपितु मानव–विकास के इतिहास के विहंगावलोकन के एक बड़े ही मार्के के आलेख के रूप में भी बड़े महत्व का बयान हैं। अंतः उसे अविकल यहाँ पुनरूद्धरित करना–कम से कम 'हिन्दी विश्व–भारती' के आविर्भाव की पृष्ठभूमि तथा उसके निर्धारित ध्रुव लक्ष्य–बिन्दु का खुलासा करने के हेतु–अनुचित न होगा।

द्विवेदी द्वारा प्रस्तुत संपादकीय वक्तव्यः 'हिन्दी विश्व-भारती' क्या और क्यों

अपनी इस प्रगति की यात्रा में हम मानव आज के दिन उस स्थिति पर आ पहुँचे हैं, जहाँ से भविष्य की ओर कदम बढ़ाने से पहले अपने आसपास की इस दुनिया और स्वयं अपने आप पर भी एक विहंगम दृष्टि डाल लेना हमारे लिए नितान्त आवश्यक हो गया हैं।

हमें देख लेना हैं, कितना रास्ता हम तय कर चुके, हमने अब तक क्या कुछ कमाई की, इस समय किस परिस्थिति में हम हैं, और इस जगह से यह दुनिया हमें कैसी दिखाई दे रही है। हमारे लिए यह एक अति आवश्यक कर्तव्य है, कारण प्रतिक्षण आज ये आशंकाएँ हमारे मन में उठ रही हैं कि अपनी इस तथा–कथित प्रगति की चमक–दमक के बावजूद कहीं ऐसा तो नहीं है कि विपथगामी होकर हम अपनी राह से एकदम बहक गए हों और आगे बढ़ने के बजाय दरअसल पीछे ही की ओर ढुलकते चले जा रहे हों।

मुश्किल से कुछ हजार, या संभव है कुछ लाख वर्ष अभी बीत पाए होंगे, जब सहसा अपने हमजोली दूसरे जीवधारियों को पीछे छोड़कर हम एक दिन अपने विकास की इस पगडंडी पर चल पड़े थे। हमारे मन में इस अद्भुत दुनिया को जानने और समझने की एक अजीब उत्कंठा जग उठी थी, और भीतर ही भीतर कुछ प्रश्न हमारे दिमाग में खलबली मचाने लगे थे। अपने वे आरम्भ के प्रश्न तो किसी न किसी तरह हमने हल कर लिए। पर लाख कोशिश करने पर भी अपनी उस प्रबल ज्ञान की प्यास को हम न दबा पाए। ज्यों–ज्यों पुरानी गुत्थियाँ सुलझती गई, नए–नए प्रश्न आ–आकर हमारे सामने जुटते गए और आज भी, जब कि अपने पेचीदा यन्त्रों से हमने इस दुनिया के रहस्यों को किंचित् झाँकी देख पाने में सफलता पा ली है, अपने इतिहास के प्रभातकाल ही की तरह ज्ञान की एक प्रकाश रेखा के लिए हम ज्यों के त्यों अन्धकार में हाथ फटफटाते हुए लगताार पुकार रहे हैं 'तमसों मा ज्योतिर्गमय' इस अन्धकार से हटाकर हमें प्रकाश की ओर ले चल।

लड़खड़ाते और ठोकरे खाते जब पहले–पहल हम जंगलो से बाहर निकले थे, तब तो यह दुनिया हमारे लिए कोई बहुत बड़ी न थी। साथी–संगी कुछ जानवर, पानी से घिरी थोड़ी सी धरती और सिर पर चमकते हुए चाँद, सूरज और जुगनू जैसे कुछ हजार तारे–यही थी हमारी उन दिनों की दुनिया। किन्तु पिछले दो तीन हजार वर्षो की अवधि ही में हमने अपने औजारों और यन्त्रों से मानो फैलाकर इस छोटी

सी दुनिया को कितनी लम्बी–चौड़ी बना लिया है और इसके साथ ही साथ स्वयं हमने भी जिस नवीन सृष्टि की रचना कर डाली है, वही क्या कम अचरज की वस्तु है। चींटी से मानो हाथी बनकर आज हम न केवल संसार के विकास की धारा में बहते हुए आगे बढ़ रहे हैं बल्कि अपनी सर्जनशक्ति द्वारा उसे गति देते हुए किसी अज्ञात लक्ष्य की ओर लगातार मोड़ते भी जा रहे हैं। उस प्रेरक शक्ति का मूल क्या हमारा ज्ञान ही नहीं हैं?

युग–युग की कठोर साध और पराक्रम से उपार्जित यह अनमोल ज्ञान–राशि ही हमारी इस जीवन–संग्राम–यात्रा का एकमात्र संबल हैं। इसी पर हमारे वर्तमान या भावी विकास का स्वरूप निर्भर है। भारत मे तो आज के दिन हमें इस संबल की सबसे अधिक आवश्यकता हैं, क्योंकि यहाँ इस समय हम एक महान् युगान्तर की घड़ियों में से गुजर रहे हैं। सदियों तक राजनीतिक पराधीनता की बेड़ियों में जकडा रहने वाला भारत अभी भी आर्थिक और सामाजिक असमानता की श्रृंखलाओं मे जकड़ा हुआ है। इन्हीं बेड़ियों से छुटकारा पाने के लिए अब वह जीवन–मरण के घोर संग्राम में प्रवृत्त हैं। किन्तु क्या उसकी यह साध कभी पूरी हो पायगी, यदि दासता के सबसे घोर रूप अविद्या और अज्ञानांधता के चगुल से वह अपनी मुक्ति न कर पाया? ज्ञान का यह प्राचीन रश्मिकेन्द्र आज अविद्या और कूपमण्डूकता के शाप से ग्रस्त हैं। उसका समाज–तंत्र कुंठित हो गया है–वह पुराना पड़ गया है और घुन ने उसे चाट खाया है। फिर भी मोहवश वह इसी को लेकर जीवित रहने की विडम्बना में फँसा हुआ हैं। कैसे इस मृत्युरूपी अविद्यापाश से छुटकारा हो?

भारत ही के आर्ष ग्रन्थों में वर्णित एक मार्मिक प्रसंग में इस प्रश्न का बड़ा महत्वपूर्ण उत्तर निहित है। कहते है, एक बार जब असुरों (या अविद्या की शक्तियों) के आतंक से विश्व की रक्षा करने का सामर्थ्य और किसी में न रहा, तब अन्त में ज्ञान की अधिष्ठात्री वीणापाणि भारती (विद्या या ज्ञान की शक्ति) ने ही स्वयं रणभूमि में उतरकर संसार की रक्षा की थी। आज भी, जबकि अपने ही पैदा किए हुए अपने मस्तिष्क के जालों के कारण हमारी विवेक बुद्धि धुँधली पड गई है और विचारों में एक अजीब संकीर्णता छा गई हैं, जबकि व्यक्तिगत स्वार्थपरता ही हमारा एकमात्र व्यवसाय हो गया है और उसके कारण यह दुनिया कोटि–कोटि जनों के लिए दुख–दैन्य का आगार बन गई है; जबकि ज्ञान–विज्ञान का उपयोग मुख्यतया मानव द्वारा मानव के शोषण के लिए ही किया जाने लगा है और एक दृष्टि से मानव–जाति फिर से बर्बरावस्था की ओर अग्रसर होते दिखाई देने लगी है–पारस्परिक संघर्ष और सांस्कृतिक पतन की इस घड़ी में हम सिवा उसी अविद्यानाशिनी ज्ञानमूर्ति भारती के किसका आह्वान करें? हमारी यह जड़ता और अज्ञानांधता ही तो हमारे इस समस्त दुख–दैन्य और संघर्ष की जड़ हैं। इससे छुटकारा पा जाने पर क्या फिर हमें इस बात को समझना कठिन होगा कि सारा मानव परिवार एक है और सबके हित ही में प्रत्येक का सच्चा कल्याण है?

यही है वह पृष्ठभूमि, जिसमें 'हिन्दी विश्व–भारती' का प्रादुर्भाव हुआ है। 'हिन्दी विश्व–भारती' कोरा एक ग्रंथ ही नहीं, यह युग–परिवर्तन की घड़ियों में से गुजर रहे हम भारतवासियों की अविद्या–जनित कूप–मण्डूकता से मुक्ति पाने की एक नयी जगी हुई साध है यह हमारे लिए केवल मानव जाति के संचित ज्ञान को अपनी ही भाषा में पाने का एक प्रयास मात्र नहीं,

वरन् अपने मस्तिष्क में छाए हुए विचार संकीर्णता के जालों को झाड़–बुहारकर एक नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने और आने वाली पीढ़ी के लिए रास्ता साफ कर जाने की एक क्रान्ति हैं।

उस क्रान्ति का नारा यह है कि अब हम कुएँ में मेढक बनकर नहीं रहने के। ये अनन्त आकाश में जगमगाते हुए चाँद, सूरज और तारे, ये उमड़–उमड़कर सिर पर छा जाने वाले बादल और उसमें कौंधती हुई वह बिजली, ये बादलों से भी ऊँचा सिर उठाए हुए हिमान्वित गिरिशिखर और उछल–उछलकर उनसे होड़ करती हुई सागर की ये लहरें, ये पृथ्वी को एक अजायबघर सा बनाए हुए अनगिनत जानवर और पेड़–पौधे, और इन सबसे कहीं अधिक निराला और आश्चर्यजनक बर्बरावस्था के युग से परमाणु शक्ति के इस युग तक बढ़ा चला आ रहा स्वयं हमारा ही अद्भुत जीता–जागता जुलूस, एवं मानव द्वारा अनन्त की खोज और आत्मज्ञान की प्राप्ति के प्रयास–आदि–आदि बातें आज अपना रहस्य खोलने को बरबस हमें अपनी ओर खींच रही है और उनको जान लेने की प्रबल उत्कंठा हमारे मन में जग उठी है। किन्तु इन सबका ज्ञान क्योंकर हमें सुलभ हो, जब तक अपनी ही भाषा में, अपने ही विश्वसनीय पथ–प्रदर्शकों द्वारा और अपने ही वातावरण के अनुरूप और अनुकूल रूप में इनकी कहानी हमें पढ़ने को न मिल सके?

'हिन्दी विश्व–भारती' उसी मनचाही रूप में विश्व, पृथ्वी और मनुष्य की सम्पूर्ण कहानी को पहली बार देश की कोटि–कोटि जनता के द्वार तक लेकर सामने आ रही हैं।

–कृष्णवल्लभ द्विवेदी

इस ग्रंथ के लेखक

'हिन्दी विश्व–भारती' का प्रणयन अनेक विद्वानों और विशेषज्ञ लेखकों के सम्मिलित योगदान में हुआ। उसके आरम्भिक स्वरूप तथा 'जनसंस्करण' के बाद के रूप को गढ़न मे इसके संपादक श्री कृष्णवल्लभ द्विवेदी के साथ–साथ जिन महानुभावों का मूल्यवान् हाथ रहा है, उनकी कुल संख्या चालीस से भी अधिक रही है। बहुत से लेखक ऐसे भी रहे, जो अपने लेख मूलतः अंग्रेजी में लिखते थे और उनका हिन्दी में अनुवाद कराना आवश्यक होता था। श्री वीरेश्वर सेन, डॉ0 डी. एन. मजूमदार, श्री चरण वर्मा आदि ऐसे ही महानुभाव थे। उधर डॉ0 राधाकमल मुकर्जी अपने लेख मूलतः बँगला भाषा मे लिखकर देते थे, यद्यपि उन्होंने अंग्रेजी में कई एक ग्रन्थ रचे थे। अंग्रेजी का अनुवाद प्रायः द्विवेदी जी ही किया करते थे। हाँ, बंगला का हिन्दी अनुवाद एक मित्र से वह कराते थे। श्री चरण वर्मा अपने लेखों का हिन्दी अनुवाद अपनी सुपुत्री से कराकर भेजा करते थे।

द्विवेदी जी को एक मँजे हुए संपादक होने के नाते समूचे ग्रंथ की भाषा एक समान रखने के लिए सभी लेखों पर अपनी कलम चलानी पड़ती थी, यहाँ तक कि डॉ0 गोरखप्रसाद जैसे सिद्धहस्त हिन्दी लेखक की भी भाषा उन्हें सुधारनी पड़ती थी–विशेषतया, प्रवाह को एक–सा बनाए रखने के लिए। केवल डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल, श्री मदन गोपाल मिश्र, डॉ0 शिवकण्ठ पांडेय, डॉ0 रामप्रसाद त्रिपाठी एवं श्री रामनारायण कपूर के ही लेख ऐसे होते थे, जिनमें संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं रहा करती थी।

वनस्पति–विज्ञान विषय को लिखने के लिए डॉ0 शिवकण्ठ पाण्डेय का परिचय स्वनामधन्य वनस्पति विज्ञानाचार्य डॉ0 बीरबल साहनी ने द्विवेदी जी को

कराया था। पांडेय जी ने वनस्पति शास्त्र के तकनीकी शब्दों के हिन्दी पर्याय निर्मित करने में अग्रदूत का काम किया था। वह अपने लेखों के तैयार करने में बेहद परिश्रम करते थे। भाषा सुधरवाने के लिए वह पं० आद्यानाथ ठाकुर जैसे लखनऊ–विश्वविद्यालय के संस्कृत विद्वानों से परामर्श किया करते थे और अपने विषय के रेखाचित्र, फोटो आदि स्वयं ही निज शिष्यों से (जिनमे डॉ० सिठोले और डॉ० वर्मा आगे चलकर बहुत नामांकित वनस्पतिशास्त्री बने) बनवाकर देते थे। डॉ० मजूमदार भी (जिन्होंने भारतीय जनजातियों के विषय में अनेक लेख लिखे थे) स्वयं ही फोटोग्राफी की आपूर्ति करते थे। श्रीमदन गोपाल मिश्र चित्रकार श्री गिरीश द्वारा अपनी ही देखरेख में चित्र बनवाते थे। उधर डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी अपने लेखों की चित्रावली के हेतु कई एक ग्रंथों के संदर्भ द्विवेदी जी को देते, जिनसे कि या तो चित्र ज्यों–के–त्यों के लिए जाते, या फिर उनके आधार पर रेखाचित्र निर्मित होते थे। विशेषतया, प्राचीन युगों के कुछ मानचित्र बनवाने में डॉ० त्रिपाठी ने बड़ा ही सक्रिय सहयोग प्रदान किया था। श्री मदनगोपाल मिश्र की तरह श्री चरण वर्मा भी अपने लेखों को निज तत्वावधान में ही बनवाते थे। इसके लिए इलाहाबाद ही में चित्रकार श्री बागची की सहायता उन्हें उपलब्ध करा दी गई थी। केवल डॉ० गोरखप्रसाद ही ने चित्र संपूर्ति का कार्य बहुत झंझटभरा होने के कारण इस विषय में कोई दायित्व ग्रहण करने में अपनी असमर्थता प्रकट की थी। परन्तु इससे कोई व्यवधान उनके ज्योतिष विषयक लेखों को चित्रित करने में नहीं हुआ था। कारण, द्विवेदी जी ने अमेरिका की सुप्रसिद्ध माउण्ट विल्सन' एवं 'लिंक' वेधशालाओं से तथा ब्रिटेन की ग्रिनिच बेधशाला पेरिस की वेधशाला तथा भारत की 'कोदईकनाल वेधशाला' से आश्वश्यक फोटो चित्र मँगवा लिए थे और अपनी देखरेख में चित्रकारों से सभी जरूरी तस्वीरें बनवा ली थी। फलतः एक दृष्टि से जैसी साज–सजावट डॉ० गोरखप्रसाद के इन लेखों की हुई, वैसी अन्य बिरले ही स्तंभों की हो सकी थी।

'हिन्दी विश्व–भारती' के प्रणयन में सहयोग प्रदान करने वाले इन विद्वानों ने मात्र हिन्दी के प्रति अपने प्रगाढ़ अनुराग तथा मॉं भारती की वेदी पर लोकरंजन वैज्ञानिक साहित्य की भेंट चढ़ाने की अपनी ललक के आवेश में ही यह महान् अनुष्ठान निज हाथों में लिया था। उन्हें कोई आर्थिक लाभ की एषणा इस कार्य के सम्बन्ध में कभी भी नहीं रही–कारण, जो पारिश्रमिक इन्हें इस अति श्रमसाध्य लेखन कार्य के लिए दिया जाता था वह इतना नगण्य था कि उसका उल्लेख करते हुए आज हमें लज्जा का अनुभव होता हैं। इन महानुभावों का साभार ऋृण स्वीकार करते हुए उनमें से कुछ प्रमुख विद्वानों का परिचय यहाँ दे देने में हमें गर्व और गौरव की ही अनुभूति हो रही हैं। यहाँ हम उन्हीं लेखकों की तालिका प्रस्तुत कर रहे है, जिन्होंने 'हिन्दी विश्व–भारती' के प्रारम्भिक चरण में उसकी विषय–पूर्ति की थी। बाद में, द्वितीय चरण में, इस ग्रंथ का 'जन–संस्करण' निकलने पर, शेष मैटर की पूर्ति करने में जिन अनेक विद्वानों ने सहयोग किया था, उसका उल्लेख हम यथास्थान अगले एक प्रकरण में करेंगे–

डॉ0 गोरखप्रसाद, डी. एस–सी. (एडिनबरा) एफ. ए. एस., आचार्य, गणित विज्ञान, प्रयाग–विश्वविद्यालय। (हिन्दी में वैज्ञानिक ज्योतिष विषयक साहित्य का प्रणयन करने में अपने अग्रदूत का सा काम किया। 'सौर–परिवार' और 'फोटोग्राफी की शिक्षा' के अतिरिक्त आपने 'भारतीय ज्योतिष का इतिहास' नामक एक अति महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी थी। आपको

'मंगला प्रसाद पुरस्कार' भी प्राप्त था। अंतिम दिनों में आप काशी में नागरी प्रचारिणी–सभा द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी–विश्व–कोश' के संपादन में संलग्न रहे। एक रोज़ गंगा–स्नान करते समय, अपने नौकर को डूबने से बचाने के प्रयास में दैव के क्रूर विधान से स्वयं ही अपने प्राण गवाँ बैठे। आपने बाल–साहित्य में भी बच्चों के लिए खिलौने आदि बनाने की विधियाँ बताकर महत्वपूर्ण योग प्रदान किया था और अनेकों पाठ्यपुस्तकें भी लिखी थीं।)

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम. एस–सी., एल–एल. बी., अध्यक्ष एवं प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान विभाग, धर्म–समाज कालेज, अलीगढ़। (आप हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लोकरंजक शैली में लिखने वाले अग्रणी लेखकों में से है। अनेक वैज्ञानिक पुस्तकें तथा कुछ पाठ्यपुस्तकों भी अपने लिखी हैं। वैज्ञानिक ग्रंथो के अनुवाद भी किए हैं। 'हिन्दी विश्व–भारती' के साथ आपका आरंभ ही से प्रगाढ़ संम्बन्ध रहा। उसके 'भौतिक–विज्ञान' और 'प्रकृति पर विजय' शीर्षक दो स्तम्भों के लिए विषय–पूर्ति आपने ही की। सन् 1942 में द्विवेदी जी रूग्ण होकर विश्राम हेतु मध्यप्रदेश चले गए थे। तब उनके अनुरोध पर लखनऊ आकर 'हिन्दी विश्व–भारती' के एक अंक को संपादित करके निकालने में भी मूल्यवान योग आपने प्रदान किया था।)

श्री मदन गोपाल मिश्र एम. एस–सी., प्रधानाचार्य, कान्यकुब्ज कॉलेज, लखनऊ। ('हिन्दी विश्व–भारती' के रसायन–विज्ञान स्तम्भ की विषय–पूर्ति करने का दायित्व आपने ही ग्रहण किया था। आप ही उन दिनों कान्यकुब्ज कॉलेज में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर थे। हिन्दी लिखने में सिद्धहस्त और अपने विषय के निष्णात विद्वान् थे। जैसी सुगठित एवं सरल सुबोध शैली में एक वैज्ञानिक विषय को अपने सामान्य पाठकों के लिए प्रस्तुत किया, उस जमाने के लिहाज से वह एक करामात ही थी। अपने सभी लेखों के लिए वह चित्र, रेखाचित्र आदि स्वयं ही आर्टिस्ट को निर्देश देकर बनवाते थे। हमें यह आलिखित करते हुए बड़ी व्यथा हो रही है कि मिश्रजी असमय ही इस लोक से विदा हो गए और इस प्रकार हिन्दी की वेदी पर से एक प्रतिभावान् लेखक, जो आगे चलकर न जाने कितनी अमूल्य सेवा माँ भारती की करता, सदा के लिए उठ गया।)

डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल, एम. ए., एल–एल. बी., डी. लिट्., आचार्य, काशी–हिन्दू–विश्वविद्यालय तथा भूतपूर्व अध्यक्ष, पुरातत्व राष्ट्रीय संग्रहालय। (इतिहास, पुरातत्व, कलाशास्त्र, साहित्य, दर्शन, वेदविद्या, भाषाशास्त्र, लोकसाहित्य आदि विविध विधाओं में समान रूप से प्रभुत्व प्राप्त करने वाले अग्रवाल जी की ख़्याति का स्वर्ण–कलश पाणिनि की अष्टाध्यायी पर रचित उनका महान् गवेषणात्मक ग्रंथ 'पाणिनिकालीन भारत' हैं। वैदिक वाङ्मय और भारतीय संस्कृति के विवेचन मे आपने एक सर्वथा नवीन दिशा–निर्देश किया था। 'हिन्दी विश्व–भारती' के 'सत्य की खोज' तथा 'मानव विभूतियाँ' शीर्षक स्तम्भों के लिए आपने एक सिलसिलेवार निबन्धमाला लिखी थी, जो उनके कृतित्व का एक जाज्वल्यमान अंग हैं। द्विवेदी जी के साथ आपकी आजीवन प्रगाढ़ मित्रता रही। उनके देहान्त के उपरान्त लखनऊ में उनकी स्मृति में एक स्मारक़–संस्थान प्रस्थापित हुआ। उक्त संस्थान द्वारा द्विवेदी जी द्वारा सम्पादित एवं संकलित स्मारिकास्वरूप 'ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरण' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की गई। उसके 'प्राक्कथन' में द्विवेदी ने इस प्रतिभाशाली सरस्वतीपुत्र के जीवन और कृतित्व का जो मूल्यांकन विवेचन प्रस्तुत किया है, वह पठनीय हैं।

निश्चय ही, 'हिन्दी विश्व–भारती' का यह परम सौभाग्य था कि ऐसे मनीषी का भी सहयोग इस ज्ञानाकोष के निर्माण में प्राप्त हुआ था।)

श्री रामनारायण कपूर, बी. एस–सी. (मेटलर्जी), धातु–वैज्ञानिक, सलाहकार, इंडियन टैरिफ बोर्ड। (आपने भूविज्ञान विषयक लेख हिन्दी में लिखकर एक नूतन विधा का उद्‌घाटन किया। 'हिन्दी विश्व–भारती' के साथ आपका सम्बन्ध उसके जन्मकाल से ही रहा और उसके दो स्तम्भों 'पृथ्वी की रचना' तथा 'धरातल की रूपरेखा' की बड़ी ही योग्यता के साथ विषयवस्तु की आपूर्ति की जिम्मेदारी आपने ली और उसे पूरी किया।)

डॉ0 शिवकण्ठ पांडेय, एम. एस–सी., डी. एस–सी., आचार्य, वनस्पति विज्ञान, लखनऊ एवं सागर–विश्वविद्यालय। (आप वनस्पति–विज्ञान के माने हुए विद्वान् थे। आपके विषय में विस्तृत जानकारी पहले दी जा चुकी हैं। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है थी कि आपकी मृत्यु असमय और असाधारण परिस्थितियों में हुई। जीवन के अन्तिम चरण में आप मानसिक व्याधि से पीड़ित रहे।)

श्री श्री चरण वर्मा, एम. एस–सी. एल–एल. बी0, प्राध्यापक, जीव–विज्ञान, प्रयाग विश्वविद्यालय। (हिन्दी में लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण एवं प्रकाशन के प्रति आपका बहुतं पहले से ही उत्साह रहा। आप प्रयाग की सुप्रसिद्ध 'विज्ञान परिषद्' नामक संस्था एवं उसके मुखपत्र 'विज्ञान' की गतिविधियों में उमंग के साथ भाग लेते थे। 'हिन्दी विश्व–भारती' को आपने बड़े हर्षपूर्वक अपना सहयोग प्रदान किया और उसके दो स्तम्भों 'हम और हमारा शरीर' तथा 'जानवरों की दुनिया' की सामग्री लिखने का दायित्व ग्रहण किया। आप एक अनुभवी होम्योपैथ भी थे और बिना मूल्य उपचार की सेवा में व्यस्त रहते थे। कुछ वर्ष, हुए आपका देहावसान हो गया।)

श्री द्वारकाप्रसाद, एम. ए., भू. रिसर्च स्कॉलर, कलकत्ता–विश्वविद्यालय। (आप बिहार के लोहारदगा स्थान के निवासी हैं। हिन्दी में कुछ उपन्यास आपने लिखे हैं। 'हिन्दी विश्व–भारती' के लिए 'हमारा मस्तिष्क' स्तंभ के लिए आरंभ मे कुछ सामग्री श्री सुरेन्द्र बालूपुरी से (जो एक पत्रकार लेखक थे) लिखवाई गई थी। बाद में श्री द्वारका प्रसाद ने इस स्तंभ के अनेक लेख लिखे थे।)

ग्राहक जुटाने में व्यापक अभियान

'हिन्दी विश्व–भारती' के प्रस्तावित पचास भागों (या अंको) में से पहला अंक अगस्त 1939 ई0 में प्रकाशित हुआ। चूंकि योजना यह थी कि ऐसे अंक क्रमशः प्रति माह सिलसिलेवार निकाले जाए और (जैसे मासिक पत्रिकाओं का पेशगी चंदा लेकर उनके अंको को प्रतिमास स्थायी ग्राहकों को भेजा जाता है, उसी प्रकार से) इस ग्रंथ के भागों को डाक से उन उन लोगों को नियमित रूप से भेजा जाय, जो पेशगी चंदा देकर इसके स्थायी ग्राहक बन जाएँ, अतः एक तो डाक विभाग में इसको एक पत्रिका के रूप में रजिस्टर्ड कराया गया था, जिससे कि भेजने का डाकखर्च रियायती मूल्य पर कम लगे, दूसरे इसकी शक्ल–सूरत भी एक उच्च कोटि की मासिक पत्रिका जैसी ही रखी गई थी। इस योजना को सफल बनाने के लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक था कि जैसे भी बने, ऐसे प्रकाशन का स्वागत करने वाले संभ्रान्त व्यक्तियों, शिक्षण संस्थाओं तथा उसके प्रचार एवं विक्रय मे योग दे सकने वाले बुकसेलरों से संपर्क

स्थापित किया जाय। अधिक से.अधिक स्थायी ग्राहक इस ग्रन्थ के जुटाए जाएँ, ताकि इसकी आर्थिक भित्ति मजबूत बने। आगे के भाग नियमित रूप से निकाले जाएँ। कहना न होगा कि कागज, ब्लॉक, चित्र, लेख सभी मुद्दों में इस ग्रंथ को निकालते समय पहले से ही पूँजी लगाना होती थी तथा इस प्रकार किए गए लागत के खर्च का रूपया पुनः झोली में तभी आकर कमी–पूर्ति कर सकता था, जबकि ग्रंथ के विक्रय से रकमें आना शुरू हो। केवल प्रेस ही (हमारे चरितनायक का वर्चस्व उस पर होने के कारण) एक ऐसा मुद्दा था, जिसे छपाई की लागत का चुकादा कुछ रूककर भी किया जा सकता था।

जिस प्रकार एक ओर द्विवेदी जी ने तन्मय होकर एक भाग का काम समाप्त होते ही दूसरे भाग की तैयारी में अपने आपको जी–जान से जुंटा दिया, उसी प्रकार से राजेश्वर बाबू, ग्रंथ के विक्रय की व्यवस्था में पूरे जोर–शोर के साथ लग गए। उन्होंनें युद्ध स्तर पर कार्यारंभ करके स्थायी ग्राहक जुटाने का एक विराट अभियान देखते ही देखते खड़ा कर दिया। इसके लिए कई योग्य व्यक्तियों को (कुछ को निश्चित वेतन और अन्य को दैनिक भत्ते पर) उन्होंने काम पर लगाया। 'हिन्दी विश्व–भारती' के तब तक प्रकाशित अंकों एवं उसके विज्ञप्ति–पत्र आदि को लेकर. ये विभिन्न प्रदेशों का दौरा करने लगे तथा बड़ी मुस्तैदी से ग्राहकों की संख्या बढ़ाने लगे। इन भ्रमणकर्ता प्रचारकों में सर्वश्री विजयानन्द शर्मा, मंगलदेव शर्मा, 'चन्द्र', चन्द्रिकाप्रसाद पाठक आदि अग्रणी थे। श्री विजयानन्द ने ठेठ लाहौर, कराची और काठमांडू तक की दौड़ लगाई थी ओर बहुत से स्थायी ग्राहक उन क्षेत्रों में बनाए थे। श्री मंगलदेव शर्मा जी और श्री चन्द्र ने मध्यप्रदेश एवं राजस्थान को नापा–जोखा था। श्री चन्द्रिकाप्रसाद ने (जो कि पहले अवध प्रिंटिंग वर्क्स' और बाद में 'हिन्दी विश्व–भारती कार्यालय' में कर्मचारी रहे थे) पूर्वीय उत्तर प्रदेश एवं बिहार में जाकर सैकड़ों ग्राहक बनाए थे। और भी कई प्रचारक इस कार्य में समय–समय पर लगाए गये थे, जिनमें से कुछ ने दिल्ली और तत्कालीन अविभाजित पंजाब में, कुछ ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश में, कुछ ने बंबई मे तथा अन्य कुछ ने हैदराबाद जैसे अहिन्दी क्षेत्र को सँभाला था। यहाँ तक कि एक उत्साही सज्जन (जो भी बर्मा में रहे थे) रंगून जाते समय वहाँ भी 'हिन्दी विश्व–भारती' की प्रचार सामग्री साथ में ले गए थे और संभवतः वहाँ भी कुछ ग्राहक उन्होंनें बनाए थे।

परन्तु ग्राहक बनाने में कदाचित् सबसे मार्के का काम कलकत्ते के सुप्रसिद्ध 'विशाल भारत बुक डिपो' के अध्यक्ष ठाकुर अयोध्यासिंह जी ने किया था। वहाँ के सम्पन्न मारवाड़ी घरों के द्वार खटखटाकर सैकड़ों स्थायी ग्राहक 'हिन्दी विश्व–भारती' को अकेले हाथ ही उन्होंने दिए थे। इसी तरह से, गोरखपुर के बुजुर्ग नेता पं० गौरी शंकर मिश्र ने भी (जो एक प्रतिष्ठित कांग्रेसी रह चुके थे तथा बाद में 'हिन्दू महासभा' में सम्मिलित हो गए थे) इस ज्ञानकोश के ग्राहक बनाने में बड़ा मूल्यवान सहयोग दिया था। फिर, हजारों शिक्षण–संस्थाओं, बुकसेलरों एवं सम्भ्रान्त व्यक्तियों के पते प्राप्त करके अपने कलापूर्ण विज्ञप्ति–पंत्र के साथ–साथ कई परिपत्र भी समय–समय पर डाक से भिजवाए थे, जिनका उत्साहपूर्ण प्रत्युत्तर. प्राप्त हुआ था। सारांश यह है कि 'हिन्दी विश्व–भारती' को केवल प्रकाशित करके ही हमारे चरितनायक अपने कर्तव्यों की इतिश्री नहीं मान बैठे थे, अपितु एक व्यवहारिक व्यवसायी की भाँति उसके विक्रय एवं प्रचार में भी आरम्भ ही से वह संलग्न हो गए थे।

'हिन्दी विश्व–भारती' की ग्राहक–संख्या समय बीतते हजारों तक पहुँच गई थी। इसका रेकॉर्ड एवं संपूर्ण ब्योरा रखने के लिए एक बड़ा सजिल्द रजिस्टर बनवाया गया था जो बैकों की खाता–बही (लेजर) की शक्ल का और लगभग एक रिम कागज का था।[1] उसमें ग्राहकों के नाम पते के साथ इस बात का भी रेकॉर्ड रखा जाता था कि किसने कितने अंको का पैसा पेशगी दिया है तथा किसको कितने अंक भेजे जा चुके हैं। बाद में जब फुटकर अंको को पाँच–पाँच करके जिल्दों में बॉध कर भी बेचना शुरू किया गया, तो उनका भी हिसाब इसी रजिस्टर में रखा जाने लगा। इस प्रकार, यह रजिस्टर क्या था, मानो 'हिन्दी विश्व–भारती' का वैसा ही बही–खाता था, जैसा कि तीर्थों के पंडे लोग अपने जजमानों के नाम पतों का ब्योरा रखने के हेंतु पीढ़ी–दर–पीढ़ी तक सुरक्षित बनाए रखते हैं।

1. जब रजिस्टर 'हिन्दी विश्व–भारती कार्यालय' में एक पृथक मेज पर रखा रहता था। उसके ऊपर खाकी जीन का एक गिलाफ चढ़ा हुआ था। एक बार द्विवेदी जी के एक सजातीय बुजुर्ग, जो संस्कृत के विद्वान थे, उनसे मिलने आए। द्विवेदी जी उन्हे 'हिन्दी विश्व–भारती' एवं अन्य प्रकाशन उन्हें दिखाए। उक्त पुस्तके देख चुकने पर वह सज्जन बोले–'द्विवेदी जी महाराज। ये सब ग्रंथ तो देखे, पंर यह बताइए कि यह ग्रंथराज क्या है?' उनका इशारा उक्त रजिंस्टर के प्रति था। द्विवेदी जी हँसे बिना न रह सके और जब रजिंस्टर उन सज्जन को खोलकर दिखाया गया, तो वह झेंपे ही नहीं, अचकचाए भी।

'हिन्दी विश्व-भारती' पर प्राप्त विशिष्ट जनों के आशीर्वचन और सम्मतियाँ

अपनी विषय–सामग्री और साज–सज्जा के लिहाज से 'हिन्दी विश्व–भारती' के आरंभ के अंक ऐसे प्रभावोत्पादक तथा उच्च कोटि के थे कि जिस किसी ने भी उन्हें देखा, वह उनके प्रति आकर्षित हुए बिना नहीं रहा। इस संबध में वे आशीर्वचन एवं प्रशंसा के शब्द यहाँ उद्धृत करना असंगत न होगा, जो कि देश के समादृत लोकनायकों एवं विद्वदजनों ने इस ग्रंथ के निर्माताओं को (उसके शुरू के अंकों को देखकर) प्रेषित किए थे–

राष्ट्रनायक पं0 जवाहर लाल नेहरू, "मेरी राय में यह एक बहुत ही आकर्षक और बड़ी योग्यता तथा सजधज के साथ तैयार किया हुआ प्रकाशन हैं।"

डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन्–"मुझे तनिक भी संदेह नहीं है कि यह ग्रंथ, विषयों के टेकनिकल या सूक्ष्म बातों को छोड़कर जनता को वैज्ञानिक ढंग से शिक्षा देने में बहुत अधिक सहायक होगा।"

बाबू शिवप्रसाद गुप्त–"'हिन्दी विश्व–भारती' के लिए अनेक बधाई हैं। अंग्रेजी की उपासना छोड़ अब हिन्दी अपनाई जाने लगी, यह बड़ा शुभ लक्षण हैं। भगवान् आशीर्वाद दे कि वह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़े।"

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (बंबई के गृहमंत्री, तदुपरान्त उ0 प्र0 के राज्यपाल)–"मैंने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक 'हिन्दी विश्व–भारती' का पहला भाग पढ़ा। यह कृति उन लोगो के एक वास्तविक अभाव की पूर्ति करेगी, जिनके लिए इसी तरह के अंग्रेजी प्रकाशन सुगम नहीं हैं। यह ग्रंथ इसी प्रकार के भारतीय साहित्य की वृद्धि में भी सहायक होगा।"

डॉ0 संपूर्णानन्द (उत्तर प्रदेश के शिक्षा–मंत्री, तदुपरान्त मुख्यमंत्री)–"मैने 'हिन्दी विश्व–भारती' का पहला अंक देखा हैं। चित्रसंचय, छपाई और विषय–चयन सभी दृष्टियों से यह उपादेय है और भाषा भी सर्वथा विषयानुकूल हैं। इसके प्रकाशन और संपादन से संबंध रखने वाले बधाई के पात्र हैं। आशा है कि उत्तरांक भी पहले अंक के पूर्णतया समकक्ष होंगे।"

बाबू श्री कृष्णसिंह (बिहार के प्रथम मुख्यमंत्री)–"मैंने 'हिन्दी विश्व–भारती' के दो अंक देखे हैं। जो कुछ मैं देख पाया हूँ, उससे मैं समझता हूँ कि संपूर्ण हो जाने पर यह ग्रंथ हिन्दी जगत के एक वास्तविक अभाव की पूर्ति करेगा। यह अंग्रेजी साहित्य के 'बुक ऑफ नॉलेज' के नाम से पुकारी जाने वाली कृतियों के समान होगा और हिन्दीभाषी जनता के लिए सच्चे अर्थ में उपादेय होगा। ऐसे ग्रंथ को हर पुस्तकालय में और विशेषतया माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की लायब्रेरियों में अवश्यमेव स्थान मिलना चाहिए। मुझे आशा है कि इस उपयोगी ग्रंथमाला के प्रकाशकों को पर्याप्त संरक्षण और आश्रय जनता से प्राप्त होगा।"

श्री सत्यनारायण सिंह (बिहार के लोकनेता: तदुपरान्त केन्द्रीय मंत्री एवं कालान्तर में मध्य प्रदेश के राज्यपाल)–'हिन्दी विश्व–भारती' का प्रथम अंक देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह सर्वाङ् सुन्दर हैं। छपाई और कागज इत्यादि के संबंध में तो कुछ कहना ही अनावश्यक हैं। हिन्दी में कोई भी पत्र–पत्रिकाओं का गेट–अप ऐसा आजकल नहीं हैं। यदि 'विश्व–भारती' के भविष्य के अंक भी वर्तमान के अनुसार निकलेंगे, तो यह हिन्दी संसार की एक थांती होगी और एक बड़ी कमी को पूरा करेगी। मैं हृदय से इसकी शुभकामना चाहता हूँ।"

डॉ0 अमर नाथ झा (प्रयाग–विश्वविद्यालय के उप–कुलपति) "'हिन्दी विश्व–भारती' का प्रथम अंक आया और मैंने बड़ी रुचि से और ध्यान से इसके लेखों को पढ़ा। यदि इसी योग्यता से इसका सम्पादक होता रहा तो इसमें सन्देह नहीं कि अन्य भाषाओं के एनसाइक्लोपीडिया से किसी अंश में यह कम नही रहेगा। आपकी सफलता की कामना प्रत्येक हिन्दी–हितैषी के चित्त मे हैं। मेरा नाम ग्राहको में लिख लीजिए।"

डॉ0 जवाहर लाल रोहतगी (कानपुर के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता, तदुपरान्त प्रदेश के मंत्री) ये शब्द उन्होंने अपनी पुत्री सुश्री सरोजिनी, प्रिंसिपल, गवर्नमेण्ट गर्ल्स डिग्री कालेज, ग्वालियर, को जेल से प्रेषित अपने एक पत्र में लिखे थे।

"तुम कुछ मैगजीन तो मँगवाती ही होगी। क्या 'हिन्दी विश्व–भारती' भी मँगवाती हो? आजकल हम लोग यहाँ (जेल में) इसे देख रहे हैं। बहुत अच्छी सीरीज निकल रही हैं। 17 अंक निकल चुके हैं। 50 निकलने हैं। ... अगर तुम नहीं मँगवाती हो तो यह मँगवाने के योग्य हैं। इसका कार्यालय चारबाग, लखनऊ में है। इन्हीं लोगों ने एक पुस्तक 'भारत–निर्माता' भी निकाली हैं। यह भी अच्छी हैं।"

इस प्रकार अपने जन्म के प्रथम प्रहर में ही 'हिन्दी विश्व–भारती' की भूरि–भूरि प्रशंसा सभी स्तर के विद्वद्जनो ने मुक्त कंठ से की, और एक दृष्टि से इस ज्ञानयज्ञ का यह पूर्वार्द्धकाल पूर्णरूपेण सफलता से अभिभूत रहा।

■■■■■

'शालीन एवं व्यवहार कुशल द्विवेदी जी

श्याम नारायण कपूर

साहित्य निकेतन, 37/50 शिवाला रोड, कानपुर-208001

श्री कृष्ण बल्लभ द्विवेदी से मेरा सम्पर्क, लगभग 60 वर्ष पूर्व उनके पत्रों द्वारा हुआ था। साक्षात्कार और व्यक्तिगत परिचय उसके कुछ समय बाद ही। "विश्वभारती" ज्ञानकोश के सम्पादन कार्य हेतु उन्हें विज्ञान सहित विभिन्न विषयों के लेखकों का सहयोग प्राप्त करना था। तब तक मेरे भी बहुत से लेख विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके थे। अतः उन्होंने मुझसे भी सहयोग देने का अनुरोध किया। और लखनऊ आकर पूरी योजना समझाकर परामर्श देने को भी कहा।

सम्पादन कार्य का कोई विशेष अनुभव न होने पर भी वे जिस निष्ठा, उत्साह और अपनी कुशाग्र बुद्धि से इस कार्य में संलग्न थे उससे योजना की सफलता में संदेह का कोई कारण न था। विश्वभारती कोश को कई अंको में क्रमबद्ध रूप से प्रकाशित करने का निश्चय किया गया थ। मैंने सहर्ष सहयोग देने की तो सहमति दी, परन्तु मेरी अपनी विवशता यह थी कि नियमित रूप से, क्रमबद्ध और ठीक समय पर लेख देना दुस्साध्य था। अतः उन्हें केवल दो निबन्ध दे सका। योजना की सफलता में सहभागी बनने के उद्देश्य से और द्विवेदी जी के विशेष आग्रह से अपने छोटे भाई (अब स्वर्गीय) राम नारायण कपूर से उनकी इच्छानुसार कार्य पूर्ति की व्यवस्था की। राम नारायण बनारस हिन्दू वि0 वि0 से माइनिंग–मेटेलर्जी में बी. एस–सी थे। उन्होंने तद्विषयक एवं रसायन सम्बन्धीं निबन्ध उन्हें नियमित रूप में दिये। उस समय तक "साहित्य निकेतन" की स्थापना हो चुकी थी अतएव ज्ञानकोश की बिक्री की कानपुर में व्यवस्था हमारे द्वारा ही की गई। इस बीच उनके चारबाग स्टेशन के निकट स्थित कार्यालय में जाकर बराबर मिलना–जुलना होता रहा। द्विवेदी जी जैसे शालीन व्यवहार कुशल व्यक्ति से मित्रता हो जाना सहज ही था।

■■■■■

द्विवेदी जी के दो पत्र-प्रो० मिश्र जी के नाम

[1]

62 वर्षों की साहित्य–साधना का आलेख

■ लेखन ■

भारत-निर्माता
(चरित–कोष : 2 भाग)
हिन्दू-धर्म
(गोरव–ग्रंथ – 2 खंड)
ज्ञानलोक
(विज्ञान–कोष : 4 भाग)
प्रकाशक की जीवन-यात्रा
(जीवन–चरित)
जीवन-डगर
(आत्मकथा : अप्रकाशित)
गृह-नक्षत्र
(खगोल–विज्ञान : पुरस्कृत)
(अन्य अनेक कृतियाँ भी)

■ संपादन ■

हिन्दी विश्व-भारती
(10 खंड : भारत–सरकार के अनुदान से प्रकाशित विश्व–कोष)
अभ्युदय
(महामना मालवीय जी का पत्र)
ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरण
(स्मारिका)

मनु-निकुंज, सी-45 (ए)
निराला नगर,
लखनऊ - 226020

दिनांक 31-1-1998

सेवा में,

श्री शिवगोपाल मिश्र
प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद – 211002

सप्रेम नमस्कार!

आपका 1 जनवरी का कृपापत्र मुझे–डाक व्यवस्था की गड़बड़ी के कारण–24 जनवरी को मिला। सभी पत्र इसी प्रकार तीन–चार सप्ताह के बाद आ रहे हैं। इसीलिए प्रत्युत्तर देने में यह विलम्ब हुआ है। नव वर्ष की शुभकामनाओं के लिए आभारी हूँ। मेरी भी मंगल कामना स्वीकार करें।

आपने यह नहीं सूचित किया है कि प्रस्तावित "हिन्दी में विज्ञान–लेखन के 100 वर्ष" कोई ग्रंथ है अथवा आपके "विज्ञान" पत्र की विशेष प्रस्तुति अथवा है कोई रिपोर्ट! खैर, दुविधा यह पैदा हुई है कि कितना स्थान उक्त प्रकाशन में मेरे विज्ञान विषयक हिन्दी के कृतित्व को मिल पाएगा? यदि सिर्फ कुछ पंक्तियाँ इस संबंध में समाविष्ट करके मात्र एक औपचारिकता पूरी की जा रही हो, तो बेहतर होगा कि आप मेरे कृतित्व के संबंध में कुछ भी न दें। कारण, मेरा इस संबंधी कृतित्व दस–पाँच पंक्तियों में कदापि

समा पाने वाला नहीं है। हिन्दी में पहली, "बुक ऑफ नॉलेज" की टक्कर की और भारतीय परिप्रेक्ष्य में उससे कहीं अधिक गौरवशाली, भेंट "हिन्दी विश्व–भारती" के रूप में मैंने दी है। इस अनुष्ठान में मैंने अपने जीवन के 25 वर्ष गलाए! सन् 1935 ई0 में कार्यारंभ किया। 50 मासिक पत्रिकाकार अंकों में (20 x 30 अठपेजी आकार के) सवा–सवा सौ पृष्ठों के भागों के, 6,000 पृष्ठों में यह विराट प्रकाशनानुष्ठान नियोजित हुआ था। इसकी कल्पना मेरे मन में तब पहले पहल उभरी थी जब 1925–27 ई0 में, "इन्दौर क्रिश्चियन कॉलेज" के अपने शिक्षाकाल में, "बुक ऑफ नॉलेज" के साक्षात्कार का सुयोग मुझे कॉलेज–लायब्रेरी में मिला और मैं उस प्रस्तुति पर इतना रीझ गया कि नित कॉलेज के वाचनालय में बैठकर मैंने उस अंग्रेजी के ज्ञान–विज्ञान–कोश के सभी खंडों को आद्योपान्त एकाग्र होकर पढ़ डाला।

परन्तु जहाँ उसकी लेखन शैली, उसकी पठन सामग्री, उसके हजारों चित्रों ने मुझे मंत्र मुग्ध कर दिया, वहाँ अंत में यह देखकर क्षोभ से ग्रस्त हो गया मैं कि भारत की अस्मिता, भारतीय संस्कृति, विश्व प्रांगण में भारत की ज्ञान–विज्ञान की देन तथा इतिहासपटल पर भारतीय इतिवृत्त की अनेकानेक सहस्राब्दियों पूर्व अंकुरित जड़ों की घोर उपेक्षा, अवहेलना तथा किसी दर्जे तक जानबूझकर प्रस्तुत की गई सरासर गलत छवि से कलुषित है यह ग्रंथ भी– जैसे कि साम्राज्यवादियों द्वारा अन्य विधाओं में भी साजिश करके रंगे–पोते गए हैं। तभी से मन में यह हूक कुलबुला रही थी कि काश हिन्दी में हम अपनी ही मातृबोली में, अपने ही विद्वानों द्वारा, अपने ही शुद्ध भारतीय दृष्टिकोण को उजागर करते हुए, कोई अपनी ही "बुक ऑफ नॉलेज" गढ़ें, प्रकाशित करें और भारतभूमि के जन–जन के द्वार तक उसे पहुँचाएँ।

इसी स्वप्न को मन में बसाकर मैं सरकारी नौकरी का लोभ ठुकराकर, हिन्दी–लेखन के आँगन में उतरा। दो वर्ष इलाहाबाद के दारागंज क्षेत्र में, तत्कालीन लघु हिन्दी प्रकाशकों का सान्निध्य प्राप्त कर, खपाए। तब दो वर्ष हिवेट–रोड–शिवचरण लाल रोड पर खीमा खड़ा करके, "अभ्युदय" साप्ताहिक पत्र के संपादन में बिताए। तब नेहरूजी की एक कृति के हिन्दी के अनुवाद–कार्य के संदर्भ में आया लखनऊ! यहीं मेरा सपना पूरा होना था। जिस प्रेस में जवाहर लाल जी की उक्त कृति छपी, उसके मालिक श्री राज राजेश्वर प्रसाद भार्गव (यद्यपि पहले सरकार द्वारा स्वीकृत पाठ्य पुस्तकों के प्रकाशन से जुड़े हुए थे) चाहते थे कोई मार्के की हिन्दी की सुकृति प्रकाशित करना। मैंने तब उन्हें अपनी यह हिन्दी में "बुक ऑफ नॉलेज" जैसी कृति निकालने की योजना अवगत कराई तो उछल पड़े। परन्तु जब मैंने बतायी कि उस सस्ते जमाने में भी दो–ढाई लाख रूपए से कम रकम इस अनुष्ठान में नहीं लगेंगे तो बेचारे ठंडी साँस भरकर रह गए। कारण, इतनी बड़ी रकम मुहैया करना उनके बूते की बात नहीं थी। अंत में, हम दोनों ने (चूँकि हर हालत में इस ज्ञानकोश को निकालने पर हम तुले हुए थे) काफी सोच–विचार करके यह रास्ता निकाला कि एकदम समूचा ग्रंथ निकालकर जनता के द्वार तक पहुँचाने के बजाये, उसे 50 अंकों (भागों) में निकाला

जाय। साथ ही, उसका बारह महीने के बारह अंकों का मूल्य (मासिक पत्रिकाओं की तरह) पेशगी लेकर आर्थिक भित्ति मजबूत की जाय। इस तरह योजना का शिलान्यास हो गया।

कुछ धनराशि तो भार्गवजी ने उपलब्ध करा ही दी। हम कलकत्ता गए। वहाँ से कुछ नई, कुछ पुरानी अंग्रेजी की ढेर सी पुस्तकें विज्ञान, कला, इतिहास, साहित्य, देशविदेश तथा अन्य विषयों की खरीद कर लाए। इस तरह एक छोटी–सी लायब्रेरी अपने लिए खड़ी की। कई अंग्रेजी की "एनसाक्लोपीडिया" के सैट थे। "वन्डर्स ऑफ द पास्ट", "हिस्ट्री ऑफ द नेशन्स" "एच0 जी0 वेल्स" की "सायन्स ऑफ लाइफ" का मूल रंगीन चित्रमय संस्करण आदि–आदि कितनी नायाब और अप्राप्य लुप्त ग्रंथ हमने इस तरह मुहैया किए। हिन्दी में तो ऐसे ग्रंथों का तब दिवाला था। तब भी डॉ0 गोरख प्रसाद की हिन्दी की पुस्तक "सौर परिवार" जब हाथ लगी, तो चित्त प्रफुल्लित हो उठा। इस नाते कि यदि गोरख प्रसाद जी का सहयोग हमारे ज्ञानकोश के "खगोल विज्ञान" (वैज्ञानिक ज्योतिष) के लिए प्राप्त हो सके, तो हमारे एक स्तम्भ का प्रश्न बखूबी हल हो जायेगा। और, सचमुच हम भाग्यशाली बने, जब कि इलाहाबाद पहुँचकर नए कटरे में उनकी कोठी पर मुलाकात की। वह तत्काल राजी हो गए। शर्त केवल एक ही रखी कि चित्रों की आपूर्ति में वह कतई मदद नहीं देंगे। क्योंकि वह काम काफी मुश्किल और सिरदर्द पैदा करने वाला हैं। मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि इस बारे में कोई चिन्ता न करें। मैं सब बखूबी निबटा दूँगा। और, लखनऊ लौटते ही मैंने "माउंट विल्सन वेधशाला", "यर्किज वेधशाला", "लिक वेधशाला", "ग्रिनिच वेधशाला", कोदईकनाल वेधशाला आदि से पत्र व्यवहार किया। महीने भर बाद ही, जो–जो फोटो ग्राफ (Astronomical) मैंने माँगे थे, वे सब उन्होंने अमूल्य ही मुझे भेज दिये। यह तो केवल एक ही विषय की बात हुई। इसके अलावा, भौतिकी, रसायन विज्ञान, भू–विज्ञान, भूगोल, वनस्पति विज्ञान, प्राणिशास्त्र, शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, पुरातत्त्व, साहित्य, कला, देश–विदेश, दर्शन, अध्यात्म, जनजातियाँ (नृतत्त्व शास्त्र) आदि–आदि सभी मुद्दों पर मैंने अंततः अपने–अपने विषय के निष्णात विद्वानों को आखिर काफी दौड़धूप करके जुटा ही लिया। इसमें डॉ0 रामप्रसाद त्रिपाठी (इतिहास), डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल (दर्शन एवं अध्यात्म), डॉ0 राधाकमल मुखर्जी (समाजशास्त्र), डॉ0 शिवकंठ पांडेय (वनस्पति विज्ञान), डॉ0 डी0 एन0 मजूमदार (नृतत्वशास्त्र) डॉ0 भगवतशरण उपाध्याय (संस्कृत वाङ्मय), डॉ0 सत्यनारायण (जनजातियाँ), श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव (भौतिकी तथा आविष्कार), श्री मदनगोपाल मिश्र (रसायन विज्ञान), श्री श्रीचरण वर्मा (प्राणिशास्त्र एवं शरीर विज्ञान), श्री वीरेश्वर सेन (कला पुरातत्व), श्री राम नारायण कपूर (भू–विज्ञान एवं भूगोल) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कुछ हिन्दी में लिखाते थे। कुछ अंग्रेजी में। एक विद्वान् बंगला में। पर सबके लेख अत्यन्त सारगर्भित और जैसा मैं चाहता था, वैसी ही सामग्री से भरपूर प्राप्त होते रहे। चित्र बनवाने के लिए टी0 के0 मिश्र, बागची, गिरीश आदि कई आर्टिस्टों को मैंने जुटाया। इस प्रकार यह महायज्ञ उद्घाटित हुआ।

कहानी तो इतनी दीर्घकाय है कि पत्र व्यवहार के द्वारा उसे सुना पाना संभव नहीं। वह इतने बड़े आयाम में फैली हुई है कि उस पर एक ग्रंथ लिखा जा सकता है। और, आपको अचंभा होगा यह जानकार कि एक ग्रंथ इसी मुद्दे को लेकर लिख भी डाला है मैंने। "प्रकाशक की जीवन–यात्रा" (कहानी एक प्रकाशक की) शीर्षक यह लगभग तीन सौ पृष्ठों की पुस्तक कई वर्ष हुए दिल्ली के लब्ध प्रतिष्ठ प्रकाशक "राजपाल एण्ड सन्स" ने निकाली थी। चूँकि उसमें आधे से ज्यादा मेरे कृतित्व का जिक्र था, मेरा नाम भी पग–पग पर आया था, अतः मैंने ग्रंथ–लेखक के बतौर "एक सहयोगी साथी" के छद्म नाम का प्रयोग किया। पर जो मेरी लेखन शैली से सुपरिचित हैं, वे तो फौरन् पहचान गए कि यह मेरी ही कृति है। बहरहाल, उसमें मैंने "हिन्दी विश्व–भारती" की पूरी कहानी सुनाकर उसकी तथा अपनी अन्य मशहूर कृति "भारत–निर्माता" की पूरी विषय–सूचियाँ तक दे दी है। वैसी यह पुस्तक मेरे अनन्य मित्र तथा राजराजेश्वर प्रसाद भार्गव का मेरे द्वारा लिखित जीवन–चरित भी लिए हुए है। अब मेरे पास भी इसकी कोई प्रति बची नहीं है। कारण, कई पत्रों के संवाददाता मुझ पर लेखादि लिखने के लिए ले गए, तो फिर लौटाई ही नहीं।

आपको यह सारा पुराण इसलिए लिख डाला है कि आप मेरी और मेरे कृतित्व की पृष्ठभूमि का कुछ अनुमान पालें, तभी "हिन्दी विश्व–भारती", "ज्ञानलोक", "ग्रह–नक्षत्र" आदि मेरी विज्ञान विषयक प्रस्तुतियों की बात छेड़ें। वस्तुतः आपके "विज्ञान परिषद्" संस्थान से मैं परिचित हूँ। उस युग में जब कि मैंने 1939 ई0 में "हिन्दी विश्व–भारती" का अनुष्ठान आंरभ किया था, डॉ0 सत्य प्रकाश, डॉ0 गोरख प्रसाद, प्रो0 सालिगराम भार्गव आदि इस परिषद् के पुरोधा जैसे विद्वानों से मैंने संपर्क स्थापित किया था। इलाहाबाद जाकर उनसे मिला भी था। ये लोग "विज्ञान" पत्रिका ज्यों–त्यों उस कठिनाई के समय में चला भी रहे थे। वे इस नाते वंदनीय हैं।

"हिन्दी विश्व–भारती" और उसके साथ मेरी भी पर्याप्त चर्चा पत्र–पत्रिकाओं में हो चुकी है। परन्तु जहाँ तक "हिन्दी साहित्य के इतिहासों" का प्रश्न है, उन्होंने (चाहे वे राम चन्द्र शुक्ल हों, चाहे धीरेन्द्र वर्मा आदि) केवल कविता, कथा–कहानी, उपन्यास, नाटक, आदि को ही "साहित्य" माना– "विज्ञान" को एक "अछूत" की तरह सदैव अपने आकलन से दूर रखकर स्पर्श तक नहीं किया। यह इन हिन्दी के स्वनिर्मित ठेकेदारों की संकीर्ण दृष्टि के कारण ही हुआ है। वे पक्षपात के धुँआसे में लिपटे लोग भी रहे हैं। इसकी एक मिसाल यह है कि ज्ञानमंडल (काशी) द्वारा प्रकाशित और धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा, धर्मवीर भारती के भारी भरकम संपादन–मंडल द्वारा प्रस्तुत "हिन्दी साहित्य कोश" के लगभग हजार पन्नों में मीरा का कहीं नाम भी नहीं है, जबकि हिन्दी के टटपूँजिए कवियों–तुक्कड़ों के नाम भरे पड़े हैं। बन्धुवर मिश्रजी! क्या कहें हिन्दी के इन आढ़तियों के बारे में? अरे, आपके इसी इलाहाबाद के उस पत्रकारिता के सुनहले युग में–जब "सरस्वती" और "चाँद" जैसी विलक्षण मासिक पत्रिकाएँ हिन्दी का गौरव निखारे हुए थीं "चाँद" में (अक्टूबर 1930 ई0 के अंक में) मेरी एक लंबी कविता "पागल प्यार" के नाम

से प्रकाशित हुई थी। तब संपादक थे "अछूत अंक" और "पत्रांक" जैसी चाँद की मार्के की प्रस्तुतियों की भेंट देने वाले दिग्गज पं0 नंद किशोर तिवारी! न मैं उनसे परिचित था, न वह मुझसे! एडमांस्टन रोड पर स्थित "चाँद" कार्यालय के बरामदे में लगे एक बक्से में मेरी उस कविता की पांडुलिपि छोड़ दी गई थी। बस, देखा अक्टूबर के अंक में 180 पंक्तियों और 30 पदों की मेरी वह प्रथम काव्य–प्रस्तुति चाँद के आरंभ के दो–तीन पृष्ठों में छापकर मुसकरा रही है। तिवारी जी ने उसे इतना सम्मान प्रदान किया कि अपने "संपादकीय" तक को आगे के पृष्ठों में धकेल दिया और इस कविता को अपने आगे की कुर्सी पर बिठा दिया। जयशंकर प्रसाद की प्रसिद्ध कविता "आँसू" मेरी इस कविता के प्रकाशन के वर्ष भर बाद सन् 1931 ई0 में प्रकाशित हुई थी। कई साहित्य मर्मज्ञों ने बातचीत के दौरान् मुझ से कहा है कि आपकी उस कविता में जिस भावधारा का प्रवाह है, उसीकी छाया सी "प्रसाद" की उक्त बहुचर्चित प्रस्तुति "आँसू" में परिलक्षित होती है। स्पष्ट है कि मैं तो "आँसू" पढ़ने गया नहीं! क्योंकि वह बाद को निकली। पर किसने मेरी उस काव्य प्रस्तुति पर कभी किसी हिन्दी साहित्य के इतिहास में दो शब्द भी लिखे? इसी तरह से 1931 ई० में "सरस्वती" में "हमारी सभ्यता" शीर्षक मेरी एक गद्यलेख प्रकाशित हुआ था। तब स्वनाम धन्य श्री पदुमलाल पन्नालाल बक्षी उस विख्यात पत्रिका के संपादक थे। उन्होंने ही युगपुरूष पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी से उस पत्रिका का संपादन–दायित्व ग्रहण किया था। उन्होंने मुझसे सर्वथा अपरिचित होते हुए भी मेरे उस लेख को अविकल "सरस्वती" में मात्र छापा ही नहीं, अपितु जब एक बार लखनऊ पधारे, तो मुझे ढूँढते हुए मेरे आवास स्थल पर आए और मुझे निहाल किया। पर क्या 1931 ई० के मेरे उस मार्के के निबन्ध पर कभी हिन्दी के इन आज के पारखियों ने कभी गौर किया भी ?

यह सब कुछ इसलिए लिख गया हूँ कि जब–तब बीते युग के मुझ जैसे सरस्वती आराधक के द्वार तो लोग (चटपटी सामग्री के भूखे आज के पत्र–संवाददाताओं की तरह) खटखटाने लगे हैं अवश्य, परन्तु कितने मेरे या मेरे समकालीन बीते जमाने के, हिन्दी की अट्टालिका की चौकी की ईंटे रोपने वालों को उचित कुंकुम–तिलक लगाते हैं? अरे, डॉ० गोरख प्रसाद जैसे महान् विज्ञान–विधा के पुरोधा तक का कहीं जिक्र तक नहीं। ऐसे हिन्दी के साहित्य–आकलन को धिक्कार ही है।

मेरे पास "हिन्दी विश्व–भारती" और "ज्ञानलोक (चार भाग) तथा "ग्रह–नक्षत्र" की एक–एक नमूने की प्रतियाँ शेष बची हैं। कभी लखनऊ पधारने का कष्ट करें, तो आकर उनका मुआइना कर लें। वे अपना परिचय स्वयं ही दे देगी। मैं क्या दूँ इस पत्र में ?

भवदीय

कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

■■■■■

मनु-निकुंज-
C-45/A, निराला नगर,
लखनऊ - 226 020

दि० 13 जनवरी, 1999 ई०

आदरणीय

डॉ० मिश्र जी,

सप्रेम नमस्कार !

आपका सौहार्दपूर्ण, सान्त्वनाप्रद पत्र पाकर, शोकप्रहर में, बड़ा दिलासा पाया। अनुज का अपने सामने ही उठ जाना दारूणतम घटना हुआ करती है। फिर वह तो मेरे ज्येष्ठतम पुत्र के तुल्य ही थे, जिन्हें दस वर्षों तक मैंने क्या इन्दौर में, क्या इलाहाबाद में, और क्या लखनऊ में, अपने वक्षःस्थल से मानो चिपकाये रखकर, शिक्षा संपन्न कराई थी। मैंने जीवन में अनेक आघात सहे हैं, सो यह चोट भी सह ली है।

इलाहाबाद तो उनकी यशोदातुल्य धात्री ही की भूमिका अदा करने वाला गुरूकुल सा रहा था। वहीं दारागंज के हिन्दी साहित्य सेवियों के घनिष्ट संपर्क में आकर तथा उनका वात्सल्य प्राप्त करके, उन्होंने कविता लिखने का प्रथम पाठ पढ़ा। संभवतः गंगाजल का छह वर्षों तक पुनीत आचमन ही उनकी प्रतिभा को अंकुरित करने एवं उसे पुष्पित–पल्लवित करने का प्रमुख उपादान बना हो!. आपके श्वसुर डॉ0 उदय नारायण तिवारी जी से उन्हें अपार स्नेह प्राप्त हुआ था। वह उन्हें "राम चन्द्र" नाम से ही पिता की तरह पुकारा करते थे। "प्रदीप" उपनाम भी उन्होंने वहीं दारागंज में ही अपनाया था। पिछले दिनों, इलाहाबाद के अपने उन छात्र–जीवन के दिनों क. अति भावुक होकर वह स्मरण किया करते थे। वस्तुतः इलाहाबाद का पानी ही ऐसा है कि तनिक हिन्दी के प्रति रूझान होने वाला हर व्यक्ति विवश हो निज लेखनी माँ भारती के स्तवगान हेतु संधानने लगता है।

उन्होंने जीवन के अंतिम परार्द्ध में आकर, अपूर्व यश–गौरव–प्रशस्ति प्राप्त की। अभी भी पत्र–पत्रिकाओं में उनकी प्रशस्ति में कुछ न कुछ छपना–प्रकाशित होना ही रहना है। विगत कुछ वर्षों से, अपनी अन्न–नलिका Esophagus की दुस्साध्य व्यांधि से ग्रस्त रहने के बावजूद, उन्होंने 84 वर्ष आयुपटल पर उपलब्ध किए, यह कम कमाई उनकी नहीं रही। वह 1915 में जनमे थे और मुझ से छह वर्ष उम्र में छोटे थे।

मैं भी 89 वर्ष की आयु–प्राचीर को लाँघकर, अब 90 वें वर्ष के जीवन–काल–खंड में, परसों 11 जनवरी को कदम रख चुका हूँ। काया तो मेरी भी जर्जर हो गई है, परन्तु लिखना अभी भी जारी है। गत 10 जनवरी को ही अपने जन्मंदिवस से एक दिन पूर्व, स्थानीय रामकृष्ण मिशन द्वारा, स्वामी विवेकानन्द के 136 वें जन्मदिवस के उपलक्ष में आयोजित, "राष्ट्रीय युवा दिवस" की अध्यक्षता के हेतु आमंत्रित होकर, मोहल्ले ही में "स्वामी विवेकानन्द पॉलीक्लिनिक" के सभागार में पहुँचा था और अपनी ही आवाज में एक संभाषण देकर आधुनिक भारत के उन राष्ट्रगुरू को

अपनी श्रद्धांजलि समर्पित कर आया था। "हिन्दू–धर्म" के आखिरी पन्ने भी लिख रहा हूँ। प्रूफ़ भी देख रहा हूँ।

आशा है, आप सपिरवार स्वस्थ–सानन्द हैं। आपके द्वारा आयोजित मेरे कृतित्व पर "विज्ञान" के जिस विशेषांक का मुद्रण हो रहा है, उसकी सौहार्द–प्रति की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा में रहूँगा।

नववर्ष की बधाई के लिए, धन्यवाद सहित, मेरी ओर से भी प्रस्तुत संवत्सर, में आपकी सपरिवार सुख–समृद्धि की कामना इस पत्र के द्वारा प्रेषित कर रहा हूँ। आपके लिए यह वर्ष (एवं आगे के वर्ष भी) भूरि–भूरि मंगलमय हों। शुभं भवतु।

स्नेहाधीन

कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

■■■■■

शोक समाचार

अत्यन्त दुख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि विज्ञान परिषद् के पूर्व प्रधानमंत्री एवं वर्तमान कोषाध्यक्ष प्रो० डी० डी० नौटियाल का दिनांक 1 फरवरी 1999 को प्रातः 5 बजे हृदयगति रुक जाने से असामयिक निधन हो गया। मृदु स्वभाव वाले प्रो० नौटियाल इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति शास्त्र विभाग के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके थे। विज्ञान परिषद् के अतिरिक्त प्रो० नौटियाल नेशनल साइंस एकेडमी, भारतीय वनस्पति सोसाइटी, पेलियोबॉटिनीकल सोसाइटी, इण्डियन फर्न सोसाइटी तथा सोसाइटी आफ इण्डियन प्लांट टेक्सोनोमिस्ट के मानद सदस्य थे। वे वीरबल साहनी पुरा वनस्पति शास्त्र शोध परिषद के सदस्य भी थे।

प्रो० नौटियाल के असामयिक निधन से विज्ञान परिषद् को अपूरणीय क्षति हुई है। दिनांक 6 फरवरी 1999 को विज्ञान परिषद् कार्यकारिणी की आवश्यक बैठक आयोजित की गई जिसमें 'विज्ञान' के पूर्व सम्पादक श्री प्रेम चन्द्र श्रीवास्तव को सर्वसम्मत्ति से कोषाध्यक्ष नियुक्त किया गया तथा प्रो० नौटियाल की परिषद् के प्रति की गई निष्ठापूर्ण सेवा की सराहना की गई। अन्त में दो मिनट का मौन रखकर प्रो० नौटियाल को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

डॉ० मणि के नाम द्विवेदी जी का प्रेरणाप्रद पत्र

मनु-निकुंज
C-45/A, निराला नगर,
लखनऊ - 226 020

दि० 3 जनवरी, 1999

प्रतिष्ठा में,

डॉ0 दिनेश मणि, संपादक, "विज्ञान",
विज्ञान–परिषद् (प्रयाग), महर्षि दयानन्द मार्ग,
इलाहाबाद 211002

आदरणीय बन्धुवर!

सप्रेम नमस्कार! 23 जनवरी, 99 के कृपापत्र के लिए आभारनत हूँ। विगत 11 जनवरी को आयुपटल का 89 वाँ लाँघकर, 90 वें वर्ष के काल खण्ड में कदम रख चुका हूँ। अतः जरा की जकड़ और तीव्र हो गई है। ऐसे में आपके इस अनुरोध को शिरोधार्य करना मेरे लिए दुस्साध्य है कि आज के परिवेश में हिन्दी में विज्ञान–विधा की परिस्थिति पर कोई लम्बा लेख लिखूँ। फिर मैं इतना एकान्तवासी हो गया हूँ कि आज वैज्ञानिक स्तर पर हिन्दी लेखन में क्या कुछ हो रहा है, इसकी जानकारी मुझे नहीं है। अतः "पत्रं पुष्प" के बतौर, इसी पत्र के रिक्त स्थान पर एक लघु लेखन–प्रस्तुति सँजोकर आपकी चाह की आपूर्ति की है। आपको यह जँचे, तो "विज्ञान" के उस विशेषांक में, जिसे मेरे कृतित्व पर आयोजित कर अनुग्रहीत किया है मुझे आपने, यथास्थान दे सकते हैं। आशा है, अंक प्रकाशित होने पर, एक–दो कॉपियाँ मुझे डाक से भेजने की कृपा करेंगे।

भवदीय
कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

69 वर्षों की साहित्य–साधना का आलेख

▪ लेखन ▪

भारत-निर्माता
(चरित–कोष : 2 भाग)
हिन्दू-धर्म
(गोरव–ग्रंथ – 2 खंड)
ज्ञानलोक
(विज्ञान–कोष : 4 भाग)
प्रकाशक की जीवन-यात्रा
(जीवन–चरित)
जीवन-डगर
(आत्मकथा : अप्रकाशित)
गृह-नक्षत्र
(खगोल–विज्ञान : पुरस्कृत)
(अन्य अनेक कृतियाँ भी)

▪ संपादन ▪

हिन्दी विश्व-भारती
(10 खंड : भारत–सरकार के अनुदान से प्रकाशित विश्व–कोष)
अभ्युदय
(महामना मालवीय जी का पत्र)
ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरण
(स्मारिका)

उन्हें शत-शत प्रणाम,
जिन कर्मयोगियों ने हिन्दी-विज्ञान-विधा की नींव डाली!

आज से 86 वर्ष पूर्व हिन्दी में विज्ञान की विधा को उभारने के सद्उद्देश्य से, प्रयाग–विश्वविद्यालय के विज्ञान–संकाय के कुछ गुरुवरों ने, उस विद्यानगरी में, "विज्ञान परिषद्" के नाम से एक संस्था का शिलारोपण तों देती रही हो, न वे उससे कभी लेते रहे हो। किया था। तब दो वर्ष बाद, उसी संस्था के तत्त्वावधान में "विज्ञान" नामक आज की हमारी यह जानी–मानी पत्रिका निकलना शुरु हुई थी। प्रयाग तो हिन्दी की लब्धप्रतिष्ठ मासिक पत्रिकाओं का प्रमुख प्रकाशन–केन्द्र रही है। सत्तर वर्ष पूर्व, जब मैं प्रयाग–विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा हेतु प्रविष्ट हुआ, तब "सरस्वती", "चाँद" और "गृहलक्ष्मी" के साथ–साथ यह "विज्ञान" पत्रिका भी हिन्दी–भक्तों के लिए सुपरिचित बन चुकी थी। तब "अभ्युदय" के संपादन से जब जुड़ा मैं, तो यह पत्रिका नियमित रूप से मुझे पढ़ने को मिला करती थी। क्योंकि वह हमारे कार्यालय में आया करती थी।

1938 ई0 में जब मैंने हिन्दी में (अंग्रेजी के "बुक ऑफ नॉलेज" जैसे ज्ञान–विज्ञान–कोश से टक्कर लेने में सक्षम) एक बहुखण्डी लोकरंजक कोश निकालने की योजना बनाई और उसके लिए उपयुक्त लेखकों की तलाश में निकला, तो सबसे पहले पहुँचा इलाहाबाद। वहाँ डॉ0 गोरखप्रसाद, डॉ0 सत्यप्रकाश और डॉ0 शालिग्राम भार्गव के द्वार मैंने जा खटखटाए, जिनके बारे में "विज्ञान" से ही यह जानकारी मुझे मिल पाई थी कि इलाहाबाद–युनिवर्सिटी के ये प्रोफेसर वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लिखने की क्षमता रखते हैं। डॉ0 गोरखप्रसाद तो तत्काल मुझे सहयोग प्रदान करने को तैयार हो गए। परन्तु डॉ0 सत्यप्रकाश और डॉ0 शालिग्राम भार्गव ने इस भारी–भरकम लेखन–कार्य का दायित्व ग्रहण करने में अपनी असमर्थता जताई। हाँ, उन्होंने एक नाम– श्री चरण वर्मा का– सुझाया, जो मेरे लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। वह लिखते तो अंग्रेजी में (जिसका अनुवाद मुझे करना पड़ता था), परन्तु विषय को सांगोपांग सँभालते थे और ऐसे उत्साही लेखक थे। कि एक साथ दो विभागों की सामग्री की आपूर्ति उन्होंने की थी– "जन्तुविज्ञान" और "शरीर विज्ञान" की! इस प्रकार, "हिन्दी विश्व–भारती" शीर्षक अपने उस ज्ञान–विज्ञान–कोश को गठित करने में इलाहाबाद का अति मूल्यवान सहयोग मुझे उपलब्ध हुआ था। और इस नाते "विज्ञान" पत्रिका का भी कम ऋणी नहीं हूँ मैं– क्योंकि हिन्दी में विज्ञान विद्या के समर्थ लेखकों की जानकारी तो पहले पहल पाई थी हिन्दी की इसी अग्रदूततुल्य आदि पत्रिका से मैंने!

सोचता हूँ, भला, कौन सी वह प्रेरणा की टकोर थी, जिसने विश्वविद्यालय के इन अर्थसंपन्नज्ञान–गुरुओं को अपनी उन दिनों की निश्चिन्तता की जीवनचर्या का अवकाश का अधिकांश समय मटरगश्ती या खेल–मनोरंजन में व्यतीत करने के बजाय, कागज और कलम के उस श्रमसाध्य गोरखधंदे को ही अर्पित करने में जुटा या था– जो "विज्ञान" पत्रिका या "हिन्दी विश्व–भारती" ज्ञान–विज्ञान–कोश की पठन–सामग्री की आपूर्ति हेतु, हिन्दी गद्य में बोधगम्य विज्ञान–विषयक प्रस्तुति के अथक व्यायाम में निहित था। उन्हें अर्थ के पटल पर इस श्रम का

पारिश्रमिक मिलता ही था भला, क्या और कितना? मैं आज यह खुलासा कर दे रहा हूँ कि "हिन्दी विश्व–भारती के एक मुद्रित पृष्ठ के लिए, डॉ0 गोरखप्रसाद, डॉ0 रामप्रसाद त्रिपाठी, डॉ0 राधाकमल मुखर्जी, डॉ0 डी0 एन मजूमदार, डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल और अन्य सभी लेखकों को मात्र तीन रूपए प्रति 700 शब्दों की आपूर्ति हेतु प्रकाशक दिया करते थे। और, "विज्ञान" पत्रिका तो एक धेला भी कदाचित् अपने गण्यमान्य लेखकों को न तो देती रही हो, न वे उससे कभी लेते रहे हों।

फिर, कौन सा वह धक्का था, जिसके आवेग में ये युनिवर्सिटियों के प्रकाण्ड विद्वद्वर अपने–अपने विषयों के शास्त्रीय ग्रंथों का मेज पर अंबार लगाकर, देर रात तक दिया जलाकर, सामने रक्खे कोरे कागज के दस्तों पर अपनी कलम सरसराते और कभी–कभी तो निर्धारित समय पर स्वयं ही अपने लेखन को लखनऊ में मेरे यहाँ आकर अपने–अपने लेख मुझे दे जाते थे। मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा था कि "हिन्दी विश्व–भारती" की "इतिहास की पगडंडी" स्तभ की सामग्री की आपूर्ति का दायित्व ग्रहण करने वाले डॉ0 रामप्रसाद त्रिपाठी, लूकरगंज के अपने बँगले के मध्य कक्ष में फर्श पर चटाई बिछाकर, आसपास विश्व–इतिहास के न जाने कितने ग्रंथों का अंबार लगाए, स्वयं बनारसी लाल अँगोछा लपेटे और मात्र बनयाइन पहने, जून महीने की उस घोर गरमी की ऋतु में (जब बाहर प्रचण्ड लू चल रही थी) "हिन्दी विश्व–भारती" के लिए लेख लिखने में जुटे हुए थे। उन्हें जो पारिश्रमिक एक लेख के निमित्त इस ज्ञानकोश के प्रकाशक से मिलना था, वह तो इतना भी नहीं हुआ करता था, जितना कि उनके नित के पान खाने पर खर्च होता था।

इसी तरह से, डॉ0 डी0 एन0 मजूमदार, श्री वीरेश्वर, सेन, डॉ0 शिवकण्ठ पांडे, श्री मदन गोपाल मिश्र, श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव, श्री राम नारायण कपूर, डॉ0 सत्यनारायण, श्री ब्रज मोहन तिवारी आदि मेरे अन्य गण्यमान्य लेखक भी जुटकर अपने–अपने लेख लिखते। समय पर मेरे पास भेजते। और, कभी–कभी तो स्वयं मेरे घर पर आकर वह लेखन–सामग्री दे जाते थे। यही नहीं, डॉ0 डी0 एन0 मजूमदार (जो अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के नृतत्त्व–विज्ञान के माने–जाने विद्वान् थे) अपने लेखन से संबंधित फोटो–चित्र तक दे जाते थे। और यही डॉ0 शिवकण्ठ पांडे भी (जिनसे विज्ञान–जगत् के महामनीषी डॉ0 बीरबल साहनी के सुझाव पर वनस्पति–विज्ञान की संपूर्ण सामग्री मैंने लिखवाई थी) किया करते थे। वह अपने लेखों के तकनीकी रेखाचित्र स्वयं बनवाते थे। लखनऊ–विश्वविद्यालय के अपने सहयोगी संस्कृत के आचार्यों से विचार–विमर्श करके, वनस्पति–विज्ञान की अंग्रेजी की अथवा लैटिन की नाम–संज्ञाओं के संस्कृत रूपान्तर निर्धारित करते थे। और, इस प्रकार इस ज्ञान कोश की सामग्री की सर्जना में ऐसी उमंग स्फुरित करते थे, मानो किसी शोधपत्र की तैयारी में जुटे हों! उधर, इलाहाबाद में जन्तु–विज्ञान और शरीर–विज्ञान की पठन–सामग्री का दायित्व ग्रहण करने वाले श्री चरण वर्मा अपने चित्र स्थानीय चित्रकार श्री बागची से बनवाकर भेजा करते थे। और डॉ0 गोरखप्रसाद के निर्देश पर तो खगोल–विज्ञान के अनेकों प्रामाणिक (ग्रह–नक्षत्रों, नीहारिकाओं आदि के) फोटोग्राफ ठेठ अमेरिका की "माउण्ट विल्सन", "यर्किज" और "लिक" वेधशालाओं तथा ब्रिटेन की "ग्रीनिच" एवं स्वयं अपने देश की "कोदइकनाल"

वेधशाला से मैंने मँगवाकर, "आकाश की बातें" शीर्षक "हिन्दी विश्व–भारती" के तद्विषयक उनके द्वारा लिखित स्तंभ की चित्र–आपूर्ति की थी।

अरे, हिन्दी विज्ञान–विधा की नींव डालने वाले, आज से साठ वर्ष पूर्व के उन अपने महान् सहयोगियों की गौरवगाथा इस लघु लेख में शब्द बद्ध करूँ, तो कैसे करूँ मैं? और, किस बाट–बटखरे से तौलूँ हिन्दी की विज्ञान–वेदी के गौरव–संवर्धन में उन मनीषियों की भागीदारी को! श्रीमद्भगवद् गीता में कर्मयोग की उच्चतम गौरव–गरिमा उन्हीं महामनस्वियों को प्रदान की गई है, जो अनासक्त निष्काम भाव से, केवल अपना परम कर्त्तव्य मानकर, कर्म करते हैं। जो न तो फल की कामना करते हैं, न बदले में किसी प्रकार के पारिश्रमिक–पुरस्कार की। मात्र सेवा–भाव से अपना कर्म करते और उसे परम उपास्य परमात्मा को अर्पित करके ही निज को कृतकृत्य मानते है। मैं तो हिन्दी की विज्ञान–वेदी को अपनी प्रतिभा के श्रद्धा–सुमन अर्पित करके मुखरित–आलोकित करने वाले, "हिन्दी विश्व–भारती", "विज्ञान" आदि को साकार बनाने वाले, आधुनिक भारत के पुनरुत्थान–यज्ञ के इन पुरोधाओं को वैसे ही "निष्काम कर्मयोगी" मानकर, शत–शत प्रणाम निवेदित करता हूँ। यद्यपि आज विडंबना हमारे लिए यह भी है कि आयात की हुई एक विदेशी भाषा– "अंग्रेजी" जो कि इस भूमि के कोटि–कोटि जनों के लिए सर्वथा अजनबी बोली है, जीवन की अनेक वीथिकाओं पर छाई हुई है। वह हमारी अस्मिता के पुण्य पुरातन कलेवर में अपने पंजे गढ़ाए हुए है, जिससे हमारी अपनी बोलियाँ पनप नहीं पाती, न अपनी अंतर्निहित शक्ति, क्षमता, प्रतिभा का जौहर पूर्णता के साथ दरशा पाती हैं वे। परन्तु इससे हमें हताश होकर हाथ नहीं टेक देना चाहिए। जो बीज शुद्ध, दोष रहित, प्राणशक्ति से ऊर्जित हुआ करते हैं, वे देर–सबेर उगेंगे अवश्य! इसी चिरन्तन विश्वास को लेकर, हमें हिन्दी की विज्ञान–वेदी की अमर ज्योति को द्युतिमान–दीप्तिमान बनाए रखने हेतु कोई प्रमाद अपने ऊपर हावी न होने देने का संकल्प लेकर, इस वैदिक प्रयाग गीत को निनादित करते हुए निरंतर आगे कदम बढ़ाते रहना है :–

"आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वातिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निवद्यमानस्य चराति चरतो भगः।।
चरैवेति चरैवेति।।

(ऋग्वेद का "ऐतरेय ब्राह्मण", 3/1/3)

(अर्थात्, बैठे रहने वाले का भाग्य बैठा रहता है। उठकर चलने वाले का नसीब आगे बढ़ने लगता है। सोनेवाले का भाग्य सोता रह जाता है। चलते रहने वाले का भाग्य उत्तरोत्तर अग्रगामी होता रहता है। अतः चलते रहो! चले चलो! आगे कदम बढ़ाते रहो।)

।।इतिशम्।।

-कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

■■■■■

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पता:

डॉ० दिनेश मणि, डी० एस०-सी०
संपादक विज्ञान
विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

स्वर्णिम अतीत, स्वर्णिम भविष्य

सपना जो साकार हुआ।

उर्वरक उद्योग का मुख्य उद्देश्य, भारत को उर्वरक उत्पादन के क्षेत्र में आत्म–निर्भर बनाना था। फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की सही समय पर तथा वांछित मात्रा में उपलब्धता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से 1967 में इफको की स्थापना हुई। इफको के चार अत्याधुनिक संयंत्र गुजरात में कलोल व कांडला तथा उत्तर प्रदेश में फूलपुर व आंवला में कार्यरत हैं। इतना ही नहीं, इफको ने विश्व में सबसे बड़ी उर्वरक उत्पादक संस्था बनने के लिए अपनी ''विज़न फॉर टुमारो'' योजना को कार्यरूप देना आरम्भ कर दिया है। इफको ने सहकारिता के विकास में सदैव उत्कृष्ट भूमिका निभाई है। गुणवत्तायुक्त उर्वरकों की आपूर्ति से लाखों किसानों को हर वर्ष भरपूर फसल का लाभ प्राप्त हो रहा है तथा भूमि की उर्वरा शक्ति भी बरकरार रखी जा सकी है।

इफको सही अर्थों में भारतीय किसानों का तथा सहकारिता का गौरव है।

इंडियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड

34, नेहरु प्लेस, नई दिल्ली–110 019

INTERADS/D/98
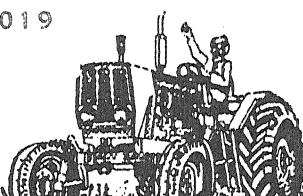
परिषद की स्थापना 10 मार्च
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 84 अंक 12
मार्च 1999
मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत,
1000 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

■

प्रकाशक
डॉ० शिव गोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

■

सम्पादक
डॉ० दिनेश मणि, डी० एस–सी०

■

मुद्रक
अनिल
अनिल प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद

■

इस अंक में

सम्पादकीय

सच कहा जाय तो मानव सभ्यता का विकास विज्ञान की उन्नति और उपयोग की कहानी है। जिन–जिन देशों की सभ्यता विकसित हुई, फैली और फली–फूली, उन सबके पीछे विकासशील मानव की अग्रतर बढ़ने की तीव्र आकांक्षा तो थी ही, साथ–साथ विज्ञान का सहारा भी था। आज भी यदि मानव अपने जीवन के स्तर में सुधार करना चाहे, तो विज्ञान का सहारा अवश्य लेना पड़ेगा। जब से मनुष्य ने आग जलाना सीखा, तब से वह विज्ञान की सहायता लेता चला आया है। आग को मनुष्य का पहला आविष्कार कहा गया है। आग के आविष्कार के बाद अब तक अनगिनत वैज्ञानिक आविष्कार एवं अनुसंधान हो चुके हैं जिनसे मनुष्य ने अपना जीवन–स्तर सुधारा है और अपने कष्टों को कम किया है।

वैज्ञानिक अनुसंधान एवं आविष्कार चतुर्दिक बिखरी पड़ी प्रकृति के सही मर्म को समझते हुए सत्य का पता लगाने हेतु किए गये प्रयासों का फल है। वैज्ञानिक सत्य के पुजारी हैं। वे सत्य के भक्त हैं। सत्य की खोज में निस्वार्थ भाव से अपने सम्पूर्ण जीवन को अर्पित कर देने वाले विज्ञान वेत्ता उन काननचारी महात्माओं से कम नहीं जो निविड़–जंगलों में किसी वृक्ष की छाया में बैठकर सत्य की आराधना में अपना सम्पूर्ण जीवन खपा देते हैं। वे संसार में रहते हुए भी सांसारिक प्रलोभनों से मुक्त होकर सत्य की मंजिल तक पहुँचने तक को ही अपना लक्ष्य मानकर दिन और रात अपने प्रयास तथा प्रयत्न में लगे रहने की अतुल क्षमता रखते हैं। उनके जीवन में अनेक उतार–चढ़ाव आते हैं, ऐसी घड़ियां भी आती हैं जब उनको अपने सामने दूर क्षितिज तक अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ता है। निराशा के भी अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब वे यह अनुभव करने लगते हैं कि उनकी सब जीवन साधना व्यर्थ है ,फिर भी वह कभी निराश नहीं होते और अपने काम में लगे रहते हैं।

सौ बरस बाद की भाषा में,
लिखा कागज हूँ मैं।
आज क्या समझोगे,
यूँ देखने वालों मुझको।

दिनेश मणि

(डॉ० दिनेश मणि)

श्रद्धांजलि

स्मृति शेष प्रो० देवेन्द्र दत्त नौटियाल

(13 जुलाई 1934 - 1 फरवरी 1999)

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग , सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद - 211002

1 फरवरी 1999 'काला दिवस' महाकाल ने प्रो० नौटियाल को हम सब से छीन लिया। प्रयाग के रसूलाबाद घाट के पावन तट पर उनका पार्थिव शरीर देखते-देखते पंचतत्व में विलीन हो गया। सभी के नेत्र अश्रुपूरित। फिर भी जाने क्यों मन यह स्वीकार नहीं कर पाता कि प्रो० नौटियाल नहीं रहे।

प्रो० नौटियाल से मेरा परिचय मेरे सहयोगी श्री रमेश चन्द्र श्रीवास्तव जी के माध्यम से 1963 में हुआ था। प्रो० नौटियाल श्री रमेश चन्द्र जी के सहपाठी थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग में तब वे प्रवक्ता थे और मैं स्थानीय सी. एम.पी. डिग्री कॉलेज में। उनसे विश्वविद्यालय में प्रायः मुलाकात होती रहती थी पर, मुझे एक भी ऐसा अवसर याद नहीं आ रहा है जब उन्होंने मुझे बिना काफी या चाय पिलाये वापस आने दिया हो। बड़े स्नेह से मिलते थे, जैसे बड़ी पुरानी मित्रता हो।

अनेक बार प्रयोगात्मक परीक्षाओं में भी उनके साथ कार्य करने का मौका मिला। विद्यार्थियों के प्रति उनके हृदय में बड़ी ममता और करुणा थी। अपने से बड़े लोगों के प्रति उनके मन में आदर था। उन्होंने कभी भी अपने से वय में बड़े के सामने धूम्रपान नहीं किया।

प्रो० दिव्यदर्शन पंत, जिनके निर्देशन में उन्होंने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी, के लिए तो वे पुत्रवत थे। जहाँ कहीं भी प्रो० पंत को जाना होता था, प्रो० नौटियाल उन्हें अपनी मोटर से ले जाते थे और वापस भी लाते थे। गुरू के प्रति इतनी भक्ति विरले ही शिष्य में देखने में आती है।

प्रो० नौटियाल विभागाध्यक्ष थे। वनस्पति विभाग में प्रो० बीरबल साहनी की जन्मशती अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाये जाने की योजना बनी।

उन्होंने मुझसे प्रो० साहनी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर 'विज्ञान परिषद प्रयाग' से प्रकाशित मासिक 'विज्ञान' पत्रिका (जिसका मैं सम्पादक था) का एक विशेषांक निकालने का सुझाव रखा। मुझे संतोष है कि मैं 'प्रो० बीरबल साहनी स्मृति अंक' प्रकाशित कर उनकी इच्छा की पूर्ति कर सका।

बाद में मेरे निवेदन पर उन्होंने विज्ञान परिषद के प्रधानमंत्री का पद भी स्वीकार किया जब कि वे विभाग के कार्यों में अतिव्यस्त थे।

एक घटना ने तो मुझे अभिभूत ही कर दिया। कॉलेज की वनस्पति विज्ञान की प्रयोगात्मक परीक्षा संबंधी तिथियां निश्चित करने के लिए एक मीटिंग थी। मीटिंग समाप्त होने के बाद जब हम लोग कमरे से निकलने लगे तो उन्होंने मुझे द्वार नहीं खोलने दिया और स्वयं द्वारा खोला। बड़े लोगों के बड़प्पन की पहचान वास्तव में छोटे-छोटे कार्यों में झलकती रहती है। ऐसी विनम्रता के दर्शन दुर्लभ हैं।

हम लोग बचपन से सुनते आये थे कि वट वृक्ष के नीचे कोई और पौधा नहीं पनपता, किन्तु उन्होंने इसे झुठला दिया था। प्रो० पंत की देशे-विदेश में इतनी ख्याति है कि वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में वट-वृक्ष सदृश्य हैं। यह प्रो० नौटियाल की कर्मठता और शोध के प्रति लगन का ही परिणाम था कि उन्होंने अंतरर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की।

प्रो० नौटियाल ने एक से अधिक पादपशाखाओं में दक्षता प्राप्त की और उच्चस्तरीय शोध-पत्र प्रकाशित किए। मार्फोलॉजी, एनाटॉमी, पैलीनालोजी, पॉलिनेशन बायलोजी और पैलियोबॉटनी के वे विशेषज्ञ माने जाते थे। एक बार तो अंटार्कटिका खोजी अभियान दल में पैलियोबॉटनी (जीवाश्म विज्ञान) या फॉसिल बॉटनी के विशेषज्ञ के रूप में भी उनका चयन हो गया था, किन्तु कुछ अपरिहार्य कारणों से उन्होंने अंटार्कटिका जाने से मना कर दिया।

मुझे उनके निर्देशन में और निकट से कार्य करने का अनुभव तब हुआ जब वे 'विज्ञान परिषद प्रयाग' के प्रधानमंत्री और बाद में कोषाध्यक्ष थे। वे लोगों पर विश्वास करते थे और उनका विश्वास जीतते थे। उनके व्यक्तित्व को व्याख्यायित करने के लिए मेरे पास शब्दों का अभाव है।

नौटियाल जी का जन्म 13 जुलाई 1934 को पौड़ी जिले के गिरिगाँव नामक स्थान में हुआ था। पिता श्री जयदत्त नौटियाल और माता श्री बच्ची देवी के चार पुत्रों में उनका स्थान दूसरा था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा टेहरी गढ़वाल में हुई थी। उन्होंने बी.एस-सी. की डिग्री डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून और एम.सी-सी. की डिग्री 1957 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राप्त की। पी. एच.डी. की उपाधि और शिक्षण कार्य के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ही जुड़े रहे। इस प्रकार उच्च शिक्षा और कार्य क्षेत्र के लिए प्रयाग को चुना।

उनके 100 से अधिक शोधपत्र प्रकाशित हो चुके हैं, 15 शोध छात्रों ने उनके निर्देशन में पी.एच-डी. की उपाधि प्राप्त की है। 1961 में वनस्पति विभाग में वे प्रवक्ता नियुक्त हुए और 1988 में विभागाध्यक्ष बने। 1994 में उन्होंने अवकाश ग्रहण किया, किन्तु मृत्युपर्यन्त सक्रिय रहे।

प्रो० नौटियाल इण्डियन बोटैनिकल सोसाइटी, द पैलियोबोटैनिकल सोसायटी, द इण्डियन एकेडेमी ऑव साइन्सेज, सोसायटी ऑव इण्डियन प्लांट टैक्सोनॉमी, इण्डियन फर्न सोसायटी, विज्ञान परिषद प्रयाग, नेशनल एकेडेमी ऑव साइन्सेज जैसी अनेक विज्ञान संस्थाओं से जुड़े रहे। वे अनेक सर्विस कमीशनों, अनेक विश्वविद्यालयों में मेम्बर ऑफ बोर्ड और बीरबल

साहनी इंस्टीट्यूट ऑव पैलियोबॉटनी के परामर्शी भी थे। उनके बड़े भाई का स्वर्गवास हो चुका है। दो छोटे भाइयों में एक भारतीय सेना सेवा से अवकाश प्राप्त कर चुके हैं और दूसरे लखनऊ विश्वविद्यालय में रीडर हैं। उनकी सहधर्मिणी श्रीमती छाया शिक्षा विभाग में उच्च पद पर आसीन हैं, और दो संतानों में एक पुत्री तथा एक पुत्र है।

प्रो० नौटियाल स्वर्गवास से पूर्व संध्या पर हम लोगों के साथ थे। 'विज्ञान परिषद प्रयाग' की सभापति श्रीमती डॉ० मंजु शर्मा प्रयाग आई हुई थीं। उन्होंने हमें 6 बजे शाम का समय मिलने के लिए प्रसिडेंसी होटल में दिया था, जहाँ वे ठहरी थीं। उनसे मिलने प्रो० नौटियाल, प्रो० शिवगोपाल मिश्र, डॉ० दिनेश मणि, डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय और मैं गया था। वहाँ प्रो० एम.जी. के. मेनन और डॉ० मंजु शर्मा के पति डॉ० वी०पी० शर्मा, से भी हम लोगों ने विचार-विमर्श किया। होटल से बाहर आने के बाद प्रो० नौटियाल ने मुझसे कहा "चलिए आप को छोड़ दूँ।" रास्ते में कई जगह मुझे रिक्शे दिखे। मैंने उनसे कई बार निवेदन किया कि अब मैं रिक्शे से चला जाऊँगा, पर वे नहीं माने और घर तक मुझे छोड़कर गए। पर मुझे क्या पता था कि वे यह संसार ही छोड़ देंगे।

यह सच है कि अब वे हमारे बीच नहीं रहे, किन्तु अपने मधुर व्यवहार के कारण हमारे दिलों में सदा जीवित रहेंगे। अपने पीछे अपने बन्धु-बान्धवों और मित्रों का विशाल समूह छोड़ गए हैं। कभी न विस्मृत होने वाली अपनी कीर्ति। इन शब्दों के साथ ही मैं अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। उनकी स्मृति को नमन करता हूँ प्रणाम करता हूँ।

❑❑❑

डॉ0 आत्माराम व्याख्यान सम्पन्न

दिनांक 21-2-99 को विज्ञान परिषद के सभागार में मध्यान्ह 12 बजे डॉ० आत्माराम व्याख्यान दिया गया। व्याख्यानदाता थे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के प्रकाशन निदेशालय के डॉ० रमेशदत्त शर्मा। व्याख्यान का विषय था - "ललित विज्ञान लेखन"। समारोह की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध गणितज्ञ प्रो० चन्द्रिका प्रसाद ने की। कार्यक्रम का शुभारम्भ माल्यार्पण के पश्चात् डॉ० प्रभाकर द्विवेदी की वाणी बन्दना से हुआ। अपने रोचक व्याख्यान में डॉ० शर्मा ने विज्ञान लेखन को प्रभावी बनाने के अनेक गुर बताये। उन्होंने कहा कि वैज्ञानिक आलेख लिखते समय कुछ किस्से, पौराणिक कथाएं, हास्य-व्यंग्य, सामयिकता, मानवीय संवेदनाओं का समावेश करके उसे रोचक बनाया जा सकता है। व्याख्यान के पश्चात् विज्ञान परिषद के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने सभी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया।

इस अवसर पर 'विज्ञान पत्रिका के फरवरी 1999 अंक - "पं० कृष्ण वल्लभ द्विवेदी सम्मान अंक" एवं "लोकप्रिय विज्ञान लेखन" (डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं डॉ० दिनेश मणि) पुस्तक का लोकार्पण डॉ० रमेशदत्त शर्मा द्वारा किया गया।

विश्लेषण

विज्ञान की पहली पत्रिका कौन सी?

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद, महर्षि दयानन्द मार्ग इलाहाबाद – 211002

अक्सर यह प्रश्न उठाया जाता रहा है कि आखिर विज्ञान की पहली पत्रिका कौन सी थी? यह प्रश्न विज्ञान पत्रकारिता का इतिहास लिखते समय और भी महत्वपूर्ण बन जाता है। डॉ० मिश्र के इस आलेख में इस विषय पर एक शोध परक विवेचना प्रस्तुत की गई है।

यद्यपि यह भलीभाँति ज्ञात है कि विशुद्ध विज्ञान विषयक हिन्दी की पहली पत्रिका विज्ञान परिषद प्रयाग से अप्रैल 1915 में प्रकाशित हुई किन्तु बारम्बार यह प्रश्न उठाया जाता रहा हे कि आखिर विज्ञान की पहली पत्रिका कौन सी थी यह प्रश्न विज्ञान पत्रकारिता का इतिहास लिखते समय और भी महत्वपूर्ण बन जाता है। कई बार प्रसंगों में अन्याय पत्रिकाओं को प्रथम विज्ञान पत्रिका होने के दावे किये गये हैं।

यदि हम विज्ञान की व्यापक परिधि को ध्यान में रखें तो इसके अन्तर्गत न केवल विशुद्ध विज्ञान अपितु अनुप्रयुक्त विज्ञान या व्यावहारिक विज्ञान भी आते हैं। और कृषि, आयुर्वेद तथा उद्योग जैसे लोकप्रिय विषयों के प्रति न जाने कब से जनसामान्य में रुचि रही है। उनकी रुचि को ही ध्यान में रखकर इन विषयों में प्रारम्भ से ही हिन्दी में पुस्तकें लिखी गई हैं और कुछ पत्रिकाएं भी निकाली गईं जो मासिक, अर्धमासिक या साप्ताहिक रूप से प्रकाशित होती रहीं। ऐसी पत्रिकाओं की कितनी प्रतियाँ प्रकाशित होती रहीं, इसका महत्व उतना नहीं है जितना कि उनके द्वारा जनसामान्य में विज्ञान का संचार है जो निश्चित रूप से उल्लेखनीय रहा है।

सौभाग्य से हिन्दी समाचार पत्रों की 1826 से 1925 तक की यानी 100 वर्षों की अवधि की सूची उपलब्ध है। जिसमें विज्ञान विषयक 46 पत्रिकाओं के नाम हैं। हो सकता है कि इस सूची के अतिरिक्त भी कुछ पत्रिकाएँ रही हों (यथा 1914 के पूर्व प्रकाशित "विज्ञान कल्पतरु" जिसका सम्पादन मुख्त्यार सिंह, एम.ए. वकील कर रहे थे)

इस सूची के अनुसार कृषि से सम्बद्ध प्रथम पत्रिका 1890-91 में प्रकाशित हुई–अमरावती से 'कृषि हितकारक' तथा नागपुर से 'गौरक्षा'।

आयुर्वेद के क्षेत्र में पहली पत्रिका 'आरोग्य दर्पण' प्रयाग से 1881 में निकली जबकि प्रायः "आरोग्य सुधानिधि" को प्रथम पत्रिका माना जाता है। इसका प्रकाशन 1901 में कलकत्ते से हुआ और सम्पादक थे जगन्नाथ शर्मा राजवैद्य। इस तरह बहुघोषित प्रथम पत्रिका "आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका" 1913 किसी भी दृष्टि से पहली विज्ञान पत्रिका नहीं हो सकती।

उद्यम या उद्योग विषय वस्तुतः व्यावहारिक विज्ञान है जिन्हें प्रौद्योगिकी का स्वदेशी संस्करण कह सकते हैं। इस क्षेत्र की पहली पत्रिका "उद्यम" है जो नागपुर से 1919 में प्रकाशित हुई। इसी नाम की अन्य पत्रिका 1922 में झांसी से और 1923 में कलकत्ता से प्रकाशित हुई।

इस तरह देखा जाय तो 'विज्ञान' के प्रकाशन से पूर्व विज्ञान विषयक अन्य 21 पत्रिकाएं निकल रही थीं। अतः हम किसे पहली पत्रिका कहें, यह अलग–अलग विषयों पर निर्भर करेगा। किसी एक पत्रिका को यह पद नहीं दिया जा सकता।

यह तथ्य है कि विज्ञान लोकप्रियकरण में इन प्रारम्भिक पत्रिकाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही होगी। उस काल के पाठकों के लिए विज्ञान जगत में झांकने के लिए ये ही साधन रहे हैं। उनके पाठक कृषि, स्वास्थ्य एवं उद्योग के विषय में इन्हीं से जानकारी ग्रहण करते रहे होंगे। यदि उस काल की छपी विज्ञान पुस्तकों को देखा जाये तो उनके विषय भी इन्हीं तीनों क्षेत्रों से सम्बद्ध मिलेंगे।

यहां यह बता देना आवश्यक है कि हिन्दी के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं में भी विज्ञान पत्रिकाएं छपने लगी थीं। उदाहरणार्थ मराठी में विज्ञान की पहली पत्रिका 1919 में, बंगला में 1928 में, मलयालम में 1908 में, कन्नड़ में 1918 में और तमिल में अपेक्षतया विलम्ब से 1949 में छपीं। हिन्दी इन सभी भाषाओं से आगे रही है और अब तो राष्ट्रभाषा के रूप में वह निश्चित रूप से बहुत आगे है।

मनोरंजनार्थ 1925 के पूर्व प्रकाशित विज्ञान पत्रिकाओं की सूची प्रस्तुत की जा रही है–

1925 के पूर्व की विज्ञान पत्रिकाएं

आयुर्वेद	जलालाबाद	1910
आयुर्वेद केसरी	कानपुर	1925
आयुर्वेद प्रदीप	मुजफ्फरपुर	1921
आयुर्वेद महासम्मेलन	दिल्ली	1913
आयुर्वेद मार्तण्ड	बम्बई	1911
आयुर्वेद विज्ञान	लाहौर	1927
आयुर्वेद रहस्य	जामनगर	1917
आरोग्य जीवन	लखनऊ	1889
आरोग्य दर्पण	प्रयाग	1881
आरोग्य सिन्धु	अलीगढ़	1913
आरोग्य सुधा निधि	कलकत्ता	1901
आरोग्य सुधाकर	मुजफ्फर नगर	1889
इलाज	प्रयाग	1923
उद्यम	नागपुर	1919
उद्यम	झाँसी	1922
उद्योग	कलकत्ता	1923
कन्या चिकित्सा	प्रयाग	1925
कन्या सर्वस्व	प्रयाग	1913
किसान	फतेहपुर	1919
किसान	उन्नाव	1920
किसान (साप्ताहिक)	प्रयाग	1921
किसान (पाक्षिक)	कानपुर	1924
किसान मित्र	पटना	1911
किसानोपकारक	प्रतापगढ़	1913
कृषि	आगरा	1918
कृषिहितकारक	अमरावती	1890/91
कृषि सुधार	मैनपुरी	1914

खेतीबाड़ी समाचार	इन्दौर	1924	वैद्यभूषण	लाहौर	1914
गौरक्षा	नागपुर	1891	वैद्य सम्मेल पत्रिका	प्रयाग	1966
गौसेवक	काशी	1894	सद्वैद्य	कौस्तुभ	1905
चिकित्सक	कानपुर	1917	सुधानिधि	प्रयाग	1910
धन्वन्तरी	अलीगढ़	1924	सुधासिंधु	प्रयाग	1908
भूगोल	प्रयाग	1924	स्वास्थ्य	कानपुर	1924
विज्ञान	प्रयाग	1915	स्वास्थ्य दर्पण	जबलपुर	1920
वैद्य	मुरादाबाद	1913	स्त्री चिकित्सक	प्रयाग	1911
विज्ञान	कल्पतरू	1914	हलधर	इटावा	1924
वैद्यकल्पदुम	अहमदाबाद	1916	हिन्दी वैद्यकल्पतरू	अहमदाबाद	1913

❑❑❑

"स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती स्मृति व्याख्यान सम्पन्न"

दिनांक 25-2-99 को विज्ञान परिषद प्रयाग के सभागार में छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर के कुलपति प्रो० के० बी० पाण्डेय द्वारा स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती स्मृति व्याख्यान दिया गया। व्याख्यान का विषय था–"शोध के क्षेत्र में हिन्दी"।

व्याख्यान के प्रारम्भ में माल्यार्पण के पश्चात् डॉ० प्रभाकर द्विवेदी जी द्वारा वाणी वन्दना प्रस्तुत की गई। व्याख्यानमाला के संयोजक एवं विज्ञान परिषद प्रयाग के प्रधानमंत्री ने व्याख्यान एवं व्याख्यानदाता का परिचय दिया। समारोह की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ एवं रसायन विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो० पूर्णचंद्र गुप्त ने की।

अपने रोचक व्याख्यान में प्रो० के०बी० पाण्डेय ने बताया कि विज्ञान में मौलिक शोध प्रकृति के रहस्यों को उजागर करने का प्रयास होता है। उत्कृष्ट शोध प्रकृति की निकटता में ही होता है। न्यूटन व आर्कमिडीज के सिद्धान्त प्रकृति की निकटता में ही खोजे गये थे। जब उत्कृष्ट शोध के लिए प्रकृति की निकटता इतनी महत्वपूर्ण है तो अप्राकृतिक भाषा किसी उत्तम शोध का माध्यम कैसे बन सकती है?

विदेशी भाषा को अपने वैज्ञानिक शोध का माध्यम बनाकर हमने अपना बहुत अहित किया है। हम सी०वी० रमन, चन्द्रशेखर तथा खुराना का उदाहरण देकर इस सत्य पर पर्दा डालने का प्रयास करते हैं किन्तु सत्य यह है कि इन महापुरुषों ने बाधा दौड़ दौड़ी है। यदि हमने हिन्दी अथवा अपनी भारतीय भाषाओं को विज्ञान के पठन–पाठन तथा वैज्ञानिक शोध का माध्यम बनाया होता तो हमारे पास अनेकानेक रमन, चन्द्रशेखर व खुराना होते।

अन्त में अपने अध्यक्षपदीय उद्‌बोधन में प्रो० पूर्णचन्द्र गुप्त ने हिन्दी द्वारा विज्ञान के क्षेत्र में विज्ञान परिषद की महत्वपूर्ण भूमिका की चर्चा की तथा सभी को अपनी वैज्ञानिक शोधों को हिन्दी में प्रकाशित करने का सुझाव दिया। व्याख्यान के समापन पर प्रो० शिवगोपाल मिश्र ने सभी के प्रति आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद दिया।

इस अवसर पर प्रो० चन्द्रिका प्रसाद, डॉ० उमेश, डॉ० एम० एम० राय, प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० दिनेश मणि, डॉ० आर० के० दुबे, डॉ० राणा कृष्णपाल सिंह, डॉ० अवनीश, डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय, डॉ० संजीव त्रिपाठी, अजय कुमार सहित अनेक लोग उपस्थित थे।

टर्मिनेटर बीज से उत्पन्न संकट

अजय कुमार
सीनियर लैब ऑफीसर, बायोफर्टिलाइजर यूनिट इफ़को, फूलपुर, इलाहाबाद (उ०प्र०)

पिछले एक–डेढ़ दशक से आनुवांशिकविदों द्वारा जैव तकनीक व आनुवांशिक अभियांत्रिकी के माध्यम से कृषि क्षेत्र में कई परिवर्तन आये हैं। इनमें से टर्मिनेटर जीन युक्त बीजों से उत्पन्न संकट एक गम्भीर बहस का रूप ले चुका है। वैज्ञानिकों का मत है कि आधुनिक कृषि में आनुवांशिक अभियांत्रिकी के बिना हम अनाज की पैदावार बढ़ाने के बारे में सोच भी नहीं सकते। लेकिन भारतीय कृषि का स्वरूप बदल देने की अपार संभावनाओं के होने पर इस तरह की फसलों से संबंधित हर तरह के अनुसंधान पर सरकार ने कड़े नियंत्रण लगा दिये हैं और उस पर कड़ी नजर रखी जा रही है।

अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिये खेती में उन्नत किस्मों का अत्यधिक महत्व होता है। पिछले एक–डेढ़ दशक से आनुवंशिकविदों द्वारा जैव तकनीक व आनुवंशिक अभियांत्रिकी के माध्यम से कृषि क्षेत्र में कई परिवर्तन आये हैं। इनमें से 'टर्मिनेटर जीन' युक्त बीजों से उत्पन्न संकट एक गंभीर बहस का रूप ले चुका है।

कहा जाता है कि अमेरिका की एक कम्पनी डेल्टा एंड पाइनलैंड तथा अमेरिकी कृषि विभाग के वैज्ञानिकों ने विकसित किया है और इस विचार के अनुसार टर्मीनेटर टेक्नोलॉजी में एक नहीं बल्कि तीन जीनों का उपयोग करना होगा। इनमें से पहला जीन बीज के अन्दर पनपते भ्रूण की अन्तिम अवस्था में सक्रिय होता है और एक ऐसा प्रोटीन बनाता है, जो कि भ्रूण की अंकुरण क्षमता को पूर्णतया समाप्त करदेता है। यह जीन कब सक्रिय हो इसका नियंत्रण रिकम्बाइनेज नामक एंजाइम से होता है, जिसे दूसरा जीन पैदा करता है। तीसरा जीन रिकम्बाइनेज का नियंत्रण करता है कि बस अब आगे नहीं बनाना । इस तरह एक त्रिजीनी ऋंखला डाली जाए, तब जाकर किसी भी फसल में 'टर्मीनेटर टेक्नॉलाजी' काम करेगी। रिकम्बाइनेज बनाने वाली जीन को अपना काम करने के लिये जीन को अपना काम करने के लिये एक उत्प्रेरक की भी जरूरत पड़ती है। यह उत्प्रेरण देता है एंटीबायोटिक टेट्रासाइक्लीन। किसानों को टर्मिनेटर टेक्नोलॉजी वाला बीज देने से पहले टेट्रासाइक्लीन के उत्प्रेरण से रिकम्बाइनेज एंजाइम का निर्माण शुरू हो जाता है। यह क्रिया बीज अंकुरित होते ही शुरू हो जाती है। यह बीज अंकुरित होकर बढ़ाता है और भरा पूरा पौधा बन जाता है। फल आते हैं और फिर दाने बनते हैं। इन दानों में भ्रूण की अन्तिम अवस्था के समय भ्रूण–कोशिकाओं में मौजूद रिकम्बाइनेज एंजाइम भ्रूण की अंकुरण क्षमता को नष्ट करने वाले प्रोटीन को बनाने वाले जीन को सक्रिय कर देता है। इस तरह इन दोनों को अग़र अगले साल बोया गया तो फिर वे अंकुरित नहीं होंगे, क्योंकि उनकी अंकुरण क्षमता 'टर्मिनेटर जीन' की क्रिया से नष्ट हो चुकी है।

सभी जीवित कोशिकाओं में डी०एन०ए० एक मुख्य जेनेटिक पदार्थ के रूप में पाया जाता है। यह एक द्विवलीयत एवं कुण्डलित सीढ़ी के समान रचना होती है जिसमें शर्करा तथा फास्फोट के अणु एकान्तर रूप से जुड़ कर सीढ़ी के बगल वाले लट्ठे बनाते हैं तथा दोनों ओर की श्रृंखलाओं के भस्म हाइट्रोजन बांड द्वारा जुड़कर चढ़ने वाले डण्डे ''एडीनिन थाइमिन'' अथवा ''गुआनिन–साइटोसिन'' के होते हैं जो चार प्रकार ए–टी, जीसी, टी–ए व सी–जी हो सकते हैं। एक डी०एन०ए० अणु में यह हजारों की संख्या में मिलते हैं। ए–टी, जी–सी, टी–ए व सी–जी के विभिन्न क्रमों के अनुसार डी०एन०ए० अणु असंख्य प्रकार के हो सकते हैं।यह डी०एन०ए० ही आर०एन०ए० तथा प्रोटीन बनाने का कार्य करता है और इस प्रकार उससे जीव का विकास होता है। अतः किसी जीव में लक्षणों का विकास ए–टी, जी–सी, सी–जी व टी–ए के क्रम पर निर्भर करता है जो सैकड़ों की संख्या में एक विशेष क्रम में मिलकर आनुवांशिक कूट की रचना करते हैं। ये शब्द ही केन्द्रक तथा कोशिकाओं की क्रियाओं पर नियंत्रण रखते हैं तथा इनके अनुसार ही लक्षण प्रगट होते हैं एटी व जीसी के कुछ सौ जोड़े मिलाकर एक जीन बनाते हैं तथा इन भस्म–युग्मों के क्रम में परिवर्तन होने पर ही उनके गुणों में परिवर्तन देखने को मिलता है।

प्रत्येक जीवधारी के गुण निर्धारित करने में जीन की एक प्रमुख भूमिका होती है। यह एक रासायनिक इकाई है जिसमें किसी खास प्रोटीन के निर्माण की जानकारी रासायनिक भाषा में अंकित होती है। यह जीन विभिन्न किस्म की प्रोटीनों एवं एन्जाइम आदि के निर्माण का निर्देशन करते हैं। कई जीन ऐसे भी होते हैं जो उसी जीव के किसी अन्य जीन की क्रिया पर नियंत्रण रखते हैं।

यदि किसी जीवधारी में से कोई ''अवांछनीय'' गुण हटाना है तो पहले यह पता करना होगा कि उस गुण का निर्धारण किस जीन केद्वारा होता है। फिर पूरी जेनेटिक संरचना में उस जीन की स्थिति का पता करना होगा और किसी तकनीक से उसे वहां से काट कर अलग कर देना होगा या कोई ऐसा नया जीन स्थापित करना होगा जो अवांछित जीन को प्रभावी होने से रोके सके। यह कहने में जितना आसान है, उतना आसान है नहीं। इसमें अनेक तकनीकें लगती हैं तब जाकर यह जीन स्थानान्तरण हो पाता है।

डी०एन०ए० अणु में दो बहुन्यूक्लियोटाइड श्रृंखलायें ढीले हाइड्रोजन बांड द्वारा एक दूसरे से जुड़ी होती है। यह हाइड्रोजन बांड, डी०एन०ए० पॉलीमरेज एंजाइम की उपस्थिति में सुगमता से टूट जाता है तथा दोनों श्रृंखलायें एक दूसरे से अलग हो जाती हैं। दोनों अलग हुई श्रृंखलायें अब अपनी अनुपूरक श्रृंखलाऐं बनाने के लिए सॉचें का कार्य करती है तथा प्राप्त चयापचयिक पदार्थों में से न्यूक्लियोटाइडस प्राप्त करके हाइड्रोजन बांड द्वारा अनुपूरक न्यूक्लिय़ोटाइडस जोड़ती है। इस प्रकार प्रत्येक पूर्व श्रृंखला के सामने एक नयी श्रृंखला का निर्माण होता है तथा दो डी०एन०ए० अणु पूर्व अणु की भॉति ही बन जाते हैं जिनमें से प्रत्येक में एक न्यूक्लियोटाइड श्रृंखला पुरानी तथा दूसरी नई होती है।

सभी बीजों में कुदरती तौर पर एक विशिष्ट जीन पाया जाता है जो बीजों के परिपक्व होने के सक्रिय होता है। इसे सक्रिय करने के लिए इसके साथ एक अन्य जीन एल०ई०ए० पाया जाता है। दूसरी ओर बीजों में एक और जीन भी पाया जाता है। यह जीन एक ऐसा प्रोटीन बनाता है जो अंकुरण को रोकता है आमतौर पर यह अंकुरण

रोधी जीन सुप्तावस्था में पड़ा रहता है वैज्ञानिकों ने अंकुरण रोधी जीन को एल. ई. ए. जीन से जोड़ दिया। अब जब बीज परिपक्व होने लगता है तो एल.ई. ए. जीन अंकुरण रोधी जीन को सक्रिय कर देता है। ऐसे बीज का अंकुरण नहीं हो सकता। इस तरह के बीजों का पेटेन्ट हाल ही में यू०एस० कृषि एवं खाद्य विभाग तथा एक बीज कम्पनी 'डेल्टा एण्ड पाइन लैंड' ने प्राप्त किया है।

किसानों को बीजों के लिए सीधे-सीधे कम्पनियों पर निर्भर बनाने के साथ-साथ यह तकनीक खेती के लिए भी बहुत ज्यादा घातक है। यह सोचना गलत है कि यदि कोई किसान इस बीज को न खरीदे तो वह इसके घातक परिणाम से बच सकता है लेकिन सच्चाई यह है कि यदि कोई भी किसान इन बीजों को जब बोयेगा और इन पौधों के फूलों का भी निषेचन कर सकते हैं। तब यह जीन अन्य सामान्य बीजों में भी पहुँच जायेगा और उन बीजों की बुआई करने पर उनका भी अंकुरण समाप्त हो जायेगा। इस दृष्टि से यह तकनीक कृषि के लिए विनाशकारी साबित होगी।

आजकर भारतवर्ष में भी वैज्ञानिकों ने इसके प्रति चिंता जाहिर की है तथा सरकार की पूरी कोशिश रही है कि इस तरह के बीज किसी भी कीमत पर इस देश में न आने पावें। परन्तु यह सुनिश्चित करना बहुत कठिन है और यह बीज संयोगवश या जानबूझकर चुपके से भी देश में प्रविष्ट कराये जा सकते हैं।

वैज्ञानिकों का मत है कि आधुनिक कृषि में आनुवांशिक अभियन्त्रण के बिना हम अनाज की पैदावार बढ़ाने के बारे में सोच भी नहीं सकते। लेकिन भारतीय कृषि का स्वरूप बदल देने की अपार संभावनाओं के होने पर भी इस तरह की फसलों से संबंधित हर तरह के अनुसंधान पर सरकार ने कड़े नियंत्रण लगा दिये हैं और उस पर कड़ी नजर रखी जा रही है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग के प्रादुर्भाव से पहले भी गुणों का स्थानांतरण किया जाता था। परन्तु यह कार्य मूलतः परागण की क्रिया को नियंत्रित करके किया जाता था। यानी जो गुण प्रविष्ट कराना चाहें, वह उसी प्रजाति किसी किस्म में उपस्थित होना जरूरी था क्योंकि प्रजनन की क्रिया एक ही प्रजाति के अन्दर होती है। इस कार्य को पौध-संवर्धन कहते थे। यह काम भी बहुत श्रमसाध्य होता था। मान लीजिए गेहूं की किसी किस्म में आप गेरुआ प्रतिरोध पैदा करना चाहते हैं तो इसके लिए गेहूँ की कोई ऐसी किस्म ढूँढ़िये जिसमें गेरुआ प्रतिरोध मौजूद हो। अब इस किस्म के परागकणों से अपनी किस्म का निषेचन करवाइए और ढेरों प्रयोग करते-करते हो सकता है कि आपको वांछित गेरुआ प्रतिरोधी किस्म प्राप्त हो जाय। मगर आनुवांशिक अभियन्त्रण ने प्रजातियों की इस परिसीमा को शिथिल कर दिया है। जैनेटिक इंजीनियरिंग की तकनीकों से एक प्रजाति के गुण यानी जीन दूसरी प्रजाति में प्रविष्ट कराये जा सकते हैं।

खेती के क्षेत्र में जेनेटिक इंजीनियरिंग के चमत्कारों की सूची लम्बी है। वैज्ञानिकों को ऐसी फसलें तैयार कर लेने की आशा है, जिन्हें बंजर भूमि में भी उगाया जा सकेगा और जो रोगजनक विषाणुओं जीवाणुओं के साथ-साथ अकाल का भी मुकाबला करने में सक्षम होगी। अगर ये फसलें अपने घोषित लक्षणों के अनुरूप निकलती हैं तो कृषि के पुनर्जीवन का दौर आ सकता है।

❑❑❑

मच्छर निवारक घरेलू विधियों पर उपभोक्ता मार्गदर्शन

रामचंद्र मिश्र
(अध्यक्ष, परीक्षण, भारतीय उपभोक्ता मार्गदर्शन संघ) भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई

बाजार में ऐसी कई मच्छर निवारक वस्तुओं की भरमार हो गई है जिनका चुनाव मात्र विज्ञापनों के आधार पर करना पड़ता है। इनकी गुणवत्ता और उपयोग के दौरान सुरक्षा सम्बन्ध कारकों से उपभोक्ता अनभिज्ञ है। आश्चर्य और खेद है कि सम्बन्धित सरकारी विभागों द्वारा जनस्वास्थ्य के इस महत्वपूर्ण विषय पर कोई मार्गदर्शन उपलब्ध नहीं कराया गया है जबकि कीटनाशी कॉयल तथा मैट शयनकक्षों में कई वर्षों बल्कि कई दशकों से सुलग रहे हैं।

मलेरिया निर्मूलन कार्यक्रम के अप्रभावी होने के कारण मलेरिया की वापसी कई नई चुनौतियों के साथ हुई है जो चिकित्सकों को आश्चर्यचकित कर दिया है। आदिजंतुओं (प्रोटोजोअन) के चार प्रकारों प्लाज्मोडियम, फैल्सिपरम, वाइवैक्स, ओवेल और प्लाज्मोडियम मलेरिया द्वारा औषधि–अवरोधी मलेरिया की उत्पत्ति के बाद इसका उपचार दीर्घकालिक, आंशिक और असाध्य तक हो गया है। हर वर्ष फिलहाल तीस लाख से भी अधिक देशवासी मलेरिया से ग्रसित होते हैं और लगभग तीन सौ लोगों की मृत्यु भी हो जाती है। घरेलू स्तर पर बचाव हेतु कई मच्छर निवारक विधियों का दैनिक उपयोग प्रायः एक अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। विशेषतः शहरी क्षेत्रों में कीटनाशी मच्छर अगरबत्ती कॉयल और मैट, मच्छर–प्रतिकर्षी क्रीम, कीटनाशी द्रव–वाष्पितत्र आदि की खपत मासिक घरेलू बजट का अनिवार्य हिस्सा बन गई है। बाजार में ऐसे कई मच्छर निवारक वस्तुओं की भरमार हो गई है जिनका चुनाव मात्र विज्ञापनों के आधार पर करना पड़ता है। इनकी गुणवत्ता तथा उपयोग के दौरान सुरक्षा संबंधी कारकों से उपभोक्ता अनभिज्ञ हैं। आश्चर्य और खेद है कि संबंधित सरकारी विभागों द्वारा जनस्वास्थ्य के इस महत्वपूर्ण विषय पर कोई मार्गदर्शन उपलब्ध नहीं कराया गया है जब कि कीटनाशी कॉयल तथा मैट आदि शयनकक्षों में कई वर्षों बल्कि दशकों से सुलग रहे हैं।

हाल के वर्षों में भारत में उपभोक्ता संरक्षण अभियान अवश्य जोर पकड़ा है किंतु इसके लिए अनिवार्यतः आवश्यक वैज्ञानिक जानकारी की भारी कमी है। छठी पंचवर्षीय योजना में " उपभोक्ता संरक्षण हेतु विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी" नामक एक लघु नियोजित कार्यक्रम भारत सरकार के विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत चलाया गया था। आगे की योजनाओं में यह कार्यक्रम शामिल नहीं किया जा सका क्योंकि इसके संबंध में पर्याप्त जानकारी योजनाकारों को नहीं दी गई थी। उपभोक्ता संरक्षण संबंधी राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रमों से जुड़े होने तथा उपरोक्त कार्यक्रम हेतु स्थापित राष्ट्रीय परामर्श समिति के सदस्य होने के नाते

लेखक द्वारा प्रस्तुत विषय पर किए गए अध्ययन एवं परीक्षणों पर आधारित एक उपभोक्ता मार्गदर्शन यहां दिया जा रहा है। इसका उद्देश्य मच्छर निवारक घरेलू विधियों संबंधी जिज्ञासाओं का समाधान करना तथा प्रभावी एवं सुरक्षित उपयोगों के संबंध में व्यावहारिक जानकारी देना है।

मच्छरों से बचाव के कुल उपाय :

मलेरिया के विश्वव्यापी प्रकोप से निपटने के वास्ते स्वास्थ्य संगठन द्वारा नए कीटनाशियों के विकास एवं प्रभावी औषधियों के आविष्कार को ऊँची प्राथमिकता दी गई है। उपभोक्ता–स्तर पर मच्छर निवारण हेतु व्यक्तिगत प्रयास अपरिहार्य हैं। सारांशतः मच्छरों से बचाव तथा सुरक्षा के लिए विविध उपायों का प्रभावी क्रम निम्नलिखित है

(1) वस्तुतः मच्छर निवारण की सबसे ज्यादा प्रभावी, सस्ती और सुरक्षित विधि है स्वच्छता का ऊँचा स्तर कायम रखना ताकि मच्छरों के प्रजनन पर पुरअसर रोक लगे।

(2) राष्ट्रीय मलेरिया निर्मूलन कार्यक्रम पर निर्भर होने के बजाय मच्छरमार छिड़काव स्वतः एवं सामुदायिक रूप से करें।

(3) उपरोक्त आधारभूत उपायों को अपनाते हुए घरेलू विधियों यानी कॉयल, मैट क्रीम आदि का उपयोग उचित उपभोक्ता मार्गदर्शन के आधार पर करें। इनके संभावित खतरों से सजग रहें।

(4) पुरानी विधि यानी मच्छरदानी का उपयोग नए सुधारों के साथ करें। कीटनाशी परमेथ्रिन से उपचारित मच्छरदानी मच्छरों से बचाव का विश्वसनीय उपादान है।

(5) पराबैंगनी–दीप द्वारा उड़नकीटों का क्षय संभव है किंतु मच्छरों के लिए यह अल्प प्रभावी विधि है एवं व्यवहार में असुरक्षित भी।

(6) वैद्युत–गुंजक 'बजर' द्वारा नर मच्छरों जेसा गुंजन उत्पन्न कर मलेरियाजनक मादा मच्छरों को आकर्षित करने और उनका क्षय करने की नाटकीय विधि अत्यल्प सफल हो पायी है।

(7) मच्छर निवारक रासायनिक विधियों डी०डी०टी०, एच०सी०एच, मैलाथियॉन आदि का वरणात्मक छिड़काव) की अपेक्षा जैविक विधियों को प्राथमिकता दें। केरल स्थित वेक्टर रिसर्च इंस्ट्टीयूट द्वारा 'हाथी–मच्छर' नामक ऐसी प्रजाति विकसित की गई है जिसका भोजन स्वयं मच्छर हैं। फिलहाल हमें 'हाथी–मच्छरों' के परिनियोजन और उसकी व्यावहारिक सफलता की प्रतीक्षा करनी होगी।

मच्छर अगरबत्ती (कॉयल) पर मार्गदर्शन :

मच्छर निवारक कॉयल का निर्माण लकड़ी या सेल्यूलोज के चूर्ण, योजक या बंधक के रूप में मोम और रंजक के साथ न्यूनतम 4 फीसदी अनुपात में सक्रिय कीटनाशी पदार्थ एवं कवकरोधी (फंगीस्टैट) मिला कर किया जाता है। इन कीटनाशियों के नाम उनकी बढ़ती हुई सक्रियता के आधार पर यों हैं :

(i) प्राकृतिक पाइरेथ्रिन (पाइरेथ्रम–पुष्प से प्राप्त)
(ii) संश्लेषित पाइरेथायड–एलेथ्रिन
(iii) जैविक स्रोतों से निर्मित एलेथ्रिन तथा
(iv) 'एस–बायो' एलेथ्रिन

कॉयल के निर्माण में अनाधिकृत रूप से डी०डी०टी० और लिंडेन कीटनाशियों का भी प्रयोग किया जाता रहा है जो मच्छरों पर अल्पप्रभावी होने के साथ ही मनुष्य पर विषाक्त प्रभाव डालती है, अतः इनका इस्तेमाल वर्जित होना चाहिए। उपभोक्ता ऐसे कॉयल न खरीदें। कॉयल के पैकेट

पर कीटनाशी का नाम देखें या निर्माता से ऐसी जानकारी की मांग करें। ऐसी सूचना का अधिकार उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत कानूनी अधिकर है। वस्तुतः ऐसे कॉयल लघु उद्योगों एवं कुटी उद्योगों द्वारा उचित विशेषज्ञता बगैर एवं परीक्षण–सुविधाओं की अनुपस्थिति में निर्मित होते हैं जिनकी गुणवत्ता सदैव अविश्वसनीय होती है। उपभोक्ता स्वयं इनकी जांच रासायनिक प्रयोगशाला में करायें या उपभोक्ता संगठनों की मदद लें।

खतरे से सावधान !

सामान्यतः आजकल कॉयल के निर्माण में पाइरेथ्रम–पुष्पों के निष्कर्षण से प्राप्त अवशिष्ट पाइरेथ्रम–मार्क का उपयोग किया जाता है। इसमें सक्रिय कीटनाशी अवयव पाइरेथ्रिन और साइनेरिन होते हैं। इन्हें सामूहिक रूप से पाइरेथ्रम भी कहा जाता है। कॉयल के सुलगने पर सक्रिय कीटनाशी पदार्थ वाष्प के रूप में मुक्त होता है जो मच्छरों पर प्रतिकर्षी (रिपेलेंट) तथा अवधाती (नॉक–डाउन) क्रिया करता है जिसके कारण मच्छर तुरंत दूर भागते हैं एवं मूर्छित हो जाते हैं। पाइरेथ्रम एक अस्थिर यौगिक होने से अपना प्रतिकर्षी प्रभाव डालते हुए तुरंत विघटित एवं अप्रभावी हो जाता है। वैसे तो पाइरेथ्रम स्तनधारी प्राणियों के लिए विषाक्त नहीं हैं किंतु लगातार प्रभाव की दशा में प्रत्यूर्जता (एलर्जी) का कारण बन सकता है। इसके दीर्घकालिक प्रभाव से कालांतर वमन, सरदर्द तथा केंद्रीय स्नायुमंडल में विक्षुब्धि हो सकती है।

कॉयल में कीटनाशी पाइरेथ्रम की मात्रा यों होती है (लगभग 4 फीसदी) कि इसका गतिक सक्रियण 6 से 8 घंटों तक कायम रहता है जो लगभग 1500 घन फीट क्षेत्र के कमरे में मच्छर निवारण हेतु प्रभावकारी होता है। वाष्प की अम्लीय एवं उग्र (एक्रिड) गंध मच्छरों पर प्रतिकर्षण क्रिया में सहायक होती है। मनुष्य को ऐसी गंध का अनुमान न लगे इसके लिए गुलाब, मोगरा, कोयले में नीलगिरी या अन्य एरोमेटिक पदार्थ की सुगंध डाली जाती है। वस्तुतः कीटनाशी जैसे विषाक्त पदार्थ को सुगंधित करने के बाद उपयोग में लाना सर्वथा गलत है, अतः उपभोक्ता सुगंधित कॉयल या मैट से परहेज करें।

कॉयल के सुलगने पर वैसा ही टार पैदा होता है जैसा कि सिगरेट के धुएँ में पाया जाता है। साथ ही विषाक्त गैस कार्बन मोनोक्साइड भी पैदा होती है जो हवादार कमरा होने पर दूर फैलती रहती है और इसकी उपस्थिति तनु हो जाती है। संवातन सुनिश्चित किए बगैर कुंडली का उपयोग हानिकारक होगा, अतः बंद कमरें में कुंडली जलाना खतरनाक हो सकता है। उपयुक्त यह होगा कि बंद कमरें में आधे घंटे तक कॉयल जलते रहने के समय कमरे के बाहर रहें और फिर खिड़कियां खोल दें। एक कमरे में एक साथ एक से अधिक कॉयल न जलाएं। आवश्यक हो तो दूसरा कॉयल लगभग छ घंटे बाद पहला कॉयल का प्रभाव खत्म होने पर जलाएं।

प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि कॉयल के धुयें में नाइट्रोसो–यौगिकों की उपस्थिति संभव है जो कैंसरजनक होते हैं, अतः कुप्रभावों से सजग रहें निरापद विकल्पों की खोज करें।

निरापद कॉयल ?

वस्तुतः मच्छर कॉयल के निर्माण की प्रौद्योगिकी विदेशी तकनीक से अपनाई गई है। जापान आदि देशों में कॉयल को निरापद बनाने

के लिए कीटनाशी और अन्य घटकों के उपयोग में संतुलन लाए गए हैं ताकि इनके पार्श्व प्रभाव न्यूनतम हों। भारत में इनके शोध–परीक्षण पर पर्याप्त कार्य नहीं हुए हैं और साथ ही निर्माता घटकों की क्रांतिक क्रियाओं पर सूचना नहीं देते हैं। फलतः भारत में जड़ीबूटी–आधारित निरापद कॉयल का विकास विशेष महत्व का हो सकता है। हर्ष है कि केन्द्रीय खाद्य, प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर द्वारा एक इसी प्रकार का कॉयल विकसित किया गया है जिसमें संश्लेषित कीटनाशियों के स्थान पर पूर्णतः वनस्पति आधारित घटक हैं। उल्लेखनीय है कि नीम आदि का प्रयोग मच्छर निवारण हेतु प्राचीन काल से ही किया जाता रहा है। संस्थान की वैज्ञानिक डॉ० श्रीमती बी० अनुराधा ने इस लेखक को एक भेंटवार्ता के दौरान सूचित किया कि सक्रिय घटक, बंधक पदार्थ, योगक तथा सुलगने वाले पदार्थ सभी वनस्पतीय स्रोतों से प्राप्त कर कॉयल के विकास में प्रयुक्त हुए हैं। उनका दावा है संश्लेषित एवं हर्बल कॉयलों के तुलनात्मक परीक्षण से यह सिद्ध हुआ है कि हर्बल कॉयल अपेक्षाकृत ज्यादा प्रभावी हैं, यद्यपि इससे निष्कासित धुयें की मात्रा कम होती है। स्तनधारी प्राणियों के लिए ऐसे कॉयल पूर्णतः सुरक्षित हैं, और साथ ही पर्यावरण–हितैषी भी। इसके निर्माण हेतु विकसित उपकरण एवं उपस्कर तथा कच्चा माल सरल एवं स्वदेशी हैं जिसके कारण इनकी लागत व्यापारिक कॉयल की लगभग आधी ही है। डॉ० अनुराधा के अनुसार कुटीर उद्योग द्वारा निर्माण के उपयुक्त हर्बल कॉयल की प्रौद्योगिकी नव उद्यमियों द्वारा व्यापारीकरण हेतु सरल–सस्ती शर्तों पर संस्थान से प्राप्त की जा सकती है।

मच्छर निवारक मैट संबंधी मार्गदर्शनः

कॉयल के उपयोग हेतु विद्युत की आवश्यकता नहीं होती है, फिर भी इसकी उग्र गंध जिससे आंखों पर भी धीमा प्रभाव पड़ता है, तथा अपेक्षाकृत तीक्ष्ण क्रिया के कारण इनकी ग्राहयता कम है। अन्य विधि यानी कीटनाशीयुक्त मैट फिलहाल ज्यादा लोकप्रिय हुई है। यह सुविधाजनक होने के साथ ही प्रभावी एवं कम कुप्रभावी हैं। मैट में भी 4 फीसदी एलेथ्रिन कीटनाशी का प्रयोग होता है और गतचालीस वर्षों से इसका इस्तेमाल होने के बावजूद इसके प्रति मच्छरों में रोधक्षमता नहीं पैदा हुई है।

मैट का निर्माण कागज की लुग्दी में 4 फीसदी ऐलेथ्रिन कीटनाशी तथा स्थायीकारी पदार्थ पाइपोरानिल ब्यूटाक्साइड 0.8 फीसदी की मात्रा में (कीटनाशी की मात्रा का पांचवां हिस्सा) मिलाकर कट के रूप में किया जाता है। प्रत्येक कट का वजन एक ग्राम होता है ओर इसमें कीटनाशी की मात्रा लगभग 40 मिली० ग्राम तक होती है। मैट को पी०एम०टी० विशेष हीटर में वाष्पीकरण हेतु रखा जाता है जिसमें अर्धचालक का प्रयोग होता है। इसमें उष्म–प्रतिरोधी तापमान नियंत्रक यानी थर्मिस्टर विधि होती है जो तापमान के समान रूप से 150 से 160 डिग्री सेल्सियस के बीच रखती है।

हीटर–मशीन में मैट गर्म किए जाने पर प्रति घंटा 5 से 7 मिलीग्राम कीटनाशी एलेथ्रिन–वाष्प निष्कासित होती है, यानि 6 से 8 घंटे तक वाष्प निकलती है जो मच्छरों को प्रतिकर्षित करती है और एक रात की नींद के लिए पर्याप्त मानी जाती है। एक 1500 घनफीट

आयतन के कमरे के लिए यह मैट उपयुक्त है। एक साथ दो मैट जलाना आवंछनीय एवं हानिकारक है किंतु पहली मैट के जलाने के कम से कम छ घंटे के बाद इसका प्रभाव खत्म हो जाने के बाद दूसरी मैट जलाई जा सकती है।

मैट की संरचना या गुणवत्तानुसार यदि एलेथ्रिन पूर्णतः वाष्प में नहीं बदलती और मैट में शेष रहती है तो यह अप्रभावी या संदिग्ध प्रभाव की मानी जाएगी। दूसरी ओर यदि अल्प समय में ही ज्यादातर एलेथ्रिन वाष्प में बदल जाती है तो भी यह अप्रभावी होने के साथ ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक साबित हो सकती है। अतः कीटनाशी नियंत्रण बोर्ड द्वारा मैट का परीक्षण एवं प्रभाव तथा सुरक्षा संबंधी प्रमाणीकरण अनिवार्य आवश्यकता है जिसके आधार पर मैट के निर्माण की स्वीकृति और अनिवार्य आइ०एस०आई० चिह्न दिया जाना चाहिए। बोर्ड इस प्रकार की सूचना द्विपक्षी करार करते हुए देने को तैयार नहीं है और न ही अनिवार्य मानक एवं चिह्न की व्यवस्था है। उपभोक्ता संगठित रूप से ऐसी व्यवस्था की मांग करें और साथ ही भारतीय विष विज्ञान संस्था से इस उत्पाद के प्रभाव एवं सुरक्षा पर श्वेत पत्र जारी करने की मांग करें। ऐसा न होने पर इस उत्पाद का केंद्रीय कीटनाशी बोर्ड द्वारा पंजीकरण किए जाने का प्रयोजन पूरा नहीं होता है।

इस लेखक द्वारा उपरोक्त मांग संबंधित विभागों से पहले ही की जा चुकी है और कई निर्माताओं से भी क्रांतिक सूचना की मांग की गई हैं, किंतु निर्माता मात्र इस बात का हवाला देकर मैट की सुरक्षा का आश्वासन देते हैं कि उनका उत्पाद पंजीकृत है और जापान, अमेरिका, इटली आदि में किए गए प्रयोगों के अनुसार ऐसे उत्पाद सुरक्षित पाए गए हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि एलेथ्रिन की नियंत्रित, प्रभावी एवं सुरक्षित क्रिया का दारोमदार हीटर–मशीन की विश्वसनीयता पर निर्भर है। अतः इनके लिए भी अनिवार्य मानक एवं आई० एस० आई० चिह्न की व्यवस्था करना सर्वथा वांछनीय है क्योंकि मैट एवं हीटर दोनों ही स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण उत्पाद हैं।

कॉयल और मैट का परीक्षण :

कॉयल या मैट का संपूर्ण परीक्षण किसी जैविक या विष विज्ञान की प्रयोगशाला में ही संभव है जहाँ मलेरिया पैदा करने वाली मादा मच्छरों के प्रजनन और आपूर्ति की व्यवस्था हो ताकि चित्र 1 में दिए गए तरीकों से निर्धारित संख्या में तीन दिन उम्र के मादा मच्छरों को शीशे के कक्ष में रखा जा सके जिसके अंत में मलमल की पारदर्शक जाली हो और मैट के धुएं से अवघात या मूर्च्छित हुए मच्छरों को गिना जा सके और 2 घंटे के बाद तक विभिन्न समय में 'के–50' संख्या (समय का परिमाण जिसके अंदर पचास फीसदी मच्छर मरें) गिनी जा सके। चित्र 2 में दो प्रकार के कॉयलों के अवघात–समय के 50 दिए गए हैं।

कीटनाशी बोर्ड द्वारा निर्माताओं के लिए यह अनिवार्य शर्त रखनी चाहिए कि पंजीकरण हेतु वे अपने उत्पादों की के-50 परीक्षा के नतीजे उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराएं जिनकी पुष्टि प्रति–परीक्षण द्वारा की जा सके। फिलहाल उपभोक्ता अपने स्तर पर निम्नलिखित जांच करें:

लेबल पर (i) चेतावनी (ii)कीटनाशी एवं अन्य घटकों के नाम व प्रतिशत (iii) मात्रा व % (iv) दहन–समय (v) उपयोग की मियाद, निर्माण–तिथि, और (vi) निर्माता का नाम तथा पता

दहन की गुणवत्ता का परीक्षण यों करें। कॉयल का वजन लेकर उसे निर्देशानुसार सुलगाएं। एक घंटे बाद जलते सिरे को दबा कर बुझा दें। अधजले कॉयल का दुबारा वजन लें। माध्यदहन दर की गणना करें। तुलना हेतु विभिन्न प्रकार के कॉयलों के माध्य दहन दर की तालिका बनाएं और उनकी गुणवत्ता का श्रेणीकरण करें। एलेथ्रिन की मात्रा की जांच वर्णलेखी द्वारा करवाएं। कुछ नतीजे तालिका 1 और 2 में देखें :

मच्छर निवारक 'लिक्विडेटर' का प्रयोग : सम्हाल, सुविधा और सुरक्षा की दृष्टि से कॉयल और मैट से बेहतर मच्छर निवारक घरेलू विधियों का विकास जारी है। रोजाना मैट लगाने और उसका निपटान करने के झंझट बचने के लिए अब 'लिक्विडेटर' नामक विधि उपलब्ध है जिसमें लगभग 3.5 फीसदी सांद्रता का 35 मि०ली० द्रव रहता हैऔर वैद्युत वाष्पित्र द्वारा इसका नियंत्रित रूप से वाष्पीकरण होता है ताकि इसका मच्छर निवारण के लिए एक से डेढ़ महीने तक उपयोग हो सके। यह अपने पूरे काल तक स्वयंचालित रहता है। इसमें बंधक, फंगीस्टैट आदि डालने की आवश्यकता नहीं होती है। इस मामले में लिक्विडेटर एक बेहतर विकल्प है। किंतु इस विधि में भी एलेथ्रिन का ही प्रयोग होता है, अतः इसके धीमे विषाक्त प्रभाव से उपभोक्ता मुक्त नहीं है। लिक्विडेटर की सबसे बड़ी खामी स्वयं इसकी वश्वसनीयता हो सकती हैं वाष्पीकरण की निर्धारित दर में वृद्धि विषाक्तता एवं घटत अवघाती अप्रभावी का कारण हो सकती है अतः लिक्विडेटर

तालिका 1 : कुछ मच्छर–कॉयलों के प्रतिकर्षी मान (दहन समय 1 घंटा, * 62 % अवघात या नॉक–डाउन)

कॉयल का नाम	मिनटो के अंदर पलायन करने वाले मच्छरों की संख्या का प्रतिशत				
	15	30	45	60	120
ए–वन	47	72	74	76	77
बेल	40	65	68	·70	70
रैली	28	*	*	*	*
टारटायज	80	84	93	94	94
कंट्रोल	3	18	21	21	24

तालिका 2 : कुछ मच्छर–मैटों के प्रतिकर्षी मान

मैट का नाम	%पलायन	%अवघात (मूर्छित)
ओडोमास	68	37
जेट	58	42
स्लीपवेल	46	53
वाचमैन	42	58
वोपोमैट	38	62
ए आर एस	30	70
गुडनाइट	24	76
बैनिश	21	79
कंट्रोल	9	–

का चुनाव करते समय यह जरूरी है कि इसकी परीक्षित गुणवत्ता का प्रमाण मौजूद हो अथवा आई०एस०आई० जैसे चिह्न द्वारा गुणवत्ता की गारंटी हो।

मच्छर निवारक स्प्रे?

उड़नकीटों तथा रिंगीकीटों (जैसे काक्रोच) के लिए कीटनाशी छिड़काव अलग–अलग प्रकार के होते हैं हवा में किए गए छिड़काव यानी 'स्प्रेस–स्प्रे' सांस द्वारा मनुष्य के अंदर प्रवेश कर सकते है।, अतः यह सुरक्षित किस्म के होते हैं। सतह विशेष के लिए निर्मित 'स्पॉट–स्प्रे' तीक्ष्ण प्रभाव के होते हैं जिनका 'स्पेस–स्प्रे' के रूप में उपयोग कीड़ों को मारने के लिए अप्रभावी होगा। वस्तुतः मच्छर निवारण हेतु उपरोक्त दोनों प्रकार के छिड़काव का उपयेग अवांछनीय है। अतः गुमराह करने वाले सशक्त विज्ञापनों से सावधान रहें और सही विधि का प्रयोग करें। सामान्यतः 'स्पेस–स्प्रे' में कीटप्रतिकर्षी रसायन होते हैं और 'स्पॉट–स्प्रे' में कीटनाशी रसायन। अतः विज्ञापनों से दोनों के बीच की विभाजक रेखा अनुपस्थित हो तो अपनी वैज्ञानिक जानकारी द्वारा इनकी सही पहचान करें।

मच्छर अवरोधी क्रीम

उल्लेखनीय है कि मलेरिया पैदा करने वाली मादा मच्छर खून चूसने के लिए अपने मानव–शिकार की खोज स्वास से उत्सर्जित कार्बन मोनोक्साइड, शारीरिक तापमान और मनुष्य में विशेष गंध पैदा करने वाले पदार्थों के आधार पर करती है। इसलिए मनुष्य मादा मच्छर की डंक का हमेशा शिकार होता रहता है। तथाकथित मच्छर–क्रीम में, एन० एन० डाइएथिल बैंजामाइड 10 फीसदी की मात्रा में होता है। जो कुछ हद तक प्रतिकर्षी प्रभाव डालता है और मच्छर आंशिक रूप से दो–तीन घंटे पास नहीं आते। क्रीम को शरीर के सभी अंगों में नहीं लगाया जा सकता है, अतः कार्बनडाईआक्साइड स्वासोच्छास में होने से चेहरे पर मच्छरों का हमला होता रहता है। साथ ही क्रीम में उपस्थित प्रतिकर्षी रसायन त्वचा के अंदर सोख लिए जाते हैं और कालांतर हानिकारक साबित होते हैं। इनका उपयोग मच्छर संबंधी अतिप्रतिकूल स्थितियों में होने पर ही किया जा सकता है।

सरकार ने मच्छर–क्रीम को कीटनाशी के बजाय प्रसाधन सामग्री मान कर इनके निर्माण पर न्यूनतम नियंत्रण रखा है क्योंकि यह 'ड्रग्स एंड कास्मैटिक्स एक्ट' के अंतर्गत रखा गया है। जाहिर है कि मच्छर अवरोधी क्रीम का निरापद होना सर्वथा संदिग्धमय है।

मच्छरों से बचाव हेतु उपयुक्त दिनचर्या

ज्ञातव्य है कि मच्छर दिन में दो बार यानी शाम से लेकर रात्रि के आरंभिक घंटों तक सुबह होने के पूर्व के घंटों में खून चूसने के भूखे होते हैं। नर मच्छर पौधों आदि से रस चूसते हैं और गुंजन के साथ अपनी मौजूदगी दर्ज करने वाली मादा मच्छर जो मलेरियाजनक है, मनुष्य का खून चूसती है। यह अंधेरे या छायादार स्थानों में ज्यादातर निवास करती है। इन तथ्यों से आगाह होते हुए मच्छरों से बचाव हेतु उपयुक्त दिनचर्या अपनाई जानी चाहिए। 'मशक–क्रांति को बचाव की 'प्रतिक्रांति' विफल कर सकती है। ❑❑❑
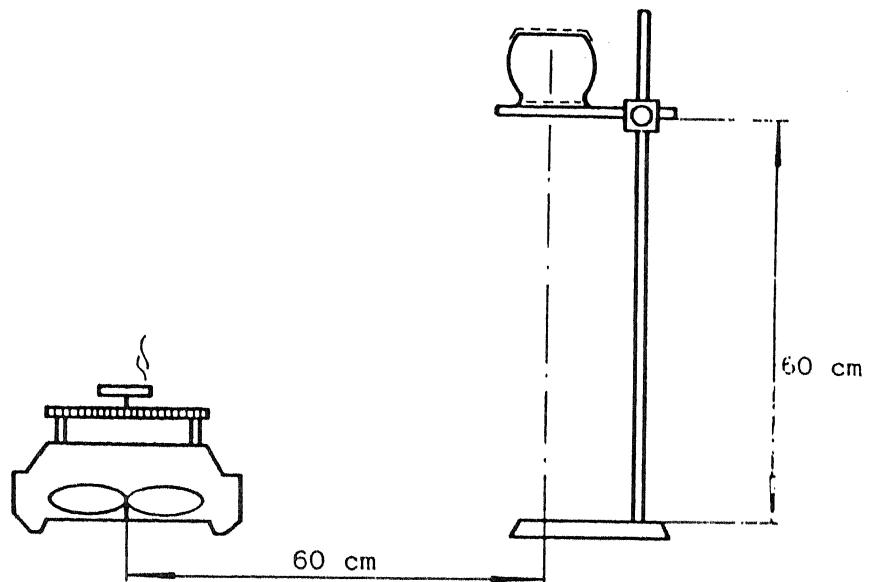
चित्र 1 : मच्छर-कॉयल की परीक्षण विधि
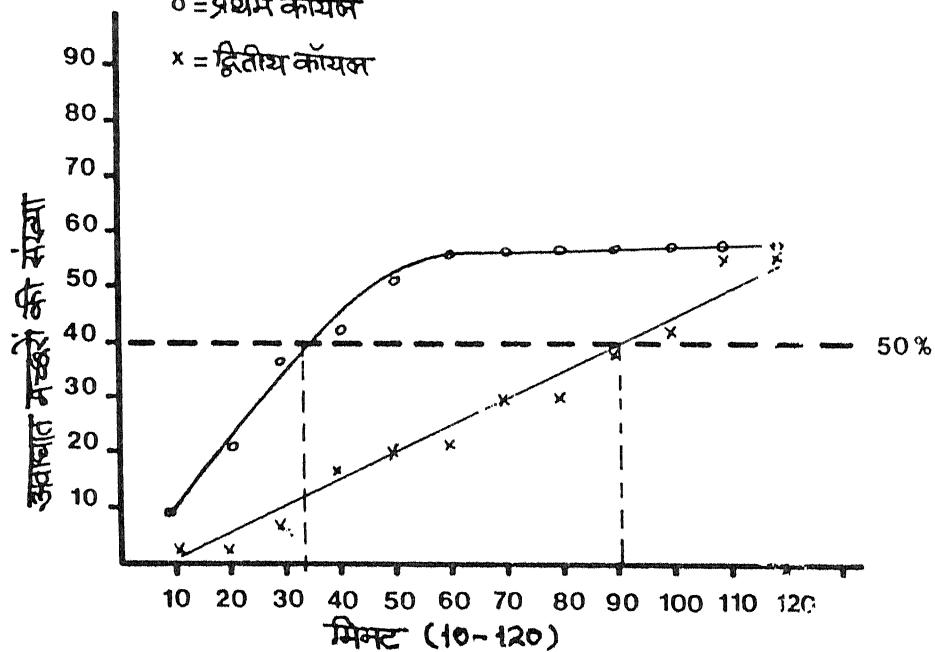
चित्र 2 : दो मच्छर-कॉयलों के अवपात-समय वक्र

विज्ञान कथा

बदलता मौसम

जीशान हैदर ज़ैदी
390/39 A बाग वाली मस्जिद, रुस्तम नगर लखनऊ – 3

''हालाँकि हमने इस ठंड से बचने का पूरा प्रयास किया है, पूरे-पूरे शहरों को भट्ठी की तरह कृत्रिम रूप से तपा दिया है। लेकिन फिर भी हम कहाँ तक इस ठंड से लड़ सकते हैं। हमारे वैज्ञानिकों के अनुसार सौर मंडल के सूर्य का ताप काफी गिर चुका है। यहां तक कि ताप के इस भीषण परिवर्तन को हम सहन नहीं कर पा रहे है।''

इस ब्रह्माण्ड में सूर्य जैसे अनेक सूर्य हैं। कुछ सूर्य से भी अधिक गर्म तो कुछ उसकी तुलना में ठंडे। पृथ्वी जैसे बहुत से ग्रह हैं जो उन सूर्यों के परितः चक्कर लगा रहे हैं। कुछ पर जीवन भी है किन्तु अधिकतर वीरान हैं।

ऐसा ही एक जीवित ग्रह था जिस पर बुद्धिमान प्राणी भी थे और उन निवासियों ने अपने ग्रह का नाम दिया था 'बोल्की'। इन प्राणियों का शरीर लोहे की तरह काला था और साथ ही सख्त भी। मानों इस्पात की पतली पत्तियों से बनाया गया हो।

इन्हीं प्राणियों में से चार लोग इस समय एक गोलाकार कमरे में बैठे हुए थे। चारों के मस्तक पर गहन चिन्ता के लक्षण थे। थोड़ी देर की मौनता के बाद उनमें से एक ने गहरी सांस खींचीं और कमरे की दीवार पर अपनी दृष्टि जमा दी। कमरे की दीवारों में विशेष बात यह थी कि वह किसी अंगारे की तरह लाल होकर दहक रही थीं। और न केवल दीवारें बल्कि छत और भूमि भी।

उस व्यक्ति ने दीवार से दृष्टि हटाकर व्यक्तियों की ओर देखा और फिर उसका स्वर उभरा, ''यह हमारे लिए अत्यन्त चिन्ताजनक बात है। पिछले चार महीनों में बोल्की के पांच हजार से अधिक लोग मृत्यु की गोद में समा चुके हैं। इतनी भीषण ठंड तो सैकड़ों वर्षों में कभी नहीं हुई।''

''आप सही कहते हैं कमाण्डर सेक्टर फोर। अकेले मेरे सेक्टर टू में दो हजार लोग मर चुके हैं। इसकी रोकथाम कैसे कर सकते हैं हम आखिर।'' दूसरे ने कहा

पूरा बोल्की ग्रह चार सेक्टरों में बंटा हुआ था। हर सेक्टर का एक मुखिया होता था जिसे उस सेक्टर का कमाण्डर कहा जाता था।

''हालांकि हमने इस ठंड से बचने का पूरा प्रयास किया है। पूरे पूरे शहरों को भट्ठी की तरह कृत्रिम रूप से तपा दिया है। लेकिन फिर भी हम कहां तक इस ठंड से लड़ सकता है। हमारे वैज्ञानिकों के अनुसार सौरमंडल के सूर्य का ताप काफी गिर चुका है। यहाँ तक कि ताप के इस भीषण परिवर्तन को हम सहन नहीं कर पा रहे हैं।'' सेक्टर वन के कमाण्डर ने कहा।

''माई गॉड। इतना कम ताप तो पूर्व इतिहास में कभी नहीं हुआ।''

''शायद एक बार हुआ था। करोड़ों वर्ष

पहले। तब हमारे ग्रह का तापमान बहुत कम था। उस समय यहाँ ऐसे प्राणी वास करते थे जो उस ताप को सहने में समर्थ थे। फिर एकाएक यहाँ के वायुमंडल में भीषण बदलाव आया और वे प्राणी समाप्त हो गये। फिर हम लोग पैदा हुए। वायुमंडल में आया वह भीषण बदलाव किस प्रकार का था, यह अभी तक अज्ञात है। शायद सूर्य का ताप एकाएक बढ़ गया था या इसी प्रकार की कोई अन्य बात हुई थी।'' कमाण्डर सेक्टर फोर ने कहा। वह अब कुर्सी से उठाकर कमरे में टहलने लगा था।

''क्या हमारे वैज्ञानिकों के पास इस समस्या से निपटने का कोई उपाय नहीं हैं? कमाण्डर सेक्टर वन ने पूछा, ''कमाण्डर सेक्टर फोर आप बताइए, क्योंकि आपका सेक्टर वैज्ञानिक दृष्टि से सबसे अधिक उन्नत है।''

''हमारे वैज्ञानिक कह रहे हैं कि यदि उन्हें किसी ऐसे ग्रह के अध्ययन का मौका मिल जाये जहाँ के प्राणी बहुत कम ताप पर जीवन व्यतीत कर रहे हों तो शायद वे इस समस्या का हल निकाल सकें।''

''ऐसा कौन सा ग्रह है?'' कमाण्डर सेक्टर वन विचारमग्न मुद्रा में बोला। ''मैं बताता हूँ। यहाँ से चार सौ प्रकाश वर्ष दूर एक ग्रह है जो पृथ्वी के नाम से जाना जाता है। वहाँ का ताप हमारे ग्रह से सौ गुना कम है।'' कमाण्डर सेक्टर थ्री जो बहुत देर से मौन था, इस बार बोल उठा।

''फिर तो हमारे वैज्ञानिक को तुरन्त उस ग्रह की ओर प्रस्थान कर देना चाहिए। मुझे आशा है कि उस ग्रह अर्थात पृथ्वी के अध्ययन से बचाव की कोई न कोई तरकीब मिल जायेगी।'' कमाण्डर सेक्टर वन बोला। इसी के साथ मीटिंग समाप्त हो गयी।

वैज्ञानिकों का यह दल पृथ्वी के जिस स्थान पर उतरा, वह पूरी तरह निर्जन था। वास्तव में यह किसी मरुस्थल का भाग था।

''यह अच्छा है कि हमारा यान इस निर्जन स्थान पर उतरा है और हम यहां के प्राणियों से गुप्त रहकर अपना काम कर सकते हैं।'' वैज्ञानिकों में से एक ने कहा।

''आपने सच कहा मि० सेमी। अब हमें समय न नष्ट करते हुए अपनी मशीनों को इस ग्रह के अध्ययन के लिए सेट कर लेना चाहिए। ''दूसरा वैज्ञानिक बोला।

''लेकिन यान का दरवाजा खोलने से पहले आप लोग विशेष प्रकार की पोशाकें पहन लीजिएगा जो यहाँ के कम तापमान पर हमें जीवित रखेंगी।'' मि० रोमी ने कहा और सभी वैज्ञानिक पोशाकें पहनने लगे। पोशाकें पहनने के पश्चात् इन लोगों ने उस पर लगा विशेष बटन दबाया जो कंधे के पास था। इस के साथ वे पोशाकें अंगारे की तरह दहकने लगीं।

पुनः मि० रोमी ने यान के डैश बोर्ड पर लगा एक लीवर दबाया और यान का दरवाजा खुल गया। सभी वैज्ञानिक नीचे उतर आये।

उस स्थान का अवलोकन करने के पश्चात् उन्होंने यान से विभिन्न प्रकार के यन्त्र उतारने आरम्भ कर दिये जब सारा सामान उतर गया तो उन्होंने उन यन्त्रों को वहीं रेगिस्तन की रेतीली भूमि में फिट कर दिया और अपने अन्वेषण में जुट गये।

काफी देर तक वे अपने यन्त्रों से जूझते रहें। लगभग पांच घण्टे की खोजबीन और विचार विमर्श के बाद मि० रोमी ने कहा,''इस तरह हमने यह फाइनल निष्कर्ष निकाला है कि यह पूरा ग्रह

भूमि के पाँच बड़े टुकड़ों में बँटा हुआ है और उनमें से पश्चिमी टुकड़े का ऊपरी भाग सबसे अधिक विकसित है। क्यों मि० रोडास?"

"आपने सही कहा मि० रोमी। और जहाँ तक मैं समझता हूँ, हमारी समस्या का हल भी उसी विकसित भाग से मिल सकता है।" मि० रोडॉस ने अपना विचार व्यक्त किया।

" तो ठीक है। अब हम उसी विकसित भाग का अध्ययन करते हैं।"

"हमें गर्मी चाहिए। हमें बचाओ वरना अपने साथ पूरे ग्रह को तहस नहस कर देंगे।"यह आवाजें आ रही थीं उस ठिठुरते विशाल जनसागर से जो इस समय एक बड़े मैदान में इकट्टा था।

इस जन समूह के सामने ग्रह के चारों कमाण्डर एक ऊँचे स्थान पर खड़े हुए थे। " आप लोग शान्त रहिए। हमारे वैज्ञानिक काम कर रहे हैं जल्दी ही कोई उपाय ढूँढ़ लिया जायेगा।" कमाण्डर सेक्टर वन ने उन्हें दिलासा दिया।

"लेकिन कब? कब यह उपाय ढूँढ़ा जायेगा। हम लोगों में से रोज सैकड़ों व्यक्ति इस ठंड की ताब न लाकर मर रहे हैं। हमारे पास इतना पैसा भी नहीं है कि आपके शरीरों पर चढ़ी मंहगी पोशाकें खरीद सकें। एक बार आप उन पोशाकों से बाहर आकर देखिए किस तरह इस ठंड के कारण हम तड़प रहे हैं।" मजमें से एक व्यक्ति बोला "तुमने सच कहा जब प्रजा के पास ठंड से बचाव की पोशाकें नहीं है तो हमें भी इन पोशाकों को पहनने का अधिकार नहीं है। मैं अपनी पोशाक उतार रहा हूं कहते हुए कमाण्डर सेक्टर वन ने अपनी पोशाक की ओर हाथ बढ़ाया। उसी समय पीछे से आवाज आयी "ठहरिये कमाण्डर" सबने पीछे मुड़कर देखा मि० रोमी अन्य वैज्ञानिकों के साथ खड़े हुए थे।

"मि० रोमी। आप कब लौटे पृथ्वी से? क्या कोई उपाय मिल गया?" कमाण्डर सेक्टर फोर ने एक साथ दो प्रश्न कर डाले।

"हमारा राकेट अभी–अभी धरती पर उतरा है और हम सीधे यहीं आये हैं" मि० रोमी ने कहा और साथ में इस ठंड से बचाव का उपाय भी लाये हैं" रोमी की बगल में बड़े रोडॉस ने कहा। "क्या आप सच कह रहे हैं?" क्या वास्तव में उपाय मिल गया?" कमाण्डर आश्चर्य से लगभग चीख पड़ा।

"जी हाँ। ऐसा उपाय जो पूरी तरह कारगर होगा मेरा विचार है किसी शान्त कमरे में मैं अपनी पूरी योजना और उपाय बताता हूँ।"

"ठीक है।" कमाण्डर सेक्टर फोर ने कहा। फिर मजमें को संबोधित करते हुए उन्हें वैज्ञानिकों का सन्देश सुनाया जिसे भीड़ ने शान्त होकर सुना।

"तो इसलिए आप अपने घरों को जाइए। यदि आपको अपने वैज्ञानिकों पर भरोसा है।" भीड़ अब धीरे–धीरे घटने लगी थी।

मीटिंग में मि० रोमी ने बोलना आरम्भ किया, " हमने पृथ्वी का पूरी तरह अध्ययन किया जो कई देशों में बंटी है। कुछ बहुत अधिक विकसित हैं तो कुछ पिछड़े हैं। उनके बीच आपसी युद्ध भी हुआ करते हैं। परिणामस्वरूप उन्होंने कुछ ऐसे अस्त्र विकसित किये हैं जो पल भर में किसी बड़े शहर को तहस–नहस कर दें।

उन्हीं अस्त्रों में शामिल हैं, परमाणु बम और हाइड्रोजन बम। जो विस्फोट में अपार ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। इसी से हमें यह उपाय मिला कि यदि ये बम हम उपयोग में लायें तो कुछ ही पलों में इस ग्रह को पर्याप्त ऊष्मा मिल जायेगी। इतनी कि यह ठंड पूरी तरह समाप्त हो जायेगी।"

"गुड आइडिया। क्या आप इस तरह के बम बनाने की पूरी टेक्नोलॉजी लेकर आये हैं?" कमाण्डर सेक्टर फोर ने पूछा।

"जी हाँ। और अब हम अपना कार्य आरम्भ कर देना चाहते हैं। देर करना हमारे लिए हानिकर होगा।

थोड़ी देर बाद परमाणु बम का निर्माण कार्य प्रारम्भ हो चुका था। उस ग्रह की वैज्ञानिक प्रगति का यह सबूत था कि जल्दी ही परमाणु बम के निर्माण के लिए फैक्ट्री पूर्णतः तैयार हो गयी।

"इससे पहले कि हम अपने ग्रह पर पहला विस्फोट करें, अपने चारों कमाण्डर्स को इसके उद्‌घाटन के लिए आमन्त्रित करते हैं।" मि० रोमी ने संचार माध्यमों द्वारा पूरे ग्रह पर संदेश प्रसारित कराया।

चारों कमाण्डर फैक्ट्री के उद्‌घाटन के लिए पहुँच गये।

" आइये। हम आपको बम निर्माण की मुख्य यूनिट दिखते हैं।" मि० रोमी ने कहा और एक दैत्याकार मशीन के सामने जाकर वे लोग रुक गये।

"माई गॉड। य–ये मशीन।" कमाण्डर सेक्टर थ्री के मुँह से आश्चर्यमिश्रित आवाज निकली और सभी चौंक कर उनकी ओर देखने लगे।

"बिल्कुल इसी प्रकार की मशीन हमारे सेक्टर के पुरातत्व वैज्ञानिकों ने खुदाई में निकाली है।" कमाण्डर सेक्टर थ्री ने अपनी बात पूरी की।

"यह आप क्या कह रहे हैं। भला यह कैसे संभव है? सभी के मुँह से लगभग एक साथ निकला।

"यह वास्तविकता है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि वह मशीन कम से कम दो करोड़ वर्ष पुरानी है।"

"इसका अर्थ हुआ कि दो करोड़ वर्ष पहले हमारे ग्रह पर कोई ऐसी विकसित सभ्यता थी जिसने परमाणु बम का अविष्कार कर लिया था। लेकिन प्रश्न उठता है कौन थी वह सभ्यता?" कमाण्डर सेक्टर वन ने कहा।

"इस प्रश्न पर हम बाद में विचार करेंगे। अब देर न करके विस्फोटों की शुरूआत कर देनी चाहिए।" रोमी यह कहते हुए मशीन की ओर बढ़ा।

परमाणु व हाइड्रोजन बम के विस्फोटों के बाद ग्रह का ताप द्रुत गति से बढ़कर ग्रह के निवासियों के अनुकूल हो गया। हर तरफ खुशियाँ मनायी जाने लगीं और लोग सड़कों पर उतरकर नाचने गाने लगे।

किन्तु ग्रह के प्रमुख वैज्ञानिक इन सब से दूर सेक्टर थ्री के उस म्यूजियम में उपस्थित थे जहाँ करोड़ों वर्ष पुरानी मशीन रखी हुई थी।

"कमाल है। यह तो हूबहू उसी प्रकार की मशीन है। अंतर है तो केवल धातु का। और थोड़ा बहुत ढाँचे का।" एक वैज्ञानिक बोला।

"क्या इससे यह नहीं लगता कि करोड़ों वर्ष पहले इस ग्रह की सभ्यता ने परमाणु बम बना लिया था।" कमाण्डर सेक्टर थ्री ने कहा।

"इसका अर्थ हुआ कि वह सभ्यता बहुत विकसित थी। लेकिन इतनी विकसित सभ्यता एकाएक नष्ट कैसे हो गयीं?" मि० रोमी ने कहा।

"मैं बताता हूं कि वह सभ्यता कैसे नष्ट हो गयी थी।" वहां एक स्वर गूंजा और ये लोग चौं क कर उधर देखने लगे। एक बहुत बूढ़ा और कमजोर व्यक्ति बगल के कमरे से निकल रहा था।

"ओह। मि० सेनटेरी, आप अपने कमरे से

क्यों निकल आये। आपको तो आराम की सख्त जरूरत है।"कमाण्डर सेकटर थ्री तुरंत दौड़कर उस व्यक्ति के पास पहुँचा और सहारा देने लगा।

"यह कौन हैं?" रोमी ने पूछा।

"हमारे सेक्टर के सबसे सीनियर और विद्वान वैज्ञानिक। किन्तु आयु ने इनके मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डाला है। "एक स्थानीय वैज्ञानिक ने बताया "फिर भी मैं इनकी बात सुनना चाहूँगा। कहते हुए रोमी मि० सेनटेरी की ओर बढ़ा।

"सुनो।" उसके पास पहुँचते ही सेनटेरी ने कहा, "तुम जो ये दैत्याकार मशीन देख रहे हो, यही उस सभ्यता के नष्ट होने का कारण है। वह सभ्यता जो दो करोड़ वर्ष पहले इस ग्रह पर आबाद थी। मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें दिखाता हूँ।" सेनटेरी ने रोमी का हाथ पकड़ा और अपने कमरे की ओर ले जाने लगा।

"ये देखो। मैंने इस पर रिसर्च की है। ये रही मेरी थीसिस। " कमरे में पहुंचकर उसने एक लम्बी चौड़ी पुस्तक रोमी के सामने रख दी।

"मैं भूगर्भ विज्ञान का विशेषज्ञ हूँ। मेरे ये आँकड़े मालूम हैं क्या कह रहे हैं?"

"जी हां। कुछ कुछ समझ में आ रहा है।" रोमी ने सर हिलाया। बाकी वैज्ञानिक तथा अन्य व्यक्ति उसके पीछे और उत्सुकता में दोनों की बातचीत सुन रहे थे।

"इन आंकड़ों के अनुसार इस ग्रह का ताप दो करोड़ वर्ष पहले बहुत कम था। आज के ताप से सौ गुना कम। और वह ताप उस समय की सभ्यता के अनुकूल था। लेकिन उस सभ्यता के लोग एक दूसरे से लड़कर उन्हें नष्ट करने की कोशिश में रहते थे। यह बात हमें खुदाई से प्राप्त प्राचीनकालीन यन्त्रों से मालूम हुई है। ये यन्त्र उन प्राणियों की जान लेने में प्रयुक्त किये जाते थे।" मि० सेनटेरी अपनी रिसर्च के बारे में बता रहे थे।

"फिर ये झगड़े बड़े पैमाने पर होने लगे और उन्होंने अपने दुश्मनों को नष्ट करने के लिए ये मशीन बनायी। इस मशीन से लड़ाई का परिणाम इतना भयंकर था कि कुछ ही समय में ताप अत्यधिक बढ़ जाने के कारण वह पूरी सभ्यता नष्ट हो गयी।" सेनटेरी मौन होकर कुछ सोचने लगा।

"मि० रोमी । आप इधर आइए।" पीछे से एक स्थानीय वैज्ञानिक ने धीरे से रोमी को लाया।

"आप मि० सेनटेरी की बातें सुनी? भला यह कैसे हो सकता है कि एक पूर्ण विकसित सभ्यता स्वंय एक पूर्ण विकसित सभ्यता स्वयं अपने को नष्ट कर लें। हमारे ग्रह पर तो ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। क्या आपको नहीं लगता कि मि० सेनटेरी का मस्तिष्क अब सही काम नहीं कर रहा हैं।

रोमी ने कुछ देर तक उस वैज्ञानिक की बातों का कोई उत्तर नहीं दिया। फिर एक गहरी सांस लेकर कहा, "दो करोड़ वर्ष पहले क्या हुआ था, यह समय की गर्त में छुप चुका है। हो सकता है मि० सेनटेरी सही कह रहे हों और यह उनकी कोरी कल्पना भी हो सकता है। किसे मालूम कि कल क्या हुआ था।"

मि० रोमी मौन होकर सेनटेरी के कमरे की ओर देखने लगे जिसका दरवाजा अन्दर से बन्द हो चुका था किन्तु अन्दर से मि० सेनटेरी के बड़बड़ाने की आवाज आ रही थी।

❑❑❑

जीवन-साहित्य

गणित और ज्योतिष के संगम महामहोपाध्याय पं0 सुधाकर द्विवेदी

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय
संयुक्त मन्त्री, विज्ञान परिषद प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद – 211002 (उ०प्र०)

आधुनिक भारत के गणित व ज्योतिष दोनों ही क्षेत्रों में महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी का नाम बड़े ही आदर ओर श्रद्धा के साथ लिया जाता है। संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ करने पर वे अमर–कोश के लगभग पचास श्लोक एक दिन में याद कर लेते थे। ऐसी विलक्षण स्मरण शक्ति और अद्‌भुत प्रतिभा के धनी पं० सुधाकर द्विवेदी की जीवनी वास्तव में पठनीय एवं अनुकरणीय है।

वैसे तो हमारे देश में अनेक गणित और ज्योतिष विद्वानों का जन्म हुआ है किन्तु आधुनिक भारत के गणित व ज्योतिष दोनों ही क्षेत्रों में महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी का नाम बड़े ही आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। द्विवेदी जी का जन्म अनुमानतः 26 मार्च सन् 1860 को काशी के खुजरी मुहल्ले के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। कहते हैं कि जैसे ही डाकिया काशी से प्रकाशित "सुधाकर" पत्रिका लेकर आया तो आपका जन्म हुआ था इसीलिए सुधाकर नाम पड़ा। इनके पिता का नाम कृपालु दत्त द्विवेदी तथा माता का नाम लाची था। आप शुरू से ही अत्यन्त मेधावी तथा कुशाग्र बुद्धि के थे। आपके घर की आर्थिक स्थिति बहुत ठीक न थी तथा जिस वातावरण में आप पल रहे थे वह प्राचीन रूढ़ियों का आदर्श नमूना था। इसका प्रतिफल यह हुआ कि 13 वर्ष की आयु के बाद आपको स्कूली शिक्षा से वंचित होना पड़ा। जब इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तो भली भाँति हिन्दी, लिखने–पढ़ने लगे थे। इनका विवाह 14 साल की आयु में हो गया था। कहा गया है "होनहार वीरवान के होत चीकने पात" यह बात द्विवेदी जी पर पूर्णतया लागू होती है। संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ करने पर वे "अमर–कोश" के लगभग पचास श्लोक एक दिन में याद कर लेते थे।

आपने वाराणसी के पं० दुर्गादत्त से व्याकरण और पं० देवकृष्ण से गणित एवं ज्योतिष का अध्ययन किया। गणित और ज्योतिष में इनकी अद्‌भुत प्रतिभा को देखकर, महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री प्रभावित हुए बिना न रह सके और विभिन्न अवसरों पर विभिन्न पुरस्कारों से पुरस्कृत किया। सुधाकर जी ने अंग्रेजी और फ्रेंच भाषाओं को सीखकर पाश्चात्य ग्रन्थों का अध्ययन किया। शास्त्री जी ने "सिद्धान्त शिरोमणि" ग्रन्थ की टिप्पणी में पाश्चात्य विद्वान डलहोस के सिद्धान्त का जो अनुवाद किया था, उसकी अशुद्धि के ओर द्विवेदी जी ने उनका ध्यान आकृष्ट किया। इस प्रकार लगभग 22 वर्ष की आयु तक पहुंचते–पहुंचते आप लब्धप्रतिष्ठ विद्वान बन गये।

सन् 1883 में द्विवेदी जी विश्व प्रसिद्ध सरस्वती भवन के पुस्तकालयाध्यक्ष बन गये। 16 फरवरी 1887 को महारानी विक्टोरिया के जुबली के अवसर पर सरकार द्वारा इन्हें "महामहोपाध्याय" की उपाधि से सम्मानित किया गया। सन् 1890 में बापू देव शास्त्री के सेवा–निवृत्त होने पर गवर्नर ने इन्हें तत्कालीन राजकीय संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल डॉ० बेनिस के विरोध को नजरन्दाज कर गणित ओर ज्योतिष विभाग का प्रधानाध्यापक नियुक्त किया।

द्विवेदी जी अपने धुन के बड़े पक्के थे। वे प्रायः जटिल प्रश्नों का मनन किया करते थे और यहाँ तक कि घूमते हुए भी कागज पेंसिल लेकर गूढ़तम प्रश्नों का हल निकालते रहते थे। उनकी स्मरण शक्ति व बुद्धि अत्यन्त उच्च कोटि की थी। वे सदैव इस प्रयास में रहते थे कि जटिल से जटिल प्रश्नों का समाधान भी अत्यन्त सहज व सरल रूप में प्रस्तुत हो सके। अध्ययन काल में उन्होंने सदैव एक कुशल शिक्षक की भाँति छात्रों की बौद्धिक क्षमता का ध्यान रखा। एक बार जब वे विद्यार्थियों को पढ़ा रहे थे, लीलावती के एक प्रश्न को लेकर एक विद्यार्थी उनके पास आया, आने वह प्रश्न उसको एक विधि से समझा दिया। पुनः उसी प्रश्न को लेकर एक दूसरा विद्यार्थी आया, उन्होंने उसे दूसरे विधि द्वारा समझा दिया। इस प्रकार क्रमशः सात विद्यार्थी उनके पास उस प्रश्न को लेकर आये और उन्होंने सभी को अलग–अलग विधि से समझाया। अब विद्यार्थियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। विद्यार्थियों के जिज्ञासु चंचल मन से न रहा गया और उन्होंने द्विवेदी जी से सभी को एक ही प्रश्न के अलग–अलग विधियों से समझने का कारण जानना चाहा। द्विवेदी जी ने बताया कि आप लोगों के उत्तर ग्रहण करने की शक्ति अलग–अलग है इसलिए मुझे भी तद्नुरूप विधि अपनाना पड़ा। इससे द्विवेदी जी के बुद्धिमत्ता व योग्यता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

द्विवेदी जी तत्कालीन विद्वानों में अग्रणी थे। कुछ ऐसे अवसर आये जब उनकी विद्वता का लोहा विदेशी विद्वानों को भी मानना पड़ा। एक बार की बात है इंग्लैण्ड के कुछ ज्योतिर्विद भारत पधारे थे उनसे एक ग्रह की गति–विधि पर वार्तालाप हुआ। द्विवेदी जी ने गणना की और उनकी गणना को गलत बताया। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण था, क्योंकि उस समय अंग्रेजों की बातें वाक्य मानी जाती थीं। जो कुछ भी हो द्विवेदी जी को अपने गणना व बुद्धि पर पूर्ण विश्वास था। अंग्रेज विद्वानों ने बताया कि हम लोगों की गणना पेरिस व लन्दन की गणित परिषद से स्वीकृत हो चुकी है ओर आपकी ही गणना गलत है। किन्तु पंडित जी ने उनके गणना की सत्यता से इंकार कर दिया और अपनी गणनाउक्त परिषदों को भेजकर गणना की भूलों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया। परिषद ने गणना के सत्यता की जांच की और पंडित जी की गणना को ठीक पाया। इसके लिए उन्होंने पंडित जी के पास भूल स्वीकार करते हुए क्षमा पत्र भी भेजा। इसके अतिरिक्त भी ऐसी अनेकं घटनायें घटित हुईं जिसमें कि उनको पाश्चात्य विद्वानों से नोक झोंक लेनी पड़ी। इस सबका सम्मिलित प्रभाव यह हुआ कि पंडित जी का नाम विदेशों में यथेष्ट रूप से जाना जाने लगा। आपने ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जन्मपत्री 1884 ई० में बनाई।

आपको भारत एवं भारतीयता से अगाध प्रेम था। आपको यह बात विशेष रूप से खटक

रही थी कि हम गणित एवं ज्योतिष के क्षेत्र में पश्चिमी देशों की बराबरी क्यों नहीं कर पा रहे हैं। यह भी कि हम भारतीय अपने पर विश्वास न कर क्यों पाश्चात्य देशों की बातों को ही प्रमाणित मानते हैं। उन्होंने पाया कि ज्योतिष की संस्कृत भाषा में प्रकाशित पुस्तकें पुराने चाल की हैं। द्विवेदी जी ने अनुभव किया कि हम उन देशों की बराबरी कदापि नहीं कर सकेंगे जब तक कि विश्वविद्यालयों में वेधशालाएं नहीं स्थापित किये जायेंगे और पुस्तकें अपनी मातृभाषा में नहीं लिखी जायेंगी।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आपने गणित और ज्योतिष सम्बन्धी कई ग्रन्थों की रचना की। किन्तु समस्या यह थी कि देश में संस्कृत की शिक्षा प्रणाली, प्रचलित नहीं थी, अतएव ये पुस्तकें आपके पाण्डित्य का परिचायक मात्र बनकर रह गयीं। द्विवेदी जी ने यह भी अनुभव किया था कि पश्चिमी देशों के उन्नति का प्रमुख कारण हैं डिफरैन्शियल कैलकुलस और इण्टीग्रल कैलकुलस। शास्त्री जी ने इनके लिए कमशः"चलन कलन" और "चलराशि कलन" पदों का प्रयोग किया आपने कुल 45 ग्रंथ लिखे हैं।

पंडित जी ने जब यह अनुभव किया कि संस्कृत भाषा अत्यन्त कठिन है ओर उससे देश में शिक्षा के उन्नति का सपना मात्र कल्पना बनकर रह जायेगी तो उन्होंने ग्रन्थों का प्रणयन हिन्दी में करना शुरू कर दिया। उस समय गणित और ज्योतिष की पुस्तकों का प्रणयन कोई आसान बात नहीं थी। यह उस समय और भी कठिन इसलिए था, क्योंकि लोग रूढ़िवादी व प्राचीन विचारधारा से इस प्रकार अभिभूत थे कि नवीनता से उन्हें बिल्कुल ही अरुचि थी। किन्तु संकल्प–शक्ति के धनी पंडित जी इन सबसे लेश मात्र भी हतोत्साहित नहीं हुए और मृत्युपर्यन्त गणित और ज्योतिष शास्त्र को नयी दिशा देने में लगे रहे। आप द्वारा रचित कुछ पुस्तकें हिन्दी माध्यम से विज्ञान के प्रचार–प्रसार के प्रति समर्पित देश की प्राचीनतम संस्था विज्ञान परिषद प्रयाग से भी प्रकाशित हुई हैं। द्विवेदी जी के सभी ग्रन्थ अपने ढंग से अनूठे हैं और आपके विलक्षण प्रतिभा और पाण्डित्य का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। हिन्दी में आपने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनमें से कुछ मुख्य निम्न हैं– चलन कलन, चलराशि कलन समीकरण मीमांसा (विज्ञान परिषद से प्रकाशित), पंचांग विचार, गति विद्या, ग्रहण करना, वर्गचक्र में अंक भरने की रीति आदि। आपके द्वारा लिखित गणित का इतिहास भी प्रसिद्ध है।

द्विवेदी जी उच्च कोटि के साहित्यकार एवं कवि भी थे। जब नागरी प्रचारिणी सभा भवन का उद्घाटन तत्कालीन छोटे लाट सर जेम्स डिगिस लाटूश ने किया तो उसका स्वागत पंडित सुधाकर द्विवेदी ने ब्रजभाषा कविता से किया। उन्हें हिन्दी भाषा में लेखन के प्रचलित शैली से बड़ी अरुचि थी। उनका यह कहना था कि उस शैली का क्या लाभ जो जनसाधारण के ग्राह्य शक्ति के बाहर हो। आप भारतेन्दु बाबू के समकालीन थे ओर आपकी उनसे घनिष्ठ मित्रता थी। दोनों का यह विचार था कि लेखन शैली ऐसी होनी चाहिए, जिससे अधिकाधिक लोग लाभ उठा सकें। हिन्दी की सेवा जितना अधिक द्विवेदी जी ने किया, शायद ही गणित, ज्योतिष एवं संस्कृत के विद्वान ने किया हो।

पंडित जी भक्ति मार्ग के अनन्य पोषक थे। आजकल वैज्ञानिक गण प्रायः ज्ञान की महत्ता को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, किन्तु वे राम के परम भक्त थे। उनकी कविताएं प्रायः राम भक्ति से ओत–प्रोत होती थीं। यही नहीं, अपने सभी पुस्तकों के शुरू में राम की स्तुति की है।

आपने भाषा एवं साहित्य सम्बन्धी पुस्तकों की भी रचना की। मालिक मुहम्मद जायसी का महाकाव्य "पद्मावत" उस समय तक दुरुह माना जाता था। आपने ग्रियर्सन के साथ पच्चीस खण्डों के टीका द्वारा उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिया। तुलसीकृत रामायण के बालकाण्ड का संस्कृत भाषा में अनुवाद भी किया।

द्विवेदी जी के काल में हिन्दी भाषा का न तो निश्चित स्वरूप और न ही उचित स्थान प्राप्त था। उनका यह मत था हिन्दी को ऐसा स्वरूप प्रदान किया जाय कि वह स्वमेव जनसाधारण की भाषा बन जाय, जिससे किसी को यह न लगे कि हिन्दी उस पर थोपीं जा रही है। इसके लिए आपने हिन्दी भाषा में अनेक शब्द भी गढ़े। वे इसके लिए आदान–प्रदान के पक्षधर थे और उत्तम शब्दों को जो कि प्रचलन में हैं चाहे वे किसी भी भाषा के हों ग्रहण करने में टाल मटोल नहीं करते थे। उनकी यह चरम इच्छा थी कि हमारी मातृभाषा हिन्दी इतनी विस्तृत एवं सम्पूर्ण हो कि सभी विषय इसमें आ जायें। द्विवेदी जी के इस विचार से आज के भी अनेक विद्वान सहमत हैं किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि देश में पंडित जी जैसी कुछ कर गुजरने की निष्ठा, लगन और दृढ़ संकल्प की।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा से आपका अटूट सम्बन्ध रहा। वे नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला के सम्पादक और बाद में सभा के उपसभापति और सभापति और सभापति भी रहे। जीवनपर्यन्त आपने सभा के उन्नति के लिए अथक प्रयत्न किया। सभा द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक कोष के गणित–ज्योतिष भाग के संपादन एवं संकलनकर्ता का दायित्व आप पर ही था। यह कोष आज भी वैज्ञानिकों, लेखकों, छात्रों आदि सभी के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

द्विवेदी जी आधुनिक विचारधारा के उदार व्यक्ति थे। उनके कार्य अनोखे ढंग से होते थे तथा नवीनता से युक्त होते थे। उनको अपने नवीनता तथा स्वच्छ युक्तियों पर गर्व था। समाज में व्याप्त अस्पृश्यता, ऊँच–नीच तथा जातीयता व काशी के पंडितों में व्याप्त संकीर्णता से उन्हें घोर निराशा होती थी। विदेश यात्रा के कारण उन्हें जातिच्युत कर दिया गया था किन्तु उन्होंने यह सिद्ध किया कि विदेश यात्रा से कोई धर्महानि नहीं।

द्विवेदी जी की यह परम इच्छा थी कि हिन्दी भाषा में गणित शास्त्र का सम्पूर्ण इतिहास लिखा जाय। इस योजना के अनुरूप आपने लेखन कार्य शुरू भी कर दिया था। यह इतिहास ग्रन्थ आप चार भाग में पूरा करना चाहते थे। किन्तु इसमें प्रथम भाग ही पूर्ण हो पाया था कि एक साधारण बीमारी से 28 नवम्बर, 1910 को आप चिर निद्रा में सो गये। इस 50 वर्ष के जीवन काल में ही आपने हिन्दी संसार में एक युगान्तर स्थापित कर दिया। समस्त देशवासी उनके द्वारा राष्ट्र उत्थान में किये गये योगदान के लिए सदैव ही ऋणी रहेंगे।

❑❑❑

सब्जी-उत्पादन

"प्रकृति की अनमोल धरोहर सब्जियों को जानें"

हेमन्त कुमार पाण्डेय, वन्दना पाण्डेय एवं नरेन्द्र कुमार
रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला, पन्डा, पिथौरागढ़ – 262501

हमारे दैनिक जीवन में सब्जियों का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव आहार में सब्जियों की महत्ता के अतिरिक्त ये व्यावहारिक फसलों व नकदी फसलों के रूप में अपना स्थान रखती हैं। हमें इसके उत्पादन के बारे में गम्भीरता से विचार करना चाहिए ताकि सब्जी की प्रतिदिन की आवश्यकता *250* ग्राम/व्यक्ति पूरी हो सके।

सब्जियां प्रकृति द्वारा प्रदत्त सबसे सुलभ व सस्ता माध्यम हैं, जिनके द्वारा मनुष्य को स्वास्थ्य रक्षा एवं निर्माण हेतु विटामिन, लवण, कार्बोहाइड्रेट, आवश्यक अमीनों अम्ल व रेशा प्राप्त होते है। सब्जियाँ न केवल खाने की मेज की सुन्दरता को बढ़ाती हैं, अपितु मनुष्य के अच्छे स्वास्थ्य के लिए भी अत्यावश्यक हैं। ये मनुष्य के संतुलित भोजन का एक महत्वपूर्ण अंग हैं।

साधारण बोलचाल में सब्जी शब्द का प्रयोग पौधे के उन भागों को जो पकाकर या कच्चा, भोजन का हिस्सा बनते हैं, के लिए किया जाता है। साधारणतया पौधों की पत्तियां, जड़, कन्द, फल, बीज, फूल, तना, प्ररोह आदि सब्जियों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं।

सब्ज़ी उत्पादन के क्षेत्र में भारत का चीन के बाद दूसरा प्रमुख स्थान है। कृषि वातावरणीय विविधता के कारण भारत वर्ष में सर्वाधिक सब्जी प्रजातियां उगाई जाती हैं। वर्तमान समय में हमारे देश में 660 लाख टन सब्जियां 62 लाख हेक्टेअर क्षेत्र में उगायी जा रही हैं। यह क्षेत्रफल कुल कृषि उत्पादन में लिये जा रहे क्षेत्रफल का 2.8 प्रतिशत हैं।

सन् 2000 तक भारत की जनसंख्या लगभग 100 करोड़ से अधिक हो जांयेगी, तब मनुष्य ~~की~~ आहार की आवश्यकता को पूरा करने के लिए 930 लाख टन सब्जियों की आवश्यकता होगी। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए सब्जियों की उत्पादकता को बढ़ाने की अति आवश्यकता है। ताकि भविष्य में सब्जी उत्पादन के क्षेत्र में उचित सामर्थ्य प्राप्त हो सके।

पोषणविदों के अनुसार एक वयस्क व्यक्ति के भोजन में प्रतिदिन 250 ग्राम सब्जियां होनी चाहिए। जबकि हमारे देश में प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति सब्जियों का उपभोग केवल 120 से 130 ग्राम ही है। जो व्यक्ति कम मात्रा में सब्जियों का सेवन करते हैं या उनकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं होती हैं कि सब्जियों का खर्च वहन कर सकें तो उनमें विटामिन एवं लवणों की कमी के रोग हो जाते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के

अनुसार भारत में 6-7 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। जिनमें मुख्य रूप से विटामिन "ए" की कमी से सम्बन्धित रोग होते हैं।

मानव शरीर को प्रतिदिन 2800 कैलोरी औसत ऊर्जा की आवश्यकता होती है जबकि भारत में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 2000 कैलोरी ऊर्जा ही प्राप्त होती है। इस कमी की पूर्ति के लिए शरीर निर्माण हेतु आवश्यक खाद्य प्रोटीन ऊर्जा के रूप में प्रयुक्त हो जाती हैं भारत में कुल प्रोटीन आवश्यकता का 60.2 प्रतिशत अनाजों से, 25.6 प्रतिशत दालों व फलियों तथा एक सूक्ष्म भाग पशु प्रोटीन से आता है। इस प्रकार कुछ आवश्यक अमीनो अम्लों की पूर्ति में असुंतलन उत्पन्न हो जाता है। जिससे कि कुछ आवश्यक अमीनों अम्ल जैसे मीथियोनिन, लाइसीन तथा ट्रिप्टोफेन की शरीर में कमी हो जाती है। रोजमर्रा की प्रोटीन, विटामिन व लवण की आवश्यकता को 75 से 125 ग्राम हरी सब्जियां, 85 ग्राम अन्य सब्जियां व 85 ग्राम जड़ व कन्द वाली सब्जियां लेने से पूरा किया जा सकता है। पच पाने वला भाग है जो कि पाचन तंत्र के ठीक से कार्य करने के लिए अत्यावश्यक है। ये रेशे लिग्निन, सैलूलोज, हैमीसैलूलोज, वैक्स व क्यूटिन आदि द्वारा बने रहते हैं तथा कब्ज को दूर करते हैं हृदय सम्बन्धित रोग, हर्निया, फोड़ों तथा एपेन्डीसाइटिस बनने को रोकते हैं। रक्त कोलेस्ट्रॉल स्तर को कम करते हैं। हरी पत्तेदार सब्जियों, सलाद, बन्दगोभी व कद्दू कुल की सब्जियों में रेशा समुचित रूप में पाया जाता है।

भारत में अनुसंधान द्वारा विभिन्न सब्जियों की 160 उन्नत किस्में विकसित की गयी हैं। ये प्रजातियां अभी तक कुल सब्जी उत्पादन क्षेत्रफल के 30-40% क्षेत्रफल में ही उगायी जा रही है। इन उन्नत प्रजातियों का क्षेत्रफल बढ़ाकर देश में सब्जी उत्पादन को बढ़ाने की पूरी सम्भावनाएं हैं।

मानव आहार में सब्जियों की महत्ता के अतिरिक्त ये व्यावसायिक फसलों व नकदी फसलों के रूप में भी अपना स्थान रखती हैं। सब्जी उत्पादन से अनेक उद्योगों को सहारा मिलता हें। जैसे– खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, बीज उद्योग, खरपतवार–नाशक एवं कीटनाशक उद्योग, फार्म मशीनरी एवं यंत्र उद्योग एवं विपणन उद्योग आदि।

अच्छा स्वास्थ्य सुखमय जीवन का मूल आधार है। इसके लिए पौष्टिक आहार का होना आवश्यक है। सब्जियाँ हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी में महतवपूर्ण स्थान रखती हैं। हमें इसके उत्पादन के बारे में गम्भीरता से विचार करना चाहिए ताकि सब्जी की प्रतिदिन की आवश्यकता 250 ग्राम व्यक्ति पूरी हो सके।

अतः प्रकृति द्वारा प्रदान की गयी इस अमूल्य धरोहर का लाभ उठाइये। अपने परिवार के बीच इस खजाने को लुटाइये और पूर्ण रूप से स्वस्थ जीवन का आनंद लीजिये।

प्रौद्योगिकी

वर्मीकम्पोस्टिंग : खाद भी, अपशिष्ट निपटान भी

डॉ० संजीव त्रिपाठी

शीलाधर मृदा विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

केचुएं अत्यन्त प्राचीन समय से ही किसानों के मित्र एवं प्रकृति के हलवाहे जैसे नामों से जाने जाते रहे हैं किन्तु वर्तमान में पर्यावरण प्रदूषण विशेष रूप से ठोस व्यर्थ पदार्थों से होने वाले प्रदूषण के निवारण में इनकी अहम् भूमिका है। इतना ही नहीं, रासायनिक उर्वरकों से होने वाले भूमि और जल प्रदूषण को ये स्वयं द्वारा तैयार वर्मीकम्पोस्ट के इस्तेमाल से कम सकते हैं।

केंचुए भूमि में कार्बनिक अपशिष्ट पदार्थ को बहुमूल्य कार्बनिक खाद में बदलकर तीव्र प्राकृतिक जैव प्रतिकारक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। केंचुए मृदा संरचना व मृदा वातन को बढ़ाते हैं, मृदा को पोषक तत्वों से समृद्ध करते हैं तथा पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक सूक्ष्मजीवों की संख्या को बढ़ाते हैं। कार्बनिक पदार्थ से समृद्ध करते हैं तथा पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक सूक्ष्म जीवों की संख्या को बढ़ाते हैं। कार्बनिक पदार्थ से समृद्ध एक हेक्टेयर मृदा में 50000 से 4 लाख तक केंचुए पाये जाते हैं जो 25 से 30 टन तक कृषि–मल उत्पन्न करते हैं। कृषि–मल (वर्मी–कम्पोस्ट) बहुत से मृदा पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन (2.5%), पोटाश (1.4 %), सल्फर (2.9 %) फास्फोरस, कैल्शियम तथा मैग्नीशियम से समृद्ध होता है। वर्मीकम्पोस्ट वृद्धि हार्मोन्स तथा विटामिनों से भी समृद्ध होता है तथा सूत्रकृमियों और रोगों के विरुद्ध एक शक्तिशाली जीवनाशी के रूप में कार्य करता हैं। वर्मीकम्पोस्ट केचुंए के कॉकून तथा लाभदायक मृदा सूक्ष्मजीवों को आश्रय प्रदान करता है।

कुछ व्यापारिक कम्पनियां वर्मीकम्पोस्ट तैयार करने के लिए कार्बनिक पदार्थों पर उत्पन्न हुए सजीव केचुओं के कल्चर को प्रयोग करती हैं। घरेलू स्तर से औद्योगिक स्तर तक वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए तकनीक उपलब्ध हैं। केंचुए की कुछ विशिष्ट प्रजातियों का नियन्त्रित दशाओं में प्रजनन एवं पालन करने की वैज्ञानिक विधि वर्मीकल्चर कहलाती है। यह तकनीक आजकल भारत में अपनी जड़ जमा रही है। अपशिष्ट पदार्थों का केंचुए के द्वारा पुनः उपयोग वर्मीटेक्नोलॉजी अथवा वर्मीकम्पोस्टिंग कहलाता है। वर्मीकम्पोस्टिंग से कार्बनिक उर्वरक, पशु प्रोटीन तथा उर्जा से युक्त संसाधनों की प्राप्ति होती हैं। इसके अतिरिक्त यह कार्बनिक अपशिष्टों के निपटान, वातावरणीय प्रदूषण व दुर्गन्ध को कम करने में सहायक है तथा रोजगार के नये अवसर भी उत्पन्न करता है।

शहरी नागरिकों के स्वास्थ्य के लिए ठोस अपशिष्ट पदार्थों का यथोचित संग्रह तथा उसका निपटान बहुत ही महत्वपूर्ण है। भारत के शहरों में प्रतिदिन लगभग 80 हजार टन ठोस अपशिष्ट पदार्थ उत्पन्न होता है। यह बहुत ही अफसोस

की बात है कि देश के किसी भी शहर में अपशिष्ट पदार्थों के संग्रहण एवं निपटान की सुरक्षित विधि का उपयोग नहीं किया जाता है। भारत का लगभग 60 % ठोस कार्बनिक अपशिष्ट पदार्थ रसोईघरों एवं बाजारों से उत्पन्न होता हैं। जिसको वर्मीकल्चर तकनीक द्वारा बहुत ही साधारण तरीके से समृद्ध कार्बनिक खादों में परिवर्तित किया जा सकता है।

शहरी कार्बनिक ठोस अपशिष्ट पदार्थों को वर्मीकम्पोस्ट में दो तरह में परिवर्तित किया जा सकता है। पहला प्रत्येक परिवार द्वारा घरेलू स्तर पर तथा दूसरा बृहत वर्मीकम्पोस्ट इकाइयों द्वारा ठोस अपशिष्ट पदार्थों के प्रबन्ध में प्रथम व सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण पृथक्करण है। रसोइयों व बाजारों से कार्बनिक पदार्थों को प्लास्टिक, पेपर, सीसा, चमड़ा तथा अक्रिय मलबे से अलग कर लेना चाहिये तथा उसे अलग बर्तन में रखना चाहिये। यह ठोस अपशिष्ट पदार्थों के यथोचित निपटान में सहायक होगा। घरेलू स्तर पर केंचुए के कल्चर को रसोईयों व बाजारों के कार्बनिक पदार्थों से युक्त बर्तन में सीधे डाल सकते है। इसको केंचुए पादप पोषक तत्वों, विटामिनों और वृद्धि हारमोन से समृद्ध वर्मीकम्पोस्ट में बदल देंगे। इसी वर्मीकम्पोस्ट को गृह–वाटिका, बालकनी वाटिका तथा गमलों में प्रयोग करके सब्जियों, फलों व फूलों की उपज को बढ़ाया जा सकता है। रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर वर्मीकम्पोस्ट का व्यवसायिक रूप से खेतों में प्रयोग फसलों, फलों तथा सब्जियों के उत्पादन के लिए भी किया जा सकता है। महाराष्ट्र में किसानों ने वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग करके विभिन्न फसलों से अच्छी उपज प्राप्त की है।

एक बड़े स्थिर यंत्र में शहर के विभिन्न स्थानों के कार्बनिक ठोस अपशिष्ट पदार्थों को वर्मीकम्पोस्ट में परिवर्तित किया जा सकता है। मुम्बई की एक्सेल उद्योग 400 टन कार्बनिक अपशिष्ट पदार्थ को इकट्ठा करके उसे एक समृद्ध कार्बनिक वर्मीकम्पोस्ट में बदल करके 'सेलरिच' नाम से बाजार में बेचती है। भावलकर केंचुआ अनुसंधान संस्थान पुणे भी कार्बनिक ठोस अपशिष्टों को वर्मीकम्पोस्ट में बदलने में लगी हुई है। इसी प्रकार दिल्ली और तमिलनाडु के बहुत से स्वयं सेवी संगठन शहरों के अपशिष्टों को उपयोगी कार्बनिक खादों में बदलने में लगे हुए हैं।

वर्मीकल्चर के यथोचित उपयोग के लिए इसके प्रत्येक चरण में आम जनता को सम्मिलित होना आवश्यक है। शहरी अपशिष्टों के यथोचित प्रबन्ध के लिए स्वयंसेवी संगठनों, अशासकीय संगठनों तथा प्राइवेट कम्पनियों को भी आगे आना चाहिए।

मुम्बई शहर में 1996-97 में ठोस अपशिष्ट पदार्थों के प्रबन्ध में 220 करोड़ रुपया खर्च किया गया जबकि शहर के 40 % कार्बनिक पदार्थ का कम्पोस्ट में बदलकर 75 करोड़ रुपया सालाना बचाया जा सकता है। इस प्रकार शहर के अपशिष्ट पदार्थों के निपटान के लिए केंचुए का प्रयोग करके अपशिष्टों के संग्रहण और निपटान पर ख़र्च होने वाले देश के करोड़ों रुपये को बचाया जा सकता है तथा साथ ही किसानों के लिये मूल्यवान वर्मीकम्पोस्ट भी प्राप्त किया जा सकता है।

□□□

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	: रासायनिक तथ्य विचित्र किंतु सत्य
लेखिका	: सुशीला राय
प्रकाशक	: ग्रँथ अकादमी, *1686* पुराना दरियागंज, नई दिल्ली *- 110002*
मुद्रक	: प्रिंट परफैक्ट, दिल्ली
मूल्य	: पचहत्तर रुपये
प्रथम संस्करण	: *1997*
पृष्ठ संख्या	: *96*, चित्र संख्या *39*

समीक्ष्य पुस्तक की लेखिका डॉ० सुशीला राय का नाम हिन्दी विज्ञान के क्षेत्र में प्रतिष्ठित नाम है। इनके लेख न केवल सराहे गए हैं वरन पुरस्कृत भी हुए हैं।

यह पुस्तक मूलरूप से रसायन विज्ञान से संबंधित अनेक विचित्र तथ्यों को सामने लाती है जो ऊपर से देखने में जादू-टोने, अंधविश्वास, हाथ की सफाई जैसे लगाते हैं किंतु वास्तव में उनके पीछे वैज्ञानिक आधार निहित है। उदाहरण के लिए बोतल में अण्डा जो बोतल के मुँह से बड़ा होता है, बोतल के अंदर कैसे प्रवेश कर गया? फूलों को कैसे रंगहीन कर देते हैं? जादू से कैसे दूध में उबाल आ जाता है? बोतल में बादल कैसे बना सकते हैं? होली में कपड़ों पर रंग डालने पर थोड़ी देर में रंग क्यों गायब हो जाता है? जादुई धुयें की दीवार क्या है? क्या चूना रक्त की तरह लाल उबलता दिख सकता है? वृक्ष सोने-चाँदी के जैसे 83 जिज्ञासाओं के वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किए गए हैं।

इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि पुस्तक 15-16 वर्ष तक की वय वाले बच्चों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। भाषा सरल, और शैली रोचक है। चित्र, विषय-वस्तु को समझने में जहाँ एक ओर सहायता पहुँचते हैं वहीं दूसरी ओर चित्रों के कारण पुस्तक आकर्षक [illegible] गई है। शीर्षक बरबस मन में जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं। जहाँ आवश्यक समझा है वहाँ लेखिका ने रासायनिक सूत्र भी लिखे हैं। इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिन लोगों ने रासायनिक विज्ञान का विधिवत अध्ययन नहीं किया है वे भी अपनी जिज्ञासा शांत कर सकते हैं। कवर का मुख पृष्ठ और चतुर्थ पृष्ठ अत्यन्त आकर्षक है। मुद्रण बढ़िया है और त्रुटियाँ नहीं के बराबर हैं। कुल मिलाकर यह पुस्तक लोकोपयोगी विज्ञान लेखन के क्षेत्र में मील का पत्थर सिद्ध होगी। इस पुस्तक को बड़े लोग बच्चों को उपहारस्वरूप भी दे सकते हैं।

लेखक, प्रकाशक, मुद्रक, चित्रकार आदि सभी प्रकाशन से जुड़े लोगों को साधुवाद।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग
सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद-2
आवास : 5 ई/4 स्टाफ क्वार्टर्स, लिडिल रोड
जार्ज टाउन, इलाहाबाद-2

□□□

फार्म 4/FORM IV
नियम 8 देखिये (See Rule 8)

1. प्रकाशन स्थान	: विज्ञान परिषद् प्रयाग
2. प्रकाशन अवधि	: मासिक, प्रत्येक मास का 15 दिनांक
3. मुद्रक का नाम	: श्री अनिल
क्या भारत का नागरिक है?	: हाँ
पता	: अनिल प्रिंटिंग प्रेस 31-बी, कचेहरी रोड, इलाहाबाद -2
4. प्रकाशक का नाम	: डॉ० शिवगोपाल मिश्र
पता	: अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद - 2
5. सम्पादक का नाम	: डॉ० दिनेश मणि, डी०एस-सी०
क्या भारत का नागरिक है?	: हाँ
पता	: प्राध्यापक, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद - 2
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	: विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद - 2

मैं शिवगोपाल मिश्र एतत् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनाक 1 - 3 - 1999

शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान
परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद - 211002

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पता:

डॉ० दिनेश मणि, डी० एस० सी०
संपादक विज्ञान
विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

सिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च,
नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

अंक : अप्रैल 1999
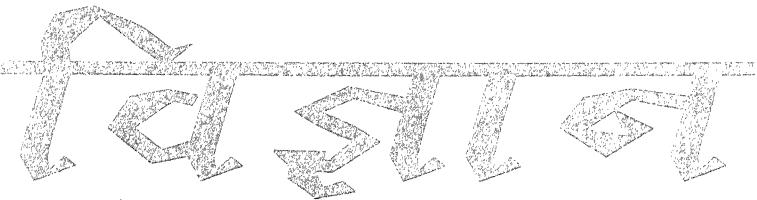
विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका
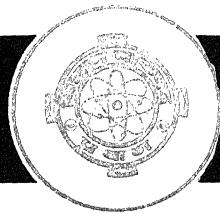
एक प्रति 5 रु०

परिषद की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 85 अंक 1
अप्रैल 1999
मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत,
1000 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

■

प्रकाशक
डॉ० शिव गोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

■

सम्पादक
डॉ० दिनेश मणि, डी० एस–सी०

■

मुद्रक
अनिल
अनिल प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद

■

सम्पादकीय

......और इस तरह ''विज्ञान'' पत्रिका ने अपने सफल प्रकाशन के 84 वर्ष पूरे कर लिए। इस अंक (अप्रैल 1999) से पत्रिका 85 वें वर्ष में प्रवेश कर रही है। इस अवसर पर मैं पत्रिका के पूर्व सम्पादकों की उल्लेखनीय एवं अविस्मरणीय सेवाओं का स्मरण करते हुए विद्वान लेखकों एवं सुधी पाठकों के सहयोग के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

विज्ञान परिषद् प्रयाग के मुख पत्र के रूप में प्रकाशित ''विज्ञान'' पत्रिका का अनवरत् प्रकाशन संस्था के प्रति अत्यधिक निष्ठा एवं समर्पण भाव रखने वाले लेखकों/पाठकों के उदार सहयोग से ही सम्भव हो सका है।

विज्ञान का सतत् प्रकाशन हम सबके लिए जहाँ एक ओर ऐतिहासिक महत्व की बात है, वहीं दूसरी ओर यह गौरव का विषय भी है। संस्था एवं पत्रिका के प्रति भावनात्मक लगाव के बिना यह सम्भव नहीं है। इसके प्रकाशन को नैरंतर्य प्रदान करने तथा इसके स्वरूप को संवारने और निखारने में अनगिनत महानुभावों का प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग रहा है। मेरे पूर्व के संपादकों ने इसे जो ऊँचाइयां प्रदान की, उसे सुरक्षित रखना मेरे लिए आप सभी के सहयोग के बिना सम्भव नहीं है।

उपभोक्तावादी अपसंस्कृति के संक्रमणजन्य प्रभावों के कारण जो विसंगतियां जीवन में आ गई हैं– उससे आदमी की अस्मिता को ही खतरा पैदा हो गया है, पत्रिका की तो बात ही क्या? निश्चित रूप से यह चुनौतीपूर्ण संक्रमण काल है। हम सभी का यह कर्तव्य बन जाता है कि हम सब मिलकर साहित्यिक विरासत की सुरक्षा भी करें और उसे भावी पीढ़ियों तक पहुंचायें भी।

''अगर चला हो अभीष्ट
तो आओ चल पड़ें।
राह में मिलते चलेंगे
संबल नए–नए।''

दिनेश मणि
(डॉ० दिनेश मणि)

सारांश

आगामी शताब्दी में जैव तकनीकी : अवसर और चुनौतियाँ

डॉ० मंजू शर्मा
सचिव, जैव तकनीकी विभाग
भारत सरकार, नई दिल्ली

यह वर्ष इस शताब्दी का अन्तिम वर्ष है। पिछले *100* वर्षों में हमने विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन देखे हैं। सम्पूर्ण विश्व में आगामी शताब्दी की चुनौतियों से निपटने हेतु युद्धस्तर पर प्रयास चल रहे हैं।

अभी–अभी हमने अपनी स्वतन्त्रता की 50 वीं वर्षगॉठ मनाई है। इस देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त थे और विज्ञान तथा वैज्ञानिकों के विकास के प्रबल पक्षधर थे। पं० नेहरू के विचार में आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में विज्ञान और तकनीकी ज्ञान एक शक्तिदायक कारक के रूप में कार्य करता है। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने 1958 में विज्ञान नीति प्रस्ताव प्रस्तुत किया था जो आज की प्रगति के लिये एक आधार के रूप में विद्यमान है।

हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री माननीय अटल बिहारी वाजपेई ने "जय जवान, जय किसान तथा जय विज्ञान" के मंत्र के रूप में हमारे समक्ष विज्ञान के लिये नई प्रेरणा प्रस्तुत की है। गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के सामाजिक आर्थिक स्तर को सुधारने तथा जीविकोपार्जन के साधन व सुरक्षा उपलब्ध कराने को माननीय प्रधानमंत्री जी ने प्रमुख लक्ष्य माना हे। हम सारे वैज्ञानिक इस स्वप्न को वास्तविक में बदलने के लिये हर सम्भव प्रयास करेंगे।

इस समय विश्व में गणित, भौतिकी, रसायन, विज्ञान, जैव तकनीक, जीव विज्ञान, इलेक्ट्रॉनिकी, सूचना तकनीक, इंजीनियरिंग, अंतरिक्ष विज्ञान तथा अन्य कई क्षेत्रों में आशातीत प्रगति हो चुकी है। परमाणु युग का आरम्भ 1945 में ही नाभिकीय विस्फोट के साथ तथा आधुनिक इलेक्ट्रानिक युग का आरम्भ 1947 में ट्रांजिस्टर के आविष्कार के साथ ही हो चुका है। इसी प्रकार अंतरिक्ष युग का आरम्भ स्पूतनिक के 1957 में प्रक्षेपण के साथ तथा आधुनिक जीव विज्ञान का आरम्भ 1953 में डी०एन०ए० के डबल हेलिक्स स्ट्रक्चर की खोज के साथ हो चुका है।

जीव विज्ञान का अध्ययन मुख्य रूप से पौधों तथा जन्तुओं की विविधता के वर्गीकरण से सम्बन्धित है। मेण्डल द्वारा 1865 में की गई ऐतिहासिक खोजों के पश्चात आधुनिक जीव विज्ञान की शुरूआत हुई। मेण्डल का कार्य मुख्य रूप से आनुवंशिकी से सम्बन्धित था। डारविन ने 1859 में विकासवाद भी इस दिशा में निर्णायक कार्य था। मानव सभ्यता के प्रारम्भिक दौर से कृषि के क्षेत्र में जैव तकनीक (बायोटेक्नालोजी) के चमत्कार से जीव विज्ञान का महत्व और भी स्पष्ट हो जाता है। 17 वीं शताब्दी में लीवन हॉक द्वारा सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार और बैक्टीरिया की खोज एवं 19 वीं शताब्दी में पास्चर के माइक्रोबायलॉजी तथा इम्यूनोलॉजी से सम्बन्धित खोजें महत्वपूर्ण घटनाएँ थीं।

आधुनिक जैवतकनीकी की प्रगति जीव विज्ञान में रासायनिक रूप से निर्मित ब्लॉक की आधारीय विधियों के नियन्त्रण की मूलभूत जानकारी की वैज्ञानिकों के समझ की क्षमता पर निर्भर करती है। पशु चारे के निर्माण में, दुग्ध उद्योग में तथा कृषि में सूक्ष्म जीवों की लाभदायक क्रियाएं पहले से ही ज्ञात थीं। आज आनुवांशिक अभियांत्रिकी पौधों तथा जन्तुओं के प्रजनन में अधिकता से इस्तेमाल की जा रही है।

जैव तकनीकी से सम्बन्धित अब तक उपलब्ध जानकारी से वैज्ञानिकों, तकनीकविदों, तथा औद्योगिक मालिकों के बीच उल्लेखनीय सहजीवन की प्रबल सम्भावनाएँ हैं।

प्रकृति के व्यवहार और कार्य को समझने में आनुवंशिकी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। न्यूक्लियोटाइड के सार पर जीनोम की संरचना के विश्लेषण से सम्बन्धित अनुसंधान के प्रयास प्रगति पर हैं। कृषि के क्षेत्र में जैव

इण्डियन साइंस कांग्रेस एसोसियेशन के 86 वें अधिवेशन (चेन्नई) में दिया गया अध्यक्षीय भाषण का सारांश

को सीमित भूमि से पर्याप्त खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराने में सहायता मिलेगी। आगामी शताब्दी में जनसंख्या की अनुमानित 2 प्रतिशत वृद्धि के लिए खाद्यान्न उत्पादन को दुगना बढ़ाना होगा। आधुनिक जैव तकनीकी के बिना यह मुश्किल ही नहीं असम्भव भी होगा। यह आशा की जाती है कि खाद्यान्न उत्पादन में तीन चौथाई वृद्धि उपलब्ध भूमि पर जैव तकनीक के प्रयोग द्वारा सघन खेती पद्धति से प्राप्त होगी। पश्च–हरित क्रान्ति को अब जीन क्रान्ति के रूप में बदलने की आवश्यकता है।

21 वीं शताब्दी में हमें प्राकृतिक खेती/कार्बनिक खेती की पद्धति को अत्यधिक प्रोत्साहन देना होगा। जैव उर्वरकों, जैव कीटनाशियों, वर्मीकल्चर के व्यापक स्तर पर प्रयोग को वास्तविकता को रूप देना होगा। पशुधन की नस्ल सुधार एवं दुग्ध, अण्डे मांस इत्यादि के उत्पादन के बढ़ाने के लिए जेनेटिक मैनिपुलेशन की मदद लेनी होगी। भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक की सहायता से अपने पशुधन की नस्ल सुधारने में हम सक्षम हो गए हैं। "उत्तम मादा" (सुपीरियर फीमेल) बनाकर पीढ़ी–अन्तराल को कम करने में मदद मिल रही है। पशुओं की विभिन्न संक्रामक बीमारियों यथा–खुरपका–मुँहपका, वाइरल फीवर आदि की रोकथाम तथा पशुओं द्वारा प्राप्त सह–उत्पाद यथा–चमड़ा आदि की प्रोसेसिंग में जैव तकनीक काफी कारगर सिद्ध हुई है। मछली उत्पादन में भी जैवतकनीक से आशातीत वृद्धि हुई है।

पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में जैव विविधता को बरकरार रखने में तथा प्रदूषण नियंत्रण में जैव तकनीकी से काफी सहायता मिली है। सारांश रूप में ही यह कहा जा सकता है कि जैव तकनीक की सहायता से आगामी शताब्दी की खाद्य पशुधन, जैवविविधता, प्रदूषण तथा स्वास्थ्य की चुनौतियों का हम डटकर मुकाबला करने में सक्षम होंगे। ❑❑❑

डॉ० मंजू शर्मा : संक्षिप्त परिचय

डॉ० मंजू शर्मा ने 1961 में लखनऊ विश्वविद्यालय से एम०एस–सी० प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर बीरबल साहनी मेमोरियल गोल्ड मेडल प्राप्त किया। यू०एस०ए० की परड्यू यूनिवर्सिटी में प्रो० ए० सी० लियोपोल्ड के साथ लेटेक्स पौधोंपर पोस्ट–डाक्टोरल रिसर्च किया। कोपेनहेगन यूनिवर्सिटी के "इन्स्टीट्यूट ऑफ प्लाण्ट एनाटॉमी एण्ड साइटोलॉजी" में विजिटिंग साइंटिस्ट के रूप में कार्य किया। आपने "प्लाण्ट इंडियोब्लास्ट" पर विस्तृत कार्य किया और अच्छा प्रकाशन किया। फारेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट, देहरादून में बड़ी संख्या में लकड़ी की कठोरता के बीच सह–सम्बन्ध स्थापित किया। आई.सी.एम. आर. द्वारा प्रकाशित पुस्तक "इण्डियन मेडिसिनल प्लाण्ट्स" की आप सह–लेखिका हैं। आपने कई शोध पत्र, स्पेशल पेपर्स, विज्ञान तथा तकनीकी के विविध पक्षों पर पॉलसी रिपोर्ट डाकूमेण्ट भी तैयार किए है।

1974 से आप विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, योजना आयोग, प्रधानमंत्री के विज्ञान सलाहकार के कार्यालय तथा जैव तकनीकी विभाग में कार्य कर रही हैं तथा सामान्य एवं जैव विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा चुकी हैं।

आधुनिक जैव तकनीकी के क्षेत्र में आपने कृषि तथा अन्य संभागों में यथा बायोमास उत्पादन, जैव उर्वरक, प्रकाश संश्लेषण शोध पर रिपोर्ट, पादप ऊतक संवर्ध के विभिन्न उपयोग, बायोस्फियर रिजर्व, " साइलेण्ट वेली, पर रिपोर्ट (केरल) अण्डमान निकोबार द्वीप समूह तथा लक्षद्वीप जैसे संघीय राज्यों में पर्यावरणीय विकास, फसलों, में ट्रांसजेनिक रिसर्च, जर्मप्लाज्म संरक्षण, औषधीय तथा एरोमेटिक पौधों, खाद्य जैव तकनीकी, नई–नई वैक्सीनें तथा मानव आनुवांशिकी के कई कार्यक्रमों को सफलता पूर्वक उत्प्रेरित किया।

बायोटेक कॉन्सोर्टियम इण्डिया लिमिटेड के द्वारा उद्योग मालिकों तथा शोध वैज्ञानिकों के अन्तराल को कम करने में आपने महत्वपूर्ण कार्य किया है। रीजनल कोऑर्डिनेटर ऑफ द फार्मर–सेन्टर्ड–एग्रीकल्चरल रिसोर्स मैनेजमेण्ट तथा जी–15 देशों के लिये औषधीय तथा एरोमैटिक पौधों के जीन बैंक से सम्बन्धित प्रायोजना की कोआर्डिनेटर के रूप में आपका व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव है।

आपने इण्डियन साइंश कांग्रेस ऐसोसियेशन की कार्यकारिणी तथा कौंसिल, विभिन्न वैज्ञानिक समितियों की चेयरपर्सन, सदस्य सचिव, टास्क फोर्स तथा रिसर्च एडवाइजरी कौंसिल के सदस्य के रूप में योगदान दिया है। नेशनल एकेडमी ऑफ साइसेंज की आप क्रमशः जनरल सेक्रेटरी, उपसभापति तथा अध्यक्ष रह चुकी हैं तथा पूर्ण समर्पण भाव से अपने उत्तरदायित्वों का आज भी निर्वाह कर रही हैं। वर्तमान में आप इण्डियन साइंस कांग्रेस एसोसियेशन (कलकत्ता) की अध्यक्ष हैं। विज्ञान परिषद् प्रयाग (इलाहाबाद) की भी आप अध्यक्ष है। आप कई विश्वविद्यालयों में दीक्षान्त भाषण दे चुकी हैं।

आपको वासविक पुरस्कार, बोरलॉग पुरस्कार, इण्डियन साइंश कांग्रेस एसोसिएशन द्वारा विशिष्ट वैज्ञानिक पुरस्कार प्राप्त हो चुके है। आप थर्ड वर्ल्ड एकेडमी ऑफ साइसेंज, इण्डियन सोसाइटी ऑफ एग्रीकल्चरल बायोकेमिस्ट की आनरेरी फेलो हैं। बायोसाइंसेज सोसाइटी द्वारा आपको इस वर्ष के० एन० बहल मेमोरियल गोल्ड मेडल भी प्रदान किया गया है। आन्ध्र प्रदेश विज्ञान अकादमी द्वारा आपको विशिष्ट वैज्ञानिक का सम्मान दिया जा चुका है। आपको वर्ष 1998 का एफ.आई. ई. का राष्ट्रीय पुरस्कार भी दिया जा चुका है।

अनुदित विज्ञान साहित्य

महान वैज्ञानिकों की कृतियों के हिन्दी अनुवाद

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
25, अशोक नगर , इलाहाबाद - 1

किसी एक भाषा का किसी अन्य भाषा में रूपान्तर अनुवाद कहलाता है। कोई अनुवाद तभी सम्भव है जब अनुवादक कम से कम दो भाषाओं से सिद्धहस्त हो और इनमें से एक भाषा उसकी निजी भाषा हो। यदि वह अन्य भाषाओं में पारंगत हो तो समझिये कि सोने में सोहागा है। किन्तु विज्ञान जगत में ऐसे लोग कम ही हैं। हां, कम्प्यूटर के प्रवेश से भविष्य में कोई भी अनुवाद कार्य सरल बन सकेगा।

कोई अनुवाद अक्षरशः हो, या भावानुवाद–यह कृति विशेष की विषय–वस्तु पर निर्भर करेगा। किन्तु अनुवाद के लिए किस कृति को चुना जाय, यह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है और यह चुनाव कठिन है। शायद साहित्य के क्षेत्र में यह कार्य सरल हो किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में ऐसा चुनाव कर पाना इसलिए दुष्कर है क्योंकि विज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक है। यदि ख्याति को मानदण्ड बनाया जाय तो भी अनुवाद करने योग्य कृतियों की संख्या कम नहीं होगी। न्यूटन से लेकर आइन्स्टीन तक, जेम्स जीन्स से लेकर बर्ट्रेण्ड रसेल तक, डार्विन से लेकर जुलियन हक्सले तक न जाने कितने विश्व विश्रुत वैज्ञानिक लेखक हुए हैं जिनकी कृतियां बहुचर्चित रही हैं। चूंकि इनमें से अधिकांश कृतियाँ अंग्रेजी में ही हैं। अतः हिन्दी में उनके अनुवाद के प्रयास काफी पहले से होते रहे हैं। यह बात दूसरी है कि अब ये अनुवाद चर्चा में नहीं है किन्तु समय समय पर इन अनुवादों के माध्यम से छात्र, जनसामान्य तथा विद्ज्जन समान रूप से लाभान्वित हुए होंगे।

ये सारे अनुवाद व्यक्तिगत प्रयासों के फलस्वरूप तथा किसी न किसी योजना के अन्तर्गत किये या कराये गये हैं किन्तु ये कितनी ईमानदारी से किये गये हैं, इसकी कोई समीक्षा नहीं हुई। हां, इन अनुवादों से (भले ही देर से हुए हों) यह स्पष्ट है कि हिन्दी में सामयिक वैज्ञानिक जागरुकता रही है। इससे नई शब्दावली का विकास हुआ और ज्ञान के नये वातायन खुले हैं। इससे स्पर्धावश हिन्दी में उच्चस्तरीय वैज्ञानिक पुस्तकों का लेखन भी हुआ है। हम उन प्रकाशकों को नहीं भुला सकते जिन्होंने समय की पुकार सुनी और नई–नई विदेशी या देशी पुस्तकों के अनुवाद कराये। यदि यह प्रोत्साहन न मिलता तो बेचारे अनुवादक क्या कर पाते? उनके द्वारा अनूदित कृतियाँ यों ही पड़ी रहतीं।

हमने कुछ अनूदित कृतियों की सूची बनाने का प्रयास किया है। ये अनुवाद 1925 से ही उपलब्ध होने लगते है। जिन वैज्ञानिकों की कृतियों के अनुवाद हमारे देखने में आये हैं उनमें डार्विन, जेम्स जीन्स, अलबर्ट आइन्स्टीन कोपर्निकस, फ्रेंड हायल, एनरिको फर्मी, जुलियन हक्सले, बर्ट्रेण्ड रसेल, जार्ज गैमो, लुई द ब्रोगली, एच०जी० वेल्स, जूल्सर्वन, आइजेक ऐसीमोव, रिचीकाल्डर आदि मुख्य हैं।

कई बार यह जिज्ञासा होती है कि ये अनुवाद किन–किन व्यक्तियों के द्वारा हुए है। अनुवादकों के नाम देखने पर केवल कुछ ही लब्ध प्रतिष्ठ लेखक मिलेंगे–यथा डॉ० गोरख प्रसाद, रामचन्द्र तिवारी, डॉ० निहाल करण सेठी। किन्तु अन्य अनुवादक कम महत्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि उनके नाम महान कृतियों के साथ जुड़े गये हैं यथा डॉ० हरिभगवान, डी० एन० पाण्डेय, राकेश पोपली, डॉ० श्रवण कुमार तथा डॉ० रमाकान्त पाण्डेय, श्रीमती निर्मला जैन, गंगा पाण्डेय, मधुकर, अनन्त लक्ष्मी अम्माल आदि आदि।

खेद तो इस बात का है कि इन अनुवादों की चर्चा बहुत कम की जाती है और लगातार हिन्दी के भण्डार को रिक्त बताया जाता है। विज्ञान के हिन्दी लेखकों को चाहिए कि इन अनुवादों पर एक दृष्टि अवश्य डालें।निम्नलिखित सूची में हमने डॉ० जगदीशचन्द्र बोस तथा डॉ० चन्द्रशेखर वेंकट रमन जैसे भारतीय वैज्ञानिकों की कृतियों के अनुवादों को भी सम्मिलित किया है। ये अनुवाद काफी बाद के हैं– इससे यह प्रश्न सहज ही उठता है कि अपने देश के वैज्ञानिकों की कृतियों की ही अनदेखी हुई। हिन्दी के साहित्य का अनुवाद समय से हो जाता है और उसकी चर्चा की जाती है तो उससे अत्यधिक लाभ हो सकता है। अभी हिन्दी के अनुवादकों या पाठकों में ऐसी रुचि उत्पन्न नहीं हो पाई। विज्ञान जिस गति से प्रगति कर रहा है और आये दिन जिस त्वरा से पुस्तकें छप रहीं हैं उसे देखते हुए अनुवादकों को काफी सूझबूझ से काम लेना होगा।

❑❑❑

हिन्दी में अनुवाद का सबसे समृद्ध काल 1960-70 का दशक रहा है। किन्तु इधर भी कुछ न कुछ अनुवाद देखने को मिल जाते हैं–

अनुवादी तिथि	वैज्ञानिक	मूल पुस्तक का नाम	हिन्दी अनुवाद	अनुवादक
1925	बर्ट्रेण्ड रसेल		आपेक्षिकता की मूल संकल्पनाएं	श्रीमती निर्मला जैन
1955	फर्डीनैंड सी. लेन	Ali about the Sea	समुद्र की कहानी	रमेश चन्द्र वर्मा
1958	रोशेल एल० कार्सन	The sea around us	सागर की खोज	आनन्द प्रकाश जैन
1960	चन्द्रशेखर वेंकट रमन	Aspects of Science	विज्ञान के दृश्य	रामचन्द्र तिवारी
1960	अलबर्ट आइंस्टीन	Meaning of Reletivity	आपेक्षिकता का अभिप्राय	डॉ० निहाल करण सेठी
1960	लुई द ब्रोगली		भौतिकविज्ञान में क्रांति	डॉ० निहाल करण सेठी
1963	एडुवर्ड फाबेर	The Noble Prize winners in Chemistry	रसायन में नोबेल पुरस्कार	डॉ० हरि भगवान विजेता
1963	जे० अर्थर टामसन	Everyday biology	दैनिक जीवन में विज्ञान	कामेश्वर सहाय भार्गव
1964	जेम्स जीन्स	Mysterious universe	रहस्यमय विश्व	श्रीमती अनन्त लक्ष्मी अम्माल
1964	चार्ल्स डार्विन	The origin of life	जाति वर्गों का इतिहास	उमाशंकर श्रीवास्तव
1966	रिची काल्डर	Science makes sense	जीवन और विज्ञान	हरिराम गुप्त
1967	बर्ट्रेण्ड रसेल	Scientific outlook	वैज्ञानिक परिदृष्टि	गंगा पाण्डेय
1968	जुलियन हक्सले	Evolution Action	---------	मधुकर
1970	डी० एच० उडाल	The practice of Veterinary medicine	पशु आयुर्विज्ञान	डॉ० डी०एन० पाण्डेय
1971	एनरिको फर्मी	Thermodynamics	उष्मागतिकी भ्रमण	एस० के० जैन
1972	कोपर्निकस	--------	खगोलीय पिंडों के परिभ्रमण	श्रवण कुमार तिवारी तथा रमाकान्त पाण्डेय
1972	जार्ज गैमोव	Physics; Foundation and Frontiers	भौतिक शास्त्र आधार एवं सीमाएं	बिहारी लाल रावत
	फ्रेडहायल	Frontiers of Astronomy	ज्योतिष की पहुंच	गोरख प्रसाद

अनुवादी तिथि	वैज्ञानिक	मूल पुस्तक का नाम	हिन्दी अनुवाद	अनुवादक
1972	फ्रीडरिख लारेंट्ज	———	किरणों का रहस्यमय संसार	विश्वमोहन तिवारी
1974	डॉ० जगदीश चन्द्र बसु	Plant autographs & relations (1926)	वनस्पतियों का स्वलेख	रामदेव मिश्र
1981	आइजक ऐसीमोव		शिशु रोबोट	गुणाकर मुले
1981	विक्टोर कामोराव		दूसरी धरती	गुणाकर मुले
1987	वि० ग्लुश्कोव	What is cybernatics	चालिका क्या है	देवेन्द्र प्रसाद वर्मा
1989	ब्ला० इ० कुजेनत्सोव	Light	प्रकाश	देवेन्द्र प्रसाद वर्मा
1990	जीन तथा राबर्टबैंडिक	Television works like this	टेलीविजन	श्रवण कुमार तिवारी
	आइजक ऐसीमोव	Chemicals of life	जीवन के रसायन तत्व	अरविंद जायसवाल
	,, ,,		बाह्य अंतरिक्ष में उपग्रह	
	,, ,,		ब्रह्माण्ड की ईंटें	
1998	जार्ज गैमो	One Two Three... Infinity	परमाणु से सितारों तक	राकेश पोपली

टिप्पणी :– जूर्ल्स बर्न के वैज्ञानिक उपन्यासों का अनुवाद डॉ० नवल बिहारी मिश्र ने किया है। एच० जी० वेल्स के भी उपन्यासों के हिन्दी अनुवाद प्राप्त हैं।

तकनीक

आग से न जलने वाले छप्पर

एन० एस० त्यागी एवं आर० पी० कुलश्रेष्ठ
अग्नि अनुसंधान प्रयोगशाला, केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान
रुड़की – 247667 (उ० प्र०)

आग से न जलने वाले छप्परों का निर्माण जिन चीजों से किया जाता हैं वे आग को बहुत तेजी से पकड़ती हैं, फिर भी छप्पर अग्निरोधी बन जाता है। है न यह एक चमत्कार !

आपको यह जानकर बड़ा आश्चर्य होगा कि केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की में विकसित की गई विधि से बने घास–फूँस के छप्परों में न तो आग लगती है और न ही पानी का असर होता है तथा ये छप्पर इतने टिकाऊ होते हैं कि 7-8 वर्ष तक ज्यों के त्यों बने रहते हैं छप्पर बनाने की विधि इतनी सरल है कि गांवों के अनपढ़ नर–नारी खुद ही अपना छप्पर बना सकते हैं। छप्पर में प्रयोग होने वाली सारी सामग्री गाँवों में उपलब्ध रहती है। केवल मिट्टी का तेल और तारकोल प्राप्त करने के लिए सरकारी अधिकारियों का सहयोग लेना पड़ेगा। परम्परागत छप्पर और इस छप्पर में इतना सा अन्तर है कि एक तो इसका फ्रेम इतना मजबूत बनाना होता है कि झुके नहीं और दूसरा यह कि छप्पर पर तारकोलयुक्त गारे का लेप करना होता है! इसी कारण इस छप्पर की लागत, यदि छप्पर खुद बनाया जाये तो परम्परागत छप्पर से कुछ ही ज्यादा आती है। यदि एक सौ वर्ग फुट छप्पर सारी सामग्री खरीदकर और मजदूरों से बनवाया जाये तो आज की महंगाई में भी 2500 रु० से ज्यादा लागत नहीं आयेगी।

घास–फूँस, लकड़ी आदि जो भी सामग्री छप्पर में प्रयोग होती है जरा सी चिंगारी छूते ही जल उठती है और छप्पर के ऊपर जो लेप किया जाता है उसमें भी तारकोल और मिट्टी का तेल मिलाया जाता है जो अति ज्वलनशील है इसके बाद भी छप्पर अग्निरोधी बन जाता है। इस चमत्कार को इस प्रकार समझ सकते हैं।

मिट्टी के गारे में मिलाया गया मिट्टी का तेल और तारकोल की मात्रा इतनी कम होती है मिट्टी का तेल तो उड़ जाता है और तारकोल गारे में इस प्रकार मिल जाता है कि उसका कण–कण अलग–अलग हो जाता है अतः लेप में तो आग लगने का सवाल ही नहीं उठता है। जहाँ तक फूँस में आग लगने की बात है वह इसलिए नहीं लगती कि फूंस गारे के लेप के नीचे ढक जाता है और यदि छप्पर के लेप के ऊपर जलती मशाल भी रख दी जाये तो फूँस में गरमी तो पहुँचेगी पर हवा न मिल पाने के कारण आग नहीं लगेगी। क्योंकि आग जलने के लिए ईंधन, हवा और ऊष्मा तीनों चाहिए अतः इस विधि से घास–फूँस का छप्पर भी अग्निरोधी बन जायेगा। गारे में तारकोल मिला होता है और ऊपर कटबैक की पुताई कर दी जाती हैं। अतः गारा बारिस के पानी में बहेगा नहीं और पानी गारे में घुसेगा भी नहीं, अतः छप्पर जलरोधी भी बन जायेगा।

छप्पर बाँधने की विधि

अग्निरोधी एवं जलरोधी छप्पर बाँधने में इस बात का विशेष ध्यान रखना होता है कि छप्पर का फ्रेम इतना मजबूत बने कि वह लिपाई के बोझ से झुके नहीं

और एक टिकाऊ फ्रेम बन जाये। यदि छप्पर फूँस, भींड, सरकंडा, ताल्मीरा की पत्तियों से बनाना हो तो फ्रेम के लिए ५ सेमी मोटे सीधे बांसों की दो तह एक दूसरे के ऊपर लम्बवत् इस प्रकार बिछाई जाती है। कि 30 सेमी के वर्गाकार खाने बन जाये। यदि चावल की पुआल, ईख या नारियल की पत्तियों से छप्पर बनाना हो तो 5 सेमी मोटे बांसों के बीच से चीरकर दो तह में एक दूसरे के ऊपर लम्बवत 15 सेमी के अन्तर से बिछाया जाता है और इस प्रकार 15 सेमी वर्गाकार खाने बन जाते हैं। क्योंकि चावल की पुआल, ईख की पत्ती, नारियल की पत्ती कमजोर होती है अतः छोटे खाने बनाने से इनको ज्यादा सहारा मिल जाता है। बांसों को बांधने के लिए सुतली, बान, शन या फूँस का प्रयोग किया जाता है।

छप्पर पर अग्निरोधी लेपन (प्लस्तर)

तालाब की चिमनी मिट्टी का गारा और भूसा (एक घन फुट मिट्टी में डेढ़–दो किलोग्राम भूसा) एक सप्ताह तक खूब गूँथ–गूँथ कर सड़ा हुआ सम्मिश्रण तैयार किया जाता है। इसमें तारकोल और मिट्टी के तेल का 5 और 1 के अनुपात में मिलाकर बनाया गया घोल (कटबैक) मिलाया जाता है। 10 घनफुट तैयार गारे में 18 किलोग्राम मिट्टी का तेल का घोल मिलाया जाना चाहिए। सप्ताह भर तक सड़ाये गये और फिर मिलाये गये गारे में कटबैक को फावड़ों और पैरों की सहायता से इतना मिलाया जाता है कि काले धब्बे न दिखाई दें। इस प्रकार तैयार तारकोल युक्त गारे से छप्पर की लिपाई (प्लस्तर) कर दी जाती हैं।

छप्पर पर तारकोलयुक्त गारे की लिपाई हाथ से या राज–मिस्त्री की करनी से की जाती है। छप्पर की ऊपरी सतह पर और किनारों पर गारे की 10 मि०मी० मोटी पहली लिपाई कर दी जाती है। सूखने के बाद इसी मोटाई की दूसरी परत लेप दी जाती है और सूखने के लिए छोड़ देते हैं। पहली लिपाई के सूखने के बाद जो दरारें दीख रही थी वह दूसरी लिपाई के बाद नहीं दीखेंगी। दूसरी लिपाई के बाद भी जो दरारें दिखाई दें उनको इसी गारे से भर दिया जाता है। गोबर और चिकनी मिट्टी के बराबर मात्रा में मिलाकर गोबरी तैयार की जाती है और छप्पर के ऊपर और किनारों पर लिपाई कर दी जाती है, सूखने के बाद उसी के ऊपर गोबरी की दूसरी लिपाई कर देते हैं।

छप्पर की नीचे की सतह पर तारकोल युक्त गारे की एक लिपाई 5.6 मि.मी. मोटाइ में की जाती है और सूखने पर एक परत गोबरी की लेप दी जाती है। अब छप्पर–झोपड़ी आग से पूरी तरह सुरक्षित यानि अग्निरोधी बन जायेगा।

छप्पर पर जलरोधी घोल से पुताई

मिट्टी के तेल में गरम तारकोल (दोनों बराबर मात्रा में) मिलाकर जलरोधी घोल तैयार किया जाता है। छप्पर की ऊपरी सतह व किनारों पर गोबरी के ऊपर इस घोल की ब्रुश की सहायता से दोबारा पुताई कर दी जाती है। इससे छप्पर बिल्कुल काला हो जायेगा। इसके ऊपर गोबरी की लिपाई या सरेस युक्त चूने की पुताई कर दी जाती है। अब छप्पर पर पानी का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

अग्निरोधी एवं जलरोधी छप्परों का अनुरक्षण

साधारण छप्पर जितना भी मजबूत, मोटा बढ़िया क्यों न बनाया जाये, दो–तीन वर्ष से ज्यादा नहीं चल पाता है। अग्निरोधी एवं जलरोधी छप्पर इतने टिकाऊ होते हैं कि 7-8 वर्ष चलते है। हर वर्ष बरसात शुरू होने से पहले छप्पर के प्लस्तर में जो भी दरारें दिखाई दें, तारकोल युक्त गारे से भर दी जाये और गोबरी या चूने से पुताई कर दी जाये, बस इतनी सी देखभाल की आवश्यकता होती है। किसी कारण विशेष से छप्पर का प्लस्तर फट

जाये, फूँस निकल जाये या बल्ली टूट जाये अथवा छप्पर बीच में झुक जाये, तो सावधानी के साथ बल्ली, फूँस जो भी बदलना अनिवार्य हो बदल दिया जाये और उसकी जगह नया लगा दिया जाये। इस मरम्मत में जितना भी लेपन खराब हो जाये उसके ऊपर बताई विधि से दोबारा कर दिया जाये।

अग्निरोधी एवं जलरोधी छप्परों के प्रयोग से लाभ

- इन छप्परों में आग नहीं लगती है अतः गांवों और झुग्गी झोपड़ियों में रहने वाले गरीबों को आग की विनाश लीला से छुटकारा मिल जायेगा।
- बरसात का पानी नीचे नहीं टपकेगा अतः सामान सड़ने—गलने से बच जायेगा और बारिस में गरीब इस छत के नीचे चैन की नींद सो सकेगा।
- फूँस—भींड, बल्ली लेप से ढके रहते हैं। अतः बारिस के पानी का असर नहीं पड़ता इस कारण हर साल नया छप्पर लगाने की मुसीबत से छुटकारा मिल जाता है।
- छप्पर देखने में सुन्दर लगते हैं, छत के नीचे भी साफ सुथरा रहता है। अतः ऐसे पर्यावरण से मनुष्य का मन प्रसन्न रहता है, स्वास्थ्य अच्छा रहता है।
- एक टिकाऊ छत का साया सिर पर बना रहता है अतः सर्दी, गर्मी और बरसात की मौसमी बीमारियों से छुटकारा मिल जाता है
- तारकोलयुक्त गारे की लिपाई से छप्पर इतनो भारी हो जाता है कि तेज हवाओं औ आँधी में भी नहीं उड़ेगा।
- छप्पर पर तारकोलयुक्त गारे की लिपाई के कारण दीमक नहीं लगेगा और पक्षी, गिलहरी, चूहे आदि भी फूँस नहीं निकाल पायेंगे।

उपसंहार

अग्निरोधी एवं जलरोधी टिकाऊ छप्पर का नाम पढ़ते ही पाठकों के मस्तिष्क में कई प्रकार के प्रश्न उठना स्वाभाविक है। पर लेख को पढ़कर सभी शंकाओं और जिज्ञासाओं का समाधान बहुत अच्छी तरह से समझ में आ गया होगा। उदाहरण के लिए कुछ प्रश्न इस प्रकार हो सकते हैं—

1- घास—फूँस के छप्पर में आग क्यों नहीं लगेगी?

2- मिट्टी का तेल और तारकोल तो बहुत जल्दी आग पकड़ लेते हैं फिर इनको मिलाकर बनाया गया गारा कैसे अग्नि अवरोधक का काम करेगा?

3- छप्पर में प्रयोग होने वाली सारी सामग्री कैसे उपलब्ध होगी?

4- साधारण छप्पर की तुलना में कितनी अधिक लागत आयेगी?

5- क्या इस प्रकार के छप्पर वे खुद अपने हाथों से बना सकेंगे?

केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की के वैज्ञानिकों ने देश के कई प्रान्तों जैसे उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु और पश्चिमी बंगाल में इस प्रकार के छप्पर गावों में बनवाये हैं और लोगों ने इनको खूब पसन्द किया है। इस विषय में और अधिक जानकारी के लिए, साहित्य भेजने के लिए, प्रदर्शन, निर्देशन और प्रशिक्षण के लिए संस्थान के निदेशक को पत्र लिखकर संस्थान की सेवाएं प्राप्त की जा सकती हैं।

❑❑❑

विवेचन

कैसे होती है गंध की अनुभूति?

डॉ० विजय कुमार उपाध्याय
प्राध्यापक, भूगर्भ इंजीनियरी कॉलेज
भागलपुर – 813210

गंध क्या है? गंध बिखेरने के लिए क्या जरूरी है तथा गंध बिखरने वाले किसी पदार्थ का कितना परिमाण हवा में पहुँचने पर मनुष्य की घ्राण शक्ति उसका पता लगा लेती है? आइये जाने, पुस्तक लेख पढ़कर।

गंध को समझने तथा उसकी व्याख्या करने का सबसे पहला प्रयास 47 वर्ष ईसा पूर्व में टी० सी० ल्युक्रिटियस नामक एक विद्वान द्वारा किया गया था। उसने अपने द्वारा लिखित पुस्तक "नेचर ऑफ दि युनिवर्स" में इस विषय की चर्चा विस्तारपूर्वक की है। उसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के अनुसार सुगंधयुक्त पदार्थ गोल तथा चिकने परमाणुओं से निर्मित रहते हैं। इसके विपरीत दुर्गंधयुक्त पदार्थ नुकीले तथा रुखड़े कणों से निर्मित रहते हैं। ईसा बाद छठीं सदी में भारत के वराहमिहिर ने भी अपने द्वारा लिखित 'बृहत्संहिता' में गंध के संबंध में काफी विवेचना की है।

गंध को वैज्ञानिक आधार पर समझने तथा उसकी व्याख्या करने का प्रयास आधुनिक काल में ही किया गया। प्रयासों के फलस्वरूप पता चला कि किसी पदार्थ को अपनी गंध बिखेरने के लिए यह जरूरी है कि उसमें सामान्य तापमान पर पर्याप्त परिमाण में उड़नशील पदार्थ उपस्थित रहे। इस उड़नशील पदार्थ की उत्पत्ति उस पदार्थ में चलनेवाली कुछ रासायनिक क्रियाओं (जैसे संयोग, वियोग इत्यादि) के कारण होती है।

अब प्रश्न उठता है कि गंध बिखेरनेवाले किसी पदार्थ का कितना परिमाण हवा में पहुंचने पर मनुष्य की घ्राणशक्ति उसे पता लगा लेती है? इस प्रश्न के उत्तर में वैज्ञानिकों ने विचार व्यक्त किया कि प्रत्येक गंधयुक्त पदार्थ की क्षमता अलग–अलग है। उदाहरणार्थ मिथेनौल नामक गंधयुक्त पदार्थ का यदि 50 अणु वायु के एक लाख अणुओं के साथ मिल जायें तो एक सामान्य मनुष्य की घ्राणशक्ति उसे पहचान लेती है। इसके विपरीत 2 मिथैकसी 3 आइसोब्युटाइलपाइराजीन नामक गंधयुक्त पदार्थ का यदि एक अणु का बीस लाखवां अंश भी वायु के एक लाख अणुओं के साथ मिल जाये तो सामान्य मनुष्य की घ्राणशक्ति उसे अविलम्ब पता लगा लेती है।

विगत एक शताब्दी के दौरान गंध की उत्पत्ति तथा उसकी अनुभूति से संबंधित 50 से अधिक अलग–अलग सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया। इन सिद्धांतों में से अधिकांश के अनुसार गंध की अनुभूति उत्तेजक अणुओं के दोलनशील रासायनिक या एंजाइम क्रियाशीलता के कारण पैदा होती है। सन् 1982 में जे०ई० एमूर नामक वैज्ञानिक ने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम है फ्रेगेंस केमिस्ट्री'। इस पुस्तक में अब तक गंध के संबंध में प्रतिपादित सभी प्रमुख सिद्धान्तों पर टीका लिखी गयी है। एमूर ने अपने मंतव्य में बताया हे कि गंध की अनुभूति हमें उस समय होती है जब हमारे शरीर के घ्राण ग्राहक अंगों का समागम हवा के साथ उड़ने वाले उस पदार्थ के सूक्ष्म कणों के आकार, आकृति तथा इलेक्ट्रॉनिक स्तर के प्रति संवेदनशील होते हैं। एमूर ने विचार प्रगट किया है कि अनुभव की गयी कोई भी गंध कुछ प्राथमिक

गंधों के मेल पर निर्भर करती है। ये प्राथमिक गंधें मौलिक गंधें कही जाती हैं। मौलिक गंधों में से आठ की पहचान प्रायोगिक विधियों द्वारा की जा चुकी हैं। प्रयोगिक विधि द्वारा मौलिक गंधों की पहचान हेतु कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की विशिष्ट घ्राण क्षमता (स्पेसिफिक एनौस्मिया) का उपयोग किया गया। किसी व्यक्ति द्वारा किसी विशिष्ट घ्राण क्षमता (स्पेसिफिक एनौस्मिया) कहा जाता है। हालाँकि ऐसे लोगों में अन्य सभी गंधों को पहचानने की पूरी क्षमता रहती है।

मनुष्य में गंध को पता लगाने वाली कोशिकायें प्रत्येक नासा छिद्रों से सटे गड्ढों में मौजूद छोटे क्षेत्र में स्थित रहती हैं। साँस लेते समय नासा छिद्रों से होकर नासा गड्ढों में घुसनेवाले उड़नशील कण फेफड़ों में घुसने के क्रम में घ्राण संवेदी अंग में मौजूद स्नायुओं से टकराते हुए गुजरते हैं। घ्राण संवेदी अंग में मौजूद स्नायु ही गंध की किस्म, उसकी तीव्रता तथा संपर्क अवधि के बारे में घ्राण बल्ब के माध्यम मस्तिष्क को सूचना देते है। यह घ्राण बल्ब ही गंध की सूचना मस्तिष्क तक प्रसारित करने के लिये एक रिले केन्द्र का काम करता है। घ्राण संवेदी अंग में सामान्य तौर पर लगभग 10 करोड़ स्नायु (न्यूॅरान) पाये जाते हैं। गंधयुक्त उत्तेजक कणों का स्नायुओं (न्यूॅरान) से समागम ही वस्तुतः गंध की अनुभूति पैदा करने का स्रोत है।

वैज्ञानिकों की पहले धारणा थी कि अलग—अलग किस्म की मौलिक गंध का पता लगाने के लिये मानव शरीर में अलग अलग प्रकार के घ्राण संवेदी स्नायु (न्यूॅरान) होते हैं। कुछ विशेष प्रकार के अध्ययनों से पता चला है कि प्रत्येक घ्राण संबंधी न्यूॅरान अनेक प्रकार की गंधों का पता लगाने की क्षमता रखता है। अब वैज्ञानिक यह समझने का प्रयास कर रहे हैं कि हमारे घ्राण संवेदी न्यूॅरान अलग—अलग प्रकार की गंधों के बीच अन्तर कैसे मालूम कर लेते हैं। हाल में अनेक वैज्ञानिकों ने अनेक ऐसे प्रयोग किये हैं जिनमे गंध ग्रहण करने वाली कोशिका झिल्ली से ग्राहक अणुओं को विलग किया गया है। सन् 1978 में एस० प्राइस नामक वैज्ञानिक का एक शोध—पत्र प्रकाशित हुआ था जिसमें कुत्ते के ओलफैक्ट्री एपिथेलियम से अलग किये गये एक प्रोटीन घटक चर्चा की गयी थी। इस प्रोटीन घटक का मिथौक्सी फिनाइल प्रति विशेष आकर्षण देखा गया। इसी प्रकार पेलोसी तथा उसके साथियों ने सन् 192 में बायोकेमिकल जर्नल में प्रकाशित अपने एक शोध पत्र में बताया था कि बैल के घ्राण अंग श्लेष्मा से प्राप्त प्रोटीन एक्सट्रैक्ट पाइराजीन को बांधता है। कुछ अन्य प्रयोगों से पता चला है कि यह प्रोटीन एक्सट्रैक्ट अन्य कई गंधयुक्त पदार्थों को बांधने में सक्षम है। ऐसे गंधयुक्त पदार्थों में शामिल हैं—एमाइल ऐसीटेट,मिथाइल डाइ हाइड्रो जैसोमोनेट इत्यादि। गेचले तथा उसके साथियों ने मेढक के घ्राण संबंधी क्षेत्र के गहन अध्ययन के दौरान विशिष्ट गंध ग्राहक स्थानों की खोज करने में सफलता प्राप्त की। इस अध्ययन से संबंधित उनका एक शोध पत्र अमेरिका के प्रोसीडिंग्स ऑफ नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज में सन् 1972 में प्रकाशित किया गया था। इन वैज्ञानिकों का विचार है कि घ्राण ग्राहक प्रोटीन वस्तुत:: एक बड़े प्रोटीन—परिवार के सदस्य हैं। ये सभी प्रोटीन गुणों में लगभग एक समान हैं, परन्तु घ्राण संवेदी क्षेत्र के अलग—अलग खण्डों में उपस्थित प्रोटीन अलग—अलग किस्म के गुधंयुक्त कणों को पहचानने की क्षमता रखते हैं। सन् 1982 में न्यूयार्क स्थित एकेडेमिक प्रेस ने एम० जी० जे० वीट्स द्वारा लिखित एक पुस्तक प्रकाशित की जिसका नाम "फ्रेग्रेन्स केमिस्ट्री"। इस पुस्तक में वीट्स ने बताया है कि अलग—अलग गंधों की अनुभूति हमारे ओलफैक्ट्री एपिथेलियम के साथ उत्तेजक अणुओं के विशिष्ट ध्रुवीय तथा आकृतीय समागम के फलस्वरूप होती है।

□□□

डा० आत्माराम स्मृति व्याख्यान -1998

ललित विज्ञान लेखन को रोचक कैसे बनाएं?

डॉ० रमेश दत्त शर्मा
निदेशक
कृषि सूचना और प्रकाशन निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा, नई दिल्ली – 110012

परम आदरणीय डॉ० आत्माराम जी से मेरा परिचय दिल्ली में उस समय हुआ, जब वे वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद, के महानिदेशक बनकर आये। जल्दी ही यह परिचय प्रगाढ़ता में बदल गया और मुझे उन्होंने अपने परिवार के एक सदस्य–जैसा स्नेह दिया। हिन्दी में विज्ञान की सभी जटिल बातें, खासतौर से बच्चों को अत्यंत रोचक बनाकर परोसी जाएं, इसकी उन्हें बहुत चिन्ता रहती थी। वे कहते थे कि हमें विज्ञान के रहस्य पंचतंत्र की शैली में समझाने चाहिए। इस तरह का एक प्रयोग बच्चों की किताब'ओजोन की छतरी' में किया गया। उन दिनों ओजोन की चर्चा शुरू ही हुई थी और उसके बारे में अंग्रेजी में भी कोई विशेष साहित्य उपलब्ध नहीं था। डाक्टर साहब ने ओजोन पर प्रकाशित शोधपत्र मंगाये और उन्हें पढ़कर मुझे समझाया। फिर मैंने उसे पंचतंत्र की शैली में जानवरों की कहानी से जोड़ा। उनकी प्रेरणा से बच्चों की पांच किताबें प्रकाशित हुई, जिनमें ओजोन की छतरी के अलावा बैक्टीरिया अदालत में (लेखक श्री प्रेमानंद चंदोला), बस्ते में विज्ञान (लेखक श्री कुलदीप शर्मा) मंगल ग्रह की यात्रा (लेखक श्री जोगेन्द्र सक्सेना) तथा जाने–अनजाने पौधे (लेखक श्री प्रमोद जोशी)। यों कुल मिलाकर एक सौ किताबों की योजना थी। लेकिन जिस संस्था को स्वयं डॉ० आत्माराम ने खड़ा किया था और जिन सज्जन को उन्होंने ही उस संस्था का महामंत्री बनाया था, उनकी नीयत में खोट आ गया। एक लेखक श्री प्रमोद जोशी को तो अपनी रायल्टी वसूलने के लिए वकील का नोटिस देना पड़ा। इस तरह आगे की किताबों की योजना रद्द करनी पड़ी।

विडम्बना देखिए कि श्रद्धेय आत्माराम जी को सी०एस०आइ०आर० में ऐसे लोगों की एक पूरी जमात से ही संघर्ष करना पड़ा था। वे मन, वचन और कर्म से विशुद्ध गांधीवादी थे और विज्ञान को गरीबी हटाने और समृद्धि लाने का सशक्त हथियार बनाने में जुटे रहे। अपने क्रांतिकारी विचारों को क्रियान्वित करने में उन्हें भारी कठिनाई का सामना करना पड़ा। किसी ने उन्हें पुरातनपंथी कहा, तो किसी ने उन पर हिन्दू साम्प्रदायिकता का आरोप दागा। असल में अंग्रेजों की गुलामी की मानसिकता से ग्रस्त हमारी शासन–व्यवस्था किसी भी परिवर्तन का विरोध करती है। इन तमाम नकारात्मक ताकतों से जूझने में डॉ० आत्माराम जी का काफी समय व्यर्थ चला गया और बाद में मुझ से उन्होंने यह पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त की थी, 'रमेश! सी०एस०आइ०आर० में मेरा अधिकतम समय 'झाडू लगाने में चला गया।'

फिर भी उन्होंने सी०एस०आइ०आर०, जो चंद स्वार्थी तत्वों की आरामगाह बन गयी थी, उसे उनके जाल से मुक्त कराया और वैज्ञानिकों की 'जनता के प्रति जवाबदेही' की प्रक्रिया शुरू की। वे यह मानते थे कि यदि भारतीय उद्योगों को सुधरी तकनीकें देकर हम उनके विकास में मदद नहीं कर सकते और सारी तकनीक विदेश से ही लेनी है, तो सी०एस०आइ०आर० की जरूरत क्या है? वस्तुतः भारतीय विज्ञान में स्वदेशी तकनीक, को तो सबसे पहले डॉ० आत्माराम जी ने ही प्रतिष्ठित किया। उन्होंने स्वयं ' ऑप्टीकल ग्लास' बनाने की तकनीक अपने ही बलबूते पर खोजी थी और तकनीकी सहायक के सामान्य पद से बढ़ते–बढ़ते मात्र प्रतिभा के बल पर महानिदेशक के उच्च पद पर पहुँचे थे।

उन्होंने ही सी०एस०आइ०आर० के अंग्रेजीमय वातावरण में हिन्दी की प्रतिष्ठा की। अंग्रेजी में प्रकाशित विश्वकोश 'वैल्थ ऑफ इंडिया' को हिन्दी में प्रकाशित करने का निर्णय लिया। इस वृहत प्रायोजना को श्रद्धेय स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती और प्रोफेसर शिवगोपाल मिश्र जी के नेतृत्व में चलाया गया। आज 'भारत की सम्पदा' विश्वकोश हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य की निधि बन गया है। विज्ञान परिषद से डाक्टर साहब की घनिष्ठता सर्वविदित है। मुझे ऐसे महान वैज्ञानिक और मनस्वी का सान्निध्य प्राप्त हुआ, इसको मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ और उस पुण्यात्मा को प्रणाम करता हूँ।

ललित विज्ञान लेखन

आज हिन्दी का विज्ञान हर तरह से समृद्ध है। जो लोग यह आरोप लगाकर कि हिन्दी में उच्च कोटि का विज्ञान साहित्य नहीं है, हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने के मार्ग में रोड़े अटका रहे हैं, वे कभी सी०एस०आइ०आर० द्वारा प्रकाशित हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य की तीन सूचियों को देखें। जब मैंने साठादिक में हिन्दी में बी०एस०सी० (कृषि विज्ञान) के लिए भारतीय पादप रोग विज्ञान शीर्षक से पाठ्यपुस्तक लिखी और बड़ौत के एक सामान्य प्रकाशक से छपवायी, तो वह कृषि विज्ञान में स्नातक स्तर की हिन्दी में प्रकाशित पहली पाठ्यपुस्तक थी। आज बड़ौत से ही कृषि विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों का ढेर लग गया है। इसके बाद पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय में 'अनुवाद तथा प्रकाशन निदेशालय' की बुनियाद डालने गया तो हमने 14 महीने में 14 किताबें अनूदित कराके/लिखवा के, संपादित करके प्रेस भेज दी थी। आज भी पंतनगर उच्च कोटि का कृषि-साहित्य प्रकाशित करने में श्री प्रमोद जोशी के नेतृत्व में निरंतर आगे बढ़ रहा है और वहां से लगभग 150 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

इसी प्रकार भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद से हिन्दी में 'खेती' मासिक पत्रिका के अतिरिक्त 'फलफूल' 'कृषि चयनिका' त्रैमासिक प्रकाशित की गई और अनुवाद से पिंड छुड़ाकर मौलिक पुस्तक सृजन कार्य शुरू किया गया। परिषद से अब तक लगभग 300 पुस्तकें, बुलेटिन तथा रिपोर्ट इत्यादि हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी हैं। भारत की स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती के उपलक्ष्य में 'खेती' के विगत पचास वर्षों के अंकों से हर साल का एक लेख चुनकर 'खेती'-स्वर्ण मंजूषा प्रकाशित की गई है और सभी पत्रिकाओं के स्वर्ण जयंती विशेषांक प्रकाशित किए गए हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी भारत के ललित विज्ञान लेखन और विज्ञान लोकप्रियकरण के प्रयासों को मान्यता मिली है, यह हम सब के लिए गौरव की बात है। यूनेस्को का कलिंग पुरस्कार सन् 1961 में डॉ० जगजीत सिंह को, सन् 1991 में डॉ० नरेन्द्र सहगल को, 1996 में डॉ० जयंत नार्लीकर को और 1997 में डॉ० डी० बालसुब्रह्मण्यम को प्रदान किया गया। डॉ० सहगल ने राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद के माध्यम से पूरे देश में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार का शंखनाद फूंका है। डॉ० नार्लीकर मराठी और हिन्दी में प्रकाशित विज्ञान कथाओं के लिए सुविख्यात है, और डॉ० बालसुब्रह्मण्यम 'हिन्दू' में वर्षों से विज्ञान स्तंभ लिख रहे हैं।

पिछले 35 वर्षों से अधिक के संघर्षमय जीवन में मैंने ललित विज्ञान लेखन की अपनी एक शैली विकसित करने का प्रयास किया। हालांकि सभी विज्ञान लेखकों की अपनी अलग-अलग शैली होती है और होनी चाहिए, फिर भी मैं ललित विज्ञान लेखन के अपने आजमूदा नुस्खों का भेद यहां खोलना चाहता हूँ, ताकि इस क्षेत्र में संघर्षरत नयी पीढ़ी की राह कम से कम उतनी कंटकाकीर्ण न रहे, जैसी हमारी थी।

कुछ किस्से जोड़ो

विज्ञान के इतिहास को पलटें तो वैज्ञानिक के भुलक्कड़पने और सनक के तमाम किस्से हैं। अनेक आविष्कार किस तरह संयोगवश किए गए, यह जानकारी भी बड़ी दिलचस्प है। यहां तक कि हमारी फसलों का इतिहास भी बड़ा रोचक है। अपने विज्ञान लेखन को रोचक बनाने के लिये लगभग सभी विषयों में आपको मजेदार किस्से-कहानियाँ मिल जायेंगी। इनको जोड़ने से आपका विज्ञान लेखन निश्चय ही बड़ा रोचक बनेगा।

यहां तक कि अत्यंत शुष्क विषय 'कृषि विज्ञान' में भी रोचक कथाएं भरी पड़ी है। विभिन्न फसलों की खेती कैसे शुरू हुई और कैसे, कहां से कहां फैली इसका इतिहास बड़ा दिलचस्प है। उदाहरण के लिए मक्का सुदूर दक्षिण और मध्य अमेरिका में इंका, मय और एजटेक

आदिवासियों की देन है। वे मक्का को 'माहिज' या 'मारिजी' कहते थे। वे इसे फसलों की देवी 'चिकोमेकॉल' के रूप में पूजते थे। पांच नवम्बर 1492 को कोलंबस ने नई दुनिया यानी अमेरिका की खोज की और सन् 1496 में मक्का को स्पेन ले गया वहीं इसका नाम 'माहिज' से मेज हो गया। भारत में मक्का नाम कैसे पड़ा, इस बारे में केवल अटकल ही लगायी जा सकती है। सोलहवीं सदी में पुर्तगाली सौदागरों के साथ मक्का भारत पहुचीं बतायी जाती है। लेकिन भारतीय कृषि अनुसंधान परिशद के वैज्ञानिक डॉ० भाग सिंह ने सिक्किम में जंगली मक्का उगते देखी। तब पता चला कि वहां हजारों साल से मक्का उग रही थी। 'लाख मोती जड़ी थी', शीर्षक से मक्का पर मेरी रचना 'नवीनतम' के अक्टूबर1966 के अंक में छपी थी।

आलू यों तो दक्षिण अमरीका की एंडीज पहाड़ियों का निवासी है, लेकिन दुनिया में कैसे फैला इसकी कहानी बड़ी अजीब है। पेरू पर स्पेनी कब्जे के बाद सेनापति फ्रैंसिस्को पिजारो का एक पादरी सन् 1534 में आलू को स्पेन ले गया। सन् 1565 में सन जॉन हाकिंस आयलैंड ले गये। यहां से स्कॉटलैंड फिर जर्मनी और फ्रांस पहुंचा। पेरू में शकरकंद को 'बटाटा' कहते थे, सो आलू के कंद को 'पटाटा' कहा गया और इसी से 'पोटेटो' बन गया।फ्रांस में इसे 'पाम द तेरे' यानी मिट्टी का सेब कहा गया। वहां आलू के प्रसार में एक नटवरलाल किस्म के प्राणी 'पारमेंतियर' का बड़ा हाथ हैं। उसे जेल में आलू खाने को मिला तो उसने सम्राट फ्रेडरिक को जेल से छोड़ने की शर्त पर फांस में आलू के प्रसार की तरकीब बताई।लिहाजा राजा ने अपनी राजसी पोशाक में महारानी ने जूड़े में आलू के फूल सजाए। महल के बगीचे में आलू की खेती की गई। फसल तेयार हुई, तो दिन में पहरेदार लगा दिए। लोग चौकन्ने हो गए। ऐसी कौन सी फसल है, जिसकी रखवाली की जा रही है। रात को पहरेदार हटा दि गए। लोग रात को आए और आलू खोद–खोद कर ले गए। इस तरह फ्रांस में आलू की खेती फैल गयी, नहीं तो सन् 1744 में न बोने पर नाक–कान काट लेंगे, इस मुनादी के बावजूद आलू की खेती वहां नहीं अपनायी गयी थी।

भारत में आलू पहली बार जहांगीर के शासनकाल में अजमेर में सर टामस रो के सम्मान में दी गई दावत में परोसा गया था और अब तो इतना अपना हो गया है कि कोई भरोसा ही नहीं करेगा कि आलू पराया है। आलू के बारे में 'मिट्टी का सेब' शीर्षक से मेरी रचना नवनीत के जनवरी 1975 के अंक में प्रकाशित हुई।

इसी तरह धान की कहानी भी बड़ी मजेदार है। धान असम के जेपोर क्षेत्र की उत्तर–पूर्वी पहाड़ियों से चीन की ओर गया, इसलिए चीनी वैज्ञानिक चीन को धान की जन्मस्थली मानते हैं। वस्तुतः धान विश्व को भारत का दान है। यों तो भारत में लगभग 38 जगह की गई खुदाई से प्राचीन धान मिले हैं, लेकिन स्वयं 'राइस' शब्द तमिल के 'अरिषि' शब्द से व्युत्पन्न हैं। यह अरबी में 'अल–रूज' या 'अरूज' और स्पेनिश में 'अरोज' तथा इटेलियन में 'रिझो', फ्रेंच में 'रिज', जर्मन भाषा में 'रीइस' ग्रीक में 'ओरिजा' और लैटिन में 'ओराइज़ा' हो गया। जब जाकर आधुनिक इंग्लिश में 'राइस' बना। अमरीका के एक राष्ट्रपति तो इटली से लम्बार्टी किस्म के धान का बीज अपनी जेबों में भरकर चुरा लाये थे। तब वे फ्रांस में अमेरिका के राजदूत थे। मक्का के सिवा बाकी सभी फसलें अमरीका में चोरी या सीनाजोरी से पहुंची हैं। इसलिए वह हमारे 'बासमती' को भी अपना बताकर पेटेण्ट करा लें तो क्या आश्चर्य!

समातंर पौराणिक गाथाएं मिलाओ

भारतीय वांग्मय बड़ा समृद्ध है। हमें ऐसी अनेक कहानियां उपनिषदों और रामायण, महाभारत तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों से मिल जाएंगी, जिन्हें जोड़कर हम विज्ञान की जटिल संकल्पनाओं का सरलीकरण कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए कौरवों की उत्पत्ति के बारे में कथा यह है कि भ्रूण को एक घड़े में उस समय उपलब्ध पोषक पदार्थों–मधु, घृत, दुग्ध आदि में रखा गया। फिर उसके सौ टुकड़े करके अलग–अलग माताओं की कोख में रोप दिया गया। लीजिए, पैदा हो गए विश्व के प्रथम परखनली–शिशु ! पूरे एक सौ कौरव। कुछ दिनों का अंतर रहा होगा, तभी वे बड़े–छोटे हुए।

इसी प्रकार 'प्राचीन काल में क्लोनिंग' के भी रूप मिलते हैं। हनुमान जी सागर पार कर रहे थे। लंका जाना था। सागर पर से उड़ते समय पसीने की बूंद मछली के मुंह में गिरी। उसी के उसम मछली ने उनके पुत्र मकरध्वज को जन्म दिया, जो वैसा ही शक्तिशाली

था। स्पष्ट है कि पसीने की बूंद के साथ कुछ कोशिकाएं भी मछली की देह में पहुंची। ऐसी ही किसी कोशिका ने हनुमान जी का 'क्लोन' पैदा कर दिया।

ऐसी ही क्लोन–कथा है 'रक्तबीज' राक्षस की। उसके रक्त की बूंद धरती पर गिरे तो हर बूंद–यानी हर कोशिका से पूरा राक्षस पैदा हो जाता था। आखिरकार महादुर्गा ने उसका सिर काटा तो महाकाली ने 'रक्तबीज' का सारा रक्त अपने खप्पर में लपककर पी लिया।

लेकिन जब ऐसी कथाएं हम अपने विज्ञान लेखन में जोड़े तो उन्हें सत्यकथा की तरह नहीं गल्प के रूप में ही लें। अन्यथा लेखन पर अवैज्ञानिकता का दाग लग सकता है। हमें तो बस पाठक को मूल विषय की ओर खींचने के लिए पौराणिक कथाओं का चुग्गा डालना है।

गणेश के रूप में गज और मानव के बीच नरसिंह के रूप में सिंह और मानव के बीच अंग–प्रत्यारोपण की प्राचीन कथा से शुरू करें तो फिर आज की विज्ञान–शालाओं में सूअर का दिल आदमी में रोपने की सत्यकथाएं समझाना आसान हो जाएगा। इंग्लैण्ड की एक प्रयोगशाला में सूअर में आदमी की जीन डालकर 100 पराजीनी सूअर दिल और दूसरे अंगों को आदमी में रोपने के लिए नैतिक अड़चने हटने का इंतजार कर रहे हैं। इन पराजीनी सूअरों के अंग मानव–देह को भ्रम में डाले रहेंगे कि वे मानव अंग है। क्योंकि उनमें कुछ मानवीय वंशाणु (जीन) डाल दिए गए हैं।

पौराणिक गाथाओं के अतिरिक्त विज्ञानकथाओं, लोककथाओं तथा मुहावरों और उक्तियों के उपयोग से भी विज्ञान लेखन रोचक बन सकता है। कृषि में घाघ की कहावतें बहुत प्रचलित हैं। मैं तो अपनी रचनाओं में आधुनिक कविताओं और कहानियों का भी उपयोग करता रहा हूँ। 'गेहूँ रंग बदलेगा' शीर्षक से मेरी एक रचना 19 दिसंबर 1965 के धर्मयुग में प्रकाशित हुई थी। उन दिनों डॉ० एम०एस० स्वामिनाथन् पूसा इन्स्टीट्यूट में आनुवंशिकी विभाग के अध्यक्ष थे। उनकी वैज्ञानिक टोली ने मैक्सिको से आई 'सोनोरा–64 किस्म के बीजों पर गामा–विकिरण की बौछार कर के दोनों का रंग शर्बती हो, ऐसी किस्म विकसित करने का प्रयास किया था। मैं जब यह प्रयोग देखने गया तो विकरित बीजों की फसल खेत में तैयार थी और डॉ० स्वामिनाथन का एक शिष्य डॉ० जार्ज वर्गीज खेत में घूम–घूमकर हर कतार में गेहूँ के हर पौधे से दाने लेकर हथेली पर रगड़कर छिलका हटाता और देखता कि दाने का रंग बदला या नहीं। मैंने देखा कि उसकी हथेली लाल हो गई थी। बहुत–दिन तक हाथों से काम लेने में उसे काफी कष्ट रहा होगा। इस तरह शर्बती रंग के दाने छांटकर और कई पीढ़ियों तक बोकर 'शर्बती सोनारा' निकाली गई। इस लेख की शुरूआत श्रीमती चन्द्रकिरण सोनरिक्सा की एक कहानी से की गई थी, जिसका नायक एक रिक्शेवाला है। उसकी घरवाली 'भुंजे से लाल दानो वाले'विलायती गेहूँ पर मुंह बिचकाती है।

वैज्ञानिक शब्दावली को लेकर हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं में भयंकर अराजकता व्याप्त है। आंकड़ों में मिलियन और बिलियन को लाख, करोड़ और अरब में बदलने की जरूरत नहीं समझी जाती। अंग्रेजी के ऐसे शब्द भी ज्यों के त्यों लिप्यंतर करके लिख दिए जाते हैं, जिनके लिए सामान्य शब्दकोश पलटें तो उनमें भी हिन्दी के समानार्थक शब्द आसानी से मिल सकते है। जर्मप्लाज्म के लिए जनित्र द्रव्य है, एक्सेशन के लिए प्रविष्टि लिख जा सकता है, आर्थोडोक्स जातियों को 'पुरानी जातियों' लिखा जा सकता है। इसी तरह क्वेरंटाइन (संगरोध), फाइटोसिनेटरी (रोग मुक्त पौधा), एक्टिव कलेक्शन (सक्रिय संग्रह) और एक्स–सीटू (बहिर्स्थाने) तथा इन–वीवो (अन्त:पात्रे या परखनली में) का धड़ाधड़ प्रयोग एक विज्ञान पत्रिका के अग्रेलख में किया गया है। एकाध जगह कृपा करके हिन्दी शब्द भी दिया है, तो बाद में शीर्षकों में भी अंग्रेजी जारी है। कुछ लोग हिन्दी का शब्द लिखने के बाद सोचते है कि शायद पाठक ने समझा नहीं होगा, तो 'युग्मक कोशिकाओं', यानी गैमीटों, जैसी वाक्यों से अपना अधकचरापन सिद्ध करेंगे। लिखना चाहिए गैमीट यानी युग्मक कोशिका। सीधे–साधे समझकर लिखने में क्या मुश्किल है। ठंडा करके बहुत नीचे के तापमानों पर भी बीजों के नमूने दशकों तक सुरक्षित रखे जाते हैं। लेकिन नहीं, 'क्रायोप्रिजर्वेशन' शब्द लाकर अपनी विद्वता की धाक जरूर जमानी है। हिन्दी के शब्द लिखेंगे तो फिर उगाई जा रही किस्मों (कल्टीवार) को कहेंगे। 'कृषिजोपजाति'। ऐसे विज्ञान लेखन को पाठक ठंडे बस्ते में डाल देते हैं, तो 'किम् आश्चर्यम्'। व्यंग्यकार के० पी० सक्सेना के शब्दों में "भैन जी" किताबी लेखन और ललित लेखन का फर्क तो समझिए।" नहीं तो आपका

पाण्डित्य व्यंग्यकार स्वर्गीय शरद जोशी की तरह पाठकों को भी 'नग्भसा' देगा।

थोड़ा–बहुत लिख लिया टीप–टाप कर और जिस–तिस की ठकुरसुहाती करके पद, पदवी तथा पदोन्नति पाली और बन गए महान लेखक या लेखिका। टाई–सूट और हैट लगाकर 'स्याला मैं तो साहब बन गया।' गाकर नाचते–मटकते लोग विज्ञान लेखन में जुगनुओं की तरह टिमटिमाकर गायब होते रहे है। आप इस अहंकार से बचिए।

हास्य व्यंग्य छिड़को

विज्ञान लेखन का मतलब यह कतई नहीं है कि आपके पाठक निरंतर माथे पर बल डाले रहें, भयंकर चिंता और चिंतन में डूब जाएं और पूरी रचना पढ़ते समय बेचारों को एक बार भी मुस्कराने का मौका न मिले।

यों तो वैज्ञानिकों के जीवन से भी ऐसे अनेक प्रसंग मिल जाएंगे, जो आपके पाठकों' का ज्ञानवर्धन करने के साथ–साथ मनोरंजन भी कर सकते हैं। अच्छा हो कि ऐसे तमाम प्रसंगों को इकट्ठा करके कोई किताब छाप दी जाए।

आपने उस वैज्ञानिक का किस्सा तो पढ़ा ही होगा,जो ज्ञान के बोझ से दबे एक नाव में नदी पार कर रहे थे। उन्होंने मल्लाह से पूछा तुम्हें न्यूटन का गुरुत्व–सिद्धांत मालूम है? मल्लाह ने कहा, 'नहीं' !

"बस, तब तो तुम्हारा चौथाई जीवन व्यर्थ गया," वैज्ञानिक जी बोले"

"तो तुमने आइंस्टाइन का सापेक्षतावाद तो जाना ही होगा?" उन्होंने मल्लाह से पूछा। नहीं, गुरू जी नहीं।'

वैज्ञानिक जी को उस पर बड़ी दया आई, "उफ, तब तो तुम्हारा आधा जीवन बेकार गया"।

आगे पूछने लगे, " तुम डी०एन०ए० के बारे में तो जानते ही होगे, जो जीवन का आधार है।" उसने गुरूदेव के पांव पकड़ लिये "क्षमा करें मैं डी०एन०ए०–फी०एन०ए० कुछ भी नहीं जानता"।

तब तो बच्चा, तेरा तिहाई जीवन गया, वैज्ञानिक महोदय मल्लाह के प्रति करुणा से भर उठे।

तभी नाव में छेद हो गया और उसमें से बड़ी तेजी से पानी भरने लगा।

मल्लाह ने पूछा, "क्या आपको तैरना आता है?"

वैज्ञानिक सकपका गए, "नहीं तो"।

"फिर तो आपका पूरा जीवन डूब गया। क्योंकि नाव डूब रही है"।

यह कहकर मल्लाह नाव खेना छोड़ नदी में कूद पड़ा और तैरकर किनारे की ओर बढ़ चला।

बेचारे वैज्ञानिक महोदय अपने ज्ञान के बोझ से दबे डूबती नाव के साथ अपनी जीवन–नैया भी डुबो बैठे।

भारतीय वैज्ञानिकों में सुप्रसिद्ध वनस्पतिवेत्ता और पादप–प्रजनक डॉ० बी० पी० पाल बड़ी–बड़ी वैज्ञानिक सभाओं में भी हास्य व्यंग्य बिखेरने की कला में बड़े माहिर थे। वे मौके के हिसाब से बड़े सटीक चुटकुले खोज लाते थे। आनुवंशिकी के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए डॉ० पाल बोले, "इंसान को बंदरों की संतान बताया जाता है। डार्विन के विकासवाद के बाद से सारी दुनिया यह मानती है। मैं जब अपने पूर्वजों की बात सोचता हूँ तो जाहिर है हमारे पड़दादा के पड़दादा वानर रहे होंगे। लेकिन हमारी पड़दादी की पड़दादी पर क्या गुजरती होगी, यह सोचकर मैं हैरान हो जाता हूँ।"

ऐसे किस्से सुनाते हुए डॉ० पाल खुद बड़े गंभीर बने रहते थे। उनके पास ऐसे किस्सों का विशाल भंडार था। पहले वे विचारणीय विषय का परिचय देते और फिर शुरू हो जाते, 'एण्ड इट रिमाइण्ड्स मी ऑफ ..।

अनूठे तथ्यों के साथ घोंटो।

आपकी रचना वैज्ञानिक है, तो उसमें भला अनूठे तथ्य क्या जोड़े जाएं? असल में विज्ञान तो अनूठे तथ्यों का भण्डार है। स्वयं मानव देह ही एक अजूबा है। दिल के बारे में आपने यह शेर तो सुना ही होगा,

'बहुत शोर सुनते थे सीने में दिल का,
जो चीरा तो एक कतरा–ए–खूं निकला।

एक औसत जीवन–काल में आदमी का दिल करीब 2 अरब बार धड़कता है। ऐसे ही तथ्य सभी मानव–अंगों के बारे में उपलब्ध है। यहां तक कि सभी जीव–जंतुओं और पेड़–पौधों की कोशिकाओं में गुणसूत्रों के रूप में गुड़ी–मुड़ी पड़ी जीवन की दुहरी कुंडली डी०एन०ए० के बारे में एक मल्लाह को भी आप समझा सकते हैं।

धर्मयुग नाम से बम्बई से एक साप्ताहिक पत्रिका

प्रकाशित होती थी। टाइम्स ऑफ इंडिया से प्रकाशित यह पत्रिका हिन्दी की सबसे प्रतिष्ठित पत्रिका थी। 'धर्मयुग' में प्रकाशित मेरी पहली रचना 9 जून 1963 के अंक में छपी थी। इसका शीर्षक था– 'क्या विज्ञान आत्मा को खेज निकालेगा?' इसमें 'डी०एन०ए०' के बारे में बताया गया था।

डी०एन०ए० यानी डि–ऑक्सी राइबोज न्यूक्लिकएसिड–एक महाअणु जो इतना छोटा कि आज की संपूर्ण जनसंख्या की प्रत्येक कोशिका का डी०एन०ए० निकालें तो एक चम्मच में समा जाएगा और इतना बड़ा कि एक आदमी की सभी कोशिकाओं का डी०एन०ए० निकालकर उसकी दुहरी कुंडली तान दी जाये और छोर से छोर मिला दिया जाये, तो एक छोर होगा धरती पर और दूसरा छोर होगा चन्द्रमा पर ! हमारे ऋषियों का एक सूक्त डी०एन०ए० पर सटीक बैठता है–

अणोरणीयान, महतोमहीयान ! (छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा)

यहां तक कि कंप्यूटर और रोबोट के बारे में बताते हुए भी विशिष्ट तथ्यों से लेखन को रोचक बनाया जा सकता है। भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, मुम्बई से एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती है– 'वैज्ञानिक' । इसके मार्च 1971 के अंक भुरकुंडा (हजारी बाग), बिहार के किन्हीं जहीर–न्याजी साहब की एक रचना छपी थी –"कंप्यूटर, जो कवि है।" इसमें उन्होंने बड़े मजेदार ढंग से कंप्यूटर से ही बातचीत के रूप में बताया है कि – "कवि–कंप्यूटरों में एक का नाम याद रखें – 'आर०सी०ए० –301' । जनरल पर्पज डाटा प्रोसेज कंप्यूटर। कंप्यूटर विशेषज्ञ क्लेर फिलिपी द्वारा उसे कविता के मैदान के एक–सौ शब्दों के साथ जोड़ दिया गया है। और जनाब इन एक सौ शब्दों के बूते पर ही आर०सी०ए०–301 ने वह कमाल कर दिखाया कि बस दुनिया देखती रह गयी। जानते है उसने भावनाओं का सर्जन किस गति से किया था– प्रति मिनट डेढ़ सौ कविताएं ! जी हाँ"

तकनीकी शब्द छान दो

पता नहीं विज्ञान को जटिल बनाने की खोज पश्चिम की किस उल्टी खोपड़ी की देन है। ग्रीक और लैटिन पर आधारित ऐसी तकनीकी शब्दावली गढ़ दी कि विज्ञान को जन मानस से काटकर रख दिया। सभी जीव जंतुओं और पेड़–पौधों के नाम 'बाइनोमियल' यानी द्विनाम बना दिए। वनस्पति विज्ञान में इस पद्धति के जनक थे लिनिअस। उन्होंने पौधों के नमूने इकट्ठे करके उन्हें वंश ओर जाति के नामों से अलंकृत किया। नमूने भेजने वालों ने उलट फेर कर दी, तो गलती हो जाती थी। इसीलिए लिनिअस महोदय ने भारत की मूंग का नाम उड़द को दे दिया और वनस्पति विज्ञान के विद्यार्थी उड़द को 'फेजिओलस मूंगो' कहते रहें, जिसे कुछ वर्ष पहले ही सुधारा गया है। ललित विज्ञान लेखन में पौधों के और प्राणियों के प्रचलित नाम ही देने होंगे।

जिनका भारत की खेतीबाड़ी और आम फसलों से कोई परिचय नहीं और मक्खी पर मक्खी मारते हैं, वे कितना अन्याय कर सकते हैं, इसकी एक मिसाल लीजिए। हुआ यह कि सत्तरादिक में किसी तत्कालीन सांसद की ओर से हिन्दी मे प्रश्न–पुस्तिका में छपा हुआ प्रश्न आया कि ' भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद' ने चूजों और कबूतरों के खाने योग्य मटर की कौन सी किस्में विकसित की है?"

मैंने जब यह प्रश्न पढ़ा तो मेरा माथा ठनका कि इसमें तो जरूर कहीं भूल हुई है। जब आदमी के लिए दालों की कमी पड़ रही है और दिनोंदिन दालें महंगी होती जा रही है फिर चूजें और कबूतरों के लिए खासतौर से मटर की किस्में निकालने में भला कौन सिर खपायेगा। अंग्रेजी का मूल प्रश्न मंगाया गया। जब पता चला कि हिन्दी के साहित्य–शिरोमणि सरकारी अनुवादक ने 'चिकपी' यानी चना को चूजे के खाने योग्य मटर और 'पिजन पी' यानी अरहर को कबूतरों के खाने योग्य मटर कर दिया। यह इसलिए कि सरकारी अनुवादक महोदय ने विषय को समझने की कभी कोशिश ही नहीं की।

फिर अंग्रेजी भाषा है भी इतनी दरिद्र कि हमारी बहुत–सी फसलों को चना–मटर के नामों से जोड़कर बड़ा भ्रम पैदा कर दिया गया। तभी तो लोग रेड ग्राम को अरहर की बजाय 'लाल चना' कह देते हैं। मध्य प्रदेश में चने की एक किस्म सचमुच लाल होती है, तो उसको क्या कहेंगे अंग्रेजी में। इसी तरह ग्रीन ग्राम 'मूंग' है हरा चना नहीं' । जब कि चने की ऐसी किस्म हाल में ही विकसित की गई है, जिसका चना पकने पर भी हरा रहता है। उड़द को अंग्रेजी में 'ब्लैक ग्राम' कहते हैं, जब कि चने को काला करने के लिए गृहणियां उसमें चाय की पत्ती

डाल देती है। घोड़े को चना खिलाया जाता है लेकिन 'होर्सग्राम' है कुलथी।

भारत सरकार में जब राजभाषा विभाग बनाया गया और यह तय हुआ कि सभी मंत्रालयों में ओर सरकारी विभागों में राजभाषा एकक बनें और राजभाषा अधिकारी नियुक्त किए जाएं, तो मैंने गृह मंत्रालय में राजभाषा के तत्कालीन सलाहकार श्री रमाप्रसन्न नायक को यह सलाह दी कि राजभाषा अधिकारी की योग्यता में हिन्दी की स्नातक या स्नातकोत्तर योग्यता होना अनिवार्य न बनाया जाये। जैसा मंत्रालय या विभाग है, उसी विषय की डिग्री हो और हिन्दी में पढ़ने–लिखने का अनुभव हो। नहीं तो विषय का ज्ञान न होने के कारण अनुवाद में भयंकर भूलें होंगी। उन्होंने माना और वायदा किया कि वे इसका ध्यान रखेंगे। लेकिन या तो उनकी चली नहीं या कुछ और बात हुई, राजभाषा का काम करने वाले हिन्दी के एम.ए. भर्ती किए गए। नतीजा यह है कि कुछ अपवाद छोड़ दें, तो अधिकतर सरकारी रिपोर्ट ऐसी छपती है कि बिना अंग्रेजी से मिलान किए आप समझ ही नहीं सकते कि क्या कहना चाहते है। पहले 'सरिता' मासिक पत्रिका में एक नियमित स्तंभ हुआ करता था– 'यह किस देश–प्रदेश की भाषा है।' इस स्तंभ में वे लोग अक्सर हिन्दी में छपी सरकारी रिपोर्टों के ही उदाहरण दिया करते थे।

जब वैज्ञानिक शब्दावली बनाने का काम शुरू हुआ, तो नौ साल तक वहां भी मैंने खाक छानी है। पादप रोग विज्ञान की शब्दावली बन रही थी, तो मैंने बड़ा आग्रह किया कि हमें किसानों में प्रचलित बोलचाल के शब्द ही लेने चाहिए। लेकिन भाषा विज्ञान के पंडितों ने हमारी बात अनसुनी कर दी। नतीजा यह हुआ गेहूँ में पक्सीनिया नामक फफूंदी की तीन प्रजातियों से होने वाली बीमारी का नाम रख दिया– 'किट्ट'। 'किट्ट' वैदिक शब्द है संस्कृत का ओर इसका शाब्दिक अर्थ है 'कान का मैल'। जबकि किसान ने तीन तरह के रस्ट यलो, ब्राउन और ब्लैक के लिए हरदा, गेरुई और रतुआ– ये तीन शब्द चलाए है। हम कृषि दर्शन जैसे कार्यक्रमों और 'खेती', फलफूल' तथा 'कृषि चयनिका' जैसी पत्रिकाओं में खेतीबाड़ी, बागवानी और कृषि से जुड़े दूसरे धंधों के लिए बालचाल की शब्दावली ही इस्तेमाल करते हैं, लेकिन पाठ्य पुस्तकों में और लोक सेवा आयोग के प्रश्नपत्रों में कृषि विज्ञान में वही भ्रष्ट शब्दावली चल रही है। मैंने एक बार खेतीबाड़ी 1000 प्रचलित तकनीकी शब्दों का एक परिभाषा कोश बनाने का प्रस्ताव परिषद में रखा था। फाइल चली। मान भी लिया गया। लेकिन वैज्ञानिक शब्दावली आयोग ने चिट्ठी का भी जवाब नहीं दिया। जब पूज्य प्रो० विद्यानिवास मिश्र जी से सम्पर्क किया तो वे राजी हो गए। कुछ शोधकर्ता रखे जाने थे और छपाई वगैरह मिलाकर मात्र डेढ़ लाख रुपये की योजना बनी। तब तक परिषद में नेतृत्व बदल गया और टालमटोल वाले सज्जन ने बागडोर संभाल ली। उन्होंने लिख दिया, 'यह परिषद का काम नहीं है'।

मुझे प्रसन्नता है कि राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद के प्राण डॉ० नरेन्द्र सहगल की प्रेरणा से अब विज्ञान परिषद ललित विज्ञान लेखन के लिए तकनीकी परिभाषा कोश बनाने का दायित्व संभाल रही है।

सामयिकता बुरको

आपकी ललित विज्ञान संबंधी रचना अखबारों में और पत्रिकाओं में तभी छपेगी, जब उसमें किसी सामयिक मुद्दे को उठाया गया हो, हर समय समाज के सामने कुछ ज्वलंत प्रश्न उठते रहे हैं। कुछ शाश्वत प्रश्न भी होते हैं, जो कभी पुराने नहीं पड़ते। जैसे कि 'पहले मुर्गी आयी या अंड़ा'। यह विषय कभी पुराना नहीं पड़ेगा। लेकिन अब समाज के सामने वैज्ञानिक लेखन के लिए सबसे बड़ा मुद्दा है पर्यावरण और टिकाऊ विकास। सरसों में सत्यनाशी के बीजों का तेल मिलाने से फैले जलोदर ने कितने निरपराध लोगों को मौतके मुंह में धकेल दिया। अखबारों में 'आर्जीमोन' का हिन्दी नाम अलग–अलग चलता रहा। ज्यादातर तो आर्जीमोन ही लिखते रहे। 'ऑइलसीड' को 'तेलबीज' छापा गया। पिछली बार दिल्ली और उसके आस पास सन् 1983 में यह घटना हुई थी। तब 'दिनमान' में मैं नियमित स्तंभ लिखा करता था। 28 अगस्त 1983 के दिनमान में मेरी रचना छपी थी– 'सरसों के तेल में मिलावट और सरकार'।

बड़े बांध, जंगलों का कटाव, मिट्टी का कटाव, भू–स्खलन, जैवविविधता का ह्रास भूमंडलीकरण के दांवपेच और गरीबी देशों की प्राकृतिक सम्पदा को हड़पने की कोशिश, जैव कृषि, स्वदेशी तकनीकी इत्यादि इत्यादि ऐसे विषय है, जिन पर आजकल खूब लिखा जाना चाहिए। सीसा रहित पेट्रोल शुरू किया गया है, तो पेट्रोलियम के

विविध रूपों पर गहरी समझ पैदा करने वाली रचनाओं का स्वागत होगा। पोखरण में दूसरा 'निस्फोट' (इम्प्लोजन) क्या हुआ, अखबारों में वैज्ञानिक लेखन का विस्फोट हो गया। इस बहाने से परमाणु विज्ञान के विविध पक्षों की जानकारी देनी चाहिए थी।

खेतीबाड़ी में तो खासतौर से सामयिकता का ध्यान रखना होता है। खरीफ के मौसम में आप खरीफ की फसलों–धान, मक्का, ज्वार–बाजरा, अरहर, मूंग, उड़द, मूंगफली, सोयाबीन, सूरजमुखी, कपास आदि की ही बात कर सकते हैं। अक्तूबर से अप्रैल तक रबी की फसलों पर लिखा जायेगा– गेहूँ, जौ, चना, मटर इत्यादि।

मानवीय संवेदनाओं की सुगंध की चंद बूंदें छिड़किए।

अब आपका ललित विज्ञान का व्यंजन पक गया है, लेकिन परोसने से पहले भारतीय पाक विज्ञान में ऐसी व्यवस्था है कि भोजन केवल सुस्वादु ही नहीं सुवासित भी हो। अतः आपको ललित विज्ञान की रचना में मानवीय संवेदनाओं की सुगंध छिड़कनी होगी।

हमारे देश में भूख और कुपोषण की समस्या आज भी दारुण बनी हुई है। बंगाल के अकाल के आंकड़े आज भी हमारा दिल दहला देते हैं। जब माता–पिता को अपनी आंख के तारों और दिल के टुकड़ों को आठ–आठ आने में बेचना पड़ा था। उड़ीसा का कालाहांडी क्षेत्र आज भी एक 'राष्ट्रीय शर्म' बना हुआ है। आन्ध्र प्रदेश कर्नाटक में एक कीड़े की वजह से फसल चौपट हुई, तो किसानों में किस तरह आत्महत्याओं का दौर शुरू हुआ, इसकी आत्मकथा किसी का भी हृदय द्रवित कर देगी।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में अब तक कैंसर ही डराता रहा था, अब 'एड्स' आ गया है जिसका न तो कोई टीका है और न इलाज। स्वास्थ्य संबंधी लेखन में किसी रोगी की केस हिस्ट्री जोड़ दें, तो वह पाठक पर सीधे असर डालेगी। हिन्दी में स्वास्थ्य विज्ञान के यशस्वी युवा लेखक डॉ० यतीश अग्रवाल इस फन में माहिर है। उनकी पुस्तक 'मन के रोग' का यह अंश देखिए (पृ० 13–टोने, टाटके, अंधविश्वास और मन के विकार) –

'दिल्ली से कुछ किलोमीटर दूर बसा एक गांव। सरपंच गोपाल चौधरी की पुत्रवधू राधा एक चुड़ैल के वेश में है– बाल बिखरे हुए हैं, शरीर बराबर हिल–डुल रहा है और आंखे लाल सुर्ख है। कभी चीखती है, कभी चिल्लाने लगती है और कभी–कभी किसी को देखकर जोरो से हंस पड़ती है। ....गांवों, कस्बों और शहरों में इस तरह की घटनाएं हिस्टीरिया नामक मनोविकार का एक रूप हैं और कुछ नहीं।'

इसी अध्याय से एक और उदाहरण 'चालीस वर्षीय' शंकरलाल पेशे से व्यापारी हैं।...... लेकिर पिछले तीन महीनों से न जाने क्यों वह अपने आप मे सिमटता–सा जा रहा है – न किसी से बातचीत, न किसी के यहां आना–जाना। ....कहता है जीवन अर्थहीन है और मृत्यु में ही सुख है। ......उसे तो असल में 'एंडोजेनस डिप्रेशन' हो गया था, जिसका पता शहर के बड़े अस्पताल के डॉक्टर को दिखाने पर लगा। मस्तिष्क में कुछ खास जैव रसायनों की कमी से पैदा होने वाले इस मनोविकार का समाधान अवसाद दवाओं और जरूरत होने पर ई०सी०टी० से किया जाता है। शंकर लाल के मामले में ये दवाएं काम आई और आज वह भला चंगा है।

पता नहीं कैसे लेखक ई०सी०टी० को यहां समझाना भूल गया। आगे बिजली के झटके से इलाज के इस तरीके पर पूरा अध्याय है। मन के रोगों पर मेरे एक लेख का शीर्षक था –' बात यह है कि बात कुछ भी नहीं' । यह सुप्रसिद्ध कवि–मित्र श्री बालस्वरूप 'राही' की कविता की एक पंक्ति है।

चित्रों से सजाओ

आपको व्यंजन परोसना है, तो उसे तरह–तरह से सजा दें तो पहले आंखे तृप्त होंगी, तब जिह्वा का नंबर आयेगा। कई बार एक चित्र हजार शब्दों से अधिक प्रभावशाली होता है। विज्ञान लेखन में तो यह बड़ा आवश्यक है। प्रायः जिन चीजों, उपकरणों या सिद्धांतों की आप चर्चा कर रहे हैं, वे सुपरिचित नहीं होते। सत्यानाशी के बीजों की मिलावट वाली रचनाओं में इस खरपतवार के चित्र की कमी बराबर खटकती रही।

विज्ञान लेखन के कार्टूनों सजाने के भी सफल प्रयोग हुए हैं। लखनऊ की केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान लखनऊ में कार्यरत वैज्ञानिक डॉ० प्रदीप श्रीवास्तव ने बड़े हृदयग्राही वैज्ञानिक कार्टून बनाए हैं, जिन्हें वे 'साइण्टून' कहते हैं। उनका हर कार्टून बड़े मजेदार ढंग से पूरी बात कह जाता है। जब टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप

से 'साइंस टूडे' नामक मासिक विज्ञान पत्रिका छपती थी, तो उसमें सुप्रसिद्ध व्यंग्यचित्रकार लक्ष्मण ने अत्यंत सुरुचिपूर्ण और गहराई तक मन को छूने वाले वैज्ञानिक व्यंग चित्र बनाए थे।

जब मुझे 'टर्मीनेटर जीन' पर एक छोटी–सी रचना लिखनी थी, तो मैंने अपने चित्रकार मित्र श्री बी०सी० मण्डल से चर्चा करके एक व्यंग्यचित्र बनवाया, जिसमें बीज से निकला जिन्न अगली फसल के बीजों को अंकुरित होने से रोक देता है।

बच्चों की पुस्तक 'धान कथा' में पूरा एक अध्याय ही चित्रकथा के रूप में दिया है। इसमें धान की फसल को नुकसान पहुंचाने वाले 'ब्राउन प्लाण्ट हॉपर' यानी मधुआ या भूरे फुदका को धान की फसल का हरा सोना चुराते हुए रंगे हाथ पकड़ा जाता है। जज के सामने लाया जाता है। पूरा मुकदमा चलता है। आखिर में मधुआ और उसके साथियों को मौत की सजा सुनाकर मकड़ियों के हवाले कर दिया जाता है। इस तरह चित्रकथा से हानिकर कीटों के जैव नियंत्रण का उपाय बच्चों को समझाया गया। मुझे खेद है कि बच्चों के लिए लिखा गया हमारा अधिकांश साहित्य जिसमें विज्ञान साहित्य भी शामिल है, बचकाना है। 'सुनो बच्चो !' लिख देने से ही आपका लिखा हुआ, बाल साहित्य नहीं बन जाता ! इसके लिए बाल–मन की समझ और उसी स्तर की कल्पनाशीलता वैसे ही तोतली बोली और घुटरुन चलना, मचलना और अदम्य जिज्ञासा भाव लेखक में भी होना जरूरी है।

चखाकर पूछिए

अच्छे रसोइए किसी भी व्यंजन को परोसने से पहले खुद भी चखते हैं और दूसरों को भी चखाते हैं कि नमक ज्यादा तो नहीं है? मसाले ठीक है? मीठा है कि नहीं? चटपटा बना कि नहीं?

आपको अपनी ललित विज्ञान संबंधी रचना को छापने से पहले उसका पूर्व–परीक्षण करना होगा। जिनके लिए लिखी है, उन्हें पढ़ाइए और पूछिए कि कहीं वे अटकते तो नहीं? कहीं कोई ऐसी बात तो नहीं, जो समझ में नहीं आती? कहीं कोई ऐसा वाक्य तो नहीं जिसे समझने के लिए दुबारा–तिबारा पढ़ना है?

मैंने अपनी पत्नी गीता के साथ इकोलोजी पर बच्चों के लिए एक किताब लिखी 'वन प्यारी' । उसमें एक बांग्ला लोक कथा का सहारा लिया गया है। एक बुढ़िया है। अकेली। जंगल में पौध तैयार करने का काम करती है। दिन में चावल पकाकर पानी में डालकर रख जाती है कि शाम को भी खा लेगी। पीछे चोर आता है। चावल चुरा ले जाता है। बड़ी दुखी होती है। जंगल के साथी चोर पकड़ने में मदद करते हैं। सिंघी मछली पानी में पड़े चावल में डाल दी जाती है। चोर चावल निकालने को बर्तन में हाथ डालता है तो सिंघी मछली का कांटा चुभता है। दर्द कम करने को राख लेता है तो उसमें दबा बेल फट जाता है। घायल होकर भागता है तो दरवाजे पर गोबर में पांव फिसलता है और नागफनी पर गिर पड़ता है। कौआ कांव–कांव से सब साथियों को सावधान करता है और घायल चोर को बंदर अपनी दुम से पकड़ लेता है और शेर खा जाता है।

बच्चों को पढ़ाया गया तो उन्होंने आपत्ति की कि बेरोजगार और भूखा नौजवान जरा–सा चावल चुराने पर मौत के घाट उतार दिया जाए। हरगिज नहीं। हमने उसका अंत बदला। चोर को बुढ़िया अपने बेटे की तरह अपनाकर उसे भी जंगलात के महकमे में पौध तैयार करने के काम पर लगा देती है। इस पुस्तिका के लिए दिल्ली हिन्दी अकादमी ने 30 सितम्बर 1998को एक समारोह में पुरस्कार दिया।

तो उस तरह आपने ललित वैज्ञानिक रचना में किस्से कहानियां जोड़े, पौराणिक गाथाएं मिलाई, हास्य व्यंग छिड़का और उसे अनूठे तथ्यों के साथ घोंटा। आपने उसमें से तकनीकी शब्द छान दिए। फिर छोटे–छोटे वाक्यों और सादा जुबान की धीमी आंच पर पकाया। परोसने से पहले उस पर सामयिकता बुरकी तथा सुवासित करने के लिए मानवीय संवेदनाओं की सुगंध की चंद बूंदे छिड़की। फिर उसे चित्रों से सजाया ओर परोस दिया। अब क्या मजाल कि यह किसी भी संपादक या पाठक के गले न उतरे। कुछ लोग खा–पीकर डकार लेते हुए मुंह बिचकाकर कहें कि 'लिखा तो अच्छा है, मगर गहराई नहीं है,' तो बुरा मत मानिए। क्योंकि–

'हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती रही है,
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।'

❑❑❑

प्रो० सालिगराम भार्गव स्मृति व्याख्यान–1998

भारत में पर्यावरण–चेतना

विश्वभंर प्रसाद 'गुप्त–बन्धु', एफ. आई. ई., चार्टर्ड इंजीनियर

0-0 मंगलाचरण

0.1- ओअम् चित्रं देवानामुदगादनी कं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आ प्रा द्यावा पृथिवी अंतरिक्ष, सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च
स्वाहा।।–यजुर्वेद 7.42।

0.2- सम्मान्य मित्रगण ! यह यजुर्वेद के सातवें अध्याय का 42 वां मन्त्र है जिसे हम लोग प्रातः–सायं संध्या–प्रार्थना करते समय उपस्थान मंत्र के रूप में गाया करते हैं। उपस्थान का अर्थ है, देवता के पास उपस्थित होना। देवता का अर्थ है, स्वर्ग में वास करने वाला दिव्य–शक्ति–सम्पन्न अमर प्राणी–बृहत् हिंदी कोश। अब स्वर्ग क्या है, उस पर ध्यान दीजिए। स्वः एक महाव्याहृति, अर्थात परमात्मा का श्रेष्ठ नाम है। 'स्वः' या 'स्वर' परम आनंद को भी कहते हैं जो परमेश्वर का गुण है। अतः स्वर्ग हुआ परम आनंद का, या मोक्ष का, दुख से मुक्ति का स्थान। यह कहीं चौथे या सातवें आसमान में नहीं है, बल्कि महर्षि वेदव्यास के अनुसार, अत्रैव नरकः स्वर्गः, अर्थात नरक और स्वर्ग यही (इसी धरती पर) है। स्पष्ट है कि वह भू–भाग जहां दुख ही दुख है, नरक है, और इसके विपरीत, जहां आनंद ही आनंद है, दुख से अत्यंत निवृत्ति है, मोक्ष है, वही स्वर्ग है। इसी से संबंधित शब्द है 'दिव्य' जिसका तात्पर्य है दैवी, लोकोत्तर, सर्वोत्तम और दिव्य शक्ति से तात्पर्य है ऐसी शक्ति से जो सामान्यतया अन्यत्र न मिल सकती हो। इन अर्थों पर ध्यान रखते हुए हमारे उपस्थान मंत्र को समझने की आवश्यकता है। देखिए कि हम किस देवता के पास उपस्थित होकर प्रार्थना करते हैं।

0.3- इस मंत्र का अर्थ देवताओं का, अर्थात् ईश्वर की जो दिव्य–शक्ति–संपन्न देन है, सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, ग्रह वायु जल, अग्नि आदि उन सबका अद्भुत चित्र (तेज) प्रकट हुआ है। वह तेज द्युलोक अंतरिक्ष और पृथ्वी लोक में व्याप्त है, और सूर्य–रूप से समस्त चेतन और जड़ जगत् का आत्मा (जीवनाधार) है। हम उन सब देवताओं के पास परम आनंद के भागी बनते हुए रहते है और ईश्वर को धन्यवाद देते हैं कि यह कितना अच्छा है।

0.4- मंत्र से स्पष्ट है कि जिन दिव्य पदार्थों के बीच हम रह रहे हैं, वे ही जिन्हें हम पर्यावरण कहते हैं, हमें स्वर्गोपम आनंद देते हैं और हमारे जीवन का आधार है। इनके लिए ईश्वर के धन्यवाद देना चाहिए।

1-0 पर्यावरण क्या है?

1.1- पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना हैः परि = सब ओर से + आवरण = ढकना। अर्थात् पर्यावरण वह सब कुछ है जो किसी को सब ओर से ढके या घेरे रहता है। इसी को परिवेश भी कहते है। पर्यावरण से मतलब किसी एक व्यक्ति के परिवेश से नहीं होता, बल्कि वह व्यक्ति का, समाज का, राष्ट्र का और इस सारे विश्व का परिवेश है जिसका प्रभाव व्यक्ति, समाज,राष्ट्र और सारे संसार पर पड़ता है। हमारा पर्यावरण पेड़–पौधे, नदी–पहाड़, आदि ही नहीं होते, बल्कि वह सब कुछ है जिसके कारण और जिसके बीच इस पृथक पर जीव–जगत् है और विकास करता है।

1.2- यह जीव–जगत् पांच तत्वों (घटकों) से बना है। ये हैं पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। ये सभी तत्व बहुत शक्तिशाली होते हैं। इनकी दिव्य शक्तियों के कारण ही इन्हें देवी या देवता कहते हैं। ये ही हमारे पर्यावरण के घटक हैं, क्योंकि ये हमारे चारों ओर मौजूद हैं। पेड–पौधे, नदी–पहाड़, पशु–पक्षी आदि भी पर्यावरण के घटक है, क्योंकि ये सब हमारे इर्द–गिर्द रहते हैं और हमारे जीवन के आधार है।

1.3- जिन परिस्थितियों में पृथ्वी पर स्वस्थ जीवन बना रहता है, उनका अध्ययन करना पारिस्थितिकी (इकॉलॉजी) कहलाता है। इसे ही पर्यावरण–विज्ञान सीखकर प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन सुधारना चाहिए और पर्यावरण–मैत्री के द्वारा, अर्थात् पर्यावरण के साथ मित्रवत्

व्यवहार करके अपनी, अपने समाज की और मानवता की उन्नति करनी चाहिए।

2-0 पर्यावरण और जीवन

2.1- जब तक पर्यावरण ठीक–ठीक काम करता रहता है, हम कहते हैं, स्वच्छ पर्यावरणः स्वस्थ जीवन है। किंतु जब पर्यावरण में कोई खराबी आ जाती है तब जीवन भी स्वस्थ नहीं रहता। गंदी हवा में सांस लेने से तरह–तरह के रोग हो जाते हैं: जैसे खांसी, श्वास, दमा, क्षय आदि। गंदा पानी पीने से भी हैजा, पेचिस, पीलिया आदि बीमारियां होती हैं। पर्यावरण दूषित होने से जन –स्वास्थ्य को खतरा पैदा हो जाता है। महामारियां फैलती हैं, मृत्यु–दर बढ़ती है, और लोगों की औसत आयु भी घट जाती है।

2.2- हवा, पानी आदि दूषित होने से पशु–पक्षी भी बीमार होकर मरने लगते हैं। प्रदूषण का प्रभाव वनस्पति पर भी पड़ता है। वृक्षों की बाढ़ रुक जाती है। बहुत से वृक्षों में कीड़े लग जाते हैं। बहुत सी बड़ी–बूटियां, जो पहले औषधि के रूप में काम आती थीं, आज–कल पैदा ही नहीं होती क्योंकि उनके लिए उपयुक्त परिस्थितियां अब नहीं रहीं।

2.3- इस प्रकार पर्यावरण दूषित हो जाने से मनुष्य, पशु–पक्षी, जीव–जंतु, पेड़–पौधों, सभी का अहित होता है। आज–कल प्रदूषण बढ़ने के कारण रोग बढ़ रहे हैं, महामारियां प्रायः फैलती रहती हैं। बड़े शहरों में तो सांस लेने में भी कठिनाइयां हुआ करती हैं। जो जीते है वे मरे–मरे से स्वस्थ रहकर किसी भांति दिन काट रहे हैं। हंसते–खिलखिलाते चेहरे तो अब देहात में भी बहुत कम दिखाई देते हैं।

3-0 पर्यावरण –चेतना,

3.1- पर्यावरण का जीव–जगत से कितना घना संबंध है, इसकी सार्थक समझदारी ही पर्यावरण–चेतना कहलाती है। मंगलाचरण में उद्धृत वेद–मंत्र से यह स्पष्ट है कि भारत में प्राचीन काल में यह चेतना न केवल मौजूद थी, बल्कि हद दर्जे तक विकसित भी थी। ऐसे असंख्य मंत्र वेदों में मिलते हैं और असंख्य उल्लेख भारतीय साहित्य में हैं जिनमें देवता–स्वरूप इन शक्तियों को सान्निध्य की कामना की गई है, इनकी स्तुति की गई है, इनके स्वच्छ, शुद्ध, शांत और प्रसन्न रखने के उपाय बताए गए हैं। पर्यावरण के प्रति देव–बुद्धि रखना हमारी संस्कृति में ही समाया है।

3.2- पृथ्वी हम सबकी माता है (माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः – अथर्ववेद 12. 12. 12)

क्योंकि वही अन्न–जल देकर सबका पालन–पोषण करती है। पशु–पक्षियों का भी पालन करती है जो मनुष्य के लिए उपयोग और हितकारी होते हैं।

जल भी देवता है) जल को वरुण भी कहते हैं जो ईश्वर का प्रसिद्ध नाम है)। बिना पानी के मनुष्य एक–दो दिन से अधिक नहीं जी सकता। जल से ही अन्न होता है जिससे यह शरीर पलता है। कहावत है, जल ही जीवन है। इसीलिए नदियों को भी मां–जैसा सम्मान दिया जाता है–गंगा जमुना को हम गंगा–मैया, जमुना–मैया कहते हैं।

3.4- वायु तो जल से भी अधिक आवश्यक है। वायु में ही हम सांस लेते हैं। वायु न हो तो सांस लेना रुक जाए और हम मर जाएं। दो–चार घण्टे क्या कुछ मिनट भी वायु के बिना जीवित रहना संभव नहीं होता। जीवन शब्द 'जीव' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'सांस लेना'।

3.5- पर्यावरण के अन्य घटक भी मनुष्य के जीवित रहने में सहायक होते हैं। वृक्षों से फल मिलते हैं जो खाने के काम आते हैं। पेड़–पौधों से भांति–भांति की दवाएं बनती हैं जो रोग दूर करती हैं। कुछ पेड़–पौधें तो इतने अधिक उपयेगी होते है। कि उन्हें भी देवता के समान सम्मान दिया जाता है। पीपल और बरगद को देवता मानते है। पीपल तो अंधेरे में भी आक्सीजन प्रदान करता है जबकि अन्य पेड़–पौधे सूर्य के प्रकाश में ही आक्सीजन दे पाते हैं। तुलसी को तुलसी–सेवन–पूजन करते हैं। इसमें महत्वपूर्ण औषधीय गुण होते हैं।

3.6- पर्वतों में भांति–भांति के खनिज पदार्थ मिलते हैं और औषधियों उत्पन्न होती है। पानी–भरे बादल हवा में उड़ते हुए जब पर्वतों से टकराते हैं, तब वर्षा होती है। वर्षा न हो तो भूमि रेगिस्तान बन जाए और हमें अन्न–जल कुछ भी न प्राप्त हो। इसलिए पहाड़ों को 'भूभृत' या 'महीभृत्' अर्थात पृथ्वी का भरण–पोषण करने वाला कहा जाता है। संस्कृत के महाकवि कालिदास ने हिमालय को देवतात्मा कहा है।

3.7- पर्यावरण के सभी घटकों का महत्व, शक्ति, उपयोगिता और जीवन के लिए अनिवार्यता समझकर उनके

प्रति देव–बुद्धि रखना भारतीयों में अति विकसित पर्यावरण–चेतना का पुष्ट प्रमाण है।

4.0- पर्यावरण का प्रदूषण और शोधन

4.1- पर्यावरण का प्रदूषण कुछ तो प्राकृतिक कारणों से भी होता है। जैसे ज्वालामुखी फटने, भूकंप आने, और दानवनल आदि से पर्यावरण को काफ़ी हानि पहुंचती है। किंतु कुछ थोड़ा–बहुत लाभ भी होता है। जैसे दावानल से जहां मूल्यवान संपत्ति जल जाती है, वहीं बहुत सा प्रदूषण भी नष्ट हो जाता है। प्रकृति में जो स्वाभाविक प्रदूषण होता रहता है, उसमें निपटने की शक्ति भी उसमें होती है। पर्यावरण का स्वाभाविक शोधन होता रहता है।

उदाहरण के लिए जीव सांस लेते हैं, तो जो सांस बाहर निकलती है, उसमें कार्बन–डाई–आक्साइड गैस अधिक होती है। यह गैस पेड़–पौधों का भोजन है। सूर्य के प्रकाश में वे इसे पचाकर हवा में आक्सीजन छोड़ते हैं। इस प्रकार हवा शुद्ध होती रहती है। जल–जीव जल में पड़ी गंदगी पचाकर हवा में आक्सीजन छोड़ते हैं। इस प्रकार हवा शुद्ध होती रहती है। जल–जीव जल में पड़ी गंदगी पचाकर जल शुद्ध करते रहते हैं। पेड़–पौधे अपने पत्ते गिराकर और पृथ्वी के जीव अपने मल–मूत्र गोबर आदि से जैव खाद पहुंचाते रहते हैं जिससे मिट्टी उपजाऊ बनी रहती है। केंचुए आदि भी मिट्टी को शुद्ध करते रहते हैं। इस प्रकार संतुलन बना रहता है। जीव–जगत् की सामान्य गति–विधियों से जितना प्रदूषण होता है, उतनी शुद्धि अपने–आप होती रहती है। कौआ और गिद्ध आदि बहुत से पक्षी अपने भोजन के बहाने सफाई ही करते रहते हैं। बिल्ली और मोर का तो नाम ही मार्जर, मार्जरी मार्जरक अर्थात् झाडू देने वाले पड़ गया है।

4.2- असामान्य गति–विधियों से या दुरुपयोग के फलस्वरूप प्रदूषण भी असाधारण गंभीर होता है जिससे निबटने में प्रकृति प्रायः असमर्थ रहती है। इनके शोधन के लिए विशेष उपाय करने की आवश्यकता होती है।

5.0- पर्यावरण मैत्री वाली मानव संस्कृति

5.1- पर्यावरण–मैत्री कोई नया विषय या नयी खोज नहीं है। मानव के स्वस्थ विकास की यात्रा की दिशा, यानी जीवन का आधार पर्यावरण के दुरुपयोग से बचने और सदुपयोग करते रहने की जीवन–पद्धति ही श्रेष्ठ मानव संस्कृति है। भारतीय चिन्तकों ने जिस श्रेष्ठ का अनुसंध ान और अनुसरण किया था, उसका आधार पर्यावरण–विज्ञान ही रहा है।

5.2- अत्यंत व्यापक, दीर्घकालीन और विशाल प्रयोगों और अनुभवों के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति निश्चित की गई थी। वही संसार की सबसे पुरानी, श्रेष्ठ और विश्व के लिए वरणीय संस्कृति है (सा प्रथमा संस्कृतिविश्ववारा–यजुर्वेद 7.14)। इससे इतर जो भी है, वह मानव की संस्कृति नहीं, अपसंस्कृति या विकृति ही हो सकती है, क्योंकि वह स्वस्थ विकास की नहीं, विनाश की दिशा ही दिला सकती है। भारतीय संस्कृति काल–जयी है, क्योंकि इसका केन्द्र पर्यावरण है जो जीवन का आधार है। गंगा–यमुना आदि नदियों का सेवन–पूजन, जल से नित्य ही (विशेषकर व्रतों–त्योहारों में) स्नान् करना, सूर्य–नमस्कार करना अग्नि में आहुति देना आवश्यक समझा जाता है। पूजा में भी केशर,जल, वंदन और नारियल आदि लगते हैं और यह सब इस संस्कृति में धर्म–(अर्थात् अवश्य–करणीय) कर्म समझा गया है।

5.3- "पर–हित सरिस धर्म नहिं भाई: पर–पीरा सम नहिं अधमाई" (तुलसी : मानस) भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है। वेद ज्ञान के कोश हैं। वे कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु का त्याग करके उपभोग करना चाहिए, और सब कुछ स्वयं ही हड़प लेने का लोभ न करना चाहिए (तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्याविद्धनम्–यजुर्वेद 40.1 इशोपनिषद् 1) कुछ दूसरों के लिए भी छोड़ना चाहिए। अपनी आवश्यकताएं कम रखनी चाहिए। ऐसी स्वार्थ–त्याग–वाली और शोषण–विरोधी संस्कृति में पर्यावरण–मैत्री मात्र विचार या कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि आचरण में अपनाने योग्य धर्म है। पर्यावरण के प्रति देव–बुद्धि रखना मानव का कर्तव्य है। संत तुलसीदास के शब्दों में,

"जड़ चेतन जग जीव जल सकल राम–मय जानि।
बंदहुं सबके पद–कमल सदा जोरि जुग पानि।"
मानस, बालकांड 7 ग।

इस श्रेष्ठ संस्कृति से विमुख होने के कारण ही मनुष्य पर्यावरण बिगाड़ने पर उतारू होता है और संकट बुलाता है।

5.4- महाभारत का एक प्रसंग है, विराटनगर में जब राजा

के साले कीचक के दुर्व्यवहार से दुखी द्रोपदी न्याय पाने हेतु राज–दरबार में पहुंची तो वहां भी कीचक ने उसे गिराकर एक लात मार दी। दरबार में कंक नाम से छिपे युधिष्ठर के पास पाकशाला–अध्यक्ष बल्लव नाम से छिये भीम भी बैठे थे। वे क्रोध से तिलमिला उठे और कीचक को तत्काल मार डालने की इच्छा से बाहर एक वृक्ष की ओर ताकने लगे, मानो उनका वश चले तो उसे ही उखाड़कर कीचक पर दे मारे। ऐसी संभावना भांपकर युधिष्ठिर ने कहा, "बल्लव, तुम ईंधन के लिए वृक्ष को देख रहे हो? रसोई के लिए लकड़ी चाहिए तो बाहर जाकर सूखी लकड़ी किसी वृक्ष से ले लो। शीतल छाया देने वाले हरे–भरे वृक्ष के उपकारों का ध्यान रखते हुए उसके एक पत्ते को भी हानि न पहुंचानी चाहिए।" यह सुनते भीम ने अपना क्रोध छिपा लिया। ऐसी थी पर्यावरण के प्रति मानव की प्रखर चेतना और भारत की पर्यावरण–मैत्री–वाली श्रेष्ठ संस्कृति जो मानव का संस्कार करके उसे देवता बना देती है, अन्यथा संस्कृति से कटा मानव दानव ही हो जाता है।

5.5- भारतीय संस्कृति यज्ञमय जीवन ही जीने की अनुमति देती है। उपनिषद् कहते हैं कि यज्ञ–कार्य भी जन–कल्याण के लिए होते है (यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते–ऐतरेय), और यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है (यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म शतपथ 1.7.1.5) यज्ञ अनेक प्रकार के होते हैं, किंतु पांच महायज्ञ माने जाते हैं जो प्रत्येक गृहस्थ को अवश्य करने चाहिए।इन्हीं में से एक है देव–यज्ञ अर्थात् हवन, अग्निहोत्र या होम करना, जिसे पर्यावरण की शुद्धि होती है और रोग दूर होते है। भूत–यज्ञ एक और महायज्ञ है : बराबर प्राणि मात्र के प्रति सद्भावना रखना। मनुष्य, पशु–पक्षी, और पेड़–पौधों आदि का समुचित पालन–पोषण आदि ही भूत–यज्ञ है।

5.6- देव–यज्ञ या होम देवताओं की प्रसन्नता के लिए किया जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार,

"देवान्भावयतानेन से देवा भाक्यन्तु वः।
परस्परं भाक्यन्तः श्रेयः परमवाप्सयथ।। –3.11।

अर्थात् तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं (पर्यावरण के घटकों) को उन्नत (शुद्ध, पवित्र, स्वस्थ, प्रसन्न) करो और देवता तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार एक–दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे। इस प्रकार होम से सभी प्राणियों का कल्याण होता है और होम करनेवाला भी सुखी रहता है। आपस की मैत्री ही संसार में कल्याणकारी होती है।

6.0- वर्तमान विश्व–परिदृश्य

6.1- पर्यावरण का साधारण प्रदूषण दूर करके प्रकृति में संतुलन बनाए रखने वाला कारक भी पर्यावरण ही है। किंतु आज–कल पर्यावरण को भी इतनी क्षति पहुंच रही है कि वह अपना पूरा शोधन नहीं कर पाता। उधर प्रदूषण बढ़ता जाता हे। यानी यह एक दुश्चक्र हैः प्रदूषण बढ़ा –क्षति हुई– शोधन घटा – प्रदूषण बढ़ा– आदि।

6.2- गांवों में पहिले प्रातः–सायं पशुओं की पंक्तियों पर पंक्तियाँ निकला करती थीं, किंतु अब बहुत थोड़े गाय–बैल ही दिखते है। बड़े–बड़े किसान अब बैल नहीं पालते, ट्रैक्टर खरीदते हैं। लोग भूल गए है कि शिव (कल्याण) के वाहन बैल ही होते हैं, ट्रैक्टर नहीं हो सकते। बैल न रहेंगे तो कल्याण नहीं होगा। गाये भी बहुत कम पाली जाती है। वे अब उतना दूध भी नहीं देती। महाभारत में लिखा है कि किसी के पास दस गाये हो तो उनसे पूरे परिवार का भरण–पोषण अच्छी तरह हो सकता है। गायों की संख्या के अनुसार ही लोग धनी समझे जाया करते थे। किंतु अब तो पशु–पालन का धंधा ही समाप्त होता दीखता हें चरागाहें ही नहीं रहीं, वन ही नहीं रहे, तो पशु–पालन कैसे चल सकता है? गत 30 वर्षों में ही भारतीय वन–क्षेत्र सकल क्षेत्र के 20 प्रतिशत से सिकुड़कर मात्र 10 प्रतिशत रह गया है।

6.3- यदि लोग अपनी आवश्यकताएं बढ़ाते गए तो पर्यावरण का प्रदूषण भी बढ़ता जाएगा और मानव–जीवन के लिए खतरा उतना ही बढेगा। फिर तो धीरे–धीरे रेत पर बनाए निशान की भांति मनुष्य का निशान भी संसार से मिट सकता है। सभ्यता के केन्द्र शहरों का तो बहुत ही बुरा हाल है। हवा में इतना प्रदूषण बढ़ गया है कि वह प्राण–दाता के बजाय जान–लेवा हो रही है। केन्द्रीय प्रदूषण–नियंत्रण बोर्ड दिल्ली की रिपोर्ट (नमूना सारणी 1) हर दूसरे–चौथे समाचार–पत्रों में प्रकाशित होती रहती है जिसके अनुसार प्रदूषण मानव–स्वास्थ्य के लिए खतरनाक स्थिति से भी बहुत अधिक है, और दिन–प्रति–दिन तेजी से बढ़ता जा रहा है। विद्वानों का

अनुमान है कि ऐसा जमाना जल्दी ही आ सकता है जब लोग आक्सीजन की थैलियां लेकर घर से निकला करेंगे और आवश्यकतानुसार उसे सूंघते हुए अपना सफ़र पूरा किया करेगें।

6.4- हवा के बाद पानी दूसरी अनिवार्य आवश्यकता है जिसकी हालत भी शोचनीय है। संयुक्त राष्ट्र की 1997 की रिपोर्ट के अनुसार विश्व की कुल जनसंख्या में से 20 प्रतिशत को स्वास्थ्यप्रद पेय जल उपलबध नहीं है। अनुमान है कि सन् 2025 तक विश्व की दो–तिहाई आबादी पानी की समस्या से त्रस्त होगी। चेन्नई भारत का चौथा महानगर है। वहां अधिकतर नागरिकों को प्रति दिन केवल दो घण्टे ही जल प्राप्त होता है। विश्व के 80 देशों में पानी की कमी है, पर मध्य पूर्व, उत्तरी अफीका, केन्द्रीय एशिया और सहारा अफीका के देशों में समस्या गंभीर है।

6.5- प्रदूषण ने जल के एक बड़े भाग को उपयोग के योग्य ही नहीं छोड़ा है। विकासशील देशों में 90 प्रतिशत मल–जल (सीवेज) बिना किसी उपचारण के ही जल–संसाधनों में मिला दिया जाता है। अच्छा पानी तो अभी भी दुर्लभ हो रहा है। बाजार से बोतल–बंद स्वच्छ पानी खरीद–कर प्रायः लोग उसे ही पीते है।

6.6- विद्वानों के एक अनुमान के अनुसार पर्यावरण स्वस्थ बनाए रखने के लिए भूमि का एक–तिहाई भाग वनों से ढका रहना चाहिए। किंतु लकड़ी, कागज आदि के कारखाने चालू रखने के लिए जंगल बुरी तरह काटे गए। फल यह हुआ कि बहुत सी मिट्टी वर्षा में कटकर बह गई,भूमि बंजर होने लगी, ऊपर और मरुस्थल बढ़ते गए। हवा में आक्सीजन कम होने लगी। कृत्रिम खाद देने से अन्न की पौष्टिकता बहुत कम हो गई। कारखाने अपना कूड़ा–कचरा और गंदा पानी नदियों में बहा देते हैं जिससे जल–जीव मरते जा रहे है। ऊँची–ऊँची चिमनियां दिन–रात धुआं और विषैली गैसें उगल रही हैं। मुंबई में तो गंधक का धुआं फैलने से तेजाब की वर्षा तक हो चुकी है। एक बड़ा हवाई जहाज एक दिन में जितनी आक्सीजन खर्च करता है, उतनी 17000 हेक्टेअर वन में तैयार होती है। व्यापक वन–विनाश के कारण हवा में प्राण–वायु आक्सीजन घट रही है जबकि विषैली गैसें बढ़ रही हैं।

6.7- संक्षेप में कहे तो जीवन का आधार मिटाया जा रहा है विकास, उन्नति और प्रगति के नाम पर। यह है नरक होती जा रही हमारी दुनिया का विहंगम दृश्य कि आदमी तो बढ़े हैं किंतु उनके चेहरों से खुशी गायब है। एक कवि के शब्दों में :

"हम जीवित हैं, पर नाथ, रहा इस जीवन में कुछ सार नहीं।
उठता जगदीश, न शीश कभी, हिलता तक है दुख–भार नहीं।।

7.0 प्रदूषण–वृद्धि के मूल कारण

7.1- मनुष्य अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताएं पूरी करने में दिन–रात जुटा रहता है। वह भांति–भांति की वस्तुओं का संग्रह करता है, दूसरों से प्रतियोगिता करता है और अधिक से अधिक प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यह प्रवृत्ति 'लोभ' कहलाती है। ऋषियों ने इसे एक बड़ा दुर्गुण कहा है, क्योंकि इससे उसे पर–हित का ध्यान नहीं रहता और वह दूसरों को उनका आवश्यक भाग प्राप्त करने से वंचित रखता है। पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध के कारण लोग उसकी ओर आकर्षित होने का लोभ संवरण नहीं कर पाते, और आवश्यकताएं बढ़ाते जाते है। जो वस्तुएं पहिले विलासिता समझी जाती थीं, वे अब आवश्यक समझी जाने लगी है ठंडी अलमारी (फिज), दूरदर्शन (टेलीविज़न), मोटर, धुलाई–मशीन, सफाई–मशीन, सिलाई–मशीन, स्टोव–चूल्हे आदि अब बहुत से लोगों के लिए अनिवार्य हो गए हैं। लोभ की प्रवृत्ति बराबर बढ़ती जा रही है।

7.2- अपनी बढ़ी हुई आवश्यकंता की वस्तुएं तैयार करने, हथियाने, और दूसरों से आगे रहने को ही कुछ लोग विकास, उन्नति या प्रगति मान बैठे है। किंतु वास्तव में लोगों में लोभ और स्वार्थ–बुद्धि का ही विकास हुआ है। उस तथाकथित विकास के लिए वे अपने आस–पास के पर्यावरण का दोहन करते हैं, जल–थल–वायु ही नहीं, पेड़–पौधों, पशु–पक्षिओं और जीव–जंतुओं तक का अधिक से अधिक उपभोग करते हैं। सभी शक्तियों का अपने स्वार्थ के लिए शोषण करते हैं। अपने–अपने भारी उद्योग पनपाने के लिए एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का, एक समाज दूसरे समाज का, और सक देश दूसरे देश का शोषण करता है। यह शोषण इतना सार्व तथा व्यापक है, और इसका स्वरूप इतना गुप्त और जटिल है कि आसानी से सबको दिखाई नहीं देता। मनुष्य की स्वार्थ–बुद्धि इतनी चतुर हो गई है कि ढोंगी विकास की आड़ में छिपी उसकी दूषित नीयत और कुत्सित विचार आम आदमी की समझ में नहीं आ पाते।

7.3- विकास और सहायता के नाम पर विकसित देश अल्प–विकसित या विकासशील देशों का शोषण कर रहे हैं। अमेरिका एक विकसित देश समझा जाता है। वहां दुनिया की 7.5 प्रतिशत आबादी रहती है, किंतु वह दुनिया के 50 प्रतिशत बुनियादी साधनों का उपभोग करता है। अल्प–विकसित और अविकसित देशों में दुनिया के खनिज भण्डारों का 70 प्रतिशत भी इन्हीं देशों में हैं। किन्तु दुनिया के सारे औद्योगिक उत्पादन का केवल सात प्रतिशत ही इन देशों में होता है। यह भी शोषण का एक उदाहरण है।

7.4- जब यह किसी से छिपा नहीं है कि कुछ–एक देश अपने स्वार्थ के लिए संसार की संपदा चट कर जाने पर उतार हैं। यह विश्व–पर्यावरण के साथ बलात्कार ही है। इसका शिकार सारा जीव–जगत् और स्वयंमनुष्य भी हो रहा है। यह बुद्धिमानी नहीं है। यह तो विचारों दरिद्रता की पराकाष्ठा है, कुछ लोगों के लोभ का घिनौना चेहरा है, उनकी स्वार्थ–बुद्धि का विषैला फल है। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति के स्वाभाविक काम में बेजा छेड़–छाड़ करना है जिससे संतुलन बिगड़ जाता है, जल–थल–वायु सभी इतने प्रदूषित हो जाते हैं कि प्रकृति उन्हें नहीं कर पाती।

8.0 विकास के नाम पर विनाश

8.1- जब यह सिद्ध हो चुका है कि पर्यावरण का व्यापक प्रदूषण मनुष्य की गलत सोच का ही परिणाम है। भारी उद्योगों वाली सभ्यता का केन्द्र पूंजी हैं, धर्म स्वार्थ और लक्ष्य है उपभोक्ता का दोहन जिसका साधन है व्यापक शोषण। इस सारे तंत्र की सूत्रधार है मनुष्य की स्वार्थ–बुद्धि, उसकी पर–हित–विरोधी सोच और परिणाम है विकास के नाम पर विनाश।

8.2- किंतु जैसे–जैसे पर्यावरण–चेतना बढ़ रही है, विकास की कलई भी खुलती जा रही है, भोली–भाली जनता के साथ होने वाले स्वार्थ में रंगे सियारों के छल का कच्चा चिट्ठा सबके सामने आ रहा है। जितने ही अधिक भारी उद्योग बढ़े, जल–थल–वायु का उतना ही अधिक प्रदूषण हुआ। विकास का ढोल पीट–पीटकर प्राकृतिक संपदा का अधिक से अधिक विनाश किया गया। गलत सोच का उदाहरण देखिए: एक मोटर–वाहन 970 किलोमीटर की यात्रा में उतनी आक्सीजन फूंक डालता है जितनी एक व्यक्ति को एक वर्ष में आवश्यक होती है। केन्द्रीय प्रदूषण–नियंत्रण बोर्ड दिल्ली बराबर चेतावनी प्रसारित करता रहता है (अखबारों में प्रकाशित नमूना सारणी 1 देखिए) कि मोटरों से निकलनेवाली कार्बन–मोनो–आक्साइड की मात्रा अधिकतम अनुमत सीमा की चार–गुनी से भी अधिक हो रही है। फिर भी मोटर बनाने का उद्योग फैलता ज़ा रहा है भले ही सड़कें संकरी पड़ती जा रही हैं, चौराहों पर ट्रैफिक–जाम बढ़ता जा रहा है। भारत में ही नये प्रस्तावित कारखानों से दो–साल बाद तैयार होकर निकलनेवाली मोटरों (छोटी कारों) के लिए भी वे दो लाख से ऊपर आर्डर बुक हो चुके हैं, जब कि सुनते हैं, न्यूयार्क में मोटर छोड़ साइकिल चलाने का फैशन शुरू हो रहा है।

8.3- यह युग का दुखांत ही है कि भारत भी पश्चिम की अर्थ–काम–प्रधान अप–संसकृति (या विकृति) की आंधी में उड़ता हुआ विनाश की ओर जा रहा है, यहां तक कि विश्व के सर्वाधिक प्रदूषित दस महानगरों में से तीन भारत के हैं। संयुक्त राष्ट्र पापुलेशन फण्ड की ओर से न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू०एन०डी०पी०) और संयुक्त राष्ट्र मानव रिहाइश केन्द्र (हेबिटैट) द्वारा हाल में जारी की गई रिपोर्ट के अनुसार आनेवाले दशकों में हमारे शहरों की हालत नारकीय हो जाएगी।

9.0 प्रदूषण–नियंत्रण के प्रयत्न

9.1- प्रदूषण के प्रति मानव की चिंता बढ़ रही है। वह किसी भांति इस संकट से छुटकारा पाने के लिए छटपटा रहा है। दशाब्दियों से यह संकट टालने के उपाय भी हो रहे हैं, किंतु उद्देश्य के प्रति ईमानदारी प्रायः नहीं होती। उसकी स्वार्थ–बुद्धि उसके निजी हितों से ऊपर नहीं उठ पाती, और यह नहीं सोच पाती कि सभी का, सारे जीव–जगत् का हित कैसे हो। समस्या से सूझने के लिए भारत ने 'मानव–संसधन–विकास मंत्रालय' और 'पर्यावरण मंत्रालय' भी बना रखे हैं। "परंतु", वृंदावन के एक विद्वान डॉ० शरण विहारी गोस्वामी के शब्दों में, "संस्कार तो अब भी विरोधी है। प्रकृति को बचाना भी चाहते हैं, उसका विनाश भी बंद नहीं कर रहे हैं। सर्वप्रथम तो मन का प्रदूषण दूर करना होगा। मन को सहज संस्कारों में ढालना होगा, तभी प्रदूषण–विरोध और पर्यावरण–रक्षण–आन्दोलन सफल होगा। इसके लिए जो जीवन–दृष्टि चाहिए, वह भारत के पास है।" (डॉ० हर्षनंदिनी भाटिया की पुस्तक 'ब्रज–निधि : वनश्री' की भूमिका से)

9.2- सोच के पीछे ईमानदारी और दृढ़ इच्छा–शक्ति के अभाव में हमारे प्रयास बहुधा दिखावटी और छोटे होते हैं। छोटे–छोटे वन–महोत्सव भारी वन–विनाश की भर–पाई नहीं कर पाते हैं। वे ऊँट के मुँह में जीरा सिद्ध होते हैं। चिपको आन्दोलन का प्रभाव भी स्थानीय ही होता है। इसका सिद्धांत सत्याग्रह द्वारा वन–विनाशकों का हृदय–परिवर्तन है। किंतु जब तक उनकी सोच न बदले, उनके विचार न शुद्ध हो, उनमें सबका हित साधने की सुमति न आए, तब तक उनका हृदय–परिवर्तन संभव नहीं होता। वे लोग पर्यावरण–मैत्री की संस्कृति से इतनी दूर जा चुके हैं कि सत्याग्रहियों पर दया दिखाने के लिए घड़ियाली आंसू ही बहाते रहेंगे।

9.3- बचपन में डाले हुए संस्कार ही टिकाऊ होते है। पर्यावरण–मैत्री का पाठ भी बचपन में ही पढ़ाकर यह भूली हुई संस्कृति सिखायी जा सकती है। पर्यावरण–चेतना जन–जन में जगाने के लिए एक विश्वव्यापी वैचारिक क्रांति करनी होगी। बूढ़ा तोता राम–राम नहीं पढ़ता। स्वार्थ की दृष्टि भी सरलता से नहीं छूटती। लोग पर–हित का मुँह से पाठ करते हैं और हाथ में स्वार्थ की माला जपते हैं। यह बुद्धि बदलनी चाहिए। डॉ० गोस्वामी द्वारा इंगित भारतीय जीवन–दृष्टि सोई हुई है: उसे जगाना होगा। इसके लिए पीढ़ियों तक बचपन से ही पर्यावरण–विज्ञान की शिक्षा मिलनी चाहिए। तभी लोग पर्यावरण–मैत्री वाली संस्कृति अपनाएंगे और स्वार्थ छोड़ भारतीय जीवन–दृष्टि पाएंगे।

10.0 पर्यावरण-विज्ञान अर्थात् यज्ञ-विज्ञान

10.1- संसार यह अनुभव करने लगा है कि प्रदूषण की गंभीर समस्या का एक मात्र सुनिश्चित, सुप्रभावी और स्थायी समाधान है, पुनः पर्यावरण–मैत्री वाली संस्कृति की शरण जाना, यज्ञमय जीवन पद्धति अपनाना, भावी नागरिकों में यज्ञ–होम के प्रति रुचि बढ़ाना और बचपन से ही उन्हें होम द्वारा पर्यावरण–देवताओं का तुष्टीकरण सिखाना। जर्मनी में पर्यावरणवादी 'ग्रीन पार्टी' शासन–सत्ता में भागीदार हो गई है, इटली, स्वीडन और स्विट्जरलैंड की सरकारों पर भी हरित आन्दोलन का दबाव बढ़ता जा रहा है। प्रदूषण–निवारण के एक मात्र प्रभावी और स्थायी उपाय, 'अग्निहोत्र' के प्रति अमेरिका, चिली, पोलैंड और पश्चिमी जर्मनी में विशेष रुचि बढ़ी है। अमेरिका में तो मेरीलैंड (बाल्टीमोर) में 'अग्निहोत्र प्रेस फार्म' है जहां 1979 से दिन–रात अखंड यज्ञ चल रहा है मैडिसना (वर्जीनिया) में प्रथम यज्ञशाला का उद्घाटन 1973 में हुआ था, जहां राजधानी से डेढ़ घंटे में पहुंचा जा सकता है। राजधानी वाशिंगटन, डी० सी० में अग्निहो़ विश्वविद्यालय की स्थापना भी हो चुकी है।

10.2- होम का सिद्धान्त यह है कि कोई भी वसतु आग में डालने से नष्ट नहीं होती, बल्कि जलने से उस वस्तु का प्रभाव हजारों गुना बढ़ जाता हे। जलती हुई वस्तु के सूक्ष्म कण गैस बनकर दूर–दूर तक फैलते है और बहुत से प्राणियों को लाभ पहुँचते है। हवन–सामग्री में ऋतु के अनुसार औषधियां और जड़ी–बूटी, घी, शक्कर और मेवे आदि होते हैं। उनके जलने से घरों के हानिकर कीट, मच्छर आदि और अनेक रोगों के कीटाणु मर जाते हैं। होम की राख में भी औषधीय गुण होते हैं। वैज्ञानिकों ने प्रयोग करके देखा है कि खाँड़ जलाने से जो गैस बनती है उससे अनेक रोग–कीटाणु मर जाते हैं और क्षय, चेचक, हैजा आदि बीमारियां शीघ्र दूर हो जाती है। मुनक्का, किशमिश आदि मेवों में शकर अधिक होती है, इनके जलाने से टाइफाइड ज्वर के रोग–कीट आधे घंटे में मर जाते है। अन्य व्याधियों के रोगाणु भी घंटे–दो–घंटे में नष्ट हो जाते हैं। मद्रास (अब चेन्नई) में एक सैनिटरी कमिश्नर ने सन् 1882 ई० में बताया था कि घी और चावल में केशर मिलाकर जलाने से प्लेग से बचा जा सकता है। टी०बी० उपचार केन्द्र जबलपुर में तीन–चार दशक पहिले यज्ञ के प्रयोग किए गए थे। वहां डॉ० फुंदनलाल अग्निहोत्री ने 80 प्रतिशत क्षय–रोगियों को यज्ञ से लाभ पहुंचाया था। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ था कि गाय के घी से यज्ञ करने पर रोगी शीघ्र चंगे हो जाते हैं। वास्तव में पर्यावरण–विज्ञान का ही दूसरा नाम यज्ञ–विज्ञान है।

10.3- होम से वायु युद्ध होती है, इससे वृष्टि भी होती है। (गीता 3.14)। शुद्ध वायु के संपर्क में आकर वर्ष–जल शुद्ध हो जाता है और उसके पृथ्वी पर गिरने से भूमि भी शुद्ध होती है। होम की राख खाद का काम देती है। खेतों में होम करने से उपज बढ़ती है, फसल में कीड़े नहीं लगते और अन्न भी अधिक स्वादिष्ट तथा पौष्टिक होता है। गोशाला में होम करने से गाये अधिक दूध देती हैं। इस प्रकार होम के कारण अच्छा अन्न–जल–वायु और दूध–घी मिलने से लोगों का स्वास्थ्य सुधरता है, उनकी

आयु बढ़ती है। होम में एक और भी रहस्य है। आहुतियां देते समय प्रत्येक बार 'स्वाहा' बोल जाता है जिसका अर्थ है कि मैं अपना कुछ त्याग करता हूं, अथवा मैं अपनेपन का, अहं–भाव का नाश करता हूं। इसी प्रकार आहुति के बाद भी 'इदं न मम' बोला जाता है अर्थात् यह मेरे लिए नहीं वरन्........ के लिए है। ऐसा बार–बार कहने से मनुष्य का अहंकार धीरे–धीरे नष्ट होता रहता है। उसकी त्याग–भावना बढ़ती है, स्वार्थ छोड़ने का उसका मानसिक संकल्प दृढ़ होता है और पर–हित की ओर रुचि उत्पन्न होती है। उसका मन शुद्ध होता है, स्वभाव सुधरता है और वैचारिक प्रदूषण दूर होता है। मंत्रों के उच्चारण से अवांछनीय ध्वनियां दबी रहती हैं। और अंशतः ध्वनि–प्रदूषण रुकता है।

11.00– नरक को स्वर्ग बनाने का अमोघ उपाय

11.1- संतोष का विषय है कि भारत की जीवन–दृष्टि जग उठी है और यज्ञ–विज्ञान के प्रति जागरुकता विश्व में बढ़ रही है। पर्यावरण–संरक्षण –संघ, नासिक, इंस्टिट्यूट फ़ार स्टडीज इन वैदिक साइसेंज, शिवपुरी (महाराष्ट्र), माधवाश्रम, भोपाल, ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान, हरिद्वार, अमेरिका में अग्निहोत्र यूनिवर्सिटी और नेशनल हार्टिकल्चरल सोसायटी, जर्मनी में क्रिया–योग जैसी संस्थाएं यज्ञमय जीवन पर गंभीर शोध और व्यापक प्रचार–कार्य कर रही हैं। अनेक पत्रिकाएं निकल रही हैं और पुस्तकें प्रकाशित हो रही है। पर्यावरण–संरक्षण–संघ के प्रो० एस० सी मुले 'मेंडिसिन पल्टरनेटिया' द्वारा आयोजित विश्व–सम्मेलन में होम का प्रदर्शन किया था। उन्होंने बताया था कि पृथ्वी और सूर्य के बीच का वातावरण प्रदूषण के कारण बिगड़ गया है। इसे होम द्वारा आसानी से अनुकूल बनाया जा सकता है। 'होम' या 'यज्ञ' संस्कृत शब्द वैदिक काल के जैव–उर्जा–विज्ञान का तकनीकी शब्द है जिसका अर्थ है, अग्नि के माध्यम से पर्यावरण के विषैले तत्व दूर करने की प्रक्रिया । प्रो० मुले ने बताया कि होम से आक्सीजन की पुनर्चक्रण प्रणाली में संतुलन बना रहता है। जल–स्रोतों द्वारा सूर्य–किरणों का अवशोषण करने की क्षमता भी होम से बढ़ती है जिससे शैवाल और जीवाणुओं की अनचाही वृद्धि रुकती है।

11.2- प्रतिदिन प्रातः–सायं प्रत्येक घर से सामान्य होम और पर्व या त्योहारों पर विशेष होम करने से पर्यावरण शुद्ध होता रहता है, हानिकारक कीट–मच्छर आदि भाग जाते हैं और मनुष्य के स्वास्थ्य एवं आचार–विचार सभी सुधरते हैं। इस प्रकार होम से मनुष्य का सर्वांगीण विकास या 'संस्कार' होता है। वह मानव से श्रेष्ठ मानव और अंतत : देवता बन जाता है– 'देवो भूत्वा देवान्प्येति' (बृहराण्यक 4.1.2)। उसके बसने की जगह 'वसुधा' नरक नहीं स्वर्ग बन जाती है। यज्ञवाली संस्कृति अथवा पर्यावरण–केन्द्रित संस्कृति ही भारत की (ज्ञान पर आधारित : कंडिका 5.1) संस्कृति है। यही मानव मात्र की संस्कृति होनी चाहिए। इस संस्कृति से विमुख होने के कारण ही मनुष्य नारकीय जीवन जी रहा है। मनुष्य के सोलह संस्कारों में एक होता है– "यज्ञोपवीत" (यज्ञ. उप. वीत)। इसका अर्थ है यज्ञ मय जीवन के पास ले जाने की प्रेरणा देना। यह संस्कार बचपन में ही प्रत्येक व्यक्ति का होना चाहिए ताकि वह जीवन भर यज्ञ अर्थात् पर–हित से जुड़ा रहे और अपने राष्ट्र का श्रेष्ठ नागरिक बनकर, दद्दा मैथिलीशरण गुप्त के राम की भांति गर्व और विश्वास के साथ कह सके:

"सन्देश नहीं मैं यहां स्वर्ग का लाया।
इस वसुधा को ही स्वर्ग बनाने आया।" ––साकेत।

11.3- यह कोई दिवा–स्वप्न नहीं हैं। यज्ञ से प्रदूषण–निवारण में निश्चत और आशातीत सफलता मिलती है। पुणे के फ़र्ग्युसन कालेज के जीवाणुओं–शास्त्रियों ने प्रयोग के रूप में लगभग 10 x 7 x 3 मीटर के एक हाल में एक समय का अग्होत्र किया। फलस्वरूप 210 घन मीटर वायु में कृत्रिम रूप में निर्मित प्रदूषण का 77.5 प्रतिशत भाग समाप्त हो गया। उन्होंने यह भी देखा कि एक समय के होम से ही 96 प्रतिशत कीटाणु नष्ट होते हैं। पंजाब केसरी 13-2-83 अंक में छपा था कि अग्निहोत्र से मानसिक रूप से अविकसित बच्चों का बौद्धिक स्तर (आई० क्यू०) भी बढ़ गया। यज्ञ से मनुष्य के मन और विचार सुधरने से प्रदूषण फैलाने के कारणों में कमी होती है। स्वार्थ त्यागकर पर–हित साधनेवाला व्यक्ति जनहित–विरोधी कार्य करने से हिचकेगा और जान–बूझकर, दूसरों को छलकर या धोखे में रखकर कोई जनहित–विरोधी योजना नहीं सोचेगा।

11.4- 2-12-1994 की भोपाल की गैस–रिसाव–दुर्घटना के समय होम के चमत्कारी प्रभाव के बारे में 'हिन्दू' समाचार–पत्र में श्री के०पी० नारायण ने लिखा था कि "33–वर्षीय श्री एम० एस० राठौर अपनी पत्नी, चार बच्चों,

मां तथा भाई के साथ भोपाल रेलवे स्टेशन के निकट रहते थे। उस क्षेत्र में गैस के विष के फलस्वरूप दर्जनों व्यक्ति मर गए। गैस की जानकारी होते ही श्री राठौर अपने पूरे परिवार को बिठाकर यज्ञ करने लगे और मंत्रों के समाप्त होते ही 'त्रयंबक यज्ञ' (मृत्युंजय मंत्र से आहुतियां देना) शुरू कर दिया। इस परिवार पर गैस का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ा। इसी प्रकार यज्ञ के कारण श्री एस० एस० कुशवाहा का परिवार भी दुष्प्रभाव से बच गया।

11.1- निष्कर्ष यह है कि पर्यावरण–विज्ञान की शिक्षा संसार में छोटे–बड़े सबको मिलनी चाहिए और बच्चों की शिक्षा में इसे सम्मिलित करना अनिवार्य होना चाहिए। यही कल्याण का मार्ग है जिससे विश्व–शान्ति संभव है।

ओउम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

प्रभो! यज्ञमय सार्थक जीवन भा–रत जन–जन पाए।

शान्ति व्यक्ति में, शान्ति राष्ट्र में, शान्ति विश्व में आए।

नमूना सारणी 1

दिल्ली में वायु–प्रदूषण आई.टी.ओ. चौक 01-02-99

पैमाना	अधिकतम सीमा (माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर)		वास्तविक
सल्फर–डाई–आक्साइड	80		19
नाइट्रोजन–डाई–आक्साइड	80		58
धूल के कण	200		439
कार्बन–मोना–आक्साइड	2000	(प्रातः 6 से दोपहर 2)	6484
स्रोत		(दोपहर 2 से रात 10)	8155
केन्द्रीय प्रदूषण–नियंत्रण बोर्ड, दिल्ली।		(रात 10 से प्रातः 6)	5985

प्रतिक्रियाएं

।। श्रीकृष्णः शरणं मम।।

"मनु–निकुंज" सी–45 (ए),
निराला नगर, लखनऊ–20
दि० 18 मार्च, 1999 ई०

परम स्नेहास्पद मित्रवर मिश्रजी,

सप्रेम नमस्कार ! "विज्ञान" का वह विशेषांक (जो मुझे "सहयुगीन विज्ञान परिवार" का दत्तक पुत्र बनाने का संकल्प लेकर, अंततः आपने कर ही दिखाया, फरवरी के अंक की सुघढ़ सुन्दर प्रस्तुति द्वारा) मिला जब मुझे, तो याद हो आई "अष्ट छाप" के महाकवियों में परिगणित, ब्रज भाषा के काव्यशिल्पी नन्ददास के प्रति जनहृदय द्वारा अभिव्यक्त ये पंक्तियाँ –

"और सब घड़ियाँ ! नन्ददास जड़िया !" (अर्थात् अन्य सब स्वर्णकार तो मात्र टाँची–हथौड़ी से जेवर गढ़ने वाले हैं, पर नन्ददास हैं वह जौहरी जो अपने गहनों में रत्न जड़ देते हैं। वह सबसे निराले हैं।)" आप भी ऐसे ही सिद्धहस्त रत्न–जड़िया हैं !

आपने मात्र पचास पृष्ठ के इस लघु–पत्र विशेषांक में ऐसी दक्षता, लाघवता और भाव प्रवीणता द्वारा, मेरे ग्रंथ–संग्रह के कतिपय अंशों की फोटोस्टेट–प्रतिलिपि कराके उनकी बानगी इस विशेषांक के कलेवर में जटित करके मेरा शब्दचित्र–सा प्रत्यांकित कर दिखाया है कि अपनी आयु का अधिकांश संपादन–कार्य में खपा देने वाला मैं बूढ़ा पत्रकार दंग ही नहीं, विभोर भी हो गया हूँ। इस प्रस्तुति में निश्चय ही "विज्ञान" के सुयोग्य संपादक डॉ० दिनेश मणि जी का भी कम मूल्यवान योगदान नहीं है। मैंने उन्हें अलग से पत्र लिखकर, अपना आभार व्यक्त किया है। और धन्यवाद तो एक पृथक संदेश प्रेषित करके कविवर डॉ० प्रभाकर द्विवेदी जी को भी दिया है, जिन्होंने अपनी काव्य पंक्तियों में मुझे कैद कर दिया है। लोग "विज्ञान" का यह अंक मुझ से माँग रहे हैं। यदि पचीस–तीस प्रतियाँ उपलब्ध हों, तो कृपया मुझे भेजने की कृपा करें। मैं उनका मूल्य चुका दूँगा।

सस्नेह :

कृ० व० द्विवेदी

।। श्री कृष्णः शरणं मम।।

प्रतिष्ठा में :
डॉ० दिनेश मणि जी, डी० एस–सी०,
संपादक, ''विज्ञान'' (मासिक पत्रिका),
विज्ञान परिषद, प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग,
इलाहाबाद–211002

''मनु – निकुंज''
सी – 45 (ए), निराला नगर,
लखनऊ – 226020

दि० 6 मार्च, 1999

परम स्नेहास्पद बन्धुवर !

सप्रेम नमस्कार ! आपका 26 फरवरी का पत्र प्राप्त हुआ। साथ ही, ''विज्ञान'' के उस अंक की तीन प्रतियाँ भी, जो आपने मेरे सम्मान में निकालकर, मुझे ही नहीं, उन समस्त अग्रगन्ता हिन्दी–आराधकों को पुष्पमाला पहनाई हैं, जिन्होंने विज्ञान की उपेक्षित विधा के बीज बोए, जिन्होंने अपने श्रम के पसीने से सींचा। अनवरत बाधाओं के झंझावात की थपेड़ों का सामना करते हुए नव अंकुरित उस विधा को मुरझाने से बचाए रक्खा। मैं उन सबकी दिवंगत वंदनीय आत्माओं की ओर से, आपको और आपके आदरणीय सहयोगियों को आभार–स्वीकृति की यह विज्ञप्ति अर्पित कर रहा हूँ। और, अपनी ओर से तो गद्‌गद कंठ से, मात्र उस वीणा पाणि माँ सरस्वती के श्री चरणों में यह ''नैवेद्य'' स्वीकार करने की विनती करता हूँ–चूँकि यह तो उसके एक ''पुजारी'' के अभिनन्दन के माध्यम से वस्तुतः है तो उस ''विज्ञान–भारती'' को अर्पित हिन्दी के उपासकों का एक चढ़ावा ही !

आपने एक दुष्कर कार्य कर दिखाया है। ''विश्व–भारती'' तो लुप्त हो चुकी है। विस्मृति के गर्त में समा चुकी है। इसकी टकोर पाकर ही, एकभारतीय विरासत के प्रहरी ने संतप्त होकर, पिछले दिनों प्रदेश के जाने–माने दैनिक पत्र ''अमर उजाला'' में ''विस्मृति के अंधेरों में लुप्त विरासत'' शीर्षक से एक लंबा, हृदय झनझना देने वाला लेख लिखा था। उसकी प्रारंभिक पंक्तियां ये थी :–

''करीब 57 वर्ष पहले हिन्दी जगत् में ''हिन्दी विश्व–भारती' की रचना हुई थी। इसी के साथ कृष्ण वल्लभ द्विवेदी का नाम उभरा था। अंग्रेजी हुकूमत थी और आजादी की लड़ाई को अवाम तक ले जाने के रास्ते में तमाम खतरे थे। जिन लोगों ने इस खतरों के बीच साहित्य और समाज के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर किया था, उनमें अग्रणी नाम कृष्ण वल्लभ द्विवेदी का भी था। .... लेकिन ऐसी अद्‌भुत रचना पिछले कई दशकों से प्रकाशन से बाहर है। न यह बाजारों में मिलती है, और न ही नए पुस्तकालयों में। बहुत पुराने पुस्तकालयों में भी शायद उपलब्ध हो (यदि चोरी से बची हो तब)। इसके संपादक और बुजुर्ग साहित्यकार कृष्ण वल्लभ द्विवेदी सवालिया अंदाज में कहते हैं। – ''कितने लोगों को पता होगा कि परवर्ती दिनों में अद्वितीय प्रतिष्ठा और ख्याति प्राप्त करनेवाले, हजारों पृष्ठों के कलेवर में निबद्ध इस अनूठे ज्ञान–विज्ञान–कोष को मूर्त रूप देने में उसके रचनाकारों को क्या कुछ मेहनत करनी पड़ी थी?''. ... उत्तर प्रदेश सरकार और यहाँ के हिन्दी जगत के लिए यह शर्म की बात है कि ''हिन्दी विश्व–भारती'' जैसा अमर कोष अतीत की दुर्लभ वस्तु बनकर रह गया। इससे भी ज्यादा शर्मनाक यह है कि इसके संपादक और ''भारत–निर्माता'', ''ज्ञानलोक'', ''ग्रह–नक्षत्र'' जैसी ज्ञानवर्धक और विचारपरक रचनाओं के लेखक कृष्ण वल्लभ द्विवेदी को उनके जीते जी ही भुला दिया गया। विधान–भवन और राजभवन से बमुश्किल पांच किलोमीटर की दूरी पर स्थित निराला नगर के ''मनु–निकंज'' में हिन्दी साहित्य का यह अमर सेवी एकान्त और विस्मृति की जिन्दगी जी रहा है। सरकार और हिन्दी के तमाम सत्ता प्रतिष्ठानों ने उसकी कुशलक्षेम पूछने की जरूरत ही नहीं समझी।............''

आपने ''अमर उजाला'' में उजागर किए गए उपालंभ्भ की भूरि–भूरि निष्कृति कर दी है। मेरे सम्मान में आयोजित यह आपका प्रकाशनानुष्ठान, वस्तुतः, ''हिन्दी विश्व–भारती'' ज्ञान–विज्ञान–कोश का ''परिचय–अनुष्ठान'

बनकर कम से कम "विज्ञान" पत्रिका के पाठकों को सार्थक रूप से यह अवगत करा ही देगा कि हिन्दी में कभी ऐसा विज्ञान–कोश भी निकला था।

मेरा विनम्र सुझाव यह है कि (यदि अब तक ऐसा प्रयास आपके द्वारा न हुआ हो तो) हिन्दी में विज्ञान–विधा को जगमगाने वाले अन्य व्यक्तियों पर भी "विज्ञान" के विशेषांक निकालें। बाद में, उन सबको एकत्र करके एक बृहत् ग्रंथ ही, "हिन्दी में विज्ञान–विधा के पुरोधा" अथवा ऐसा ही कोई नाम–शीर्षक देकर, नियोजित किया जा सकता है। यह एक अद्भुत "चरित–कोश" हिन्दी में वैज्ञानिक विषय पर लिखने वालों का बन सकता है। प्रो० रामदास गौड़, डॉ० गोरख प्रसाद, डॉ० सत्यप्रकाश, ऐसे ही विशिष्ट व्यक्तित्व रहे, जिन पर "विज्ञान" के विशेषांक निकलना चाहिए, यदि अब तक न निकाले जा चुके हों।

● ●

ज्ञान–विज्ञान का क्षितिज तो समापन के छोर पर कभी भी नहीं पहुंच पाता है। इस नाते विज्ञान विषय की साहित्य–सर्जना का कभी भी अंत नहीं हो सकता। इसी शाश्वत तथ्य को अनुभूति करके मैंने "प्रकाशक की जीवन–यात्रा" में अपने हृदय की उमंग और टीस को निम्न शब्दों में अक्षरबद्ध किया था। मेरा वह स्वगत–वक्तव्य आज भी उतना ही सार्थक है, जितना उक्त ग्रन्थ की प्रस्तुति के समय था :–

"अंततः "हिन्दी विश्व–भारती" का ज्ञानानुष्ठान संपन्न हुआ, परन्तु क्या वह अनुष्ठान सचमुच पूरा हो गया है?. .... द्विवेदी जी वर्षों के अथक परिश्रम के उपरान्त "हिन्दी विश्व–भारती" की फाइल बंद करके चैन की सांस लेते तथा आन्तरिक आहलाद का ही अनुभव करते। परंतु अचंभे की बात थी कि उन्होंने अपने अन्तराल की गहराइयों में इस प्रकार की तुष्टि की लहर उमगते नहीं पाई। कारण, मन ही मन यह संप्रश्न उन्हें विचलित करने लगा था कि कहने को "हिन्दी विश्व–भारती" दस खण्डों में पूरी हो जाने पर भी क्या वह महत् अनुष्ठान समचमुच पूरा हो गया है, जिसका कि संकल्प उन्होंने पचीस वर्ष पूर्व किया था? क्या जो कुछ उन्हें कहना था, वह सब–कुछ बतलाया जा चुका है? क्या अब ज्ञान–विज्ञान की भूमिका पर कुछ भी कहने को शेष नहीं रहा है?

"भला, ज्ञान के क्षितिज को कौन छू सका है? वह तो ज्यों–ज्यों छूने का प्रयास किया जाता है, दूर ही दूर खिसकता जाता है। ज्यों ज्यों नए–नए परदे खोले जाते हैं, और अधिक परदे लहरा–लहराकर चुनौती देने लगते हैं। तो फिर, यह कैसे दावा किया जा सकता है कि ज्ञान के विकीरण के हेतु किसी भी यज्ञानुष्ठान को एक बार आरंभ करके उसकी पूर्णाहुति भी दी जा सकती है?"

तो अब यही आशा मन में बसाकर, मैं जीवन के अंतिम कगार पर, 90 वें वर्ष के आयु पटल पर खड़ा हो, यह "उपसंहार" अपने सत्तर वर्षीय सारस्वत–यज्ञ के अवभृथ–मंत्र स्तवन के बतौर उच्चारित कर रहा हूँ कि जिन्होंने हिन्दी में विज्ञान की मशाल हमारे बूढ़े हाथों से लेकर, आगे कदम बढ़ाए हैं इस कभी भी न थमने वाली दौड़ में– वे जब तक अगली पीढ़ी को यह मशाल न थमाएं, इसे कदापि बुझने न दें ! इति शम् !!

आदरणीय डॉ० शिवगोपाल मिश्र, बन्धुवर डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय एवं (मेरी प्रशस्ति में काव्यगठित "मंगलाचरण" की पुष्टि भेंट देने वाले आशुकवि) डॉ० प्रभाकर द्विवेदी को मेरा हार्दिक धन्यवाद, स्नेहस्मरण तथा सप्रेम नमस्कार अवगत कराके कृपया मुझे अनुग्रहीत करें।

विनयावत

कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

काशी में महर्षि दयानन्द

लेखक : डॉ० भवानी लाल भारतीय
सम्पादक : डॉ ज्वलन्त कुमार शास्त्री, डॉ० माधुरी रानी व्याकरणाचार्य
प्रकाशन मंत्री : आर्य समाज, लल्लापुरा, वाराणसी
मुद्रक : लक्ष्मी प्रेस, कर्णघण्टा, वाराणसी
प्रथम संस्करण : दिसम्बर 1998
पृष्ठ संख्या : XXI + 87
मूल्य : 15.00

समीक्ष्य पुस्तक हाथ में आते ही बरबस स्वर्गीय परम श्रद्धेय स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी की याद ताजा हो गई। आज स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी जीवित होते तो यह पुस्तक देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते और कहते – "ऐसी ही एक पुस्तक का प्रकाशन इलाहाबाद से भी होना चाहिए।" श्रद्धेय महर्षि दयानन्द सरस्वती जी अपने देश भारत में घूम–घूमकर जब आर्य धर्म की दुन्दुभी बजा रहे थे, उस दौरान इलाहाबाद भी आये थे। बाद में स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी ने इलाहाबाद में उनकी स्मृति में चार स्थानों पर पत्थर लगवाये थे। म्योर कॉलेज के महर्षि दयानन्द मार्ग पर, नागवासुकी पर, अलोपीबाग में स्वर्गीय डॉ० उदय नारायण जी तिवारी के निवास की दीवाल पर और शाहगंज मुहल्ले में। लगता है मैं भावावेश में अपने उद्देश्य (पुस्तक की समीक्षा लिखने) से भटक रहा हूँ। अतएव इस प्रकरण को यहीं रोक कर पुस्तक के विषय पर आता हूँ।

"विज्ञान" के सम्पादक डॉ० दिनेश मणि ने जब मुझे यह पुस्तक समीक्षार्थ दी तो रात में भोजनोपरान्त मैं एक ही बैठकी में पूरी पुस्तक पढ़ गया। महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर पहले भी काफी साहित्य देखने का अवसर मिला था, पर इस पुस्तक में प्रकाशित सामग्री को आर्य समाज के मूर्धन्य विद्वान और लब्धप्रतिष्ठ लेखक डॉ० भवानी लाल भारतीय ने जिस श्रम और लगन के साथ सरल भाषा में प्रस्तुत किया है, वह निःसन्देह स्तुत्य है, अनुकरणीय है।

महर्षि दयानन्द प्रथम बार कानपुर और प्रयाग होते हुए 1856 ई० में आश्विन के प्रारंभ में काशी पहुंचे और 12 दिनों तक काशीवास किया। दूसरी बार 21 सितम्बर 1886 को काशी आये। काशी नरेश ने उन्हें नाना प्रकार के प्रलोभन दिए ताकि महर्षि जी मूर्ति पूजा का विरोध त्याग दें किन्तु महर्षि दयानन्द सरस्वती को किसी भी प्रकार का प्रलोभन विचलित न कर सका। तीसरी बार 1870 में काशी पहुंचे, चौथी बार 1872 में 1 मई 1873 में पांचवी बार, छठीं बार 1876 में और अंतिम सातवीं बार 1879 में उनका काशी आगमन हुआ था। अपने काशी प्रवास के दौरान उन्होंने अनेक विचारोत्तेजक व्याख्यान दिए। वैसे काशी नरेश ने अपने राज प्रासाद में उनका स्वागत भी किया किन्तु उनहें काशी नरेश के गुर्गों ने ही अपमानित भी किया। इस किताब में बड़े ही रोचक ढंग से काशी प्रवासों का वर्णन किया गया है। अनेक घटनाओं का उल्लेख बड़े ही मार्मिक ढंग से हुआ है।

इसके अतिरिक्त पुस्तक में काशी के अनेक आर्य विद्वानों और प्रचारकों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। आर्य समाज लल्पापुरा के अतिरिक्त कई आर्य समाज मंदिरों का भी परिचय दिया गया है। प्रारंभ में स्वर्गीय डॉ० आनन्द प्रकाश जी का परिचय भी है। पुस्तक की भाषा सरल है। मुद्रण साफ सुथरा और लगभग त्रुटिहीन है। रंगीन चित्र, सादे चित्र, कवर के प्रथम और चतुर्थ पृष्ठ आकर्षक हैं। सम्पादक द्वय –डॉ० ज्वलंत कुमार शास्त्री और डॉ० माधुरी रानी ने सम्पादन का कार्य कुशलतापूर्वक किया है। इस उत्कृष्ट पुस्तक के प्रकाशन से जुड़े लेखक, प्रकाशक, मुद्रक, चित्रकार आदि सभी व्यक्तियों को साधुवाद।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
कोषाध्यक्ष,
विज्ञान परिषद् प्रयाग
रीडर एवं अध्यक्ष, वनस्पति विभाग
इलाहाबाद – 211002 (उ० प्र०)

पुरस्कार घोषित

व्हिटेकर विज्ञान पुरस्कार – 1998

1- श्रीमती दीक्षा विष्ट
2- डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय

डॉ० गोरख प्रसाद विज्ञान पुरस्कार - 1998

1. डॉ० प्रभाकर द्विवेदी
2. श्री अजय सिंह
3. डॉ० गणेश कुमार पाठक
4. डॉ० विभा मिश्र
5. श्रीमती अर्पिता मोहन
6. सुश्री रूफ़िया

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

संपादक विज्ञान
विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

यह प्रति 10 रु0

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल ... नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रका...

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका

श्री श्यामनारायण कपूर सम्मान अंक

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 85 अंक 2-3

मई-जून 1999

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत,
1000 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

■

प्रकाशक
डॉ० शिव गोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

■

सम्पादक
डॉ० दिनेश मणि, डी० एस–सी०

■

मुद्रक
अरुण राय
कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

■

सम्पर्क
विज्ञान परिषद प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद - 211002

विषय सूची

सम्पादकीय

अपने जीवन के शतक में प्रवेश कर चुके स्वनामधन्य विज्ञान लेखक श्री श्यामनारायण कपूर जी पुरानी पीढ़ी के ऐसे सिद्धहस्त साहित्यकार हैं, जिन्होंने स्वाध्याय और सृजन में संतुलन स्थापित कर जितना पढ़ा है, लगभग उतना ही लिखा है। कपूर जी को 'विज्ञान भूषण', 'बाल विज्ञान साहित्य पुरस्कार' 'विज्ञान भास्कर' समेत कई पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं किन्तु पुरस्कार तो आनुषंगिक हैं, सार्वजनिक रूप से कृति की श्रेष्ठता ही प्रमुख पुरस्कार है। आपकी कृतियाँ इसी श्रेणी में आती हैं।

कपूर जी की कृतियों के प्रणयन में स्वाध्याय, अध्यवसाय और अनुसंधानपरक दृष्टिकोण का समन्वय तो है ही, साथ ही ज्ञान-पिपासा की तृप्ति का आस्वाद भी है। जीवन में सिद्धियाँ और सफलताएँ तो अनेक हैं और उन्हें प्राप्त करने के उपाय भी अनन्त हैं, किन्तु जो सिद्धि सात्विक श्रम और सत्यनिष्ठा से उपलब्ध होती है, वही स्थायी बनती है। कपूर जी की साहित्य-साधना निश्चित रूप से इसी प्रकार की है।

कपूर जी आज भी चिर युवा की तरह पूरे उत्साह के साथ अपने सृजन-कर्म को विस्तार देने में जुटे हुए हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से विज्ञान साहित्य का प्रणयन कर कपूर जी ने जहाँ एक ओर हिन्दी विज्ञान साहित्य की समृद्धि की है, वहीं दूसरी ओर विज्ञान के लोकप्रियकरण में सराहनीय भूमिका निभाई है। आपके लेखन से लोगों में जहाँ एक ओर विज्ञान के विचार प्रवेश करते हैं वहीं दूसरी ओर भाषा के फलक को नया विस्तार भी मिलता है।

विज्ञान के इस 'श्री श्यामनारायण कपूर सम्मान' विषयक विशेषांक की सामग्री जुटाने में विज्ञान परिषद के प्रधानमन्त्री डा० शिवगोपाल मिश्र और श्री कपूर के सुपुत्र श्री मनोज कपूर ने जो सहयोग दिया है उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ और आभारी हूँ उन तमाम लेखकों का जिन्होंने इस विशेषांक के लिए सामग्री प्रस्तुत की।

वैज्ञानिक साहित्य के सर्जक के रूप में कपूर जी के योगदान से इस दिशा में लेखन की सीमाओं के नए द्वार खुलेंगे और सम्भावनाओं का नया क्षितिज दिखेगा, ऐसा विश्वास है।

''मिट्टी हैं तो पलभर में बिखर जायेंगे हम लोग। खुशबू हैं तो हर दौर को महकायेंगे हम लोग।
हम रूहे-सफर हैं हमें नामों से न पहचानें। कल और किसी नाम से आ जायेंगे हम लोग।''

दिनेश मणि
(डॉ० दिनेश मणि)

श्री श्याम नारायण कपूर जी के प्रति हार्दिक शुभकामनाएँ

1. जिनकी साधना का यह सुखद परिणाम है
विद्वत जनों का शुभ मिलन अभिराम है
जो भी सुधी जन हैं सबको नमन है
'बन्धु' श्यामनारायण को मेरा प्रणाम है।

प्यारी बड़ी लगती है वंशी धुन दूर की
मनोहारी होती है नर्तन नाटिका मयूर की
श्याम् नारायण का रास यहाँ हो रहा
बिखरी हुई है गन्ध चौदह कपूर की।

यहाँ पर न कोई छोटा न बड़ा है
किन्तु बात सच है अनुशासन बड़ा कड़ा है
जीवन की पाठशाला के कपूर जी अभी विद्यार्थी हैं
दस का पहाड़ा अभी नौ तक पढ़ा है।

धवल चाँदनी कभी मिट्टी नहीं होगी
आपकी किसी से कभी खुट्टी नहीं होगी
दस का पहाड़ा जब तक पूरा नहीं कर लोगे
'बन्धु' पाठशाला से छुट्टी नहीं होगी।

डॉ० गणेश शंकर शुक्ल 'बन्धु'
आशुकवि,
सी-3 गोविन्द नगर, कानपुर

2. साहित्यिक संसार की सेवा की भरपूर
हमें राम से अधिक प्रिय लगते श्याम कपूर।
नस-नस में ताकत रहे, आँखों में हो नूर।
अमर रहे युग-युग सदा साथी श्याम कपूर।।

सुदर्शन चक्र
(स्वतंत्रता संग्राम सेनानी)
बी-131, विश्वबैंक कालोनी बर्रा, कानपुर

* * *

3. ये विज्ञानी, बहुत सुधी हैं,
है साहित्य निकेतन जिनका
उज्ज्वल तन है, उज्ज्वल मन है
उज्ज्वल जीवन इनका।
जनपद है उन्नाव, गाँव इनका मौरांवा,
शिक्षा-दीक्षा कानपुर की धरती पर ही पाया
हैं विनम्र, मृदु भाषी बाबू श्याम नरायन
नब्बे के हो गये, शतक में पांव बढ़ाया।
है मनोज सा पुत्र पुत्रियां सावित्री सी,
जब तक जीवित रहें, पताका यश की फहराएं
अपने कुल के भूषण हैं, ये सत्यनिष्ठ हैं नेही
ईश्वर से प्रार्थना यही है शतक पार कर जाएं।

कुमुदेश बाजपेयी
125 एच-1, किदवई नगर,
कानपुर–208 011

'विज्ञान' के प्रति आभार

'विज्ञान' पत्रिका का तो मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। 1933-34 की अर्थात् अब से 65 वर्ष पूर्व की बात है। उन दिनों मैं एच० बी० टी० आई० का छात्र था। नौसिखिया लेखक ही समझिये, कुछ निबन्ध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगे थे। उन दिनों स्व० श्री रामदास जी गौड़ 'विज्ञान' के सम्पादक थे। उनकी निगाह भी उन प्रकाशित निबन्धों पर पड़ी। मेरा पता उन्हें मालूम न था। पता मालूम करके उन्होंने 'विज्ञान' के लिए लेख लिखने का आग्रह किया। मैं 'विज्ञान' का पाठक अवश्य था परन्तु उसे स्तरीय पत्र समझ कर कभी प्रकाशनार्थ लेख भेजने का साहस न कर सका था। उनके प्रोत्साहन और निर्देशन से मैंने कुछ निबन्ध 'विज्ञान' के लिए भेजे। इतना ही नहीं उन्होंने मार्गदर्शन करके मुझे कुछ पत्रिकाओं के नाम भी बतलाये जो प्रकाशित लेखों के लिए समुचित पारिश्रमिक भी देती थीं। 'विज्ञान' तो साहित्य संवर्धन और सेवा भाव से ही प्रकाशित होता था। 'विज्ञान' में लेख प्रकाशित होने से मैं श्रद्धेय डॉ० सत्य प्रकाश जी और डॉ० गोरख प्रसाद जी के भी सम्पर्क में आया और उनके प्रोत्साहन से मेरा विज्ञान विषयक लेख लिखने का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस कार्य में मुझे स्व० प्रेमचंद जी द्वारा प्राप्त मार्गदर्शन विशेष रूप से स्मरण है। उन दिनों वे लखनऊ से प्रकाशित सुप्रसिद्ध पत्रिका 'माधुरी' के सम्पादक थे। मैंने लोककथा पर आधारित एक कहानी 'समुद्र कैसे खारी हुआ' उन्हें प्रकाशनार्थ भेजी थी। कहानी छपी। नया-नया बी०एस-सी० पास हुआ था। बी० एस-सी० की शिक्षा की व्यवस्था कुछ इनी-गिनी संस्थाओं ही में थी। उनमें सीमित संख्या में छात्र होते थे। मैंने अपने नाम के आगे बी० एस-सी० भी लिख दिया था। यह देखकर उन्होंने पत्र लिख कर आग्रह किया कि आप तो विज्ञान के स्नातक हैं। विज्ञान के विषय में लिखिये। इस प्रकार मेरे 'विज्ञान-लेखन' का श्रीगणेश हुआ। 'माधुरी' के बाद जब वे स्वयं 'हंस' और 'साप्ताहिक जागरण' प्रकाशित करने लगे तो उनमें भी मेरे लेख प्रकाशित किये। इस प्रकार प्रतिष्ठित मनीषियों का आशीर्वाद और प्रोत्साहन पाकर मैं विज्ञान लेखन में अग्रसर हुआ और यह क्रम शरीर शैथिल्य के बावजूद अभी तक जारी है।

स्व० गौड़ जी हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी साहित्य के प्रकाशन और प्रोत्साहन के लिए विशेष रूप से सक्रिय थे। इसके संवर्धन हेतु वे अपने सम्पादकीय में विज्ञान सम्बन्धी प्रकाशित होने वाली पुस्तकों के साथ समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले विज्ञान सम्बन्धी लेखों की सूची भी प्रकाशित करते थे। मेरे भी कई लेखों को इस सूची में सम्मिलित होने का सुअवसर प्राप्त होता रहा है। यदि किसी अन्य पत्रिका में कोई लेख उन्हें विशेष महत्वपूर्ण जान पड़ा तो उसे 'विज्ञान' में पुनर्मुद्रित भी करते रहते थे। मेरे भी दो-एक लेखों को यह सम्मान प्राप्त हुआ था। इस प्रकार वे लेखकों को प्रोत्साहित भी करते रहते थे। अतः मैं विज्ञान के साथ ही श्रद्धेय गौड़ जी का विशेष रूप से आभारी हूँ। गौड़ जी की स्मृति को शत-शत नमन।

परम् आदरणीय एवं प्रतिष्ठित आचार्यों द्वारा संचालित 'विज्ञान परिषद्' का 'विज्ञान' प्रमुख पत्र है। लगभग एक शताब्दी से हिन्दी में विज्ञान साहित्य के संवर्धन, प्रचार एवं प्रसार में इसका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है और अब भी है। 'विज्ञान-परिषद्' ने मुझ अकिंचन के अति सामान्य से विज्ञान लेखक के लिए विशेषांक प्रकाशित कर मुझे जो गौरव और सम्मान प्रदान करने का आयोजन किया है उसे 'परिषद' और 'विज्ञान' सम्पादकों की उदारता और सदाशयता ही कहा जायेगा। उनके प्रति अपना आभार प्रकट करने के लिए मेरे पास समुचित शब्दों का अभाव है। वास्तव में इस कार्य में विज्ञान लेखन को प्रोत्साहित करना ही उनका मुख्य उद्देश्य हो सकता है।

श्यामनारायण कपूर

व्यक्तित्व खण्ड

समर्पण : साधना

राकेश बाजपेयी

श्री कपूर हिन्दी विश्वकोश 'विश्व भारती' के सहयोगी लेखक भी रह चुके हैं। बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा कि 'दूरदर्शन' शब्द श्री कपूर की ही देन है। मुंशी प्रेमचंद द्वारा सम्पादित पत्रिका 'हंस' के अप्रैल 1933 के अंक में प्रकाशित 'भारत में ब्राडकास्टिंग' विषयक लेख में उन्होंने पहली बार टेलीविजन के लिए 'दूरदर्शन' शब्द का प्रयोग किया था। इसके अलावा श्री कपूर ने हिन्दी विज्ञान साहित्य को तकनीकी व वैज्ञानिक शब्दावली के सरल व सहज अनुवाद से भी समृद्ध किया है।

मुंशी प्रेमचंद की प्रेरणा से 1930 से हिन्दी में विज्ञान लेखन के प्रति समर्पित श्री श्याम नारायण कपूर आज इस बात से बेहद व्यथित हैं कि हिन्दी में विज्ञान लेखन का अपेक्षित विकास नहीं हो पा रहा है। इसकी सबसे बड़ी वजह वे उच्च विज्ञान, इंजीनियरिंग व मेडिकल शिक्षा में अंग्रेजी के दिनों-दिन बढ़ते दबदबे व अंग्रेजी मानसिकता को मानते हैं।

विज्ञान लेखन के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए पिछले दिनों उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'विज्ञान भूषण' की उपाधि से सम्मानित श्री श्याम नारायण कपूर आज किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। हिन्दी के विज्ञान विषयक अग्रणी लेखक, कवि, साहित्यकार, संगीतप्रेमी, प्रखर पत्रकार व क्रान्तिकारियों के 'खामोश मददगार' ये हैं श्री कपूर के बहुआयामी व्यक्तित्व की चन्द बानगी:

जिन्दगी के 91वें पड़ाव में भी इस बुजुर्गवार की अदम्य जिजीविषा व सक्रियता देखते ही बनती है। सन् 1930 से अनवरत रूप से विज्ञान साहित्य सृजन में रत श्री कपूर की विज्ञान विषयक अबतक 17 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अंश मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश व गुजरात आदि राज्यों के प्रमुख पाठ्यक्रमों की पुस्तकों में शामिल किये जाते रहे हैं। श्री कपूर की नयी पुस्तकों में 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' तथा प्रकाशनाधीन पुस्तकों में 'पुराणों में विज्ञान' और 'प्राचीन भारत की वैज्ञानिक विभूतियाँ' का उल्लेख किया जा सकता है।

श्री कपूर के विज्ञान विषयक सैकड़ों लेख 'माधुरी', 'हंस', विशाल भारत, वीणा, सरस्वती, दैनिक भारत, प्रेमचंद द्वारा सम्पादित जागरण, बाबू गुलाब राय द्वारा सम्पादित साहित्य सन्देश, विज्ञान, विश्वमित्र, विज्ञान लोक, कर्मयोगी, गंगा, अवन्तिका, मधुकर, हिन्दुस्तानी, नवनीत, कादम्बिनी, राष्ट्र धर्म व अतएव आदि-पत्र पत्रिकाओं में छप कर चर्चित हो चुके हैं।

'विज्ञान भूषण' की उपाधि से सम्मानित होने के बाद व्यक्तिगत जीवन, विज्ञान लेखन समेत विभिन्न अहम मुद्दों पर श्री कपूर से लम्बी विचारोत्तेजक बातचीत का मौका मिला। मशहूर विज्ञान लेखक श्री श्याम नारायण कपूर से हुई लम्बी बातचीत का सार संक्षेप—

पारिवारिक संस्कारों का असर

मुरादाबाद जिले के सम्भल कस्बे के एक प्रतिष्ठित खत्री परिवार में 8 सितम्बर 1908 को जन्मे श्री श्याम नारायण कपूर को साहित्यिक संस्कार अपने परिवार से विरासत में थे। उनके पितामह बाबू रामजीमल कपूर 'राम सम्भली' ने

रामायण व महाभारत पर आधारित 'रामायण मुसद्दस' और 'महाभारत मुसद्दस' उर्दू कविता में लिखी थी। वे उर्दू और फारसी के विद्वान थे। 'महाभारत मुसद्दस' में ही उन्होंने 'श्रीमद्भगवद्गीता' का भी उर्दू में अनुवाद किया था। गीता का अनुवाद स्वयं में एक स्वतंत्र एवं महत्वपूर्ण अंश है। 'रामायण मुसद्दस' 1931 में छपी थी। उर्दू में 'महाभारत मुसद्दस' के प्रकाशन से ही 1938 में 'साहित्य निकेतन' का श्रीगणेश हुआ।

उन दिनों की याद करते हुए श्री कपूर कहते हैं "तब मैं काफी छोटा था। एक पण्डित जी बाबा (बाबू रामजीमल) के पास उन दिनों आते थे। वे उन्हें रामायण व गीता पढ़ कर सुनाते व इस पर चर्चा करते थे। मैं भी इस दौरान उनके पास बैठ जाया करता था। मेरे चाचा ने मौरावाँ (उन्नाव) में घर के पास 'हिन्दी साहित्य पुस्तकालय' खोला था। मेरे ख्याल से देहाती क्षेत्रों में इससे बड़ा पुस्तकालय इस समय उ० प्र० में कोई नहीं है। अब तो इस पुस्तकालय की अपनी बहुत बड़ी बिल्डिंग है। बचपन में हम भाइयों को अक्सर पुस्तकालय में पढ़ने बैठा दिया जाता था। पढ़ने लिखने के संस्कार व रुचि मुझमें घर के इसी माहौल के चलते पैदा हुई। बी० एस-सी० करने के बाद जब मैंने लेखन शुरू किया तो पहला निबन्ध मैंने 'पुस्तकालय की महत्ता' पर ही लिखा था।"

श्री कपूर के पूर्वज बाद में सम्भल से उन्नाव के मौरावाँ (उन्नाव) कस्बे में बस गए। बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के श्री कपूर ने कानपुर के डी० ए० वी० कालेज से बी० एससी०, क्राइस्ट चर्च कालेज से गणित में एम० ए० 'पूर्वार्द्ध' करने के बाद 1935 में एच० बी० टी० आई० से केमिकल इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर डिप्लोमा लिया। छात्र जीवन में ही उनके विज्ञान विषयक एक दर्जन से अधिक लेख तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में छपकर चर्चित हो चुके थे।

कानपुर पहुँचना ज्यादा आसान था

पढ़ाई के लिए सुविधा की दृष्टि से लखनऊ के बजाय कानपुर को महत्त्व देने के सम्बन्ध में श्री कपूर मुस्करा कर कहते हैं "इसकी वजह यह थी उन दिनों मौरावाँ से लखनऊ के लिए कोई सीधी बस सेवा उपलब्ध नहीं थी। बसें तो काफी बाद में चलीं। पहले मौरावाँ से उन्नाव के बीच एक प्राइवेट लारी चलती थी। लारी से मैं उन्नाव पहुँच कर वहाँ से कानपुर जाता था जो वहाँ से करीब था। लखनऊ जाने में पूरा दिन लग जाता था। दो घन्टे में लारी से उन्नाव पहुँच कर कानपुर जाने के लिए मैं ट्रेन पकड़ता था। उन्नाव से कानपुर का ट्रेन से किराया तीन आने, तेरह या ग्यारह पैसे व लखनऊ का दस आना था।

इसके अलावा हमारे परिचित व सम्बन्धी कानपुर में ही पढ़े थे। मेरे दो चाचा श्री जय नारायण कपूर और श्री हर नारायण कपूर कानपुर में ही पढ़ चुके थे। 1924 में मेरे चाचा श्री जय नारायण कपूर ने जिन्होंने पुस्तकालय स्थापित किया था, डी० ए० वी० कालेज में पढ़ाई की थी। उनके छोटे भाई ने डी० ए० वी० कालेज से कामर्शियल डिप्लोमा किया था। उन दिनों डी० ए० वी० कालेज में कामर्स नहीं था। एस० डी० कालेज में कामर्स था। चूंकि मैं सॉइंस पढ़ना चाहता था, इसीलिए मैंने कानपुर आकर डी० ए० वी० कालेज में एडमिशन लिया। मौरावाँ से पास होने के कारण ही मैंने सुविधा की दृष्टि से लखनऊ के बजाय कानपुर में पढ़ना पसन्द किया। आठवें दर्जे तक मैंने संस्कृत पढ़ी। नवें दर्जे में पहुँचने पर मैंने साइंस ली। मौरावाँ से हाई स्कूल के बाद मैंने कानपुर में डी० ए० वी० कालेज से इण्टर किया।"

कभी नहीं भूलेंगे वे शिक्षक सहपाठी

छात्र जीवन की चर्चा छिड़ने पर श्री श्याम नारायण कपूर उन सहपाठियों व शिक्षकों को भावुकता से याद करते हैं, जिन्होंने उन पर असर डाला। वे कहते हैं "सहपाठियों में मुझे कुँवर बहादुर निगम ने सर्वाधिक प्रभावित किया। वे शहर में रहते थे, जबकि मैं हास्टल में रहता था। वे हमेशा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते थे। उनसे मेरा कम्पटीशन रहता था। दुर्भाग्यवश उनकी गंगा जी में नहाते समय चोट लग जाने से मृत्यु हो गई थी। डी० ए० वी० कालेज के दो शिक्षकों ने मुझे खास तौर पर प्रभावित किया। ये थे शंकर राव जिन्दल व तोता राम शर्मा। श्री जिन्दल बाद में डिप्टी डायरेक्टर ऑफ एजुकेशन हुए। श्री शर्मा फिजिक्स पढ़ाते थे, साथ ही वे उपनिषद् की भी बातें किया करते थे। उनका मुझ पर काफी असर पड़ा। इंटर फर्स्ट इयर में मुझे हीरा लाल खन्ना जी ने गणित पढ़ाया था। बाद में वे बी० एन० एस० डी० कालेज चले गए। प्रो० एकनाथ बनर्जी ने भी इस दौरान मुझे गणित

पढ़ायी थी। एक बार क्लास में वे आइलर थ्योरम् पढ़ा रहे थे। इसमें मैंने उनसे भारतीय गणितज्ञों के विषय में पूछा। इस पर उन्होंने कालेज लाइब्रेरी से विलियम कैजेरी की किताब 'हिस्ट्री आफ मैथमेटिक्स' पढ़ने को कहा। इस किताब को पढ़कर मेरी गणित के प्रति रुचि उत्पन्न हुई।

''एकनाथ बनर्जी की क्लास में लिए गए नोट्स के आधार पर मैंने बी० एस-सी० पास करने के बाद पहला निबन्ध लिखा 'प्राचीन भारत में गणित'। इस निबन्ध को मैंने 'सरस्वती' में अपने परिचित श्री देवीदत्त शुक्ल के पास भेज दिया। लेकिन उन्होंने उस निबन्ध को इस टिप्पणी के साथ मेरे पास वापस भेज दिया कि 'सरस्वती' के लिए यह बहुत गम्भीर है। इस पर मैंने उनको पत्र लिख कर पूछा कि निबन्ध तो गम्भीर है, लेकिन इसका मैं करूँ क्या ? उन्होंने निबन्ध को 'त्याग भूमि' पत्रिका के सम्पादक हरि भाऊ उपाध्याय के पास भेजने के लिए कहा। श्री उपाध्याय निबन्ध छापने के लिए तैयार भी हो गए। लेकिन इस बीच सरकार द्वारा पत्रिका की जमानत मांग ली गयी। श्री उपाध्याय ने जमानत देने के बजाय पत्रिका बन्द करना ज्यादा बेहतर समझा। इसके चलते एक बार फिर वह निबन्ध मेरे पास आ गया। इसके बाद मैंने 'वीणा' के संपादक कालिका प्रसाद दीक्षित से निबन्ध के बारे में चर्चा की। उन दिनों वे कानपुर के जनरलगंज मोहल्ले में रहते थे। वे 'वीणा' में निबन्ध छापने को राजी हो गए। इस तरह काफी मशक्कत के बाद 1932 या 1933 में 'वीणा' में 'प्राचीन भारत के गणितज्ञ' निबन्ध छपा।''

''प्रताप'' का माहौल रोमांचक था

उम्र के 19वें पड़ाव पर थोड़ा ऊँचा सुनने के बावजूद श्री कपूर की याददाश्त अभी भी गजब की है। पत्रकार शिरोमणि गणेश शंकर विद्यार्थी का जिक्र छिड़ते ही वे उन्हें भावुकता से याद करते हुए कहते हैं ''कानपुर के डी० ए० वी० कालेज से जब मैं बी० एस्इ-सी० कर रहा था तब मैं सुबह नौ बजे से ग्यारह बजे तक काम सीखने के लिए 'प्रताप' प्रेस जाया करता था। मेरी क्लास साढ़े ग्यारह बजे से लगती थी। डी० ए० वी० कालेज के हास्टल में मैं उन दिनों रहता था। मेरे बगल के कमरे में उन दिनों प्रकाश नारायण शिरोमणि रहते थे। वे उन दिनों लॉ करने के साथ 'प्रताप' के सम्पादकीय विभाग में काम करते थे। मैं उन्हीं के साथ पत्रकारिता सीखने की लालसा से 'प्रताप' जाया करता था।

''उन दिनों 'प्रताप' का माहौल बेहद रोमांचक था। अखबार में मिशन की भावना से काम होता था। बड़ी-बड़ी हस्तियाँ अक्सर वहाँ आया करती थीं। यहाँ काम करने के दौरान मुझे मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, डॉ० राम मनोहर लोहिया, श्री कृष्ण दत्त पालीवाल, श्री राम शर्मा (शिकार वाले), आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, देवी दत्त शुक्ल, श्री नारायण चतुर्वेदी, बनारसी दास चतुर्वेदी व विशम्भर नाथ 'कौशिक' जैसे दिग्गज साहित्यकारों के सम्पर्क में आने का मौका मिला। बाद में इनमें से कई के साथ तो मेरे आत्मीय सम्बन्ध बन गए। विद्यार्थी जी की काम करने की जबरदस्त क्षमता देख कर बड़ी हैरत होती थी। 'प्रताप' में उन दिनों 'मैनचेस्टर गार्जियन' अमेरिका का 'लिटरेरी डाइजेस्ट' गुजराती अखबार 'बीसवीं सदी' आता था। इसके अलावा और भी दूसरे देशी व विदेशी अखबार आते थे। विद्यार्थी जी इन सबको पढ़कर चुनिंदा खबरों या लेखों पर निशान लगाते थे। इनका हम लोगों को अनुवाद करना पड़ता था।

'प्रताप' में सम्पादन का काम देवदत्त शास्त्री ज्यादा करते थे। विद्यार्थी जी के निधन के बाद जब दैनिक 'प्रताप' निकालने की योजना बनी तो उस समय मैं एम० ए० कर रहा था। एक दो घण्टे क्लास अटेण्ड करने के बाद मैं पूरे समय 'प्रताप' में ही बना रहता था। यह सिलसिला साल भर चला। साप्ताहिक 'प्रताप' में ब्रिटिश शासन के खिलाफ कठोर सम्पादकीय लेख व टिप्पणी छपती थी। अखबार की प्रिन्ट लाइन में चूंकि प्रकाश नारायण शिरोमणि का नाम था, इसके कारण उन्हें छह माह की कैद की सजा हुई थी। जब मेरा एच० बी० टी० आई० में एडमीशन हुआ तो 'प्रताप' में बिताए वे यादगार दिन आज भी मुझे बेहद याद आते हैं।''

डी० ए० वी० के वे यादगार दिन

आजादी की लड़ाई के दौरान कानपुर में डी० ए० वी० कालेज के छात्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। डी० ए० वी० कालेज में अध्ययन के दौरान श्री श्याम नारायण कपूर को भी क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आने का मौका मिला। उन तूफानी दिनों की याद ताजा करते हुए श्री कपूर कहते हैं, ''कानपुर के डी० ए० वी० कालेज में राष्ट्रीय आन्दोलन का जबर्दस्त माहौल था। उन दिनों मेरे साथियों में छैल बिहारी दीक्षित (कंटक), हरदोई के जयदेव कपूर व महावीर सिंह

क्रान्तिकारी आन्दोलन में गुप्त रूप से सक्रिय थे। साइमन कमीशन के विरोध में डी० ए० वी०, एस० डी० व एग्रीकल्चर कालेज के छात्रों ने जुलूस निकाल कर जबर्दस्त प्रदर्शन किया। इसी तरह जब कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में स्वतंत्रता सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया गया तो यहाँ छात्रों ने जबर्दस्त खुशियाँ मनाई। उन्होंने प्रखर पत्रकार साहित्यकार बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को घोड़े पर बैठाकर गाजे बाजे के साथ जुलूस निकाला। जुलूस शहर में घूमता हुआ श्रद्धानन्द पार्क में विसर्जित हुआ। यह उत्साह था डी० ए० वी० के छात्रों में उन दिनों। क्राइस्ट चर्च कालेज व एच० बी० टी० आई०में यह माहौल नहीं था।''

क्रान्तिकारियों के मददगार

आजादी के आन्दोलन के दौरान श्री श्याम नारायण कपूर ने क्रान्तिकारियों की खामोशी से मदद की। 1942 के आन्दोलन के दौरान बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय के क्रान्तिकारी आन्दोलन से जुड़े कुछ छात्र एक बुलेटिन निकालते थे। श्री कपूर के छोटे भाई श्री ब्रह्म नारायण कपूर भी वहीं पढ़ते थे। उनके माध्यम से क्रान्तिकारी छात्रों का परिचय श्री कपूर से हो गया। उन्होंने छात्रों के अनुरोध पर बुलेटिन के वितरण का जिम्मा लिया। पता नहीं पुलिस को कैसे इसकी भनक लग गयी। पुलिस साइक्लोस्टाइल मशीन उठा ले गयी। इससे छात्र परेशान हो गए। इस पर श्री कपूर ने क्रान्तिकारी आन्दोलन से सहानुभूति रखने वाले एक शुगर मर्चेन्ट के जरिये दूसरी साइकलोस्टाइल मशीन की व्यवस्था करायी। इसके बाद उक्त बुलेटिन फिर छपने लगा।

1942 के क्रान्तिकारी आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले केशव देव मालवीय को बम व शस्त्रों के निर्माण में अक्सर केमिकल व अन्य उपकरणों की जरूरत पड़ती थी। उन दिनों कानपुर में एक मिल में काम कर रहे श्री कपूर ने श्री मालवीय के कहने पर कई बार मिल से केमिकल, आरी व ब्लेड क्रान्तिकारियों को दिये। ज्यादा मांग बढ़ने पर उन्होंने लाटूश रोड पर हिम्मतराय कृपा शंकर की दुकान पर बहाना बना कर केमिकल व अन्य उपकरण लेकर दिये। इसी तरह एक परिचित डाक्टर की मदद से छह फर्स्ट-एड बाक्स का इन्तजाम उन्होंने क्रान्तिकारियों के लिए किया। इसके अलावा श्री कपूर ने मौरावाँ में कांग्रेस का दफ्तर स्थापित किया था। वहाँ से वे शराब के ठेकों पर धरने का आयोजन करते थे।

प्रेमचन्द ने गहरा असर डाला

कथासम्राट मुंशी प्रेम चन्द ने श्री कपूर पर गहरा असर डाला। उनकी प्रेरणा से ही उन्होंने विज्ञान सम्बन्धी लेखन शुरू किया। प्रेमचन्द का जिक्र आते ही श्री कपूर भावुक हो जाते हैं ''बी० एस-सी० करने के बाद मेरे एक दो निबन्ध कालेज मैगजीन में छप चुके थे। लोक कथाओं पर आधारित अपना एक लेख 'समुद्र कैसे खारी हुआ' को मैंने मुंशी प्रेमचन्द की पत्रिका 'माधुरी' में छपने के लिए भेज दिया। नया-नया शौक था, इसलिए मैंने अपने नाम के साथ बी० एस-सी० लिख दिया। 'माधुरी' में इस लेख के छपने के बाद मेरे पास प्रेमचन्द जी का पत्र आया। इसमें उन्होंने विज्ञान के स्नातक होने के नाते मुझे विज्ञान सम्बन्धी विषयों पर लिखने के लिए प्रेरित किया। इसके बाद वैज्ञानिक आविष्कारों से सम्बन्धित मेरे कई लेख प्रेमचन्द की पत्रिकाओं 'हंस' व 'जागरण' में छपे। इन पत्रिकाओं के अलावा 'भारत', 'विज्ञान' व 'विश्वमित्र' समेत अन्य कई पत्र पत्रिकाओं में भी मेरे काफी लेख छपे। 'भारत' व 'विश्वमित्र' से पारिश्रमिक के रूप में कभी दस तो कभी पन्द्रह रुपये मिल जाते थे। 'विशाल भारत' के सम्पादक बनारसी दास चतुर्वेदी भी अक्सर पारिश्रमिक के रूप में रुपये भेज देते थे। उन दिनों मेरा विज्ञान विषयक लेखन जोर-शोर से चल रहा था।''

हिन्दी विज्ञान लेखन की गति धीमी

हिन्दी विज्ञान लेखन की चर्चा छिड़ने पर इसकी धीमी प्रगति से क्षुब्ध श्री कपूर दो टूक लहजे में कहते हैं ''हमारे यहाँ सबसे बड़ी दिक्कत यह रही है कि हमारा समस्त प्राचीन विशाल साहित्य संस्कृत में है। ब्रिटिश नीति शुरू से यह रही कि जो विद्यार्थी संस्कृत पढ़ते हैं, वे विज्ञान नहीं पढ़े व जो विज्ञान पढ़ते हैं, वे संस्कृत नहीं पढ़े। इसके चलते संस्कृत की घोर उपेक्षा हुई। आज हालत यह है कि संस्कृत में पुराने विज्ञान ग्रन्थों का मिलना ही मुश्किल है। यदि वे मिल जायें तो उन्हें समझने वाला कोई नहीं मिलेगा। मान लीजिए वशिष्ठ का ''लौहशास्त्र'' या पतंजलि का ''लोहशास्त्र'' मिल जाये तो उन्हें समझने वाला कोई नहीं मिलेगा। इसी तरह कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र'' में खानों का परिचय दिया गया है। लेकिन वह जिस रूप में दिया गया है, उसे समझने वाला आज कोई नहीं मिलेगा। इसलिए विज्ञान के विद्यार्थियों को संस्कृत भी पढ़नी चाहिए।

मशहूर वैज्ञानिकों की मदद मिली

पहले ऐसा कोई शब्दकोष नहीं था जिससे हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली के सम्बन्ध में सहायता मिल सके। आप्टे की डिक्शनरी से किसी तरह उस समय के लेखक अपना काम चलाते थे। विज्ञान लेखन के दौरान तत्कालीन दिग्गज वैज्ञानिकों के प्रोत्साहन मदद व मार्ग निर्देशन को श्री कपूर कृतज्ञ भाव से याद करते हैं। वे कहते हैं "उन दिनों कन्वोकेशन बड़े धूमधाम से होते थे। मेरा कन्वोकेशन 1931 में हुआ, जिसे दिग्गज वैज्ञानिक सर सी० वी० रमन ने संबोधित किया था। मेरे मन में उनके बारे में जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। कलकत्ता म्यूनिसपल गजट में सर सी० वी० रमन के बारे में छपे लेख को मैंने 'प्रताप' में जाकर पढ़ा। इससे मुझे वरिष्ठ वैज्ञानिकों के बारे में लिखने की प्रेरणा मिली। सम्बन्धित सामग्री जुटाने के लिए डी० ए० वी० के फिजिक्स के प्रोफेसर डॉ० विशम्भर दयाल की सलाह पर मैंने सर सी० वी० रमन को सीधे पत्र लिखा। इस सम्बन्ध में मुझे उनका उत्साहवर्धक सहयोग मिला। इसके बाद डॉ० शांति स्वरूप भटनागर से मेरी बात हुई। मेरे छोटे भाई राम नारायण लाहौर जाकर डॉ० भटनागर से जुड़ी सामग्री लेकर आए। उन्होंने अपने शोधपत्रों के अलावा अपने बारे में मेरठ की भटनागर सभा द्वारा उर्दू में प्रकाशित विशेषांक की एक प्रति भी दी। डॉ० बीरबल साहनी से दो बार की कोशिश के बाद मैं उनसे सम्बन्धित शोध पत्र व पुस्तकें हासिल कर पाया। इसी तरह क्राइस्ट चर्च कालेज में परिचित प्रोफेसर डॉ० देवराज के माध्यम से मैंने बैंगलूर से डॉ० होमी भाभा से सम्बन्धित सामग्री मंगवायी। चीफ जस्टिस सर शाह सुलेमान से सम्बन्धित सामग्री मैंने डॉ० दौलत सिंह कोठारी की मदद से जुटायी। कोठारी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में सर शाह सुलेमान को आईस्टीन की थ्योरी पढ़ाई थी। इस तरह कई सालों की जबर्दस्त मेहनत के बाद मैंने 'भारतीय वैज्ञानिक' पुस्तक के लिए अमूल्य सामग्री जुटाई। लेकिन यह कार्य उस जमाने के बेशुमार शोहरत, कामयाबी पाने के बाद भी गरूर से कोसों दूर रहने वाले वैज्ञानिकों की मदद से ही संभव हो पाया।"

'साहित्य निकेतन' तीर्थ बन गया

हिन्दीभाषी पाठकों के बौद्धिक स्तर को ऊँचा उठाने के उद्देश्य से श्री श्याम नारायण कपूर ने 1938 में कानपुर में 'साहित्य निकेतन' नामक पुस्तक संस्थान व प्रकाशन केन्द्र की स्थापना की। 'साहित्य निकेतन' बाद में तत्कालीन दिग्गज साहित्यकारों के अक्सर वहां आने के कारण तीर्थ सरीखा हो गया। उन दिनों को याद करते हुए श्री कपूर भाव विभोर हो जाते हैं। वे भावुक होकर कहते हैं : "साहित्य निकेतन की यह खुशकिस्मती रही कि वहाँ अक्सर महापंडित राहुल सांकृत्यायन, महाकवि निराला, नंद दुलारे बाजपेयी, दुलारे लाल भार्गव, भगवती चरण वर्मा, सोहन लाल द्विवेदी व डॉ० रामकुमार वर्मा सरीखे दिग्गज साहित्यकार आया करते थे। इनके अलावा कानपुर व आसपास के साहित्यिकों का तो यहाँ अक्सर जमावड़ा लगा रहता की।

भगवती चरण वर्मा से मेरा परिचय कलकत्ता में हुआ। बाद में वे अक्सर कानपुर आने पर साहित्य निकेतन जरूर जाते थे। उनकी एक खास आदत थी कि वे अपने साहित्य के बारे में पाठकों की राय को लेकर मुझसे पूछताछ करते थे। उन दिनों उनकी पुस्तक 'रेखा' अपनी विवादास्पद विषय वस्तु के कारण सुर्खियों में थी। मैंने उक्त पुस्तक के एक चरित्र रेखा या ज्ञानवती के कथित अश्लील चरित्र चित्रण को लेकर कुछ पाठकों की बेबाक राय उन्हें बतायी। इस पर उनका कहना था कि समाज के विद्रूप को उजागर करने के लिए ही उन्होंने जान बूझकर उस पात्र का ऐसा चरित्र-चित्रण किया।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन एक बार कानपुर आने के बाद मेरे चचेरे भाई कैलाश चन्द्र जी के यहाँ ठहरे। उन दिनों मेरी 'साबुन विज्ञान' पुस्तक प्रकाशित हुई थी। कैलाश चन्द्र जी ने बातों बातों में राहुल जी से मेरी पुस्तक की चर्चा की। राहुल जी के 'साहित्य निकेतन' आने पर मैं उनके जीवन के चंद अनछुए पहलुओं पर उनसे बात करना चाहता था। संयोगवश दुकान में उस दिन दो किताबें रखी हुई थीं। इनमें से एक पुस्तक का भोलानाथ शर्मा ने जर्मन से हिन्दी में अनुवाद किया था। दूसरी पुस्तक थी साहित्य निकेतन से प्रकाशित भरत मुनि का नाट्य शास्त्र (प्रथम तीन अध्याय)। राहुल जी ने सारा समय इन दोनों पुस्तकों के लेखक के बारे में बात करने में लगा दिया। अपने बारे में उन्होंने मुझे बात करने का मौका ही नहीं दिया। अलबत्ता उन्होंने मुझसे यह जरूर पूछा कि भोलानाथ शर्मा से मेरा परिचय कैसे हुआ।

पं० सोहन लाल द्विवेदी से भी मेरा परिचय कैलाश चन्द्र भाई साहब के माध्यम से हुआ। जब उन्हें पता चला कि मैं किताब की दुकान चलाता हूँ तो उनका अक्सर 'साहित्य

निकेतन' आगमन होने लगा। उनका सारा जोर बाल साहित्य पर रहता था। उन्होंने मुझसे दुकान में बाल साहित्य रखने व बाल साहित्य लिखने को भी कहा। उस समय डेढ़-दो रुपये में बाल साहित्य की अच्छी किताब मिल जाती थी। कुछ किताबें आठ-दस आने की भी मिलती थीं। बच्चे उन्हें खुद खरीद कर ले जाते थे।

कानपुर के सुनहरे दौर को पूरी जीवन्तता से जीने वाले श्री श्याम नारायण कपूर को जीवन के संध्याकाल में मौजूदा कानपुर की दिनों-दिन बदरंग होती तस्वीर बेहद तकलीफ देती है। वे आहत भाव से कहते हैं "मेरे देखते-देखते कानपुर व कानपुर के लोगों में जबर्दस्त बदलाव आ गया है। न केवल कानपुर शहर, बल्कि यहाँ के लोगों की फितरत ही बदल गयी है। और यह बात आज मेरे दिल को बहुत चोट पहुँचाती है।"

उप सम्पादक
अमर उजाला, कानपुर

एक बाल पाठक की प्रतिक्रिया, प्रौढ़ावस्था में

आज से लगभग 48-49 वर्ष पहले जब मैं कक्षा 8 का विद्यार्थी था, मुझे पुस्तक 'भारतीय वैज्ञानिक' अपने विद्यालय के पुस्तकालय से प्राप्त कर, इसे पढ़ने का अवसर मिला।

पुस्तक मुझे बहुत सुन्दर लगी थी और मैंने उसे कई बार पढ़ा था। यह उन अनेक पुस्तकों में से एक है जो मुझे जीवन भर के लिए स्मरणीय हो गयी हैं। अब चालीस-पैंतालिस वर्षों बाद भी, मुझे उसकी बहुत अच्छी तरह से याद है।

निश्चय ही आपने उसके लेखन में और विशेषकर उसके लिखने के लिए सामग्री जुटाने में अथक परिश्रम किया होगा। एक-एक वैज्ञानिक के जीवन की सभी महत्त्वपूर्ण घटनायें और तथ्यों को एकत्र करना कोई सरल कार्य न था और उस सबको एकत्र कर, इतने रोचक रूप में उन्हें प्रस्तुत करना आपका ही कौशल था।

आपके लखनऊ पधारने पर मुझे आपसे मिल कर बेहद प्रसन्नता होगी और बचपन से संजोकर रखी गयी एक अभिलाषा की पूर्ति होगी।

श्री श्यामनारायण कपूर को हिन्दी संस्थान ने 'विज्ञानभूषण' सम्मान, देने की घोषणा की। इसे पढ़कर श्री राम कुमार मिश्र को अच्छा लगा। उन पर क्या प्रभाव पड़ा उसे उन्होंने उपर्युक्त पत्र द्वारा अभिव्यक्त किया।

राम कुमार मिश्र
282, खजुहा, लखनऊ

एक समर्पित विद्वान्

रमानाथ त्रिपाठी

मैं जब विक्रमाजीत सनातन धर्म कॉलेज का छात्र था, नयी पुस्तकों की सूचना प्राप्त करने के लिए साहित्य-निकेतन जाया करता था। तभी श्री श्यामनारायण जी कपूर से मेरा परिचय हुआ। मैं मन ही मन उन्हें बहुत आदर देता था, क्योंकि वे मेरे परम प्रिय मित्र तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रमुख कार्यकर्ता श्री राजनारायण कपूर के बड़े भाई हैं। मैं उन्हें अपना बड़ा भाई मान बैठा हूँ।

1950 ई० में प्राध्यापक के रूप में मेरी नियुक्ति उपर्युक्त कालेज में हो गयी। एक-दो वर्ष के उपरान्त मैं विभिन्न भाषाओं के राम-साहित्य के तुलनात्मक शोध में दत्तचित्त हो गया। मुझे वांछित पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो रही थीं। मैंने श्याम नारायण जी से सम्पर्क किया। उन्होंने हमारे कॉलेज के पुस्तकालय के लिए हिन्दी, संस्कृत, असमिया, बांग्ला, उड़िया, गुजराती और अंग्रेजी के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध कराये। इस कार्य में साहित्य निकेतन को आर्थिक लाभ नहीं हुआ होगा। यदि कपूरजी ने सहायता न की होती तो मैं अपना शोध कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न न कर पाता।

1964 ई० में मेरी नियुक्ति दिल्ली विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभाग में हो गयी। कानपुर विश्वविद्यालय के एक शोध-छात्र की मौखिक परीक्षा लेने आया हुआ था। सोचा कपूर जी से भी मिलता चलूँ। शोध छात्र भी साथ आया था। कपूर जी ने उसका शोध-विषय पूछा। उसने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किसी साहित्य का अथवा साहित्य के किसी कालखण्ड का अध्ययन किया था। कपूर जी ने मनोविज्ञान और सम्बन्धित साहित्यकार के कृतित्व के बारे में कुछ प्रश्न पूछे। छात्र लड़खड़ा गया। वह किसी भी प्रश्न का उपयुक्त उत्तर न दे सका। मैं चकित था, जिस व्यक्ति को मैं केवल साहित्य-रसिक, प्रकाशक या पुस्तक-विक्रेता समझता रहा था, वह ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि वाला समालोचक भी है। वैज्ञानिक और साहित्यिक विषयों में उसकी ऐसी गहरी पैठ है।

उन्होंने मुझसे कहा क्या ऐसे ही लोगों को आप डाक्टर बना रहे हैं ? मैं हँसा, मैंने जो उत्तर दिया, उसे लिपिबद्ध नहीं करूँगा, कारण भी नहीं बताऊँगा।

मैं 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक मण्डल के प्रयास की सराहना करूँगा कि वे एक समर्पित विद्वान का विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं। मेरी मंगल कामना है कि भाई कपूर जी यशस्वी हों, निर्भय रहें और शतायु हों।

26, वैशाली, पीतमपुरा

नयी दिल्ली-110034

हिन्दी वाङ्मय के शलाका पुरुष : श्याम नारायण कपूर

नरेश चन्द्र चतुर्वेदी

बाबू श्याम नारायण कपूर हिन्दी के उन बिरले लेखकों में से हैं जिन्होंने अपने लेखन का विषय ऐसा लिया जो ज्ञानवर्धक तथा समाजोपयोगी है। जिस समय समाज को ज्ञान-दान करने के लिए उसकी बहुत आवश्यकता होते हुए भी घोर अभाव था उस समय उन्होंने ऐसे विषय में लेखन आरम्भ किया था। इसीलिए उनका महत्व अन्य हिन्दी लेखकों से मैं अलग मानता हूँ। यह भी बहुत सन्तोष की बात है कि उन्होंने बहुत आरम्भ में, लगभग 1930 से ही, वैज्ञानिक विषयों और वैज्ञानिकों पर लिख कर उनके कार्यों और उपलब्धियों का विवरण जन-सामान्य तक पहुँचाया।

श्री कपूर से परिचय

जहाँ तक उनसे मेरे परिचय का प्रश्न है मैंने उन्हें पहले मात्र एक लेखक के रूप में जाना। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख छपते रहते थे और मैं उन्हें पढ़ा करता था। यह तो बहुत बाद की बात है कि मैंने 'साहित्य निकेतन' जाना शुरू किया। उस समय बाबू श्याम नारायण कपूर के छोटे भाई श्री हृदय नारायण कपूर संस्था का संचालन करते थे। मेरा परिचय हृदय नारायण जी से ज्यादा था, उसी के बाद श्याम नारायण जी से भी परिचय हो गया। जिस लेखक को मैं पत्रिकाओं में पढ़ता हूँ — उसी की यह संस्था है और प्रकाशन संस्थान भी उन्हीं का है, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। उस दिन से मेरे उनसे सम्बंन्ध और भी प्रगाढ़ होते गये।

विनम्र व्यक्तित्व

मेरा विश्वास है कि बाबू श्याम नारायण कपूर जी जैसा योग्य, विनयी तथा अत्यन्त ज्ञानवान व्यक्ति कम ही मिलता है। इतनी अच्छी मेधा और प्रतिभा के धनी होते हुए भी अभिमान की बू उनकी बातचीत में नहीं आती। इसलिए मेरे जैसे छोटे व्यक्ति को (मैं उनसे लगभग बीस वर्ष छोटा हूँ) यह लगा कि उनके पास बैठकर मैं ज्ञानवर्धन कर सकता हूँ। बस इसी के कारण उनसे सम्बन्ध बढ़ता गया। कभी-कभी उनके निवास स्थान पर भी जाने लगा। अन्यथा 'साहित्य निकेतन' तो केन्द्र था ही, जहाँ मैं उनसे प्रायः मिला करता और देखता कि वे क्या और किस विषय पर लिख रहे हैं।

मैंने देखा है कि आयुवृद्ध होते हुए भी उनका उत्साह हम सब लोगों से भी बहुत ज्यादा है। अपने उत्साह से कहीं अधिक उत्साह हमें उनमें मिलता है। मिलने पर प्रायः कहते हैं, चतुर्वेदी जी यह देखिये, यह लिख रहा हूँ, इसके बाद यह काम कर रहा हूँ। इतनी तत्परता के साथ कोई काम करने की प्रवृत्ति रखे तो वन्दनीय है ही, अभिनन्दनीय भी है।

हिन्दी वाङ्मय में स्थान

लोग उत्सुकतावश पूछते हैं कि कपूर जी का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान है ? तो हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में अभी तक जो परम्परा रही है, वह साहित्य के रचनात्मक पक्ष की चर्चा एवं विवेचना तक ही सीमित रही है। वाङ्मय की चर्चा हिन्दी साहित्य में प्रायः नहीं हुयी है। हिन्दी साहित-इतिहास लेखन में हमारे आदर्श आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रहे हैं। फलतः साहित्य-इतिहास के अन्य लेखकों ने भी वाङ्मय की चर्चा कम की है। 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' लिखते हुए मैंने भी वाङ्मय की चर्चा यद्यपि कम की है; ऐसा नहीं कि साहित्येतर विधाओं की चर्चा की न हो। श्री श्याम नारायण कपूर की चर्चा तो मैंने लेखक के रूप में भी की है। मैं उनको केवल वैज्ञानिक विषयों के लेखन तक ही सीमित नहीं मानता। उन्होंने जो निबन्ध,

संस्मरण तथा लेख आदि लिखे हैं वे साहित्य की ही धरोहर हैं। मैंने उनके संस्मरणात्मक लेख भी पढ़े हैं, और लगा कि बड़े ही ऐतिहासिक तथ्य उनके उजागर हुये हैं। यदि सब संग्रहीत हो जायें तो हिन्दी साहित्य के संदर्भ में बहुत से नये तथ्यों का परिचय साहित्य-प्रेमियों को मिल जायेगा।

सम्प्रति, 'हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर' के संशोधित एवं परिवर्धित संस्मरण में प्रयास कर रहा हूँ कि इस कोटि के लेखकों की चर्चा कुछ अधिक विस्तार से आये।

'भारत भारती सम्मान' के योग्य

सच तो यह है कि कपूर साहब अभी भी 92 वर्ष की अवस्था में ज्ञान-विज्ञान के अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर लिखने के लिए तैयार हैं और लिख भी रहे हैं। मैं तो यह मानता हूँ कि उनके जैसे ऊर्जावान लेखक के लिए उ० प्र० हिन्दी संस्थान द्वारा प्रदत्त 'विज्ञान भूषण सम्मान' कम है। वे तो 'भारत भारती' सम्मान के योग्य हैं। यदि उनको 'भारत भारती सम्मान' मिलेगा तो उसमें भी हिन्दी संस्थान का गौरव है क्योंकि अभी तक केवल कवियों, नाटककारों, उपन्यासकारों को यह सम्मान दिया गया है। किन्तु हमने ऐसे लेखकों को यह सम्मान नहीं दिया है जिन्होंने विज्ञान के विषय को जन साधारण तक लाने में अभूतपूर्व योगदान दिया है। हमारी तो यह धारणा है कि उनको 'पद्मश्री' अथवा 'पद्म भूषण' से भी सुशोभित किया जाना चाहिए।

देश में हिन्दी द्वारा ज्ञानवर्धन के क्षेत्र में बाबू श्याम नारायण कपूर का विशेष महत्व है। यद्यपि कपूर जी का पर्याप्त साहित्य प्रकाशित हो चुका है, अब भी उनका बहुत सा साहित्य अप्रकाशित है। वस्तुतः कपूर जी का जितना भी साहित्य प्रकाशित हो चुका है वह स्वयं में महत्वपूर्ण है। विज्ञान लेखन उन्होंने तब प्रारम्भ किया जब इने-गिने लेखक इस कार्य में लगे थे। 'विज्ञान पर लिखने वाले, वैज्ञानिक विषयों पर लिखने वाले और स्वयं वैज्ञानिक भी बहुत कम अंगुलियों गिने जाने वाले लेखक थे जिन्होंने उस युग में लेखन कार्य किया। उदाहरण के लिए प्रो० रामदास गौड़, डा० गोरख प्रसाद, डॉ० सत्यप्रकाश, श्री फूलदेव सहाय वर्मा आदि। कपूर जी का लेखन इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि वे विश्व में हो रही विज्ञान की प्रगति से हिन्दी के पाठकों को कदम-ब-कदम परिचित कराते रहे।

श्री श्याम नारायण कपूर की नवीनतम पुस्तक – 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' अद्वितीय पुस्तक है।

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में 'प्रताप' से जुड़े रहने के कारण उन पर श्री गणेश शंकर विद्यार्थी जी का प्रभाव पड़ा, और यह प्रभाव उनके जीवन का अभिन्न बना हुआ है। जिस युग में बाबू श्याम नारायण जी 'प्रताप' से जुड़े थे उसमें लेखक और पत्रकारों में आज की भाँति भेद नहीं किया जाता था। किन्तु बाद में पत्रकारिता के बदले स्वरूप ने लेखकों को पत्रकारिता से और पत्रकारों को लेखन से अलग कर दिया। इसलिए बहुत से लोग उन्हें केवल लेखक के रूप में जानते हैं जबकि मैं उनको पत्रकार भी मानता हूँ।

हिन्दी प्रकाशन में 'साहित्य निकेतन' का महत्व

मेरी मान्यता है कि आज हिन्दी-प्रकाशन का स्तर उतना अच्छा नहीं रह गया। सच बात तो यह है कि उस जमाने के 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर', 'ज्ञान मण्डल', 'भारती भण्डार' अथवा इसी प्रकार के जो अन्य प्रकाशन संस्थान थे, मैं उसी कोटि में बाबू श्याम नारायण कपूर के 'साहित्य निकेतन' को भी मानता हूँ। उनके द्वारा प्रकाशनार्थ ग्रन्थों के चयन में उनकी विद्वता झलकती है। उनके द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों से ज्ञान की कोई न कोई ऐसी शाखा, तत्व या दिशा अथवा ऐसा मार्ग अवश्य प्रस्तुत हुआ जिससे हिन्दी जगत को अत्यधिक लाभ हुआ। प्रतिभावान नवोदित लेखकों को भी उन्होंने प्रोत्साहित किया। उनकी यदि किसी ने अनुशंसा की तो उसको उन्होंने माना।

कपूर जी पुराने - द्विवेदी-युगीन व्यक्ति हैं। द्विवेदी युग की मान्यताएँ बड़ी सशक्त थीं, हिन्दी जगत में उन मान्यताओं ने बहुत महत्वपूर्ण योगदान भी दिया है। परन्तु इन सबके बावजूद भी कपूर जी ने नयी पीढ़ी, नवोदित विकास, नवोदित चिन्तन और नये युग की जो प्रेरणाएँ तथा अवधारणाएँ बनीं उनको भी प्रोत्साहित करने में, आगे लाने में कोई संकोच नहीं किया। एक उदाहरण देता हूँ-- नीरज की बड़ी चर्चा थी। कवि सम्मेलनों में जो कवि उन दिनों सर्वाधिक लोकप्रिय थे वो नीरज थे। नीरज का एक 'मृत्यु गीत' था– बहुत मार्मिक और लोकप्रिय। एक दिन मैंने उनसे इस गीत को प्रकाशित करने को कहा। नीरज ने सहमति दे प्रकाशित करने का भार मुझ पर डाल दिया। इसके प्रकाशनार्थ मैंने बाबू श्याम

नारायण जी से चर्चा की, उन्होंने कहा छाप देंगे, नवोदित कवि है, अच्छा कवि है, मैंने भी सुना है। परन्तु उन्होंने यह भी कहा 'मृत्यु गीत' ही अकेला क्यों, पुस्तक का नाम 'मृत्यु गीत' उचित नहीं है। यह प्रसंग यहाँ विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि आज हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करते समय प्राचीन भारत की शास्त्रीय मान्यताओं पर ध्यान नहीं दिया जाता। कपूर जी ने कहा कि केवल 'मृत्यु गीत' के नाम से पुस्तक नहीं छपनी चाहिए, यह उचित नहीं होगा। दूसरी अन्य कविताएं इसमें जुड़वा दीजिए। मैंने इस बात की चर्चा नीरज से की, नीरज ने अपने दूसरे गीत 'जीवन गीत' को साथ में प्रकाशित करने की सहमति दी तथा इस प्रकार नीरज की 'दो गीत' शीर्षक से एक पुस्तक 'साहित्य निकेतन' ने प्रकाशित की। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि उन्होंने हमारी बात मानी। इसी संदर्भ में मैं स्व० देवी शंकर अवस्थी का भी उल्लेख करना उचित समझता हूँ। आलोचना के क्षेत्र में उनका आरम्भिक दौर था, कुछ निबन्ध प्रकाशित हो चुके थे। कपूर साहब ने उनकी पुस्तक 'आलोचना और आलोचना' प्रकाशित कर आलोचना के क्षेत्र में एक सशक्त हस्ताक्षर को प्रस्तुत किया।

इतना ही नहीं, धारणाओं और अवधारणों में साहित्य के चिन्तक और आलोचक जो सोचते हैं वह भी विचारणीय है। अब तो दशक में साहित्य नापा जाता है। दशकों का युग आ गया है, शताब्दि के स्थान पर दस वर्ष के साहित्य का मूल्यांकन होने लगा है। कुछ प्रगतिशील सोच के आलोचक लम्बी प्रतीक्षा न कर प्रत्येक वर्ष के साहित्यिक अवदानों की समीक्षा करने लगे हैं। इस विधा के आरम्भिक दौर में देवी शंकर अवस्थी और अजित कुमार को एक वर्ष की कविताओं का मूल्यांकन करने का विचार आया। इसकी चर्चा उन्होंने कपूर जी से की और प्रकाशन की सहमति प्राप्त होने पर कार्य सम्पादित हुआ तथा हिन्दी जगत के सम्मुख प्रस्तुत हुआ– 'कविताएं–1954'। साहित्य-मूल्यांकन की इस नयी विधा का आरम्भ बाबू श्याम नारायण कपूर के 'साहित्य निकेतन' द्वारा ही हुआ। यह साहित्य निकेतन की उल्लेखनीय उपलब्धि कही जायेगी।

'साहित्य निकेतन' की स्थापना के समय हिन्दी प्रकाशन की स्थिति आज जैसी नहीं थी। लोगों के ग्रन्थ बस्ते में पड़े रहते थे और छपने का मौका ही नहीं आता था। कपूर साहब ने ऐसी अनेक पुस्तकों को प्रकाशित किया। इनमें पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय का ग्रन्थ भी आता है। वे देश के श्रेष्ठ संस्कृत विद्वान थे, उनका लिखा हुआ ग्रन्थ 'संस्कृत साहित्य की रूपरेखा' कपूर जी ने प्रकाशित किया। अब तक इसके 22 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। ऐसे ही समीक्षा के क्षेत्र में उन्होंने गोविन्द त्रिगुणायत को प्रस्तुत किया जिनका ग्रन्थ 'कबीर की विचारधारा' कबीर के समग्र अध्ययन के लिए अपरिहार्य है।

कपूर जी ने ऐसे ग्रन्थों को प्रमुखता दी जिनसे समाज और शास्त्र दोनों को लाभ हुआ। राष्ट्रीय कविताओं पर मेरा एक कॉन्सेप्ट था, इस तरह की धारा हिन्दी साहित्य में एकदम लुप्त है, किसी ने इस पर ध्यान ही नहीं दिया, मैंने अपनी योजना कपूर जी के सामने रखी। उनको योजना पसन्द आई और उन्होंने मेरी पुस्तक 'राष्ट्रीय कविताएं' प्रकाशित की। मैं समझता हूँ यह ग्रन्थ पूरे देश में बहुत सराहा गया। इसके बाद उन्होंने 'अवधी की राष्ट्रीय कविताएं' भी प्रकाशित की। हिन्दी साहित्य को 'साहित्य निकेतन' का यह विशिष्ट अवदान है।

मेरी धारणा है कि जिस आदमी की दृष्टि व्यापक और संवेदनशील होती है उसका काम भी उतना ही महत्वपूर्ण हो जाता है। बाबू श्याम नारायण कपूर को मैं प्रकाशक के रूप में देखता हूँ तो मुझे लगता है कि अन्य श्रेष्ठ मानक प्रकाशन संस्थाओं के ही समकक्ष है उनका 'साहित्य निकेतन'। मैं प्रकाशक को केवल पैसा कमाने वाला व्यवसायी नहीं मानता हूँ। प्रकाशक की पहचान है कि वह पाठक को क्या दे रहा है, ज्ञान के रूप में, अनुभव के रूप में और उसके मनोरंजन के रूप में। मनोरंजन भी सामाजिक शिष्टाचार से भिन्न न हो।

जन्म शती का आयोजन

अब श्याम नारायण जी शताब्दी के पैराग्राफ में हैं, तो उनकी शताब्दी हम लोग मनायें। अभी 92 साल के हैं, सात-आठ साल बाद हम लोगों को उनकी शताब्दि मनाने का सौभाग्य मिलेगा। कानपुर में पं० अयोध्यानाथ शर्मा ने शताब्दी मनायी। इसके अतिरिक्त कानपुर में हिन्दी में सौ वर्ष किसी को नहीं मिले। यह सौभाग्य सबको मिले, यह मेरी कामना है। अब तो हम सभी लोग इस दौर में जा रहे हैं, जिसे बुढ़ापे की संज्ञा दी जाती है लेकिन मैं तो सत्तर साल का होने के बाद अपने को बूढ़ा नहीं मानता हूँ, मैं तो जम कर

काम कर रहा हूँ अभी भी किन्तु सच तो यह है जब मैं 92 साल के बाबू श्याम नारायण कपूर को काम करते देखता हूँ तो अक्सर मुझको झिझक और परेशानी होती है कि मैं उतना काम नहीं कर पाता हूँ जितना वे करते हैं। कपूर जी इस मामले में हम लोगों के प्रेरणा पुरुष हैं।

कानपुर की सांस्कृतिक, सामाजिक गतिविधियों में उनका योग महत्वपूर्ण है। बाबू श्याम नारायण कपूर ने स्वभावतः कभी किसी पर अपने को थोपा नहीं। वे हमेशा एक विनम्र सेवक की भाँति सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यों में सदैव सम्मिलित हुए। देश हित में, समाज हित में अपनी सामर्थ्य से अधिक किया। कानपुर में बाल आन्दोलन के प्रर्वतक श्री कृष्ण विनायक फड़के के साथ वे सक्रिय रूप से जुड़े। ठाकुर जयदेव सिंह के साथ 'संगीत समाज' के गठन आदि विविध कार्यों में सम्मिलित हुये। यदि किसी ने उनको सम्मान से बुला लिया तो चले गये। आपको उनका साथ शोभाजनक लगे तो रख लीजिये, उन्हें कोई आपत्ति नहीं वरना उनसे जो योगदान हो सकेगा करेंगे अवश्य।

मुझे यह कहते हुए भी प्रसन्नता है कि वे सदैव नये लेखकों और अपने से छोटों को नयी सूचनाएँ देने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं। किसी नये लेखक की हँसी उड़ाते मैंने उन्हें नहीं देखा। मैंने अक्सर देखा है कि उन्होंने अपने लेखन और विचारों के सम्बन्ध में नये लोगों के सुझावों व विचारों पर भी बड़ा गौर किया। यह उनका बड़प्पन तो है ही, व्यक्तित्व की ऊँचाई भी है।

कपूर जी की रचनात्मक उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण हैं, हिन्दी जगत को जो उन्होंने दिया है, और हिन्दी शब्द-भण्डार को, वाङ्मय को, जो उनकी देन है वह दो-चार-दस साल में खत्म होने वाली नहीं है, कालातीत है। जिस दिशा में उन्होंने काम किया है उसमें वे अपनी विधा के प्रकाश-स्तम्भ माने जायेंगे। जब तक हिन्दी रहेगी लोग उनको स्मरण करते रहेंगे।

आत्मकथा की आवश्यकता

अन्त में मैं एक बात और कहना चाहता हूँ कि बाबू श्याम नारायण कपूर का इतना दीर्घकाल है काम करने का, हिन्दी साहित्यकारों के बीच रहने का, हिन्दी की विभिन्न दिशाओं और दौरों को देखने का, कि यदि वे अपनी 'आत्मकथा' लिख दें तो कम से कम हिन्दी के 75 वर्षों का सजीव इतिहास सामने आ जायेगा। उससे दो दृष्टियाँ और भी व्यापक हो जायेंगी : एक ओर तो विधायी रचनाएं या साहित्य का रचनात्मक पक्ष सामने आयेगा। दूसरा वह पक्ष भी सामने आयेगा जो उस जमाने में विज्ञान लेखन के क्षेत्र में काम हुआ और जिन्होंने हिन्दी को समृद्ध किया। इनकी आत्मकथा में, ये सारे तथ्य उजागर होकर सामने आ सकेंगे। इनके जैसा हिन्दी में दूसरा कोई लेखक दिखाई नहीं देता जो साहित्य की रचनात्मक पद्धतियों और विधाओं के अतिरिक्त वाङ्मय के व्यापक, विपुल सृजन पर प्रकाश डाल सकेगा। वह उनका क्षेत्र है, उन्होंने उस पर मनन भी किया है, अध्ययन भी किया है। यदि वे अपनी आत्मकथा लिखें तो हिन्दी साहित्य की और हिन्दी जगत की एक महती आवश्यकता की पूर्ति होगी। केवल साहित्य की विधाओं की पूर्ति ही नहीं होगी वरन् व्यक्तियों के बारे में भी जानकारी मिलेगी। इसमें प्रथम दृष्ट्या से प्रसंग मिल जायेंगे कि जिनको देख करके लोग बहुत सी चीजों को समझने की क्षमता प्राप्त करेंगे। इसलिए उनकी 'आत्मकथा' प्रकाशित होना आवश्यक है। कपूर जी से आग्रह करके इसे लिखाना चाहिए। उनकी आत्मकथा साहित्य के, साहित्यकारों के जीवन प्रसंगों के और वाङ्मय के संदर्भ में पठनीय होगी। ऐसी आत्म कथा बिरली होगी। मैं मानता हूँ कि श्री श्याम नारायण कपूर की आत्मकथा से हिन्दी जगत की बड़ी कमी पूरी हो जायेगी।

पूर्व सांसद

111/78 अशोक नगर, कानपुर-208 012

अनुकरणीय व्यक्तित्व : श्री श्यामनारायण कपूर

प्रवीण दीक्षित

> कोई भी अवधारणा जब तक चिन्तन में रहती है तब तक बड़ी व्यापक रहती है। किन्तु जब वह किसी कृति या आकृति के रूप में अभिव्यक्त होती है तब सिमट कर बहुत बौनी हो जाती है। बन्धुवर श्री श्यामनारायण कपूर के प्रति विगत लगभग 60 वर्षों से जुड़ी मेरी अमूर्त अवधारणाओं की यही स्थिति इन पंक्तियों के लिखते समय हो रही है। मैं उन्हें अपने मनमन्दिर का देवता मानता हूँ। जब तक ये मेरे मन में रहते हैं तब तक मन बहुत पवित्र रहता है। वे एक ऐसे देवता हैं जो कभी किसी को शाप नहीं देते। वह देते हैं तो वरदान ही देते हैं। ऐसा अच्छा देवता 'और न जग में कोय'।

श्री कपूर जी द्वारा लिखित एक दर्जन से अधिक पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके द्वारा लिखा गया बहुत सा साहित्य विश्वविद्यालयों से लेकर पूर्व माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी सम्मान्य है। फिर भी, अभिमान तो क्या स्वाभिमान भी उन्हें छू तक नहीं गया। और तो और वे अपने कृतित्व का श्रेय तथा प्रेय भी अपने मित्रों को बाँट देते हैं। मैं भी उनसे प्रायः इसी प्रकार उपकृत होता रहता हूँ।

यह प्रसन्नता की बात है कि उनके द्वारा समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचना की सूची भी (अपूर्व) साहित्य निकेतन से प्रकाशित हो गई हैं। वस्तुतः यह आग्रह भी मेरा था और यह काम मुझे ही करना था। मेरे बार-बार के आग्रह पर कपूर जी के परम पितृभक्त पुत्र चि० मनोज कपूर ने अत्यन्त श्रमसाध्य यह कार्य कर दिया है। किन्तु जहाँ तक मेरी जानकारी है उसके अनुसार अभी कपूर जी के बहुत से लेख अन्य पत्र-पत्रिकाओं में दबे पड़े हैं।

'साहित्य निकेतन' द्वारा प्रकाशित सूची के अनुसार कपूर जी के लेख माधुरी, विज्ञान, विश्वमित्र, हंस, विज्ञानलोक, विशाल भारत, कर्मयोगी, गंगा, अवन्तिका, वीणा, मधुकर, सरस्वती, कादम्बिनी, नवनीत, विश्वभारती (विश्वकोश), दैनिक भारत, जागरण और साहित्य सन्देश में ही प्रकाशित हुये हैं। किन्तु मैंने दुलारेलाल भार्गव द्वारा सम्पादित 'सुधा' तथा आचार्य शिवपूजन सहाय द्वारा सम्पादित 'बालक' आदि पत्रों में भी उनके लेख पढ़े हैं। अतः एक बार पुनः प्रयास करके उनके लेखों का संकलन, सम्पादन तथा प्रकाशन किया जाना चाहिये।

श्री कपूर जी ने हिन्दी साहित्य के लिये बहुत कुछ कर दिया है किन्तु अब भी एक ऐसा काम शेष है जो केवल वही कर सकते हैं। उन्होंने अपने युग के अनेक कवियों, कलाकारों पत्रकारों और राजनीतिज्ञों को बहुत निकट से देखा, जाना, पहचाना है। इन सब से सम्बन्धित संस्मरण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन संस्मरण के द्वारा हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिये भी मौलिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

एक बात और – यह कृतघ्नतावादी युग है, मंच माफियावादी युग है। इसलिये मैं यह बात बहुत विनम्रता-पूर्वक कहने की अनुमति चाहता हूँ कि श्री श्यामनारायण कपूर को भारत सरकार की ओर से सम्मान तथा कानपुर वि० वि० से डी० लिट्० सम्मान भी मिलना चाहिये।

श्री श्यामनारायण कपूर ने 'साहित्य निकेतन' के माध्यम से जिस प्रकार उपयोगी साहित्य प्रकाशित किया उसी

प्रकार नवोदित कवियों, कलाकारों और साहित्यकारों को भी प्रकाशित करते रहे हैं। इस दृष्टि से मैं 'साहित्य निकेतन' को 'शान्ति निकेतन' का ही लघु संस्करण मानता हूँ। 'साहित्य निकेतन' कानपुर के नवोदित बुद्धिजीवियों का गुरुद्वारा है और श्री श्यामनारायण कपूर उसके अधिष्ठाता गुरुदेव हैं।

मुझ जैसे थके-चुके श्रमजीवियों के मन की शान्ति के लिये आज भी साहित्य निकेतन साहित्य-तीर्थ बना हुआ है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा विज्ञान परिषद् के संस्थापक सदस्यों के सपनों को साकार करने के लिए, श्री श्याम नारायण कपूर लगभग सत्तर वर्षों से जो अनवरत प्रयास कर रहे हैं, उनको ध्यान में रखते हुए इन दोनों संस्थाओं के वर्तमान कर्ताधर्ता और अधिष्ठाता यदि चाहें तो उन्हें अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित करके अपने को कृतकृत्य कर सकते हैं।

24 एल० आई० जी०
के० डी० ए० कालोनी, जाजमऊ, कानपुर

विज्ञान भूषण श्याम नारायण कपूर : एक नाम

पाती राम भट्ट

"मा तुषाग्निरिवानर्च धूमायस्व जिजीविषु"

लंबा जीने को प्रायः धुआँ देती तुष की उस अनर्च अग्नि से जोड़ा गया है जो अन्त तक स्वयं तो घुटन दे आँसू बहाती है, दूसरों को भी कम नहीं सालती, परन्तु जब कभी कभार इसके अपवाद देखने में आते हैं तो निश्चय ही "जीवेम शरदः शतम्" का अमृतमय अर्ध सत्य भी उजागर होकर रहता है। 'विज्ञान भूषण' से सद्यः अलंकृत हमारे वरिष्ठ बंधु श्याम नारायण कपूर निश्चय ही इन सुखद अपवादों में गिने जायेंगे। इनके जिजीविषु जीवन में घटित इस अपवाद की सुखद अनुभूति मुझ जैसे उनके छः दशक पुराने स्नेह भाजन के लिए विशेष गर्व का विषय है।

श्याम नारायण जी का साहित्य निकेतन कानपुर के साहित्यानुरागियों के लिए साहित्य मधुशाला कहें, बिना चाय-काफी का, बीड़ी-सिगरेट वर्जित, सामयिक विविध चर्चाओं की चाट-चुस्की वाला कैफे कहें, शोधप्रेमियों का मिलन-स्थल कहें, हास्य विनोदियों का रंग स्थल कहें, प्रदेश की कितनी ही संस्थाओं के पुस्तकालयों के निर्माण में आपूर्ति-स्रोत कहें सहज आकर्षण बना रहा है। मुझ जैसे माँग-देख के काम चलाने वाले पढ़क्कुओं के लिए भी उनके अकृपण दरवाजे सदा खुले रहे हैं-- जैसे अपना ही हो साहित्य निकेतन। इस प्रकार श्याम नारायण जी की इस व्यक्तिगत सद्यः उपलब्धि के साथ ही साहित्य निकेतन के माध्यम से पठन-पाठन चिन्तन-लेखन प्रकाशन की संस्कृति की पोषक उनकी संस्था भी इस नगर के इतिहास की एक अनूठी अदद बन गया है।

बिल्कुल हाल ही में एक दिन जब उन्हें बधाई देने साहित्य निकेतन पहुँचा तो दोपहर को भोजन-विश्राम के लिए दुकान से घर जाते चबूतरे की अन्तिम सीढ़ी तक उतर गए वे मुझे देखते ही आह्लादित होकर पलट गए। मेरे सहारे पुनः ऊपर चढ़ भी गए और कुछ क्षण मुझे लपेटे हुए मेरे साथ बैठ गए। बातचीत में मैंने पूछा "कपूर साहब ! मैं एक वर्ष से व्यक्तिगत एक पक्ष पर लिखने को कसमसा रहा हूँ पर लिखना आज भी शुरू न हो सका और आप अपने सतत् लेखन की खनक में इतने सुन्दर जीवित हैं। यह कैसे ?" तुरंत अपने लेखन की आगे की दिशा का संकेत देते हुए बोले "भई, मेरे घर पर सामने व पूर्व में गणेश जी की प्रतिमाएँ विराजती हैं। उन्हीं की कृपा है। उनके सहज विश्वास ने जैसे उनके व्यक्तित्व की, उनके लेखन सातत्य का न केवल एक उदात्त आध्यात्मिक पक्ष उद्घाटित करके रख दिया परंतु मुझे भी एक सत्य का, एक आस्था का सहज बोध करा दिया।

संस्थापक प्रधानाचार्य
117 क्यू०, शारदा नगर, कानपुर

लब्धकीर्ति विद्वान् बाबू श्याम नारायण जी कपूर

डा० ब्रजलाल वर्मा

सच्ची साधना स्वयं में निरपेक्ष किन्तु अव्याहत रूप में साध्यनिष्ठ होती है। ऐसे साधक को अपने कृतित्व एवं कर्तृत्व का बिगुल नहीं बजाना पड़ता और न आत्म विज्ञापन का ही श्रम करना पड़ता है। साधना का एक चरण ऐसा आता है जब उसके स्फुलिंग सारे सामाजिक वातावरण में आतिशबाजी की तरह छूटने लगते हैं और वह भी इतनी प्रखरता और तीव्रता के साथ कि अन्धा भी कहने लगता है कि कहीं आतिशबाजी छूट रही है। तदनंतर साधना की वह अवस्था आती है जब उसके प्रभावों के बमों का विस्फोट किसी बधिर के कर्णकुहरों को वेध जाता है। अपनी आयु के शतकल्प वर्षों में अटन करने वाले 'विज्ञान भूषण' बाबू श्याम नारायण जी की साधना मेरे इसी वक्तव्य को प्रमाणित करती है।

सन् 1950 के आसपास गिलिस बाजार, कानपुर के "साहित्य निकेतन" नामक पुस्तक-भंडार में बाबू जी से मेरा पहला मिलन हुआ था। मैंने एक समीक्षात्मक पुस्तक "नूरजहाँ समीक्षा" लिखकर तैयार की थी। स्व० कविवर गुरुभक्त सिंह जी 'भक्त' (आजमगढ़) के मनोहारी महाकाव्य "नूरजहाँ" पर यह समालोचना पुस्तक थी। अध्ययन के दरमियान कभी मेरे गुरुवर स्व० पं० कृष्ण शंकर जी शुक्ल ने दो कवियों को प्रकृति का सिद्ध कवि बताया था। उनमें एक थे गुरु भक्त सिंह 'भक्त' दूसरे थे गोपाल सिंह "नैपाली"। नूरजहाँ काव्य के प्रति मेरे आकर्षण का कारण गुरुवर की यही टिप्पणी थी। इस संदर्भ में यह बताना आवश्यक है कि पं० कृष्ण शंकर शुक्ल स्वयं कपूर साहब और उनके साहित्य निकेतन से निकटतः सम्बद्ध थे। मैंने श्रद्धेय बाबू श्याम नारायण जी से उसके प्रकाशन की बात कही -- उन्होंने कहा "वर्मा जी हम केवल पुस्तकें बेचते नहीं, अच्छी पुस्तकों का प्रकाशन भी करते हैं।" किन्तु उन्होंने यह नहीं बताया कि "हम लिखते भी हैं।" नूरजहाँ समीक्षा के प्रकाशन के लिये कपूर साहब तैयार हो गये। पुस्तक छपी, प्रकाशित हुई। संदर्भ का यही बिन्दु था जब मैं कपूर साहब की परिचय-परिधि का अर्द्धव्यास बन गया।

सन् 1951 में उत्तर भारत के सर्वश्रेष्ठ महाविद्यालय डी० ए० वी० कालेज कानपुर के हिन्दी विभाग में मेरी नियुक्ति प्रवक्ता के रूप में हुयी -- अध्यापन जब अध्ययन प्रवृत्त होता है तभी वह प्रतिष्ठित होता है। डी० ए० वी० में मेरे साहित्य सखा स्व० प्रो० सिद्धिनाथ मिश्र उसी विभाग में एक-दो वर्ष पहले से प्रवक्ता थे। वह अत्यन्त कुशाग्र अध्येता और अद्भुत प्रतिभा के प्राध्यापक थे -- उनकी अध्ययन की प्रतिष्ठा एक-दो वर्षों में ही अद्वितीय हो गयी थी। हम दोनों में अध्ययन और अध्यापन की प्रतिद्वन्द्विता निरन्तर बनी रहती किन्तु मैं यहाँ मुक्त मानस होकर यह स्वीकार करता हूँ कि प्रो० सिद्धिनाथ जैसा विदग्ध व्यक्ति मेरे अपने विचार से किसी विश्वविद्यालय में भी नहीं था। इसी कारण मुझे वहाँ अपने अध्ययन में संभलना पड़ा -- बड़ी मेहनत पड़ गयी। सिंह और गज का द्वन्द्व भीषण होता है और तमाशबीनों के लिये मोहक भी। मेरी इस अध्यापन प्रक्रिया में यदि बाबू श्याम नारायण जी कपूर द्वारा दुर्लभ ग्रन्थों की व्यवस्था न होती रहती तो सिंह ने प्रारम्भ में ही हस्ती को विदीर्ण कर दिया होता। विचित्र बात है कि हम दोनों एक दूसरे के बिना एक दो दिन भी नहीं रह पाते थे। सच्चे साहित्य-सखा थे न मेरे पास पुस्तकें खरीदने के लिये कभी पैसा होता और कभी न होता। ऐसी स्थिति में बाबूजी मुझसे कहते "वर्माजी जो पुस्तकें चाहिये छाँट लीजिये। पैसा बाद में मिल जायेगा।" अधिक मूल्य के ग्रन्थों के सम्बन्ध में वे कहते "आप इसे सुरक्षित ढंग से पढ़ लीजिये और बाद में वापस कर दीजिये।" मैं कहता कि "ऐसे विशद

ग्रन्थों को पढ़ने में तो लम्बा समय लग जायेगा -- इससे आपकी व्यावसायिक हानि होगी।'' इस पर बाबूजी मुझे सांत्वना देते हुये कहते कि ''आप जितने दिन चाहें पुस्तकों को रखें-पढ़ें, विलम्ब की कोई चिन्ता नहीं।'' विद्या व्यसनी लोगों के लिये वे कितने उदार, उदात्त और सदाशय थे इसकी व्याख्या मेरे लिये शब्दातीत है।

पुस्तक विक्रय व्यवसाय उन्होंने क्यों चुना, मेरी समझ में उन दिनों नहीं आता था। वह इसलिये भी कि उन दिनों शासकीय -प्रशासकीय नौकरियाँ शिक्षितजनों की चरणधूलि लपेटने को तत्पर रहती थीं। फिर कपूर साहब जैसे विद्यावान् व्यक्ति के लिये अंग्रेजी शासन की कोई भी नौकरी जब सहज ही उपलब्ध हो सकती थी तो फिर इस पुस्तक विक्रय केन्द्र को खोलने में उनका क्या मन्तव्य था--यह उस समय तो नहीं पर अब समझ में आ गया अब संस्कृत का एक सूत्र वाक्य ''पुस्तकी भवति पंडितः'' मेरे मानस पटल पर नाचने लगा। कितनी पुस्तकें अपने जीवन में उन्होंने बेची, यह तो मैं नहीं जानता किन्तु कितने ग्रन्थों का पारायण किया -- इसका अनुमान मैंने कर लिया है।

प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति पर बाबू श्याम नारायण जी के अध्ययन-मनन और चिन्तन निभृत गह्वरों, गुफाओं और विशाल गर्भ को समझना शक्य नहीं है। उन्होंने भारत के पुरा विज्ञान और पश्चिम के आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों में जो संगति, सामञ्जस्य और समरसता स्थापित की है वह भारत और समूचे विश्व के नये पुराने वैज्ञानिकों को विस्मित और चकित कर देने वाली है। कपूर साहब ने अपने गहन अध्यनन द्वारा भारतीय पुरा संस्कृति एवं विज्ञान के निष्कर्षों की जैसी बोधगम्य व्याख्या की है और आधुनिक भौतिकी के उद्भव और विकास का आधार भारतीय विज्ञान को जिस कौशल के साथ सिद्ध किया है वह न तो अकेले किसी वैज्ञानिक के लिये सम्भव था और न अकेले किसी वेदान्ती के बूते की बात।

अभी हाल में ही बड़ा हल्ला मचा कि बाबू श्याम नारायण कपूर को पचास हजार रुपये का ''विज्ञान भूषण'' पुरस्कार उ० प्र० हिन्दी संस्थान द्वारा प्रदान किया गया है। प्रबुद्ध समाज में बड़े-बड़े प्रश्न, बड़ी-बड़ी शंकाएँ और ईर्ष्याजन्य सन्देह फैले और फैलाये गये। पहला प्रश्न यह था कि कपूर साहब कहाँ के वैज्ञानिक हो गये ? और कब से ? मैं यहाँ स्पष्ट करूँ कि भले ही ''संस्थान'' ने उनकी नव विरचित एक वैज्ञानिक कृति को पुरस्कृत किया हो, किन्तु कितने लोग जानते हैं कि इस विराट मानस अध्येता ने इसके पहले कितनी पुस्तकों की रचना की है। यदि उनकी सभी कृतियों पर पुरस्कार एजेन्सियाँ विचार करें तो शायद उनके पास पुरस्कारों के लिये न तो धन की व्यवस्था हो सकेगी और न ही पुरस्कारों के प्रकार ही निर्धारित हो पायेंगे।

बड़े भाई कपूर साहब ''विद्या ददाति विनयम्'' का मात्र अर्थ ही नहीं समझते थे, इस विचार को अपने दैनिक व्यवहार में भी वे अनूदित करते हैं।

मृदुलता, शिष्टाचार, सद्व्यवहार तथा परोपकार की संस्कृति पर उनका दैनन्दिन आचरण आधारित है। प्रचार की दिशाओं में वे नितान्त अनात्मवादी हैं। उनका विश्वास है कि साधाना का सौरभ फैलता ही है और निःशब्द फैलता है-- उसके लिये विज्ञापन अथवा विपणन की अपेक्षा नहीं होती।

बाबू श्याम नारायण जी कपूर की जिजीविषा प्रबल है किन्तु सप्रयोजन है--वे सरस्वती के भंडार को अधिकाधिक समृद्ध करने के लिये जीवित रहना चाहते हैं -- अन्यथा इस भूत संभूत देह में उनकी कोई आसक्ति नहीं है। अध्ययन उनकी प्रकृति है और लेखन उनकी प्रवृत्ति। मुझे पाठक कहने दें कि ''विज्ञान भूषण'' पुरस्कार सरस्वती के इस साधक की छोटी अंगुली की अँगूठी तो हो सकती है किन्तु कंठ का हीरक हार कभी नहीं। संस्थान और देश के जो भी लोग किसी साधना को पुरस्कृत करते रहते हैं उनको मेरा निर्देश है कि यदि उनके पास पूँजी की समुचित व्यवस्था हो तो कपूर साहब को ''विद्या हीरक'' जैसे पुरस्कार से उपकृत करें -- इससे वे तो धन्य होंगे ही। सरस्वती भी धन्य होंगी। अन्त में मैं कपूर साहब के एकमात्र पुत्र चिरंजीव मनोज कपूर को अवश्य ही अपना मंगलाशीष देता हूँ जिनके प्रयास और पितृ निष्ठा से इस अनन्य साधक का कृतित्व उजागर हो सका और सर्वग्राह्य बन सका। मेरे परम आदरणीय पूज्यवर कपूर साहब मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

97 टैगोर टाउन,
इलाहाबाद।

साहित्य-तीर्थ श्री श्याम नारायण कपूर

डॉ० बालकृष्ण गुप्त

कानपुर के यशस्वी साहित्यकार एवं साहित्य में विज्ञान की विशिष्ट धारा के संवाहक, श्री श्याम नारायण कपूर जी का निवास तथा प्रकाशन एवं पुस्तक-विक्रय केन्द्र वस्तुतः मां-भारती का पावन-मन्दिर है। आपने कानपुर में पदार्पण करने के समय से लेकर अद्यावधि साहित्यकार का जीवन जिया है।

जीवन के नौ दशक पार करने के उपरान्त शताब्दी की ओर पूर्ण सक्रियता एवं रचनात्मकता से अग्रसर श्री कपूर के जीवन का लक्ष्य साहित्य-साधना रहा है।

सरल शैली में बाल साहित्य की संरचना में भी कपूर साहब अग्रणी पंक्ति के लेखकों में सम्मिलित रहे हैं। इधर भारतीय पौराणिक ज्ञान की आधुनिक वैज्ञानिक सन्दर्भों में चर्चा में उनकी विशेष रुचि परिलक्षित हो रही है। आपकी नवीनतम कृति-- 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' ने विद्वानों का विशेष ध्यान आकर्षित किया है और आप की राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा प्रारम्भ हो गयी है।

श्री कपूर के इस विश्रुत लेखकीय पक्ष के अतिरिक्त उनका पूर्ण मानवीय एवं संवेदनात्मक पक्ष भी है। उनका घर तथा प्रतिष्ठान साहित्य-सेवियों के लिए सरस्वती के पावन मन्दिर के रूप में जाना जाता रहा है। देश के प्रख्यात साहित्यकारों ने अपने कानपुर-वास के काल में कपूर साहब का संरक्षण तथा सान्निध्य प्राप्त किया था। दिल्ली के सम्मान्य समीक्षक तथा प्राध्यापक डॉ० देवीशंकर अवस्थी, कथाकार महीप सिंह (उस समय मलिक सिंह के नाम से चर्चित), वरिष्ठ कवि गोपालदास 'नीरज' रमानाथ अवस्थी, मुम्बई के सुचर्चित कवि तथा राजनीतिवेत्ता डॉ० राम मनोहर त्रिपाठी, दिल्ली के यशस्वी समीक्षक डॉ० रमानाथ त्रिपाठी, अंग्रेजी साहित्य के सुधी समालोचक, लेखक तथा उच्च शिक्षा सेवा आयोग के पूर्व अध्यक्ष डॉ० प्रताप सिंह, हिन्दी के वरिष्ठ तथा नयी कविता के कवि श्री अजित कुमार, प्रशासनिक सेवा तथा नयी कविता के हस्ताक्षर सुरेन्द्र तिवारी जैसी बौद्धिक क्षमता के धनी बुद्धिजीवियों की केन्द्रस्थली तथा विचार-विनिमय की भूमि कानपुर में श्री श्याम नारायण कपूर जी का पुस्तक-प्रतिष्ठान 'साहित्य निकेतन' ही था।

श्री श्याम नारायण कपूर हम लोगों के पिता तुल्य अग्रज रहे हैं। विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं के आयोजनों में उनकी सहमति मानो हमें पहले से ही प्राप्त थी। बस कहने भर की देर थी, कपूर साहब की स्वीकृति तत्काल हो जाती। चाहे वह साहित्य-संस्कृति-कला संस्था 'त्रिवेणी' हो, चाहे 'महाशय काशीनाथ व्याख्यान माला' अथवा 'प्लैनिंग फोरम' हो। हम लोग जिस विज्ञान के भाषण के आयोजन की इच्छा रखते कपूर साहब तत्काल रास्ता निकाल देते और कानपुर में अच्छे से अच्छे आयोजन तत्काल होते। यह संयोग ही था कि कपूर साहब के सक्षम निर्देशन में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, भगवत शरण उपाध्याय सरीखे उद्भट विद्वानों की कल्याणी वाणी हमको सुनने को मिली और उनसे निकट का सम्पर्क बना।

भाई साहब के लिए 'इच्छाजीवि' होने की इस कामना के साथ उन्हें हमारा शत्-शत् अभिनन्दन।

771 लखनपुर, कानपुर

रचनाधर्मिता के समर्पित व्यक्ति श्री श्याम नारायण कपूर

डॉ० गिरिजा शंकर त्रिवेदी

91 वर्षीय श्री श्याम नारायण कपूर को जब इस वय में गहन-गंभीर विषयों पर लेखनी चलाते देखता हूँ, तो आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता जबकि माना जाता है कि साठ वर्ष की उम्र के बाद कार्य क्षमता और शारीरिक क्षमतायें दोनों ही शिथिल हो जाती हैं। परन्तु कपूर साहब की अध्ययन-प्रियता और लेखन-प्रियता दोनों ही पूर्ववत् बरकरार है या यों कहें कि नवजवानों को भी मात कर देती हैं। उनका जीवन नियमित रूप से ठीक समय पर हर काम करने का रहा है। शायद यही कारण है कि वे इतना कुछ कर पाते हैं।

वैसे वे केमिकल इंजीनियर रहे हैं। अमर बलिदानी और प्रख्यात संपादक स्व० गणेश शंकर विद्यार्थी के सान्निध्य में 'प्रताप' में पत्रकारिता भी की है। विभिन्न प्रतिष्ठानों में वे केमिकल इंजीनियर रहे हैं। परन्तु उनकी हिन्दी के प्रति गहरी आस्था के कारण उन्होंने 1938 में पुस्तक प्रतिष्ठान 'साहित्य निकेतन' (कानपुर) की स्थापना की। यह प्रकाशन हिन्दी क्षेत्र में बहुत लोकप्रिय है।

उनकी इन्हीं सेवाओं के कारण हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने उन्हें 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि से अलंकृत किया है। वे उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा श्रेष्ठ बाल साहित्य साधना (विज्ञान) के लिए सम्मानित भी हो चुके हैं। उनकी विज्ञान और भारतीय वैज्ञानिकों पर लिखी पुस्तकें बहुत लोकप्रिय रही हैं। 'जीवट की कहानियाँ', 'विज्ञान की कहानियाँ', 'जहाज की कहानियाँ' विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी रही हैं।

उनका 'नवनीत' में छपा 'पुराणों में विज्ञान' सीरियल बहुत ही लोकप्रिय रहा है। आज भी उनकी लेखनी नये-नये विषयों को प्रस्तुत करने में साधनारत है।

मृदुभाषी श्री श्यामनारायण कपूर को देखकर ऐसा नहीं लगता कि वे इतनी गरिमामयी लेखनी के ध्वजवाहक हैं। शान्त आकर्षक व्यक्तित्व के धनी चुपचाप बैठे कुछ पढ़ते ही या लिखते ही मिलेंगे, जब आप शिवाला रोड स्थित उनके प्रतिष्ठान 'साहित्य निकेतन' में जायें। पहुँचते ही वे स्वयं आपका अभिवादन करेंगे।

ईश्वर उन्हें दीर्घायु दे, जिससे वे माँ भारती के भंडार को इसी तरह निरन्तर भरते रहें।

संपादक 'नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट'
भारतीय विद्या भवन, क० मा० मुंशी मार्ग,
मुंबई-400006

आदरणीय बाबू जी

डॉ० मथुरा सिंह

राष्ट्रभाषा हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन की प्रेरणा-पत्रिका "विज्ञान" द्वारा हिन्दी में विज्ञान के वरिष्ठ, वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध लेखक बाबू श्री श्याम नारायण कपूर सम्मान अंक प्रकाशनार्थ प्रस्तुत देख कर हिन्दी तथा विज्ञान के सभी प्रेमियों का आह्लादित होना स्वाभाविक है।

इस "अंक" के लिए कुछ लिखते समय मैं अपने परास्नातक (एम० ए०) कक्षा में प्रवेशार्थ कानपुर जाकर (1963 ई०) सम्माननीय बाबू जी से पहली बार मिलने की घटना पर जब दृष्टिपात करता हूँ तब मेरा हृदय अतीव श्रद्धा और कृतज्ञता से अभिभूत हो जाता है। कपूर साहब, जिन्हें मैं अतीव सम्मान से बाबूजी कहता हूँ से मिलने और उनकी छत्रछाया में रहने का सुयोग प्रो० डॉ० हरस्वरूप माथुर जी के कारण सम्भव हो सका।

यह उन दिनों की बात है जब मैं रणवीर रणंजय महाविद्यालय, अमेठी से स्नातक कक्षा उत्तीर्ण कर चुका था। प्रो० माथुर हिन्दी के विद्वान और मेरे सम्मानीय प्राध्यापक थे तथा मैं उनके स्नेह का विशेष पात्र था। माथुर साहब ने मुझे अपनी पढ़ाई को आगे भी जारी रखने के लिये प्रोत्साहित किया और मुझे कानपुर लिवा गये। एम० ए० की पढ़ाई मैं निर्विघ्न रूप से पूरा कर सकूँ तथा आर्थिक चिन्ता से मुक्त रहूँ, इसके लिए बाबू जी के "साहित्य निकेतन" प्रतिष्ठान में अंशकालिक रूप से बाबू जी के कार्य में हाथ बँटाता था।

मुझे इस बात का गर्व है कि बाबू जी के सानिध्य में उनके प्रतिष्ठान में कार्य करते समय उनका मुझे असीम प्यार और स्नेह प्राप्त था। उनकी उदारता तथा सर्वविधसहयोग भावना का ही परिणाम रहा कि मैंने अपने स्वाभिमान के साथ एम० ए० की परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की।

एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनन्तर अगले ही सत्र जुलाई 1965 ई० में डी० ए० वी० कालेज में भूगोल विभाग में प्राध्यापक पद पर मेरी नियुक्ति हो गई। पुनरपि जब तक मैं (1988 अक्टूबर मास तक) कानपुर में रहा बराबर बाबू जी के प्रतिष्ठान पर जाता रहा। उनसे मिलने पर साहित्यिक चर्चाओं, बहुविध लेखन के विषयों तथा विद्वज्जन मिलने पर साहित्यिक चर्चाओं, बहुविध लेखन के विषयों तथा विद्वज्जन-समागमों तक ही वे सीमित नहीं रहे अपितु पारिवारिक सुख-दुख और कुशल-क्षेम के सभी अवसरों पर मैंने सर्वदा उन्हें एक पारिवारिक बुजुर्ग, मुखिया या सम्मान्य अभिभावक के रूप में पाया। उन्होंने मेरे भाइयों-बहिनों के अध्ययन-शिक्षण-विवाह आदि मांगलिक समारोहों में सर्वत्र वह भूमिका निभाई जो नितान्त रक्त संबंधी पारिवारिक अगुआ जन निभाते हैं। मैं और मेरा परिवार सम्मानीय बाबू जी की अपनत्व भरी उदारता और स्नेहिल ममता के प्रति चिरकृतज्ञता और श्रद्धा के कुछ भरित भावान्जलि के अतिरिक्त और क्या भेंट कर सकता है। मैं आज जिस पद पर हूँ उसके पीछे सम्मानीय बाबू जी की अहैतुकी कृपा और उनका आशीर्वाद ही मेरा सम्बल है।

मैंने माननीय बाबू जी के विगत 35 वर्षीय सम्पर्क में उन्हें हमेशा एक उदार, सात्विक प्रवृत्ति, लेखन-मनन-चिन्तन में निरंतर रत, साहित्य मनीषियों से साहित्यिक चर्चा और विद्वद्गोष्ठी के प्रेमी के रूप में ही देखा है। निष्कपट हृदय, दुनियादारी से कोसों दूर, मधुरभाषी और अजातशत्रु। उन्होंने अपने लम्बे जीवन में न जाने कितनों को आगे बढ़ाया-पढ़ाया, प्यार और स्नेह दिया और इस परोपकार के प्रति किंचित् भी अहंकार और प्रतिपादन की भावना नहीं। बाबू जी में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई है और दूसरा कारण मेरी समझ

में यह है कि सत्कुल में जन्म और पारिवारिक संस्कार के साथ-साथ पत्रकारिता के पितामह और पुरोधा गणेश शंकर विद्यार्थी जी के सान्निध्य में रह कर "प्रताप" जैसे प्रतापी पत्र की पत्रकारिता में उनका जीवन तपकर सोने की भाँति कुन्दन होकर निखरा है।

मैंने देखा है कि उनके प्रतिष्ठान पर प्रायः साहित्यकारों, कवियों, लेखकों तथा विद्वानों की जमघट लगी रहती है। वैज्ञानिक लेखन और साहित्यिक चर्चाओं में ही "कालो गच्छति धीमताम" का उदाहरण उपस्थित होता है। उन दिनों डॉ० श्याम नारायण पाण्डेय, अध्यक्ष हिन्दी विभाग डी० वी० एस० कालेज, डा० प्रेम नारायण मिश्र अध्यक्ष हिन्दी विभाग डी० ए० वी० कालेज कानपुर तो प्रायः बाबू जी से मिलते और हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं पर देर तक चर्चा करते। "संस्कृत साहित्य की रूपरेखा" जैसा प्रसिद्ध और संस्कृत के विद्यार्थियों में लोकप्रिय ग्रन्थ बाबूजी ने ही अपने प्रतिष्ठान "साहित्य निकेतन" से प्रकशित किया। इसके लेखक स्व० पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय जी से भी बाबू जी की अत्यन्त घनिष्ठता थी। "साहित्य निकेतन" की स्थापना के पीछे बाबूजी का एक मात्र ध्येय यह था कि हिन्दी भाषा में विविध विषयों की रुचिकर सर्वग्राह्य पुस्तकें प्रकाशित कर हिन्दी भाषा और साहित्य की अभिवृद्धि की जाये। कहना न होगा कि बाबूजी अपने ध्येय को प्राप्त करने में पूर्ण सफल रहे। इस प्रतिष्ठान को एक मानक बनाये रखने के प्रति भी वे पूरी तरह सचेष्ट रहे। यही कारण है कि एक व्यापारिक प्रतिष्ठान होते हुये भी उन्होंने "साहित्य निकेतन" को गाइड, नोट बुक्स और अनसाल्व्डपेपर्स का विक्रय केन्द्र नहीं बनने दिया। सबसे बड़ी बात तो यह है कि प्रतिष्ठान के स्वामी के रूप में उनकी भूमिका एक प्रकाशक तक ही सीमित नहीं रही अपितु विज्ञान, वैज्ञानिक आविष्कारों-विद्युत, राकेट और अन्तरिक्ष यात्रा से लेकर आधुनिक भारत के नव निर्माण में भूमिका निभाने वाले भारतीय वैज्ञानिकों और जीवट के व्यक्तियों की कहानियाँ और उनकी देन को अपनी सरल-सरस शैली में लिख कर लोकप्रिय बनाने में उनका अप्रतिम योगदान है। साबुन विज्ञान, एवरेस्ट विजेता शेरपा तेनसिंह तथा "भारतीय वैज्ञानिक" नामक बाबूजी की पुस्तकें तो बहुचर्चित रहीं। बाबूजी के 1930 ई० से ही हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं माधुरी, हंस, सरस्वती, विशाल भारत, विश्वमित्र, कादम्बिनी, नवनीत आदि में दो सौ से अधिक विज्ञान से संबंधित लेख प्रकाशित हुए हैं।

1970 ई० में डी० ए० वी० कालेज कानपुर के दीक्षान्त समारोह में जब दीक्षान्त भाषण देने हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध मनीशी, रामकथा तथा तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ फादर कामिल बुल्के पधारे थे, तब उन्हें हिन्दी साहित्य सेवियों की ओर से एक स्मारिका भेंट की गई थी जिसमें आदरणीय बाबू जी की विज्ञान विषयक हिन्दी सेवा के योगदान की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी। बाबू जी ने नोबेल पुरस्कार प्राप्त-कर्ता सर सी० वी० रमन, जगदीश चन्द्र बसु, पी० सी० राय, रामानुन, प्रौ० गणेश प्रसाद, डा० मेघनाथ साहा और डा० शान्ति स्वरूप भटनागर की रोचक और ज्ञानवर्धक जीवनियाँ लिखी हैं। बाबू जी ने रसायन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर शान्ति स्वरूप भटनागर की जीवनी प्रकाशित कर उसकी प्रथम प्रति आगरा विश्वविद्यालय के पूर्व उप-कुलपति डा० कालिका प्रसाद भटनागर को भेंट की थी। माननीय उप-कुलपति महोदय ने इसके लिए बाबू जी को बधाई दी और उनके ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उस अवसर पर सौभाग्य से मैं भी उपस्थित था। वह क्षण मुझे बरबस स्मरण हो जाता है।

हिन्दी में विज्ञान विषयक 1938 ई० से लेखन तथा सुरुचिपूर्ण हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार के प्रति अपने को समर्पित कर दिया। आपके विज्ञान लेखन में शुष्कता ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगी– विज्ञान जैसे विषय में साहित्य की सरस मन्दाकिनी अविरल गति से प्रवाहित होती है।

प्राचार्य

रणवीर रणंजय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अमेठी,
सुलतानपुर

एक दिलकश शख्सियत - श्याम नारायण कपूर

तसकीन ज़ैदी

कलमकार श्री श्याम नारायण कपूर जी का नाम ज़हन में आते ही एक 92 साल के बूढ़े और कमजोर शख्स की तसवीर सामने आ जाती है, मगर यहाँ सूरते-हाल इसके विपरीत हैं। यह कपूर साहब तो जवानों का जज्बा और जोश लिए दस-बारह घंटे लिखने-पढ़ने में तल्लीन पाये जाते हैं और इनकी दिन-चर्या सुबह पाँच बजे से शुरू होकर रात के दस-ग्यारह बजे तक जारी रहती है। देखने वाले हैरत ज़दा हो जाते हैं कि ये किस वक्त आराम करते हैं। वे अपने उसूलों के सख्ती से पाबंद हैं और अनुशासन उनकी जिन्दगी का खास मकसद नज़र आता है।

कपूर साहब दूर से देखने में बड़े सख्त मिज़ाज नज़र आते हैं मगर जैसे-जैसे उनसे बातें करते जाओ तो उनकी शख्सियत की परतें खुलती जाती हैं और वह मिलने वाले बेतकल्लुफ होकर उसके दोस्त बन जाते हैं। अपने से छोटों से प्यार करना, उनका पसंदीदा काम है। मेरी उनसे जबसे मुलाकात हुई वे मेरे बुजुर्गवार की तरह नेक सलाहकार हैं।

कपूर साहब 8 सितम्बर, 1908 को तारीखी शहर सम्भल (मुरादाबाद) में पैदा हुए और वहीं उनकी प्राइमरी शिक्षा भी हुयी। वहीं उन्होंने उर्दू, फारसी की तालीम एक मौलवी साहब से हासिल की जिनकी यादें आज भी उनके ज़हन में ताज़ा हैं। 1920 में उन्होंने ज्यादा पढ़ाई करने के इरादे से सम्भल छोड़ दिया था और वह मौरावाँ (उन्नाव) आ गये। शायद 1945 में आखिरी बार वतन गये थे। इसके बाद 50 सालों से ज्यादा का वक्त वतन से दूर बीत गया जिसकी कसक अब भी उनके दिल में बाकी है।

मैं जब 1965 में सम्भल से बिछड़ कर कानपुर नौकरी के लिए लिये आया तो उनसे मुलाकात होते ही नजदीकी बढ़ गयी और हमवतन होने के कारण उन्होंने मुझे गले लगा लिया। शुरू में एक प्रकाशक, बुकसेलर और लाइब्रेरियन के बीच का रिश्ता रहा फिर आहिस्ता-आहिस्ता ये दो रचनाकारों के बीच का मजबूत बन्धन बन गया जो आज भी कायम है। सम्भल (वतन) की एक-एक निशानी (गली, कूचे, सड़कें, मस्जिदें, मन्दिर, स्कूल आदि) उनकी यादों में बसी है और वतन जाने और वहाँ सबसे मिलने की ख्वाहिश आज भी उनके दिल में रोशन है।

यूँ तो उन्होंने तकरीबन 20 किताबें और सैकड़ों लेख लिखे मगर उनकी खास दिलचस्पी शुरू से ही विज्ञान में रही और आज भी है। क्या, क्यों और कैसे ? के बारे में वे सोचते रहते हैं। वह बचपन से ही गम्भीर स्वभाव के रहे हैं (ऐसा सम्भल के बुजुर्ग बताते थे), दार्शनिक सोच उन पर हावी रही है। जहानत और ज्ञान उनकी आँखों से साफ ज़ाहिर होता है। चेहरे पर एक शाने-बेनियाजी भी झलकती है। उनमें खास खूबी यह है कि न वह अपनी शख्सियत से कभी किसी को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं और न ही अकारण किसी के रौब-दाब में आते हैं। मैंने उनमें दो खूबियाँ और पाई हैं। एक तो अपनी बात तो दूसरे तक पहुँचाने की उनकी क्षमता, और दूसरी, हास्य का रंग लिये हुए उनकी हाजिर-जवाबी।

उन्होंने साहित्य और विज्ञान के नाजुक रिश्ते को मजबूत करने की कामयाब कोशिश की है। कपूर साहब ने दूसरों को ये यकीन कराया है कि साइंस का रिश्ता इंसान और इंसानियत से न हो तो वह बेकार होता है और तबाही का कारण बनता है। उनका कहना है कि साइंसी उसूल अगर समाजी जरूरतों से न जुड़ें तो वे निरर्थक हैं। वे कल्याणकारी विज्ञान को तसलीम कराने में कामयाब रहे हैं और यही उनकी मेहनत का फल है। वे विज्ञान के मुश्किल से मुश्किल विषय

के बारे में इतने आसान अंदाज़ में लिख लेते हैं कि विषय की कठिनाई का अहसास नहीं होने पाता। विज्ञान से उनकी दिलचस्पी के पीछे उनके गहरे अध्ययन और हैरत भरे अवलोकन की छाप है। वे प्रेमचंद से प्रभावित हुए और साहित्य के लेखक बने, उनकी सलाह पर अपनी मौलिकता के साथ विज्ञान के लेखक बने। वे प्रेमचंद जी के ज़माने की याद ताजा कर देते हैं।

आज भी उनका ज़हन काम कर रहा है, उनकी फ़िक्र तरो-ताजा है और उनके कलम का सफर जारी है। 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' उनकी नवीन खोजों का संगमील है। आशा है कि अभी उनके कलम से और भी महत्वपूर्ण रचनाएँ सामने आयेंगी। हम उनकी दीर्घायु और अच्छे स्वास्थ्य की कामना करते हैं।

पुस्तकालयाध्यक्ष,
पी० पी० एन० कालेज, कानपुर

विज्ञानविद् श्याम नारायण कपूर

डॉ० यतीन्द्र तिवारी

सामान्य रूप से वैश्विक स्तर पर भारत का मूल्यांकन एक समृद्ध आध्यात्मिक दृष्टि सम्पन्न सांस्कृतिक राष्ट्र के रूप में होता है। उसके इस महत्वांकन के आगे उसके अतीत कालीन वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुसंधानों को नजरन्दाज कर दिया जाता है। वहीं दूसरी ओर इस प्रकार के खोजपूर्ण ग्रन्थों के अभाव में इस दृष्टिपूर्ण मूल्यांकन का शिथिल हो जाना भी स्वाभाविक है। आज के तकनीकी सम्पन्नता के युग में भारत की अतीत की तकनीकी और वैज्ञानिक सम्पन्नता पर खोजपूर्ण ग्रन्थों के लेखन और प्रकाशन की महती आवश्यकता है जबकि हम सभी जानते हैं कि वेदों से लेकर पुराणों तक जो प्रभूत सामग्री उपलब्ध है उसमें गणित, ज्योतिष, धात्विकी यंत्र, शिल्प, रसायन, वास्तु, आयुर्वेद, चिकित्सा विज्ञान, विमानन एवं सृष्टि विधा पर प्रचुरता से ज्ञान उपलब्ध है। आवश्यकता है उस उपलब्ध सामग्री का शोधन कर प्रस्तुतीकरण की।

विज्ञान साहित्य के समृद्ध लेखक श्रद्धेय श्री श्याम नारायण कपूर का एक वैज्ञानिक होकर हिन्दी की सेवा और समृद्धता में जीवन समर्पित कर उपरोक्त अभाव की पूर्ति में सतत् कर्मशील रहना अपने आप में मात्र प्रेरणीय ही नहीं वरन् अनुकरणीय है। उनकी सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'प्राचीन भारत में शिल्प और विज्ञान' अपने आप में अनूठा कार्य है। भारतीय विज्ञान की विविध शाखाओं पर गहन शोध-पूर्ण विवेचना के साथ सामग्री प्रस्तुत कर अपनी सक्रियता एवं अनुसंधान क्षमता का लेखक ने परिचय दिया है। निश्चय ही यह ग्रन्थ उनकी वैज्ञानिक सोच और चिन्तन का परिणाम है।

श्री श्याम नारायण कपूर पेशे से लेखक और पुस्तक व्यवसायी होने के साथ-साथ सफल केमिकल इन्जीनियर भी रहे हैं। उन्होंने केमिकल इंजीनियरिंग में स्नातक उपाधि उत्तर भारत के प्रसिद्ध तकनीकी संस्था एच० बी० टी० आई० से प्राप्त करने के उपरान्त कुछ समय तक केमिकल इंजीनियर के रूप में कार्य भी किया। किन्तु स्वाधीनता संग्राम सेनानी एवं प्रखर पत्रकार स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी के सान्निध्य में आकर उससे प्रेरित होकर उन्होंने अपने को राष्ट्रभाषा की सेवा में समर्पित कर दिया। वस्तुतः गांधी जी के यह मंत्र वाक्य कि "हिन्दी सेवा राष्ट्र सेवा है" को श्री कपूर जी ने जीवन भर दोहराया ही नहीं वरन् व्यवहारिक रूप में चरितार्थ किया। उनका यह त्याग और समर्पण युवा पीढ़ी के लिये अनुकरणीय है।

विजिटिंग प्रोफेसर (हिन्दी)
बुखारेस्ट विश्वविद्यालय, रोमानिया

सहज, सरल, स्नेही व्यक्तित्व के धनी सुप्रसिद्ध लेखक श्री श्यामनारायण कपूर साहब

भास्कर निगम

अभी हाल, दिसम्बर 98 में 19-20 तारीख को मैं जब उनके घर कैलाश मन्दिर गया तो देखा कि वे अपनी बैठक में गाव तकिया के सहारे लेटे हुए किसी ग्रन्थ का अवलोकन कर रहे थे। सामने टेबुल पर पैड पर लगे कागज़ और कलम देखकर अनुमान हुआ कि कुछ लेखन कार्य भी चल रहा है। मुझे देखते ही वे ग्रन्थ को परे रखकर मेरे नमस्कार को स्वीकार कर सहज स्नेह से मुझको पास बिठाकर घर के भीतर उन्होंने आवाज लगाई-- "ये देखो, ये आये हैं। चाय लाओ।" क्षण भर बाद ही मनोज की माता जी आ गयीं और मेरा नमस्कार ले देकर पुनः भीतर गयीं और शीघ्र ही चाय लेकर आ गयीं और बोली-- "अब ये बहुत ऊंचा सुनने लगे हैं। जोर से बोलना पड़ता है।" सो तो मैं जानता ही था कि अब नब्बे से ऊपर आयु के मनोज के बाबू जी काफी ऊंचा सुनते हैं। इस शतायु छूती आयु के साथ यह दोष कुछ स्वाभाविक ही है किन्तु दृष्टि दोष नहीं। हाथ पैर भी बखूबी क्रियाशील हैं क्योंकि वे अभी भी सुबह शाम 'साहित्य निकेतन' दुकान खुलते ही बन्द होने के पूर्व कुछ समय नियमित रूप से वहाँ जाकर बैठते हैं तो सबसे भेंट हो जाती है। स्थानीय कवि, साहित्यकार और पुस्तकों के ग्राहक तो आते ही हैं; बाहर से आने वालों का सिलसिला जारी रहता है वहाँ।

स्मरण करता हूँ तो लगता है कि अभी शायद सप्ताह भर की बात है किन्तु इतने दशक बीत गये हैं। अपने विद्यार्थी जीवन से ही मैं साहित्य निकेतन और उसके स्वामी संचालक श्री श्यामनारायण कपूर, बाबूजी, कपूर साहब और बड़े भैय्या से कैसे आ जुड़ा, यह एक रोचक कहानी है, कुछ तिलिस्म भरी भी। गाँव से मैं मिडिल की पढ़ाई के लिए डी० ए० वी० स्कूल कानपुर भेजा गया था। कुछ तुकबन्दी जैसा लिखने पढ़ने और ड्राइंग कला में मेरी रुचि बचपन से ही अंकुरित हुई थी जब मैंने गांव में 'कल्याण' पत्रिका पढ़ी और चित्र देखे। 'चांद' पत्रिका का 'फांसी अंक' भी तभी देखा था। कुछ पूर्वजों के संस्कार मिले अथवा दैवी प्रेरणा से मुझे चित्रकला में अधिक रुचि रही। स्कूल में ड्राइंग मास्टर साहब मुझसे बड़े प्रसन्न रहे और उन्हीं के प्रोत्साहन से मुझे फोटोग्राफी सीखने की ललक लगी। उनसे ज्ञात हुआ कि मेस्टन रोड (कानपुर) में चित्रा स्टूडियो जाकर मैं कैमरा और फिल्म खरीद सकता हूँ। अतः मैं वहाँ जाने लगा। चित्रा स्टूडियो के स्वामी संचालक (श्री श्याम नारायण कपूर के चचाजात बड़े भाई) के०सी० कपूर साहब को मैं कभी नहीं भूल सकता, उनकी सद्भावना, कृपा और प्रोत्साहन के लिए। उन्हीं के पास जाते जाते पुस्तकों की तलाश में निकटवर्ती 'साहित्य निकेतन' भी जा पहुंचा था। यह सन् 1936-38 की बात है। तभी से मैं साहित्य निकेतन से जा जुड़ा था।

श्री श्यामनारायण कपूर साहब के छोटे भाई हृदय नारायण कपूर से मेरी अच्छी जान पहचान हो गयी थी। उन्हीं के साथ बैठते उठते उनके बड़े भैया बाबू श्याम नारायण (कपूर साहब) से भी परिचय हुआ था उनकी एक छपी किताब 'भारतीय वैज्ञानिक' देखने के बाद। उस किताब में भारतीय वैज्ञानिकों का परिचय पढ़ा तो बहुत प्रभावित रहा। जगदीश चन्द्र बसु और सी० वी० रमन जैसे सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों के बारे में पहली बार मुझे जानकारी हुई। उसके पूर्व अपनी पाठ्यपुस्तकों में इनका संक्षिप्त परिचय ही कभी पढ़ा था। 'भारतीय वैज्ञानिक' पुस्तक पढ़कर मुझ में विज्ञान विषयक पुस्तकें पढ़ने की रुचि जगी थी।

गत वर्ष 15 अगस्त 98 को लाल किला दिल्ली से वर्तमान प्रधान मन्त्री जी अटल बिहारी बाजपेयी ने जब स्व० लाल बहादुर शास्त्री पूर्व प्रधानमन्त्री के दिये हुए नारे 'जय जवान, जय किसान' के साथ 'जय विज्ञान' जोड़कर देश को एक नयी चेतना प्रदान की; उससे बहुत पहले से ही मैं समझता हूँ कि अकेले दम पर ही एक लेखक के नाते श्री श्यामनारायण कपूर जी हिन्दी के क्षेत्र में भारतीय विज्ञान के प्रतिलोमों को जागरुक बनाने का प्रयास करते आ रहे हैं।

प्रधानमन्त्री अटल जी की उपरोक्त घोषणा पोखरन अणु शक्ति विस्फोट के साथ देश के आणविक शक्ति सम्पन्न देश बनाने के विश्वव्यापी ऐलान के बाद हुई थी। इस बीच भारत की प्रतिरक्षात्मक सुरक्षा हेतु 'अग्नि' आदि मिसाइलें के निर्माण और परीक्षण के भी समाचार देश की जनता को व्यापक रूप से जागरुक बनाते रहे।

इसी क्रम में भारतीय वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष में उपग्रह स्थापित करने में सराहनीय प्रगति की है तथा देश में सर्वत्र विज्ञान ने अपने पंख पसारने शुरू किये हैं। इस सम्बन्ध में गत 26 जनवरी 99 के भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मन्त्रालय की ओर से प्रकाशित घोषणा विज्ञापन में विज्ञान एवं प्रौद्योगिक प्रयोजनों की रूपरेखा भी जनता के सामने आयी है जिसमें प्रधान मन्त्री अटल जी का महत्वपूर्ण कथन सबका ध्यान आकर्षित करता है कि "भविष्य में भारत को विज्ञान के दो ज्ञान आधारित क्षेत्रों और उनके प्रयोग की व्यापक संभावनाओं पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। इनमें से एक है 'सूचना प्रौद्योगिकी' और दूसरा क्षेत्र जहां और भी ध्यान देने की आवश्यकता है, वह है 'जैव विज्ञान और जैव प्रौद्योगिकी।"

ये सारे प्रयास हमें महान भारतीय वैज्ञानिक नोबेल पुरस्कार प्राप्त सर वी० सी० रमन के उस महत्वपूर्ण कथन के प्रति आज अधिकाधिक जागरुक बनाते हैं– "भारत की आर्थिक समस्याओं का केवल एक ही हल है और वह है विज्ञान, अधिक विज्ञान एवं अधिकाधिक विज्ञान।" उनके ये शब्द सन् 1948 में इन्स्टीट्यूट ऑफ इंजीनियर्स की वार्षिक बैठक में सुने गये थे किन्तु तब भारत ने नेताओं ने इन पर शायद ध्यान नहीं दिया।

इस सिलसिले में, यह कहना अधिक अतिरेक की बात नहीं होगी कि विज्ञान को भारत में अधिकाधिक प्रयोग में लाने के लिए जो अथक प्रयास हमारे बीच श्री श्याम नारायण कपूर जैसे अनेक वैज्ञानिक लेखक कर रहे थे, वह धीरे-धीरे समझ में आया। कपूर साहब ने अनेक छोटी छोटी पुस्तकें बालक-बालिकाओं के लिए लिखीं और प्रकाशित कीं जो कि बहुत लोकप्रिय रहीं। उनका यह अथक प्रयास रहा कि विज्ञान अधिकाधिक हिन्दी पाठकों के बीच पहुँचे और लोगों में विज्ञान के प्रति जागरुकता बढ़े।

इस युग में हम लेखनी के धनी श्री श्यामनारायण कपूर साहब को देखकर यह अनुमान लगाने में समर्थ हो सकते हैं कि हमारे प्राचीन भारत में कैसे-कैसे धुरन्धर एवं अद्भुत विद्वान हो चुके हैं जिन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में अपने चिन्तन और प्रयोगों से अनेकानेक उत्कृष्ट उपलब्धियाँ प्रांप्त की थीं। कपूर साहब सच्चे अर्थ में एक प्राचीन मनीषी, तपस्वी और ऋषि मुनि के रूप में हमारे सामने विद्यमान हैं जो कर्मवीर, श्रमवीर, आयुष्मयी महापुरुष की विशेषताओं को धारण किये हुए हैं जिससे हम नयी-नयी प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं।

इसी सन्दर्भ में अपने को मैं सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे अपने विद्यार्थी जीवन से ही अनेक महापुरुषों के निकट सम्पर्क में आने का सुअवसर मिला जिसमें श्री श्यामनारायण कपूर साहब प्रथम स्थान पर खड़े हैं। अन्य महान हस्तियों में रहे महाकवि निराला, भैया साहब श्रीनारायण चतुर्वेदी, कविश्रेष्ठ सोहन लाल द्विवेदी, अमृत लाल नागर। इनके सदैव स्नेहमय सम्पर्क से मुझे अपने जीवन-पथ पर आगे बढ़ने की सतत प्रेरणा मिलती रही है।

भरुवा सुमेरपुर
(हमीरपुर), उ०प्र०

पञ्चाल भूषण : श्री श्यामानारायण जी कपूर

हजारीमल बाँठिया

साधुमना, साधुचरित श्रद्धेय श्री श्यामनारायण कपूर हिन्दी जगत में - विज्ञान विषयों पर हिन्दी में लिखने वाले विद्वानों में प्रथम पंक्ति के वैज्ञानिक हैं। नौ-दशक पार कर चुके श्री कपूर जी में युवाओं जैसा उत्साह और लगन है। यम-नियम-संयम में जीवन बिताते हुये सेवा और सादगी की प्रतिमूर्ति हैं।

आपने क्राइस्ट चर्च कालेज से गणित में एम० ए० (पूर्वार्द्ध) और एच० बी० टी० आई० से रसायन अभियांत्रिकी में स्नातकोत्तर डिप्लोमा सन् 1935 ई० में लिया। आप में धन कमाने की लिप्सा होती तो साहित्य की सेवा न कर ऊँची से ऊँची कंपनी में कैमिकल इंजीनियर होने के नाते ऊँची से ऊँची नौकरी पा सकते थे किन्तु बम्बई के नाथूराम जी प्रेमी जो 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकार' कार्यालय के स्वामी थे - से प्रेरणा पाकर राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नयन और अच्छी पुस्तकों के प्रचार-प्रसार की भावना से आपने जीविका के लिये सरकारी नौकरी करते हुए 'साहित्य निकेतन' नाम से पुस्तकों की दुकान खोली और प्रकाशन कार्य में जुट गये। हिन्दी साहित्य की उच्च कोटि के पुस्तकों को मंगाकर अपने यहाँ लोगों को प्रेरणा देकर बिक्री की और सत्साहित्य ही प्रकाशित किया।

स्मरण रहे शरत-साहित्य की हिन्दी में अनूदित कर प्रकाशन करने वाला प्रकाशन हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकार, बम्बई था-वहीं से आपने पुस्तके मंगाकर घर-घर में बिक्री कर पुस्तकें लोगों के हाथों में पहुँचाई। वहीं से कपूर साहब की पहली पुस्तक-'जीवट की कहानियाँ' प्रकाशित हुई और बहुत ही लोकप्रिय हुयी। इस पुस्तक के आठ संस्करण प्रकाशित हुये।

आपकी प्रारम्भ से ही साहित्य और विज्ञान लेखन में रुचि रही और सन् 1930 से ही आपके विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विषयों पर लेख "माधुरी ", तथा "विज्ञान" पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे थे। और इन्हीं विषयों पर पुस्तकें लिखी जो बहुत से विश्वविद्यालयों में पाठ्य-पुस्तकों के रूप में पढ़ाई जाती है।

हिन्दी साहित्य के महारथियों जैसे आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी, सनेही, उपन्यास सम्राट प्रेमचंदजी, महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, क्रान्तिकारी गणेश शंकर विद्यार्थी आदि से आपका सम्पर्क रहा। उन्हीं से प्रेरणा पाकर आपने माँ भारती के भण्डार को अपनी लेखनी से भरा है ऐसे मां भारतीय के लाडले सपूत को पंचाल शोध संस्थान, कानपुर 13 मार्च 99 को 'पंचाल-भूषण' की मानद उपाधि से सम्मानित कर अपने आपको गौरान्वित अनुभव कर रहा है। प्रभु से प्रार्थना है आपका वरदहस्त हम सबके ऊपर सदा बना रहे और युगों-युगों तक अपनी लेखनी से साहित्य-भंडार भरते रहें।

कार्यकारी अध्यक्ष
पंचाल शोध संस्थान,
52/16 शक्कर पट्टी, कानपुर-208001

आचार्यप्रवर श्याम नारायण कपूर

प्रदीप दीक्षित

वर्ष 1993 में अपने मूल स्थान भर्थना से अध्ययन हेतु मैं कानपुर आया। इससे पूर्व कानपुर से मेरा परिचय अत्यल्प ही था। क्राइस्ट चर्च कालेज एवं हॉस्टल में प्रवेश आदि की औपचारिकताओं के पश्चात् मैं अपनी साहित्यिक अभिरुचि की ओर उन्मुख होना चाहता था। नया स्थान था और ऊपर शहर ! मन विचलित रहता था। एक दिन बाजार से निकल रहा था तो निगाह 'साहित्य निकेतन' पर गई।

अगले दिन 'साहित्य निकेतन' पहुँचा। यहीं पर प्रथम साक्षात्कार हुआ साहित्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति परम आदरणीय श्याम नारायण कपूर जी से। कुछ किताबें खरीदने की प्रक्रिया में उन्होंने प्रथम दिन ही मुझे स्नेहिल मार्गदर्शन दिया और ऐसा लगा कि मैं किसी 'दुकान' पर न होकर किसी साहित्य अकादमी में खड़ा होऊँ। चलते समय मेरे हाथ स्वतः कपूर साहब के चरणों की ओर झुक गए। ईश्वर से प्रार्थना है कि यह क्रम अनवरत बना रहे।

आदरणीय कपूर साहब की स्नेह-छाया में मैंने पाया कि वे केवल साहित्यकार ही नहीं अपितु पत्रकार, वैज्ञानिक, इतिहास कार, समीक्षक तथा उन सभी विधाओं के अप्रतिम ज्ञाता हैं जिन्हें कला, विद्या और ज्ञान का प्रतिनिधि माना जाता है।

सिन्धु घाटी की सभ्यता, आर्यों का मूल स्थान, सिकन्दर का आक्रमण, शून्य का आविष्कार, वैदिक गणित जैसे गहनतम विषयों पर उनसे लम्बी चर्चाएं हुई और मुझे ज्ञान-लाभ हुआ।

ऐसे ही प्रश्नों पर एक बार अपने गुरुवर एवं प्रख्यात इतिहासकार (स्व०) प्रो० के० डी० बाजपेयी से कपूर साहब की एक गोष्ठी मैंने आयोजित की। मुझे भली प्रकार स्मरण है कि प्रो० बाजपेयी, कपूर साहब की अवधारणों से न केवल सहमत हुए, बल्कि प्रभावित भी हुए। आर्यों के भारत में आगमन और महाभारत के काल निर्धारण को लेकर विशेष रूप से चर्चा हुई। बाद में प्रो० बाजपेयी जी ने अपने एक पत्र में कपूर साहब के लिए लिखा "आपने प्राक् इतिहास पर जो अवधारणाएँ व्यक्त की हैं वे प्रामाणिक हैं और इन्हें पुस्तक रूप में भारतीय इतिहास से शोधार्थियों को प्रकाश मिलेगा"।

जब किसी आत्मीय महापुरुष के बारे में लिखना हो तो एक दुविधा मन में छा कर जाती है, उनके गुणों के बारे में अगर विस्तार से लिखा जाय तो प्रशस्ति गायन सा लगता है और पूरी बात न कही जाए तो मन गवारा नहीं करता। इसी संकोच के साथ आदरणीय कपूर साहब के दीर्घायु होने की ईश्वर से प्रार्थना के साथ अपनी बात पूरी कर रहा हूँ।

निदेशक,
उत्कर्ष अकादमी,
112/321 स्वरूप नगर, कानपुर-208002

त्र्यम्बकम् यजामहे

लक्ष्मी नारायण गुप्त, एडवोकेट

त्र्यम्बकम् यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्-यह सुप्रसिद्ध महा मृत्युञ्जय मंत्र का प्रथम चरण है। जब कोई मनुष्य शरीर और बुद्धि से शिथिल हो जाता है उस समय ऐसी मान्यता है कि इस मंत्र का जाप करने से मृत्यु जैसे भारी संकट से उसकी मुक्ति हो जाती है। इस मंत्र के द्वारा तीन देवताओं ब्रह्मा, विष्णु, महेश और तीन माताओं-दुर्गा, शारदा एवं कमला से शक्तिप्रदान करने की कामना की गई है। इससे पीड़ित मनुष्य को शारीरिक बल के साथ ही यश और ख्याति भी उपलब्ध होती है।

परम आदरणीय श्री श्याम नाराण कपूर अवस्था में मुझसे 8-10 वर्ष बड़े हैं। उनका मेरा परिचय 'दैनिक जागरण' के सम्पादकीय विभाग से सम्बद्ध साहित्य सेवी श्री शुकदेव शर्मा के माध्यम से हुआ। शर्मा जी उस समय दोसर वैश्य विद्यालय इण्टर कालेज में अंग्रेजी विभाग में लेक्चरर भी थे तथा वहाँ का प्रबन्धक होने के नाते मुझे शिक्षाशास्त्र का ककहरा पढ़ना तथा जानना जरूरी था। साथ ही मैं नगर पालिका का कम्पल्सरी एजुकेशन कमेटी का सदस्य होने के नाते छोटे बच्चों की शिक्षा समस्याओं को सुलझाने में प्रयत्नशील था। इस कार्य में श्री श्याम नारायण कपूर, 'त्र्यम्बकम्' के रूप में मुझे देवता स्वरूप 'सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्' प्रतीत हुए और मैंने ऐसा अनुभव किया कि जो भी श्री श्याग नारायण जी के सम्पर्क में आवेगा उसे उनके सानिध्य में बुद्धि और विवेक प्राप्त होने के साथ ही ख्याति भी मिलेगी। वस्तुतः श्री श्याम नारायण जी को बुद्ध और विद्या की देवी-माँ शारदा, शान्तिदायनी दुर्गुण विनाशिनी-माँ दुर्गा, विश्वकान्ता-कमला तीनों का आशीर्वाद प्राप्त है।

श्री श्याम नारायण कपूर सेवा कार्यों में रुचि रखने वालों के सुहृद हैं। वे मात्र पुस्तक-व्यवसायी नहीं हैं, वरन् जो भी जिज्ञासु उनके पास जैसी जिज्ञासा लेकर आता उसकी ज्ञान-पिपासा की तृप्ति उसी विषय की पुस्तकों को प्रस्तुत कर आज भी करते हैं। उनके सान्निध्य में मैंने शिक्षा शास्त्र का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया तथा मेरी आध्यात्मिक अभिरुचि का समाधान भी हुआ।

मूलतः एक वैज्ञानिक होने के नाते श्री कपूर ने जटिल एवं रूखे विषयों को अपनी विद्वता से सरल और सुबोध बनाया तथा हिन्दी साहित्य के कोष में जो योगदान उन्होंने किया वह प्रशंसनीय होने के साथ बहुमूल्य भी है। वे अपने चौथेपन में भी साहित्य सेवा जिस रूप में कर रहे हैं उसका मूल्य शब्दों द्वारा आँका नहीं जा सकता।

जो भी व्यक्ति उनके सम्पर्क में आया उसका ज्ञान और विवेक संवर्धित हुआ साथ ही उस व्यक्ति की छिपी हुयी प्रतिभा भी विकसित हुयी। इसके सैकड़ों उदाहरण हमको-आपको उपलब्ध हैं। अपने नवीनतम ग्रन्थ- 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' के द्वारा उन्होंने जिन गूढ़ विषयों पर प्रकाश डाला है वह 'गागर में सागर' के समान है, शोधार्थियों के लिए यह अद्भुत ग्रन्थ है।

पंचवटी,
77-ए कैनाल रोड, कानपुर

'साहित्य निकेतन' होते हुए घर आते थे

(प्रख्यात समालोचक स्व० देवी शंकर अवस्थी के पारिवारिक संस्मरण)

कमलेश अवस्थी

श्री श्याम नारायण कपूर का नाम लेते या सुनते ही ध्यान बहुत दूर तक कहीं गहरे चला जाता है। यह नितान्त स्वाभाविक है। उन्नीस सौ छप्पन जुलाई में ब्याह कर आने के बाद अपने पति स्व० देवी शंकर अवस्थी से यह नाम और उनका काम और उससे भी अधिक उनसे और उनके पूरे परिवार से जुड़े गहरे आत्मीय सम्बन्धों को जिस तरह से देखने का मौका मिला उसका अपनापन आज भी कहीं गया नहीं है। आज भी अवस्थी जी का पूरा परिवार इस कपूर परिवार से उसी तरह उतनी ही शिद्दत से जुड़ा है। निश्चित रूप से इसमें कपूर साहब की भूमिका अहम् है, जिनका सहृदय, मृदु आकर्षक, सजग अध्ययनशील व्यवहार आज भी सबको अपने आप जोड़ लेता है। श्री श्याम नारायण कपूर को हम तबसे ही 'भाई साहब' मानते और कहते चले आये हैं। शायद उसके पीछे भाई के साथ भाभी जी की भी भूमिका रही है जिनमें पूरे अवस्थी परिवार के प्रति सदैव जिस आत्मीयता की झलक मुझे मिलती रही है, कम ही लोगों में मिलती है। आज भी जिस शिद्दत से कपूर भाभी और भाई साहब मिलते हैं तमाम पुरानी स्मृतियाँ अनायास आ घेरती हैं।

अवस्थी जी के लिए कपूर साहब बड़े भाई थे। उन्होंने मुझे कपूर साहब का ऐसा ही परिचय दिया था और उनकी पत्नी को वे अपनी भाभी जी मान बैठे थे जिनसे अपने तमाम दुःख-सुख भी बाँट लेते थे। एक आदरणीय भाई जिनकी छाया में शायद अवस्थी जी को उठना-बैठना बड़ा सुखद लगता था। धीरे-धीरे यह सुख बढ़ता गया था, कभी कम नहीं हुआ। शायद इसलिए कपूर साहब के प्रतिष्ठान 'साहित्य निकेतन' की देहरी का दायरा और बड़ा हो गया था। अवस्थी जी जल्दी ही कपूर साहब के परिवार में भी घुल मिल गये थे। कपूर साहब का परिवार के वृहद दायरे में अपनाना कपूर साहब के विशाल हृदय का परिचायक ही रहा है जिसके तहत अवस्थी जी जल्दी ही उनके परिवार में भी घुलमिल गये थे। परम्परागत ढंग से बड़े भाई जैसा सम्मान और अदब अवस्थी जी स्वयं कर रहे थे, मुझसे भी वे वही आशा रखते थे और हुआ भी वही। आज भी 'साहित्य निकेतन' की सीढ़ी चढ़ने के पहले मेरे सर पर पल्ला अपने आप वैसे ही चला जाता है जैसा तब अवस्थी जी के साथ वहाँ जाने पर भाई साहब को देखकर चला जाता था।

कपूर साहब बड़े भाई बनने औ 'भाई साहब' कहलाने के पक्के हकदार हैं। इसके अनेक पुख्ता सबूत यत्र-तत्र 1949-50 से लेकर 1966 की देवी शंकर जी की उन डायरियों में दर्ज है जो उन्होंने डी०ए०वी० कालेज के छात्र जीवन से लेकर अध्यापन काल तक के दौरान कभी कदा लिखी हैं। डायरियाँ पढ़ने पर विशेष बात तो यह लगती है कि कालेज से लौटते वक्त देवी शंकर अवस्थी कभी सीधे घर दाखिल होते नहीं हैं। वे लिखते हैं - ''साहित्य निकेतन होता हुआ घर आया''। साहित्य निकेतन में ऐसा कुछ चुम्बकीय आकर्षण जरूर था जो उन्हें आकर्षित करता था, उन्हें वहाँ बैठाता था, घंटों बैठाता था, दोबारा बुलाता था। एक तो, अवस्थी जी की साहित्यिक भूख-प्यास निश्चित रूप से साहित्य निकेतन में विद्यमान उन पुस्तकों से बुझती थी, पर पुस्तकें डी०ए०वी० कालेज लाइब्रेरी में भी कम नहीं थीं और अवस्थी जी उस लाइब्रेरी में भी नियमित जाते थे। पर नई से नई किताबों के देखने, पढ़ने की ललक अवस्थी जी को 'साहित्य निकेतन' तक पहुँचाने का एक पुख्ता कारण जरूर लगती है। पर उससे भी नींव के रूप में कपूर साहब का

आत्मीय सद्व्यवहार रहा है जो पाठक या लेखक के स्वाभिमान को बरकरार रखने में कोर-कसर भी नहीं रखता था। यह वह समय था जब बहुत व्यवसायिक स्तर पर सम्बन्ध नहीं बनते थे, सम्बन्धों में एक मान-सम्मान के साथ-साथ ईमानदारी का भाव सघनता लाता था। इसीलिए शायद 'साहित्य निकेतन' अवस्थी जी के लिए एक साहित्य मन्दिर बन गया था जहाँ जाये बिना अवस्थी जी रह नहीं सकते थे। कपूर साहब बताते हैं कि यों तो हम लोग नई किताबें मंगाते ही थे पर अवस्थी जी की फरमाइश उससे थोड़ा आगे बढ़ जाती थी। घंटों वे नई किताबों को देखने-पढ़ने में डूबे भी रहते थे। किताबें खरीदने का शौक भी अवस्थी जी को शायद यहीं से शुरू हुआ होगा जो बढ़ते-बढ़ते व्यसन में बदल गया था।

आज मैं सोचती हूँ कि 'साहित्य निकेतन' बहुत बड़ी यानी चौड़ी दुकान नहीं है और ऐसे में जब यहाँ साहित्यिक अड्डेबाजी भी होती होगी तो निश्चित रूप से 'साहित्य निकेतन' की बिक्री पर इसका प्रभाव प्रतिकूल पड़ता होगा परन्तु पूंछने पर पता लगा कि उस साहित्यिक माहौल में कपूर साहब की भी रुचि कम नहीं थी।

उस दृष्टि से यदि देखा जाय तो हिन्दी और हिन्दी के पाठकों के लिए श्री श्याम नारायण कपूर के विज्ञान पर हिन्दी में लिखे लेख और उनकी पुस्तकें वरदान हैं। यही नहीं, अपनी बढ़ती उम्र के साथ-साथ आध्यात्म पर भी अपना ध्यान केन्द्रित कर कपूर साहब निरन्तर लिख रहे हैं। अपनी विलक्षण स्मरण-शक्ति के धनी कपूर साहब अपने अनेक संस्मरणों को भी लिपिबद्ध कर रहे हैं जो कानपुर और उसके आसपास की पिछले पचास वर्ष की राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक हलचलों और समृद्धि को भी उजागर करता है। निश्चित रूप से यह चौतरफा ऐतिहासिक दृष्टि कानपुर के लिए अद्वितीय है।

श्री श्याम नारायण कपूर और उनका 'साहित्य निकेतन' आज भी हर आगन्तुक के लिए स्नेहमय स्वागत द्वार है जहाँ इस पकती उम्र में भी अमूमन कपूर साहब बिना किसी तनाव, लाग-लपेट और बिना किसी छलबल के स्नेहित मुस्कान के साथ सहर्ष आत्मीयता से मिलते हैं। यह आत्मीयता बहुत कुछ दे जाती है नयी पीढ़ी को, तमाम टूटे या टूटते रिश्तों को जोड़ जाती है या कहूँ टूटने ही नहीं देती।

ज्ञान-विज्ञान के धनी कपूर साहब को व्यक्तित्व में एक ओजस्विता के साथ-साथ आत्म-संतुष्टि का भाव उनकी महानता को बिना कुछ कहे सब कुछ कह जाती है जो उनमें है पर आमतौर पर सबमें नहीं होती। ज्योतिष, गणित, भौतिक विज्ञान, आयुर्वेद, आध्यात्म के विशिष्ट, गूढ़ एवं अमूर्त विषयों की जटिलतम बारीकियों को कपूर साहब ने सामान्य जन के लिए बड़ी सरल हिन्दी भाषा में रुचिकर और सुलभ बनाया है। नयी पीढ़ी के लिये उनका यह कार्य स्मरणीय है।

2/346-ए, आजाद नगर,
कानपुर -2

हमारे चाचा जी

प्रो० रमेश चन्द्र कपूर

चाचा जी हमारे परिवार के सबसे वयोवृद्ध सदस्य हैं। मेरे स्वर्गीय पिता जी से उनके बड़े मधुर सम्बंध रहे थे और मैं उनका सदैव ही स्नेह का पात्र रहा हूँ। मुझ पर 1935 से उनकी स्मृति स्पष्ट रूप से अंकित है। कानपुर के हरकोर्ट बटलर टेक्नालाजी संस्थान से उच्च शिक्षा प्राप्त कर वे अनेक वर्षों तक चीनी उद्योग में वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में कार्य करते रहे थे। हिन्दी विज्ञान लेखन में उनकी सदा ही विशेष रुचि रही है जिससे उन्हें कानपुर में ''साहित्य निकेतन'' स्थापित करने की प्रेरणा मिली।

चाचा जी से मुझे सदा ही शिक्षा सम्बंधी परामर्श मिलता रहा है। 1942 में उन्होंने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ ''भारतीय वैज्ञानिक'' का प्रकाशन किया। उस समय मैं बारहवीं कक्षा मे पढ़ता था। चाचा जी ने पुस्तक की एक प्रति पुरस्कार स्वरूप दी। मेरे लिये यह गौरव की बात रही थी। पुस्तक में आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय, चन्द्रशेखर वेंकट रमन, रामानुजन्, गणेश प्रसाद, होमी जहाँगीर भाभा, कार्यमणिक्क श्रीनिवास कृष्णन एवं मेघनाद साहा जैसे उत्कृष्ट वैज्ञानिकों की जीवनी अत्यंत सरल एवं ओजस्वी भाषा में वर्णित थी। होमी भाभा के बारे मे उनका मूल्यांकन भविष्य में खरा उतरा।

जब भी मैं अपने कानपुर आवास में जाता था चाचा जी से अवश्य मिलता था। इससे मेरा ज्ञान वर्धन भी होता था और कार्य करने की प्रेरणा भी मिलती थी। अनेक उन्हें चलता-फिरता विश्वकोष कहा करते हैं।

ताइवान में दो वर्ष प्रवास करने के पश्चात् 1989 में मैं भारत लौटा। उनसे मिलने पर पता चला कि चाचा जी एक नए ग्रन्थ को तैयार करने मे तल्लीन हैं जिसमें प्राचीन भारत में विज्ञान एवं शिल्प का व र्णन किया गया है। उन्होंने उसके अनेक अध्याय मुझे पढ़ने के लिये दिये। इस आयु में भी उनकी लेखनी सटीक तथा ओजस्वी लगी। पुस्तक का प्रकाशन होते ही चाचा जी ने उसकी एक प्रति मेरे पास भेजी। उस पर स्वयम् लिखा हुआ था :

''चिरंजीव डा० रमेश चन्द्र कपूर को शुभ कामनाओं सहित''

''श्याम नारायण कपूर अश्विनि शुक्ल पूर्णिमा सम्वत् 2055''

उत्तर प्रदेश सरकार का उन्हें 'विज्ञान भूषण' की उपाधि से सुशोभित करना पूर्णतया न्यायसंगत था। स्वयम् प्रधान मंत्री जी ने उन्हे सम्मानित किया यह मेरे लिये अत्यंत गर्व एवं हर्ष का विषय रहा।

चाचा जी सदैव ही विनोदप्रिय रहे हैं। उनकी हँसी सारे वातावरण में खिल जाती है। उनके उत्तम स्वास्थ्य तथा दीर्घायु का यह भी एक कारण है। वे शतायु हों और हम सब का मार्गदर्शन करते रहें, यही हमारी कामना है।

8, रेजिडेन्सी रोड,
जोधपुर (राज०)

भाई साहब : श्री श्याम नारायण कपूर

कैलाश नाथ त्रिपाठी

श्री श्याम नारायण कपूर आज के युग की धरोहर हैं। कानपुर को उत्तर-भारत का मैनचेस्टर बनते-उजड़ते, इसके विकास और अनियंत्रित विस्तार के साक्षी श्री कपूर कदाचित उन बिरले व्यक्तियों में हैं जिन्होंने चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह, सरीखे क्रान्तिकारियों को कानपुर के 'प्रताप' में काम करते समय देखा है।

राष्ट्रीय कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन में "झण्डा ऊँचा रहे हमारा" के यशस्वी गायक श्री श्याम लाल गुप्त 'पार्षद' के सस्वर झण्डा गायन के भी वह साक्षी हैं। कानपुर के साम्प्रदायिक नरसंहार की विभीशिका में साम्प्रदायिक सद्भावना की बलिवेदी पर गणेश शंकर विद्यार्थी के अमर-बलिदान से विचलित नगर को भी इन्होंने देखा है। वस्तुतः वह कानपुर के अतीत और वर्तमान को संजोये एक जीवन्त इतिहास हैं।

श्री श्याम नारायण कपूर विज्ञान के विद्यार्थी थे। विज्ञान उनके रुझान और अनुशीलन का मात्र एक विषय ही नहीं रहा वे जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के भी पक्षधर हैं। इसलिए उन्होंने अपने अनुशीलन और लेखन के लिए वैज्ञानिक विषयों का ही चयन किया। सामान्य विद्यार्थियों में विज्ञान के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए उन्होंने लेखन के लिये हिन्दी भाषा को अपनाकर हिन्दी साहित्य के अभाव की पूर्ति कर उसके संवर्धन की ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया है।

वेद, पुराणों तथा अन्य प्राचीन भारतीय वाङ्मय की गम्भीर गवेषणा कर अपने सद्यः प्रकाशित ग्रन्थ 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' का प्रणयन कर उन्होंने स्तुत्य कार्य किया है। श्री कपूर द्वारा प्रणीत 'भारतीय वैज्ञानिक' और 'साबुन विज्ञान' चर्चित कृतियाँ रही हैं।

अपने वैज्ञानिक लेख और चिन्तन के अतिरिक्त सहृदयता और उदारता उनके जीवन का विशेष गुण है। 'साहित्य निकेतन' है तो किताबों की दुकान लेकिन वह एक पुस्तकालय भी है जहाँ से हिन्दी साहित्य के कितने ही विद्वान अपने अध्ययन और अनुशीलन के लिए निःसंकोच ग्रन्थों को प्राप्त कर लाभान्वित हुये हैं।

विगत पचास के दशक में मेरे (लेखक के) निवास बंगाली मोहाल में 'स्वाध्याय मण्डल' का आयोजन श्री राधा कृष्ण अवस्थी ने किया था जिसमें प्रति रविवार को स्व० देवीशंकर अवस्थी, डॉ० बाल कृष्ण गुप्त, श्री अजित कुमार सिन्हा, श्री श्याम नारायण कपूर आदि विद्वान अपनी-अपनी रचनायें पढ़ते थे, उन पर विचार-विमर्श भी होता था। इस समय तक श्री श्याम नारायण कपूर एक लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे, लेकिन अपने कनिष्ठ मित्रों के साथ में घुल मिलकर बैठने में उन्होंने कभी किसी संकोच का प्रदर्शन नहीं किया।

'भाई साहब' के सम्बोधन से पुकारे जाने वाले श्री कपूर अपनी आयु के नौ दशक पार करके भी धोती-कुर्ता, गांधी टोपी के चिरपरिचित लिबास में मृदु मुस्कान बिखेरते हुये आज भी वह 'साहित्य निकेतन' से न केवल अपने पुस्तक-व्यवसाय में सक्रिय हैं वरन् समाजोपयोगी विषयों-पुराणों में विज्ञान ऐसे गूढ़ विषयों के अनुशीलन और साहित्य सृजन में दत्तचित्त हैं। ईश्वर उन्हें लम्बी आयु एवं स्वास्थ्य प्रदान करें।

15/85-ए, लट्ठेवाली कोठी,
सिविल लाइन्स, कानपुर

'कैसा रोमांचक है यह क्षण'

श्री नारायण अग्रवाल

अवसर था 14 अक्टूबर, 1998 महाप्राण निराला महाविद्यालय, ओसिया-बीघापुर (उन्नाव) के प्रथम दीक्षान्त समारोह का जब श्री श्याम नारायण कपूर अपनी सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प, के लिए उच्च शिक्षा मंत्री, उ० प्र० शासन डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह गौर के कमलों द्वारा सम्मानित किये गये।

निराला शिक्षा निधि, ओसिया (उन्नाव) के निर्णय के अनुसार मुझे कार्यकारिणी सदस्य की हैसियत से आदरणीय कपूर जी को आमंत्रित करने तथा उन्हें महाविद्यालय तक लाने का दायित्व सौंपा गया था। महाप्राण निराला की प्रतिमा पर पुष्पाञ्जलि, महाविद्यालय का निरीक्षण करने तथा प्रांगण में आयोजित सम्मान समारोह के पश्चात् मैं माननीय कपूरजी को निराला जी के पैतृक ग्राम व उनके कर्म क्षेत्र गढ़ाकोला ले गया। यह स्थान महाविद्यालय से लगभग 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। गढ़ाकोला पहुँचकर कपूर जी ने सर्वप्रथम नव विकसित पार्क में स्थापित निराला जी की प्रतिमा पर माल्यार्पण किया फिर निराला जी के पैतृक निवास पहुँचे। वहाँ कपूर जी ने निराला-पुत्री 'सरोज' का विवाह-स्थल देखा, वह कक्ष जहाँ निराला जी रहते थे, रचनाएं करते थे तथा उनकी चक्की, लालटेन आदि दैनिक उपयोग की वस्तुएं देख भाव विह्वल होकर कह उठे कि "कैसा रोमांचक है ये क्षण मेरे जीवन का, मैं सोच भी नहीं सकता था कि कभी यहाँ आ पाऊँगा।" लघुपार्क में पड़ी हुई चारपाई पर वह आत्मविभोर होकर बैठ गये। निराला जी के भतीजे पं० लक्ष्मी नारायण जी त्रिपाठी, जो वहाँ के व्यवस्थापक हैं, उनसे निराला जी के संस्मरणों की चर्चा होने लगी। लक्ष्मी नारायण जी भी भाव विभोर होकर बोले "आज तलक सब पूछे आवत रहै, मुलु आज कोऊ तौ बतावै वाला आवा है, हम धन्य हो गयन" वे दोनों ही अति विह्वल तथा अश्रुपूरित हो गये। उसी अवसर पर कपूर जी ने उल्लेख किया कि निराला जी के उपन्यासों 'चतुरी चमार' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' के पात्र कल्पित न होकर इसी गाँव के जीवित प्राणी थे। इस पर मैंने इन पात्रों के मकानों को जिनमें अब उनके वंशज निवास करते हैं कपूर जी को दिखाये। वहाँ पहुँच कर कपूर जी अपने में ही आत्म विभोर होकर अर्न्तमुखी होकर बैठे रहे।

गढ़ाकोला से प्रस्थान करते समय कपूर जी ने जिला प्रशासन द्वारा नव-विकसित 'निराला उद्यान', पुस्तकालय और प्राथमिक विद्यालय का भी अवलोकन किया। किन्तु उन्नाव वापसी तक या तो वह निरालाजी के विभिन्न संस्मरण सुनाते रहे या फिर आत्मविभोर मगन रहे।

कार्यकारिणी सदस्य,
महाप्राण निराला महाविद्यालय,
ओसिया-बीघापुर, उन्नाव

श्यामनारायण कपूर : व्यक्तित्व एवम् कृतित्व

रामलाल शर्मा

साहित्य निकेतन, शिवाला रोड, कानपुर की सन् 1938 ई० में प्राण-प्रतिष्ठा करने वाले तथा उसके मुख्याधिष्ठाता श्री श्यामनारायण कपूर अत्यन्त बहुपठ, बहुश्रुत, बहुत विद्यावान हैं। उनके दिव्य आभा से मण्डित शील और सौजन्य से परिवर्धित शरीर-यष्टि से समन्वित और धीर-गम्भीर व्यक्तित्व के दर्शन मैंने सन् 1948 ई० में किये थे, जब मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की 'साहित्य विशारद' परीक्षा के पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों का क्रय करने के उद्देश्य से पहली बार 'निकेतन' में पहुँचा। तब तक मैं श्री सीताराम ऐंग्लो संस्कृति विद्यालय, सुमेरपुर (उन्नाव) के संस्थागत छात्र के रूप में बनारस के राजकीय संस्कृत कालेज की प्रथमा तथा नव्यव्याकरण में खण्डशः (चारों खण्ड) मध्यमा परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर चुका था। साथ ही मैंने सन् 1945 व 1946 में शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश की 'कोविद भाग-1 व 2, परीक्षा तथा यू० पी० बोर्ड की इन्टरमीडिएट परीक्षा केवल अंग्रेजी साहित्य में उत्तीर्ण कर रक्खी थी, जिसके पाठ्यक्रम में निर्धारित Palgarav's Golden Treasury नहीं उपलब्ध हो सकी थी, जो 'साहित्य विशारद' परीक्षा के वैकल्पिक 'अंग्रेजी' विषय में भी निर्धारित थी, जिसे मैंने उपहृत कर रखा था। उक्त पुस्तक मुझे श्रद्धेय कपूर साहब ने उपलब्ध करा दी थी और 'विशारद' परीक्षा से सम्बन्धित मूल पुस्तकें भी दे दी थीं। किसी कुञ्जी की माँग मैंने नहीं की थी। इससे वे प्रसन्न हुये थे।

श्री कपूर साहब के अनुज स्वर्गीय हृदयनारायण कपूर भी 'निकेतन' से ही सम्बद्ध थे और वे भी अत्यन्त मृदुभाषी, सज्जन, कर्मठ एवं उदारमना थे। साहित्यशास्त्री, साहित्याचार्य, बी० ए०, एम० ए० (हिन्दी), साहित्य रत्न, हिन्दी विद्यापीठ देवघर (बिहार) की साहित्यभूषण और साहित्यालङ्कार परीक्षाओं में निर्धारित पाठ्यग्रन्थ मैं साहित्य-निकेतन से ही लेता था। सन् 1960 में शिक्षक के रूप में आगरा विश्वविद्यालय की एम० ए० (संस्कृत) में मैं सर्वप्रथम रहा था और श्री धूर्जटी प्रसाद बागची स्वर्ण पदक मुझे मिला था। इससे दोनों कपूर बन्धु अत्यन्त प्रसन्न हुये थे, क्योंकि इन्होंने ही सारी आवश्यक पुस्तकें मुझे उपलब्ध कराई थीं। अपने राजकीय सेवाकाल में हिन्दी साहित्य तथा शिक्षण-प्रशिक्षण सम्बन्धी सैकड़ों पुस्तकें मैंने इन्हीं से पाई थीं। इस प्रकार से श्री कपूर और मैं 'उत्तमर्णोऽधर्मणाः' के प्रतीक हैं, इसका परिज्ञान उन्हें हो, या न हो, परन्तु मुझे है। मैं पण्डित कपूर का ऋणी हूँ। 'साहित्य निकेतन' मेरे लिए विश्वविद्यालय से अधिक उपयोगी रहा है, जो मेरी धरोहर है।

श्री कपूर ने अपने जन्म से मुरादाबाद जनपद के सम्भल नगर को सन् 1908 में समलंकृत किया था, परन्तु चतुर्थ कक्षा में पढ़ने के लिए वे सन् 1920 ई० में मौरावाँ आ गये थे, जहाँ पर इनके पितामह और उर्दू के प्रसिद्ध शायर तथा 'रामायण मुसद्दस' और 'महाभारत मुसद्दस' के रचनाकार श्री रामजी मल राम सम्भली की धर्मपत्नी का ननिहाल था। मौरावाँ (उन्नाव) की विशेषता यह रही है कि यहाँ पर सन् 1897 में स्थापित के० डी० जे० हाई स्कूल था, जो सन् 1923 के पूर्व इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्कूल लीविंग सर्टीफिकेट परीक्षा (हाई स्कूल) के लिए मान्यताप्राप्त था। माध्यमिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश इलाहाबाद का गठन होने पर उक्त स्कूल परिषद् के अन्तर्गत आ गया, बाद में इन्टरमीडिएट कालेज बना, जो अब के० एन० पी० एन० इन्टर कालेज के रूप में मान्यताप्राप्त है। यहीं से सन् 1926 ई० में श्री कपूर ने हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की थी। तत्पश्चात् डी० ए० वी० कालेज कानपुर से सन् 1928 में इन्टर (विज्ञान) और सन् 1930 में बी० एस-सी० इन्होंने किया था। बाद में क्राइस्ट

चर्च कालेज कानपुर से एम० ए० (पूर्वार्द्ध) गणित में किया और सन् 1935 में एच० बी० टी० आई० कानपुर के केमिकल इञ्जीनियरिंग में एसोशियेट बने।

श्री कपूर ने स्नातक बनने के पश्चात् के० डी० जे० हाई स्कूल, मौरावाँ (उन्नाव) में सहायक अध्यापक (विज्ञान) के पद पर एक वर्ष तक कार्य किया था, जहाँ वे कक्षा 7, 8, 9 और 10 के छात्रों को विज्ञान और गणित पढ़ाते रहे। वे उक्त विद्यालय के अत्यन्त कुशल, परिश्रमी, योग्य, अनुशासनप्रिय एवं लोकप्रिय अध्यापक रहे।

श्री कपूर की पूर्व प्रकाशित पुस्तकों की भाँति ही उनकी नवीनतम कृति 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' अपने नाम को सार्थक करने वाला अद्वितीय एवं मानक ग्रन्थ है, जो विज्ञान के 12 तथा शिल्प के 4 अध्यायों में विभक्त किया गया है। विज्ञान में अल्पज्ञ होने के कारण मैं तत्सम्बन्धित विवेचना करने में सर्वथा असमर्थ हूँ, परन्तु अपने ज्ञान की अभिवृद्धि करने में कतिपय सीमाओं तक समर्थ हूँ और उस दिशा में प्रयासरत भी हूँ।

अन्त में,

तज्ज्ञानवारि परितः जगतीं पुनातु,

तत्कीर्ति-सन्ततिरहो ! प्रथित प्रसारा।

नित्यं जगन्निवह मोदकरी तदीया,

विद्यालता कमलया मुदयातनोतु।।

संयुक्त शिक्षा सचिव, उ०प्र० (अवकाश प्राप्त)
बी1/4, सेक्टर-सी
अलीगंज, लखनऊ-226026

कर्मयोगी श्री श्यामनारायण कपूर

डॉ० आशा कपूर

जीवन के नवें दशक में भी लेखनी को विराम न देनेवाले, तीव्र स्मरण-शक्ति सम्पन्न, प्रखर बुद्धियुक्त, ऊँचे कदवाले, श्री श्यामनारायण कपूर समग्र रूप से एक कर्मयोगी की भाँति प्रतीत होते हैं। कानपुर का पुस्तक प्रतिष्ठान 'साहित्य निकेतन' जो उनके हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार का साकार रूप है, में आज भी वे निरन्तर कार्यरत हैं, चाहे वह लेखन कार्य हो, लेखा निरीक्षण हो अथवा पुस्तकों को संभालने का कार्य हो, वे व्यस्त दिखाई देंगे।

कानपुर स्थित एच० बी० टी० आई० से केमिकल इंजीनियरिंग की शिक्षाप्राप्त श्री कपूर ने विभिन्न प्रतिष्ठानों में केमिकल इंजीनियर के पद पर कार्य अवश्य किया, परन्तु उनमें साहित्य-सृजन की ललक सदैव बनी रही। इसी कारण गणेश शंकर विद्यार्थी के सान्निध्य में दैनिक समाचारपत्र 'प्रताप' में पत्रकारिता से जीवन के कर्मक्षेत्र में प्रवेश किया था। परतंत्र भारत के स्वाधीनता आंदोलन में दो प्रकार से अपना सक्रिय सहयोग दिया-- केमिकल इंजीनियरिंग से जुड़े होने के कारण ब्रिटिश सरकार ने उन्हें रसायन खरीदने की छूट दे रखी थी, विस्फोटक सामग्री क्रान्तिकारियों तक पहुँचाकर उनके कार्य में उन्होंने सहायता प्रदान की। दूसरे हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार में संलग्न रहकर देशप्रेम की भावना को जगाए रखा।

हिन्दी के प्रथम विश्व कोष 'विश्व भारती' के सहयोगी लेखक रहने का भी सौभाग्य उनको प्राप्त हुआ। श्री कपूर का सम्पर्क आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही', मुन्शी प्रेमचन्द, भगवती चरण वर्मा तथा बनारसी दास चतुर्वेदी आदि से था। 'साहित्य-निकेतन' साहित्यिक चर्चा एवं स्वतंत्रता विषयक गतिविधियों का केन्द्र बन गया था।

साहित्यिक भाव-प्रवणता तथा वैज्ञानिक सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का सुन्दर समन्वय उनकी कृतियों में निहित है। डॉ० नगेन्द्र ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य लेखन में श्री श्याम नारायण कपूर की गणना प्रथम पंक्ति में की है।

विज्ञान की प्रगति एवं उपलब्धियों को हिन्दी भाषा में कथाओं के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाने का जो महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने किया है, वह स्तुत्य है।

वयोवृद्ध श्री कपूर न केवल वैज्ञानिक विषयों पर अपितु सामयिक विषयों पर अपने विचार स्पष्ट करते रहते हैं। 1997 में हिन्दी दिवस के अवसर पर 'हिन्दी का ठौर और ढपोरशंखी संकल्प' विषयक आलेख में उन्होंने सरकारी तंत्र एवं हिन्दी सेवी संस्थाओं की तीखी आलोचना की है। अमर उजाला में प्रकाशित इस लेख में यह सिद्ध किया है कि, प्राचीनकाल में भारत में ज्ञान-विज्ञान अत्यन्त उन्नत था। गणित, ज्यामिति, त्रिकोणमिति, बीजगणित का प्रवर्तन इसी देश में हुआ। भारद्वाज मुनि ने 'यंत्र सर्वस्व' और 'विमान शास्त्र' की रचना संस्कृत में की थी। ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, वृहत-संहिता, आर्यभटीय, लीलावती, चाणक्य का अर्थशास्त्र इत्यादि अनेक महनीय ग्रन्थों की रचना संस्कृत भाषा में की गई है। किन्तु खेद है अब हम भारतवासी इस गौरवशाली विरासत को विस्मृत कर अमेरिका तथा अन्य योरोपीय देशों को विज्ञान के क्षेत्र में कर्णधार मानने लगे हैं। यह आक्षेप लगाना कि अंग्रेजी भाषा की सामर्थ्य भला हिन्दी में कहाँ ? सरासर मिथ्या एवं निरर्थक है। वस्तुतः वर्तमान पीढ़ी संस्कृत भाषा में रचित इस विशाल ज्ञान भंडार से नितांत अपरिचित है।

इस सन्दर्भ में (श्री श्यामनारायण कपूर की 'प्राचीन भारत के वैज्ञानिक विभूतियां', 'पुराणों में विज्ञान' तथा

'भारतीयता की खोज' शीघ्र प्रकाश्य कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं।) उनकी सद्यः प्रकाशित कृति 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' में आधुनिक विज्ञान की आधारशिला के तात्विक अन्वेषक भारतीय ऋषियों-मनीषियों के विशिष्ट योगदान का प्रामाणिक विवरण अत्यन्त सरस एवं सरल शैली में प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक के अध्ययनोपरांत पाठकगण संभवतः अपनी विचारधारा में परिवर्तन लाएँगे तथा अपने देश एवं भाषा की गरिमा को पहचानेंगे।

हिन्दी विज्ञान साहित्य के इस प्रदेश का मूल्यांकन करते हुए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा श्री श्याम नारायण कपूर को 'विज्ञान भूषण' के सम्मान से अलंकृत किया गया है। इससे पूर्व हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा 'विद्यावाचस्पति' तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की ओर से श्रेष्ठ बाल साहित्य साधना (विज्ञान) के लिए सम्मानित किया गया है।

श्री कपूर की लेखनी अविरल गति से चलती रहे, वे स्वस्थ रहें एवं शतायु होकर प्रेरणास्रोत बने रहें, यही हार्दिक कामना है।

एसोसिएट प्रोफेसर,
मानविकी विभाग,
रुड़की विश्वविद्यालय, रुड़की

माननीय श्री श्याम नारायण कपूर

डॉ० दया शंकर शास्त्री

श्री श्याम नारायण जी कपूर से मेरा परिचय तीस वर्षों से अधिक ही से है। यद्यपि अध्ययनाध्यापन में मेरी रुचि सदैव रही है तथापि पुस्तक लेखन के लिए सर्वप्रथम श्री कपूर जी ने ही मुझे प्रेरित किया--उत्साहित किया। वस्तुतः उनकी प्रेरणा से मुझे अत्यधिक लाभ हुआ। उनके सम्पर्क में आने पर हमने अनेक गुण देखे। राष्ट्रीय भावना उनमें कूट-कूट कर भरी है। राष्ट्रीय विचार से ओतप्रोत श्री कपूर जी एक कर्मयोगी का जीवन व्यतीत करते रहे हैं। आज 90 वर्ष से अधिक हो जाने की अवस्था में भी वे पढ़ते-लिखते, विचार-विमर्श करते हैं तथा उत्साही व्यक्तियों को कार्य करने हेतु प्रेरित भी करते हैं।

विज्ञान के विद्वान होते हुए भी इनकी भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति में गहरी पैठ है। हमारे गुरुदेव स्वर्गीय पण्डित आनन्द झा हमारी प्रार्थना स्वीकार करके कभी हमारे आवास पर रुके थे तथा श्री कपूर जी भी उनसे भेंट करने एक दिन आये थे। वार्तालाप के अनन्तर गुरुदेव ने कपूर जी के विषय में कहा था कि 'इनको दर्शन आदि का भी अच्छा ज्ञान है।'

मैं समझता हूँ कि 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविच्छतं समाः' इस उपनिषद् सिद्धान्त की व्याख्या कपूर साहब का जीवन है। ऐसा मनीषी विद्वान एवं कर्मयोगी पुरुष 'जीवेम शरदः शतम्' के अनुसार आयु प्राप्त करे, ऐसी भावना करते हुए मैं उन्हें सादर नमन करता हूँ।

1333, रतनलाल नगर, कानपुर

'सबके प्रिय सबके हितकारी' - भाई साहब

राधाकृष्ण अवस्थी

1951 में लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० एड० करने के बाद मैं गोहाईगंज (लखनऊ जिला) में उसी वर्ष स्थापित विद्यालय (अब इण्टर कालेज) का प्रधानाचार्य था। चूँकि कानपुर में ही परिवार था अतः लगातार आता जाता था। विद्यालय के पुस्तकालय के लिए किताबें खरीदता था, सोचा कानपुर से ही खरीदूँगा। मित्रों की राय से गिलिस बाजार में 'साहित्य निकेतन' जाकर खरीदना निश्चित हुआ। यहाँ के मालिक श्री श्याम नारायण कपूर हैं। इतने सहृदय व प्रेमी कि उसी भेंट के बाद बराबर मिलना-जुलना होता रहा।

उस समय कानपुर और खासकर तिलक हाल की चौहद्दी राजनीति, साहित्य, संस्कृति आदि समस्त गतिविधियों की केन्द्र थी। सुबह-शाम-दोपहर-रात में 12 बजे तक सभी क्षेत्रों के महारथियों की महफिलें लगी रहती थीं। शर्मा-भारत रेस्ट्रां व अंगल-बगल टोलियों में शहर के गण-मान्य लोग इकट्ठे रहते थे। मनोरंजन, गम्भीर विषय और एक-दूसरे से निश्चित रूप से मिलने का केन्द्र मशहूर था यह इलाका। सारे शहर की गतिविधियाँ यहीं से संचालित होती थीं यदि यह कहा जाये तो सर्वथा उपयुक्त होगा।

सभी विचारधारा, मत-मतान्तर के प्रमुख लोग यहाँ मिलते, बहस करते, हास-परिहास करते, कभी लगता झगड़ा हो जायेगा, लेकिन फिर थोड़ी देर में ही अथवा शाम को या दूसरे दिन फिर वही प्रेम-भाव, मिलना-बैठना, चाय-पीना, पान खाना यहाँ की शानदार परम्परा थी। शायद ही ऐसा मिलन-स्थल विभिन्न क्षेत्रों को मिलेगा।

आज भी उस समय के लोग उन दिनों की याद कर रोमांचित हो उठते हैं।

इसी आनन्दमयी वातावरण में साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों में 'भाई साहब' श्याम नारायण कपूर हमारी मित्र-मण्डली के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं।

एक जो सर्वश्रेष्ठ अनुकरणीय गुण कपूर साहब में है वह शायद ही देखने को मिले। क्या बालक, युवा, वृद्ध, महिला शिक्षित, अशिक्षित, ग्रामीण-शहरी अथवा सभी विचारधाराओं के लोग समान रूप से उनके मित्रवत् हो जाते हैं और वे भी इस मामले में समदर्शी हैं। मानवता ही उनका धर्म है और मानव-मानव में भेदभाव करना उनके स्वभाव में ही नहीं है। ऐसा 'निर्मल मन जन' ढूँढ़ने पर शायद ही किसी बिरले को मिले। भगवान करे श्री श्याम नारायण कपूर शतायु हों, स्वस्थ रहें और अपने आदर्श-स्वभाव को छुआछूत के रोग वाला बना दें।

117/601 पांडु नगर,
कानपुर-208005

कानपुर का साहित्य तीर्थ : 'साहित्य निकेतन'

डॉ० रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी

श्री श्याम नारायण कपूर 'साहित्य निकेतन, कानपुर' के संस्थापक हैं। उन्होंने साहित्य निकेतन की स्थापना करके हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है उसकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। साहित्य निकेतन कानपुर में साहित्य तीर्थ है। वहीं पर मुझे अनेक साहित्य महारथियों के दर्शन का संयोग मिला। कदाचित् ही कोई साहित्यकार अथवा साहित्यसेवी होगा, जो साहित्य निकेतन न पधारा हो।

सन् 1950 में जब मे रा प्रथम काव्य सं कलन 'अन्तर्ज्वाल' प्रकाशित हुआ मैं उसे लेकर श्री कपूर साहब से मिला। उन्होंने मुझ अकिंचन जूनियर हाई स्कूल शिक्षक को स्नेह और सहयोग दिया। मेरा मार्ग-दर्शन किया। मैं तभी से उनका प्रशंसक हूँ। तत्पश्चात् सनातन धर्म कालेज कानपुर में प्रवक्ता होकर आया तो मुझे प्रायः 'साहित्य निकेतन' की तीर्थ सलिल में स्नान करने का अवसर मिला।

श्री कपूर अच्छे विचारक और लेखक भी हैं। साहित्य, सांस्कृतिक, अध्यात्म तथा धर्म के विविध क्षेत्रों को उनकी देन महत्त्वपूर्ण है।

विज्ञान परिषद ने उन्हें सम्मानित करने का निश्चय करके जो स्तुत्य कार्य किया है वह उत्कृष्ट ही नहीं अनुकरणीय भी है।

समयाभाव-वश मैं अधिक लिखने में सफल नहीं हो रहा हूँ। एतदर्थ ग्लानि अनुभव कर रहा हूँ। उनके प्रति मेरे विनम्र तथा हृदयानुभूत सद्भाव आदर भाव अर्पित हैं।

अवकाशप्राप्त प्राचार्य,
गांधी नगर, पुखरायाँ (कानपुर देहात)

विज्ञान लेखन की तपस्वी विभूति श्री श्याम नारायण जी

डॉ० आर० बी० साहू

श्री श्याम नारायण कपूर जैसी महान् विभूति के संस्मरण प्रेषित करना मेरे लिए अत्यन्त सुखद एवं आह्लादकारी है।

मुझे अपने जीवन में कानपुर की दो महान विभूतियों के सम्पर्क का सुअवसर प्राप्त हुआ। प्रथम तो हमारे परम् आदरणीय गुरू प्रो० डॉ० कृष्ण मुरारी सक्सेना साहब हैं, जो रांची विश्वविद्यालय के गणित विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं तथा जिनके मार्गदर्शन में मैंने गणित में पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की। वे आज भी शोध के क्षेत्र में सक्रिय योगदान कर भारत की नहीं, विदेशों में भी ख्याति अर्जित कर रहे हैं।

दूसरी महान विभूति 'श्री श्याम नारायण कपूर' से हाल में ही सम्पर्क हुआ। 'इण्डिया टुडे' पत्रिका के दिसम्बर 98 अंक में एक पुस्तक 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' की समीक्षा पढ़ी। पढ़कर पुस्तक मंगवाने की तीव्र इच्छा हुई। सो मैंने पुस्तक के लिए आर्डर भेज दिया। पुस्तक आने पर एक बार जो शुरू किया तो फिर आद्योपान्त पढ़कर ही छोड़ा।

पुस्तक पढ़कर ऐसा लगा मानो प्राचीन भारत अपनी समस्त वैज्ञानिक और शिल्प की अनूठी एवं उत्कृष्ट उपलब्धियों के साथ साकार हो गया है। विश्व की एक महानतम सभ्यता और संस्कृति का भूला-बिसरा तथा लुप्तप्राय इतिहास मेरी आँखों के सामने सजीव हो गया है।

भारत के प्राचीन ऋषियों, महर्षियों तथा मनस्वियों की महान तपस्या की उपलब्धियों की एक झलक प्रस्तुत करने वाले श्री श्याम नारायण कपूर, सच पूछा जाय तो उन्हीं की एक कड़ी स्वरूप हैं।

वस्तुतः मेरे पास शब्द नहीं हैं, जिससे मैं उनके बारे में कुछ कह सकूँ।

जब मैंने उन्हें धन्यवाद स्वरूप पत्र लिखा तो उसके उत्तर में जो पत्र भेजा वह भी अपने आप में इस बात का प्रमाण है कि महान विभूतियाँ स्वभाव से कितनी निर्मल और विनम्र होती हैं।

जहाँ तक ग्रन्थ- 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' की बात है तो पढ़ने से ऐसा लगता है कि भारत मात्र आध्यात्म तथा ज्ञान के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि विज्ञान के क्षेत्र में भी विकास की जिन ऊँचाइयों को छू सका था आज की भौतिकवादी सभ्यता, जो मूलतः पश्चिमी जगत की देन है, उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। भारत की गणित तथा ज्योतिष की उपलब्धियाँ तो सर्वविदित हैं, परन्तु आयुर्वेद, पदार्थ विज्ञान, रसायन, वैमानिकी, यंत्रशास्त्र तथा शिल्प विज्ञान में इसकी उपलब्धियाँ तो अत्यन्त चमत्कारिक हैं जिसे पुनः उद्घाटित कर प्रतिष्ठित करने की नितान्त आवश्यकता है।

सूर्य विज्ञान के बारे में तो कहना ही क्या ! भारतीय मनीषियों की यह खोज कि सूर्य प्रकाश किरणों के अतिरिक्त अंधकार की किरणें भी विकीरित करता है, पश्चिमी जगत को भी स्तब्ध करने के लिए काफी है।

अन्त में, मैं कपूर साहब को कोटिशः नमन करता हूँ और आशा करता हूँ कि अभी वे वर्षों अपनी तपः साधना से भारत की खोयी हुई निधि को निकाल कर दुनियाँ के सामने रखेंगी।

विभागाध्यक्ष-गणित, बी० एस० कालेज,
(रांची विश्वविद्यालय), लोहारडांग-835302

मूल्यांकन एवं कृतित्व खण्ड

लेखन जिनका शौक बन गया

डॉ० रामशंकर द्विवेदी

'रीडर्स डाइजेस्ट' में एक लेख पढ़ा था, जिसका शीर्षक था खुशी के लिए कोई शौक पालिये। फिर उस लेख में यह प्रतिपादित किया गया था कि आपका मुख्य व्यवसाय कुछ भी हो सकता है, किन्तु आप प्रतिदिन एक घंटा किसी ऐसे काम को जरूर दें जो आपके किसी शौक से संबंध रखता है। यह शौक फोटोग्राफी हो सकता है, चित्रकारी हो सकता है, बागबानी हो सकता है, पशु-पक्षियों का अध्ययन हो सकता है और साहित्यिक लेखन भी। फिर, उस लेख में कुछ ऐसे विश्वविख्यात व्यक्तियों के उदाहरण दिये गये थे जिन्हें लोग एक संगीतकार, एक उपन्यासकार, एक लेखक, एक वैज्ञानिक, चित्रकार, एक फोटोग्राफर के रूप में जानते थे। उनका मुख्य व्यवसाय क्या था, इसे लोग भूल ही गये थे। प्रतिदिन एक घंटा या कुछ समय वे अपने जिस शौकिया काम को देते रहे थे वही उनकी मुख्य पहचान बन गया था। उसी काम ने उन्हें आत्मिक सुख दिया, शान्ति दी और दी ख्याति। ऐसा नहीं है कि उनके जीवन में बाधाएँ न आई हों, उन्हें कठिनाइयाँ न झेलनी पड़ी हों, किन्तु उस एक घंटे के शौकिया काम को अपनी सारी शक्तियाँ समर्पित कर देने के कारण वे तनावों से दूर रहे और वही उनके जीवन के उल्लास का स्रोत बन गया।

गिलिश बाजार शिवाला रोड कानपुर के पण्डित श्यामनारायण कपूर (जन्म 1908) एक ऐसे ही व्यक्ति हैं जिन्होंने सन् 1930 ई० में लेखन को एक शौक के रूप में अपनाया और वही आगे चलकर उनके जीवन का एक मुख्य ध्येय बन गया। लोग यह भूल ही गये कि वे एक पुस्तक व्यवसायी अथवा प्रकाशक हैं। विज्ञान के महान लेखक और 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक श्री रामदास गौड़ पर अपने संस्मरण 'वैज्ञानिक साहित्य' के निर्माता 'श्रीयुत् रामदास गौड़' में श्री कपूर लिखते हैं : "सम्वत् 1990 (नवम्बर 1933 ई०) में मुझे उनका पहला पत्र मिला था। उससे पहले गौड़ जी का नाम अवश्य सुना था। उनके लेख भी पढ़े थे और उनकी कुछ पुस्तकें भी देखी थीं। इन सबसे गौड़ जी के प्रति स्वाभाविक रूप से श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी और जब कभी गौड़ जी का जिक्र आता था मैं उन्हें बड़े आदर, सम्मान और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखता था। इस पत्र के आने के पूर्व मैं व्यक्तिगत रूप से कभी उनके सम्पर्क में न आया था। हाँ, उनके वैज्ञानिक लेखों को 'विज्ञान' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में बड़े चाव से पढ़ा करता था। वास्तव में 'विज्ञान' ही के पढ़ने से मुझे हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के पढ़ने और अपनी योग्यतानुसार हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखने का शौक भी पैदा हुआ था।" वे आगे लिखते हैं "'विज्ञान' द्वारा वैज्ञानिक लेखों के लिखने की प्रेरणा पाकर भी मैंने 'विज्ञान' में कोई लेख न भेजा था। अन्य पत्र-पत्रिकाओं में मेरे लेख अवश्य प्रकाशित होते थे। वास्तव में मैं 'विज्ञान' को हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का एक प्रामाणिक पत्र समझता था और अब भी समझता हूँ।" उन्होंने लिखा है कि 'विज्ञान' पत्रिका में इसी कारण लेख भेजने की हिम्मत न पड़ती थी, किन्तु गौड़ जी कब मानने वाले थे। 'विज्ञान' का दुबारा सम्पादन-भार ग्रहण करने पर उन्होंने कपूर जी के कुछ लेख उद्धृत किये और उन्हें एक पत्र लिखा।

"प्रिय श्री कपूर जी, बन्दे,

आपके वैज्ञानिक लेख मैं बड़े चाव से सामयिक पत्रों में पढ़ा करता हूँ। वे इतने अच्छे लगे कि मैंने एकाधिक 'विज्ञान' में उद्धृत भी किये। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य-प्रचार के उद्देश्य वाला एकमात्र एवं सबसे पुराना पत्र 'विज्ञान' है। आपने अपनी छात्रावस्था में तो इसे अवश्य ही देखा होगा और अब भी देखते होंगे, परन्तु, कभी इस पर

कृपा न की। आपका पता मुझे अब मालूम हुआ है। क्या हिन्दी-सेवा के नाते आप से आशा करूँ कि आप औद्योगिक विषयों पर अपने सुन्दर लेख देकर हमें अनुगृहीत करेंगे ? पारिश्रमिक के नाम कोरे धन्यवाद को छोड़ और कुछ हमारे पास नहीं है। हम सभी अवैतनिक काम करते हैं; पुरस्कार तो दूर की बात है। मैंने लेख की आशा पर ही अपरिचित होते हुए आपको कष्ट देने का साहस किया है। मुझे निराश न कीजिएगा। विज्ञान को मैं सर्वोपयोगी और सुबोध बनाने के उद्योग में हूँ। आशा है कि वैज्ञानिक-क्षेत्र में काम करने वाले एक भाई की तरह आप भी सहायता करेंगे।

सप्रेम

रामदास गौड़''

इतने लम्बे पत्र को दो कारणों से उद्धृत किया है। एक तो इससे रामदास गौड़ जैसे उन सम्पादकों की महानता पर प्रकाश पड़ता है जो अपने पत्र के लिए नये लेखकों की खोज कर उन्हें लिखने को प्रोत्साहित करते थे। दूसरे इस पत्र से इस बात का भी पता चलता है कि 1930 ई० में ही श्री श्याम नारायण कपूर के विज्ञान-सम्बन्धी लेखों ने हिन्दी के बड़े-बड़े लेखकों का ध्यान आकर्षित कर लिया था। इस पत्र का श्री श्यामनारायण जी पर जो प्रभाव पड़ा था उसका जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा : ''उन दिनों मैं कानपुर के टेक्नोलोजिकल इंस्टीट्यूट में पढ़ता था। आर्थिक कठिनाइयों में ग्रस्त रहने के कारण लेखादि लिखने का अधिक समय न मिल पाता था। फिर भी मैं गौड़ जी के अनुरोध को न टाल सका और उन्हें अपनी कठिनाइयों का जिक्र करते हुए लेख भेजने का वचन दिया। अगले महीने उन्हें 'बिनौले' पर एक लेख भेजा भी। मेरी कठिनाइयों को समझ कर गौड़ जी ने 28-8-90 (संबत) को एक और पत्र लिखा। उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। वास्तव में गौड़ जी के इन दो पत्रों ने मुझे वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। जिन पत्रों में मैंने उस समय लेख लिखे थे उनके सम्पादकों से कभी इतना प्रोत्साहन प्राप्त भी न हुआ था। हाँ, लेखों को प्रकाशित करके उन्होंने मुझे अवश्य प्रोत्साहित किया था।''

श्री राम दास गौड़ ने उनके लेख ही नहीं छापे इधर-उधर अन्य पत्रिकाओं में उनके जो लेख छपते थे उनकी अपने पत्र में बराबर चर्चा की और उनमें से कुछ के सारांश को भी उद्धृत किया। 'विज्ञान' में डॉ० सत्य प्रकाश (जो बाद में संन्यास लेकर स्वामी सत्य प्रकाशानन्द हो गये) से उन्होंने श्री कपूर की दो पुस्तकों– 'विज्ञान की कहानियाँ' (प्रथम भाग) तथा 'जीवट की कहानियाँ' की समीक्षा भी कराई। इन समीक्षाओं में श्री सत्य प्रकाश जी ने लिखा : ''श्री कपूर जी सर्व-सामान्य-रुचि का वैज्ञानिक साहित्य लिखने में सिद्धहस्त हैं और आपके मनोरंजक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी अधिकांशतः ऐसे लेखों का संग्रह है। इसमें सूर्य और पृथ्वी की आयु, दूरबीन, गुब्बारा, वायुयान, चन्द्रलोक की यात्रा, दूरदर्शन, बोलते-चालते चित्र, बेतार और रेडियो विषयों पर बहुत ही सुन्दर लेख हैं, जिनके पढ़ने में पाठकों को आनन्द आवेगा। पुस्तक विद्यार्थियों के तो बड़े काम की है। विषय वैज्ञानिक होते हुए भी भाषा सरल और रोचक है। आशा है, जनता इस पुस्तक का समुचित आदर करेगी।''

दूसरी पुस्तक 'जीवट की कहानियाँ' पर उन्होंने लिखा : ''कपूर जी की यह पुस्तक उतनी ही अच्छी है जितनी ऊपर वाली। इसका विषय तो और भी रोमांचकारी है। हिमालय की सर्वोच्च चोटी तक पहुँचने के जो पराक्रमपूर्ण प्रयत्न किये गये हैं, उनका विवरण इसमें देखिए। ...... कपूर जी ने इस पुस्तक को लिख कर भारत की वर्तमान पराक्रमहीन जनता की आँखें खोल देने का प्रयत्न किया है। यह पुस्तक आबाल वृद्ध सबके काम की है।''

यह सन् 1938 ई० की बात है। इससे पता चलता है कि आज से 60 वर्ष पहले ही श्री श्याम नारायण कपूर एक विज्ञान-लेखक के रूप में प्रसिद्धि पा चुके थे। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि इन दोनों पुस्तकों में से पहले का प्रकाशन पटना के नव शक्ति प्रकाशन मन्दिर ने किया था और दूसरी का हिन्दी के विख्यात प्रकाशक श्री नाथूराम प्रेमी ने हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर बम्बई से किया था।

श्री श्यामनारायण कपूर ने क्राइस्ट चर्च कॉलेज से गणित में एम० ए० (पूर्वार्द्ध) तदुपरान्त एच० बी० टी० आई० कानपुर से रासायनिक इन्जीनियरिंग में स्नातकोत्तर डिप्लोमा करने के बाद विभिन्न प्रतिष्ठानों में केमिकल इन्जीनियर के पद पर काम किया। इसी समय वे गणेश शंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आये और उन्हीं की प्रेरणा से 'प्रताप' साप्ताहिक से पत्रकार जीवन का आरम्भ किया। उन्होंने 'साहित्य निकेतन' नाम से पुस्तक प्रतिष्ठान की स्थापना क्यों की जब कि वे इन्जीनियरिंग की दिशा में ही आगे बढ़ सकते थे ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने जो कुछ बताया वह

और भी रोचक था और उनके एक आदर्शवादी जीवन पर प्रकाश डालता है।

सन् 1990-91 ई० की बात है। मुझे बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय के लिए एक ऐसा ग्रन्थ संकलन तैयार करना था जो दूसरे के संकलनों से हटकर हो। इसके लिए मैं ऐसे निबन्धों का चयन करना चाहता था जो गद्य की अद्यतन विधाओं के नमूनों के साथ-साथ उत्कृष्ट गद्य के भी नमूने हों। एक पाठ्य पुस्तक के अलावा जो पढ़ने का भी आनन्द दें। इन्हीं दिनों श्री कपूर साहब का एक संस्मरणात्मक लेख कादम्बिनी (1991) के अप्रैल अंक में निकला था। इसका शीर्षक बड़ा आकर्षक था-- 'जब निराला जी ने किसानों के लिए पद-यात्रा की।' इस लेख में श्यामनारायण जी ने निराला के व्यक्तित्व के एक ऐसे पक्ष पर प्रकाश डाला था जो अब तक छिपा हुआ था और जिसकी जानकारी निराला पर काम करने वाले डॉ० राम विलास शर्मा तक को नहीं थी। 'कादम्बनी' के इस लेख पर श्री श्यामनारायण जी को कई पाठकों और विद्वानों के पत्र मिले थे जिसमें एक पत्र राम विलास शर्मा जी के छोटे भाई राम स्वरूप शर्मा का भी है। इस पत्र में उन्होंने लिखा है :

श्रीमान् कपूर साहब,

सप्रेम नमस्ते। कादम्बिनी के वर्तमान अंक में आपका निराला जी के ऊपर लिखा लेख देखा। बहुत-सी पुरानी स्मृतियाँ ताजी हो गयीं। मेरे अग्रज डॉ० रामविलास शर्मा मौरावाँ के कवि सम्मेलन में गये थे। वहाँ से लौटने पर उन्होंने उसका विस्तार से हाल सुनाया। एक व्यंगात्मक कविता निराला जी के ऊपर भी किसी ने पढ़ी थी जो इस प्रकार है।

चले कवि जी कविता करने कलम तोड़ दी
कहीं इंच भर कहीं डेढ़ फुट सतर जोड़ दी।
ग्राण्डील शब्दों को लेकर पद में ठूँसा
मानो पशु की मृतक देह में भर दे भूसा।
छन्द खड़े स्वच्छन्द हैं और काफिया तंग है
कविता का यह देखिए चला निराला ढंग है।

सम्भवतः पाठ में कुछ अन्तर हो। याददाश्त से लिख रहा हूँ। क्या आपको याद है यह कविता किसकी लिखी हुई थी? कृपया सूचित करने का कष्ट करें।

श्री प्रदीप लखनऊ विश्वविद्यालय में मेरे सहपाठी थे। चौधरी राजेन्द्र सिंह से लखनऊ में अक्सर मुलाकात होती रहती थी। जब भी वे आते तो दर्शन जरूर देते।

आशा है आप स्वस्थ व प्रसन्न होंगे।

भवदीय
रा० स्व० शर्मा
(राम स्वरूप शर्मा)

28-4-91

यह पत्र पढ़कर मैंने बाबू जी से पूछा कि यह कविता किसकी है और क्या यह सही है। तो उन्होंने इसकी अन्तिम पंक्ति में सुधार करते हुए इसे यों सुनाया--

'कविता करने का चला नया निराला ढंग है।।'

उन्होंने कहा कि 'स्नेही' जी ने यह कविता सुनायी थी।

निराला वाले लेख को पढ़कर पुरातत्त्ववेत्ता कृष्ण दत्त बाजपेयी ने भी एक पत्र लिखा था--

''कादम्बिनी'' के इस मास के अंक में निराला जी पर आपका लेख पढ़ कर हर्ष हुआ। आपने पुराने प्रसंगों को बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया। अनेक पुराने साहित्यकारों से आपका परिचय रहा है। समय-समय पर अपने संस्मरण प्रकाशित करते रहें। इससे लोगों को नयी जानकारी मिलेगी।

'आपने प्राक् इतिहास पर जो लिखा है वह प्रमाणों पर आधारित है। आशा है उसे पूरा कर पुस्तक रूप में छाप देंगे।

आपका
11-4-91 कृष्णदत्त बाजपेयी

मैं उनके निराला-सम्बन्धी लेख को अपने संकलन में लेना चाहता था और इसी की अनुमति लेने मैं एक दिन कानपुर जा पहुँचा। यों उनसे मिलना-जुलना तो वर्षों से था, किन्तु मैं उन्हें एक लेखक के रूप में नहीं जानता था, न उनके जीवन के बारे में ही मुझे कोई विशेष जानकारी थी। जिज्ञासा करने पर उन्होंने जो कुछ बताया वह इस प्रकार है--

लेखन का प्रारम्भ तो विद्यार्थी जी की प्रेरणा से हुआ। चूंकि मैं विज्ञान का विद्यार्थी था इसलिए वैज्ञानिक विषयों को ही अपने लेखन के लिए चुना। जब मैंने लिखना प्रारम्भ किया

था उस समय राष्ट्रीय जागरण का जमाना था। स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए हिन्दी का प्रचार-प्रसार भी उसी का एक अंग माना जाता था। आपने एक इंजीनियर होते हुए पुस्तकों की दुकान क्यों खोली ? इसके उत्तर में उन्होंने बताया-- पुस्तकों की दुकान हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई के संचालक श्री नाथूराम 'प्रेमी' की प्रेरणा से खोली। उन दिनों वे हिन्दी में शरत् और रवीन्द्र साहित्य की अल्पमोली सीरीज निकाल रहे थे। उन्हीं के कहने पर पुस्तकों की दुकान खोली। खोलने के पीछे सत्साहित्य के प्रचार-प्रसार के साथ हिन्दी प्रचार की भी भावना थी। पहले मेरी यह दुकान बहुत छोटी थी और इसका सारा कारोबार मैं अपने घर पर ही करता था। नौकरी भी करता था और उससे बचे समय में दुकान चलाता था। वर्तमान दुकान तो बाद में ली। पहले यही दुकान बड़ी लगती थी, अब तो कारबार बढ़ने से बहुत छोटी लगने लगी है।

पुस्तक व्यवसाय के कारण कई साहित्यकारों से सम्बन्ध बनते गये। निराला जी भी कई बार मेरी दुकान पर आये। एक बार तो वे अपना 'कुल्ली भाट' छपवाने आये थे। बाद में वह 'युग मन्दिर' उन्नाव से छपा। भगवतीचरण वर्मा से बड़े आत्मीय सम्बन्ध थे। नवरात्र में वे दुर्गा पूजन करने कानपुर प्रतिवर्ष आते थे। तब मुझसे मिलने भी आते थे। कभी-कभी लेखन में भी मेरी राय लेते थे। उनके 'रेखा' उपन्यास को पढ़कर मैंने उनसे साफ कह दिया था, आपको ऐसे उपन्यास नहीं लिखने चाहिए। यह नई पीढ़ी के लिए कल्याणकारी नहीं है।

प्रतिदिन रामचरित मानस का पाठ, गीता का स्वाध्याय मन्दिर में विग्रहों के दर्शन, अपने काम से काम, थोड़े में संतोष, आदर्शवादी, 'जो बन आवै सहज में ताही में चित देय' के विश्वासी, भारतीय संस्कृति और उसके प्राचीन गौरव में अटूट आस्थालु बाबू जी के जीवन के ये कुछ सिद्धान्त हैं जिनका उन्होंने आजीवन पालन किया है । उनकी जीवन-यात्रा सरल और सादी है। उन्होंने अपने व्यवसाय से बचे हुए हर क्षण का स्वाध्याय और लेखन में उपयोग किया है। उनके चेहरे पर सन्तोष का उल्लास और आँखों में आत्मीयता की झलक आपको सदा मिलेगी। पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह और कारोबार चलाते हुए वे इतना कैसे लिख सके, यही आश्चर्य होता है। उनके अब तक छपे लेखों की जो अधूरी सूची मेरे पास उपलब्ध है, उसके उनके लेखन का विषय-विस्तार और उसकी विविधता का पता चलता है।

उनके अधिकतर लेख तो वैज्ञानिक विषयों पर हैं जैसे विज्ञान में नयी खोंजे, नये अनुसन्धान। कुछ लेख व्यावसायिक और टेक्नोलोजीकल विषयों पर हैं जैसे साबुन कैसे बनायें, डॉ० भिसे द्वारा बनाई गई छापे की मशीन आदि। कुछ लेखों का विषय रोमांचक यात्रायें हैं, जैसे हिमालय पर आरोहण, पर्वतीय आरोहण और हिमालय की बलिवेदी पर, अन्तरिक्ष यात्राएँ। कुछ लेख वैज्ञानिक अनुसन्धान को अपना जीवन समर्पित करने वाले वैज्ञानिकों पर हैं।

उन्होंने अपने सम्पूर्ण वैज्ञानिक लेखन द्वारा यह प्रतिपादित करने की कोशिश की है कि प्राचीन भारत में भी वैज्ञानिक चिन्तन ही नहीं जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के संबंध में वैज्ञानिक अनुसन्धान भी किये जाते थे। ऐसे अनुसन्धानों से जो निष्कर्ष निकलते थे उन्हें समाज को समर्पित कर दिया जाता था। अनुसन्धान चिन्तन सिर्फ हवा में ही नहीं होते थे। उन पर व्यवस्थित ग्रन्थ लेखन भी होता था। श्री श्यामनारायण कपूर ने पाश्चात्यों द्वारा फैलायी गई इस धारणा का सदा खण्डन किया है कि प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प की कोई परम्परा नहीं थी, भारतीयों को विज्ञान की कोई जानकारी नहीं थी, विज्ञान का प्रारम्भ तो यूरोपवासियों के प्रयत्नों का परिणाम है। श्री कपूर साहब की इस तरह की स्थापनाओं को हम उनके पूरे लेखन में देख सकते हैं :

विज्ञान के विकास में प्राचीन भारतीयों का जो योगदान रहा है उनके महत्व को स्वीकार न कर यही प्रचारित किया जाता रहा कि विज्ञान पाश्चात्य देशों की देन है। विज्ञान के इतिहास की सुप्रसिद्ध पुस्तकों में भारत का उल्लेख नाममात्र या नगण्य-सा होता है। डम्पीयर के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिस्ट्री आफ साइंस' के 450 पृष्ठों में भारतीय योगदान की चर्चा को केवल 2-3 पृष्ठों का ही स्थान मिला है और वह भी सिकन्दर के आक्रमण के बाद के काल खण्ड को। परन्तु, अब जो पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्य मिले हैं उससे राजनीति प्रेरित यह मान्यता स्वतः खण्डित हो जाती है।

उन्होंने निर्भ्रान्त भाषा में लिखा है :

"वास्तव में संस्कृत और उसमें उपलब्ध प्राचीन शास्त्रीय (तकनीकी) ग्रन्थों की उपेक्षा ने भारतीय विज्ञान के विकास का मार्ग ही अवरुद्ध कर दिया। भारतीयों को अपने इस गौरवशाली अतीत की जानकारी से वंचित रखने के लिए ब्रिटिश शासन काल में पाठ्यक्रम का ऐसा प्रारूप बनाया

जाता गया है कि संस्कृत के विद्यार्थी विज्ञान का अध्ययन न कर सकें और विज्ञान के विद्यार्थी संस्कृत ज्ञान से वंचित रहें। यही पाठ्यक्रम अभी भी प्रचलित है।''

उन्होंने दृत्त भाषा में लिखा है :

''यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि ब्रिटिश शासन काल में अपने शासन को सुदृढ़ करने और अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए उस समय भारतीयों में हीन भावना का उद्रेक करने के लिए जो व्यवस्थाएँ की गईं थीं स्वतंत्रता के बाद भी कमोबेश वे ही चालू हैं। इतना ही नहीं, अंग्रेजी और अंग्रेजियत के दिन-प्रतिदिन बढ़ते प्रभाव ने हीनता की भावना को बढ़ाया ही है, कम नहीं होने दिया। कुछ हद तक तो इसे मानसिक दासता की ही संज्ञा दी जा सकती है। आवश्यकता है इस हीन भावना से छुटकारा पाने की।''

उन्होंने इस ऐतिहासिक सत्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कराया कि अपनी परम्पराओं की उपेक्षा करके, दूसरों की नकल करके कोई भी वास्तविक उन्नति-पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। स्वतन्त्र होकर भी यदि हम मानसिक एवं बौद्धिक दासता से अपने को उन्मुक्त न कर पावेंगे तो इससे बढ़कर हमारी अक्षमता का और क्या प्रमाण होगा।

इसी भावना को सामने रखकर अब तक आपने विज्ञान-सम्बन्धी लगभग 200 लेख और प्रकाशित-अप्रकाशित 17 ग्रन्थों की रचना की है। इनमें से प्रमुख हैं : जीवट की कहानियाँ, विज्ञान की कहानियाँ, आविष्कारों की कहानियाँ (तीन भाग), रॉकेट की कहानी, अन्तरिक्ष यात्रा की कहानी, भारतीय वैज्ञानिक, एवरेस्ट विजेता शेरपा तेनसिंह, साबुन विज्ञान, महान वैज्ञानिक परिचय माला (छह भाग), प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प, प्राचीन भारत की वैज्ञानिक विभूतियाँ, भारत के महान् गणितज्ञ, पुराणों में विज्ञान, भारतीयता की खोज।

अपने वैज्ञानिक लेखों और स्वतंत्र ग्रन्थों में उन्होंने जिन विषयों का विवेचन किया है वह स्वच्छन्द कल्पनाओं, पूर्वाग्रहों या अटकलों पर आधारित नहीं है। उनके निष्कर्ष पूर्ण वैज्ञानिक उपपत्तियों पर आधारित हैं। विज्ञान के विद्यार्थी होने के कारण उनके लेखन में एक तार्किक क्रम, सीधे-सीधे विषय का प्रारम्भ, छोटे-छोटे वाक्य, सरल, सटीक शब्दों का प्रयोग, वाक्य--संयोजन में सरलता और प्रसन्न, गम्भीर शैली। वे भाषा के आडम्बर से दूर रहते हैं। उनके विज्ञान सम्बन्धी लेखन की एक विशेषता और है जिसकी ओर बहुत कम पाठकों का ध्यान जाता है। विज्ञान में जितना भी लेखन हुआ है वह अंगरेजी में हुआ है। वैज्ञानिक विषयों के लेखन के लिए देशी भाषाओं समेत हिन्दी अक्षम है, ऐसा एक भ्रम फैलाया गया था। श्री श्याम नारायण जी के विज्ञान सम्बन्धी लेखों और ग्रन्थों को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे हिन्दी भाषा इसी तरह के लेखन के लिए बनी है। उनके लेख अंगरेजी लेखों के उल्था या उसके अनुवाद मात्र नहीं लगते। उनकी शैली हिन्दी की अपनी शैली है। अन्य विज्ञान लेखकों और उनमें यही बड़ा फर्क है। और दूसरा वैशिष्ट्य है विज्ञान जैसे रूखे विषयों पर लिखकर भी उनकी रोचकता सदा बनाये रखना। उन्होंने विज्ञान पर शोध करने वाले जिन वैज्ञानिकों पर लिखा है वे लेख तो बहुत जीवन्त और प्रेरणा से भरपूर हैं।

उनके लेखन की एक खूबी और मेरी नजर में पड़ी है और वह है, उनके संस्कारवान, शील-सम्पन्न मन की अभिव्यक्ति। उनके लेखन में एक विशेष प्रकार की विषमता भी है जो ज्ञान की अलख जगाये रखने वाले पूर्व वैज्ञानिकों, ऋषियों-मुनियों की परम्परा के प्रति उनकी आस्था से उत्पन्न हुई है। वे 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' में लिखते हैं : ''इस ग्रन्थ में जिन विषयों की चर्चा की गई है लेखक उन सबका ज्ञाता तो नहीं है, एक जिज्ञासु के नाते विभिन्न ग्रन्थों से जो जानकारी उपलब्ध हो सकी उसे ही संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। ... ... इसकी सामग्री संकलन में अनेक ग्रन्थों से सहायता ली गई है। उनके प्रति लेखक आभार प्रकट करता है। वास्तव में लेखक का योगदान केवल इतना है कि उसने विद्वज्जनों के मंतव्यों को सार रूप में अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है।''

उन्हें जिन विषय पर लेख लिखना होता है उसकी वे पूरी तैयारी करते हैं, सामग्री जुटाते हैं और तत्सम्बन्धी अद्यतन जानकारियों के प्रकाश में उसका विवेचन करते हैं। 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' के अनुशीलन से पता चलता है कि इसमें केवल भारत के प्राचीन शिल्प और विज्ञान का ही विवेचन नहीं है, तत्तद क्षेत्रों में जो अद्यतन अनुसन्धान हो रहे हैं, कहीं-कहीं उनका भी तुलनात्मक विवेचन किया गया है। इसमें यह भी बताया गया है कि आज से दो-ढाई हजार वर्ष

पूर्व भारतीय ऋषियों ने अपनी अन्तःप्रज्ञा के प्रकाश में प्रकृति और खगोल विज्ञान के जिन सत्यों का उदघाटन किया था बाद में बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक प्रयोगों ने उन्हें ही सत्य सिद्ध किया है। उनके विवेचन में एक तथ्य और भी विचारणीय है और वह है उनका इतिहास-बोध। उन्होंने अपनी वैज्ञानिक निष्पत्तियों को इतिहास की पट भूमि पर विवेचित कर इस भ्रम का निराकरण किया है कि भारतीयों को इतिहास बोध नहीं था या वे एकान्त साधना में निमग्न रहते थे, उन्हें समाज की कोई चिंता नहीं थी।

यद्यपि आप अब भी पूर्ण सजग और सक्रिय हैं, फिर भी एक पत्र में आपने लिखा है : ''अब भई लिखने का उत्साह होते हुए भी शरीर की शिथिलता के कारण मनोवांछित प्रगति नहीं हो पाती, फिर भी कुछ-न-कुछ कार्य तो करता ही रहता हूँ।''

इस समय वे 91 वर्ष के होकर 92वें वर्ष में चल रहे हैं। दृष्टि और मस्तिष्क से पूर्ण चैतन्य हैं। उनके शतायु होने की शुभ कामना के साथ मैं यह लेख समाप्त करता हूँ।

1260 नया राम नगर, उरई

विज्ञान एवं साहित्य के मनीषी विद्वान श्याम नारायण कपूर

डॉ० वीरेन्द्र शर्मा

श्री श्याम नारायण कपूर हिन्दी भाषा में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विषयों के प्रख्यात वयोवृद्ध लेखक हैं। उन्होंने अपने शोधपूर्ण लेखों और रोचक ज्ञानवर्धक पुस्तकों द्वारा राष्ट्रभाषा की जो सेवा की है वह अभिनंदनीय है। वे आधुनिक विज्ञान के निष्णात विद्वान हैं साथ ही भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों में उनकी अगाध आस्था और निष्ठा है। उनका राष्ट्रभाषा अनुराग सराहनीय और अनुकरणीय है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सर्वांगीण और बहु आयामी विकास के लिये यह आवश्यक है कि उसमें विज्ञान के क्षेत्र में पुरातन एवं अधुनातन दोनों ही प्रकार की गवेषणात्मक उपलब्धियों की प्रामाणिक पठनीय सूचना सामग्री सुगमता से सुलभ हो। भारतीय जीवन दर्शन, भारतीय संस्कृति में अध्यात्म एवं व्यावहारिक विज्ञान दोनों का ही संतुलित समन्वय है और इसी में उसकी सार्वकालिक सार्वभौम महत्ता निहित है। अध्यात्म के साथ ही विज्ञान के क्षेत्र में प्राचीन भारत का अद्भुत योगदान है। दुर्भाग्यवश विपरीत परिस्थितियों के कारण समुचित ज्ञान के अभाव में इस योगदान का सही उल्लेख और आकलन नहीं हो पाया है। भारतीय विज्ञान के अवदान को हिन्दी में उपलब्ध कराने के उदात्त उद्देश्य से मेधावी युवा वैज्ञानिक श्याम नारायण कपूर ने बहुत पहले ही यह निश्चय कर लिया था कि वे हिन्दी में विज्ञान के लिए समर्पित होंगे। और समय आने पर उन्होंने ऐसा किया भी।

8 सितम्बर 1908 को मुरादाबाद जनपद के सम्भल नगर में जन्मे श्यामनारायण कपूर ने क्राइस्ट चर्च कालेज कानपुर से गणित में एम० ए० (पूर्वार्द्ध) की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात कानपुर के ही एच० बी० टी० आई० से उन्होंने 1935 में केमिकल इंजीनियरिंग की शिक्षा पूर्ण की। शिक्षा समाप्ति के उपरान्त उन्होंने अनेक प्रतिष्ठित संस्थानों में केमिकल इंजीनियर के रूप में काम किया किन्तु उनकी दृष्टि सदैव हिन्दी लेखन पर लगी रही। मुक्ति आन्दोलन के अमर सेनानी एवं लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार-शिरोमणि गणेश शंकर विद्यार्थी के सान्निध्य में उन्हें कार्य करने का सुअवसर मिला। साहित्यिक अभिरुचि के कारण वे निरन्तर साहित्यिक विभूतियों के संपर्क में रहे। परिणामतः हिन्दी लेखन की अभीष्ट दिशा में उनका मार्ग प्रशस्त हो गया।

आज से लगभग 7 दशक पहले श्री श्याम नारायण कपूर की लेखन यात्रा प्रारम्भ हुई। यह बात है सन् 1930 की जब 'माधुरी' में उनका प्रथम लेख प्रकाशित हुआ था। और आज भी 91 वर्ष की वृद्धावस्था में भी वे सक्रिय लेखन में तत्पर हैं। विगत वर्ष ही उनकी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पुस्तक ''प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प'' प्रकाशित हुई है जिसमें आधुनिक विज्ञान की अवधारणाओं की आधारशिला के तात्विक अन्वेषक भारतीय ऋषियों-मनीषियों के विशिष्ट योगदान का प्रामाणिक--विवरण प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक के प्राचीन भारत में विज्ञान -- साधना के अन्तर्गत लेखक का कहना है : ''संस्कृत में लिखे जो प्राचीन ग्रन्थ अब उपलब्ध हैं और जिन ग्रन्थों के संदर्भ में मिलते हैं उनसे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन मनीषियों ने ज्ञान-विज्ञान के किसी भी क्षेत्र को अछूत नहीं माना था। आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक केवल भौतिकवाद के लिए सक्रिय है जबकि भारतीय दृष्टिकोण समन्वयवादी रहा है''। पुस्तक में प्राचीन भारतीयों के वैज्ञानिक अवदान में गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, जन्तु विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, कृषि विज्ञान, रसायन, भौतिक विज्ञान, ध्वनि विज्ञान का अत्यन्त रोचक आकलन है। साथ ही शिल्प के क्षेत्र में यंत्र, शिल्प, आध्यात्मिक यंत्र, विमानविद्या, आदि अनेक शिल्पविद्याओं का अनुसंधानपरक

विवेचन है। पूरी पुस्तक में विद्वान लेखक के गहन और विशद अध्ययन, चिन्तन, मनन की स्पष्ट छाप है। उदाहरण के लिए संख्याओं के आविष्कार के सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियाँ मननीय हैं--

"वैदिक ग्रन्थों वेदाङ्ज्योतिष एवं अन्य प्राचीन साक्ष्यों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह संख्याएं वैदिक काल से ही प्रचलित थीं। भारतीय संख्या प्रणाली को अरब वासियों ने भारत से सीखा। 712 ई० में जब अरबों ने भारत के सिन्ध प्रदेश पर आक्रमण किया तो वे अपने साथ यहीं प्रचलित अंकों की जानकारी भी ले गये और उसे अपना लिया। उन्होंने इसे इल्म-उल-हिन्दसा (हिन्द की विद्या) नाम दिया। अरबों से इसे पाश्चात्य देशों ने सीखा।"

पुस्तक के सम्बन्ध में कपूर जी ने अपना मन्तव्य इन पंक्तियों के लेखक को लिखे एक पत्र में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है--

"पुस्तक में विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन और अनुशीलन से मैं भारत के गौरवशाली अतीत- विशेषकर विज्ञान के क्षेत्र में-जो ज्ञान अर्जन करता रहा हूँ उसे ही सार-रूप में इस पुस्तक में संकलित किया.... भावना अवश्य यह रही है कि जिज्ञासु पाठक का इस पुस्तक के द्वारा भ्रम मिट जाय कि विज्ञान केवल पश्चिमी देशों की देन है। मानसिक दासता में कुछ कमी आए। देश सेवा के विविध रूप हैं। मुझ अकिंचन द्वारा यही मार्ग अपनाकर सन्तोष प्राप्त किया गया है... ..." कितने हृदयस्पर्शी एवं सहज हैं ये शब्द। विनम्रता सच्ची विद्वत्ता का लक्षण है। श्री श्यामनारायण जी बड़े ही विनम्र, सहृदय एवं आत्मीय व्यक्तित्व के धनी हैं।

प्राचीन भारतीय विज्ञान के सम्बन्ध में व्यापक अज्ञान का कारण यह है कि विदेशी शासक भारतीयों में सदा हीन भावना बनाए रखना चाहते थे इसलिए उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक गौरव के प्रति समुचित सम्मान भावना पनपने ही नहीं दी। उन्होंने शिक्षा के पाठ्य-क्रम इस प्रकार बनाए जिसमें भारतीय ज्ञान की निधि संस्कृत विज्ञान के विद्यार्थियों को नहीं पढ़ाई जाय और संस्कृत में विज्ञान का समावेश न हो पाए-- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। इसलिए श्री श्यामनारायण कपूर लिखते हैं--

"... अंग्रेजी और अंग्रेजियत के दिन-प्रतिदिन बढ़ते प्रभाव ने हीनता की भावना को बढ़ाया ही है कम नहीं होने दिया, कुछ हद तक तो इसे मानसिक दासता की ही संज्ञा दी जा सकती है। आवश्यकता है इस हीन भावना से छुटकारा पाने की। अपने गौरवशाली अतीत से प्रेरणा लेकर हम पुनः विकास की ओर उन्मुख हो सकते हैं। अपनी परम्पराओं की उपेक्षा करके, दूसरों की नकल करके कोई भी वास्तविक उन्नति-पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। स्वतंत्र होकर भी यदि हम मानसिक एवं बौद्धिक दासता से अपने को उन्मुक्त न कर पायेंगे तो उससे बढ़कर हमारी अक्षमता का और क्या प्रमाण होगा।"

श्री श्यामनारायण कपूर ने 'महान वैज्ञानिक परिचय पुस्तक माला' के अन्तर्गत निम्नलिखित वैज्ञानिकों के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में बड़ी रोचक और सरल वर्णन शैली में जीवन चरित्र प्रस्तुत किये हैं-- डॉ० चन्द्रशेखर वेंकटरमन, आचार्य जगदीशचन्द्र बसु, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, श्रीनिवास रामानुजम्, डा० गणेशप्रसाद, डॉ० मेघनाथ साहा और डॉ० शान्तिस्वरूप भटनागर।

श्री कपूर द्वारा लिखित अन्य उल्लेखनीय पुस्तकें हैं-- जीवट की कहानियाँ, विज्ञान की कहानियाँ, जहाज तथा अन्य कहानियाँ, भारतीय वैज्ञानिक, साबुन विज्ञान, एवरेस्ट विजेता शेरपा तेनसिंह, बिजली तथा अन्य कहानियाँ, आविष्कारों की कहानियाँ, राकेट की कहानी, अन्तरिक्ष यात्रा की कहानी। लोकप्रिय एवं रोचक होने के कारण इन पुस्तकों में से अनेकों के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। लेखकीय सफलता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है ?

श्री श्यामनारायण कपूर की लेखन शैली बहुत ही सरल और प्रभावपूर्ण है-- उदाहरण के लिए मेघनाथ साहा के सम्बन्ध में उनके ये शब्द कितने प्रेरणास्पद हैं--

"प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं की स्थापना, संगठन एवं संचालन में प्रमुख भाग लेकर उन्होंने केवल विज्ञान ही नहीं वरन समस्त राष्ट्र की बहुमूल्य सेवायें की थीं। वास्तव में उनके कार्य केवल प्रयोगशाला ही तक सीमित न थे। वे विज्ञान साधना के साथ ही राष्ट्रहित के कार्यों में भी बड़ी लगन और उत्साह से सक्रिय भाग लेते थे। आवश्यकता पड़ने पर

स्वयं भाग लेने के साथ ही वे अपने सहयोगी तथा दूसरे श्रेष्ठ एवं तरुण वैज्ञानिकों को राष्ट्रीय अभ्युदय के कार्यों में सहयोग देने के लिए प्रेरित करते रहते थे....''

राष्ट्रभाषा हिन्दी में उच्चस्तरीय पुस्तकें सुगमता से उपलब्ध कराने के लिए और श्रेष्ठ साहित्य के व्यापक प्रचार--प्रसार के लिए कपूर जी ने सन् 1938 में ''साहित्य निकेतन'' नामक पुस्तक प्रतिष्ठान की स्थापना की। इस पुस्तक प्रतिष्ठान ने 60 वर्षों की अवधि में अनेक उच्च कोटि की पुस्तकें पाठकों को उपलब्ध कराके राष्ट्रभाषा यह संस्थान कपूर जी के निर्देशन में उनके सुयोग्य सुपुत्र मनोज कपूर संचालित कर रहे हैं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी की उल्लेखनीय सेवाओं के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने श्री श्यामनारायण कपूर को 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया है। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ ने उन्हें 'श्रेष्ठ बाल साहित्य साधना (विज्ञान) सम्मान', 'विज्ञान भूषण सम्मान' से समादृत किया है। श्री श्यामनारायण कपूर का साहित्यिक अवदान इतना महत्वपूर्ण और मूल्यवान है, उनकी राष्ट्रभक्ति और उनका राष्ट्रभाषा अनुराग इतना महान है, उनकी भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान में इतनी गहन निष्ठा और आस्था है, वे इतने मनीषी साहित्य साधक हैं कि निश्चय ही वे राष्ट्रीय सम्मान के सहज अधिकारी हैं। उन्हें पद्मश्री जैसे राष्ट्रीय सम्मान और गौरव से अवश्य विभूषित किया जाना चाहिए। ऐसा करना राष्ट्र का पुनीत कर्तव्य है और विज्ञान और साहित्य का सम्मान भी। उत्तर प्रदेश शासन को इस दिशा में पहल करनी चाहिये और यथाशीघ्र यह कार्य सम्पादित किया जाना चाहिए -- समस्त राष्ट्र की कृतज्ञता का यही विनम्र प्रतीक होगा।

विज्ञान परिषद्, प्रयाग साधुवाद की पात्र है जिसने श्री श्यामनारायण कपूर ''विज्ञानभूषण'' का उनकी दीर्घकालीन सेवाओं के हितार्थ सम्मानित करने का निश्चय किया है और ''विज्ञान'' का एक अंक भी श्यामनारायण कपूर सम्मान अंक के रूप में प्रकाशित करने का संकल्प किया है। श्री श्यामनारायण कपूर को हार्दिक बधाई।

2 नवम्बर 98 को कानपुर-यात्रा के दौरान उत्कर्ष अकादमी के संचालक श्री प्रदीप दीक्षित के सौजन्य से मुझे श्रद्धेय श्यामनारायण कपूर के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके ज्ञान गरिमा मंडित, सहज, व्यक्तित्व ने पहली ही दृष्टि में ऐसा प्रभावित व मुग्ध कर दिया कि स्फूर्त अनुभूति हुई--मुझे एक ऋषि का सान्निध्य प्राप्त हो गया है, मेरे सम्मुख साक्षात ज्ञान-पुरुष विद्यमान हैं। 91 वर्ष की आयु में इतनी कर्मठता और साधना, चिन्तन-मनन के प्रति समर्पणशीलता, इतना उत्साह कि प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिक, पुराणों में विज्ञान एवं भारतीयता की खोज के सम्बन्ध में पुस्तकें लिखने और पूरा करने का संकल्प। मुझे उनके व्यक्तित्व और कृतित्व से भावी जीवन के लिए प्रेरणास्पद संबल प्राप्त हो गया है।

श्री श्यामनारायण कपूर शत-शत वर्षों तक इसी प्रकार स्वस्थ रहकर राष्ट्र और राष्ट्रभाषा की अभिवृद्धि में अपना योगदान देते रहें--पुस्तकें लिखते रहें और हमारा मार्ग दर्शन करते रहें--यही परम पिता प्रभु से प्रार्थना और मंगलकामना है।

डी–213 इला अपार्टमेंटस
बी--7 वसुन्धरा एनल्केव,
दिल्ली--110 096

बाल साहित्य के प्रकाशक-लेखक श्री श्यामनारायण जी कपूर

डॉ० राष्ट्रबन्धु

श्री श्याम नारायण कपूर पुस्तक प्रकाशक और लेखक के रूप में सुविख्यात हैं। विज्ञान, अध्यात्म और साहित्य में उनकी विद्वता अप्रतिम है। अपने समय के अनेक राज-नेताओं और साहित्यकारों से उनका निकट का संपर्क रहा है। तीन पीढ़ियों तक की जानकारी उनको है। उनका पत्राचार और पत्र-पत्रिकाओं का प्रचुर संग्रह, हम सबके लिए उपयोगी निधि बन सकता है। यदि हम प्रयास करें, बातचीत करें और उसे कलमबद्ध करते जाएँ तो यह निश्चित है कि प्राप्त ज्ञान अपूर्व और वैविध्यपूर्ण सिद्ध होगा। जीवन की 90 सीढ़ियों को चढ़ने में उनका मनोयोग और संयमित जीवन, हम सबके लिए अपने आप में अनूठा आदर्श है।

श्री कपूर जीवन-यापन के लिए बहुत सरलता से सरकारी नौकरी को ही नियामत मानकर चलाये रखते लेकिन उन्होंने पुस्तक विक्रय और प्रकाशन का कार्य इसलिए चुना जिससे नयी से नयी जानकारी उनको पहले मिल सके और इसके बारे में वे दूसरों को बता सकें। यह लक्ष्य व्यवसाय का हेतु-सेतु बन गया।

प्रकाशक के नाते उनका संपर्क सुधी साहित्यकारों से स्थापित हुआ और इसमें दिनानुदिन प्रगाढ़ता आती गई। व्यावहारिकता की दृष्टि से उन्होंने रायल्टी का पूरा हिसाब रक्खा और अपने लेखकों को पारिश्रमिक का भुगतान किया। लेखकों से उनकी पारिवारिकता भी बढ़ी। स्वयं अध्ययनप्रिय होने के कारण लेखकों से पूरा विचार-विमर्श करके श्री कपूर ने अपने यहाँ की पुस्तकों को तथ्यपरक और ज्ञानपूर्ण बनाने में जिस निष्ठा से कार्य किया, उससे व्यावसायिकता प्रभावित हुई और पुस्तकों की बिक्री बढ़ती चली गई। पाठकों की पठनीयता में भी रुचिशुचि का निखार आया।

आजकल की तरह पुस्तकें बिक्री के लिए उन दिनों तैयार नहीं की जातीं थीं। उनका लक्ष्य पाठकों से सीधा संबंध बनाये रखना था। कमीशन के माध्यम से केवल बिक्री, उनका प्रयोजन नहीं था। श्री कपूर को इस बदलते जमाने में पुस्तक-व्यवसाय की दलाली रास नहीं आती। वे कहते हैं कि दलाल एक दो हों तो उनको संतुष्ट किया जाए लेकिन अब पाठक नहीं दलाल ही दिखलाई देते हैं। यही कारण है कि पुस्तकों का कलेवर और प्रस्तुतीकरण तो उन्नत है लेकिन विषयवस्तु में ह्रास और उत्तरोत्तर गिरावट है। पाठकों, लेखकों और प्रकाशकों के पारस्परिक कोण बनने चाहिए यह सब नहीं हो पाता। आजकल पुस्तकें खरीद के लिए तैयार की जाती हैं और एड़ी-चोटी का जोर लगाकर या ले-दे कर खपाई जाती हैं।

श्री कपूर का स्थापित प्रतिष्ठान 'साहित्य निकेतन' आज भी मात्र दुकान नहीं है। यह क्लब भी है और संस्था भी है। यहाँ कुछ प्रतिष्ठित साहित्यकार नियम से आते हैं और अपनी विद्वता की छाप छोड़ते हैं - आपस में उनकी पहचान बनती है और ज्ञान-विज्ञान का आदान-प्रदान होता है। श्री श्याम नारायण जी कपूर की तरह ही उनके सुपुत्र श्री मनोज कपूर मनोविज्ञान के पंडित हैं। समाज, इतिहास, शिक्षा जैसे विषयों पर गंभीर चर्चाएँ भी वहाँ होती हैं। सर्व श्री रामकृष्ण तैलंग, सिद्धेश्वर अवस्थी, विष्णु त्रिपाठी, सुमन्त मिश्र, डॉ० बालकृष्ण गुप्त, श्री प्रकाश गुप्त एडवोकेट जैसे मनीषी विद्वान जब चर्चा करते हैं तो मनोरंजन और ज्ञानार्जन के तटों को छूकर लगता है कि जीवन्तता गंगा की तरह प्रवाहमान है। श्री श्याम नारायण कपूर की उपस्थिति सरसैयाघाट (कानपुर का सुविख्यात घाट) की शोभा बन जाती है।

श्री श्याम नारायण कपूर ने इतिहास और आध्यात्म पर बहुत कुछ लिखा है - लेकिन विज्ञान लेखक के रूप में उनकी चर्चा का कारण शायद इसलिए है कि उनकी इस विषय की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। व्यावहारिकता की दृष्टि से उनकी विज्ञान पुस्तकें बहुत उपयोगी हैं। इनमें भाषा जंजाल नहीं है। विषय की स्पष्टता में कहीं से भी अवरोध नहीं है।

श्री श्याम नारायण कपूर ने बच्चों के लिए विज्ञान पुस्तकों का लेखन तब शुरू किया जबकि विज्ञान केवल पाठ्यक्रम में था और कक्षाओं के अतिरिक्त किसी पुस्तकें ललित साहित्य का विषय नहीं बनी थीं। सन् 1921 से स्वदेशी आन्दोलन के प्रभाव में इस बात की आवश्यकता भी अधिक गंभीरता से स्वीकार की गई कि भारतीय विज्ञान दृष्टि और भारतीय वैज्ञानिकों की समानान्तर जानकारी को सार्वजनिक बनाया जाए। पाश्चात्य वैज्ञानिकों और उनके प्रचलित सिद्धान्तों के शोर में परतंत्र भारत के वैज्ञानिकों के बारे में कुछ लिखना या कहना किसी नक्कारखाने में तूती की आवाज को महत्व देना था या सूर्य के प्रकाश के सामने समानान्तर सामना करने के लिए दीपक जलाना था। अंग्रेजों के लिए यह खुला विद्रोह था जबकि भारतीयों के लिए चुनौती देना था। भारतीय वैज्ञानिकों से सम्बन्धित तथ्यों को संकलित या संग्रहीत करना किसी तितली के कठिन काम जैसा ही निष्ठापूर्ण था क्योंकि श्री कपूर की कलम से भारतीय वैज्ञानिक (1942) के रूप में वह मधुसंचय निकला जो कि छात्रों के स्वास्थ्य के लिए विशेषकर बहुत हितकारी था।

पाठ्यक्रम का विज्ञान ललित साहित्य नहीं था। इस आवश्यकता पूर्ति में श्री कपूर ने 'आविष्कारों की कहानियाँ' पुस्तक तैयार की, इसमें रेलगाड़ी और स्टीफेन्स की कहानी, मोटरकार की कहानी, आधुनिक जहाज की कहानी, हवाई जहाज, बिजली की कहानी, तार या टेलीग्राफ आदि विषय सम्मिलित थे।

इस पुस्तक में प्रारंभिक जानकारी कहानी की चासनी के साथ दी गई है। शैली रोचक है। सहज सरस बोधगम्य। बानगी आप भी देखिए : ''गरीबी की वजह से बचपन में जार्ज की पढ़ाई-लिखाई का कोई बन्दोबस्त नहीं किया जा सका। स्कूल जाने की बजाय वह जंगलों में गाएँ और भेड़ें चराता और कभी फेरी लगाकर सौदा बेचता। कुछ बड़ा होने पर वह भी उसी खान में कुली का काम करने लगा जिसमें उसका पिता काम करता था।''

इस पुस्तक में दैनिक जीवन से संबंधित विषयों पर रोचक जानकारी दी गई है इसलिए इसे माध्यमिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश द्वारा हाईस्कूल एवं इण्टरमीडिएट कक्षाओं के प्रारंभिक हिन्दी के पाठ्यक्रम में स्वीकृत किया गया। इस प्रकार दुर्लभ पुस्तकों से ज्ञान का कोष जनसमुदाय में खुले हाथों लुटाया गया।

'जीवट की कहानियाँ' के लेखक श्री कपूर ने दुर्गम हिमालय की चोटियों पर चढ़नेवालों, ध्रुवों की खोज करनेवालों, ज्वालामुखी में पैठने वालों, घोड़े पर दस हजार मील की लंबी यात्रा करने वालों, सिने चित्रों के लिए जान हथेली पर लेकर अचरजभरे काम करने वालों और विज्ञान की रहस्यभरी दुनियाँ में रहने वालों के बारे में जितनी रोचकता से लिखा है, उससे हिन्दी का प्रचार-प्रसार बढ़ा। क्रमशः लोगों में यह आत्मविश्वास भी बढ़ा कि वे भी आश्चर्यपूर्ण कार्य कर सकते हैं। यह पुस्तक मध्य प्रदेश के हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में वर्षों निर्धारित रही है।

महान् वैज्ञानिक परिचय माला के अन्तर्गत श्री कपूर ने महान् वैज्ञानिक डॉ० चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन्, विज्ञानाचार्य जगदीश चन्द्र बसु, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, महान् गणितज्ञ रामानुजन् एवं डॉ० गणेश प्रसाद, भौतिक विज्ञान के विद्वान डॉ० मेघनाथ साहा, डॉ० शान्तिस्वरूप भटनागर पर विस्तृत पुस्तकें लिखीं। इन पुस्तकों में भारतीय मनीषा को सम्यक आदर प्रदान किया गया जिससे भारतीय विद्यार्थियों का मनोबल और उत्साह बढ़ा। प्रेरक प्रसंगों के लेखक के रूप में श्री कपूर की शैली पाठकों को शुरू से ही बांध लेती थी। उदाहरण के लिए ''डॉ० मेघनाथ साहा उन थोड़े से महापुरुषों में थे जिन्होंने अत्यन्त साधारण से देहाती परिवार में जन्म लेकर अपने महत्वपूर्ण कार्यों से देश को गौरवान्वित किया। उसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की। जिस देहात में उन्होंने जन्म लिया वह बहुत ही पिछड़ा हुआ था। उसके पिछड़े होने का अनुमान लगाने के लिए केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि गाँव से निकटतम हाई स्कूल तीस मील और मिडिल स्कूल सात मील की दूरी पर था। गाँव में शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं था। नाम लेने को एक प्राइमरी स्कूल अवश्य था जिसमें साधारण अक्षर ज्ञान कराने का प्रबन्ध था। साक्षर व्यक्ति ही वहाँ पढ़े-लिखे माने जाते थे।''

इस श्रृंखला की सभी पुस्तकें वैज्ञानिकों के संपूर्ण व्यक्तित्व को 'गागर में सागर' भरने में सफल हैं।

(शेष पृष्ठ [illegible] पर देखें)

आद्यान्त स्वदेशी पुस्तक : 'भारतीय वैज्ञानिक' —एक विवेचन

पं० रामकृष्ण तैलंग

बात उन दिनों की है जब लेखक (श्री श्याम नारायण जी कपूर) डी० ए० वी० कालेज, कानपुर के छात्र थे, हास्टल में रहते थे। पता चला कि पूज्य पुरुषोत्तम दास जी टण्डन पड़ोस के ही एक स्थान पर ठहरे हुए हैं। टण्डन जी के त्याग, नितान्त निस्वार्थ जीवन तथा कठोरतम आत्म-नियंत्रण की चर्चा विद्यार्थी वर्ग में फैली थी। वातावरण में भी राष्ट्र भक्ति तथा गहमा-गहमी थी। राजनेता बराबर पुकार रहे थे कि स्वदेशी अपनायें-विदेशी वस्त्रों की होली जलाएं, छात्र राजनीति में आवें आदि-आदि। टण्डन जी से मिलने कपूर साहब सुबह-सुबह पहुँच गये। पहला प्रभाव उनके नाश्ते को देखकर पड़ा : भीगे कच्चे चने, कच्ची मूंग की दाल। दूसरा प्रभाव पड़ा : स्वदेशी की नयी अवधारणा का। टण्डन जी ने कहा था - केवल सत्याग्रह में भाग लेना ही देश सेवा नहीं है। और कुछ नहीं तो स्वदेशी एवं मातृ भाषा के प्रचार-प्रसार में सभी सक्रिय भाग ले सकते हैं..... देशी आचार-व्यवहार, देश की भाषा और भारत के उच्च आदर्शों को अपनाना और प्रचार करना भी स्वदेशी आन्दोलन के अंग हैं। श्री कपूर लिखते हैं : "देशी भाषा और देशी आचार-विचार का तो नाम भी न लिया जाता था। मैंने टण्डन जी द्वारा दिया स्वदेशी का यह प्रेरक संदेश गुरु मंत्र के समान ही स्वीकार किया" तबसे करीब 70 वर्ष हो गये कपूर साहब ने स्वदेशी की इस धारणा को अपने जीवन का आधार-सिद्धान्त बना लिया है। तन-मन से, स्वदेशी भाव भरा लेखन भी उनकी इसी स्वदेशी ज्योति का प्रभाव है।

पूरी बात यहीं नहीं हुई। लेखक श्री कपूर को बात घर कर गई। वे भारतीय गौरव, उच्च आदर्शों को पुन : स्थापित तो नहीं कर सकते थे, अकेले का यह काम न था, हाँ मातृ-भाषा को विदेशी भाषा की तुलना में प्रतिष्ठा दिलाने का प्रयास कर सकते थे, भारत के उच्च आदर्शों का परिचय तो करा ही सकते थे। वे निष्ठापूर्वक इस कार्य में जुट गए और गत वर्षों में लगभग 300 लेखों तथा 18 छोटी-बड़ी पुस्तकों द्वारा स्वदेशी गौरव की पुनः स्थापना में संलग्न हैं।

इसी क्रम में श्री कपूर की 'भारतीय वैज्ञानिक' नामक पुस्तक एक स्वदेशी पुस्तक है, स्वदेशी महायज्ञ में एक पुनीत आहुति है।

और प्रसन्नता की बात है कि स्व. टण्डन जी ने भी लेखक श्री कपूर के इस अभियान को अपना हार्दिक आशीर्वाद दिया। कई वर्ष बाद श्री कपूर टण्डन जी से मिलने पहुँचे और 'भारतीय वैज्ञानिक' की प्रति उन्हें भेंट की, साथ ही निवेदन किया कि आपकी प्रेरणा से यह पुस्तक लिखने में समर्थ हुआ हूँ। उन्हें आश्चर्य हुआ, तब उन्हें पिछली भेंट (1930 ई०) का स्मरण दिलाया। पूज्य टण्डन जी ने वात्सल्य भाव से कई बातें पूंछीं और आशीर्वाद दिया।

उस वार्ता का एक उज्ज्वल पक्ष यह भी है कि "भारतीय वैज्ञानिक" पुस्तक के तरुण लेखक ने पुस्तक में अपना नाम मात्र दिया था, नाम के साथ कोई उपाधि न दी थी। पाठकों को याद होगा कि उन दिनों बी० ए०, एम० ए०, साहित्याचार्य, महामहोपाध्याय, आदि देशी-विदेशी उपाधियों का बड़ा चलन था और कई प्रसिद्ध विद्वानों के तो बी० ए० आदि विरुद बन गए थे (जैसे मातृ भाषा के प्रचारक-विमल बी० ए० पास। सौम्यशील निधान बाबू...) और श्याम नारायण जी उपाधि पा चुके थे, और वह भी प्रसिद्ध एक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संस्थान से। अतः

नाम के साथ उपाधि न लिखना साधारण मोहत्याग न था। महापुरुष राजर्षि टण्डन जी की नजर इस पर पड़ी और उन्होंने आशीष दिया - जिसका कारण है कि बिना उपाधि के भी श्री श्यामनारायण कपूर अपने जीवन से भी बड़े और यशस्वी हो गए हैं (बिगर दैन हिज लाइफ)।

जैसा कि विदित है श्री कपूर साहब, जिन्हें हम लोग आदर से 'भाई साहब' पुकारते हैं, लेखन के क्षेत्र में सोद्‌देश्य आये हैं। मात्र मनोरंजन या वक्त काटने के लिए उनका लेखन नहीं रहा है। यही कारण है कि उनके लेख कभी-कभी इसलिए वापस हुए हैं कि उनका उच्चस्तर पत्रिका के लिए बोझिल था। 'सरस्वती' पत्रिका का ऐसा ही उल्लेख हमें मिलता है।

'भारतीय वैज्ञानिक' पुस्तक लगभग दस वर्ष के प्रयास से तैयार हुई थी। इसका एक स्रोत और भी है। सन् 1931 में आगरा विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण करने के लिए श्रीयुत् सी० वी० रमन को आमंत्रित किया गया था। उन्हें नोबेल सम्मान मिला था। किन्तु उनके जीवन तथा उपलब्धियों की जानकारी बहुत थोड़े लोगों को थी। उनका चित्र भी दुर्लभ था। श्री कपूर को उत्सुकता हुई। कलकत्ता म्युनिसिपिल गजट में एक चित्र निकला था। अपने प्रोफेसरों से जिक्र किया तो उन्होंने परामर्श दिया कि खुद रमन महोदय को पत्र लिखो। श्री कपूर का पत्र पाकर रमन महाशय बड़े प्रसन्न हुए और विवरण चित्र सहित भेजा। फिर जब एच० बी० टी० आई०, कानपुर में रमन महोदय पधारे तब लेखक ने प्रकाशित पुस्तक भेंट की। वे हिन्दी भली-भाँति जानते थे ही। उन्होंने पुस्तक की बहुत सराहना की। इस मध्य श्री कपूर ने उक्त पद्धति पर श्री बीरबल साहनी, सर शान्ति स्वरूप भटनागर, सर शाह मुहम्मद सुलेमान आदि से भेंट की और पत्र लिखे। उनके प्रामाणिक वर्णन लिये तथा (स्व०) गोरख प्रसाद को पाण्डुलिपि दिखाई। उन्होंने जो सम्मति दी वह पुस्तक में संकलित की गई है।

इस प्रकार जिसका आरम्भ एक साधारण वार्तालाप से हुआ वह एक समृद्ध ग्रन्थ बना और उसकी ऐसी बन बड़ी कि वह अनेकानेक पुस्तकों में ग्रन्थित होती हुई 1998 ई० में 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' के रूप में प्रकट हुई।

वस्तुतः भारतीयता के प्रति श्री कपूर का एक ऐसा संवेगात्मक मोह है कि वे इस दायरे में समस्त वैश्विक ज्ञान-विज्ञान को समेटने की चेष्टा करते भी कभी-कभी दिखाई देते हैं। यद्यपि इस विषय में उचित शंका कुछेक को हो सकती है किन्तु श्री कपूर की निष्ठा अडिग है। वे वर्तमान अंग्रेजी शिक्षा को ही इसका दोषी मानते हैं। इस प्रकार कपूरजी हिन्दी वैज्ञानिक लेखन के पितामह हैं जिन्होंने भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनी को पाठ्य-ग्रन्थों में सम्मिलित कराया है, उनको वही और समान सम्मान मिलने लगा है जो साहित्यकार और राजनेताओं की जीवनी को मिलता रहा था। यह उनकी बहुत बड़ी देन है।

इन पुस्तकों के लेखन के दौरान श्री कपूर राहुल जी, बनारसी दास चतुर्वेदी, प्रेमचंद, निराला, भगवती चरण वर्मा आदि के सम्पर्क में आये। उनके संस्मरण भी श्री कपूर की दूसरी लेखन-विधा है। उनके कई लेख उ० प्र०, म० प्र० के माध्यमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हुए हैं।

'भारतीय वैज्ञानिक' पुस्तक की रचना की उपर्युक्त कथा में इसके लेखन का उद्‌देश्य भी स्पष्ट हो जाता है। लेखक श्री कपूर ने कहीं उल्लेख किया है कि स्व० हीरालाल खन्ना ने उन्हें जूल्स वर्न की Travel to the Centre of Earth और एच० जी० वेल्स की - Voyage to Moon पुस्तकें दीं और कहा कि इस तरह की चीज हिन्दी में भी होनी चाहिए। स्व० प्रेमचंद जी, गणेश शंकर विद्यार्थी जी, बनारसीदास चतुर्वेदी प्रभृति महापुरुष भी भारतीय भाषाओं का भण्डार हर प्रकार के ज्ञान-विज्ञान से हर विषय की श्रेष्ठ पुस्तकों से भरा देखना चाहते थे। अतः श्री कपूर को यह उचित लगा कि विज्ञान के क्षेत्र में व्याप्त भ्रमों का निराकरण कर भारतीयों - हिन्दी भाषियों का ज्ञानवर्धन हो। धीरे-धीरे पुनर्जागरण के फलस्वरूप भारतीयों में ज्ञान-विज्ञान की नई ललक आई और एक पूरी पीढ़ी भारतीय वैज्ञानिकों की आ गई जिसने संसार के बड़े से बड़े वैज्ञानिक का सिद्धान्त भी चूर-चूर कर दिया। प्रो० सत्येन बोस ने आइन्स्टीन की 'यूनीफाइड फील्ड थ्योरी' की खामियाँ उन्हें ही बताई और नयी क्वान्टम भौतिकी विकसित की। इसी पर मौलिक कणों का नामकरण 'बोसोन' हुआ (भारतीय वैज्ञानिक पृष्ठ 467)। डॉ० महेन्द्र लाल सरकार ने 1876 ई० में 'इण्डियन एसोशिएशन ऑफ साइंस' की स्थापना कैसे घोर संकटों और विरोधों के बीच की थी यह हमारे इतिहास का गौरवमय पृष्ठ आम आदमी की नजर से अछूता ही था। इसी संस्था में जब सर सी० वी० रमन

आये तो उन्हें विश्व-ख्याति मिली। रामानुजन् की महानता, डॉ० गणेश प्रसाद, प्रफुल्लचंद राय महाशय, मेघनाथ साहा प्रभृति महान् भारतीयों की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ आम आदमी तक पहुँचाना किसी प्रयोगशाला में कार्य करने से कम नहीं हैं। आज यह तुलनात्मक दृष्टि से सुगम लग सकता है क्योंकि प्रचार-प्रसार के नये-नये साधन उपलब्ध हो गये हैं। सन् 1941 में पुस्तकें और लेख ही उचित माध्यम थे। इसका भरपूर उपयोग श्री कपूर ने किया।

'भारतीय वैज्ञानिक' के लिखने का उद्देश्य क्या था इसे हम समझ लें तो बात और खुलासा हो जायेगी। सन् 1876 में भी भारतीय लोग विज्ञान विषयक कार्य को कैसे समझते थे, इसी पुस्तक के पृष्ठ 27 से उद्धृत है : ''विभिन्न कारणों से इस समय भारतीय विज्ञान-संसार से विलग रहने लगे हैं। . . . सारा का सारा देश बंजर पड़ा है। क्या भारतीय युवक विज्ञान के चमत्कारों को सदैव उसी दृष्टि से देखते रहेंगे जैसे बाजीगर के तमाशे को . . .''। डॉ० गोरख प्रसाद जो प्रसिद्ध गणितज्ञ थे, 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक भी थे, वे लिखते हैं - ''विज्ञान परिषद् और उसके मुख-पत्र 'विज्ञान' से वर्षों का सम्पर्क रहने के कारण मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि हिन्दी में अच्छे वैज्ञानिक लेखकों का कितना अभाव है . . . इस लिए प्रस्तुत पुस्तक के लिखने के लिए हिन्दी संसार श्री श्याम नारायण कपूर का चिर ऋणी रहेगा'' (भारतीय वैज्ञानिक, दो शब्द)।

भारतीय वैज्ञानिकों का चरित्र वर्णन करके श्री कपूर ने हिन्दी के बहुत बड़े अभाव की पूर्ति 1941 में की थी। इसके लिए उन्होंने अपने भाई श्री रामनारायण कपूर ('विश्वभारती' के सहयोगी लेखक) को कई विज्ञानवेत्ताओं के पास भेजा, उनके जीवन वृत्त, चित्र और सामग्री एकत्र की तब उन्होंने ऐसा वर्णन किया कि उस पर हर विज्ञानवेत्ता ने सराहना की मुहर लगाई। सर सी० वी० रमन की टिप्पणी उद्धृत करने योग्य है : ''मुझे पूरी आशा है कि विज्ञान का प्रत्येक शिक्षक और विद्यार्थी इस पुस्तक को अवश्य पढ़ेगा''।

'भारतीय वैज्ञानिक' कोई छोटी पुस्तक नहीं है जो चलताऊ मैटर से भर दी गई हो। 476 पृष्ठों में 18 श्रेष्ठ वैज्ञानिकों की जीवनी, विज्ञान-साधना, अन्वेषण और आविष्कारों का प्रामाणिक वर्णन दिया है। इसमें यह भी उल्लेखनीय है कि लेखक ने प्रस्तावना के प्रथम सात अनुच्छेदों में भारतीयों की प्राचीन विज्ञान साधना का जो सजीव वर्णन किया था वही उनकी आगामी वृहदाकार रचनाओं - ''प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' तथा 'प्राचीन भारत की वैज्ञानिक विभूतियाँ' की पृष्ठ-शिला बनी। सुविचारित तथा लगन से सोचे गये विषयों में हमेशा एक अनुवर्तिता रहती है जो श्री कपूर की लेखन-शैली का एक गुण है, विषयों का विस्तृत जंजाल नहीं है उनका लेखन।

मेरी तो स्पष्ट धारणा है कि आज भले ही विज्ञान की विभूतियों के रंग-बिरंगे चित्रों वाले बहुत से ग्रन्थ बाजार में अधिक बिक रहे हों, श्री श्याम नारायण कपूर ने हिन्दी विज्ञान लेखन में वही काम किया है जो स्वदेशी आन्दोलन का राष्ट्रभक्त सेनानी कर रहा था। वे राष्ट्रभाषा के स्वदेशी सेनानी हैं - राष्ट्रभाषा सेनानी हैं। स्वदेशी का अर्थ जैसा राजर्षि टण्डन जी ने उन्हें बताया था वही उन्होंने निभाया - राष्ट्रभाषा की सेवा भी स्वतंत्रता आन्दोलन का एक भाग था। श्री कपूर ऐसे ही सेनानी हैं।

अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य,
50/195 नौघड़ा, कानपुर -208001

श्री कपूर की नवीनतम कृति 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' (अन्तरंग समीक्षा)

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

सुप्रसिद्ध विज्ञान लेखक श्री श्याम नारायण कपूर ने 90 वर्ष की आयु में भी 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' नामक एक नयनाभिराम ग्रंथ की रचना करके अपनी कर्तव्यनिष्ठा का परिचय दिया है। यह इस बात का भी सूचक है कि अभी भी हमारी प्राचीन थाती का सही-सही मूल्यांकन होना शेष है जिसकी ओर विरले ही लेखकों का ध्यान जाता है। इस पुस्तक के लेखन में श्री कपूर जी ने हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी के सर्वाधिक ग्रन्थों का मंथन करके जो अमूल्य रत्न प्राप्त किये हैं उन्हें 385 पृष्ठों में 16 अध्यायों के अन्तर्गत व्यवस्थित किया है। ये अध्याय हैं, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, जन्तु विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, कृषि विज्ञान, रसायन, भौतिक विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, सूर्य विज्ञान एवं प्रकाश, शिल्प यंत्र शिल्प, आध्यात्मिक यंत्र, विमान विधा, वेद और विज्ञान तथा पुराणों में विज्ञान। पुस्तक के अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची है। पुस्तक की छपाई सुन्दर है, वह मोटी जिल्द से युक्त है और उसमें वर्तनी की एक भी भूल नहीं मिलती। पुस्तक सन्दर्भ ग्रंथ के रूप में संग्रहणीय है।

लेखक ने भूमिका में कुछेक स्पष्टीकरण किये हैं -

1. "इसकी सामग्री संकलन में अनेक ग्रन्थों की सहायता ली गई है - - - वास्तव में लेखक का योगदान केवल इतना है कि उसने मन्तव्यों का सार रूप में अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है।"

2. "इस ग्रन्थ में वैदिक काल से लेकर विदेशी आक्रमण तक की प्रगति की समीक्षा की गई है।"

3. "अंग्रेजी और अंग्रेजियत द्वारा प्रदत्त हीन भावना से ग्रस्त इस कथन कि "विज्ञान पश्चिम की ही देन है" का प्रतिकार भी हो जावेगा।

इस पृष्ठभूमि में पुस्तक का आद्योपान्त पठन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि कपूर साहब दिन प्रति दिन अंग्रेजी तथा अंग्रेजियत के बढ़ते प्रभाव के कारण उत्पन्न हीन भावना से मर्माहत हैं। वे नई पीढ़ी को बताना चाहते हैं कि हमारे ऋषि मुनि ज्ञान-विज्ञान का अपूर्व भण्डार छोड़ गये हैं। इसीलिए इतना वृद्ध होते हुए स्वतन्त्रता की पचासवीं वर्ष गांठ पर उन्होंने यह पुस्तक लिखी। सचमुच अत्यन्त सराहनीय एवं सामयिक प्रयास है। जहाँ तक सामग्री के संयोजन की बात है, वह पृथक-पृथक अध्यायों में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में हुई प्रगति को दर्शाने वाली है। उन्होंने वेदों और पुराणों के अतिरिक्त राजा भोज तथा गुप्त काल तक के सारे तथ्यों को बड़े परिश्रम से संजोया है। इस तरह प्राचीन भारत का पूरा-पूरा नक्शा सामने खिंच जाता है। वेद ज्ञान के भंडार हैं ही। विदेशी लेखकों ने उनका अध्ययन करके जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनका भी यथास्थान उल्लेख हुआ है। किन्तु इस पुस्तक में जो विशेषताएँ मुझे दिखीं वे निम्नवत् हैं -

1. कुछ शब्दों की सुस्पष्ट व्याख्या - यथा रस, रसायन (पृष्ठ 107), शिल्प (209), तंत्र, यंत्र, मंत्र, अष्टधातु (पृष्ठ 203)

2. कुछ नवीन प्रसंग- यथा सूर्य विज्ञान (236-239), विचारगोष्ठियाँ (पृष्ठ (91), जीवानन्दम नाटक (पृ० 106), रस शास्त्र (पृ० 99), सुश्रुत का विदेशों में भी अध्ययन (पृ० 108), शालिहोत्र संहिता (पृ० 126), पराशर कृत वृक्षायुर्वेद (पृ०132), बिजली की बैटरी (पृ० 229), भोजराज का योगदान (पृ० 101, 126), वर्षा और यज्ञ (पृ० 163), पीपल वृक्ष द्वारा रात में आक्सीजन का बाहर निकाला जाना (पृ० 149),

अगस्त्य का विद्युत उत्पादन (पृ० 229), प्राचीन रसायन शास्त्री (पृ० 180)।

3. कुछ नवीन शब्द - यथा तुरीय यन्त्र (दूरबीन), मित्र (हाइड्रोजन), वरुण (आक्सीजन)।

4. कुछ प्रयोगों तथा प्रतीकों का विशद वर्णन - यथा वनस्पति सजीव हैं (पृष्ठ 142), यज्ञ से वर्षा (पृष्ठ 163), सोम की व्यापकता (332), गंगावतरण (334), वाराह अवतार (पृष्ठ 335), वामन अवतार (पृष्ठ 343), उषा उपाख्यान (पृष्ठ 346) तथा कुछ वैदिक प्रतीक (पृष्ठ 346)।

5. कुछ ऋषियों तथा ग्रंथों की अनुमानित तिथियां - यथा चरक 1000 ई० पू०), धन्वन्तरि (6065 ई० पू०), शालिहोत्र संहिता (800 ई० पू०) , सुश्रुत (600 ई० पू०) पतञ्जलि (200 ई० पू०) तथा पाराशर (ईसा के समकालीन)।

श्री कपूर ने विज्ञान के पाठकों के लिए ये तिथियाँ निकाल कर बहुत बड़ा उपकार किया है जिससे विज्ञान के इतिहास को समझने में सरलता होगी।

श्री कपूर को विदेशियों द्वारा वेदों को ''सरल कृषकों के कवित्व पूर्ण गीत'' कहना या ज्योतिष अथवा आयुर्वेद को ''पश्चिम की देन'' कहना बिल्कुल सही नहीं। वे स्थान-स्थान पर कहते हैं कि भारत गणित और ज्योतिष में अग्रणी रहा है। भारतीय चिकित्सा का पूरे यूरोप में प्रचार था (पृष्ठ 87)। आदि-आदि।

श्री कपूर का दृढ़ विश्वास है कि भारत में विज्ञान की अवनति का कारण कुछ वर्जनाएं है। उदाहरणार्थ मनुस्मृति में द्विजों द्वारा मानवशव का स्पर्श वर्जित है जिसके फलस्वरूप उच्च वर्ण के लोग शवविच्छेदन कार्य से विरक्त हो गये। बौद्ध और जैन मतावलम्बियों के अहिंसा परमोधर्मः ने कम हाथ नहीं बँटाया।

मुझे पूरी पुस्तक में दो ही बातें अटपटी लगी हैं - एक तो तांत्रिक सम्मेलन (पृष्ठ 342) की उपलब्धि को विज्ञान की प्रगति मानना तथा पाराशर के कृषि अवदान (पृ० 161) को चलताऊ ढंग से लेना। वस्तुतः पाराशर का 'कृषि पाराशर' नामक बृहद ग्रंथ प्राप्त है जिसका उल्लेख मैंने 'भारतीय कृषि का विकास (1961) नामक पुस्तक में किया है।

श्री कपूर ने अग्नि को बिजली मानकर (पृ० 212/213) एक अटपटी व्याख्या की है।

इसी तरह शायद श्री कपूर ने आर्यभट को आर्यभट्ट (पृष्ठ 60) और उनके ग्रंथ को आर्यभट्टीय लिखा है।

यद्यपि श्री कपूर के पूर्व वेदों के प्रखर अध्येता स्वामी सत्य प्रकाश ने ''वैज्ञानिक विकास की परम्परा'' नामक पुस्तक (1952) प्रकाशित की थी किन्तु उसमें अनेक न्यूनताएं थीं। इधर डॉ० विष्णुदत्त शर्मा ने भी आर्ष विज्ञान पर एक पुस्तक लिखी है किन्तु श्री कपूर की आलोच्य पुस्तक प्रामाणिक सामग्री का खुलकर विश्लेषण करती है। वे ऋषियों मुनियों की कल्पनाशक्ति एवं अन्तर्प्रज्ञा की दाद देते हैं। हिन्दू ज्योतिर्विदों और पौराणिकों ने आज से हजारों वर्ष पूर्व सृष्टि की आयु के जो आकलन किये थे वे आज के वैज्ञानिक साधनों द्वारा पुष्ट हो रहे हैं यह कम सन्तोष की बात नहीं है।

उनका मत है कि हमारे वैज्ञानिकों के अनिवार्य रूप से संस्कृत भाषा की शिक्षा दी जानी चाहिए, तभी वे प्राचीन ज्ञान के भंडार का उद्‌घाटन कर सकेंगे। ''हमारे देश में अब संस्कृत और संस्कृत में उपलब्ध वैज्ञानिक ग्रन्थों की जितनी उपेक्षा है। उसके सर्वथा विपरीत विदेशी विद्वान उनके महत्व को आँकते हुए बड़े परिश्रम और प्रचुरधन व्यय करके उनके विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए सचेष्ट हैं।'' तो फिर हम पीछे क्यों हटें ?

प्रधानमंत्री,
विज्ञान परिषद, प्रयाग

श्याम नारायण कपूर जी द्वारा महापुरुषों के संस्मरण

विज्ञान विषयक लेखन के साथ-साथ श्री कपूर ने महापुरुषों के संस्मरण भी लिखें हैं। भारत के अनेक देश-सेवकों, साहित्य मनीषी जनों से उनका व्यक्तिगत संपर्क रहा जिसको उन्होंने संस्मरणात्मक शैली में लिखा। उनके लेख काफी लोकप्रिय हुए, एक लेख विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य पुस्तक में भी सम्मिलित किया गया है। ये लेख शैली व भाषा की विशेषता की दृष्टि से चर्चा योग्य माने गए हैं। सभी लेख वर्णित महापुरुष, की विशेषता तथा लेखक की श्रद्धा भावना से भरे हैं। इन साहित्यिक संस्मरणों में से कुछ की बानगी दी जा रही है। इन निबन्धों की मौलिकता यह है कि लेखक के जीवन की दिशा-धारा निर्धारित करने में उक्त चरित्र नायक का बड़ा योगदान है यह रेखांकित है इसलिये ये संस्मरण नहीं साहित्यिक निधि हैं।

सम्पादक

■

प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना : व्यक्तिगत संस्मरण

एच० बी० टी० आई० में प्रवेश के पूर्व वैज्ञानिक विषयों पर मेरे कुछ निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। खन्ना जी ने भी इन्हें देखा। मुझे बुलाकर कुछ और अधिक रोचक वैज्ञानिक लेख लिखने को परामर्श दिया। उन्होंने वैज्ञानिक कथा लेखक जूल्स वर्न की एक पुस्तक - Travel to the Centre of Earth और अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्ध के लेखक एच० जी० वेल्स की सद्यः प्रकाशित पुस्तक - A Journey to Moon देकर उन्हें पढ़ने ही नहीं वरन् उनके आधार पर हिन्दी में वैज्ञानिक कथा लिखने का सुझाव दिया। पुस्तकें पढ़ने और उन पर कार्य करने की प्रगति की जानकारी देते रहने का आदेश दिया। पुस्तकें पढ़कर उनके कुछ पृष्ठ अनुवाद करके भी उन्हें दिखलाये। उनका आग्रह था कि अनुवाद के साथ उनका भारतीयकरण भी होना चाहिए तदनुसार प्रयास किया। दो-तीन अध्याय लिखे, उन्होंने पढ़कर सन्तोष भी व्यक्त किया, परन्तु कार्य आगे न बढ़ सका। मेरी अपनी विवशताएं थी। प्रातः 9 बजे से शाम 5 बजे तक का समय तो इंस्टीट्यूट के लिए बंधा था, फिर कुछ समय पाठ्यक्रम की तैयारी और अध्ययन करना आवश्यक था, पुस्तक के लिए जितना समय और चिन्तन की आवश्यकता थी वह मैं न दे पाता था। मेरी इस कठिनाई को उन्होंने सहानुभूतिपूर्वक समझा और मुझे दत्तचित होकर अध्ययन में लगने को कहा। इस प्रकार चन्द्रलोक यात्रा सम्बन्धी पुस्तक का लेखन कार्य स्थगित हो गया। इस प्रकार के लेखन को प्रोत्साहन देना खन्ना जी की सुरुचि का ही परिचायक है। अब तो चन्द्रलोक-अभियान सफल हो चुका है। मानव वहाँ से सकुशल वापस भी आ चुका है।

खन्ना जी से समय-समय पर मिलता रहता था, उनके मनीराम बगिया के निवास के पास ही राजगदुदी-हटिया में किराये का मकान ले रखा था। अतः इस विषय में भी उनसे परामर्श किया। उन्हें भी अपनी कठिनाई बतलाई। सबकुछ सुनकर कहा 'काम करने से डरते हो। समय निकाल कर इस कार्य को अवश्य करो।' इतना ही नहीं, उन्होंने उसी दिन नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी और हिन्दुस्तान एकेडेमी,

इलाहाबाद को अपने प्रकाशन मेरे पास बिक्री के लिए भेजने को पत्र लिख दिया। इस प्रकार उनके प्रोत्साहन से 'साहित्य निकेतन' का श्रीगणेश हुआ। यह तो मुझे बहुत बाद में मालूम हुआ था कि वे इलाहाबाद युनिवर्सिटी में अध्ययन करते हुए आर्थिक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी कितने परिश्रमी और स्वावलम्बी विद्यार्थी थे।

श्री विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी जी : स्मृतियों के झरोखे से

अगले दिन जब त्रिपाठी जी आये तो उनकी अत्यन्त सादी वेशभूषा साधारण सा खद्दर का कुर्ता और धोती तथा हाथ में एक छोटा सा झोला देखकर एकाएक विश्वास न हुआ कि लखनऊ विश्वविद्यालय से एक साथ दो परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने वाले यही त्रिपाठी जी हैं। उनकी दुबली काया और सौम्य व्यक्तित्व ने अवश्य आकर्षित किया। उनसे बातें करके यह स्पष्ट हुआ कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। अतः हमारे लिए विशेष रूप से आदरणीय, अनुकरणीय श्रद्धास्पद तथा आत्मीय हो गये।

त्रिपाठी जी के चुनाव की तैयारी तथा कार्यकर्ताओं की कमी का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि मुझ जैसे सर्वथा अनुभवहीन कच्ची उम्र के छात्र को पोलिंग एजेन्ट बना कर भेजा गया। न चुनाव पोस्टर, न बैनर, न चुनाव सभायें। उन देहातों में कभी जाना भी न हुआ था, किसी व्यक्ति से परिचित होने का तो सवाल ही न था, पास में वोटर सूची भी न थी। चुनाव में त्रिपाठी जी के मुकाबले पर उन्नाव के प्रसिद्ध प्रतिष्ठित वकील रायबहादुर चौधरी जगन्नाथप्रसाद एवं मौरावां के तालुकेदार लाला द्वारिका नाथ सेठ थे। दोनों ही साधनसम्पन्न एवं सुसंगठित रूप से प्रचार कार्य में संलग्न। बहुत से गाँवों में कांग्रेस के नाम से भी लोग परिचित न थे। ऐसी स्थिति में भी चुनाव खड़े में होना त्रिपाठी जी का ही साहस था। चुनाव परिणाम स्पष्ट था।

टण्डन जी और स्वदेशी आन्दोलन

परमश्रद्धेय राजर्षि टण्डन जी के दर्शन और प्रेरक संदेश प्राप्त करने का सुअवसर मुझे सम्भवतः 1930 में प्राप्त हुआ था। उन दिनों मैं डी. ए. वी. कालेज, कानपुर में बी. एस-सी. का छात्र था। राष्ट्रीय आन्दोलन दिन-प्रतिदिन प्रगति कर रहा था। नेताओं द्वारा विद्यार्थियों से अध्ययन छोड़ कर राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने का आह्वान किया जा रहा था। छात्र वर्ग भी उत्तेजित था। दिनों में टण्डन जी के आगमन की सूचना मिली और ज्ञात हुआ कि वे कचहरी के पास स्थित डॉ० मुरारी लाल जी के 'उद्योग भवन' में रुकेंगे। यह स्थान कालेज छात्रावास के निकट ही था। अतः अगले दिन प्रातः काल ही उनके दर्शन करने का निश्चय किया। दो तीन छात्र और साथ हो लिये।

यह जानकर कि हम कालेज के छात्र हैं और उनसे मार्ग निर्देशन प्राप्त करने आये हैं, उन्होंने हमें अपनी बात स्पष्ट करने का आग्रह किया। बतलाने पर कि अध्ययन जारी रखते हुए कैसे देश सेवा करें ? सभी छात्र अध्ययन छोड़ कर सत्याग्रह में भाग तो न ले पावेंगे। हमें कृपा कर बतलावें कि हम अध्ययन भी करते रहें और देश सेवा से भी विमुख न हों।

उन्होंने सब बातें सुनकर कहा कि देश की स्वाधीनता के लिए छात्रों का सक्रिय सहयोग तो बहुत आवश्यक है, फिर भी केवल सत्याग्रह में भाग लेना ही देश की सेवा नहीं है। अध्ययन करते हुए भी और कुछ नहीं तो स्वदेशी एवं मातृ-भाषा के प्रचार और प्रसार में सभी सक्रिय भाग ले सकते हैं और लेना चाहिए। चलते-चलते उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि स्वदेशी का आशय केवल विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार तक सीमित नहीं है। देशी वस्त्रों के व्यवहार के साथ ही देशी आचार-व्यवहार, देश की भाषा तथा उच्च आदर्शों को अपनाना और उनका प्रचार स्वदेशी आन्दोलन के प्रमुख अंग हैं।

इस बातचीत में लगभग पौन घंटा लगा होगा और अब अन्य कार्यकर्ता आने लगे थे। अतः टण्डन जी को प्रणाम कर हम लोग छात्रावास वापस आ गये। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि स्वदेशी की इतनी व्यापक परिभाषा हमने और किसी नेता से न सुनी थी। अधिकांश नेता देशी वस्त्रों के व्यवहार पर ही विशेष बल देते थे। देशी भाषा और देशी आचार-विचार का तो नाम भी न लिया जाता था। अतः मैंने टण्डन जी द्वारा दिया स्वदेशी का यह प्रेरक संदेश गुरुमंत्र के समान ही स्वीकार किया तदनुसार कार्य करने का भी निश्चय किया। छुट्टियों घर-घर जा कर स्वदेशी का यह महत्व बतलाया और लोगों से स्वदेशी व्यवहार में लाने के प्रतिज्ञा पत्रों पर हस्ताक्षर कराये। स्वदेशी के विषय में लेख

लिखे और उन्हें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराया, हिन्दी के प्रचार और प्रसार में अभी भी संलग्न हूँ।

कई साल बाद टण्डन जी के दुबारा दर्शन और भेंट वार्ता का अवसर मिला। चरण स्पर्श कर बड़ी विनम्रता के साथ सद्यः प्रकाशित अपनी पुस्तक 'भारतीय वैज्ञानिक' की एक प्रति उन्हें भेंट की और निवेदन किया कि आपकी प्रेरणा से मैं यह पुस्तक लिखने में समर्थ हुआ हूँ। उन्होंने पुस्तक के पृष्ठ पलटते हुए कहा 'मुझसे कब और कैसे प्रेरणा मिली ? मुझे तो स्मरण नहीं कि तुमसे इस सम्बन्ध में कोई बात भी हुई हो।' तब मैंने 'उद्योग भवन' में हुई पिछली भेंट - वार्ता का जिकर किया और बतलाया कि आपने हमें देश सेवा हेतु स्वदेशी के साथ हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार का उपदेश दिया था। उसी के अनुसार यह पुस्तक हिन्दी में प्रस्तुत है। यह भी बतलाया कि इसके पाठ्य विषय में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है।

पत्रकार-प्रवर श्रद्धेय श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

कई मास तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब 'विशाल भारत' से कोई पारिश्रमिक प्राप्त न हुआ तो पहिले तो एक सामान्य-सा स्मरण पत्र भेजा। उस पर भी कोई सुनवाई न होने पर बड़ी खीझ हुई। इस बीच केमिकल इंजीनियरिंग और ऑयल टेक्नोलाजी का प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु मेरा चयन एच० बी० टी० आई० में हो गया था और में अपना निजी खर्च ट्यूशन करके तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों के पारिश्रमिक से चलाता था। अतः साल भर तक विशाल भारत से पारिश्रमिक न मिलने पर खीझना कुछ अस्वाभाविक न था। इन परिस्थितियों में मैंने चतुर्वेदी जी को निजी पत्र भेज कर अपनी खीझ प्रकट की और यहाँ तक लिख दिया कि 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' व्यक्तियों में क्या आपकी भी गणना की जाय। ऐसा ही कुछ और भी लिखा होगा।

अपने पत्र में उन्होंने अपनी विवशता का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया और बतलाया कि 'मार्डन रिव्यू' और "विशाल भारत" के संस्थापक एवं संचालक श्री रामानन्द चटर्जी वृद्ध हो जाने के कारण पत्रों की सम्पूर्ण व्यवस्था स्वयं नहीं देख पाते। कार्य संचालन उनके पुत्रों द्वारा होता है और उन्हें विशाल भारत के प्रति हिन्दी का पत्र होने के कारण, अपने पिता जैसी निष्ठा और लगाव नहीं है। इससे विशाल भारत की सुव्यवस्था में कठिनाई आ जाती है। इसके साथ ही उन्होंने सुविधानुसार विशाल भारत के लिए कुछ लिखते रहने का भी अनुरोध किया।

चतुर्वेदी जी पत्र-व्यवहार में तो अग्रणी रहे ही हैं। कलकत्ता से वापस आने के कुछ मास बाद उन्होंने एक शुभचिन्तक के नाते पत्र लिखकर ज्ञात किया कि अध्ययन पूरा हो जाने के बाद अब क्या कार्यक्रम है और क्या पढ़ लिख रहे हो। लेख तो नहीं माँगा था परन्तु उस समय तैयार एक निबन्ध 'भारत में पुस्तकालय आन्दोलन' उन्हे प्रकाशनार्थ भेज दिया और यह भी सूचित कर दिया कि कुछ प्रकाशित और अप्रकाशित नये निबन्धों को संकलित कर दो पुस्तकों का रूप दया है। "विज्ञान की कहानियाँ" तो "प्रताप" छोड़ कर पटना में अपना "नवशक्ति प्रकाशन" प्रारम्भ करने गये देवव्रत शास्त्री ले गये हैं, दूसरी "जीवट की कहानियाँ" लगभग तैयार है। इसकी एक संक्षिप्त विषय सूची भी साथ भेज दी।

दो-तीन सप्ताह बाद मुझे हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई के संचालक श्री नाथूराम प्रेमी का एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें चतुर्वेदी जी का उल्लेख करते हुए मुझे लिखा था कि मैं अपनी पुस्तक "जीवट की कहानियाँ" की पाण्डुलिपि उन्हें प्रकाशनार्थ भेज दूँ। मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। प्रेमी जी से मेरा किसी भी प्रकार का सम्पर्क न था। उनकी संस्था का तत्कालीन हिन्दी प्रकाशकों में विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान था। उसके द्वारा शरत साहित्य भी वहाँ से प्रकाशित हो रहा था। प्रेमचंद और जैनेन्द्र जैसे लब्धप्रतिष्ठित लेखकों की कृतियाँ भी उनके द्वारा प्रकाशित थीं। ऐसी प्रमुख प्रकाशन संस्था में अपनी प्रथम पुस्तक प्रकाशित होगी चतुर्वेदी जी की अहेतुकी कृपा से, इससे उस बात की पुष्टि हुई कि चतुर्वेदी जी लेखकों के सक्रिय हितैषी हैं केवल कहने भर के नहीं।

कुछ मास बाद पुस्तक प्रकाशित हो गई। पुस्तक विशेष लोकप्रिय हुई और आठ संस्करण प्रकाशित हुए। पुस्तक प्रकाशित होने के तुरन्त बाद प्रेमी जी ने इसकी प्रतियों के साथ ही अपने प्रमुख प्रकाशनों की भी प्रतियाँ उनके प्रचार और बिक्री में सहयोग देने को मेरे पास भेज दीं। इसके प्रकाशन के कुछ दिन पूर्व "विशाल भारत" और श्री गुलाब राय द्वारा सम्पादित आगरा के "साहित्य संदेश" में मेरे दो लघु निबन्ध हिन्दी में सत्साहित्य की बिक्री के विषय में

प्रकाशित हो चुके थे। उनके आधार पर प्रेमी जी का आग्रह था कि मैं उनके द्वारा प्रकाशित साहित्य के प्रचार और बिक्री में सक्रिय सहयोग दूं। मेरे बार-बार मना करने पर भी कि मैं यहाँ की अग्रणी तेल मिल में केमिस्ट का काम कर रहा हूँ, समय न दे सकूंगा। अतः अपने कानपुर हितैषी गुरुजनों, प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना, पं० अयोध्या नाथ शर्मा और कान्यकुब्ज कालेज के प्रिंसिपल श्री राम चन्द्र शुक्ल के परामर्श से पुस्तक बिक्री केन्द्र के रूप में ''साहित्य निकेतन'' का श्री गणेश हुआ।

समय-समय पर चतुर्वेदी जी के पत्र प्राप्त होते रहते थे। उनका एक पत्र मेरे पास अब भी सुरक्षित है। वे पत्र कभी अंग्रेजी में होते और कभी हिन्दी में। जो पत्र सुरक्षित है उसमें हिन्दी-अंग्रेजी दोनों ही प्रयुक्त हुई हैं। 'विशाल भारत' का प्रकाशन बंद होने के बाद वे टीकमगढ़ आ गये थे। वहाँ रहते हुए उन्होंने ''मधुकर'' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था। यह पत्र वहीं से लिखा गया था। इस पत्र के अंग्रेजी अंश द्वारा मेरी पुस्तक ''भारतीय वैज्ञानिक'' डॉ० मेघनाथ साहा विषयक अध्याय को संक्षिप्त कर 'मधुकर' में प्रकाशित करने की अनुमति माँगी थी और इसके लिए दस रुपये भेजने की सूचना दी थी। पुस्तक को ''एक्सिलेण्ट'' ''श्रेष्ठ'' विशेषण से सम्मानित किया था और तारांकित अंश द्वारा एक वर्ष पूर्व उसकी सचित्र समीक्षा प्रस्तुत करने की बात लिखी थी।

पत्रोत्तर में सहर्ष अनुमति देने के साथ ही मैंने निवेदन किया कि पुस्तक आपको अच्छी लगी और उसका एक अंश आप संक्षिप्त करके अपने पत्र में प्रकाशित कर रहे हैं यही मेरा पारिश्रमिक है रुपया न भेजें।

इसके कई साल बाद उनके कानपुर आगमन पर पुनः उनसे सानिध्य एवं उपकृत होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी के सुपुत्र श्री हरि शंकर विद्यार्थी के निवासस्थान पर भेंट वार्ता हुई। इस अवसर पर उनके साथ लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार श्री झाबरमल और टीकमगढ़ के जिला विद्यालय निरीक्षक श्री वीरेश चन्द्र पंत भी थे। पंत जी के भाई श्री महेश चन्द्र पंत उन दिनों कानपुर में असिस्टेंट लेबर कमीश्नर थे। पंत जी से परिचय कराते हुए उन्होंने कहा भाई मैं ''साहित्यिक सगाई'' करा रहा हूँ। और भी बातें हुईं और उन्होंने सुझाव दिया कि मैं कानपुर के क्रान्तिकारियों के कार्य-कलाप के विषय में लिखूँ जिसे मैं आज तक न लिख सका। वास्तव में चतुर्वेदी जी दिवंगत क्रान्तिकारियों, देश सेवकों और साहित्य सेवियों के विषय में बराबर लिखते रहते थे और इस कार्य को उनके ''श्राद्ध'' रूप में सम्बोधित करते थे। स्वयं इस ''श्राद्ध'' को करने के साथ ही अपने परिचितों और मित्रों को भी अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करने के लिए प्रेरित करते थे।

निराला की पदयात्रा

किसानों का दर्द मिटाने आये

निराला जी के आगमन की बात सुन कर सभी को प्रसन्नता और आश्चर्य दोनों ही हुए। तब निराला जी कलकत्ता में रहते थे और वहाँ से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक 'मतवाला' के संपादक-मंडल में रह चुके थे। अतः उनके आकस्मिक रूप से मौरावाँ आने के समाचार से आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक ही था। घर बैठे कविवर के दर्शन हो रहे हैं। यह प्रसन्नता का उचित अवसर था ही। अस्तु तुरन्त ही उपस्थित सब लोग डाकखाने पहुँचे। तब डाकखाना बाजार में एक किराये के मकान में था।

डाकखाने पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि निराला जी अपने गाँव गढ़ाकोला तथा आस-पास के किसानों के साथ उनकी 'फरियाद' गाँव के जमींदार मौरावाँ के तालुकेदारों के पास लेकर आये हैं। वे संभवतः मौरावाँ के प्रसिद्ध तालुकेदार राजाशंकर सहाय के इलाके में थे।

कलकत्ता प्रवासी निराला जी गाँव के किसानों की अगुवाई कर उनकी समस्याओं के निराकरण हेतु मौरावाँ की यात्रा करेंगे इसकी कल्पना भी न की जा सकती थी। परन्तु निराला जी नाम से नहीं, अपने स्वभाव, व्यक्तित्व और कार्यशैली में भी सर्वथा निराले थे। किसानों के दुःख-दर्द को दूर करने के लिए कितने चिंतित और व्यग्र थे इसका अनुमान केवल इस बात से लगाया जा सकता है कि उनके गाँव से मौरावाँ तक आने के लिए कोई पक्की सड़क तक न थी, शायद अभी भी नहीं है। गाँव से चमियानी कस्बा होकर पुरवा तक पैदल या बैलगाड़ी से पहुँचना होता था। पुरवा से मौरावाँ को बस मिलती थी। इसमें समय भी काफी लग जाता था। किसानों के साथ कोई वाहन न देखकर यह अनुमान लगाया गया कि वे सब गढ़ाकोला से मौरावाँ तक पैदल ही आये हैं।

हममें से किसी को भी इसके पूर्व निराला जी का

साक्षात् दर्शन करने का सुअवसर न मिला था। उनका चित्र भी न देखा था। उनकी कविताएँ और अन्य रचनाएँ यदा-कदा पढ़ते रहते थे। बरसों तक कलकत्ते में रहने वाले कवि निराला की हमारे मानस में जो छवि थी, उससे सर्वथा भिन्न रूप में उन्हें देख कर और भी सुखद आश्चर्य हुआ। ठेठ देहाती वेषभूषा में सुगठित हृष्ट-पुष्ट पहलवानी देहधारी निराला का यदि परिचय न कराया जाता तो यह जानना भी कठिन था कि हम निराला जी से साक्षात कर रहे हैं।

परिचय प्राप्त करने के बाद उनसे पुस्तकालय चलकर कुछ विश्राम करने और जलपान करने का अनुरोध किया परन्तु वे सहमत न हुए। उन्होंने विनम्रतापूर्वक आतिथ्य को अस्वीकार करते हुए कहा कि "अबीहिन तो इन पंचन की फरियाद खातिर आयन हैं, फिर कबहुँ आयब तो बैठक होई।" ठेठ गँवई गाँव की भाषा में बातें करते हुए निराला हमें बिल्कुल अपने जैसे लगे और सुमधुर, सुकोमल भाषा में "जूही की कली" के रचनाकार युगकवि और छात्रों के बीच जो एक संभ्रम की भावना होती है वह जाती रही।

कवि सम्मेलन में रचना नहीं पढ़ी

तब निराला जी कलकत्ता छोड़ कर लखनऊ आकर रहने लगे थे। उन्होंने आने की सहर्ष स्वीकृति दी और कवि सम्मेलन वाले दिन प्रातः मौरावाँ पहुँच गये। संभवतः डॉ० राम विलास शर्मा जो उन दिनों लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहे थे उनके साथ थे। कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिए सनेही जी कानपुर, लखनऊ, रायबरेली, आदि जनपदों के और भी कवि आमंत्रित थे। फिल्म गीतकार प्रदीप, जो उन दिनों विद्यार्थी ही थे, किन्तु अपनी रचना 'पानीपत' से विशेष प्रसिद्धि पा चुके थे, भी आये थे।

कवि सम्मेलन की अध्यक्षता सनेही जी को करनी थी। निराला जी ने स्नेही जी की अध्यक्षता में कविता पाठ करने से स्पष्ट इनकार कर दिया। बहुत अनुनय-विनय करने पर भी उस कवि सम्मेलन में कविता पाठ करने के लिए तैयार न हुए। उनके आगमन से जो काव्य प्रेमीजन बहुत प्रसन्न थे कि निराला जी के दर्शन ही नहीं उनके श्रीमुख से उनके काव्य के रसास्वादन का भी लाभ मिलेगा, उन सब को निराला जी के इस निश्चय से बड़ी निराशा हुई। वे कवि सम्मेलन में उपस्थित तो रहे पर कविता पाठ नहीं किया। कवि सम्मेलन की समाप्ति के बाद भी हम लोग बराबर उनके साथ रहे और उनसे काव्य पाठ का आग्रह करते रहे। अंत में निरालाजी की स्वीकृति से उनके कविता पाठ के लिए अलग से एक विशिष्ट काव्य गोष्ठी का आयोजन रात्रि में किया गया।

हारमोनियम से पाठ

निराला जी ने मनोनुकूल खान-पान की व्यवस्था के बाद यह गोष्ठी पुस्तकालय के तत्कालीन सभापति श्री हृदयनारायण सेठ के निवास स्थान पर आयोजित हुई। दो-तीन कविताओं के पाठ के बाद निरालाजी को स्वयं भी काव्य पाठ में रस आने लगा और उन्होंने हारमोनियम पर गाकर काव्य पाठ करने की इच्छा व्यक्त की। तुरन्त ही रात्रि में करीब दो बजे रामलीला समिति के मंत्री के निवास से हारमोनियम मँगाया गया और उनसे 'जूही की कली' के पाठ का अनुरोध किया गया। उन्होंने अपनी इस कविता को दो बार गाकर श्रोताओं को विशेष रूप से संतुष्ट और आह्लादित किया। हम लोगों ने भी इस संतुष्टि में निरालाजी के मौरावाँ आगमन के लिए किये प्रयत्न को सार्थक माना।

एक दिन सायंकाल निरालाजी स्वयं 'साहित्य निकेतन' पधारे। उनके आने से हमें सुखद आश्चर्य हुआ। मौरावाँ काव्य-गोष्ठी के बाद न तो मेरी उनसे भेंट ही हुई थी और न कोई पत्र-व्यवहार ही। अतः इनके स्वयं आगमन से जो प्रसन्नता हुई उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। भाव-विभोर होकर मैं समुचित रूप से उनके प्रति अपना आभार भी न प्रकट कर सका। उन दिनों मैं "नारदर्न इंडिया आयल इंटस्ट्रीज लि०" में केमिस्ट का कार्य करता था और दुकान पर शाम को ही आना होता था। यह तथ्य सुमित्रा जी को मालूम था। अस्तु मेरे आने के समय ही उनके आने का संयोग और भी सुखद था। संभवतः चौधरी साहब अथवा सुमित्राजी ने उनको ठीक-ठीक बतला दिया था। इससे उन्हें दुकान पहुंचने में कोई विशेष असुविधा न हुई।

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य लेखन : प्रगति एवं सम्भावनाएं

श्याम नारायण कपूर

स्वाधीनता के पचास वर्ष की अवधि में भी हिन्दी में विज्ञान साहित्य की कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकी है। इसका प्रमुख कारण राष्ट्रभाषा होते हुए भी हिन्दी की उपेक्षा और अंग्रेजी का वर्चस्व है। विज्ञान सम्बन्धित उच्च शिक्षा की सभी विधाओं का माध्यम अभी तक अंग्रेजी ही है। डाक्टरी, इंजीनियरिंग, उच्च प्रौद्योगिकी एवं अन्य सभी तकनीकी विधाओं की शिक्षा अंग्रेजी माध्यम ही से प्राप्त की जा सकती है। विश्वविद्यालयों में भी विज्ञान की सभी शाखाओं-गणित, रसायन, भौतिकी, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान प्रभृति की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही है। ऐसी स्थिति में हिन्दी में विज्ञान साहित्य लेखन का मार्ग पूर्णतया अवरुद्ध ही है। माध्यमिक शिक्षा अर्थात् इण्टर तक की शिक्षा हिन्दी माध्यम से पाने वाले विद्यार्थियों को स्नातक कक्षाओं में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अतः उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आरम्भ ही से अंग्रेजी माध्यम अपनाना उनकी विवशता है।

यह सही है कि अंग्रेजी भाषा सम्पन्न है और एक प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय गौरव प्राप्त है, परन्तु केवल इस आधार पर तो अपनी मातृभाषा की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने से उन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा। सभी उन्नत और विकसित कहे जाने वाले देश अपनी-अपनी भाषाओं के माध्यम से साधारण और उच्च शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। ब्रिटिश शासन के सौ-सवा सौ वर्ष और स्वतंत्रता के पचास वर्ष बीत जाने तथा अंग्रेजी का पूर्ण वर्चस्व होने पर भी अभी तक भारत को विकासशील देश ही माना जाता है। विकसित देशों में भारत की गिनती नहीं होती। फिर भी देश अभी तक अंग्रेजी के मोह में ग्रस्त है।

पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी में विज्ञान के कुछ उच्च कोटि के स्तरीय ग्रन्थ प्रकाशित अवश्य हुए हैं। शासन द्वारा संचालित प्रदेशीय साहित्य अकादमियों का इस सम्बन्ध में सराहनीय योगदान माना जा सकता है। परन्तु इतने से ही तो साहित्य समृद्ध नहीं कहा जायेगा। अनेक तकनीकी विषय हैं जिनके ग्रन्थों का हिन्दी में अभाव है। विश्वविद्यालय स्तरीय पुस्तकें भी नहीं के बराबर हैं। कम्प्यूटर जैसे लोकप्रिय एवं उपयोगी विषय पर भी स्तरीय साहित्य होना चाहिए।

यह कहना कि पारिभाषिक शब्दों की समस्या से ग्रन्थ रचना का मार्ग अवरुद्ध है एक बहाना मात्र ही माना जायेगा। डॉ० मुरली मनोहर जोशी ने प्रयाग विश्वविद्यालय में अपना शोध प्रबन्ध हिन्दी में प्रस्तुत कर डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की थी और शोधकर्त्ताओं का इस प्रकार मार्ग प्रशस्त किया। विश्वविश्रुत वैज्ञानिक जयन्त विष्णु नर्लीकर ने स्वयं मराठी भाषी होते हुए भी मध्य प्रदेश के रविशंकर विश्वविद्यालय में ब्रह्माण्ड जैसे जटिल विषय पर हिन्दी में तीन भाषण देकर अन्य वैज्ञानिकों के लिए अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने सभी वैज्ञानिकों से अपने विषयों की पुस्तकें मातृभाषा में प्रस्तुत करने की अपील की। आवश्यकता है दृढ़ संकल्प शक्ति के साथ हिन्दी भाषा के इस अंग को समृद्ध करने की।

शासकीय अकादमियों के अतिरिक्त जो अन्य प्रकाशन हुए हैं उनमें डा० रमेशचन्द्र कपूर की परमाणु विखंडन। डॉ० सत्यप्रकाश की 'प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार' तथा 'वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा', डॉ० राम शंकर लाल की 'प्राचीन भारतीय गणित में श्रेणी एवं श्रेणी का विकास', डॉ० ब०. ल०. उपाध्याय की 'प्राचीन भारतीय गणित', डॉ० विजय लक्ष्मी शर्मा की 'अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में प्राचीन भारतीय विज्ञान', केशव अनन्त पटवर्धन कृत 'ऋषियों के विज्ञान की श्रेष्ठता', श्री ठक्कुर फेरू कृत 'द्रव्य परीक्षा और धातुत्पत्ति', श्री अष्टभुजा प्रसाद पाण्डेय की

'प्राचीन भारतीय अणु एवं चिकित्सा विज्ञान'। श्री रत्नाकर शास्त्री कृत 'भारत के प्राणाचार्य', सुरेन्द्र नाथ सेन का 'विज्ञान का इतिहास', श्री स्वामी प्रत्यगात्यानन्द सरस्वती कृत 'वेद और विज्ञान' - प्रभृति के नाम उल्लेखनीय हैं। यह सब नाम अपनी यादशाश्त से ही लिखें हैं। इनके अतिरिक्त भी और ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। बच्चों के लिए भी विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। ज्योतिष, आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा की भी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

विज्ञान सम्बन्धी लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए उ० प्र० हिन्दी संस्थान प्रतिवर्ष 'बाल विज्ञान लेखन सम्मान' (पुरस्कार राशि रू० 11,000/-) तथा 'विज्ञान भूषण सम्मान' (पुरस्कार राशि रू० 50,000/- प्रदान करता है। बिहार सरकार की ओर से भी वैज्ञानिक साहित्य के लिए 'आर्यभट्ट' पुरस्कार दिया जाता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा भी श्रेष्ठ वैज्ञानिक पुस्तक पर पुरस्कार देने की व्यवस्था है।

भारत के पड़ोसी देश चीन और जापान अपनी मातृ भाषाओं के माध्यम से विज्ञान और तकनीकी विषयों में अग्रसर हैं। जापान ने अपनी भाषा से ही जो प्रौद्योगिक विकास किया है वह सर्वविदित है। आज उसके तकनीकी उत्पादन अमरीका जैसे समुन्नत देश से भी स्पर्धा करने में समर्थ हैं। हिन्दी में तकनीकी विषयों तथा प्रौद्योगिकी पर लिखने के लिए व्यापक क्षेत्र है। इसमें आर्थिक लाभ की अपेक्षा न करके देश-सेवा के भाव ही से वैज्ञानिकों को आगे आना चाहिए।

■■■■■

(पृष्ठ 58 का शेष भाग)

वैज्ञानिकों के प्रदेय पर लेखन के अतिरिक्त श्री कपूर ने अन्तरिक्ष युग के प्रारम्भ को भी अपने लेखन का विषय बनाया है। उन्होंने 'अन्तरिक्ष यात्रा की कहानी' 'राकेट की कहानी' पुस्तकें लिख कर सामान्य से महत्वपूर्ण ज्ञान देने की सफलता प्राप्त की है। इन दोनों पुस्तकों में इतिहास को भी समेटा गया है।

पिछत्तर वर्षों की सुदीर्घ अवधि में विज्ञान लेखक के रूप में श्री कपूर की उत्कृष्ट पुस्तकें छात्रों, शिक्षकों और अभिभावकों के द्वारा पढ़ी जाती रही हैं। व्यावहारिकता की दृष्टि से 'साबुन विज्ञान' और 'बिजली तथा अन्य कहानियाँ' पुस्तकों का उल्लेख भी आवश्यक है। श्री कपूर की शुद्ध भारतीय दृष्टि अपने संसाधनों का पूरा उपयोग करने में लगी रही है और उन्होंने अपने लेखन से जो सेवा की है वह अकूत और मजबूत है। किसी नेता की तरह वाहवाही पर जीने वाली ललक और पद-प्रतिष्ठा की चाहत से बहुत दूर, उनकी सेवाएँ लेखक और प्रकाशक की हैसियत से भरपूर रही हैं। उदीयमान लेखकों और निर्धन छात्रों की सहायता करके जो गुप्तदान वे करते रहे हैं, उस पर भी विस्तार से चर्चा की जानी चाहिए।

एक व्यक्ति ने लगातार जुट कर जितना पराधीनता से स्वाधीनता के कार्यकाल में काम किया, उतना काम बड़ी संस्थाएँ भी नहीं कर पातीं। होना तो यह चाहिए था कि केन्द्र सरकार उनके प्रदेय का मूल्यांकन विद्वानों से कराती और उनका यथोचित सम्मान करती-लेकिन यह अभी तक नहीं हुआ। इसी कारण हमारे देश से प्रतिभाओं का पलायन हो रहा है। धन्य हैं श्री कपूर जो अपने में संतुष्ट हैं और पूर्णतया स्वदेशी हैं।

संपादक, बालसाहित्य समीक्षा
109/309 रामकृष्णनगर, कानपुर 208012

श्री श्याम नारायण कपूर की प्रकाशित पुस्तकें

पुस्तक का नाम	विषय-वस्तु	पृष्ठ संख्या/संस्करण
1. **विज्ञान की कहानियाँ**	वैज्ञानिक निबन्ध	पृष्ठ संख्या : 214, क्राउन, प्रकाशन वर्ष 1936
2. जीवट की कहानियॉं [8 संस्करण, म०प्र० में सहायक पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत]	विश्वविख्यात साहसिक कारनामों का सरल रोचक शैली में विवरण	पृष्ठ संख्या : 152, क्राउन, सचित्र, प्रथम संस्करण :1936
3. साबुन विज्ञान	साबुन निर्माण के सम्बन्ध में हिन्दी में प्रथम तकनीकी पुस्तक	पृष्ठ संख्या : 300,सचित्र डिमाई प्रकाशन वर्ष : 1449
4. आविष्कारों की कहानियाँ [माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उ०प्र० की हाई स्कूल कक्षा में एलिमैन्ट्री हिन्दी की स्वीकृत सहायक पाठ्य-पुस्तक]	वैज्ञानिक आविष्कारों की कहानियाँ	पृष्ठ संख्या : 58,क्राउन। प्रथम संस्करण : 1950
5. जहाज तथा अन्य कहानियाँ	आविष्कारों की कहानियाँ	पृष्ठ संख्या : 100,सचित्र, क्राउन। प्रकाशन वर्ष : 1950
6. बिजली तथा अन्य कहानियाँ	आविष्कारों की कहानियाँ	पृष्ठ संख्या : 96,सचित्र, क्राउन। प्रकाशन वर्ष : 1950
7. भारतीय वैज्ञानिक [भारत सरकार के अधीनस्थ क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों में अनिवार्य सहायक पाठ्य-पुस्तक तथा कानुपर विश्वविद्यालय में सहायक पुस्तक के रूप में भी स्वीकृत रही]	आधुनिक भारतीय वैज्ञानिकों की सचित्र जीवनियाँ	पृष्ठ संख्या : 364, क्राउन। प्रथम संस्करण : 1942 पृष्ठ संख्या : 476, क्राउन, द्वितीय संस्करण : 1964
8. एवरेस्ट विजेता शेरपा तेन सिंह	जीवनी	पृष्ठ संख्या : 50, सचित्र, क्राउन। प्रकाशन वर्ष : 1954
महान् वैज्ञानिक परिचय माला		
9. भारतरत्न डॉ० चन्द्रशेखर वेंकट रमन्	जीवनी	पृष्ठ संख्या : 50, डिमाई, प्रकाशन वर्ष : 1963

पुस्तक का नाम	विषय-वस्तु	पृष्ठ संख्या/संस्करण
10. विज्ञानाचार्य जगदीश चन्द्र बसु	जीवनी	पृष्ठ संख्या : 56, डिमाई, प्रकाशन वर्ष : 1963
11. आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय	जीवनी	पृष्ठ संख्या : 50, डिमाई, प्रकाशन वर्ष : 1963
12. महान् गणितज्ञ रामानुजन् और गणेश प्रसाद	जीवनी	पृष्ठ संख्या : 72डिमाई, प्रकाशन वर्ष : 1963
13. डॉ० मेघनाथ साहा	जीवनी	पृष्ठ संख्या : 50, डिमाई, प्रकाशन वर्ष : 1964
14. डॉ० सर शान्ति स्वरूप भटनागर	जीवनी	पृष्ठ संख्या : 48डिमाई, प्रकाशन वर्ष : 1964
15. राकेट की कहानी	वैज्ञानिक प्रगति की कहानी	पृष्ठ संख्या : 50, सचित्र, कापी साइज। प्रकाशन वर्ष : 1966(दो संस्करण)
16. अन्तरिक्ष यात्रा की कहानी	वैज्ञानिक प्रगति की कहानी	पृष्ठ संख्या : 68, सचित्र, कापी साइज। प्रकाशन वर्ष : 1966
17. प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प	विभिन्न वैज्ञानिक विधाओं का शोधपूर्ण विश्लेषण	पृष्ठ संख्या : 400, डिमाई, प्रथम संस्करण : 1998
प्रकाशनाधीन ग्रन्थ		
1. पुराणों में विज्ञान	विज्ञान के निकष पर पुराणों का तत्त्वान्वेषण	
2. प्राचीन भारत की वैज्ञानिक विभूतियाँ	विश्व विश्रुत भारतीय ऋषि परम्परा के वैज्ञानिकों के विशिष्ट योगदान का विवरण	
3. भारतीयता की खोज	भारतीय इतिहास, सभ्यता एवं संस्कृति का विद्वतापूर्ण विवेचन	

श्री श्याम नारायण कपूर के वैज्ञानिक लेखों की सूची

1. डॉ० रमण के आविष्कार ... वीणा, अग़स्त, 1932
2. बोलते चित्र ... गंगा, जनवरी, 33
3. डॉ० शंकर बिसे ... विशाल भारत, फरवरी, 33
4. दूरदर्शन या टेलीविजन ... हंस, अप्रैल, 33
5. ज्वाला मुखी के गर्भ में ... वीणा, अगस्त, 33
6. दूरश्रवण अथवा बेतार का टेलीफोन ... माधुरी, जुलाई, 33
7. विज्ञान की बलिवेदी पर ... विशाल भारत, जुलाई,33
8. भारत में ब्रॉडकास्टिंग ... हंस, अगस्त, 33
9. बेतार का चमत्कार ... माधुरी, सितम्बर, 33
10. भारतीय एडिसन : डॉ० शंकर बिसे ... विज्ञान, सितम्बर, 33/ वीणा, सितम्बर, 1934
11. स्वास्थ्य और अल्युमिनियम के बर्तन ... माधुरी, अक्टूबर, 33
12. परमाणु की गणना और विभाजन ... माधुरी, अक्टूबर, 33
13. शीशे की सड़कें ... माधुरी, अक्टूबर 33
14. बिनौला ... माधुरी, नवम्बर, 33
15. शीरे का सदुपयोग ... माधुरी, नवम्बर, 33
16. दूरदर्शन का भविष्य ... गंगा, मार्च, 34
17. ताराचित्र या टेलीफोटो ... गंगा, जुलाई, 33
18. हिमालय की चढ़ाई ... माधुरी, अप्रैल, 34
19. भारतीय प्रोफेसर का आविष्कार ... माधुरी, मई, 34
20. महत्वपूर्ण अनुसंधान ... माधुरी, मई, 34

21. टेलीसिनेमेटोग्राफी और दूरदर्शन ... माधुरी, मई, 34
22. राकेट या अग्निबाण ... माधुरी, जून, 34
23. वैज्ञानिक सफलता के गौरव में भाग्य का पक्षपात ... विश्वमित्र, जून, 34
24. टेलीग्राफ की व्यवस्था ... हंस, सितम्बर, 34
25. मृत्यु किरण ... कर्मयोगी, सितम्बर, 34
26. हिमालय की बलिवेदी पर ... विश्वमित्र, अक्टूबर, 34
27. सर जगदीश चन्द्र बोस ... गंगा, 34
28. सर चन्द्रशेखर वेंकट रमण ... गंगा, 34
29. वायुयानों की प्रगति ... विश्वमित्र, फरवरी,35
30. हजारों कोस से बैठे-बैठे प्रत्यक्ष देखना व सुनना ... विज्ञान, मार्च, 35
31. रेडियम ... माधुरी, अप्रैल, 35
32. साबुन बनाने का आसान तरीका ... विज्ञान, मई, 36
33. बीस मील ऊपर अथवा ऊर्ध्वाकाश में विजयाभियान के प्रयोग ... माधुरी, अगस्त, 36
34. ब्रिटिश साम्राज्य का सर्वोच्च पर्वत शिखर--नन्दा देवी ... विशाल भारत, सितम्बर, 36
35. संतति निग्रह आन्दोलन की प्रवर्तिका डॉ० मेरी स्टोप्स ... माधुरी, अक्टूबर, 36
36. एरंड ... विज्ञान, दिसम्बर, 37
37. वैज्ञानिक साहित्य के निर्माता श्रीयुत् राम दास गौड़ ... विज्ञान, दिसम्बर, 37
38. चमत्कारी चिकित्सा विज्ञान ... विश्वमित्र, दिसम्बर, 37
39. वार्निश ... विज्ञान, जून, 38
40. युद्ध और विज्ञान ... माधुरी, जुलाई, 40
41. विज्ञान और व्यवसाय ... माधुरी,
42. डॉ० सर शान्तिस्वरूप भटनागर ... विश्वमित्र, फरवरी,41
43. माननीय जस्टिस सर शाह मुहम्मद सुलेमान ... विश्वमित्र, अप्रैल, 41
44. विज्ञान और अध्यात्म ... अवन्तिका
45. प्राचीन भारत में गणित ... वीणा
46. डॉ० मेघनाथ साहा ... मधुकर

47. समुद्र कैसे खारी हुआ	...	माधुरी, 1932
48. उ. प्र. पन बिजली योजना	...	सरस्वती
49. दक्षिण ध्रुव की यात्रा	...	विश्वभारती (विश्वकोष)
50. हिमालय आरोहण	...	विश्वभारती (विश्वकोष)
51. ऊपरी वायुमण्डल पर चढ़ाई :		—
52. ऊर्ध्वाकाश अभियान के प्रयत्न	...	विश्वभारती (विश्वकोष)
53. जीवित प्रयोगशाला : मेंढक	...	विज्ञान लोक, अक्टूबर, 60
54. अन्तरिक्ष यात्रियों के लिए भोजन	...	विज्ञान लोक, अप्रैल, 61
55. वृद्धावस्था की रोकथाम	...	विज्ञान लोक, सितम्बर, 62
56. डॉ० एस० के० कृष्णन्	...	विज्ञान लोक, मई, 63
57. पुराणों में विज्ञान	...	कादम्बिनी, 90
58. वराहमिहिर	...	नवनीत
59. महान शिल्पी भोज राजु	...	नवनीत, मार्च, 95
60. परमाणुवाद के आदि प्रवर्तक : कणाद	...	नवनीत, 96
61. पुराणों में विज्ञान (बारह लेखों की श्रृंखला)	...	नवनीत, जून, 97 से

श्री श्याम नारायण कपूर के सामान्य विषयक लेख

1. बाल महिला मनोरंजन	...	माधुरी, जून, 30
2. स्वदेशी ही क्यों	...	विशाल भारत, जून, 33
3. भारत में क्रिकेट का प्रवेश	...	भारत, 34
4. पुस्तकालयों का प्रचार और उसके साधन	...	माधुरी, अगस्त, 35
5. पुस्तकालयों का प्रसार	...	माधुरी, अक्टूबर, 35
6. योरप के ग्राम्य पुस्तकालय	...	माधुरी, दिसम्बर, 35
7. कविवर रहीम और उनका पुस्तकालय	...	हंस, जनवरी, 36
8. पुस्तकालय और पाठक	...	माधुरी, फरवरी, 36
9. प्राचीन भारत के पुस्तकालय	...	हिन्दुस्तानी
10. नाहर म्यूजियम	...	माधुरी, मई, 36
11. रुमानिया	...	विश्वमित्र, जुलाई, 40
12. सेंसर	...	माधुरी, सितम्बर, 40
13. छोटेलाल गया प्रसाद ट्रस्ट	...	सरस्वती
14. जब निराला जी ने किसानों के लिए पदयात्रा की	...	कादम्बिनी, 91
15. मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए श्रीयंत्र	...	कादम्बिनी, 91
16. स्वदेशी अपनाइये	...	नवनीत, अगस्त, 92
17. युग युगीन नगर सम्भल	...	नवनीत, मार्च, 96
18. कानपुर की गौरवशाली शिक्षा परम्परा का इतिहास	...	दैनिक आज, 88
19. साहित्य सेवी नरेशचन्द्र चतुर्वेदी	...	चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ, 88
20. प्रो. रामदास गौड़	...	हिन्दी साहित्यकारों के पुण्य संस्मरण, 85

21. राष्ट्रीय आन्दोलन और कानपुर का खत्री समाज ... खत्री गौरव, मार्च, 92

22. हड़प्पीय सभ्यता महाभारत कालीन है ... नवनीत, 93

23. भगवती चरण वर्मा ... अतएव, 98

इसके अतिरिक्त 'दैनिक भारत', प्रेमचन्द द्वारा सम्पादित 'जागरण' और गुलाबराय द्वारा सम्पादित 'साहित्य संदेश' में अनेक लेख प्रकाशित।

विशेष

म. प्र. शासन की कक्षा 12 की पाठ्य पुस्तक- 'साहित्य भारती' में एक लेख : 'महान इंजीनियर और राष्ट्र निर्माता-भारत रत्न डॉ० मोक्षगुण्डम् विश्वेश्वरैया' संकलित।

बुन्देलखंड विश्वविद्यालय के हिन्दी पाठ्यक्रम में एक लेख 'निराला की पदयात्रा' संकलित।

कानपुर विश्वविद्यालय के बी. ए. हिन्दी पाठ्यक्रम में के लेख 'अनन्त अन्तरिक्ष' संकलित रहा है।

इनके अतिरिक्त प्र., उ. प्र., गुजरात आदि प्रान्तों में माध्यमिक स्तर की अनेक पाठ्यपुस्तकों में विज्ञान सम्बन्धित लेख संकलित हो चुके हैं।

कुमार मिश्र

282, खजुहा, लखनऊ

पत्रावली

Inter-University Centre for Astronomy & Astrophysics (IUCAA)
Post Bag 4, Ganeshkhind, Pune : 411007. India
Tel : (0212) 351414, 359415, Fax : (0212) 350760
e-mail : root @ iucaa.ernet in URL : http:/www.iucaa.ernt.in/

प्रिय श्री मनोज कपूर जी

आपके पूज्य पिताजी की पुस्तक 'प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प' पुरातन ग्रंथों में लिखित विद्या की जानकारी एक जगह संकलित मिली। इस पुस्तक के लिखने में लगे परिश्रम के लिये उनकी सराहना करता हूँ। इसके साथ ही पुस्तक कहीं भी खोलकर पढ़ने पर यह विचार मनमें आता है कि हमारे प्राचीन ग्रंथ किसी भी विषय में गहराई तक क्यों नहीं विवेचन करते। उदाहरणार्थ, यंत्रशास्त्र की पुस्तक पढ़कर तकनीक जानने वाला व्यक्ति भी वैसे यंत्र नहीं बना सकता, क्योंकि विवेचन पूरी जानकारी नहीं देता।

पुस्तक भेजने के लिये आभारी हूँ।

भवदीय,
जयंत नार्लीकर

Harcourt Butler Technological Institute
Kanpur - 208002 (India)

पत्र सं० 238/डी०बी०/मिस/1998
अगस्त 5, 1998

प्रिय श्री कपूर,

मैंने श्री श्याम नारायण कूपर द्वारा लिखित पुस्तक "प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प" का अध्ययन किया और मेरी आख्या निम्न प्रकार है : -

यह पुस्तक प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प का परिचय कराने का एक अनूठा प्रयास है। आज जब कि हम पश्चिमी देशों द्वारा विकसित विज्ञान की चकाचौंध से भारत के प्राचीन काल के विज्ञान, जो कभी अत्यन्त उत्कृष्ट था, को भूल गये हैं, को पुनः जागृत कराने का लेखक द्वारा किया गया प्रशंसनीय प्रयास है। लेखक ने वेदों, उपनिषदों, ग्रन्थों से वृहद सामग्री का संकलन किया है और पाठक को पुराने युग में ले जाने का एक प्रयास किया है जिसमें विज्ञान की कई शाखाओं जैसे गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, जीव विज्ञान, कृषि विज्ञान, रसायन एवं भौतिक विज्ञान और शिल्प आदि पर प्रकाश डाला है। इसमें प्राचीन भारत में अत्यन्त विकसित आयुर्वेद तकनीकी, रसायन एवं भौतिक विज्ञान, शिल्प कला एवं विमान विधा प्रमुख हैं।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक पाठकों को प्राचीन भारत में उन्नत विज्ञान एवं शिल्प से परिचय करायेगी और प्राचीन भारत के विज्ञान एवं शिल्प की पुर्नप्रतिष्ठा में सफल होगी, साथ ही आज का वैज्ञानिक भी प्राचीन भारतीय विज्ञान की उपयोग संपूर्ण मानव जाति के हितार्थ कर सकेगा।

भवदीय, वी० के० जैन ,निदेशक

21. 11. 1998

विद्वत्वर डॉ० नार्लीकर जी,

सादर नमस्कार,

मेरी पुस्तक "प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प" पर आपकी बहुमूल्य सम्मति और टिप्पणी के लिए विशेषरूप से आभारी हूं।

कुछ समय पूर्व मेरे आग्रह पर आपने अपने विषय में जानकारी देकर मुझे उपकृत किया था। उसके तथा हिन्दी में प्रकाशित आपकी पुस्तकों के आधार पर आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक परिचयात्मक निबन्ध लिखा है उसे आपकी सेवा में प्रेषित कर रहे हैं।

1945 में मेरी एक पुस्तक "भारतीय वैज्ञानिक" प्रकाशित हुई थी। उसमें आधुनिक भारत के महान् वैज्ञानिकों की संक्षिप्त जीवनियां और महत्वपूर्ण गवेषणाओं के विवरण संकलित हैं। इसके लिए प्रो० चन्द्र शेखर वेंकट रमन्, सर शान्तिस्वरूप भटनागर, प्रो. बीरबल साहनी, डॉ० मेघनाथ साह, जस्टिस सर शाह सुलेमान प्रभृति से व्यक्तिगत मिलकर तथा डॉ० होमी भाभा एवं कुछ अन्य से पत्र-व्यवहार कर प्रामाणिक सामग्री संकलित की थी। 1964 में इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ था। उसमें डॉ० सत्येन्द्रनाथ बोस, डॉ० कोठारी, प्रो० शेषाद्रि प्रभृति का परिचय और सम्मिलित कर दिया था।

अब इसके तीसरे संस्करण की तैयारी कर रहा हूं। आपकी तथा डॉ० कलाम की जीवनियां और सम्मिलित करूंगा। इसी हेतु आपकी सेवा में उक्त निबन्ध भेज रहा हूं। इसमें आपके विद्यार्थी जीवन एवं पारिवारिक जीवन सम्बन्धी प्रेरक सूचनाओं का अभाव है। कृपया निबन्ध संशोधित एवं परिवर्धित करके भेजकर आभारी करें।

"भारतीय वैज्ञानिक" का दूसरा संस्करण समाप्त तो कई वर्ष पूर्व हो गया था परन्तु अन्य पुस्तकों के लिखने में व्यस्त होने के कारण इस कार्य में न लग सका। "प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प" आपको भेजी जा चुकी है। "पुराणों में विज्ञान" और "प्राचीन भारत की वैज्ञानिक विभूतियां" शीघ्र ही प्रकाशित करने का प्रयास है।

अब जीवन के दसवें दशक में प्रवेश कर चुकने के बाद दौड़-धूप तो हो नहीं पाती, पत्र-व्यवहार से सहयोग की याचना करनी पड़ती है।

आशा है आप सपरिवार आनन्दपूर्वक हैं। विशेष कृपा, योग्य सेवा से सूचित करें,

विनीत

श्याम नारायण कपूर

Inter-University Centre for Astronomy & Astrophysics (IUCAA)
Post Bag 4, Ganeshkhind, Pune : 411007. India
Tel : (0212) 351414, 359415, Fax : (0212) 350760
e-mail : root @ iucaa.ernet in URL : http:/www.iucaa.ernt.in/
(विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का स्वायत्त संस्थान)

प्रिय श्री कपूर जी,

आपका 21.11.98 का पत्र मिला। 'भारतीय वैज्ञानिक' के तीसरे संस्करण में आप मेरी जीवनी सम्मिलित करना चाहते हैं यह मैं अपना सम्मान समझता हूँ। पर मेरी धारणा है कि ऐसी पुस्तक में जीवित व्यक्ति की जीवनी शामिल करना उचित नहीं। इसलिये मैं आपसे कहूँगा कि मुझे आपकी पुस्तक में न रखें।

इस विषय पर मतभिन्नता हो सकती है यह मैं मानता हूँ पर आशा करता हूँ कि आप मेरी भावना की कद्र करेंगे।

शुभकामनाओं सहित,

भवदीय,
जयंत नार्लीकर

10.12.98

विद्वत्वर डॉ. नार्लीकर जी,

सादर नमस्कार।

कृपा पत्र के लिए धन्यवाद। सेवा में विनम्र निवेदन है कि "भारतीय वैज्ञानिक" के प्रथम संस्करण में बारह वैज्ञानिकों की संक्षिप्त जीवनियां और उनकी विज्ञान साधना के विवरण प्रस्तुत किये गये थे। इन बारह में पांच दिवगंत और सात जीवित थे। नोबेल पुरस्कार विजेता सी. बी. रमन, सर शान्ति स्वरूप भटनागर, डॉ. बीरबल साहनी, डॉ. मेघनाथ साहा, डॉ. भाभा और डॉ. कृष्णन एवं जस्टिस सुलेमान। पांच से मैं स्वयं मिला था, डॉ. भाभा के पिताजी से बंगलौर जाकर मेरे मित्र प्रो. देवराज जी ने भेंट की थी और डॉ. कृष्णन से मेरे छोटे भाई ने। इन सबकी अनुमति से प्रामाणिक सामग्री संकलित कर जीवनियां प्रकाशित की गई थीं। अतएव मेरा साग्रह अनुरोध है कि आप भी अपनी सहमति देकर आभारी करें। इससे केवल मैं ही कृतार्थ न होऊंगा वरन् पुस्तक के पाठक, तरुण वैज्ञानिक और छात्र समूह भी लाभान्वित होंगे और आपके अति महत्वपूर्ण शोधकार्य से प्रेरणा प्राप्त करेंगे तथा उनका मार्ग प्रशस्त होगा। प्रेरणा स्रोत आप जैसे महापुरुषों की साधना के प्रामाणिक विवरण उनके जीवनकाल में सुधी पाठकों तक पहुंचना आवश्यक भी है।

आशा ही नहीं विश्वास है कि आप सहमति देने में संकोच न करेंगे। पुस्तक के साथ ही इस परिचय को मैं हिन्दी कि किसी प्रतिष्ठित पत्रिका में भी प्रकाशित कराने के लिए उत्सुक हूँ।

विशेष विनय,

कृपाकांक्षी
श्याम नारायण कपूर

मूल्यांकन एवं कृतित्व खण्ड

ISSN : 0373–1200

अंक : जुलाई 1999

यह प्रति 5 रु०

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 85 अंक 4

जुलाई 1999

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत, 1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

■

प्रकाशक

डॉ० शिव गोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

■

सम्पादक

डॉ० दिनेश मणि, डी० एस–सी०

■

मुद्रक

अरुण राय

कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

■

सम्पर्क

विज्ञान परिषद प्रयाग

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद - 211002

विषय सूची

सम्पादकीय

निःसन्देह आज विज्ञान ने उस लकीर को मिटा दिया है जो वस्तु-जगत से विचार-जगत तथा भौतिक से मानसिक को पृथक करती हुई समझी जाती थी। यह सत्य है कि विज्ञान के सिद्धान्त भी परिवर्तनशील हैं और विज्ञान में अटल सत्य का अंतिम सत्य जैसी कोई चीज नहीं है, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं होता और हमें अपने विचारों और कार्यों में विश्व के सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों में धर्म तथा सत्य की खोज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही काम लेना चाहिए।

वैज्ञानिक को केवल आकाश की ओर ही नहीं देखना चाहिए और न केवल उसी को अपने नियंत्रण में लाने का प्रयत्न करना चाहिए बल्कि नीचे नरक के गर्त में निःशंक भाव से देखने की भी उसमें क्षमता होनी चाहिए। इनमें से किसी भी क्षेत्र से दूर भागने की कोशिश करना वैज्ञानिक का कर्तव्य नहीं। सच्चा वैज्ञानिक तो वह है जो जीवन और कर्मफल से निर्लिप्त है और जो सत्य की खोज में, जहाँ भी उसकी जिज्ञासा ले जाय, वहाँ तक जाने की क्षमता रखता है। अपने को किसी वस्तु से बाँध लेना और फिर वहाँ से न हट सकना तो सत्य की खोज को समाप्त कर देना है और इस गतिशील संसार में गतिहीन हो जाना है।

वास्तव में विज्ञान, वैज्ञानिक भावना और तरीके मानव जीवन के आधार हैं। विज्ञान एक ओर तो सत्य की खोज करता है और दूसरी ओर मानवता की भलाई। अतः खूब सागर मंथन कीजिए, प्रकृति की एक-एक बात को जानिए, विज्ञान को और भी गहराई तथा ऊँचाई दीजिए किन्तु अपनी विद्या को, अपनी निधियों को मानव-जाति के मंगल के लिए सुरक्षित रखिए। उसके दुरुपयोग के खतरों के प्रति सजग रहिए।

यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि वैज्ञानिक भावना एक सहनशीलता है, विनम्रता है। वैज्ञानिक स्पर्धा नहीं, सहयोग चाहता है और इसका आधार मनुष्य की महती आकांक्षाओं और सर्वोच्च सामर्थ्य में निहित है।

यह सत्य है कि आज भी बहुत से लोग मानसिक दृष्टि से उसी पहले वाले वैज्ञानिक युग में रहते हैं और वे लोग भी जो बड़े उत्साह के साथ विज्ञान के पक्ष का समर्थन करते हैं, अपने विचारों और कार्यों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का ही परिचय देते हैं। वैज्ञानिक लोग भी यद्यपि वे अपने विषय के विशेषज्ञ होते हैं, कभी-कभी उस विषय के बाहर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग करना भूल जाते हैं। हम सभी को इस भूल से बचना चाहिए। दिनकर जी की ये पंक्तियाँ हमें प्रेरणा देने के लिए पर्याप्त हैं

"लक्ष्य क्या ? उद्देश्य क्या ? क्या अर्थ ?
यदि नहीं ज्ञात तो विज्ञान का श्रम व्यर्थ।

दिनेश मणि
(डॉ० दिनेश मणि)

सिकुड़ रही है हमारी जैविक विविधता

ज्योति भाई

भौतिक संपदा की दृष्टि से निर्धन माना जाने वाला हमारा देश जीव जन्तुओं की विविधता या जैविक संपदा की दृष्टि से समृद्धतम् देशों मे है। वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार धरती पर करीब एक करोड़ प्रजातियों के रूप में जीवन फल फूल रहा है जिनमें से अब तक करीब 20 लाख जन्तु और वनस्पतियों की प्रजातियाँ ही पहचानी जा सकी हैं। पहचानी गयी प्रजातियो में लगभग सवा लाख प्रजातियाँ अकेले भारत मे पायी जाती हैं। भारत का क्षेत्रफल सम्पूर्ण धरती के भूभाग का मात्र दो प्रतिशत है जबकि यहां जैव प्रजातियां करीब पाँच प्रतिशत पायी जाती हैं। भारत के विविध जलवायु वाले क्षेत्र, सांस्कृतिक विविधता और धरातल की बनावट में विविधता के कारण ही ऐसा संभव हो सका है।

भारत वास्तव में अफ्रीका, यूरोप और दक्षिण पूर्व एशिया के वनस्पतियों तथा जन्तुओं का अनूठा संगम है। यहाँ पक्षियों की 1200 जातियाँ तथा 900 उप जातियाँ हैं। पक्षियों की इतनी विविधता लैटिन अमेरिका को छोड़कर और कहीं नहीं है। बहुरंगी मोर, पाँच फुट ऊँचा सारस, धरती पर चलने वाले पक्षियों में दूसरे नम्बर का भारी पक्षी गोडावड़ भारत के ही मूल निवासी हैं। दक्षिण भारत के शेर, पूँछ वाले बंदर, बाघ शेर, चीते, हिम चीते, बारह सिंगे, कस्तूरीमृग, उड़ने वाली गिलहरी जैसे दुर्लभ सैकड़ों जन्तु आज भी भारतीय वनों की शोभा हैं। वनस्पतियों के मामले में हम कम सौभाग्यशाली नहीं हैं। यहां फूल वाले पौधों की 1500 प्रजातियां मौजूद हैं। हमारे पूर्वज 1500 से 2000 तरह की वनस्पतियों से खाद्य सामग्री एकत्र करते थे।

धरती की समृद्ध वानस्पतिक संपदा से मनुष्य ने अपने लिये खाद्य सामग्री का चयन किया था। कुछ दशकों पूर्व तक जब सारी दुनिया में तथाकथित विकास की आधुनिक किरणें नहीं पहुंची थीं, मनुष्य करीब 7000 पौधों की किस्मों से खाद्य सामग्री एकत्र करता था। लेकिन आधुनिक खेती इस मामले में हमें लगातार दरिद्र बनाती जा रही है। आज सारी दुनिया की खाद्य सामग्री का 90 प्रतिशत हिस्सा धान, गेहूँ, मक्का जैसी केवल 8 फसलों से पूरी हो रही है। इस मामले में अपने देश का एक उदाहरण ही काफी है। विशेषज्ञों के अनुमान से आज से 80 साल पहले तक धान की 30,000 किस्में बोयो जाती थीं जो अब लुप्त होते होते मात्र कुछ सौ तक ही बची हैं। ज्यादा दिन नहीं हुए जब हमारे ग्रामवासियों के भोजन में सांवा, कोदो, काकुन, रामदाना, ज्वार-बाजरा जैसे खाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में हुआ करते थे लेकिन अब धान, गेहूँ और सब्जियों के अलावा अन्य खाद्य लगभग दुर्लभ हो गये हैं।

जड़ी बूटियों की दुनिया में तो हमारा कोई जवाब ही नहीं रहा है। आयुर्वेद दुनिया की प्राचीनतम् चिकित्सा पद्धति माना जाता है जिसका आधार ही जड़ी बूटियां और वनस्पतियां हैं। आयुर्वेद के अनुसार यहां उत्पन्न होने वाली कोई भी वनस्पति बेकार नहीं है। हर एक का कोई न कोई औषधीय उपयोग है। यह अलग बात है कि मनुष्य को उनका उपयोग पता न हो। आज भी विश्वप्रसिद्ध जड़ी बूटियाँ हमारे ही जंगलों में उगती हैं। रक्तचाप के लिये सर्पगंधा, गर्भनिरोध के लिये सोलेसोडीन, अतीस, मिश्री, सोमलता, अरक, पत्थर लौग जैसी जड़ी बूटियों ने हमारी दुनिया में धूम मचा रखी है।

लेकिन दुनिया के विकसित देशों के समान जैसे-जैसे यहां भी तथाकथित विकास की किरणें फैल रहीं हैं, औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया तेज हो रही है। यह जैव संपदा भी लुप्त होती जा रही है। सबसे ज्यादा नुकसान वनों के विनाश के कारण हुआ है क्योंकि वनों में ही जन्तुओं और वनस्पतियों का प्राकृतिक संरक्षण होता है। वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष विश्व भर में एक लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल के जंगल उजाड़ दिये जाते हैं। यह स्विटजरलैंड और नीदरलैंड के कुल क्षेत्रफल के बराबर है। भारत में प्रतिवर्ष 1300 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल के वन समाप्त किये जा रहे हैं। यही कारण है कि आज हमारे देश की मात्र 12 प्रतिशत धरती ही वनों से ढकी है जबकि 1952 की वन नीति में यह स्वीकार किया गया था कि देश की कम से कम 33 प्रतिशत जमीन वनों से ढकी होनी चाहिए।

पारिस्थितिक विज्ञान ने स्पष्ट किया है कि प्रत्येक वनस्पतिक या प्राणी का स्वतंत्र अस्तित्व होते हुये भी यह किसी न किसी समुदाय का सदस्य होता है। समुदाय में स्थान विशेष की मिट्टी, पानी के साथ साथ वहां पायी जाने वाली समस्या जन्तु और वनस्पति प्रजातियां शामिल होती हैं। ऐसी स्थिति में किसी स्थान के पर्यावरण या उसकी किसी घटक से छेड़छाड़ गंभीर पर्यावरणीय संकट पैदा कर देती हैं। मारीशस का उदाहरण सामने है। वहां का एक पक्षी डोडो सोलहवीं शताब्दी तक बहुतायत में पाया जाता था। लेकिन द्वीप में यूरोपियनों ने पहुँच कर इसका अंधाधुंध शिकार किया और यह समाप्त हो गया है। लेकिन डोडो के साथ साथ मारीशस का लोकप्रिय वृक्ष कालवेरिया भी अब विलुप्त होने की स्थिति में हैं। प्रश्न उठता है कि शिकार तो हुआ डोडो पक्षी का और लुप्त हो रहा है कालवेरिया वृक्ष। इसका कारण यह है कि कालवेरिया के फलों को डोडो खाता था। डोडो की आंतों में गुजरने के बाद बीज का कड़ा छिलका घुल जाता था और बीज उग आता था। अब जब डोडो समाप्त हो गये तो कालवेरिया के बीज उगना ही बंद हो गये। मारीशस में अब इसके कुछ ही वृक्ष (वे भी 300 वर्ष पुराने) बचे हैं। प्रकृति में खाद्य श्रृंखला की यदि एक ही कड़ी कहीं से टूट जाये तो अनेक जैव प्रजातियों के लुप्त होने का खतरा पैदा हो जाता है।

प्रसिद्ध जीवविज्ञानी चार्ल्स डार्विन के प्राकृतिक वरण के सिद्धान्त के अनुसार भी प्रकृति में कुछ जैव प्रजातियां अपने आप भी विलुप्त होती रही हैं। लेकिन विलुप्तीकरण की यह गति अत्यंत धीमी होती है। इतनी धीमी कि आदमी को यह सब अपने जीवन काल में अनुभव ही नहीं होता है। वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार वनों के जैव विलुप्तीकरण की वर्तमान दर प्राकृतिक दर की अपेक्षा करीब 1000 गुनी तेज है।

भारत में वन्य जीव, जिनमें वनस्पतियां भी शामिल हैं, उनसे सम्बन्धी पहला और प्रभावशाली कानून 1972 में लागू हुआ। यह "वन्य जीवन (संरक्षण) कानून 1972" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस समय भारत में लुप्त हो रहे वन्य जीवों की सूची बनाई गयी थी। यहीं नहीं उनके शिकार पर रोक और संरक्षण सम्बन्धी नीतियां भी बनाई गई थी। उस समय 70 वनचरों, 22 रेंगने वाले पक्षियों व उभयचरों तथा 41 पक्षियों की दुर्लभ एवं खतरे में पड़ा बताया गया था। उसी तरह "बोटेनिकल सर्वे आफ इंडिया" की एक रिपोर्ट में 134 संकटापन्न वनस्पतियों की एक सूची दी गई है। इसमें 99 वनस्पतियां हिमालय तथा पूर्वी भागों की हैं। 28 पौधे तो खत्म होने की स्थिति में बताये गये जिनकी यह स्थिति तस्करी की चलते हुई। दक्षिण भारत का चोल क्षेत्र तथा हरे भरे वर्षाऋतु क्षेत्र का निवासी मैकाक (शेर पूँछ बन्दर) आज अत्यन्त संकट ग्रस्त जीव है। जंगलों के विनाश के फलस्वरूप इनकी संख्या सिमटकर मात्र सौ तक ही सीमित हो गयी है। भेडिया, सियार एवं जंगली, कुत्ते भी संकटग्रस्त हैं। बाघ, शेर, चीते, हिमचीतों को तो अब चिड़ियाघरों या अभयारण्यों में ही देखा जा सकता है। हिरणों की कुल 9 से 5 प्रजातियां खतरे में हैं कस्तूरी मृग भी नष्ट होने में स्थिति में हैं। उत्तर प्रदेश सरकार के अपने पत्र संख्या यू० ओ० 379/14. 1974 दिनांक 30.5.74 के अनुसार हिमालय क्षेत्र की नौ जड़ी बूटियों को लुप्तप्राय घोषित करके उनके निर्यात पर पाबंदी लगा दी है। ये पौधे हैं - अतीस, जटामासी, सालममिश्री, सोमलता, डालू या अरक, मिरप, महामैदा, सलापपंजा और पत्थर लौग। ये जड़ी बूटियां दमा, श्वास, रक्तचाप, कफ वात, सन्निपात, खांसी, आंव, आंतों की पीड़ा, ज्वर, कुष्ठरोग आदि के उपचार में महत्वपूर्ण साबित हुई है।

1952 की वन नीति में स्पष्ट निर्देश दिये गये थे कि संकटापन्न जीव जन्तुओं के संरक्षण के लिये उनको उनके प्राकृत वास में ही संरक्षित किया जाय। इस दिशा निर्देश के कार्यान्वयन में 20 वर्ष लग गये। 1972 में वन्य जीव संरक्षण

अधिनियम बना। तब जाकर वन्य जीवों के संरक्षण का कानूनी आधार उपलब्ध हो सका। इस अधिनियम में प्राकृत वास, वन्य जीव विहार राष्ट्रीय उद्यान अनुसूचित जीव जैसे शब्दों की स्पष्ट व्याख्या की गयी। इसके पूर्व शेर, चीते, भालू, आदि भी वन्य जीवों की श्रेणी में आते थे। अधिनियम के अनुसार वन्य जीव विहार एवं राष्ट्रीय उद्यान की सीमा के अंतर्गत किसी भी जीव को मारना या हानि पहुँचाना दण्डनीय अपराध बना दिया गया। पशुओं की सीमित चराई के लिए नियम बनाये गये। वन्य जीवों और इनसे सम्बन्धित उत्पादों के क्रय-विक्रय को भी दण्डनीय अपराध बनाया गया।

वन्य जीव संरक्षण अधिनियम के लागू हो जाने के बाद देश में 'वन्य जीव' विहारों तथा राष्ट्रीय उद्यानों की स्थापना करके जैव विविधता के संरक्षण का काम योजनाबद्ध ढंग से शुरू हुआ। किन्तु एक कमी फिर भी बनी रही। राष्ट्र की भौगोलिक विविधता के अनुरूप यह भी निर्धारित किया जाना आवश्यक था कि किस प्रान्त में कम से कम कितने संरक्षित क्षेत्र होने चाहिए ताकि सभी वांछित जीवों का संरक्षण हो सके। इस कमी को पूरा करने के लिये 1982 में "राष्ट्रीय वन्य जीव कार्य योजना" तैयार की गयी। 1982 तक हमारे देश में 247 वन्य जीव बिहार तथा 54 राष्ट्रीय उद्यान स्थापित हो चुके थे। उस समय तक देश के भौगोलिक क्षेत्र का 3 प्रतिशत संरक्षित किया जा चुका था। जैविक विविधता के संरक्षण के लिए बाकी संरक्षित क्षेत्रों की आवश्यकता का आकलन 1987 में भारतीय वन्य जीव संस्थान देहरादून ने किया। इस आकलन के अनुसार उस समय देश में 148 राष्ट्रीय उद्यान और 503 वन्य जीव विहार होने चाहिए थे। इस 651 संरक्षित क्षेत्रों के अंतर्गत 1,51,342 वर्ग कि० मी० क्षेत्रफल जमीन आनी चाहिए थी। जैसे देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 4.6 प्रतिशत है। 1988 तक देश क्षर में कुल 448 संरक्षित क्षेत्र बनाये जा चुके थे। जिनमें 66 राष्ट्रीय उद्यान तथा 382 वन्य जीव विहार थे। इनके अंतर्गत कुल 1,41,000 वर्ग किमी० जमीन आ चुकी थी।

संरक्षित क्षेक्षों की स्थापना एवं प्रबंध के बाद भी कुछ वन्य जीवों को बचाना तब तक संभव नहीं होगा जब तक कि उन्हें बाहर ले जाकर वहां बसाया न जाये। उदाहरण स्वरूप बबर शेर (लायन) अब केवल गीर वनों (गुजरात) में ही शेष बचा है। उसे उन सुरक्षित क्षेत्रों में ले जाकर बसाने की आवश्यकता है जहां वह कुछ दशकों पूर्व तक पाया जाता था। हांगुल, मणिपुरी, हिरण, उरियल, गैंडा, आदि भी ऐसे ही प्राणी हैं जो पहले देश के कई हिस्सों में पाये जाते थे लेकिन वे एक दो स्थानों तक ही सीमित रह गये हैं। ऐसा एक प्रयोग एक सींग वाले गैंडे (भारतीय गैंडे) के साथ 1948 में किया गया था। ब्रहमपुत्र घाटी से ले जाकर सात गैंडे (5 मादा 2 नर) उत्तर प्रदेश के दुधंवा राष्ट्रीय पार्क में छोड़े गये थे। अब ये वहां प्राकृतिक रूप में रहने लगे हैं।

कुछ ऐसे भी वन्य प्राणी हैं जो प्राकृतिक रूप से सम्पूर्ण राष्ट्र में जीवित ही नहीं बचे हैं। जैसे भारतीय चीता अब जंगलों में कहीं पाया ही नहीं जाता। यह केवल चिड़ियाघरों में ही शेष हैं। ऐसे प्राणियों को विशेष सुविधायें देकर इनकी वंशवृद्धि का प्रयास किया जा रहा है ताकि बाद में उन्हें इनके प्राकृतिक आवासों में छोड़ा जा सके। लुप्त हो रही वानस्पतिक प्रजातियों के संरक्षण एवं संग्रह के उद्देश्यों से दिल्ली में "राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरों" स्थापित किया गया है। ब्यूरो के देश के अनेक हिस्सों जैसे शिमला, शिलांग, जोधपुर, अकोला, त्रिचूर, आदि में क्षेत्रीय कार्यालय है। लेकिन देश में स्थित वानस्पतिक वैविध्य को देखते हुए ये केन्द्र अपर्याप्त हैं।

जैव संपदा के मामले में आज भी हम पश्चिम के उन्नत देशों से काफी आगे हैं। यही कारण है कि दुनिया के विकसित देश नये-नये पेटेंट कानूनों को बनाकर या किसी न किसी तिकड़म से हमारी इस जैव संपदा को हथियाना चाहते हैं। ताकि भविष्य में हमारी ही चीजें वे हमें ही मनमाने दाम में बेंच सके। आवश्यकता है इस संपदा के संरक्षण और संग्रह की। यह काम अकेले सरकार से बस का नहीं। इसमें आम आदमी के साथ साथ राजनेताओं, वैज्ञानिकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, पत्रकारों, अध्यापकों और आम नागरिकों के सहयोग की आवश्यकता है।

पत्रकार/लेखक ग्रामोदय प्रकाशन,
घूरपुर, इलाहाबाद

प्रकृति की अद्भुत रचना अंटार्कटिका

डॉ० रमेश चन्द्र तिवारी

अंटार्कटिका, विश्व का सर्वाधिक शुष्क, सर्वाधिक हवाओं वाला एवं सर्वाधिक बर्फीला महाद्वीप होने के साथ-साथ अब तक ज्ञात बर्फ-वायु-समुद्र का सर्वाधिक Interactive System है। पर्यावरण की दृष्टि से इसे विश्व का आदर्श क्षेत्र कहा जा सकता है, क्योंकि यहां पर मानव-आबादी का दबाव अत्यंत कम होने से प्रकृति अपना कार्य लगभग निर्बाध रूप से कर सकती है। इस कारण से यहां पर बर्फ-समुद्र के बीच होने वाले सापेक्षिक परिवर्तनों को वास्तविक रूप में देखा जा सकता है। वर्तमान में अंटार्कटिका पर विश्व के कुछ ही देशों के शोधकेन्द्र (स्टेशन) मौजूद हैं, जिनमें भारत भी शामिल है। इस क्षेत्र में हमारी तकनीकी प्रगति, उपकरणों की गुणवत्ता, हमारी कार्य पद्धति आदि को विश्वव्यापी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। इस कारण यहां पर स्टेशन स्थापित कर शोधकार्य जारी रख सकना ही अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है।

अंटार्कटिका के मुख्य भाग में 2.0 से 2.5 किलोमीटर तक मोटी बर्फीली चट्टानें हैं। इन चट्टानों के आस-पास उपस्थित समुद्र की उपरी सतह हर समय पूरी तरह जमी रहती है। वहां पर प्राकृतिक रूप से निवास करने वाले जीवों में पेंग्विन प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त प्रवासी पक्षी भी वहां देखे जा सकते हैं, जिनका भोजन वे पेंग्विन चिड़ियां है, जो टहलते-टहलते समुद्र से काफी दूर निकल जाने के कारण अपना रास्ता भूल जाती है, और अंततः मर जाती हैं। पेंग्विनें आपस में बात करती हैं और संघर्ष, करते हुए आपस में नेता बनने का प्रयास करती प्रतीत होती हैं। इस बर्फीले महाद्वीप पर अति सुन्दर बर्फीली गुफाएं पायी जाती हैं, जिनसे होकर गुजरने वाली हवाएं पानी के साथ मिलकर प्राकृतिक फौवारे का विहंगम दृश्य उपस्थित करती हैं। एक अन्य चौंकाने वाली बात वहां की दृश्यता सीमा (Visibility Limit) है, जो कि 300 किमी० है। यानि की बिना चश्में की आंखों (Naked Eye) से 300 किमी० तक साफ-साफ देखा जा सकता है। उच्च दृश्यता एवं बर्फीले सफेद समुद्र तलों के कारण आने वाले प्रकाश की मात्रा तो अधिक है ही, साथ ही उसकी परावर्तन शीलता भी अत्यधिक है। संयोगवश यदि कभी सूर्य का प्रकाश बादलों एवं समुद्र तल के मध्य पड़ता है, तो प्रकाश की परावर्तनशीलता इतनी तीव्र होती है, कि ऐसी परिस्थिति में वहां उड़ रहे हेलीकाप्टरों को इस तीव्र प्रकाश पुंज से बचने हेतु जहां हैं वहीं स्थिर रहकर बादलों के हटने तक प्रतीक्षा करने की सलाह दी जाती है। दिल दहला देने वाली तूफानी हवाएं यहां अनवरत बहती रहती हैं, जिनकी न्यूनतम गति 60 किमी०/घंटा से अधिकतम 350 किमी०/ घंटा तक हो सकती है। इस महाद्वीप पर विचित्र व्यवहार प्रदर्शित करने वाली एक शील ऐसी भी है, जिसका ऊपरी सतह का जल जमने के कुछ देर बाद पिघल जाता है। उसके बाद नीचे वाला पानी जमता है और कुछ देर बाद बूम (Boom) की जबर्दस्त आवाज के साथ ही नवनिर्मित बर्फ का निकाय (System) तमाम टुकड़ों में टूटकर चारों तरफ लगभग 20 मीटर तक

बिखर जाता है। यह दृश्य बड़ा ही मनोहारी होता है। अंटार्कटिका पर क्रिल (krill) नामक खाद्य पदार्थ भी पाया जाता है।

अंटार्कटिका महाद्वीप की भारत से दूरी 11,600 किमी० (गोवा से) है। गोवा से अंटार्कटिका तक सुमद्री जहाज द्वारा एक माह में पहुंचा जा सकता है। इस असाधारण समुद्री यात्रा का मार्ग-गोवा-मारीशस-मैत्री (अंटार्कटिका पर भारतीय स्टेशन) है। इस यात्रा में तीन तरह के समुद्रों, (क्रमशः शान्त-सामान्य-असामान्य) का सामना करना पड़ता है। सामान्यत दो से तीन समुद्री तूफानों से यात्रियों को दो चार होना पड़ता है। भिन्न जलवायु के चलते यात्रियों को उल्टियां आती हैं और शरीर का वजन 20 से 30 किग्रा० तक घट जाता है।

रास्ते में अति रमणीय छटा बिखेरने वाले बड़े-बड़े आइसबर्ग (महाकाय हिमखण्ड) के दर्शन होने से यात्री रोमांचित हो उठते हैं। अंटार्कटिका तक पहुंचने के लिए विशेष प्रकार के, बर्फ काटते हुए आगे बढ़ सकने वाले, जहाजों का उपयोग करना पड़ता है। बड़े बर्फीले निकायों में यात्रा जारी रखने के लिए ये जहाज, 'टक्कर मारो और बर्फ के टूटने का इन्तजार करो' (Hit and wait for ice to break) की तकनीक से मंजिल तक पहुंचते हैं। अंटार्कटिका यात्रा करने वाले जहाज से जुड़े वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं के अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि की बाध्यता के अनुरूप यह प्रमाण प्रस्तुत करना होता है कि उनकी इस यात्रा के दौरान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अंटार्कटिका के पर्यावरणीय प्रकृति (Flora and Fauna) को कोई नुकसान नहीं पहुंचा है।

अंटार्कटिका पर शोध गतिविधियाँ वर्ष भर जारी रहती हैं। चूंकि यहां पर गर्मी के दो माह (दिसम्बर और जनवरी) ही होते हैं, अतः शोधकर्ताओं की आवश्यकता एवं सुविधा-नुसार 4 माह एवं 16 माह के दो शोध ग्रुप भेजे जाते हैं। अंटार्कटिका के मुख्य भाग पर विभिन्न देशों के स्टेशन मौजूद हैं। हमारे देश का एक स्टेशन है, जिसका नाम "मैत्री" है। यह नवनिर्मित स्टेशन है। भारत का पहला स्टेशन 'दक्षिण गंगोत्री' तल से 40 मीटर नीचे धंस जाने और इसे बाहर निकालने पर होने वाला व्यय नया स्टेशन बनाने पर होने वाले व्यय से अधिक होने के कारण भारत सरकार ने इस स्टेशन को जस का तस छोड़ने का निर्णय किया है। यद्यपि ऐसा करना इस क्षेत्र के बारे में हुई सन्धि के अनुरूप नहीं है।

मौसम की अनिश्चित प्रकृति के कारण स्टेशन पर कार्यरत लोगों को हिदायत होती है कि वे एक स्थान विशेष पर एक साथ कार्य न करें क्योंकि ऐसा करने से बर्फीली चट्टानों के अचानक टूटने के फलस्वरूप होने वाली दुर्घटना के स मय लोग एक दूसरे की मदद के लिए पहुंचकर जनहानि को न्यूनतम कर सकते हैं। एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक या वहां निर्मित विशेष प्रकार की झोपड़ियों तक पहुंचने और यातायात जारी रखने हेतु पगडंडियों का इस्तेमाल किया जाता है। इन पगडंडी रास्तों को जीवन रेखाएं (Life lines) कहा जाता है। इनके साथ लोहे के खम्भे भी लगे होते हैं।

भारत सरकार अंटार्कटिका अभियानों पर प्रतिवर्ष 18 करोड़ रुपये खर्च करती है, जो इस मद पर अन्य देशों द्वारा किये जाने वाले खर्च (राष्ट्रीय आय की दृष्टि में), की तुलना में अत्यंत कम है। एक सामान्य पर्यटक के रूप में इस सुन्दर महाद्वीप को जाने और आने का कुल खर्च 25000 रुपये है। वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं पर होने वाले खर्च को भारत सरकार स्वयं वहन करती है। परन्तु अंटार्कटिका यात्रा पर जाने से पूर्व सम्बन्धित व्यक्ति (शोधर्कता या पर्यटक) को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) नईदिल्ली द्वारा गठित विशेष मेडिकल बोर्ड के सम्मुख उपस्थित होकर उसकी संतुष्टि एवं स्वीकृति प्रमाण पत्र प्राप्त करना आवश्यक है।

भावी संभावनाएं

अंटार्कटिका महाद्वीप पर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में मानव कल्याण की अपार सम्भावनाएं हैं जिनमें कुछ निम्नवत् हैं–

1. **पेयजल** : शुद्ध पेयजल की समस्या हमारे देश की विकराल समस्याओं में से प्रमुख है। एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर उपस्थित शुद्ध पेय जल का लगभग 77.3% अंटार्कटिका के हिमखण्डों में मौजूद है, जबकि इसी तरह के भूगर्भ जल की मात्रा केवल 11% है।

2. **पर्यटन, खनिज एवं खाद्य पदार्थ** : प्रकृति की अति सुन्दर संरचना एवं लगभग शून्य प्रदूषण क्षेत्र होने के कारण अंटार्कटिका में पर्यटन की अपार सम्भावनाएं हैं। जरूरत है, तत्सम्बंधी सूचनाओं एवं चित्रों के व्यापक प्रचार-प्रसार की और पर्यटकों को सुविधा एवं प्रोत्साहन देने की। खनिजों के दोहन की दृष्टि से यह क्षेत्र पूरी तरह अछूता है अतः इस क्षेत्र में काफी सम्भावनाएं हैं। हमारी बढ़ती आबादी के लिए

भोजन का जुगाड़ 21वीं सदी की चुनौतीपूर्ण समस्याओं में से एक है, और इस महाद्वीप पर सम्भावित खाद्य पदार्थों की उपस्थिति एवं उसका उचित दोहन हमें इस समस्या पर काबू पाने में सहायक हो सकता है।

इस महाद्वीप की भावी सम्भावनाओं, सामरिक महत्व एवं भावी हक को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है, कि इस क्षेत्र में हमें विश्व के अन्य देशों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलते हुए अपने राष्ट्रीय हितों के अनुरूप अपनी स्थिति अनवरत पुष्ट करनी चाहिए।

प्राध्यापक, भौतिकी
राजकीय सेरछिप कालेज, सेरछिप
जनपद–आइजोल (मिजोरम)-796181

श्रद्धांजलि

विज्ञान परिषद् के आजीवन सभ्य, रसायन विज्ञानी डॉ० सन्त प्रसाद टण्डन का 91 वर्ष की आयु में दिल्ली में इसी माह निधन हो गया। डॉ० टण्डन 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक (1944-46) एवं कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में विज्ञान परिषद से लगभग 50 वर्षों तक जुड़े रहे। डॉ० टण्डन की अमूल्य सेवाओं के लिए परिषद-परिवार सदैव ऋणी रहेगा।

परिषद्-परिवार की ओर से डॉ० टण्डन को भावभीनी श्रद्धांजलि।

खाद्यतेलों पर उपभोक्ता-मार्गदर्शन

रामचन्द्र मिश्र

खाद्यतेल मनुष्य को ऊर्जा प्रदान करने वाले सुग्राह्य स्रोत हैं जो भोजन के सुस्वादिष्ट बनाते हैं, वसा-घुलनशील विटामिनों ए, डी और के हेतु सुलभ वहाक हैं, रक्त-कोलेस्ट्रॉल के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक हैं, पौरुष-वृद्धि करने वाले विटामिन ई के अच्छे स्रोत हैं तथा कुछ प्रकार्यात्मक हारमोन-सदृश 'प्रोस्टाग्लेंडिंस' नामक पदार्थों का शरीर में संश्लेषण कराने में मददगार हैं। दुरुपयोग की स्थिति में यह मोटापा और हृदय-रोग पैदा कर सकते हैं।

मूंगफली, सूरजमुखी, सरसों, कर्डी, तिल, सोयाबीन, बिनौला, रेपसीड, नारियल, पामोलीन आदि तेल वस्तुतः रासायनिक तौर पर ट्राईग्लिसराइड पदार्थ हैं, यानी ग्लिसरीन तथा फैटी-एसिड रहे जाने वाले कार्बनिक अम्ल के यौगिक जो प्राकृतिक रूप में प्राप्त हैं। घी और तेल में फर्क बुनियादी नहीं बल्कि भौतिक अवस्था (ठोस/द्रव) का है, भले ही दोनों की वसा संबंधी संघटना में थोड़ी भिन्नता है। मोटे तौर पर यह कह सकते हैं कि सामान्य तापमान पर कोई भी वसा 'ठोस-तेल' है और ते 'द्रव-वसा' है। हां, पामोलीन और नारियल के तेलों के संबंध में भौतिक अवस्था संबंधी विचलन है।

वसा के दो प्रकार, संतृप्त (सैचुरेटेड) एवं असंतृप्त (अनसैचुरेटेड) हैं। दूसरा प्रकार पुनः एकल-असंतृप्त (मोनो-) एवं बहु-असंतृप्त (पोलि-) में विभक्त है। सरल शब्दों में संतृप्त का अर्थ सामान्य या शारीरिक तापमान पर वसा के ठोस होने से है जो द्रव खाद्यतेलों से यों भिन्न हैं कि यह तेल निम्न तापमान पर भी द्रव ही रहते हैं। दूसरे शब्दों में वसा के ठोस होने का तापमान जितना कम होगा असंतृप्ति-मान उतना ही ज्यादा होगा।

भारत में प्रयोग में लाए जाने वाले खाद्यतेलों में सूर्यमुखी, कर्डी, सोयाबीन और बिनौले के तेल बहुअसंतृप्त श्रेणी के हैं जब कि मूंगफली और तिल के तेल एकल-असंतृप्त तथा नारियल और पामोलीन संतृप्त होते हैं। विभिन्न खाद्यतेलों का वसा-संघटन तालिका 1 में प्रदर्शित है।

तालिका 1

विभिन्न खाद्यतेलों का औसत संघटन

खाद्यतेल	संतृप्त%	सकल -असंतृप्त%	बहु असंतृप्त%		
			लिनोलीक	लिनोलेनिक	कुल
नारियाल-तेल	91	7	2	0	2
बिनौला-तेल	26	19	55	0	55
मूंगफली-तेल	19	49	32	0	32
पामोलीन-तेल	45	43	12	0	12
सरसों/रपसीड-तेल	9	70	14	7	21
मकई-तेल	14	26	60	0	60
चावल-चोकर-तेल	17	47	36	0	36
कर्डी-तेल	9	13	78	0	78
तिल-तेल	17	43	40	0	40
सोयाबीन-तेल	15	24	53	8	61
सूर्यमुखी-तेल	10	35	55	0	55

शाकाहारी भोजन से वसा-आपूर्ति

बहुअसंतृप्त वसा में लिनोलीक अम्ल एवं लिनोलेनिक अम्ल नामक दो वसा-अम्ल होते हैं जो शरीर के विकास एवं क्रियाओं हेतु आवश्यक हैं, अतः इन्हें 'एसेंशियल फैटी एसिड' कहते हैं। इनका एकमात्र स्रोत शाकाहारी खाद्य हैं। शरीर इनका संश्लेषण करने में अक्षम्य है। हां, दूध में दूध में उपस्थित एराकिडोनिक अम्ल एक अन्य वसा-अम्ल है। खाद्यान्नों, सब्जियों एवं दूध-दही से तैयार सामान्य भारतीय शाकाहारी भोजन की थाली में इन वसा-अम्लों की कुल आवश्यक मात्रा का लगभग दो-तिहाई हिस्सा रहता है। इसे 'अदृश्य वसा-अम्ल' कहते हैं। शेष के तिहाई अंश की आपूर्ति 7 ग्राम मूंगफली-तेल या 20 ग्राम पामोलीन, या 12 ग्राम सरसों/रेपसीड या 5 ग्राम तिल या 4 ग्राम सोयाबीन या सूर्यमुखी अथवा 3 ग्राम कर्डी-तेल से की जा सकती है। ज्ञातव्य है कि इन वसा-अम्लों की उपस्थिति मछलियों में भी पाई जाती है।

खाद्यतेल की दैनिक आवश्यकता

खाद्यतेल या वसा की दैनिक आवश्यकता आबादी के विभिन्न वर्गों के रहन-सहन एवं खान-पान पर निर्भर करती है। संयोगवश सभी वसा-तेलों का कैलोरी-मान लगभग एक समान है, यानी प्रति ग्राम 100 कैलोरी/सामान्य बुद्धिजीवी मनुष्य के लिए एक शाकाहारी थाली ही वसा-अम्लों का पर्याप्त स्रोत है। इन अम्लों की आपूर्ति सस्ते खाद्यतेलों से भी प्रर्याप्त रूप में हो जाती है। हर व्यक्ति के लिए हर रोज 8 ग्राम लिनोलीक एवं 1 ग्राम लिनोलेनिक वसा-अम्ल के रूप में 'अदृश्य-वसा' जरूरी है जो वनस्पति तेलों/खाद्यान्नों से मिलती है।

कुल कैलोरी के वसा की दैनिक आवश्यकता का नियम यों है कि दृश्य एवं अदृश्य कुल वसा की खपत, 5 से 20 फीसदी के बीच होनी चाहिए। वसा की कुल दैनिक खपत 28 ग्राम से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

एक सामान्य मनुष्य के लिए पूरे दिन में दो बड़े चम्मच खाद्यतेल की खपत अथवा चार सदस्यों के परिवार द्वारा, तीन से साढ़े तीन किलोग्राम खाद्यतेल की खपत पर्याप्त एवं अधिकतम मात्रा होनी चाहिए।

खाद्यतेल एवं हृदय-रोग

खाद्यतेल, संतृप्त/असंतृप्त वसा और कोलेस्ट्रॉल का हृदय-रोग संबंध बहुचर्चित है जो प्रायोगिक निष्कर्षों पर कम तथा सांख्यिकीय आंकड़ों पर ज्यादा आधारित है। यह तथाकथित संबंध परस्पर विरोधी भी हैं जिनका फायदा उठाकर तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर निर्माता अपने उत्पादों की बिक्री बढ़ाने के लिए अर्ध्दसत्य का सहारा लेते हैं और उपभोक्ताओं को गुमराह करते हैं। इस संबंध में सही जानकारी देना उपभोक्ताओं के हित में होगा।

कोलेस्ट्रॉल, एक मोम-सदृश पर्पटी, मानव-कोशिकाओं का अभिन्न अंग है जो संतुलित मात्रा में आवश्यक कार्य करता है। विटामिन डी के निर्माण, स्टीरायड हारमोन एवं पैत्तिक-अम्ल (बाइल एसिड) की उत्पत्ति तथा स्वयं वसा के चयापचय हेतु आवश्यक है। चूंकि कोलेस्ट्रॉल की आवश्यक मात्रा का संश्लेषण प्रायः शरीर में ही होता है, अतः भोजन द्वारा अतिरिक्त कोलेस्ट्रॉल ग्रहण करना सामान्यतः अनावश्यक है। जिगर में जैव संश्लेषण द्वारा कोलेस्ट्रॉल के कुछ हद तक घटाने या नियंत्रित करने की क्रिया होती है किंतु यह सीमा कुल मांग का 25 फीसदी से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। रक्त-कोलेस्ट्रॉल का मान 240 मि०ग्रा से ज्यादा होने पर रहन-सहन की आदतों के अनुसार कोलेस्ट्रॉल की अतिरिक्त मात्रा पर्पटी के रूप में हृदय संबंधी कुछ धमनियों में जम जाती है जिससे रक्त प्रवाह में अवरोध होने पर दिल का दौरा पड़ सकता है।

कोलेस्ट्रॉल वसायुक्त होने से रक्त में अघुलनशील है। लिपोप्रोटीन के साथ होने पर कोलेस्ट्रॉल घुलनशील होता है और रक्त में प्रवाहित होता है किंतु घुलनशीलता वसा की असंतृप्तता पर निर्भर है। यह लिपोप्रोटीन वसा तथा कोलेस्ट्रॉल के योग से बनती है और दो प्रकार (उच्च घनत्व तथा निम्न घनत्व) की होती है। प्रथम प्रकार में वसा की अपेक्षा प्रोटीन ज्यादा होती है और दूसरे में इसका विपरीत। प्रथम द्वारा कोलेस्ट्रॉल का कोशिकाओं से जिगर में स्थानांतरण और बहिर्गमन होता है जब कि दूसरे द्वारा कोलेस्ट्रॉल को कोशिकाओं में भेजा जाता है और प्रतिकूल अवस्थाओं में यह धमनियों में जमता है। कुल कोलेस्ट्रॉल और उच्च घनत्व वाले लिपोप्रोटीन का अनुपात 4.5 से ज्यादा होने पर दिल के दौरे की संभावना पैदा होती है। रक्त में उच्च

घनत्व को लिपोप्रोटीन की वांछित मात्रा 35 मि० ग्रा० है। इसे 'अच्छा लिपोप्रोटीन' कहते हैं।

संतृप्त वसा अम्ल कोलेस्ट्रॉल के स्तर को बढ़ाने में सहायक माने जाते हैं। खासकर इस वर्ग के लॉरिक और पामिटिक नामक वसा अम्ल जो क्रमशः नारियल तथा पामोलीन तेलों में होते हैं, सबसे बड़े कसूरवार माने जाते हैं। एकल-अंसतृप्त वसा अम्ल से उच्च घनत्व का लिपोप्रोटीन नहीं घटता है किंतु बहुअसंतृप्त वसा अम्ल की भरपूर खूराक द्वारा उच्च एवं निम्न घनत्व वाले दोनो लिपोप्रोटीन की मात्रा घट जाती है। इस प्रकार मूंगफली और तिल के तेल सूर्यमुखी तथा कर्डी तेलों से बेहतर होने चाहिए। एक अन्य निष्कर्ष यह है कि बहुअसंतृप्त वसा अम्ल द्वारा जितना कोलेस्ट्रॉल कम होता है उसके दोगुने परिमाण में यह संतृप्त वसा अम्ल द्वारा बढ़ता है। लेकिन मात्र बहुअसंतृप्त वसा अम्ल का सेवन कैंसरजनक भी बताया गया है। आखिरकार विशेषज्ञ भी एकमत से कहने लगे हैं कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। अतःनियंत्रित मात्रा में संतृप्त वसा भी अहानिकर हो सकती है और बहुप्रशंसित बहुअसंतृप्त वसा हानिकर ! आवश्यक है क्रियाशील एवं तनावरहित जीवन व्यतीत करना और अनावश्यक या अति उपभोग से बचना।

खाद्यतेल और मोटापा

मोटापा एक शारीरिक अभिशाप है जिससे हृदय रोग, रक्तचाप, मधुमेह, कैंसर आदि सहित कम से कम एक दर्जन बीमारियां पैदा होती हैं। यद्यपि मोटापा की गंभीर स्थिति जैविक व हारमोन संबंधी कारणों से होती है, सामान्यतः उच्च वसा एवं निम्न कार्बोजयुक्त खाद्य मोटापा पैदा करने में सहायक होता है। अल्प वसा एवं इससे ज्यादा कार्बोजयुक्त खाद्य बेहतर माना गया है। साथ ही 'अति सर्वत्र वर्जयेत' का नियम अनिवार्य है। मोटा हो जाने पर ज्यादा वसा खाने की इच्छा बढ़ जाती है, अतः लालच को प्रथमतः रोकना आवश्यक है। तेल-घी का बेहिसाब अति उपभोग मोटापा का कारण बन सकता है जो असंतृप्त व संतृप्त दोनों प्रकार की वसा पर लागू होता है जरूरी है कि दैनिक कैलोरी खपत की सीमा का उल्लंघन न हो और इसका 15 से 20 फीसदी तक हिस्सा ही वसा से पूरा किया जाए। अत्यधिक वसा, शर्करा तथा नमक, सर्वथा हानिकारक हैं।

घी और 'वनस्पति-घी'

गाय या भैंस के दूध का घी नियंत्रित मात्रा मे लेना क्रियाशील मनुष्य के लिए लाभदायक है, जैसा कि तालिका 2 में इनकी वसा-संघटना से समझा जा सकता है। घी स्वादिष्ट होने के साथ ही पोषक भी है जिसकी ग्राह्यता उत्तम है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति वसा के अति उपभोग एवं कोलेस्ट्रॉल के जमाव से पहले से रुग्ण हो चुका है तो स्वाभाविक है कि व घी का हकदार नहीं है। तथाकथित 'वनस्पति-घी' के संबंध में उपरोक्त बातें लागू नहीं होती हैं।

तालिका 2.: घी और 'वनस्पति-घी' का औसत वसा संघटन

वसा-अम्ल के प्रकार	वनस्पति-घी	गाय का घी	भैंस का घी
संतृप्त, %	24.2	59.5	63.6
पामिटिक, %	17.8	28.2	26.4
स्टीअरिक, %	6.4	9.1	15.6
असंतृप्त, %	75.8	40.5	36.4
ओलीक, %	24.1	34.1	32.4
लिनोलीक, %	3.2	4.8	2.4
परा-अम्ल, %	47.3	0.4	0.4
पिघलने का तापमान, °C	31-34	28-42	32-44
कोलेस्ट्रॉल, %	शून्य	0. 3-0.4	0. 3-0.4

वनस्पति-घी कई तेलों के मिश्रण के हाइड्रोजनीकरण से प्राप्त घी-सदृश (किंतु घी नहीं) अर्द्ध-ठोस खाद्यतेल है। इसमें निकल का उत्प्रेरक रूप में प्रयोग होने से यह विशेष स्थितियों में धीमा कुप्रभाव पैदा कर सकता है (घी में अवशेष निकल 1.5पी. पी. एम. से ज्यादा होने पर)। वस्तुतः वनस्पति-घी प्राकृतिक उत्पाद की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि निर्माण के दौरान वसा-अम्ल कई परा-वसा-अम्लों (ट्रांस फैटी एसिड) में परिवर्तित हो जाते हैं जो कई प्रकार की बीमारियां, मधुमेह हृदय रोग, रोगअवरोधक क्षमता का ह्रास और कैंसर पैदा करने में सहायक माने जाते हैं। वनस्पति-घी वैसे भी एक अनावश्यक उत्पाद है जिसका उपयोग अधिकांश देशों में नहीं होता है। पश्चिमी देशों में

मक्खन एवं मक्खन-सदृश मारगरीन का उपयोग प्रचलित है जो खाद्यतेलों, वसा एवं जल का पायसीकृत मिश्रण है और मक्खन का बेहतर विकल्प है।

अंतर-एस्टरीकरण (इंटर-स्टेरीफिकेशन) विधि द्वारा अहानिकर सोडियम मेथाक्साइड उत्प्रेरक का प्रयोग कर खाद्यतेलों से उपयुक्त गलनांक वाला एक विशिष्ट मारगरीन-सदृश उत्पाद बनाया जा सकता है जो वर्तमान वनस्पति-घी का स्थान ले सके। उल्लेखनीय है कि भारत में ऐसे उत्पाद के निर्माण की मंजूरी एक दशक पहले ही दी गई थी किंतु उचित मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन की अनुपस्थिति में कोई भी निर्माता "मारगरीन-घी" बनाने के लिए आगे नहीं आया है।

सरसों का तेल हानिकर ?

सरसो के तेल में विषाक्त मिलावट की कई घटनाएं घट चुकी हैं और इसे परीक्षणोपरांत सुरक्षा की गारंटी के साथ डिब्बाबंद रूप में ही बिक्री हेतु स्वीकृति देने की मांग वाजिब ठहराई गई हैं। किन्तु इस तथ्य से अलग, विशुद्ध सरसों के तेल का निरापद होना विवाद का विषय है। सच यह है कि इस तेल में एक असामान्य एकल-असंतृप्त वसा-अम्ल-'एरुसिक-अम्ल' की अधिक मात्रा होती है जिसका चयापचय आसानी से नहीं होता है और इसके कारण हृदय के ऊतकों में वसा-जमा होती है और 'लिपिडोसिस' की बीमारी पैदा होती है। वनस्पति-घी में भी यह तेल डाला जाता है जो हाइड्रोजनीकरण के दौरान 'बेहेनिक-अम्ल' नामक उच्च गलनांक के संतृप्त वसा-अम्ल में बदल जाता है और हानिकर साबित होता है। जरूरी यह है कि वनस्पति-घी या तेल-मिश्रणों में सरसों के तेल का अनुपात 5 फीसदी से ज्यादा न हो तथा शुद्ध सरसों-तेल की खपत नियंत्रित मात्रा में ही हो।

परिष्कृत/निस्यंदित तेलों से संबंधित भ्रम

खाद्य तेलों के परिष्करण (रिफाइनिंग) तथा निस्यंदन या छानने से उनकी वसा-संघटना, कैलोरीमान या अन्य आधारभूत गुणों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। परिष्करण क्रिया में विरंजीकरण एवं गंधनिवारण के पश्चात् तेल लगभग रंगहीन, गंधहीन और सौम्य स्वाद का हो जाता है। कुछ हद तक उदासीनीकरण भी होता है। परिष्करण द्वारा मूंगफली के तेल में अक्सर उपस्थित विषाक्त एफ्लाटॉक्सिन नामक पदार्थ खत्म हो जाता हैं और अब तेल में उपस्थित कुछ कीटनाशियों को भी दूर करने में सफलता मिली है। मात्र निस्यंदन द्वारा अघुलित अशुद्धताएं दूर हो जाती हैं किन्तु तेल का रंग, गंध और विशिष्ट प्राकृतिक स्वाद बरकरार रहता है। छने व परिष्कृत तेल अपेक्षाकृत ज्यादा समय तक विक्रितगंधी ('रैंसिड' या बिसाँयध) नहीं होते हैं।

परिष्कृत तेल की गुणवत्ता कुछ परिवर्तनों को छोड़कर बेहतर होती है। सोयाबीन आदि की पेराई विलायक-निष्कर्षण क्रिया द्वारा होने के कारण इन्हें खाद्य-श्रेणी का बनाने के लिए परिष्करण अनिवार्य होता है। हां, परिष्करण द्वारा आक्सीकरण-अवरोधक अवयव टोकोफेराल या विटामिन 'ई' नष्ट हो जाते हैं। अतः खाद्यतेलों के परिष्करण के बाद इनमें कुछ निर्धारित संश्लेषित आक्सीकरण-अवरोधी पदार्थ मिलाने की मंजूरी दी गई है ताकि इनसे तले हुए खाद्य अधिक समय तक खराब न हों।

सुरक्षित पैकिंग

खाद्यतेलों को बड़ी मात्रा में उच्च घनत्व के पॉलीए-थीलीन (एचजीपीई) के ठोस डिब्बों में और एक या आधा किलोग्राम तेल की मात्रा निम्न-घनत्व के पॉलीएथीलीन (एलडीपीई) को थैलियों में पैक की जाती है।

तालिका 3. विभिन्न पैंकिग में खाद्यतेलों का भंडारण-स्थायित्व

पैकिंग-सामग्री	भंडारण-सस्थायित्व (माह)
टिन के डिब्बे	24
ग्लास (एंबर)	18
ग्लास (पारदर्शी)	12-16
एच.डी.पी.ई.	3-6
एल.डी.पी.ई.	21दिन
टेट्रापैक	4-6

अखाद्य-श्रेणी के ऐसे प्लास्टिक पदार्थों की पैकिंग होने के कारण कुछ हानिकारक तत्व तेल में प्रेवश कर जाते हैं। टेट्रापैक में पॉलीएथीलीनन एल्यूमीनियम तथा कागज की बहुस्तरीय पैकिंग होने से यह सुरक्षित होता है। पॉलिएथीलीन

टेरेफ्थलेट या 'पेट' के डिब्बे भी खाद्यतेल की पैकिंग हेतु सुरक्षित होते हैं। कुछ भी हो खाद्यतेल खरीदने के बाद इन्हें प्लास्टिक पैकिंग से निकाल कर बंद स्टील के डिब्बों में रखा जाना चाहिए। प्रकाश, हवा और नमी के संपर्क में आने पर तेल खराब होता है और उसका सुरक्षित भंडारण-समय कम हो जाता है। विभिन्न पैकिंग में खाद्यतेलों के भंडारण-स्थायित्व की सूचना तालिका 3 में दी गई है।

किस तेल में कैसे तलें ?

कड़ाही में पूड़ियां आदि गहरे तलने पर उच्च तापमान पर खाद्यतेल हाइड्रोलाइज हो कर विघटित हो जाते हैं। खाद्य में उपस्थित नमी ऐसे विघटन को बढ़ाती है। दुबारा इस्तेमाल की स्थितियों में तेल गाढ़ा, चिपचिपा और गहरे रंग का हो जाता है। तेल में जितनी ज्यादा असंतृप्तता होगी उतना ही ज्यादा तेल विकृत होगा। उच्च तापमान पर अधिक समय तक तलने से यह विकृति सर्वाधिक होती है। सूरजमुखी, कर्डी आदि बहु-असंतृप्त वसा-अम्ल वाले तेलों का उष्मा-स्थायित्व निम्नतर होता है तथा कड़ाही में गहरे तलने के लिए यह अनुपयुक्त हैं। तड़का देने, तवे पर कम समय में भूनने आदि के लिए यह उपयुक्त हो सकते हैं। सकल-असंतृप्त वसा-अम्ल वाले तेल मूंगफली और तिल के तेल कड़ाही में गहरे तलने के लिए बेहतर माध्यम हैं। किसी भी हालत में तेल को धुंवा निकलने तक के तापमान पर न गर्म करें और न्यूनतम समय तक ही खाद्य को धीमी आंच पर तलें। विकृत हुए बार-बार गर्म किए गए तेल में हानिकारक पदार्थ, एक्रोलिन आदि हो सकते हैं। उष्मा-विघटित तेल से खासकर वृद्ध, बालकों एवं रोगियों की कमजोर आंतें खराब हो सकती हैं।

तले हुए खाद्य में प्रवेश की गई तेल की मात्रा तेल के लसीलेपन या श्यानता (विस्कासिटी) खाद्य की तली हुई सतहों, तलने के समय और तापमान पर निर्भर करती है। तले खाद्य में तनु मूंगफली या मकई के तेल की उपस्थित मात्रा कम होगी और पामोलीन तेल की मात्रा सर्वाधिक। दुबारा इस्तेमाल किए गए तेल में तलने से स्यानता बढ़ती है और खाद्य में ज्यादा तेल चिपकता है। सामान्यतः बहु-असंतृप्त वसा-अम्ल वाले तेल खाद्य के साथ कम मात्रा में चिपकते हैं, किन्तु बार-बार इस्तेमाल किए जाने पर यह गुण नष्ट हो जाता है।

उपभोक्ता-मार्गदर्शन

खाद्यतेलों पर उपभोक्ताओं को गुमराह करने वाले विज्ञापनों की बहुतायत है किंतु सही मार्गदर्शन का भारी अभाव है। ऐसे में उपभोक्ताओं द्वारा सही जानकारी पाना और उपभोग में विवेक (अति सर्वत्र वर्जयेत) का प्रयोग करना आवश्यक है। सही सलाह यों है :

1. सामान्य भारतीय शाकाहारी भोजन से आवश्यक वसा-अम्लों की पूर्ति ज्यादातर होती रहती है और अतिरिक्त वसा की न्यूनतम आवश्यकता होती है। अतः भोजन में अतिरिक्त वसा का परिमाण कुल खाद्य-कैलोरी का 15 से 20 फीसदी (लगभग 2500 कैलॉरी वयस्क-पुरुष हेतु एवं 2000 कैलॉरी वयस्क-महिला हेतु) तक नियंत्रित रखें। सामान्यतः प्रति व्यक्ति प्रति दिन 28 ग्राम खाद्य तेल पर्याप्त है।

2. खाद्यतेल, अंडे आदि की उतनी ही रोजाना मात्रा, ले जिसमें कोलेस्ट्रॉल 300 मिलीग्राम से ज्यादा न हो। इसके साथ ही शक्कर और नमक की मात्रा का नियंत्रण करें और धूम्रपान, शराब और तनाव से बचें, उचित श्रम एवं व्यायाम करें।

3. तली हुई चीजों को कम खाएं, परिष्कृत खाद्यतेल का उपयोग करें, वनस्पति-घी से पहेज रखें, गहरा तलने के लिए सही मार्गदर्शन का अनुसरण करें, तलने से बचे हुए तेल का दुबारा, तिबारा इस्तेमाल न हो और सही भंडारण (हवा, प्रकाश, नमी से परे) द्वार खाद्यतेल के खराब न होने दें।

4. सभी खाद्यतेलों का कैलोरीमान लगभग समान (व किलोकैलॉरी प्रति ग्राम) है। किसी तेल विशेष को 'हल्का' या 'भारी' बताने वाल विज्ञापनों से गुमराह न हों। एकल-असंतृप्त वसा-अम्ल वाले खाद्यतेल कई कारणों से बेहतर हैं किन्तु सरसों के तेल की खपत न्यूनतम रखें।

5. खाद्यतेलों में प्रोटीन उपस्थित नहीं होती है क्योंकि सारी प्रोटीन जो तेल के बीजों में होती है, खली में रह जाती है। इस संबंध में भ्रम में डालने वाले विज्ञापनों से सावधान रहें। सोयाबीन-तेल में कोई प्रोटीन नहीं होती है।

6. खाद्य तेलों में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा अल्प होती है। अंडे, घी आदि में सर्वाधिक कोलेस्ट्रॉल होता है। गाय और भैंस के घी में उपस्थित कोलेस्ट्रॉल का मात्रा लगभग समान है।

7. यथासंभव विश्वसनीय डिब्बाबंद खाद्यतेल लें और मिलावट संबंधी परीक्षण हेतु निर्धारित विभागों से मांग करें। खाद्य मिलावट निवारण नियमों के तहत मात्र दो निर्धारित तेलों का न्यूनतम 20:80 अनुपात में मिश्रण बेचने की अनुमति दी गई है, जिसे डिब्बाबंद रूप में ही बेचा जा सकता है जिसमें उपरोक्त सूचना देना आवश्यक है। उपभोक्ता ऐसे अनधिकृत तेलमिश्र से बचें जिस पर अनिवार्य 'एगमार्क' न हो।

8. भारत में तथाकथित 'वनस्पति-घी' का उपयोग एक अपवाद है, इसका चलन खत्म करें, परिष्कृत तेल का उपयोग करें और हानिरहित मारगरीन सदृश वैकल्पिक "घी" के निर्माण एवं आपूर्ति की मांग करें।

9. अत्यधिक खाद्यतेल के उपभोग से गांठ या ट्यूमर तथा स्तन-कैंसर की संभावना अन्य सहायक कारकों के मेल से हो सकती है, अतः अति सर्वत्र वर्जयेत !

10. खाद्य-तेलों पर प्रौद्योगिकी-मिशन के अंतर्गत प्राप्त मार्गदर्शक सूचनाएं केंद्रीय खाद्य मंत्रालय से प्राप्त करें और आवश्यक सुधारों की मांग करें।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई

आसमानी आंखों से धरती के हालचाल

नरविजय यादव

प्राकृतिक आपदाओं की जानकारी के अलावा भौगोलिक व भूगर्भीय जानकारी भी उपलब्ध करते हैं सूदूर संवेदी उपग्रह। देश के विकास के लिए महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करने का यह तरीका आधुनिक प्रौद्योगिकी की देन है और भारत ने अब देश के लाभ के लिए इस का उपयोग करना सीख लिया है।

जब-जब भूकम्प, बाढ़ और सूखे जैसी प्राकृतिक विपदाएं हमें घेर लेती हैं हमें मौसम विभाग की बेतरह याद आने लगती है। लगता है कि किसी ने यदि हमें समय रहते इन आपदाओं के प्रति सचेत कर दिया होता तो शायद हम प्रकृति के प्रकोप से कुछ सस्ते छूट गए होते।

सच तो यह है कि धरती के पर्यावरण को लेकर जैसे जैसे चिंता बढ़ रही है, उसी के अनुरूप ऐसे निरीक्षण उपग्रहों की मांग भी बढ़ रही है जो यह बता सकें कि हमारे पर्यावरण को खतरे किस तरह से और कहां से पैदा हो रहे हैं।

दूसरी पीढ़ी के पांचवे और अंतिम, इन्सेट 2 ई उपग्रह के सफल प्रक्षेपण के साथ भारत ने अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में अपनी श्रेष्ठता एक बार फिर से सिद्ध कर दी है।

इस उपग्रह ने मई के प्रथम सप्ताह से ही अपना काम करना प्रारंभ कर दिया है।

दूर संचार और प्रसारण के अतिरिक्त इसकी एक बड़ी जिम्मेदारी मौसम संबंधी अध्ययनों में मदद करना भी है। इन्सेट शृंखला की पहली पीढ़ी के चार उपग्रह अमेरिका में हने थे, जिनमें से दो नाकामयाब रहे, जब भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने दूसरी श्रेणी के इन्सेट उपग्रह स्वदेशी तकनीक से निर्मित किए। अब तीसरी श्रेणी के इन्सेट 3 उपग्रहों पर काम शुरू हो चुका है। उल्लेखनीय है कि इन्सेट उपग्रहों का यह नेटवर्क विश्व की सबसे बड़ी घरेलू संचार उपग्रह प्रणालियों में से एक है।

धरती के पल-पल बदलते स्वभाव के बारे में सटीक जानकारी उपलब्ध कराने के प्रयास केवल भारत में ही नहीं किए जा रहे हैं। अन्य देश भी इस क्षेत्र में सक्रिय हैं। लंदन के निकट स्थित एक कंपनी 'साइरा' 21वीं शताब्दी के यूरोपीय उपग्रहों के लिए ऐसे अति संवेदनशील उपकरण बना रही है जो वैज्ञानिकों को धरती के पर्यावरण के विविध पहलुओं के बारे में ऐसी सूचनाएं मुहैया करा पाएंगे, जिसका अभाव आज सभी हो बहुत खलता है।

इन उपकरणों के जरिए वैज्ञानिकों को ग्लोबल वार्मिंग यानि पर्यावरण के बढ़ते तापमान, ओजोन की परत को हो रही क्षति, विभिन्न क्षेत्रों में प्रदूषण के स्तर, फसलों के स्वास्थ्य, मरुस्थली करण की बढ़ती घटती प्रक्रियाओं और विश्व के बदलते मौसम के बारे में विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध हो सकेगी।

साइरा एक ऐसे उपकरण के लिए जरूरी प्रणालियां मुहैया कराएगी जो दृश्य क्षेत्रों के साथ, इन्फ्रारेड और शार्ट वेव इन्फ्रारेड बैण्डस पर स्पैक्ट्रल रेडिएन्स डेटा एकत्रित कर सके। तापीय अवरक्त क्षेत्रों में सतह का तापमान दर्ज करना भी इसी उपकरण की जिम्मेदारी होगी। जमीन पर इस

उपकरण की 50 मीटर की विभेदन क्षमता के साथ एक शर्त यह भी जोड़ी गई है कि यह जमीन की सामान्य परिस्थितियों के साथ तापमान के विविध क्रमों की तस्वीरें भी मुहैया कराएगी।

प्रस्तावित उपकरण की एक बड़ी ख़ूबी यह होगी कि इससे किसी विशेष क्षेत्र को लक्ष्य बनाकर उसकी तस्वीरें ली जा सकेंगी और उस क्षेत्र के तापमान एवं जलवायु के बारे में जरूरी जानकारी प्राप्त की जा सकेगी।

इस समय यह उपकरण एक इमेजिंग स्पैक्ट्रोरेडियो-मीटर की शक्ल में सामने आ रहा है। इसमें धरती के विभिन्न क्षेत्रों को लक्ष्य बनाने के लिए जरूरी प्रणालियां लगा दी गई हैं। ये प्रणालियां प्रकाश को संग्रहीत करके एक टेलिस्कोप के माध्यम से कोलिमेटर में भेजती है। कोलिमेटर वास्तव में एक प्रकार का प्रिज्म है जो प्रकाश का विक्षेपण करता है। सौर विकिरण और सूर्य की गर्मी से इन प्रणालियों को सुरक्षित रखने के लिए उपग्रह में एक कूलिंग रेडिएटर की व्यवस्था भी की गई है।

इस काम में जुटे वैज्ञानिक दल के नेता डैनलॉब का कहना है कि 'सबसे पहली समस्या द्विध्रुवीय लक्ष्य को विकसित करने की है, हालांकि इसे पूरे उपग्रह के घूर्मन के जरिए सुलझाया जा सकता है। परन्तु ऐसा यदि नहीं हो सका तो हमें एक पृथक दर्पण प्रणाली को विकसित करना होगा। यह अपनी तरह की एक बिल्कुल नई प्रणाली होगी, क्योंकि अब तक किसी भी उपकरण के जरिए द्विध्रुवीय लक्ष्य के साधने में सफलता नहीं मिली है। मेरे ख्याल से पृथ्वी का निरीक्षण करने वाली किसी भी प्रणाली में पहली बार ऐसा करने का प्रयास किया जा रहा है।'

ध्रुव के परिक्रमा पथ पर प्रिज्म उपग्रह पृथ्वी के चारों ओर चक्कर काटेगा। इस उपग्रह को प्रत्येक चक्कर काटने में 100 मिनट का समय लेगा और यह अपने नीचे के महाद्वीपों और समुद्री क्षेत्रों का प्रत्येक तीन दिन के अंतर का सर्वेक्षण करेगा। इन सर्वेक्षणों से मिले आंकड़ों के बारे में वैज्ञानिकों का कहना है कि यह बड़े काम के साबित होंगे।

इन आंकड़ों के आधार पर कृषि वैज्ञानिक यह तय कर पाएंगे कि पृथ्वी के किस हिस्से में फसलों की पैदावार बहुत अच्छी होगी। वे इन आंकड़ों से यह भी बता पाएंगे कि पानी की कमी के कारण कहां अकाल पड़ सकता है।

मौसम विज्ञानी इस उपग्रह प्रणाली द्वारा भेजी गई सूचनाओं के आधार पर यह अनुमान लगा पाएंगे कि पृथ्वी के किन क्षेत्रों के मरुस्थलीकरण का खतरा बढ़ रहा है, और किन इलाकों में हिम खंड पिघलने लगे हैं। वे यह भी पता लगा सकेंगे कि मौसम के मिजाज में किस तरह की तबदीली आने वाली है और इस बदलाव पर एलनीनो में होने वाली हलचल पर क्या प्रभाव पड़ेगा। एलनीनो में आने वाले उफानों से दक्षिणी प्रशांत के देशों में तबाही के आसार पैदा हो जाते हैं।

भूवेत्ताओं के लिए इस उपग्रह से मिले आंकड़ों से भौगोलिक मैपिंग यानि उन इलाकों का पता लगाने में मदद मिलेगी जहां खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं। सिंचाई की समस्याओं को समझने और उनका समाधान करने में भी ये आंकड़े महत्वपूर्ण साबित होंगे। (अभियान)

गणिताचार्य डॉ० गणेश प्रसाद

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय

भारतवर्ष की पुण्य भूमि पर समय-समय पर ऐसे विद्वान जन्म लेते रहे हैं जिन्होंने अपने कार्यों के द्वारा देश का गौरव बढ़ाया है। ऐसे ही कर्तव्यनिष्ठ, कर्मठ, लगनशील एवं धुन के पक्के विद्वान थे डॉ० गणेश प्रसाद।

आपका जन्म बलिया के पुरानी बस्ती में सतिवाढ़ा मोहल्ला में प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में हुआ था। आपके पिता मुन्शी रामगोपाल अपने पिता महाबतलाल के इकलौते पुत्र और इस प्रसिद्ध कानूनगो घराने के अन्तिम कानूनगो थे। वे बहुत ही बुद्धिमान और हाजिरजवाब थे।

कानूनगो साहब का प्रथम विवाह शाहाबाद के कायस्थों के प्रसिद्ध गाँव मुरारपट्टी निवासी मुन्शी राम जियावन लाल मुख्तार की पुत्री से हुआ था। इन्हीं के द्वारा 15 नवम्बर 1876 को रामगोपाल सिंह जी के घर एक बालक ने जन्म लिया, बड़े लाड-प्यार के साथ नाम रखा गया 'गणेश प्रसाद'। अभी आपकी उम्र सात वर्ष ही थी कि माता की ममता से वंचित होना पड़ा।

चूँकि आप एक सम्पन्न जमींदार व प्रतिष्ठित कानूनगो के पुत्र थे इसलिए आपका विवाह बढ़ते दबाव के कारण अधिक समय तक न टाला जा सका। जिस समय आपक परिणय-सूत्र में बँधे उस समय आपकी आयु 9 वर्ष थी। आप की धर्मपत्नी नन्दकुमारी शाहाबाद के लोदीपुर निवासी वकील मुन्शी डोमनलाल की पुत्री थी। सोलह वर्ष की आयु में प्रथम तथा अन्तिम संतान कृष्णकुमारी का जन्म हुआ। आप एम० ए० कर ही रहे कि आपकी जीवन संगिनी स्वर्ग सिधार गईं। इस दुःखद अध्याय ने जहां आपका वैवाहिक जीवन समाप्त कर दिया वहीं पुत्री कृष्ण कुमारी भी मातृविहीन हो गई।

गणेश प्रसाद का अक्षर ज्ञान घर पर ही हुआ। 8 वर्ष की आयु में उस समय की 6 वीं कक्षा में बलिया जिला स्कूल में प्रविष्ट हुए। हालाँकि ये पढ़ने में कठोर परिश्रम करते थे किन्तु पाँचवी कक्षा में अनुत्तीर्ण हो गये। मिडिल परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने के उपरान्त इनकी प्रतिभा ने अपना प्रभाव दिखाना शुरू किया। नवीं कक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और सन् 1918 में गवर्नमेन्ट हाई स्कूल से एंट्रेस भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रयाग के म्योर कॉलेज में प्रविष्ट हुए। शिक्षा के प्रति आपकी तन्मयता व परिश्रम को देखकर सहपाठी आपको डाक्टर साहब अथवा दार्शनिक कहने लगे। यहां आपने विज्ञान का विशिष्ट अध्ययन किया और चार वर्ष में बी० ए० की परीक्षा दी। सर्वोच्च अंकों के साथ प्रथम श्रेणी प्राप्त किया। गणित शास्त्र में एम० ए० करने के बाद इन्होंने डी० एस-सी० की परीक्षा देने की अनुमति माँगी। उस समय इसके लिए केवल परीक्षा की ही योजना थी, इसके लिए न तो कोई पाठ्यक्रम निर्धारित था और न हीं इसमें कोई सम्मिलित ही हुआ था। काफी प्रयास के पश्चात् अनुमति मिल गयी और परीक्षा उत्तीर्ण कर आपने प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रथम डी० एस-सी० होने का गौरव प्राप्त किया। यह उपाधि विशुद्ध गणितशास्त्र में मिली। आप तुरन्त ही कायस्थ पाठशाला में गणित के प्रोफेसर नियुक्त हो गये। दो वर्ष तक अध्यापन करने के उपरान्त इनकी योग्यता से प्रभावित होकर प्रान्तीय सरकार ने आपको विशेष छात्रवृत्ति दी। उस समय विदेश में जाना अपराध माना जाता था और लोगों का कोपभाजन बनना पड़ता था। किन्तु आपने समाज के रोष की परवाह न करके विदेश जाने का निश्चय किया।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय उस समय पूरे विश्व में गणित के विशेष अध्ययन के लिए प्रसिद्ध था। हालांकि प्रयाग विश्वविद्यालय में गणित का पाठ्यक्रम उतना ही था जितना कि कैम्ब्रिज का तथापि वहाँ वाले यहाँ की उपाधि को अपनी उपाधि के बराबर न मानते थे। डाक्टर साहब यहाँ के सर्वोच्च उपाधिधारी थे अतएव वहाँ आपको कुछ कम समय लगा। सन् 1901 में वहाँ के बी० ए० होने के बाद सन् 1902 से

1904 तक आपकी छात्रवृत्ति बढ़ गयी। केम्ब्रिज और जर्मनी के गटिंजेन के विद्यापीठ में आपने विशेष अनुशीलन किया।

सन् 1904 में विदेश से लौटते ही आपको म्योर कालेज में गणित का आचार्य नियुक्त किया गया। अगले ही वर्ष 1905 में आप काशी के क्वींस कालेज में गणित के आचार्य होकर चले गये। सन् 1914 मे गया यहाँ की नौकरी को छोड़कर कलकत्ता विश्वविद्यालय के अन्तर्गत नवनिर्मित विज्ञान विद्यालय में व्यवहार गणित का आचार्य बनना स्वीकार कर लिया। तीन वर्ष पश्चात् एक बार पुनः आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में गणित के आचार्य तथा विभागाध्यक्ष नियुक्त होकर काशी आ गये। शीघ्र ही सन् 1918 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज के प्रिन्सिपल नियुक्त हो गये। स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण शीघ्र ही आपने यह पद भी त्याग दिया। इसके बाद आप केवल गणित विभाग के प्रधान आचार्य ही रहे। सन् 1923 में विश्वविद्यालय के प्रबन्ध समिति से कुछ मन मुटाव हो जाने के कारण आपने यह पद भी त्याग दिया। यहाँ के बाद आप अन्त समय तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'हार्डिंज प्रोफेसर' पद को सुशोभित किया।

डाक्टर साहब अपनी धुन के बड़े पक्के थे। जिस काम में लगते थे उसको अधूरा छोड़ना पसन्द नहीं करते थे। आपके शोधकार्य में अत्यन्त रुचि थी। आप अपने शिष्यों को शोध कार्य करते देख बड़े प्रसन्न होते थे। आपको इस बात से अरुचि होती थी कि प्रायः लोग नौकरी मिल जाने पर शोध कार्य छोड़ देते हैं।

आपकी गणित सम्बन्धी गवेषणाएँ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। मौलिक अनुसन्धान का कार्य आपने छात्र जीवन से ही प्रारम्भ कर दिया था। प्रथम मौलिक अनुसन्धान सन् 1900 में मैंसेजर आफ मैथेमेटिक्स Messenger of Mathematics नामक पत्र में प्रकाशित हुआ। आक्टर रौट जैसे प्रसिद्ध विद्वान ने 'स्थिति विद्या' पर लिखे अपने ग्रन्थ में इसे प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है। 1924 में अवधेश नारायण सिंह नामक एक छात्र ने जब आपके अधीन शोध का कार्य शुरू किया तो डॉ० साहब ने उनको एक गणित की समस्या हल करने को दी। यहाँ पर ध्यान देने योग्य है कि इसी समस्या पर तीन बड़े गणितज्ञों ने इसके पूर्व काम किया था और उन्हें आंशिक सफलता ही मिल पायी थी। इस समस्या पर अवधेश नारायण जी ने लगातार दो माह तक कार्य किया, परन्तु आंशिक सफलता भी हाथ न लगी। निराश होकर डॉ० साहब के पास गये और कहा- "मुझे अब तक इस समस्या को हल करने का कोई मार्ग नहीं सूझा। जिस समस्या का समाधान तीन बड़े-बड़े गणितज्ञ न कर सके उसे मैं कैसे सुलझा सकूँगा।"

डॉ० साहब ने उत्तर दिया - "सूझ केवल बड़े लोगों को ही थोड़े होती है। कभी-कभी छोटे लोगों की भी सूझ बहुत महत्वपूर्ण होती है।" स्वाभाविक है इस दृढ़विश्वास व इच्छा शक्ति के बल पर ही वे अपने शोध कार्य को नई गति देते रहे होंगे यह वाक्य किसी भी व्यक्ति के उत्साह को द्विगुणित कर देने और उनमें नया उत्साह व स्फूर्ति का संचार कर देने के लिए पर्याप्त है। खोज के विषय का जो एक वृहत् लेख आपने लिखा था उसे गटिंजेन (जर्मनी) की विज्ञान परिषद् के मुखपत्र Abhandlungenमें प्रो० क्लैन ने छपवाया था। उसे कई ग्रंथों में प्रमाण माना गया है। इसी तरह कई अन्य शोध पत्र भी प्रमुख देश व विदेश के तत्कालीन पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रहते हुए आपको 'ऑन द फण्डामेण्टल थिअरम ऑव द इण्टीग्रल कैलकुलस' विषयक कई महत्वपूर्ण लेख लिखे। आपके जीवन-काल में ही गणित विषयक 11 ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका था सभी ग्रन्थ उच्च कोटि के एवं प्रामाणिक हैं। आप संसार के प्रसिद्ध गणितज्ञों पर जीवनी से सम्बन्धित ग्रन्थ का भी प्रणयंन कर रहे थे। किन्तु दुर्भाग्य वश केवल दो खण्ड ही निकल पाये। चलनकलन और चलराशि कलन नामक ग्रन्थों की विस्तृत एवं प्रशंसात्मक समालोचना प्रो० विल्सन ने अमेरिका के गणित परिषद् के मुखपत्र में प्रकाशित करायी थी।

आपने पहले कलकत्ता और फिर काशी में गणित परिषद् की स्थापना की। दोनों के सदस्य एवम् सभापति रहे। कलकत्ता की दूसरे प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्था एसोसियेशन फार कल्टिवेशन आफ साइंस के उपसभापति बनाये गये थे और अन्त तक इस पद पर बने रहे। आगरा विश्वविद्यालय के नींव डालने वाले में से डॉ० साहब भी एक थे। विश्वविद्यालय ऐक्ट के पास हो जाने पर सन् 1927 में विश्वविद्यालय के प्रथम सीनेट के चुनाव में स्नातकों की ओर से सीनेट के सदस्य और सीनेट से कार्यकारी परिषद् के सद्स्य चुने गये और केवल एक वर्ष छोड़कर अन्त समय तक सिनेट व परिषद् के सदस्य बने रहे। इसके अतिरिक्त कई अन्य

कमेटियों के भी सदस्य निर्वाचित किये गये। विज्ञान परिषद् प्रयाग के स्थापना के कुछ ही दिनों बाद डॉ० साहब उसके माननीय आजीवन सदस्य चुन लिये गये और लगातार दो वर्षों (1933-35) तक सभापति भी रहे।

डॉ० साहब का हिन्दी के प्रति गहरा लगाव था। सन् 1921 में जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की रिफार्म कमेटी बैठी तो उसमें आपने इस बात का भरपूर प्रयास किया कि उच्च से उच्च स्तर तक की पढ़ाई हिन्दी भाषा में हो। उन्होंने संसार के अन्य सभी विश्वविद्यालयों का उदाहरण देते हुए यह प्रमाणित किया कि परायी भाषा में शिक्षा अस्वाभाविक, विषम, हानिकर और अपमानजनक है।

डॉ० साहब हृदय से हिन्दी के हितैषी थे। जहाँ कहीं मौका मिलता था वह हिन्दी की हिमायत करने से नहीं चूकते थे। वह कहा करते थे मैंने हिन्दी का अध्ययन नहीं किया है। गणित के काम से छुट्टी लेकर हिन्दी पढ़ूँगा। हिन्दू विश्वविद्यालय में एक अवसर पर उन्होंने रामदास गौड़ से कहा था-"मैं तो व्याख्यान देने लायक हिन्दी जानता नहीं, परन्तु कोशिश करूँगा।" 8 नवम्बर 1916 के विज्ञान परिषद् प्रयाग के तीसरे वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर डॉ० साहब का व्याख्यान प्रयाग विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में उपाधि वितरण समारोह के बाद सर जेम्स स्कर्जी मेस्टन के सभापतित्व में हुआ। हिन्दी में गणित जैसे नीरस विषय पर यह पहला सुबोध व्याख्यान था, जो भारतीय विद्वजनों के लिए बिल्कुल नई बात थी। मेस्टन साहब ने अन्त में कहा कि मुझे यहाँ आकर बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। यद्यपि डॉ० साहब के अनुसार उनके व्याख्यान का आरंभिक अंश साधारण न था तथापि उनका व्याख्यान मनोरंजक हुआ। इस व्याख्यान का सारांश विज्ञान में प्रकाशित हुआ था।

डॉ० गणेश का जीवन बहुत साधारण था किन्तु ऊपरी वेश-भूषा तथा रहन-सहन अमीरों सा था। उनकी किताबें और कागज-पत्र उनके मेज पर या भूमि पर इधर-उधर बिखरे रहते थे। नौकर को अपने कमरे की सफाई नहीं करने देते थे। उनका कहना था -"यदि नौकर को इस कमरे में घुसने दूँ तो यदि जरूरत पड़ने पर अपने सामान को खोजना चाहूँ तो वह नहीं मिलेगा।" सामान के नाम पर कागज व किताबे ही दीख पड़ती थीं। डॉ० साहब अपने लिए तो कम से कम व्यय करते थे परन्तु सार्वजनिक कामों या परोपकार के लिए उनका हृदय अत्यन्त विशाल व उदार था।

डॉ० साहब बड़े स्वाभिमानी व शांतप्रिय व्यक्ति थे। कभी किसी के यहाँ आते जाते न थे। अपने समय की बड़ी कड़ाई से पाबन्दी करते थे। स्थिति यह थी कि उनके पास कोई मिलने जाता था तो जितने समय बात की पूर्व नियुक्ति हुई थी, उससे एक भी मिनट अधिक बात न करते थे। शायद यही कारण था कि लोग उन्हें ऐसा रूखा आदमी मानते थे जो समाज से कोई सम्पर्क नहीं रखता है। मानव जीवन में कोई न कोई ऐसी घटना अवश्य घटती है, जिसे यदि वह ध्यान दे तो उसके पूरे जीवन-शैली में बदलाव आ जाता है। डॉ० साहब के जीवन में यह घटना उस समय घटित हुई जब उनकी एकमात्र संतान कृष्ण कुमारी भी सन् 1912 में इस धरा से प्रस्थान कर गयी। वह अपनी पुत्री का विवाह एक सुयोग्य लड़के से करना चाहते थे। इस दुर्घटना के वाद वह बहुत दिनों तक शोकमग्न रहें, पढ़ना-लिखना छूट गया, जीवन कटु हो गया। इस अवस्था से निकलने में उन्हें कई माह लग गये, परन्तु उनका स्वभाव स्वभाव बिल्कुल बदल गया। अब वह पहले के डॉ० गणेश प्रसाद न रहे। उनका एकान्तवास प्रायः समाप्त हो गया । अब वह बहुत तरह के मनुष्यों से विविध विषयों पर बात भी करने लगे।

काल की गति को कोई नहीं जानता, 9 मार्च सन् 1935 को गणित का यह महान विद्वान हमसे छीन लिया गया। उनकी मृत्यु आगरा के रामसन अस्पताल में सायं 1 बजकर 30 मिनट पर हुई। वे वहां आगरा विश्वविद्यालय के कार्यकारी परिषद् की मीटिगं में भाग ल्लेने गये थे। वे गणित के साक्षात स्वरूप थे वे अहर्निश गणित के विषय का ही चिन्तन किया करते थे और चाहते थे कि दूसरे भी उन्हीं के सदृश गणित के ध्यान में निरन्तर निमग्न रहें, उनके अनुसंधानों से उनकी प्रतिष्ठा और कीर्ति भारत में ही नहीं अपितु समस्त संसार में व्यापत हो गई थी। उन्होंने हमारे देश का गौरव बढ़ाया। अतएव उनके निधन से देशवासी मर्माहत हो उठे। परन्तु इस नश्वर जगत् में उनका पंचतत्वों से बना शरीर न होते हुए भी कौन कह सकता है कि वे हमारें बीच नहीं हैं। उनका नाम तो अजर-अमर है।

संयुक्तमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

ब्लास्ट ऑफ़!!

डॉ० अरविन्द मिश्र

"पापा ...."

"बोलो"

"एक बात बताइये .... यह जो मिलेनियम बग का मामला है ..... क्या इससे सचमुच बड़ी मुसीबतें आ जायेंगी ? ..... क्या बैंकों में जमा राशियों के हिसाब-किताब में गड़बड़ी आ जायेगी ? रेल, वायुयानों का आरक्षण, यात्रा और यहाँ तक कि ट्रैफिक आदि भी प्रभावित हो जायेगी ??"

"तुम्हें कोई शक है क्या ?"

"नहींSSS" एक लम्बे खिंचाव के साथ इस शब्द का उच्चारण करते हुये मेरे सुपुत्र ने फिर से अपनी आँखें टाइम्स आफ इण्डिया के इसी समस्या पर एक विशेष परिशिष्ट में छपे लेख पर गड़ा दी, जिसे अखबार ने सुर्खियों में बड़ी प्रमुखता से छापा था। लेख भारतीय कम्प्यूटरों में वाई-2 -के समस्या पर था और सुबह ही मैं उस पर एक सरसरी निगाह डाल चुका था। और बातों के अलावा सबसे बड़ी हैरत मुझे इस बात की थी कि कम्प्यूटर वैज्ञानिक इतने अदूरदर्शी कैसें हो गये थे – वे जरा सी इस बात का पूर्वाकलन नहीं कर पाये कि द्विपक्षीय पद्धति पर आधारित कम्प्यूटर नयी सदी या सहस्त्राब्दी यानी 2000 के आते ही बेकार हो जायेंगे। उनके लिये 2000 का मतलब सिर्फ दो ज़ीरो (00) ही रह जायेगा। सारी गणनायें गडमड हो जायेंगी ....?

"पापा, अचानक ही मेरे मन में एक विचार आया है ......" इस उद्‌घोष ने सहसा मेरी चिन्तन प्रकिया पर फुलस्टाप लगा दिया। किंचित झुंझलाहट भरे लहजे में मैंने सुबह-सुबह के इस वैज्ञानिक आक्रमण को रोकना चाहा– "डोन्ट डिस्टर्ब मी मिकी.... पहले पूरा लेख पढ़ लो फिर शाम को चर्चा करेंगे फुरसत में" मैंने देखा अपने उत्कंठा को दबाने में मिकी का चेहरा बेबसी से भर उठा था... मैं भी सुबह-सुबह किसी सैद्धान्तिक बहस में नहीं पड़ना चाहता था। मुझे आफिस की तैयारी करनी थी... एक रोजमर्रा के ज़ेहाद की तैयारी !

सुबह बीती, शाम आ धमकी। मिकी महराज का पूरा चेहरा अब तक एक गोलनुमा से प्रश्नचिन्ह में तब्दील हो गया था। मुझे रहम आ गयी। आखिर पिता का दिल जो ठहरा ....

"हाँ बोलो भई, तुम्हारे मिलेनियम बग पर चर्चा कर ही लेते हैं, चलो शुरू हो जाओ ...."

"मेरी एक शंका है पापा ...."

"लघु या दीर्घ ?"

"मजाक छोड़िये ...."

"अच्छा चलो, आगे बोलो... लेकिन बिना भूमिका के... सीधे सवाल पर आओ..."

"ठीक है, जिसकी स्पेस शिप्स शटलें और मिसाइलें हैं उन्हें लांच करने में उल्टी गिनती का विधान है..... यानी काउन्ट डाऊन, जैसे..... 10, 9, 8, 7, 6, 5, 4, 3, 2, 1 और फिर जीरो... और ब्लास्ट ऑफ !!... पलक झपकते सारा मंजर आंखों से ओझल।

"ठीक है... ठीक है... इतना विस्तार से यह सब बताने

की क्या जरूरत है ?''

''क्योंकि इसका सम्बन्ध वाई-2-के से हैं....''

''वह भला कैसे ?'' सहसा ही मेरी जिज्ञासा का ग्राप जम्प कर गया।

''वह इस तरह कि जहाँ जहाँ भी सुरक्षा या प्रहार के आयुधों के काउन्ट डाउन कम्प्यूटर से जुड़े होंगे... जैसे मारक मिसाइलों को ही ले लीजिये... इस सदी की अन्तिम आधी रात के तत्क्षण बाद ही कम्प्यूटर में '00' के आते ही सब ब्लास्ट आफ कर जायेंगे... तब होगा एक अनचाहा भयंकर विनाश...'' ''मिकी, यह सब तुम्हारे हादसा फिल्मों के ज्यादा देखने का दुष्परिणाम है दरअसल ब्लास्ट ऑफ तुम्हारे वाइल्ड इमैजिनेशन का है ऐसा थोड़े ही होता है....'' कहने को तो मैं यह एक सांस में कह गया, लेकिन एक डरावनी आशंका मेरे मन में भी जन्म ले चुकी थी।

''पापा आपने पढ़ा नहीं था, कई वर्षों पहले एक विदेशी एजेन्सी के हवाले से एक समाचार छपा था कि एक छोटी सी गणितीय भूल के चलते अमरीका की अन्तरद्वीपीय मिसाइलें सहसा रूस की ओर चल पड़ने वाली ही थीं कि उन्हें हठात् ऐन वक्त पर रोक लिया गया था .....''

''मुझे मुझे स्मरण है किन्तु 'वाई-2- के से इसका क्या सम्बन्ध ?''

''कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो नहीं, मेरी एक शंका भर है ....''

''..... कि कम्प्यूटर में नयी सदी की आधी रात के बाद '00' होते ही ढेर सारी मिसाइलें शटल, अन्तरिक्ष यान सभी गंतव्य की ओर अकस्मात चल पड़ेंगे... और भारी अफरा तफरी मचेगी... वाह, क्या सोचा है तुमने ? तुम कम्प्यूटर वैज्ञानिकों, आयुध विज्ञानियों और सुरक्षा विशेषज्ञों को क्या निरा मूर्ख समझते हो ..... ?''

''नहीं पापा, मेरा आशय केवल यह जानने का था क्या ऐसा हो सकता है ? जब कितनी ही जुगतें, प्रौद्योगिकी इस प्रॉब्लम के चपेट में आ गयी लगती हैं, तो ऐसा भी हो सकता है कि सेना या सुरक्षा के आयुधों की कार्य प्रणाली भी प्रभावित हो जाय... बस आप यह बताइये कि ऐसा हो सकता है क्या?''

''भई, मैं न तो कोई कम्प्यूटर विशेषज्ञ हूँ, और न ही सैन्य शास्त्री.... इन मामलों के क ख ग का भी मुझे ज्ञान नहीं है.... एक आम आदमी सरीखा ज्ञान है मेरा.... तुम्हें यह सवाल अपने स्कूल के कम्प्यूटर टीचर से पूँछना चाहिये....'' मैंने पीछा छुड़ाने की कोशिश की।

''पूँछा था मैंने, अपने कम्प्यूटर सर से ....''

''क्या बताया उन्होंने''

''सवाल सुन कर बस हँस पड़े थे, जवाब नहीं दिया उन्होंने''

''तुम्हें फिर पूँछना चाहिए था''

''फिर पूँछा तो डांट खानी पड़ी.... उन्होंने कहा कि मुझे अपने कोर्स पर कन्सन्ट्रेट करना चाहिए.... 'वाई-2-' के समस्या पर हमारे सिलैवस में नहीं है ....''

''हाँ, यह तो है'' मैंने भी मिकी से कम्प्यूटर 'सर' की बात का समर्थन किया।

''पापा इतनी बड़ी समस्या पूरे विश्व को परेशान किये हुये है.... आप भी सिलैब की बात कर रहे हैं....''

''तो भई मैं क्या करूँ'' मुझे अपनी भूल का अहसास हुआ।

''आप कुछ नहीं कर सकते तो इस पर एक कहानी ही लिख कर 'विज्ञान' को भेज दीजिये.... हो सकता है मेरी शंका का समाधान कोई कर दें मेरे बेटे ने चुटकी ली।

''इसकी क्या गारंटी की ऊल जलूल बातों वाली तुम्हारी यह कहानी छप ही जायेगी ?'' मैंने उसी के लहजे में जवाब दिया।

''आप भेज कर तो देखिये.... आखिर यह सारी दुनिया की रक्षा का सवाल है ?'' अचानक वह गम्भीर सा दिखने लगा।

''कहानी छपवाने के पक्ष में अब तुम सारी दुनिया की दुहाई दे रहे हो ?'' मैंने कुरेदा। ''पापा, मेरी शंका जेनुईन है, इसका जवाब मुझे चाहिए ही.... और यदि सचमुच ऐसी घटना हो सकती है तो आपकी कहानी पढ़ कर इससे जुड़े लोग आगाह हो जायेंगे.... एक भयंकर विनाश की घटना

टाली जा सकेगी।"

मैं बेसाख्ता हंस पड़ा.... बचपन सभी का ऐसा ही होता है। पर कभी-कभी बचपन की (बचकानी) बातों में भी कोई पते की बात निकल आती है।.... बच्चे सो गये हैं.... मैंने आखिर मिकी की मनुहार मान ली है.... उसके अपने बीच हुये संवाद को शब्दों में उकेर दिया है अब आगे का काम 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक का है। उन्हें भी मानवता की चिन्ता होगी ही। अब यह कहानी है या अकहानी मैंने इसका नामकरण भी कर दिया है...." ब्लास्ट ऑफ ??" इसके छपने की प्रतीक्षा मुझे भी रहेगी....नयी सदी के ज़रा पहले ही छप जाये तो बेहतर।

सचिव, भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति
ए-2/21, संकाय अपार्टमेन्ट, काटन मिल कम्पाउन्ड,
चौकाघाट, वाराणसी-221002

भारत में फल विकास

दर्शना नन्द

फल एक ऐसा आहार है जिसका आनन्द अत्यन्त प्राचीन काल से ही मानव जाति ने उठाया है। फल अनेक विटामिनों, खनिज लवण और आहारीय रेशों का बहुत अच्छा स्रोत होते हैं और ये सभी चीजें अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। इसीलिए वैज्ञानिक प्रतिदिन के आहार में कुछ फलों को खाने की सलाह देते हैं।

मनुष्य के दैनिक आहार में फलों का सम्मिलित किया जाना कितना अधिक आवश्यक है– यह तथ्य सम्भवतः अब किसी से छिपा नहीं है। ये फल बड़े ही स्वास्थ्यवर्धक होते हैं, जो मुख्य रूप से इनमें उपलब्ध विभिन्न आवश्यक विटामिनों और खनिज लवणों के कारण होते हैं। इसके बावजूद भी अपने देश में फलों के उत्पादन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया, बल्कि यह कहना अनुचित न होगा कि फलों की बागबानी की अनदेखी की जाती रही।

फलों की बागबानी की अनदेखी इस सीमा तक पहुंच चुकी थी कि भारत में फलों के अंतर्गत आच्छादित क्षेत्रफल के स्पष्ट आंकड़ें तक उपलब्ध नहीं थे। इसके लिए स्वतंत्रता पूर्व केवल 25 लाख एकड़ (10 लाख हेक्टेयर) अनुमानित था, जिसमें भी मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा कुछ अन्य प्रदेशों के आंकड़े सम्मिलित नहीं थे तथा लगभग 2, 23, 448 एकड़ (89, 378 हेक्टेयर) क्षेत्रफल अब पाकिस्तान व बंगलादेश में है। स्पष्ट है कि वर्तमान भारत में स्वतंत्रता (वर्ष 1947) पूर्व फल-उद्यान के अंतर्गत केवल लगभग 22,76,552 एकड़ अर्थात् 9,10,622 हेक्टेयर क्षेत्रफल था, जब कि वर्तमान समय में यह क्षेत्रफल 32.32 लाख हेक्टेयर है, जिससे प्रति वर्ष 282.4 लाख टन फल उत्पादन हो रहा है।

उपरोक्त के अतिरिक्त जो फल-उद्यान उपलब्ध थे भी, उनमें से अधिकांश उद्यानों में घटिया और बीजू क़िस्में लगी थीं, बागों में वृक्षों के बीच दूरियां बहुत कम थीं तथा बाग घने रहते थे, खाद-पानी की मात्राएं अपर्याप्त थीं तथा इन्हें प्रयोग करने की विधियाँ त्रुटिपूर्ण थीं। फल-वृक्षों की कांट-छांट पर भी कोई विशेष महत्व नहीं दिया जाता था और फलों के विपणन की सुविधाएं अपर्याप्त थीं। इनके अतिरिक्त फलों की बागवानी कुछ विशेष निरक्षर वर्ग के व्यक्तियों तक ही सीमित रहने के कारण भी उद्यान विकास कार्य बाधित था।

इन्हीं कारणों से फलों के उत्पादन में वृद्धि लाने की बड़ी आवश्यकता का अनुभव किया था, जो केवल उसी दशा में सम्भव था जब कि उद्यानपति को इनकी बागवानी पर वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान होता। उस समय विभिन्न फलों की वैज्ञानिक बागवानी पर विस्तृत विवरण सहित संकलित रूप में कोई पुस्तक भी उपलब्ध नहीं थी। ऐसी विकट परिस्थितियों में जबकि फलों की बागवानी पर प्रामाणिक तथ्यों तथा पठन सामग्रियों का अभाव था, भारत में स्थापित एक अमरीकी औद्यानिक वैज्ञानिक-प्रोफेसर विलियम ब्रूस्टर हेज (डब्लू० बी० हेज) ने वर्ष 1945 में फलों की बागबानी पर 'फ्रूट ग्रोइंग इन इण्डिया' नामक पुस्तक लिखकर और वर्ष 1945 में प्रकाशित करा कर महत्वपूर्ण योगदान किया है। इस पुस्तक में अनेक औद्यानिक समस्याओं पर वाद विवाद किए गए हैं। परन्तु फल-वृक्षों में शोध कार्यों के परिणाम काफी लम्बे समय के बाद ही प्राप्त हो पाते हैं, यहां तक कि 15-20 वर्ष तक भी लग जाते हैं।

इसी कारण आम में अनियमित फलन, आम में गुच्छा रोग, अमरूद में उकठा रोग तथा पपीते के पौधे में लिंग भेद एवं अफलन तथा पपीते में वानस्पतिक प्रसारण आदि जैसी जटिल समस्याओं के ठोस समाधान अभी तक नहीं निकल पाये। फिर भी भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में आम की नियमित फलने वाली 'आम्रपाली' और 'मल्लिका'—दो संकर किस्में अब विकसित हो जाने से आम में अनियमित फलन की समस्या का कुछ सीमा तक (वैकल्पिक) समाधान हो पाया है। आम्रपाली का विकास उत्तरी भारत की प्रसिद्ध किस्म दशहरी (मादा) नऔर दक्षिणी भारत की किस्म नीलम (नर) के प्रजनन से हुआ, जबकि मल्लिका का नीलम (मादा) और दशहरी (नर) के प्रजनन द्वारा किया गया।

सामान्यतः उक्त संस्थान द्वारा ही आम के गुच्छा (गुम्मा) रोग का भी वैकल्पिक समाधान ही हो पाया है। आम के जिस वृक्ष में पिछले वर्ष इस रोग का प्रकोप रहा हो, उस वृक्ष पर 200 पी० पी० एम० नैप्थेलीन एसिटिक एसिड (200 मिलीग्राम दवा को थोड़ा अलकोहल में घोलकर उसमें उतना पानी डाला जाए कि वह एक लिटर हो जाए) या प्लैनोफिक्स का अक्टूबर के आरम्भ में छिड़काव कर के अंतिम दिसम्बर या आरम्भिक जनवरी में चटकती हुई बौर की कलियों को तोड़ देने से, उस स्थान से एक के बजाय 3-4 कलियां निकल आती हैं। इन कलियों से निकली हुई बौरें तापक्रम बढ़ जाने के कारण गुच्छा रोग-मुक्त रहती हैं तथा वृक्ष का उत्पादन भी बढ़ जाता है।

अमरूद का उकठा एक घातक रोग है, जो फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम फार्म सिडाई (Fusarium Oxysporum) नामक कवक द्वारा वर्षा ऋतु में अमरूद के बागों में फैलता है, जिसके प्रकोप से पूरा वृक्ष सूख जाता है। कुछ सीमा तक नीम की खली और बेनलेट (बोनामाइल : Bonamile) नामक सिस्टेनिक कवक नाशक के प्रयोग से इसके उपचार में सफलता मिल पाई है। उकठा रोग-रोधी लक्षण दिखाने वाली जातियों के लगाने या मूल-वृन्त प्रयोग करने से भी इस रोग से बचाव किया जा सकता। सिडियम कैटलेइनम (स्ट्राबेरी गूवावा), सिडियम, प्यूमिलम, या सिडियम चाइना (चाइना गूवावा) तथा सिडियम क्यूजैवि- विलिस के तथा लखनऊ-49 और बीजरहित अमरूद की किस्मों में उकठा रोधी लक्षण पाए गए हैं।

पपीते में पूसा (बिहार) से विकसित पूसा डेलिशस, पूसा मेजेस्टी तथा कोएम्बटूर-2 व कुर्ग हनी ड्यू जैसी पपीते की शत प्रतिशत मादा या द्विलिंगी किस्मों के विकास से कुछ राहत मिली है। प्रो० हेज की पुस्तक 'फ्रूट ग्रोइंग इन इण्डिया' के प्रकाशन का ही परिणाम है कि विभिन्न औद्यानिक समस्याओं के निदान हेतु शोधककर्ताओं के ध्यान आकर्षित हुए।

स्वतंत्रतापूर्व उत्तरी भारत में अंगूर की कोई उपयुक्त किस्म उपलब्ध नहीं थी। जो किस्में थीं भी वे या तो खट्टी थीं या वर्षा आरम्भ होने के साथ पकती थीं, जिससे अंगूर के दाने फट कर नष्ट हो जाते थे। परन्तु अब पंजाब, उत्तर प्रदेश व भारत के अन्य उत्तरी क्षेत्रों में अंगूर की पैदावार बड़े पैमाने पर की जा रही है। औद्यानिक शोध संस्थान (अब औद्यानिक प्रयोग एवं प्रशिक्षण केन्द्र) सहारनपुर में तत्कालीन औद्यानिक डा० एल० बी० सिंह द्वारा विदेशों से अंगूर की अनेक किस्मों का संकलन किया गया। बाद में अध्ययन के पश्चात् अंगूर की विभिन्न संकलित किस्मों में कैलिफोर्निया से मंगाई गई अंगूर की किस्म 'पर्लेट' उत्तरी भारत के लिए सर्वश्रेष्ठ पाई गई।

उत्तर प्रदेश में पका कर खाने वाले केलों में पहले कोई अच्छी किस्म उपलब्ध नहीं थी। इसके लिए या तो सब्जी वाले केले ही पका कर खाए जाते थे या हाजीपुर से आए स्वादिष्ट चीनिया केले या भुसावल से आए भुसावली (बसरइ ड्वार्फ) केले प्रयोग में लाए जाते थे। परन्तु फल शोध केन्द्र (अब औद्योगिक प्रयोग एवं प्रशिक्षण केन्द्र) बस्ती में देश के विभिन्न केन्द्रों से केले की अनेक किस्मों का संकलन तत्कालीन औद्यागिक डा० शिवराज सिंह तेवतिया द्वारा किया गया अध्ययन के पश्चात् यह पाया गया कि उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्रों में बसरइ ड्वार्फ केले पूर्ण सफलता के साथ उगाएं जा सकते हैं। अब ये भुसावली केले तराई क्षेत्रों के अतिरिक्त कानपुर, फतेहपुर व इलाहाबाद जैसे क्षेत्रों में भी वृहद् स्तर पर और उगाए जा रहे हैं।

पुस्तक 'फ्रूट ग्रोइंग इन इण्डिया' में शीतोष्ण फलों के अध्याय में सेब, नाशपाती, आड़ू, आलूचा, शफ्तालू, चेरी, अखरोट आदि फलों के अतिरिक्त लघु फलों के अध्याय में अलग अलग शीर्षकों में अनार, बेर, सपोटा, लोकाट, कटहल, कमरख, फालसा, आंवला, शहतूत, बेल, पनियाला व करौंदा आदि की बागवानी पर प्रकाश डाला गया है।

स्पष्ट है कि प्रायः प्रयोग किए जाने वाले समस्त फलों में सर्वाधिक विटामिन 'सी' प्रदान करने वाले (600-750 मिलीग्राम/100 ग्राम गूदा) फल-आंवला को लघु फलों की श्रेणी में रक्खा गया है। इसका मुख्य कारण यही है कि स्वतंत्रता पूर्व आंवला के अंतर्गत उत्तर प्रदेश में अनुमानित क्षेत्रफल केवल नाम मात्र था (120 एकड़ या 48 हेक्टेयर से भी कम)।

परन्तु वर्तमान काल में, जब कि आंवले की गणना एक विशिष्ट फल में की जाती है, आंवला उद्यान के अंतर्गत 500 हेक्टेयर से भी अधिक भूमि आच्छादित है। ये आंवला उद्यान मुख्यतः उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद में ही स्थापित हैं। उसरीली व शुष्क भूमि का फलोत्पादन में सदुपयोग करने के लिए आंवला एक सर्वोपयुक्त फल पाया गया। बनारसी के अतिरिक्त फ्रान्सिस, चकइया, मधुपुर नोकीला, कृष्णा (नरेन्द्र-5), कंचन (नरेन्द्र-4), नदिया के पार (नरेन्द्र-7) आंवले की प्रमुख किस्में हैं।

आंवले में अफलन की समस्या का भी समाधान लगभग हो गया है। इसके लिए आंवले के पौधों को ग्राफ्टिंग (भेंट कलम : इनारचिंग) या बडिंग करने के पूर्व पुष्पण के समय मातृ-वृक्षों में मादा फूलों वाले चयनित सांकुरो को चिन्हित करना इस दिशा में विशेष महत्व रखता है।

आंवले की बागवानी बिहार एवं राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में भी हो रही है। परन्तु भारत में इसका अनुमानित क्षेत्रफल उत्तर प्रदेश से ही आंका जाता है। आंवला, के अतिरिक्त पिछले दशकों में बेर, अनार, बेल, इमली, शरीफा, कैथा, फालसा व करौंदा शुष्क एवं परती भूमि में लगाने के लिए उपयुक्त पाए गए। अमरूद के उद्यान भी शुष्क एवं घटिया मिट्टी में भली भाँति फूलते-फलते हैं। इलाहाबादी अमरूदों में 'इलाहाबाद सफेदा' तो विश्व विख्यात है ही। परन्तु अब स्वादिष्ट एवं आकर्षक सेबी (एपूपल कलर) अमरूद भी ख्याति प्राप्त कर रहा है। इसके अतिरिक्त एक नवीन किस्म 'इलाहाबाद सुर्खा' (लाल गुदिया सेबी) अमरूद भी विकसित हो चुकी है जो स्वादिष्ट होने के साथ-साथ आकर्षक बाहर-भीतर दोनों भागों में लाल होती हैं।

अब उद्यान विज्ञान पर अंग्रेजी और हिन्दी में योग्य लेखकों द्वारा अनेक पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं। इनके अतिरिक्त विषय सम्बन्धी मासिक/त्रैमासिक पत्रिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं, जो फल उत्पादकों के लिए बहुत उपयोगी हैं।

उपनिदेशक उद्यान, इलाहाबाद मण्डल (उ० प्र०)
सी-67, गुरू तेगबहादुर नगर,
(करेली हाउसिंग स्कीम) इलाहाबाद--211016

चमोली का भूकम्प : एक भूवैज्ञानिक विश्लेषण

डा० विजय कुमार उपाध्याय

रविवार 28 मार्च 1999 की आधी रात (सही समय 12 बजकर 35 मिनट) को उत्तरी भारत के हिमालय क्षेत्र में भयंकर भूकम्प के झटके महसूस किये गये। इस भूकम्प से सबसे अधिक प्रभावित होने वाले क्षेत्रों में शामिल थे उत्तर प्रदेश में चमोली तथा रुद्र प्रयाग जिले के अनेक भाग। इन क्षेत्रों में सैकड़ों घर धराशायी हो गये, डेढ़ सौ से अधिक लोग मारे गये, तथा अन्य सैकड़ों लोग घायल हो गये।

इस भूकम्प की तीव्रता रिक्टर पैमाने पर 6.8 थी तथा इसका केन्द्र (एपिसेंटर) 30.2 डिग्री उत्तरी अक्षांश तथा 79.5 डिग्री पूर्वी देशान्तर पर कुमाऊँ की पहाड़ियों में स्थित था। यह भूकम्प लगभग 40 सेकंड तक लगातार चलता रहा। चमोली भूकम्प की नाभि (फोकस) धरातल से लगभग 30 किलोमीटर की गहराई पर स्थित थी। यही कारण है कि इस बार भूकम्प के कारण उतनी अधिक तबाही नहीं हुई जैसी तबाही अक्टूबर 1991 में उत्तरकाशी में आये भूकम्प के कारण हुई थी। उत्तरकाशी के भूकम्प की नाभि (फोकस) सिर्फ 18 किलोमीटर की गहराई पर स्थित थी।

इस भूकम्प के झटके चमोली तथा रुद्र प्रयाग जिले के अलावा कई अन्य स्थानों पर भी अनुभव किये गये जिनमें शामिल थे– दिल्ली, लखनऊ, वाराणसी, कानपुर, श्रीनगर, जयपुर, फरीदाबाद, गुड़गाँव, अम्बाला, चंडीगढ़ तथा शिमला। सुदूर पश्चिम में स्थित पुणे तक इस भूकम्प के झटके महसूस किये गये। भारत-चीन सीमा पर स्थित नन्दा देवी पर्वत भी इस भूकम्प से प्रभावित हुआ।

उपर्युक्त बड़े झटके के बाद दूसरे दिन (सोमवार) की सुबह 10 बजे तक 14 अन्य छोटे-छोटे झटके महसूस किये गये जिनकी तीव्रता रिक्टर पैमाने पर 2.5 से 4.9 के बीच थी। ये छोटे-छोटे झटके चमोली तथा उससे सटे गोपेश्वर नामक स्थान पर अनुभव किये गये। मंगल (30 मार्च) तथा बुध (31 मार्च) की सुबह भी इन स्थानों पर भूकम्प के कुछ छोटे झटके अनुभव किये गये जिनकी तीव्रता रिक्टर पैमाने पर 4 से कम थी।

वैसे तो उत्तराखण्ड में समय-समय पर हमेशा ही भूकम्प आते रहे हैं, परन्तु विगत दो शताब्दियों के उपलब्ध ऐतिहासिक अभिलेखों से पता चलता है कि आठ भूकम्प बहुत अधिक विनाशकारी साबित हुए। इनमें पाँच भूकम्पों की तीव्रता रिक्टर पैमाने पर 6 से अधिक थी। ऐसे भूकम्पों में शामिल हैं– सन 1809 में गढ़वाल का, 1905 में कांगड़ा का, 1988 में बिहार-नेपाल सीमा का 1991 में उत्तर-काशी का तथा अभी-अभी 1999 में चमोली का भूकम्प। इनके अलावा चीन भूकम्प ऐसे आये जिनकी तीव्रता रिक्टर पैमाने पर 8 से अधिक थी। ऐसे भूकम्पों में शामिल हैं सन् 1897 में शिलांग (मेघालय) का, 1904 में कांगड़ा का, तथा 1950 में आसाम का भूकम्प। इन क्षेत्रों में 12 जून 1897 को शिलांग में आया भूकम्प सर्वाधिक विनाशकारी था। भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण के तत्कालीन भूविज्ञानवेत्ता आर० डी० ओल्धम द्वारा किये गये विवरणों (जी० एस० आई० मेमॉयर सं०-24 सन् 1899) के अनुसार इस भूकम्प के आने के दो सेकंड पहले से ही जमीन के भीतर भयंकर गर्जन सुनाई पड़ने

लगा। उसके बाद जमीन के भीतर भयंकर गर्जन सुनाई पड़ने लगा। उसके बाद जमीन आंधी से ग्रस्त पेड़ों के समान आगे-पीछे झूलने लगी, तथा पृथ्वी की सतह में बड़ी-बड़ी चौड़ी दरारें पैदा हो गयीं जिससे भूमिगत जल बाहर की ओर निकलने लगा। इस भूकम्प के कारण सैकड़ों मनुष्य तथा मवेशी मारे गये तथा करोड़ों रुपये की सम्पत्ति बर्बाद हुई।

चमोली तथा हिमालय के अन्य भागों में समय-समय पर आनेवाले भूकम्प का कारण संबंधित है आज से लगभग साढ़े चार करोड़ वर्ष पूर्व घटनेवाली एक भूवैज्ञानिक घटना से। आज से लगभग आज करोड़ वर्ष पूर्व भारतीय भूभाग अपने वर्तमान स्थान से लगभग 6400 किलोमीटर दक्षिण में स्थित था। उस समय यह प्रत्येक सौ वर्ष में नौ मीटर की गति से उत्तर की ओर खिसक रहा था। आज से लगभग साढ़े चार करोड़ वर्ष पूर्व भारतीय भूभाग का यूरेशिया से टकराव हुआ। उन दोनों भूभागों के टकराने के कारण के स्थान का कुछ भाग सिकुड़ कर ऊपर की ओर उठने लगा जिससे हिमालय पर्वत माला का निर्माण हुआ। इस टकराव के बाद भारतीय भूभाग की उत्तरवर्ती गति हालाँकि धीमी हो गयी, परन्तु रुकी नहीं। यह खिसकाव आज भी जारी है। इस खिसकाव के कारण भूपटल में काफी दाब का निर्माण हो रहा है। इस दाब के कारण भूपटल के भीतर की चट्टानें समय-समय पर टूटती फूटती रहती हैं। इसी के कारण समय-समय पर भूकम्प आते रहते हैं। ऐसे ही तोड़-फोड़ तथा उसके कारण उत्पन्न भूकम्प की अब तक की अन्तिम तथा सबसे नयी कड़ी है चमोली का भूकम्प।

अभी चमोली में जो भूकम्प हुआ वह उच्च तथा निम्न हिमालय के बीचवाले क्षेत्र में हुआ है। कुछ समय पूर्व वाडिया इंस्टिट्यूट ऑफ हिमालयन जियोलौजी, देहरादून में कार्यरत डा० देवेन्द्र पाल द्वारा इस क्षेत्र में आने वाले भूकम्पों के संबंध में एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया था। इस सिद्धान्त के अनुसार इस क्षेत्र में आनेवाले भूकम्प के सक्रिय भूमिगत पर्वतमाला के कारण उत्पन्न होते हैं। इस भूमिगत पर्वतमाला को 'देहली हरद्वार हर सिल रिज' कहा जाता है। इस पर्वतमाला की उत्पत्ति पश्चिमी क्षेत्र में अरावली श्रृंखला से आगे हुई थी। उसके बाद यह दिल्ली के निकट भूमि से ऊपर निकली तथा बाद में पुनः भूमिगत हो गयी। भूमिगत होने के बाद वह पर्वतमाला हरिद्वार की ओर खिसक गयी। उत्तर भारत में जो भी भूकम्प हुए हैं वे सबके सब इसी सक्रिय भूमिगत पर्वतमाला के कारण हुए हैं।

लौरी बेकर नामक प्रसिद्ध वास्तुविद ने भारत के उत्तराखण्ड में आने वाले भूकम्पों से मकानों को होनेवाली क्षति के संबंध में काफी लम्बे समय तक अध्ययन किये। इन अध्ययनों से उसने पाया कि भूकम्पों के कारण ईंट-सीमेंट से निर्मित आधुनिक किस्म के मकान ही अधिक धराशायी होते हैं। इसके विपरीत उस क्षेत्र में परम्परागत विधियों से बनाये गये मकान हालाँकि भूकम्पों में हिलते हैं तथा खड़खड़ाते हैं, परन्तु वे गिरते नहीं हैं। इन पर्यवेक्षणों के आधार पर उसने निष्कर्ष निकाला है कि ऐसे क्षेत्रों में परम्परागत भवन निर्माण कला को अपनाया जाना अधिक श्रेयस्कर होगा।

प्राध्यापक, भूगर्भ, इंजिनियरी, कॉलेज,
भागलपुर-813210

सोचना होगा हमें फिर एक बार

देवव्रत द्विवेदी

आज कल अपने आसपास, चारों ओर,
सुनाई पड़ता है वाहनों, यंत्रों का शोर।
नहीं दिखते हरे-भरे पौधे और पेड़,
हर तरफ फैले हैं कूड़े-कचरे के ढेर।
नदियाँ बदलती जा रही हैं गन्दे नालों में,
शुद्ध वायु मिलती है बस ख्यालों में।
कारखानों से निकलता धुँए का जहर,
मानवता पर बरस रहा बन कर कहर।
अम्ल वर्षा, अलनीनो, ग्रीन हाउस प्रभाव,
फैला रहे प्रतिपल अपना दुष्प्रभाव।
कभी-कभी उठता है मन में यह सवाल,
आज हो गया है पर्यावरण का क्या हाल।

हमने है किया बहुत वैज्ञानिक विकास,
पर साथ ही साथ पर्यावरण का विनाश।
हम खड़े हैं आज इक्कीसवीं सदी के द्वार,
एक ऊँची छलाँग लगाने को तैयार।
किंतु सोचना होगा हमें फिर एक बार,
कैसा छोड़ेंगे हम अगली पीढ़ी के लिये संसार।
दुर्गंध, घुटन, शोर, जहर भरा वातावरण,
या शुद्ध वायु, स्वच्छ जल, हरे-भरे वन।।

शोध सहायक, विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-2

पुस्तक समीक्षा

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

पुस्तक : **नारी और न्याय,** लेखक : डॉ० विष्णु दत्त शर्मा,
प्रकाशक : शोध प्रकाशन अकादमी,
5/48, वैशाली, गाजियाबाद-201010

मुद्रक : त्रिवेणी ऑफ्सेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32,
वितरक : किताबघर, 24 अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002

पृष्ठ संख्या : 186, प्रकाशन वर्ष : 1999,
मूल्य : 130.00 रुपये

समीक्ष्य पुस्तक ''नारी और न्याय'' विद्वान लेखक डॉ० विष्णु दत्त शर्मा की सद्यः प्रकाशित कृति है। इस पुस्तक के माध्यम से लेखक ने भारतीय पुरुष समाज द्वारा प्रताड़ित औरत की दयनीय स्थिति का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। यह लेखक के जीवनपर्यन्त के चिंतन-मनन और नारी के प्रति संवेदना का प्रतिफल है।

लेखक ने जहाँ एक ओर नारियों के प्रति किए जा रहे अन्याय और उनके दुःख-दर्द पर चिंता व्यक्त की है वहीं दूसरी ओर इसके लिए उन्होंने किसी सीमा तक औरत को भी दोषी पाया है।

नारी समस्याओं के प्रति समाधान प्रस्तुत करते हुए वे सत्य के निकट लगते हैं जब वे कहते हैं- ''यदि महिलायें अपने उच्च आदर्श, आचार-विचार तथा संघर्ष द्वारा विरोध करें और आन्दोलन करें तो महिलाओं के प्रति होने वाले अपराध कम हो सकते हैं। किन्तु दुर्भाग्य कि महिलाएं स्वयं ही इन कुकृत्यों में लिप्त हो जाती हैं और दोष देती हैं समाज को। ....अतः महिलाओं को चाहिए कि वे कदम- कदम पर सचेष्ट रहें क्योंकि उन्हें छेड़ने वाले भी तो किसी न किसी के पिता, पुत्र, पति या भाई होते हैं। इसलिए महिलायें ऐसे सदाचारी पुत्र पैदा करें जिससे अपराध न बढ़े।''

पुस्तक 12 अध्यायों में विभक्त है यथा समाज और महिलाएं, समर्पित नारी, आधुनिक नारी, विष कन्यायें, रक्षक ही भक्षक, आपराधिक कारक, पशु-नारी, नारी उत्पीड़न, महिलायें और कारावास, समाधान, नारी और न्याय, संवैधानिक अधिकार।

इस प्रकार पुस्तक में लगभग सभी समस्याओं को समेटने की चेष्टा की गई है। पुस्तक पाठक को निश्चित रूप से न केवल चिंतन की सामग्री प्रस्तुत करती है बल्कि सुधार की दिशा में कुछ करने को प्रेरित भी करती है।

पुस्तक की छपाई अच्छी है, कागज बढ़िया एवं मुखपृष्ठ आकर्षक है। मूल्य उचित है। मुद्रण की त्रुटि नहीं के बराबर है। कुल मिलाकर पुस्तक पठनीय है, संग्रहणीय है। लेखक और प्रकाशन से जुड़े व्यक्ति साधुवाद के पात्र हैं।

पूर्व संपादक, ''विज्ञान''

विगत दो मासों में सम्पन्न गोष्ठयों का विवरण प्रस्तुत है

1. आर्थिक संकट से उबरने के लिये प्रौद्योगिकी अनुसंधानों को गति देने की जरूरत

इलाहाबाद, 13 मई। 'प्रौद्योगिकी दिवस' के अवसर पर 11 मई को विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री प्रो० शिवगोपाल मिश्र की अध्यक्षता में "इक्कीसवीं सदी में नयी प्रौद्योगिकी की चुनौतियां" विषय पर एक संगोष्ठी सम्पन्न हुयी।

इस अवसर पर अपने व्याख्यान में प्रो० मिश्र ने प्रौद्योगिकी के इक्कीसवीं सदी की चुनौतियों से निपटने का हथियार बताया। उन्होंने देश के प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी के पोखरण परमाणु धमाके को समय की आवश्यकता कहा। उन्होंने कहा कि इससे विश्व में भारत की साख बढ़ी है। डॉ० मिश्र ने सी. एस. आई. आर. की विभिन्न प्रयोगशालाओं में हो रहे अनुसंधानों की प्रशंसा करते हुए इस बात पर बल दिया कि भारत को आर्थिक संकट से उबारने के लिए प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित अनुसंधानों को गति देने की आवश्यकता है।

प्रारंभ में विषय प्रवर्तन करते हुए प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने पोखरण प्रथम विस्फोट और पोखरण द्वितीय विस्फोट पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए जहां एक ओर देश में हो रहे वैज्ञानिक और तकनीकी अनुसंधानों की प्रशंसा की, वहीं देश के युवा वर्ग और छात्र-छात्राओं में विज्ञान की शिक्षा के प्रति रुचि में आ रही गिरावट पर चिंता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि बिना विज्ञान और तकनीकी शिक्षा को बढ़ावा दिए देश प्रगति पथ पर अपेक्षित रूप से अग्रसर नहीं हो सकता। यह समय की पुकार है।

परिषद् के संयुक्त मंत्री डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय ने वक्ताओं और श्रोताओं को धन्यवाद ज्ञापन के दौरान यह कहा कि आवश्यकता इस बात की है कि "प्रौद्योगिकी दिवस" मात्र गोष्ठियों तक सीमित न रहकर युवा वर्ग को विज्ञानोन्मुख करने की दिशा में सार्थक भूमिका निभाये। इसके अतिरिक्त इस संगोष्ठी में देवव्रत द्विवेदी और चन्द्रभान सिंह ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

(दैनिक जागरण 14 मई, 1999 से साभार)

2. केन्द्र सरकार के मंत्री डॉ० जोशी का अभिनन्दन

डॉ० जोशी का आज विज्ञान परिषद् की ओर से अभिनंदन किया गया। उन्होंने परिषद् के प्रांगण में 'विज्ञान निकुंज' नामक सभा भवन का उद्घाटन किया। अपने अभिनंदन समारोह में बोलते हुए डॉ० मुरली मनोहर जोशी ने कहा कि विज्ञान परिषद् ने बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसने विज्ञान के क्षेत्र में एक सेतु का कार्य किया है। बहुत से विज्ञान लेखक यहाँ पैदा हुए और लोगों ने उन्हें जाना।

डॉ० जोशी ने कहा कि हिन्दी में 'विज्ञान' पत्रिका के प्रकाशन का एक उद्देश्य था, लेकिन कुछ लोगों के कारण यह पूरी तरह सफल नहीं हो सका। डॉ० जोशी ने बताया कि विश्व में केवल 8 प्रतिशत लोग अंग्रेजी जानते हैं। जबकि हिन्दी जानने वालों की संख्या भी 7 प्रतिशत है। कुछ लोग अंग्रेजी को ही सब कुछ मान बैठे हैं। उन्होंने कहा कि उन्होंने बहुत सी अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में भाग लिया है और कहीं भी अंग्रेजी ही एक मात्र भाषा नहीं होती है। वहाँ सभी भाषाओं

में पत्र पढ़े जाते हैं, बस नहीं मिलती तो केवल हिन्दी भाषा के पत्र ।

डॉ० जोशी ने कहा कि 1978 में पहली बार विदेश मंत्री के रूप में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी में भाषण दिया था, उसके बाद उन्होंने प्रधानमंत्री के रूप में पिछले वर्ष हिन्दी में भाषण दिया। इस बीच किसी भी प्रधानमंत्री या विदेश मंत्री ने हिन्दी में बोलनेकी जहमत नहीं उठायी। उन्होंने बताया कि उन्होंने पहली बार यूनेस्को में हिन्दी में भाषण दिया। डॉ० जोशी ने बताया कि विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में संस्कृत एवं हिन्दी भाषा का पठन-पाठन उच्च स्तर पर हो रहा है। हिन्दी में क्षमता है, उसमें काम हो सकता है, बस आवश्यकता है थोड़ी सी चेष्टा की।

डॉ० जोशी ने कहा कि हिन्दी या भारतीय भाषाओं के लिए संसूचना प्रौद्योगिकी से एक खतरा आने वाला है । भारत में विश्व में सबसे अधिक विचारवान लोग रहते हैं। यहां 64 प्रतिशत साक्षर हैं। संसूचना प्रौद्योगिकी में विचारों का ही खेल है। यदि वह विचार केवल अंग्रेजी में ही फैला तो भारतीय भाषाओं का नुकसान होगा। उन्होंने कहा कि साफ्टवेयर का निर्माण हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में भी होना चाहिए ताकि हिन्दी भाषा एवं अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में विचारों का आदान-प्रदान हो सके।

उन्होंने विज्ञान पत्र-पत्रिकाओं को केवल परम्परागत न रहकर बल्कि नयी विधाओं का अनुसरण करने पर बल दिया, जो वैज्ञानिक विधाएं देश एवं समाज को परिवर्तित कर रही है, उसकी सही दिशा होनी चाहिए तथा पत्र-पत्रिकाओं में उनका समावेश हो। उन्होंने कहा कि हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में साफ्टवेयर का बहुत बड़ा विश्व बाजार है, अंग्रेजी से कहीं अधिक। इस दिशा में कार्य होना चाहिए। उन्होंने कहा कि भारतीय भाषाओं को विज्ञान एवं दर्शन की भाषा बनायी जानी चाहिए, केवल इतिहास की ही नहीं। इसके पूर्व प्रारम्भ में डॉ० गयाचरण त्रिपाठी ने वेदमंत्रों से मंगलाचरण किया। कुमारी अन्वीक्षा त्रिपाठी ने शारदा वंदना की। विज्ञान परिषद् के प्रधान मन्त्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने विज्ञान परिषद् की गतिविधियों से श्रोताओं को अवगत कराया। विज्ञान परिषद् के उप सभापति हनुमान प्रसाद तिवारी ने डॉ० जोशी को माला पहनायी तथा जीवन परिचय दिया। प्रेमचन्द श्रीवास्तव ने डॉ० जोशी का अभिनंदन पत्र पढ़ा एवं उन्हें अभिनंदन पत्र भेंट किया। इसके अतिरिक्त प्रो. चन्द्रिका प्रसाद, ए. के. गुप्त, सुनील कुमार पाण्डेय ने डॉ० जोशी को माला पहनाकर स्वागत किया। इस अवसर पर कुलपति प्रो० सी. एल. खेत्रपाल, प्रो. डी. डी. पंत, प्रो. महेशचन्द्र चट्टोपाध्याय प्रो. वी. डी. मिश्र आदि उपस्थित थे।

(राष्ट्रीय सहारा 20 मई से आभार)

3. विश्व तम्बाकू उन्मूलन दिवस पर धूम्रपान करने वालों की संख्या में खासी वृद्धि

इलाहाबाद, 31 मई। तमाम कोशिशों के बावजूद धूम्रपान एवं मैनपुरी तम्बाकू का सेवन करने वालों की संख्या घटने के बजाय बढ़ती जा रही हैं। इसमें भी विशेष चिंता का विषय यह है कि धूम्रपान करने वाले किशोरों और महिलाओं की संख्या में काफी वृद्धि हुई है।

'विश्व तम्बाकू दिवस' के अवसर पर विज्ञान परिषद् हाल में आयोजित 'तम्बाकू सेवन से उत्पन्न रोग एवं उपचार' विषयक संगोष्ठी में प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने यह जानकारी दी। गोष्ठी का विषय प्रवर्तन करते हुए उन्होंने बताया कि पिछले वर्ष भारत में तम्बाकू जनित रोगों से मरने वालों की संख्या 3.83 लाख थी।

उन्होंने बताया कि तम्बाकू के निरंतर सेवन से होने वाले रोगों में फेफड़े का कैंसर मुँह, कंठ, खाने की नली, जीभ आदि का कैंसर, हृदय रोग, पैरों में गैंगरीन, गर्भवती महिलाओं में बॉझपन, गर्भ के दौरान रक्तस्राव, बच्चे का समय से पूर्व जन्म, शिशु के भारत में लगभग 200 ग्राम की कमी और परिणामस्वरूप नवजात शिशु की मृत्यु, पुरुषों में नपुंसकता आदि प्रमुख है।

डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने अपने अध्यक्ष-पदीय उद्-बोधन में तम्बाकू जनित व्याधियों से बचाव के लिए कुछ उपाय सुझाये। उन्होंने तम्बाकू की सीमित खेती, निकोटीन के प्रभाव को दूर करने वाली औषधियों के दामों में कमी, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू, पान-मसाला के विज्ञापनों पर प्रतिबंध और जीवन दर्शन में बदलाव का सुझाव दिया। परिषद् के संयुक्त मंत्री डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय ने बताया कि महिलाओं की अपेक्षा पुरुष धूम्रपानी अधिक हैं। अतएव

सार्वजनिक स्थानों, दफ्तरों, शिक्षा संस्थाओं, रेल, बस आदि में धूम्रपान वर्जित कर देना चाहिए। शोध सहायक देवव्रत द्विवेदी ने बताया कि धूम्रपान सामाजिक समस्या है अतएव इसके लिए समाज को आगे आना चाहिए। अभिभावकों को चाहिए कि वे स्वयं धूम्रपान न करें ताकि बच्चे यह बुरी लत न सीखें।

श्री चन्द्रभानसिंह ने समाज के सभी वर्गों मे अपील की कि वे एकजुट होकर इस व्याधि के छुटकारा पाने के उपाय करें। अंत में प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने सभी वक्ताओं एवं श्रोताओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा कि आज यदि एक व्यक्ति मात्र एक धूम्रपानी की लत छुड़ाने का व्रत ले तो इस पर काफी हद तक नियंत्रण पाया जा सकता है।

(अमृत प्रभात 11 जून से साभार)

विश्व पर्यावरण दिवस पर

4.पर्यावरण प्रदूषण से गंभीर खतरा

इलाहाबाद, 5 जून। विश्व पर्यावरण दिवस'' के अवसर पर विज्ञान परिषद् के तत्वावधान में ''प्लास्टिक थैले : समस्या एवं समाधान'' विषय पर एक विचार गोष्ठी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। इस विचार गोष्ठी की अध्यक्षता सी. एम. पी. महाविद्यालय में वनस्पति विभाग के पूर्व अध्यक्ष श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने, संचालन परिषद् के संयुक्त मंत्री डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय ने और धन्यवाद ज्ञापन चन्द्रभानसिंह ने किया।

प्रारंभ में विषय प्रवर्तन करते हुए डॉ० पाण्डेय ने आज की ज्वलंत समस्याओं का उल्लेख करते हुए बताया कि पर्यावरण की निरंतर क्षति से इस धरती और धरती पर निवास करने वाले मानव सहित सभी जीव जातियों के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। दूषित जल, विषैली हवा, धरती की छीजती सम्पदाएं, विलुप्त होती पेड़-पौधों और प्राणियों की प्रजातियाँ आदि पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है और सभी को एकजुट होकर धरती को बचाना है।

अपने अध्यक्षपदीय उद्बोधन में श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने कहा कि हम बड़ी बातें न करके यदि छोटी बातों की ओर ध्यान दें तो प्रत्येक व्यक्ति अपने स्तर पर भी बहुत कुछ कर सकता है। इस दृष्टि से आज की विचार गोष्ठी का विषय समीचीन है। उन्होंने आगे बोलते हुए कहा कि आमतौर से ऊपर से देखने में प्लास्टिक के थैलों से उत्पन्न समस्या ठीक से समझ में नहीं आती है, किन्तु अब इसने विकराल रूप धारण कर लिया है। जगह-जगह नालों के पानी का सड़कों पर बहना, पहाड़ों पर पेड़-पौधों की डालियों और पत्तों का प्लास्टिक के थैलों में लगभग ढँका होना और बायोडिग्रेडेविल (जैव विघटन) न होने के कारण अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इनसे मिट्टी की गुणवत्ता में कमी आती है। इसके कारण रंध्रयुक्त मिट्टी के रंध्र बंद हो जाते हैं और उसका कुप्रभाव वनस्पतियों पर पड़ता है। इस प्रकार खेतों की मिट्टी में इनके अत्यधिक मात्रा में प्रवेश से फसल को क्षति होती है। आवारा पशुओं को तो जान से ही हाथ धोना पड़ता है। जानवरों के डॉक्टरों ने एक मृत गाय के पेट से ऑपरेशन द्वारा 40 किलोग्राम प्लास्टिक के थैले निकाले।

उन्होंने ने कहा कि समुद्रों में इसके कारण मछलियों, अन्य जीवों और समुद्री पादपों पर खराब असर पड़ता है। इस समस्या से छुटकारा पाने के उपायों की चर्चा करते हुए उन्होंने सुझाव दिया कि थैलों के स्थान पर कपड़े या पर्यावरण मित्र कागजों के थैलों का उपयोग किया जाना चाहिए। वैसे अब बायोडिग्रेडेविल प्लास्टिक की खोज हो चुकी है, किन्तु इन नये थैलों के उपयोग में समय लगेगा, अभी दिल्ली दूर है। अतः सरकार को चाहिए कि प्लास्टिक के थैलों के उपयोग पर कानून द्वारा प्रतिबंध लगाये। कुछेक राज्यों ने तो इस दिशा में पहल की है, किन्तु जनजागरण के अभाव में सफलता नहीं मिल पा रही है। अतएव मूलभूत आवश्यकता है जनजागरण की।

इफ्को के डॉ० सुनील दत्त तिवारी ने इस विषय पर बोलते हुए कहा कि प्लास्टिक समस्या सचमुच भयावह है! इसकी रोकथाम हेतु व्यक्तिगत स्तर पर भी बहुत कुछ किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि हम बाहर खरीददारी के उद्देश्य से निकलें तो अपने साथ कपड़े का थैला अवश्य ले जायँ। यदि दुकानदार प्लास्टिक की थैलियों में कोई सामान दे तो लेने से इन्कार करें तथा हो सके साथ में खरीददारी कर रहे अन्य लोगों को प्रेरित करें। इस तरह से हम प्लास्टिक के उपयोग को हतोत्साहित कर सकते हैं। विज्ञान लेखक डॉ० शुकदेव प्रसाद जी ने कहा कि मनुष्य के कथनी और करनी

में समानता होनी चाहिए। गोष्ठी आदि में लोग तो कहने को बहुत कुछ कहते हैं लेकिन जब अमल की बात होती है तो स्वयं वही करते हैं जो नहीं करना चाहिए।

शोध सहायक देवव्रत द्विवेदी ने कहा कि प्लास्टिक की थैलियों की खपत इलाहाबाद जैसे शहर में प्रतिदिन 30 कुन्तल से भी अधिक होती है। इसका उपयोग दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है जो पर्यावरण के लिए घातक सिद्ध होगा। इस अवसर पर उन्होंने स्वरचित कविता ''सोचना होगा हमें फिर एक बार'' का पाठ भी किया। अन्त में श्री चन्द्रभानसिंह ने गोष्ठी में अपना अमूल्य समय देने के लिए विज्ञान परिषद् की ओर से सभी वक्ताओं एवं श्रोताओं को धन्यवाद दिया।

भूल सुधार

'विज्ञान' के जनवरी 1999 अंक में विज्ञान पत्रिकाओं की सूची में 'विज्ञान प्रगति' (1952) का नाम छूट गया है। कृपया सुधार लें।

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पताः

डॉ० दिनेश मणि, डी० एस -सी०
संपादक विज्ञान
विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

अंक : अगस्त 1999

यह प्रति 5 रु०

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 85 अंक 5

अगस्त 1999

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत,
1000 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

■

प्रकाशक
डॉ० शिव गोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

■

सम्पादक
डॉ० दिनेश मणि, डी० एस–सी०

■

मुद्रक
अरुण राय
कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

■

सम्पर्क
विज्ञान परिषद प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद - 211002

विषय सूची

सम्पादकीय

वे सिर्फ बहादुर जवान की नहीं, सच्चे देशभक्त ही नहीं अपितु सच्चे वैज्ञानिक भी कहे जायेंगे जो गत दिनों भारत-पाक सीमा पर (कारगिल और द्रास में) शहीद हुए क्योंकि वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त थे, उन्होंने हमारे आज और कल को सुरक्षित रखने एवं सँवारने में अपने आज का बलिदान कर दिया।

एक ओर वे और एक ओर हम, जो जरा-सी उपलब्धि पर पाल लेते हैं भ्रम। हम बुद्धिजीवी हैं या परजीवी-जरा फिर से सोचें- वैज्ञानिक ढंग से प्रामाणिकता के साथ सोचें और इस प्रकार आत्मचिंतन एवं आत्म-मंथन के पश्चात् हम स्वयं को जो पाएं - वह स्वीकार भी करें। यही विज्ञान का तकाज़ा भी है।

हम कितना लम्बा जीवन जीते हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि हम किस प्रकार जीते हैं। मनुष्य चलता है, गिरता है, उठता है और फिर चलने लगता है। लेकिन चलने से कभी हार नहीं मानता। उसकी इस गति की निर्धारक है स्वयं उसकी चेतना-सतत् चिन्तन और मनन की छलनी में छनती हुई चेतना। यह चेतना ही यदि निष्क्रिय या विकृत रही तो वह उसे पतन की ओर धकेलती है, किन्तु यदि वही चेतना निरन्तर समुन्नत बनती जाए तो मनुष्य को सर्वव्यापी उन्नति के उच्चतम शिखर तक भी उठा सकती है- विजय के अन्तिम छोर तक पहुँचा सकती है।

कुछ चीजों में इस तरह की सच्चाई होती है कि उनसे शक्ति मिलती है और वह इसलिए कि साथ-साथ एक चुनौती भी उनमें होती है। संकल्प यदि दृढ़ हो तो एकाएक हम एक दूसरे स्तर से शक्ति खींच लेते हैं और फिर आगे बढ़ लेते हैं। बहुत से लोग थक जाते हैं तो कहीं से अपने भीतर से ही ये शक्ति पा लेते हैं। संकट में भी ऐसा होता है, एक दूसरा स्तर होता है, जिसका द्वार तभी खुलता है जब आदमी वहां तक पहुंचता है।

अगर आप चाहते हैं कि मरणोपरान्त आपको दुनिया जल्दी न भुला दे तो कुछ ऐसा लिखें जो पढ़ने योग्य हो या कुछ ऐसा करें जो लिखने योग्य हो।

अकथ कहते हुए तू थक परन्तु,
कथ कहते हुए तू रह अथक।

दिनेश मणि
(डॉ० दिनेश मणि)

धूम मचायेगी इक्कीसवीं सदी में जैव-प्रौद्योगिकी

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

'बायोटेक्नालॉजी' दो विज्ञानों को जोड़कर बना हुआ है। बायलोजी (जीव विज्ञान) और टेक्नालॉजी (प्रौद्योगिकी विज्ञान)। इसके लिए हिन्दी के 'जैव-प्रौद्योगिकी' शब्द का प्रयोग करते हैं।

जैव-प्रौद्योगिकी के अध्ययन का क्षेत्र इतना विस्तृत है और इसके उपयोग इतने अधिक हैं कि इसे परिभाषित करना कठिन जान पड़ता है। आमतौर से जैव-प्रौद्योगिकी जैवीय कारकों, सूक्ष्मजीव अथवा कोशीय घटकों के नियंत्रित उपयोग को कहते हैं जो साधारणतया लोक-कल्याण के लिए होते हैं।

जैव-प्रौद्योगिकी का जन्म प्रागैतिहासिक काल अथवा वैदिक काल (10,000 वर्ष पूर्व) में हुआ था, जब सूक्ष्मजीवों को किण्वन के लिए इस्तेमाल किया जाता था। बाद में मदिरा (एल्कोहॉल) बनाने की विधि ढूँढ़ ली गई और इस प्रकार 'एल्कोहॉलिक फरमेंटेशन' की विधि को हम जैव-प्रौद्योगिकी की शुरू की विधियों में से मान सकते हैं। आज तो ब्रेड (डबलरोटी), 'चीज' (Cheese) से लेकर अनेक प्रकार की दवाइयाँ बनाने और उद्योगों में भी इस विधि का इस्तेमाल किया जा रहा है।

आज डी एन ए (डी ऑक्सीराइबोसन्यूक्लिइक एसिड) से लेकर आनुवंशिक अभियांत्रिकी तक इसका विस्तार हो चुका है, किन्तु आण्विक जीवविज्ञानी सबसे क्रांतिकारी घटना डी एन ए की क्लोनिंग को मानते हैं। वास्तविकता तो यह है कि डी एन ए क्लोनिंग 1970 के दशक में फिर से आविष्कृत हुई।

1920 में कैम वीज़मान ((Chaim Weizmann) ने *क्लोस्ट्रिडियम एसीटोब्यूटीलिकम* (*Clostridium aceto-butylicum*) का इस्तेमाल मण्ड (स्टार्च) को ब्यूटैनॉल और एसिटोन बनाने में प्रयुक्त किया। प्रथम विश्व युद्ध में एसिटोन का इस्तेमाल विस्फोटक बनाने में किया गया। इससे वैज्ञानिकों के बीच एक नई आशा का संचार हुआ कि इस प्रौद्योगिकी के माध्यम से रसायनों को तैयार किया जा सकता है। इस खोज को इस शती की जैव-प्रौद्योगिकी की पुनः खोज की पहली घटना कह सकते हैं।

1940 के दशक में प्रतिजैविक पेनिसिलिन को, जिसकी खोज 1929 में एलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने की थी, *पेनिसिलियम नोटेटम* (*Penicilluim notatum*) से निकालते थे। यह समय दूसके विश्व युद्ध का है। इसे जैव-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में दूसरी बड़ी उपलब्धि कह सकते हैं। और इस क्षेत्र की तीसरी बड़ी उपलब्धि रीकम्बिनेंट-डी एन ए टेक्नालॉजी (Recombinant – DNA L technology) को कह सकते हैं। इस तीसरी उपलब्धि से तो जीन-प्रौद्योगिकी (Gene technology) के क्षेत्र में संभावनाओं के अनेकानेक द्वार खुल गए। इसे इस शताब्दी की सबसे बड़ी वैज्ञानिक क्रांति कह सकते हैं। आज हमारे जीवन को इसने अत्यधिक प्रभावित किया है। अनेक प्रकार की लोकहितकारी खोजें हो चुकी हैं और असीम संभावनायें प्रतीक्षारत हैं। जैव-प्रौद्योगिकी आज हमारे अस्तित्व का संबल बन चुकी है।

जैव-प्रौद्योगिकी एवं चिकित्सा

इंसुलिन (insulin) और इन्टरफेरॉन (interferon) जिन्हें जीवाणु (बैक्टीरिया) से निकाला गया, दवा के लिए रूप में बाजारों में उपलब्ध हैं। अनेक प्रकार के टीकों (vaccines) की खोज हो चुकी है जो हमें संक्रामक रोगों से सुरक्षित रखते हैं। बुढ़ापे के लक्षणों से बचने के लिए और शरीर में स्फूर्ति बनाए रखने के लिए 'ग्रोथ हारमोंस' खोजे जा चुके हैं। और तो और, एड्स (AIDS) जैसे जानलेवा रोग की रोकथाम और उपचार के लिए टीके की खोज प्रगतिपथ पर है। माता-पिता से विरासत में प्राप्त रोगों (जेनेटिक डिसीजेज़) पर विजय पाने के लिए 'जीन थिरेपी' संबंधी अनुसंधान किए जा रहे हैं।

जैव-प्रौद्योगिकी एवं इंजीनियरी

यह जैव-प्रौद्योगिकी की प्रमुख क्षेत्रों में से हैं, अच्छे प्रकार के प्रोटीनों को तैयार करने और उनका संग्रह करने संबंधी खोजें। इससे अच्छी गुणवत्ता वाली एन्ज़ाइमों (Enzymes) का निर्माण संभव है। इस विधि से अनेक प्रकार के चपायचयी पदार्थ (metabolites) बनाये जा रहे हैं।

जैव-प्रौद्योगिकी और कृषि

जैव-प्रौद्योगिकी से कृषि के क्षेत्र में तो क्रांतिकारी उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं। उदाहरण के लिए पेड़-पौधों की कोशिका, उतक अथवा अंग का संवर्धन, जेनेटिक इन्जीनियरी द्वारा ऐसे पौधों (ट्रांसजीनिक पादपों –Transgenic plants) का निर्माण जो रोगरोधी, कीटरोधी, शाकनाशी रोधी हैं। इससे प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया में वृद्धि, नाइट्रोजन स्थिरीकरण योग्यता वृद्धि, अच्छे प्रकार की प्रोटीनों का संग्रह, अच्छी उपजवाली ट्रांसजीनिक फसलों, चूहे, सुअर, बकरियाँ, मुर्गियाँ, गायें आदि जिनके रक्त, मूत्र या दूध से दवाइयों का बनाना। जैव-प्रौद्योगिकी के इस क्षेत्र को 'आण्विक खेती' (molecular farming) की संज्ञा दी गई है।

जैव-प्रौद्योगिकी और पर्यावरण

पर्यावरण की अनेक समस्याओं का समाधान जैव-प्रौद्योगिकी ने प्रस्तुत किया– चाहे वह पर्यावरण प्रदूषण हो, धरती की सम्पदाओं का छीजना हो, खराब हो चुकी धरती को कृषि योग्य बनाना हो या लुप्त होने की कगार पर पहुँच रही पेड़-पौधों-वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं के संरक्षण की समस्या हो। जैवकीटनाशी, जैवशाकनाशी, 'वैम फंजाई' (VAM Fungi), इतर दाल वाले पादपों की जड़ों मे जीवाणुओं का प्रवेश कराकर नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्रिया पैदा करना, अब जैव-प्रौद्योगिकी की सहायता से संभव हो गया है। और तो और, भूमि की गुणवत्ता समाप्त करने वाली धातुओं के जमाव को कम करने के लिए ऐसे पादप ढूँढे जा चुके हैं जो उन्हें अवशोषित कर लेते हैं।

जैव-प्रौद्योगिकी और पेटेन्ट्स

जैव-प्रौद्योगिकी से संबंधित अनुसंधानों के ही कारण देश की जैव-विविधता (Biodiversity) को बचाने और खोजों को पेटेंट कराने की जागृति का संचार हुआ है। खोजी गई दवाओं को भी पेटेंट करा लेना अब अत्यावश्यक हो गया है।

जैव-प्रौद्योगिकी और क्लोनिंग

2 वर्ष पूर्व सात महीने की नन्हीं डाली नामक भेड़ सारे संसार में चर्चा का विषय बन गई। इसका एकमात्र कारण यह था कि यह संसार की ऐसी पहली स्तनपायी है जो जेनेटिक इंजीनियरी का कमाल है यानी 'क्लोन' है। एक 'क्लोन' ऐसा जीव है जिसे एक ही 'पेरेन्ट' (माता अथवा पिता) द्वारा अलैंगिक विधि से उत्पन्न किया जाता है। इसलिए क्लोन की विशेषता यह है कि वह शारीरिक रूप से माता अथवा पिता के समान तो होता ही है आनुवांशिक रूप से भी समान होता है। इसके विपरीत लैंगिक विधि से उत्पन्न जीव में माता-पिता के आधे-आधे गुण आते हैं। क्लोनिंग विधि उद्यान वैज्ञानिकों के बीच विशेष रूप से लोकप्रिय रही है जहाँ एक छोटी सी टहनी (Twig) से पूरा वृक्ष तैयार कर लेते हैं। वास्तव में क्लोनिंग की व्युत्पत्ति यूनानी (ग्रीक) भाषा के शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है टिव्ग (Twig) यानी टहनी।

जैव-प्रौद्योगिकी–विवाद के घेरे में

यह विधि वैसे 1959 से ही चर्चित रही है क्योंकि तबसे लेकर अब तक इस क्षेत्र में वैज्ञानिकों की अनेक उल्लेखनीय उपलब्धियाँ रही हैं। किन्तु इस बार एक स्तनपायी के सफलतापूर्वक विकसित हो जाने से इस क्षेत्र में हो रहा अनुसंधान विवाद के घेरे में आ गया है। अब वैज्ञानिकों को ऐसा लगने लगा है कि 'मानव क्लोन' बनाने में भी अंततः सफलता मिल ही जायेगी। इससे अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। क्या महिलायें बिना पुरुषों के संतान पैदा करने लगेंगी ? क्या इन संतानों से माता या पिता का या इनका माता अथवा पिता से भावनात्मक लगाव होगा ? इनके प्रति इनके माता

(शेष पृष्ठ 24 पर देखें)

मानस-मस्तिष्क सम्बन्ध

प्रो० रामचरण महरोत्रा

मैं इस व्याख्यानमाला के आयोजकों का इस निमंत्रण के लिए अत्यन्त आभारी हूँ। सर्वप्रथम, तो मैं आयोजकों को इस योजना के लिए बधाई देना चाहूंगा कि कोठारी जी के जन्म दिवस 6 जुलाई, पर 1993 से वे इन भाषणों का प्रतिवर्ष प्रबन्ध कर रहे हैं और इस श्रृंखला में श्री नागरलम्, डॉ० प्रेम कृपाल, डॉ० पी० रामाराव, डॉ० सम्पूर्ण सिंह एवं प्रो० श्री कृष्ण जोशी जैसे महानुभाव क्रमशः पहले ही से भाग ले चुके हैं। स्पष्ट है यद्यपि मैं इस आदर के लिए अपने को नितान्त अनुपयुक्त पाता हूँ, तथापि अपने हृदय में आचार्य कोठारी जैसे महान व्यक्ति के लिए जो आदर है उसी के कारण मैंने विनम्रतापूर्वक यह निमंत्रण स्वीकार करने का साहस किया है। आचार्य कोठारी का भौतिकशास्त्र एवं खगोल-भौतिकी की खोजों तथा पठन-पाठन में योगदान तो अद्वितीय रहा ही है, परन्तु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं रक्षा संस्थान के अध्यक्ष तथा अधिष्ठाता के रूप में भी उनका संस्था-निर्देशन का कार्यकलाप भी अत्यन्त उच्च कोटि का था। इनके अतिरिक्त उन्होंने विज्ञान-दर्शन तथा विज्ञान की आध्यात्मिकता दोनों ही ओर विशेष बल दिया था। हिन्दी भाषा से उनको विशेष अनुराग था और तकनीकी शब्दावली संस्थान की स्थापना उन्हीं के प्रोत्साहन से सम्भव हो पाई थी। हिन्दी में मेरा ज्ञान सीमित है, परन्तु आचार्य कोठारी के पदचिन्हों का अनुसरण करके मैं यह भाषण हिन्दी में देने का साहस कर रहा हूं, आशा है आप मेरे ज्ञान की कमी एवं भाषा की अनभिज्ञता के लिए मुझे क्षमा करेंगे।

यद्यपि मुझे लगभग अर्द्धशताब्दी पहले से भी आचार्य कोठारी के सम्पर्क में आने का अवसर मिल चुका था, परन्तु सन् 1968 में जब से उन्होंने अपनी दिल्ली-उदयपुर वायु-यात्रा के मध्य जयपुर एयरपोर्ट पर मुझे यह निर्देश देने के लिए आमंत्रित किया कि मैं राजस्थान विश्वविद्यालय के कुलपति पद के लिए अपनी सहमति दे दूं, तभी से उनके और अधिक निकट होने का अवसर मिला। सन् 1974 में जब अनमने मन से दिल्ली गया तो मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि मेरा निवास-गृह उनके सुपुत्र प्रो० लक्ष्मण सिंह कोठारी के घर के लगभग सामने है, जहाँ आचार्य कोठारी जी अधिकांश समय बिताते थे। दिल्ली से लौटने के पहले ही मुझे उनका एक हस्तलिखित बधाई-पत्र मिल चुका था, इसलिए दूसरे ही दिन मैंने उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उनसे भेंट करना उचित समझा। उत्तरदायित्व की कठिनता का आभास मुझे इसी से मिल गया था कि मुझ से पहले चार कुलपति निर्धारित पांच वर्ष की अवधि के स्थान पर डेढ़ दो साल ही में अपना पदत्याग कर चुके थे, इस परिप्रेक्ष्य में मुझे साधु जैसे महापुरुष आचार्य कोठारी के हार्दिक आर्शीवाद से अत्यन्त सम्बल मिला। इसके बाद तो वे प्रायः सुबह टहलते-टहलते मेरे यहां आ जाते थे और मुझे विभिन्न समस्याओं में उनका मार्ग दर्शन मिल जाता था। सन् 1977-78 में तो प्रायः प्रत्येक रविवार को हम दोनों अपराह्न में उप-राष्ट्रपति श्री बी० डी० जत्ती के यहां जाने लगे जहां जत्ती जी कुछ संसद-सदस्यों और शिक्षकों को आमंत्रित कर शिक्षा को नैतिक मूल्योन्मुखी बनाने के लिए विचार-विमर्श करते थे। इसी दिशा में आचार्य कोठारी जी के प्रोत्साहन पर मैंने विश्वविद्यालय में एक समिति का आयोजन किया जिसमें हम दोनों के अतिरिक्त प्रो० अखलाक किदवई (यू० पी० एस० सी० के अध्यक्ष), प्रिंसिपल राज पाल (सेण्ट स्टीफेन्स

6 जुलाई 1999 को रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर में आचार्य दौलत सिंह कोठारी की स्मृति में दिया गया व्याख्यान।

कॉलेज), डॉ० प्रेम कृपाल (यूनेस्को में सेक्रेटरी-जनरल का पद सुशोभित करने वाले) जैसे महानुभावों का सहयोग मिला। इसी समिति के निर्देशन पर मैंने विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कॉलेजों और विभागों को भी प्रोत्साहित किया कि अपने-अपने स्तर पर ऐसी समितियाँ बनाएँ, जिनके माध्यम से अपनी सुविधानुसार विद्यार्थियों और अध्यापकों को शाश्वत मूल्यों के किसी भी पक्ष पर विचार-विमर्श के लिए प्रोत्साहित करें। उनको यह भी आश्वासन था कि यदि वह इस विचार-विमर्श के लिए किसी उपयुक्त व्यक्ति को बाहर से बुलाना चाहें तो, विश्वविद्यालय की सहायता उपलब्ध रहेगी। मुझे विश्वविद्यालय के इस लाभदायक कार्यकलाप से ऐसी सुखद अनुभूति हुई कि लगभग पूरे पांच वर्ष अध्यापकों एवं विद्यार्थियों के आन्दोलन के बिना ही पूरे हो गये और विश्वविद्यालय का रूप-रंग परिवर्तित हो गया।

वैज्ञानिक समझ से परे कुछ व्यक्तिगत अनुभूतियाँ

यद्यपि मेरे जीवन में ऐसे अनुभव कई बार हो चुके हैं, तथापि निम्न अनुभूति को समझने में मैं नितान्त असफल रहा हूँ। इससे मेरे मन में विज्ञान से परे भी सत्य की सम्भावना का विश्वास दृढ़ हो गया है क्योंकि इस प्रकार की घटनाओं को केवल मानस-तल पर ही समझा जा सकता है। Consciousness या चैतन्यता के ऐसे कार्यकलापों पर प्रकाश डालने के प्रयत्न तो बहुत दिनों से हो रहे हैं, परन्तु अभी इस ओर पूरी सहमति नहीं हो पाई है। मैं इस अनोखी घटना का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

सन् 1947 में मैंने एक दिन प्रातः 10.50 पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अपनी कक्षा समाप्त की और अपने बैठक के कमरे से लगी हुई प्रयोगशाला में अंगुलियों से खड़िया धो ही रहा था कि मुझे सहसा ही कानपुर में रहने वाले अपने डॉक्टर बड़े भाई की याद बहुत सताने लगी। दो-चार दिन पहले ही उनके तथा उनके परिवार की पूर्ण स्वस्थता का पत्र मिल चुका था, परन्तु न मालूम क्यों कुछ ऐसी चिन्ता सताने लगी कि मैंने कमरे में जाकर अपने सहयोगी डॉ० रामदास तिवारी से कहा कि मैं शीघ्र से शीघ्र कानपुर पहुँचना चाहता हूँ, क्योंकि मुझे अपने बड़े भाई की बहुत चिन्ता हो रही है। उनके बहुत समझाने से टेलीफोन करने का प्रयास किया, परंतु सम्पर्क न हो पाने पर मैं घर आया और अपनी श्रीमती को अपनी अमुक चिन्ता बता कर लगभग 3 बजे की गाड़ी से चल कर संध्या 7 बजे कानपुर पहुँच गया। घर पहुंचने पर जब ताला पड़ा मिला तो पड़ोसियों से मालूम हुआ कि मेरे डॉ० भाई कार द्वारा लखनऊ से कानपुर आ रहे थे तो लगभग 11 बजे उन्नाव से आगे उनकी गाड़ी एक ट्रक से टकरा गयी। इससे उनकी जाँघ और हाथ के ऊपरी भाग में कई हड्डियाँ टूट गई हैं और वे उपचार के लिए अमुक अस्पताल में भरती किए गए हैं। भगवान की कृपा से कुछ समय के उपरान्त मेरे भाई बिल्कुल स्वस्थ हो गए परन्तु उन्नाव में उनके दुर्घटनाग्रस्त होने के समय और घटना स्थल से लगभग 150 मील दूर इलाहाबाद में सहसा ही चिन्ता होने के तथ्य ने मुझे और मेरे सब जानने वाले लोगों को ऐसे आश्चर्य में डाल दिया था कि आज भी उसको समझ पाना बिल्कुल असम्भव है। इस अनुभूति को केवल एक विचार-तरंग (thought wave) के उद्भव से ही समझा जा सकता है जिसने मेरे अवचेतन मन (sub-conscious mind) में ऐसी खलबली पैदा कर दी कि मुझे बिना किसी पर्याप्त कारण के इलाहाबाद से कानपुर जाने को बाध्य कर दिया।

इतनी आश्चर्यजनक और उच्चारित न सही परन्तु विज्ञान के स्तर पर पूरी तरह समझ में न आने वाली अनुभूतियाँ तो अन्य साथियों के साथ भी होती रहती हैं, जैसे कि किसी भावी दुर्घटना से समर्पण-चित्त प्रार्थना द्वारा छुटकारा पा जाना। यद्यपि इस प्रकार की एक दो अनुभूतियों को तो नज़रअन्दाज भी किया जा सकता है, परन्तु उनकी बारम्बार पुनरावृत्तियों से मानस में प्रार्थनाओं की सार्थकता पर मेरा विश्वास गहन होता जा रहा है। आचार्य कोठारी जी ने अपने लेखों और भाषणों में प्रार्थनाओं की सार्थकता का बहुत बार उल्लेख किया है। इनमें से एक उदाहरण मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ जो विचार 1979 में जाकिर हुसैन भाषण में उन्होंने व्यक्त किये थे :

"अहिंसा के मार्ग को चुनना .... तथा अहिंसा के सिद्धांत तथा प्रतिपालन में वृद्धि करना एक नीतिपरक विकल्प का निर्वाचन है। अन्ततः यह मानव तथा उसके भविष्य में विश्वास का द्योतक है। इसका तात्पर्य है कि अकेला विज्ञान पर्याप्त नहीं है। ज्ञान एवं विश्वास एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधात्मक नहीं। विज्ञान के विवेक में आस्था भी तो एक विश्वास का ही रूप है।"

'क्या कोई वैज्ञानिक या खगोल-शास्त्री कभी अति-कठिन क्षण में भगवान से प्रार्थना नहीं करेगा ? सच तो यह है कि बहुत से वैज्ञानिक ऐसा करेंगे और करते रहे हैं। इस दिशा में वैज्ञानिकों और अन्य लोगों में कोई अन्तर नहीं है। परन्तु प्रार्थना की सार्थकता के प्रति इस प्रकार के द्विभाजीय विचार (dichotomy) भी ईमानदार वैज्ञानिक के लिए कठिनाई उत्पन्न कर देते हैं।''

बीसवीं शताब्दी में विज्ञान की प्रगति

''द्रव्य, जीवन तथा मानस आधुनिक विज्ञान के तीन स्तम्भ हैं'' जिन्हें क्रमशः

(i) क्राण्टम क्रांति (Quantum Revolution)

(ii) जैवाणु क्रांति (The Biomolecular Revolution)

(iii) कम्प्यूटर क्रांति (The Computer Revolution)

से व्यक्त किया जा सकता है। ये तीनों परस्पर सहक्रियात्मक (synergetic) प्रभावशाली होते हैं।

हम अब मानस-मष्तिक (Mind-Brain) प्रतिक्रियाओं पर बारी-बारी से इन तीनों का उल्लेख करेंगे।

(i) **क्राण्टम क्रान्ति (Quantum Revolution)**

उन्नीसवीं शताब्दी में द्रव्य-विज्ञान में अलौकिक प्रगति से ''तार्किक पॉजिटिविज्म'' (logical positivism) की धारणा का प्रादुर्भाव हुआ जिसके अनुसार विज्ञान में उसी को सत्य माना जाने लगा, जिसको तथ्यों के आधार पर सिद्ध किया जा सके। इस प्रकार की विचार-पद्धति से क्रमशः इस धारणा को पुष्टि मिली कि संसार के सब क्रिया-कलापों को वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर समझा जा सकता है और जो क्रिया-कलाप इस कसौटी पर खरे न उतरें, वे अवैज्ञानिक समझे जाने चाहिए। इस धारणा के अनुसार मानव, पशु तथा अन्य जीवों के जीवन क्रम को केवल रासायनिक एवं जीव विज्ञान के सिद्धान्तों की सहायता से समझा जा सकता है। यह सच है कि इस प्रकार की धारणाओं से आणविक जीव-विज्ञान (molecular biology) में अत्यन्त तीव्र प्रगति हुई जिसने अन्ततः जैव-तकनीक (bio- technology) का रूप ले लिया है, साथ ही अब मस्तिष्क की क्रिया-पद्धतियों को कम्प्यूटरों से उद्धत किया जा सकता है।

हम सब जानते हैं कि मानव समाज के क्रियाकलाप एवं परस्पर सम्बन्ध जो विज्ञान की प्रगति में भी सहायक होते हैं, विज्ञान के विश्लेषण से परे होते हैं परन्तु उनकी सत्यता को कभी नकारा नहीं जा सकता। ''नैतिक मूल्यों पर विज्ञान का प्रभाव'' (Impact of Science on moral values) शीर्षक वाले एक लेख में मैंने विज्ञान तथा वैज्ञानिकों के क्रिया-कलापों में सफलता के लिए जिन गुणों की आवश्यकता को प्रदर्शित किया था, उनमें से कुछ भिन्न हैं :

1. सत्य की खोज की प्रतिबद्धता तथा उस दिशा में अथक प्रयास,

2. ज्ञात तथ्यों के विश्लेषण की क्षमता और अपने पहले के कार्यकर्ताओं के प्रति आदर की भावना में कमी के बिना उनके निष्कर्षों के खण्डन का साहस,

3. सादर भावनाओं सहित पारस्परिक सहिष्णुता, तथा

4. विनम्रता एवं अपूर्णता की भावना

क्राण्टम सिद्धान्त के प्रतिपादन और उस प्रर आधारित ''अनिश्चितता सिद्धान्त'' (uncertaintity principle) ने इस अपूर्णता की भावना को नया जामा पहना दिया है। इस अनिश्चितता सिद्धान्त के आधार पर यह स्पष्ट हो गया है कि मापन की सूक्ष्मतम तकनीक दृश्य (observed) कण को ऐसा विकम्पित कर देती है कि उसके ''स्थान'' तथा ''गति'' दोनों को एक साथ बिल्कुल सही रूप में नहीं मापा जा सकता। इस अनिश्चितता या अपूर्णता के अहसास ने विज्ञान तथा मानव के साधारण कार्य-कलापों को बहुत निकट ला दिया है। जोहर एवं मारशल ऐसे पश्चिमी समाजशास्त्रियों ने इस विषय पर रोचक पुस्तकें 'दि क्राण्टम सेल्फ' एवं 'दि क्राण्टम सोसाइटी' भी लिखी हैं। आचार्य तुलसी तथा आचार्य कोठारी का अनुसरण करते हुए, मैंने भी ''क्राण्टम सिद्धान्त'' तथा ''स्याद्वाद दर्शन'' की समानता का विश्लेषण करने का लघु प्रयास किया है।

''अपूर्णता'' की बात को आगे बढ़ाते हुए यह स्पष्ट हो गया है कि ''दर्शक'' के देखने की प्रक्रिया से ''दृश्य'' विकसित हो जाता है और उसकी ''स्थिति'' और ''गति'' को एक साथ पूर्ण सही रूप में नहीं मापा जा सकता। इस

''अपूर्णता'' को कम करने के प्रयास में ''पूर्ण'' सफलता तब ही मिल सकती हैं, जब ''दर्शक'' और ''दृश्य'' एक ही में समाहित हो जाए, धार्मिक दृष्टिकोण से भी ''दर्शक'' (पुजारी) को ''पूर्णता'' (मोक्ष) तभी प्राप्त होती है जब वह ''दृश्य'' (पूज्य) में समाहित हो जाए।

मैंने यह लेख/भाषण ''तार्किक पाजीटिविज्म'' के उल्लेख के साथ प्रारम्भ किया था। सब वैज्ञानिकों की मान्यता है कि जो कुछ भी सिद्ध किया जा सके वह सत्य अथवा मान्य है। भगवान बुद्ध भी इसी प्रकार के निष्कर्ष पर पहुंचे थे, जिसे निम्न शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है :

''किसी के बताए तथ्य पर विश्वास मत करो, उस पर उसकी रूढ़िता के आधार पर भी विश्वास मत करो, केवल अपनी कल्पना के आधार पर भी विश्वास मत करो, जो केवल तुम्हारे गुरू ने बतलाया है उस पर भी गुरू के प्रति आदर भावना मात्र से विश्वास मत करो, परन्तु पूरी तरह निरीक्षण एवं विश्लेषण के आधार पर जो भी सर्व हित में प्रतीत हो उस सिद्धान्त पर विश्वास करो और अपना मार्ग-दर्शक बनाओ।''

विज्ञान भी इस तथ्य को मानता है कि जो कुछ भी परीक्षण या तर्क की कसौटी पर खरा उतरे वह ''सत्य'' है, परन्तु गैडेल तथा अन्य गणितज्ञों की मान्यता है कि सब ''सत्य'' परीक्षण या तर्क की कसौटी पर सिद्ध नहीं किए जा सकते और अनन्त ''समय'' तक असिद्ध ही रहेंगे। समय का उल्लेख आने पर मेरा ध्यान 'स्टीफेन हॉकिंग' की ओर चला जाता हैं जिन्होंने ''ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम'' नामक जनोपयोगी पुस्तक में विश्व के प्रारम्भ एवं स्वरूप के ''समय'' को परिभाषित करने का प्रयास किया है। हॉकिंग के व्यक्तित्व के बारे में दो शब्द कहना उचित ही होगा। सन् 1942 में जन्में हॉकिंग ने ऑक्सफोर्ड में भौतिकशास्त्र का अध्ययन किया, परन्तु 22 साल की उम्र में ही ''मोटर न्यूरॉन'' बीमारी से ग्रसित हो जाने के कारण डॉक्टरों ने उनका केवल 2-3 वर्ष का जीवन काल अनुमानित किया, इसके पश्चात् उनके बोलने की शक्ति बिल्कुल समाप्त हो गयी थी। इन सब व्याधियों के होते हुए भी दृढ़प्रतिज्ञ हॉकिंग आज भी कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के सर्वप्रतिष्ठित पद ''लुकैसियन प्रोफेसरशिप'' को सुशोभित करते हुए व्हील चेयर पर बैठे-बैठे ही बोलने के लिए चेयर पर लगे कम्प्यूटर की सहायता से अनुसन्धान में संलग्न हैं और आज संसार के अग्रणी खगोलशास्त्रियों में इनकी गणना होती है। जिस पद को वे आज सुशोभित कर रहे हैं उस पर न्यूटन भी कार्य कर चुके हैं।

शायद आपको मालूम होगा कि आइन्स्टाइन जैसे वैज्ञानिक ने हाइजेनबर्ग के अनिश्चितता सिद्धांत को कभी पूर्णतया स्वीकार नहीं किया। इस सम्बन्ध में आइन्स्टाइन का एक वाक्य बहुत प्रसिद्ध है – ''भगवान विश्व के सम्बन्ध में जुए के पासों से नहीं खेलता'', इस कथन के सम्बन्ध में हॉकिंग की प्रतिक्रिया थी कि ''भगवान विश्व के सम्बन्ध में केवल पासों से खेलता ही नहीं वरन् यदा-कदा उन्हें काले छिद्रों (black holes) में भी फेंक देता हैं जहाँ वे कभी भी दिखाई नहीं पड़ते। श्याम विवर आकाश के ऐसे अधिक गुरुत्वाकर्षण वाले पिण्ड हैं जिनसे प्रकाश भी बाहर नहीं आ पाता। अप्रैल 1990 में कैम्ब्रिज के सिगमा क्लब में दिए गए अपने एक भाषण में भी मानव-मानस की ''वैचारिक स्वतंत्रता'' (free will) के विचार को त्यागते हुए हॉकिंग ने ''पूर्व-निर्धारण'' (pre-determination) पर ही अधिक बल दिया था। मानव अनुभूति के कारण वैचारिक स्वतंत्रता की सम्भावना की उत्पत्ति भी उनके अनुसार मानव मष्तिष्क में खरबों न्यूरॉनों के कार्य-कलाप में निहित अनिश्चियता (in-determinancy) के कारण ही व्यक्त होती है।

(ii) जैवाणु क्रान्ति (Biomolecular Revolution)

बींसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई खोजों से क्रमशः स्पष्ट हो गया है कि पृथ्वी पर समस्त जीवों के कार्य-कलाप कुछ अणुओं पर ही आधारित होते हैं जो कुल आधे दर्जन तत्वों-कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, फॉस्फोरस तथा गन्धक से बने होते हैं और आण्विक स्तर पर पौधों, क्षुद्र से क्षुद्र कीड़ों, मछली अथवा मानव-सब की जैविक प्रक्रिया एक सी होती है।

शेफील्ड विश्वविद्यालय के आचार्य डैविड ई फेण्टन ने 1998 के अपने केमिकल सोसाइटी के भाषण में प्रसिद्ध रसायनज्ञ आर. जे. विलियम्स के निम्न वक्तव्य को उद्धत किया है– ''जीवन अकार्बनिक पदार्थों से विकसित हुआ है और इस विकास प्रक्रिया में उसने इस ज्ञान से अधिकतम लाभ प्राप्त करने का प्रयास किया है।''

उपर्युक्त जैविक कार्यकलापों की स्पष्ट जानकारियों को

जैव-तकनीकों में बड़ी तेजी से प्रयोग किया जा रहा है जैसे कि नई से नई दवाओं के उत्पादन में। यद्यपि दु:सह से दु:सह रोगों के लिए नवीन और कारगर दवाओं की नित्य ही खोज हो रही है, परन्तु साथ ही मानव उपचार में ''मानसिक शांति'' के दूरगामी प्रभावों में भी विश्वास तेजी से बढ़ता जा रहा है, फलस्वरूप यह आस्था भी बढ़ती जा रही है कि उपचार तो सदैव जैव-शक्ति (life-force) द्वारा ही होता है, दवाइयाँ तो केवल सहायक मात्र होती हैं। इसके विपरीत कुछ वैज्ञानिकों का यह स्पष्ट मत भी सामने आ रहा है कि जीवों के सब क्रिया-कलाप कुछ अणुओं या जैवाणुओं की पारस्परिक क्रियाओं द्वारा ही निर्धारित होते हैं।

'क्वाण्टम गतिकी' के खोजकर्ता श्रॉडिन्जर ने 'What is life' नामक पुस्तक में लिखा है कि किसी भी जीव की विशिष्टताएँ उसकी ''कोशिकाओं'' (cells) में उपस्थित जीनाणुओं पर स्पष्ट रूप से अंकित होती हैं जिसकी गवेषणा में नोबेल पुरस्कार विजेता हरगोविन्द खुराना ने बहुत योगदान दिया था। डी. एन. ए. अणुओं के द्वि-हेलिकल संरचना का स्पष्टीकरण एक्स-रे मणिभीकरण की पद्धति से होने के बाद तो अब अधिकांश जैविक पदार्थों की सूक्ष्मतम समीक्षा संभव हो गयी है और अधिकांश जीवाणु तथा वाइरस (जैसे HIV) आदि के ''जेनेटिक कोड'' को पूर्णतया परिभाषित करना सम्भव हो गया है। सच तो यह है कि जैव विशेषज्ञ आज जीवों के जेनेटिक कोडों को उसी सुगमता से पढ़ सकते हैं जैसे किसी पुस्तिका का अध्ययन कर रहे हों।

जैव-तकनीक की सम्भावनाओं से तो सिर चकराने लगता है। यद्यपि मैसाचुसेट्स स्थित एडवान्सड सेल टेक्नॉलॉजी फैसीलिटी में प्राप्त सफलता से मानव की क्लोनिंग अब एक स्पष्ट सम्भावना हो गई है, परन्तु देश-विदेश की विभिन्न अकादमियाँ ''नैतिक'' स्तर पर इस ओर स्वनियंत्रण लागू कर रही हैं तथापि पिछले वर्ष ''डॉली'' नामक भेड़ की क्लोनिंग के बारे में तो हम सब जानते ही हैं, इस वर्ष ''मिली'' नामक बकरी को भी क्लोन कर लिया गया है। यद्यपि ''मिली'' क्लोन करने में लगभग 10 लाख डॉलर की लागत आई है परन्तु इस मंहगी गवेषणा से भी लाभदायक व्यवसाय की सम्भावनाएँ बढ़ गई हैं। हृदय के ऑपरेशन के समय रोगियों के लिए अति उत्तम दवा ऐण्टीथ्रोम्बिन नामक प्रोटीन III या एटी III ''मिली'' के दूध में इतनी बहुतायत से मिल जाती है कि इस विशिष्ट गुण वाली बकरियों को व्यवसायिक स्तर पर उत्पन्न करने की योजना आरम्भ हो गई है।

समस्त अंगों में पूर्ण सामंजस्य वाले जीवों की क्लोनिंग तो अब साधारण सी बात हो चली है। इनमें बाह्य-शारीरिक संरचना तो बिल्कुल एकसमान होती हैं। मुझे कहीं ऐसा उल्लेख नहीं मिला कि इनके स्वभाव जैसे झुण्ड में चलना, भूख लगने पर आवाज देना, बुलाने पर पास आने की प्रवृत्ति, इनकी पीठ थपथपाने आदि पर इनकी प्रतिक्रिया आदि में निम्न स्तर के मानस में भी उपस्थित अरबों न्यूरानों की पारस्परिक क्रिया की अनिश्चयता के कारण कितनी भिन्नता होती है। इस प्रकार की खोजों से मानव-मस्तिष्क और मानस की प्रक्रियाओं पर भी शायद कुछ प्रकाश पड़ सके।

(iii) कम्प्यूटर क्रान्ति (The Computer Revolution)

आकार में छोटे होते हुए भी ट्रॉन्जिस्टरों और उनकी क्षमता में वृद्धि के साथ ही हमने पिछले दशकों में कम्प्यूटरों के घटते आकार और उनकी कार्य क्षमता का कमाल अवश्य देखा और समझा है। इसके बाद ''लेसरों'' के उपयोग द्वारा इनकी इन्टरनेट क्षमता से जानकारी मार्ग (information highway) खुलने लगे हैं। मानव मस्तिष्क में न्यूरॉन तो लगभग 10^3 प्रति सेकेण्ड की गति से क्रिया करते हैं परन्तु कम्प्यूटरों में ट्रॉन्जिस्टरों की कार्यगति इससे लाखों गुणा अधिक लगभग 10^9 सेकण्ड होती हैं। कम्प्यूटर मानव मस्तिष्क से लाखों गुणा तेज ही नहीं होते, अपितु धीरे-धीरे उनमें एक ''कृत्रिम'' समझ या बुद्धि का आभास मिल रहा है जो मानव बुद्धि से भी कभी-कभी अधिक तीव्र सी प्रतीत होती है।

कम्प्यूटेशन (कृत्रिम समझ) और ''चेतन'' सोचने की प्रक्रियाओं की तुलना करते हुए, प्रसिद्ध गणितज्ञ पेनरोज के मन में ये प्रश्न उठे कि प्रसन्नता, पीड़ा, प्रेम, सौन्दर्यबोध, मानसिक दृढ़ता जैसी मानव-भावनाएँ किस सीमा तक एक कम्प्यूटर के मस्तिष्क में समाहित हो सकती हैं। लम्बे तर्क-वितर्क के बाद पेनरोज इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि ''विज्ञान के वर्तमान ज्ञान'' की सहायता से इस प्रश्न का निर्णायक उत्तर सम्भव नहीं हैं। उनके अनुसार ''गूढ़ समझ के निम्न स्तर, जहां क्वाण्टम नियम प्रभावी होते हैं और नित्य के साधारण कार्य-कलाप जिन पर हमारी रूढ़ि (classical)

भौतिकी का प्रभाव है, इन दोनों के मध्य के क्षेत्र की अधिक बारीक जानकारी के बाद ही इस प्रकार के गूढ़ प्रश्नों का उत्तर सम्भव हो सकेगा।"

इस सब गूढ़ जानकारी के बाद भी क्या मेरी व्यक्तिगत अनुभूति का भी स्पष्टीकरण हो सकेगा ? क्या इस नए विज्ञान से इस प्रकार के प्रश्नों का समाधान हो सकेगा कि कैसे बिना पर्याप्त शिक्षा के किस प्रकार जन्म से ही अनन्त (infinity) से परिचित मानव रामानुजन संख्या-गणित के ऐसे सूत्र लिख सके जो उनके स्वर्गवास के दशकों बाद भी सिद्ध करने में संसार के वैज्ञानिक और गणितज्ञ लगे हुए हैं ? साथ ही क्या वह ज्ञान "वेदान्त द्वारा ज्ञान-अभिबोध" (enlightenment by Vedanta) पर प्रकाश डाल सकेगा जिसका आचार्य कोठारी ने इतना विस्तृत वर्णन किया है।

निष्कर्ष

न्यूटन, आइन्स्टाइन, श्रॉडिन्जर, ब्रॉगली, हाइजेनबर्ग, प्रिगोगाइन, रामानुजन, कोठारी, चन्द्रशेखर, सुदर्शन जैसे प्रबुद्ध वैज्ञानिकों ने बीसवीं शताब्दी में विशिष्ट मानव मूल्यों पर आधुनिक विज्ञान के गूढ़ प्रभाव का उल्लेख किया है, जैसा कि निम्न कुछ वक्तव्यों से स्पष्ट हो जाता है।

अपनी खोजों के उद्‌बोधन के बारे में न्यूटन का मत था कि "वे बराबर उनके बारे में सोचते रहने से ही प्राप्त हुई। उन्होंने उस विषय पर तब तक ध्यान नहीं हटाया जब तक कि महीन-महीन छिद्रों से बढ़ता हुआ तीव्र सा प्रकाश उनके सामने प्रकट नहीं हुआ" (as quoted by Cyril Hinshelwood, Nature, 207, 1057 (1965)

"हमारी ज्ञानेन्द्रियों से पृथक एक संसार है। मानव ने प्रकृति के नियमों का आविष्कार नहीं किया, वरन् इस प्राकृतिक संसार ने इन नियमों को मानव पर डाल दिया"

(Max Planck in 'Philosophy of Physics')।

"मेरा जो कृत्य स्वयं का माना जाता है, सच तो यह है कि वह मेरे ही अन्दर मुझसे किसी बड़े स्रोत से सम्पादित होता है[1]।"

(Clark Maxwell on his death bed)।

इनके विपरीत स्टीफेन हॉकिंग, रोजर पेनरोज तथा क्रोचो (फुल्लरीन की गवेषणा पर 1996 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित जैसे वैज्ञानिक (इधर फिर यह सोचने लगे हैं कि विज्ञान के परे कुछ नहीं है और विज्ञान की सहायता से प्रकृति के सब भेदों को भली-भांति समझा जा सकता हैं। क्वाण्टम क्रान्ति, जैव-तकनीक से जनित नैतिक प्रश्नों तथा कम्प्यूटरों की मानव से अच्छी समझदारी के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार की मान्यताओं का महत्व और भी बढ़ गया है क्योंकि इनके कारण क्रमशः मानव शायद एक निष्फल (obsolete) यंत्र ही रह जाएगा। कुछ ऐसी ही मानसिक स्थिति इस शताब्दी के आरम्भ में भी हो गयी थी, परन्तु अपने अथक और अद्वितीय प्रयासों से वैज्ञानिकों ने इस परिस्थिति को उलट सा दिया था। मेरा तो यह विश्वास है कि मानव-बुद्धि (मानस) इक्कीसवीं शताब्दी में एक बार फिर यह सिद्ध कर देगी कि वह इन परिस्थितियों की दास न होकर उन पर हावी है। मैं तो एक क्षुद्र सा प्राणी हूँ परन्तु मेरा विश्वास है कि आचार्य कोठारी की महान आत्मा मुझसे इस विषय में अवश्य सहमत होगी।

उपयुक्त आशावादी मान्यता के परिप्रेक्ष्य में मुझे संकोच के साथ कहना पड़ता है कि लगभग सन् 2000 में भी हम शाश्वत धर्म एवं आस्थाओं के पुंज मानस एवं समस्त आधुनिक ज्ञान/विज्ञान के खोजकर्ता एवं गूढ़ मस्तिष्क के मध्य विरोधाभासों को समझने में पूर्णतया सफल नहीं हो पाए हैं। इस ओर हम कुछ ऐसी ही परिस्थितियों में हैं जैसे कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में भौतिकशास्त्रियों को अपने अवलोकनों को समझने के लिए प्रकाश की कभी कण-सम्बन्धी और कभी तरंग सम्बन्धी मान्यता का सहारा लेना पड़ता था।

मानव शरीर के अन्य भागों के विस्तृत अध्ययन के बाद सन् 1991-2000 के दशक में मस्तिष्क की गूढ़तम गुत्थियों को स्पष्ट करने की ओर विशेष ध्यान दिया है। इस दशक के मध्य में उनकी इस ओर एक सुखद और आशावादी गवेषणा का उल्लेख करना चाहूँगा। चर्च की सेवा में संलग्न सेविकाएँ (nuns) प्रायः दीर्घजीवी होती हैं, मिनेसोटा (अमेरिका) में ऐसी 90 वर्षों से अधिक उम्र की सेविकाओं की अनुमति से मृत्यु-पर्यन्त उनके मस्तिष्कों के अध्ययन से पता चला है कि मस्तिष्क के तन्तु शरीर के अन्य तन्तुओं की भाँति बुढ़ाते नहीं और उनकी कार्यक्षमता में कमी नहीं आती, यद्यपि आल्जाइमर (Alzeimer) जैसे रोग से ग्रसित होने पर मानव-स्मरण-शक्ति तो लुप्त भी हो जाती हैं। इस सम्बन्ध में

आइन्स्टाइन के मस्तिष्क के बारे में हाल ही में 'लान्सेट' (Lancet) जैसी पत्रिका में छपा अनुसन्धान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सापेक्षिक सिद्धान्त से इस शताब्दी के विज्ञान को बिल्कुल नया मोड़ देने वाले एलबर्ट आइन्सटाइन का स्वर्गवास 1955 में 76 वर्ष की उम्र में ही हो गया था, परन्तु अपनी मृत्यु-पर्यन्त अपने मस्तिष्क को वैज्ञानिकों के अध्ययन के लिए अर्पित कर दिया था। मस्तिष्क के वर्तमान दशक में भौतिक शास्त्रियों, रसायनज्ञों, जैव-वैज्ञानिकों ने मस्तिष्क के विभिन्न प्रकोष्ठों की कार्य-पद्धति पर बहुत प्रकाश डाला है। इस दिशा में सफल वैज्ञानिकों में कैलीफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेकनोलॉजी के आचार्य रोजर डबल्यू सेरी का योगदान सर्वप्रमुख है जिनको 1981 के अर्द्ध-गोलार्धों की कार्य विशिष्टताओं के लिए फिजिऑलोजी तथा मेडिसिन के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। उनकी 1983 में प्रकाशित पुस्तक 'Science and Moral Priority : Merging Mind, Brain and Human Values' तथा उसके बाद प्रकाशित अनेकानेक लेख हमारे आज के विषय पर बहुत प्रकाश डालते हैं। मैं स्वामी विवेकानंद के अद्वितीय उद्बोधन के लिए (प्रसिद्ध शिकागो में 1893 में आयोजित गोष्ठी की शताब्दी जयन्ती पर1993 की गोष्ठी के बाद प्रकाशित "Cosmic Beginings and Human Ends (Where Science and Religion Meet)" पुस्तक में उनके एक लेख की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा जिसका शीर्षक था : "A Search for Beliefs to Live by – Consistent with Science"। इस लेख में इस प्रबुद्ध मस्तिष्क - वैज्ञानिक ने विभिन्न तर्कों एवं तथ्यों के आधार पर स्पष्ट सिद्ध किया है कि मानव मस्तिष्क तथा मानस की प्रक्रियाएं पारस्परिक रूप में पूरक होती हैं और उनमें कोई विरोधाभास या अलगाव नहीं है।

मानस-मस्तिष्क के पारस्परिक सम्बन्धों की गुत्थी सुलझाने में आधुनिकतम प्रयासों की विवेचना के बाद मैं 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास जी की एक पंक्ति से अपना व्याख्यान समाप्त करना चाहता हूँ जिसका दर्शन वर्तमान ज्ञान के कितना निकट है :

जड़ चेतनहिं, ग्रन्थि परि गई,

जदपि मृषा, छूटत कठिनई।

इसका सरल अर्थ है कि जड़ तथा चेतन के बीच की ग्रन्थी (गुत्थी) मिथ्या होते हुए भी कठिनाई उत्पन्न करती है।

कोठारी व्याख्यानमाला के आयोजकों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे आदर प्रदान कर अपने विषय के विशद साहित्य के अति-लघु अंश में एक बार पुनः गोता लेने को प्रेरित किया। इसी प्रयास में डॉ० कोठारी जी के सुपुत्र डॉ० ललित कोठारी का भी हृदय से धन्यवाद देना चाहूंगा कि उन्होंने पिछले सप्ताह ही मेरा ध्यान चिकित्सा-शास्त्र में इस विषय से सम्बन्धित दो अन्य बहुमूल्य पुस्तकों की ओर भी आकर्षित किया। इसमें प्रथम पुस्तक तो डॉ० दौलत सिंह कोठारी जी ही को व्यक्तिगत रूप से समर्पित की गई है और इनमें कैंसर जैसे घातक रोगों का वर्णन है जिनके सैकड़ों रोगी मानस-शक्ति एवं प्रार्थनाओं द्वारा लाभान्वित हो चुके हैं। इसकी पुष्टि प्रयोगशालाओं में आधुनिकतम वैज्ञानिक पद्धतियों से की जा चुकी है। दूसरी पुस्तक में विद्वान लेखक डॉ० लैरी डॉसी, एम० डी० ने एक प्रसिद्ध न्यूरोसर्जन डॉ० नार्मन शैली की ऐसी अनुभूतियों का उल्लेख किया है जो मेरे व्यक्तिगत अनुभव से बहुत मिलती-जुलती हैं। डॉ० शैली की जान-पहचान उनके विश्वविद्यालय से 1200 मील दूर हैम्प-शायर की पत्रकार कैरोलिन माइस से ही गयी जिसे टेलीपैथी की एक ऐसी अलौकिक शक्ति प्राप्त है जिसकी सहायता से वह डॉ० शैली के लगभग 93 प्रतिशत मरीजों के रोग की पहचान इतनी दूर से बतलाने में सफल रहती हैं। लगभग 93 प्रतिशत रोगियों में इतनी दूरी से रोग की सही पहचान तो सचमुच ही आश्चर्यजनक है क्योंकि आधुनिकतम वैज्ञानिक पद्धतियों से भी इतनी सफलता कठिनाई से मिलती है। इन पुस्तकों के अध्ययन से टेलीपैथी और प्रार्थनाओं के बारे में मुझे अपनी उल्लेखित अनुभूतियों की विशेष पुष्टि मिली है। शायद ये दृष्टान्त विज्ञान से परे हैं, जैसा कि डॉ० कोठारी जी ने अपने एक भाषण 'ऐटम एण्ड सेल्फ' में भी कहा था, जिसका उल्लेख डॉ० डॉसी ने पहली पुस्तक की प्रस्तावना में भी किया है। दुर्भाग्य से भारत इन परम्परागत दिशाओं में भी पश्चिमी देशों से पिछड़ता जा रहा है। आशा है डॉ० कोठारी जी का उदाहरण भविष्य में अधिक प्रभावी सिद्ध होगा।

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

आचार्य दौलत सिंह कोठारी–एक परिचय

एक छोटे से स्कूल के हेड-मास्टर के घर 6 जुलाई 1906 को जन्मे दौलत सिंह कोठारी उदयपुर तथा इन्दौर में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् सन् 1924 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय आ गए, जहाँ से उन्होंने बी० एस-सी० और एम० एस-सी० की उपाधियाँ अर्जित कीं। उनकी प्रखर बुद्धि से प्रभावित होकर एम० एस-सी परीक्षा के कुछ मास पहले ही विश्व- विद्यालय के भौतिक विभाग के विभागाध्यक्ष ने उनके विभाग में नियुक्ति का आश्वासन दिया, क्योंकि वे इलाहाबाद में उस समय की प्रचलित चलन के अनुसार इण्डियन सिविल सर्विस आदि में जाने के बिल्कुल इच्छुक नहीं थे।

कुछ ही समय बाद कोठारी जी कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के जगत् प्रसिद्ध प्रोफेसर रदरफोर्ड के पास अनुसन्धान के लिए चले गए जहाँ उन्होंने 'हाब आयनीकरण' पर 1933 में डाक्टरेट प्राप्त की जो उनके गुरु साहा के 'ताप-आयनीकरण' सिद्धान्त से पूरित होकर खगोल विज्ञान (ऐस्ट्रोनॉमी) की उच्च खोज मानी जाती है।

भारतवर्ष लौटने पर उन्हें दिल्ली विश्वविद्यालय के नए भौतिकशास्त्र विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया, जो उनके निर्देशन में देश के सर्वप्रमुख अनुसन्धान और शिक्षा विभागों में गिना जाने लगा। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष (1961-73) तथा शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर 'कोठारी कमीशन की रिपोर्ट (1964-66)' के अध्येता के रूप में शिक्षा के क्षेत्र में तो कोठारी जी का अति-उत्कृष्ट योगदान सर्वविदित है, तथापि देश की रक्षा-सम्बन्धी कार्य प्रणाली में उन्होंने जो अद्वितीय योगदान दिया, उसकी जानकारी इतनी सर्व-विदित नहीं है। स्वतन्त्रता के कुछ ही समय बाद सन् 1948 में उनसे अनुरोध किया गया कि वे 'रक्षा-अनुसन्धान प्रगति संस्थान' (डी० आर० डी० ओ०) की अध्यक्षता स्वीकार करके 'रक्षा-मंत्री' के सलाहकार का महत्वपूर्ण पद स्वीकार कर लें और उन्हें आकर्षित करने के लिए 2500/- प्रतिमास का वेतन निर्धारित किया गया। यह कोठारी जी के त्याग तथा उनके शिक्षक-जीवन से अति-निकट लगाव का द्योतक है कि उन्होंने विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के अधिकतम वेतन 1250/- प्रति मास से अधिक वेतन स्वीकार करने से इंकार कर दिया। इस नए संस्थान की स्थापना में उन्होंने ऐसी अद्भुत दक्षता का परिचय दिया और इतने स्वस्थ वातावरण का शुभारम्भ किया कि आज यह संगठन हमारी सुरक्षा का प्रबल अंग बन गया है। उनकी इस दिशा में सफलता से सभी इतने प्रभावित थे सन 1952 में उनके विश्वविद्यालय लौट आने के पश्चात् भी उनसे यह अनुरोध किया गया कि एक रुपए प्रतिमास के सांकेतिक मानदेय पर वह केन्द्रीय रक्षा मंत्री के सलाहकार बने रहें। यह उत्तरदायित्व भी उन्होंने 1961 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अध्यक्षता स्वीकार करने तक निभाया। हम सब को जोधपुर की रक्षा प्रयोगशाला का अनुग्रहीत होना चाहिए क्योंकि 1993 में प्रोफेसर कोठारी के स्वर्गवास के बाद ही से इस 'कोठारी-स्मारक भाषणमाला' का इतना सफल आयोजन शुरू किया।
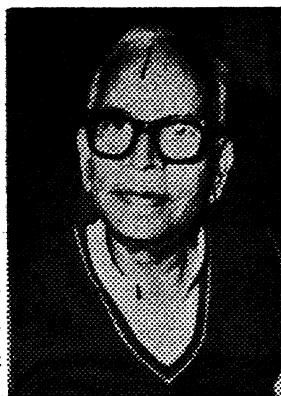
कोठारी स्मृति भाषण के लिए उपर्युक्त शीर्षक के लिए 'मस्तिष्क-मानस सम्बन्ध' को चुना है क्योंकि अपने जीवन के अन्तिम 15-20 वर्षों में डाक्टर कोठारी जी ने इसी दिशा में विशेष योगदान दिया। सच तो यह है कि इस गम्भीर विषय पर मनन करने वाले वे ही एकमात्र भारतीय प्रमुख वैज्ञानिक हैं। यह विषय आज के 'मस्तिष्क के दशक' में और भी

(शेष पृष्ठ 19 पर देखें)

विज्ञान लेखन के दो महत्वपूर्ण पहलू

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

मैंने कई लेखों में यह विचार व्यक्त किया है कि हिन्दी की सृजन स्थली बंगभूमि रही है। इतना ही नहीं, प्रारम्भ में हिन्दी ने अपनी भगिनी भाषाओं बंगला, मराठी तथा गुजराती की कृतियों का अनुवाद करके अपने को समृद्ध भी बनाया है। अतः हमें हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य की बात करते हुए मराठी, बंगला और गुजराती को ओझल नहीं रखना है।

दक्षिण भारतीय भाषाओं में तमिल सदैव से अत्यन्त समृद्ध भाषा रही है। उसके बाद तेलुगु तथा मलयालम आती हैं। इसे सूची से स्पष्ट कर दिया गया है कि दक्षिण भारत में भी विज्ञान लेखन की अजस्र धारा विद्यमान रही है।

हम यह भी कहना चाहते हैं कि हिन्दी ने राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त करने के अनुरूप ही प्रारम्भिक 10-12 वर्षों में इतनी प्रगति दर्शाई है कि उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता।

उपर्युक्त सूची में से मुझे हिन्दी की विज्ञान पुस्तकों में से केवल 370 पुस्तकें मिली हैं जो वास्तव में लोकप्रिय कहीं जा सकती हैं (मैंने पाठ्य पुस्तकों को छोड़ दिया है)। इनमें से भी 85 पुस्तकें ऐसी हैं जो नेशनल लाइब्रेरी में प्राप्य हैं। कहने का तात्पर्य यह कि इस अद्भुत प्रदर्शनी में हिन्दी प्रकाशकों से प्राप्त पुस्तकों में से केवल 285 (लगभग 300) पुस्तकें ही उल्लेखनीय हैं।

इसके पूर्व डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने ''हिन्दी पुस्तक साहित्य' में विज्ञान पुस्तकों की जो सूची दी है उसमें 1942 के पूर्व विज्ञान की 269 लोकप्रिय पुस्तकें थीं।

इस तरह 1960 के पूर्व उपर्युक्त दोनों सूचियों से कुल 554 पुस्तकें मिलती हैं। यह संख्या निश्चित रूप से इसकी कसौटी हो सकती है यदि देश के प्रमुख पुस्तकालयों तथा ग्रन्थागारों से विज्ञान पुस्तकों को ढूंढ निकाला जाय।

1. 1960 की अद्भुत विज्ञान पुस्तक प्रदर्शनी : लगभग 40 वर्ष पूर्व सी० एस० आई० आर० ने यह निश्चय किया कि फरवरी 1960 में भारतीय भाषाओं में प्रकाशित पुस्तकों की एक प्रदर्शनी लगाई जाय। इसके लिए 30 सितम्बर 1959 तक पुस्तकें प्राप्त की जानी थीं। फलतः विभिन्न प्रकाशकों (सरकारी तथा गैर सरकारी) के एवं व्यक्तियों के नाम 4383 पत्र भेजे गये और 41 दैनिक पत्रों में विज्ञापन दिए गये। इस तरह के आवेदन के फलस्वरूप 4148 पुस्तकें प्राप्त हुई (इनमें अंग्रेजी पुस्तकें भी थीं)। इनमें से भारतीय भाषाओं की कुल 2908 पुस्तकें छाँटी गईं जिनमें हिन्दी की 814, मराठी की 358, बँगला की 348, तमिल की 268, गुजराती की 190, तेलगु की 142 और मलयालम की 130 पुस्तकें थीं। और तो और उर्दू की भी 179 पुस्तकें थीं। (स्मरण रहे कि प्राप्त पुस्तकों के अतिरिक्त नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता की भी कुछ पुस्तकें (1690 पुस्तकें) इस सूची में सम्मिलित कर दी गई जिससे 1960 तक की पुस्तकों की आदर्श सूची बन सके। यह सूची पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुई थी।

इस सूची में चिकित्सा जगत से सम्बद्ध 818 (इनमें आयुर्वेद तथा होमियोपैथी की 25% पुस्तकें थीं) और कृषि की 408 पुस्तकें थीं। शुद्ध विज्ञान के अन्तर्गत भौतिकी की 189 तथा खगोल विज्ञान विषयक 148 पुस्तकें थीं।

मैंने इस सूची में से उपयोगी विषयों की पुस्तकें छाँटकर उनकी संख्या सारणी 1 में दे दी है। इसमें हिन्दी की सर्वाधिक पुस्तकें प्रकाशित होने का गौरव प्राप्त है किन्तु मैंने जिस उद्देश्य से यह सारणी दी है वह यह दिखाना है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के 10-12 वर्षों में न केवल हिन्दी में अपितु देश की अन्य भाषाओं में भी वैज्ञानिक साहित्य के सृजन तथा हिन्दी के बाद बंगला, मराठी, गुजराती, तेलगु तथा मलयालम में प्रकाशित पुस्तकें क्रम से आती हैं।

1960 में भारतीय भाषाओं में उपलब्ध विज्ञान की पुस्तकें

	हिन्दी	बंगला	मराठी	गुजराती	तमिल	तेलगु	मलयालम
1. सामान्य विज्ञान	31	31	15	11	20	16	15
2. गणित	9	10	4	1	1	2	3
3. ज्योति र्विज्ञान	27	19	16	7	7	8	8
4. भौतिकी	62	30	19	12	12	12	7
5. रसायन	34	17	5	13	5	–	2
6. भूगर्भ	17	2	2	3	3	3	2
7. नृतत्व तथा जीव विज्ञान	30	3	9	1	10	11	6
8. वनस्पति विज्ञान	13	24	6	5	2	1	1
9. प्राणि विज्ञान	44	18	2	14	5	2	4
10. तकनीकी	16	3	8	–	–	–	3
11. चिकित्सा विज्ञान	30	98	76	54	83	47	32
12. इंजीनियरी	72	18	21	13	18	5	5
13. कृषि	144	42	30	19	28	13	10
14. रासायनिक तकनीकी	52	12	4	2	9	–	1
15. निर्माण/ उत्पादन आदि	15	2	12	6	5	–	3
योग	696	329	229	161	208	120	102

किन्तु इतने बड़े देश के लिए 1960 के पूर्व मात्र 554 पुस्तकें होना क्या चिन्तनीय नहीं है ? पर विज्ञान जैसे नीरस विषय पर लेखनी चलाना और पारिभाषिक शब्दों के अभाव को देखते हुए हमें इतने से सन्तोष करना होगा। यहाँ पर यह द्रष्टव्य है कि 1942 के पूर्व (1867 से लेकर) जितना उत्साह था उससे बढ़कर उत्साह स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 10-12 वर्षों में दिखता है। एक तरह से विशुद्ध विज्ञान में (कृषि तथा चिकित्सा को छोड़कर) काफी लेखन हुआ है। इस समय अनुष्ठान में कतिपय प्रकाशकों ने (अधिकांशतः दिल्ली, बनारस, लखनऊ, इलाहाबाद के) महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसके लिए उन्हें साधुवाद देना होगा। किन्तु सबसे अधिक वंदनीय हैं हमारे वे लेखक जिन्होंने अर्थाभाव में भी अपनी लेखनी बन्द नहीं की। दुर्भाग्य यह रहा है कि स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों का नाम तो सबों की जबान पर मिलेगा किन्तु इन वरेण्य विज्ञान लेखकों का कोई नामलेवा भी नहीं है। कारण स्पष्ट है। अभी तक हिन्दी में (या अन्य भारतीय भाषाओं में) विज्ञान लेखन का इतिहास ही नहीं लिखा गया तो फिर हमारी नवीन पीढ़ी इनके कार्यकलापों से अवगत कैसे हो सकेगी ?

2. 1960 के पूर्व अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान पत्रिकाएँ : हिन्दी सही अर्थों में हमारी राष्ट्र भाषा है क्योंकि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद विज्ञान के क्षेत्र में उसका व्यवहार निरन्तर बढ़ता गया है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में जहाँ विज्ञान-पत्रिकाओं की संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती थी, वहीं स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद उनमें आशातीत वृद्धि हुई। उदाहरणार्थ, 1900 के पूर्व केवल 6 प्रत्रिकाएं थीं। 1925 में इनकी संख्या 42 हो गई और1980 में बढ़कर 142 हो गई। किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि देश में अन्य प्रादेशिक भाषाएँ भी हैं जिनका समानान्तर प्रयोग एवं विकास दीर्घकाल से होता रहा है। विशेषकर हिन्दी की भगिनी भाषाओं-बंगला एवं मराठी के नाम गिनाये जा सकते हैं। दक्षिण भारत में तमिल, मलयालम और कन्नड़ का इतिहास भी अति प्राचीन है। उनमें न केवल शुद्ध साहित्य का प्रचुर भण्डार उपलब्ध है अपितु विज्ञान के क्षेत्र में भी सतत जागरूकता बनी रही है जिसका प्रमाण यह है कि स्वतन्त्रता के पूर्व उनमें विज्ञान पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रहीं थीं यद्यपि इन विज्ञान पत्रिकाओं की संख्या अधिक नहीं थी। वस्तुतः हिन्दी की चर्चा करते हुए हमें सम-सामयिक परिवेश को ध्यान में रखना होगा। इसलिए भारतीय भाषाओं में विज्ञान पत्रिकाओं का भी आकलन समय-समय पर प्रस्तुत किया जाना चाहिए। बँगला और मराठी निस्सन्देह समृद्ध भाषाएँ रही हैं जिसका प्रमाण है बँगला में 1928 से और मराठी में 1919 से विज्ञान विषयक पत्रिकाओं का प्रकाशन। कन्नड़ में 'विज्ञान' नाम से एक पत्रिका 1918 से ही निकलती रही है। ज्ञात हो कि उत्तर भारत की विशुद्ध विज्ञान की हिन्दी पत्रिका "विज्ञान" है जिसका प्रकाशन 1915 में शुरू हुआ था। मलयालम में उससे भी पूर्व 1908 में 'केरल कोकिल' पत्रिका छप रही थी क्योंकि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसका उल्लेख किया है। तमिल में सुप्रसिद्ध मासिक 'कलाइकातिर' 1949 से प्रकाशित होती रही है। सम्प्रति दक्षिण भारत में विज्ञान पत्रिकाओं की स्थिति में सुधार अवश्य हुआ होगा किन्तु हम हिन्दी वाले उनसे परिचित होने का प्रयास नहीं करते हैं। आवश्यक है कि देश के भीतर विज्ञान लेखन के माध्यम से जो जागृति एवं वैज्ञानिक वातावरण बन सकता है उससे अपने को अवगत रखा जाय।

1960 के पूर्व हमारे देश में आयुर्वेद, चिकित्सा एवं कृषि के साथ उद्योग की ओर ही सभी भाषाओं के विज्ञान लेखकों का ध्यान था। शुद्ध विज्ञान के क्षेत्र में गिने-चुने लेखक ही आगे आ रहे थे। किन्तु सम्प्रति स्थिति बिल्कुल बदल चुकी है और नूतन से नूतन खोज या वैज्ञानिक उपलब्धि का प्रकाशन प्रायः सभी भाषाओं में एक साथ होने लगा है। देश में निश्चित रूप से जागृति आई है। इसमें विज्ञान पत्रिकाओं और समाचार पत्रों की विशेष भूमिका है।

यदि विज्ञान के पाठकों को इस जानकारी से कुछ भी प्रेरणा मिली तो लेखक का श्रम सार्थक होगा।

1960 के पूर्व भारतीय भाषाओं की विज्ञान पत्रिकाएँ

बंगला	मराठी	उर्दू	मलयालम	कन्नड़	तमिल
चिकित्सा जगत 1928	उद्यम 1919	हमदर्द-इ सेहत 1930	केरल-कोकिल 1908	विज्ञान 1918	कलाइ-कातिर 1949
ज्ञान ओ विज्ञान 1948	शेतकारी 1948	रहबर-इ-टिब 1955	वैद्यम 1939		
विज्ञान भारती 1958	सहकारी जगत 1948				
अन्वेष 1959	रायत 1949	सितारह 1957			
होमियो दीपम् 1959	बहार 1957				
	शिल्प संसार 1955				

★ उद्यम पत्रिका का हिन्दी संस्करण भी बाद में निकला। 'शिल्प संसार' हिन्दी में भी प्रकाशित होता है।

जन्म-कुण्डली

हरीश गोयल

मेघा नहीं समझ पाई कि सौरभ को क्या हो गया ? क्यों वह उससे आजकल दूर-दूर सा रहता है ? उसके प्यार में कैसे कमी आ गई ? क्या विवाह के बाद व्यक्ति पूरी तरह से बदल जाता है ? क्या उसका प्यार केवल विवाह तक ही सीमित रहता है ? हां, उसे याद आया विवाह से पहले वह उससे कितना प्यार किया करता था। उसे याद आये कॉलेज के वो दिन जब उसे सौरभ से प्यार हो गया था। सौरभ एक कुशाग्र बुद्धि का व्यक्ति तथा पढ़ाई के प्रति गंम्भीर था। उसके अतिरिक्त उसकी जीवन के प्रति कुछ आस्थाएं, मान्यताएं अथवा सिद्धान्त थे जो सामान्य छात्रों से भिन्न थे। उनके विचार भी मेघा से मिलते थे। अतः वे एक दूसरे के करीब आ गये। उन्हें कई बार एक दूसरे के करीब आने के मौके भी मिले। उनकी कक्षा के छात्र-छात्राओं ने पिकनिक का प्रोग्राम बनाया। खुली वादियों में भ्रमण करते हुए कब उन्हें एक दूसरे से प्यार हो गया, इसका उन्हें पता ही नहीं चला।

फिर प्यार एक ऐसी चीज है जो किसी के करने से नहीं होता, बल्कि अपने आप हो जाता है। उसके लिये कोई कारण नहीं होता। मौके अपने आप मिल जाते हैं।

फिर तो उन्हें वो मौका भी मिला जब उन्होंने एक दूसरे से प्यार का इजहार किया।

उसके बाद तो उन दोनों ने लम्बे सैर-सपाटे करने प्रारम्भ कर दिये।

मेघा को याद आया कि किस तरह उन्होंने मनाली में सैर-सपाटे का लुत्फ़ लिया था। किस तरह से वे मनाली की वादियों के नैसर्गिक सौन्दर्य में खो गये थे। यहां बर्फ से ढके पहाड़ों की चोटियां आसमान से बात करती प्रतीत हो रही थीं। वे इसके सौन्दर्य को अपनी आंखों में समेटे थकते नहीं थे।

उसे याद है कि किस तरह सौरभ उसकी आंखों की प्रशंसा करते थकता नहीं था। हां, वह भूली नहीं है उस बात को जब उसने कहा था कि उसकी झील से गहरी नीली आंखों में वह इतना डूब जाना चाहता है कि फिर उससे बाहर निकलना नहीं चाहता। जब वह उसकी आंखों की तुलना विश्व सुन्दरी ऐश्वर्या की आंखों से करता तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता।

वे मनु मंदिर गये। वहां उन्होंने एक दूसरे से विवाह करने का फैसला किया। वहां से कुछ नीचे आने पर ऊँचे पेड़ों के बीच हिडिम्बा देवी के सामने उन्होंने जन्म-जन्मान्तर तक एक दूसरे का साथ निभाने की कसमें खाई। एक पेड़ पर उन्होंने दिल का निशान भी बना दिया। किस तरह से उन्होंने नदी के किनारे वहां खूबसूरत शाम बिताई थी। कल-कल बहती नदी की जब लहरें मिलती उन्हें लगता जैसे दो दिलों की धड़कने आपस में मिल रही हों।

यादों के आइने पर बिम्ब निरन्तर उभर रहे थे। घटनाएं मेघा की आंखों के आगे इस तरह तैर रही थीं जैसे कल की ही बात हो।

वो प्यार के तराने, वो प्यार की बातें वह कैसे भूल सकती थी। वो साथ-साथ बिताये दिन हर पल उन्हें रोमांचित करता था।

उसकी आंखों के आगे फिर चित्रित हो आया वह दृश्य जब उन्होंने सोलांग घाटी में पैराग्लाडिंग की थी। ओह ! कितना रोमांचकारी दृश्य था।

आज भी वह वहां जा सकती है लेकिन बिना सौरभ के वह मज़ा कहां, सच है बीती घटनाएं अपना दोहरान नहीं करती।

कैसे उन्होंने व्यास नदी में साथ-साथ राफ्टिंग की थी। कितना हंसाया था उसने। हंसते-हंसते हम लोटपोट हो गये थे।

उसे याद आया मनाली की सुरम्य वादियों के बीच वे कैसे एक दूसरे में खो गये थे।

कितना प्यार करता था वह उसे। अपना समस्त प्यार उड़ेल दिया था उसने।

घटनाओं का सिलसिला टूटा नहीं, आंखों से अश्रु बहने बंद हो गये थे.. लेकिन घटनाओं का सिलसिला जारी रहा ......

आखिर दोनों परिवारों को उनके दृढ़ इरादे के आगे झुकना पड़ा और वे दोनों परिणय-सूत्र में बंध गये।

प्रारम्भ में तो सब कुछ ठीक-ठाक चलता रहा लेकिन दो-तीन वर्ष बाद ही सौरभ काफी चिड़चिड़ा हो गया। बात-बात में वह उसे फटकारने लगा। कभी उसके मुंह से प्यार के दो शब्द भी नहीं निकलते।

क्या हो गया उन दोनों के प्यार को, बात-बात में झिड़कता है, जली-कटी सुनाता है। प्रेम का यह कोना कैसे सूख गया। अब वे मीठे बोल कहां लुप्त हो गये। क्या प्रेम विवाह की यही परिणति होती है।

सास-ससुर भी उसके प्रति उपेक्षा का भाव रखते थे, दहेज उनकी अपेक्षा के अनुकूल नहीं मिला था।

बात-बात में सास उसे जली-कटी सुनाती। तीन-चार साल हो गये। अभी तक उसे बच्चा नहीं हुआ था। इस बात ने आग में घी का काम किया। शायद सौरभ भी इसी कारण उससे नफरत करने लगा। वह भी बच्चे की बड़ी अपेक्षा कर रहा था। वह तो हर बात अपनी माँ की मानता था। उसने उसे दबाना प्रारम्भ कर दिया।

एक सौरभ ही तो था जिससे वह अपने मन की बात कह सकती थी लेकिन अब सौरभ ही उसकी बात नहीं सुने तो वह और किसे कहे, यहीं से उसमें दुख घुल गया।

अब वह परिवार में स्वयं को एकांकी तथा उपेक्षित महसूस करती थी। उसकी भावनाओं से किसी को कोई लेना देना नहीं था। प्यार की वो बातें अब हवा हो गयी थीं।

बच्चा होना क्या उसके हाथ में है ? फिर उसे क्यों कोसा जाता है ? उसकी क्या गलती है ?

लेकिन समाज इसे नहीं समझता। वह तो इसके लिये औरत को ही दोषी मानता है।

उसने बहुत से डॉक्टरों से इलाज करवाये पर कोई फायदा नहीं हुआ।

आखिर टेस्ट ट्यूब बेबी उत्पन्न करने की सोची। लेकिन वह भी उसके भाग्य में नहीं था।

उसे याद आया किस तरह सास छोटी बहू को चाहने लगी थी। हर त्योहार पर वह उसकी उपेक्षा करती थी। उसके देवरानी के बच्चा हुआ। उसकी सास ने बड़ी धूमधाम से जलवा-पूजायी की थी। इस मौके पर भी उसकी घोर उपेक्षा की थी।

वह देवरानी के बच्चे को चाहने लगी थी, लेकिन एक दिन देवरानी ने उस बच्चे को भी गोद में देने से इन्कार दिया। उसके दुखों का कोई अन्त नहीं था। कई रातें उसने रो-रोकर गुजारी थीं।

उस रोज तो अनभ्र व्रजपात हो गया जब उसे पता चला कि उसके बच्चा नहीं हो सकता। वह निस्संतान है। निस्संतान का अभी तक भी इलाज सम्भव नहीं था। उसका रो-रोकर हाल खराब हो गया था। अब तो अश्रु भी सूख चुके थे।

किसी से उसे सहानुभूति की आशा नहीं थी। वह मन ही मन वैज्ञानिकों को कोसती। क्यों नहीं विज्ञान ने इतनी तरक्की की है ? अभी तक उन्होंने निःसंतान का इलाज क्यों नहीं खोजा ?

मेघा की सास उसकी जन्म-कुण्डली एक प्रकांड ज्योतिषी के पास ले गई। कुण्डली में सूर्य पंचम स्थान पर था। ज्योतिषी ने बताया कि यदि सूर्य पंचम एवं नवम स्थान में हो तो वह किसी भी तरह से गर्भ की सुरक्षा नहीं करता।

सूर्य पंचम एवं नवम स्थान में यदि है तो इसके प्रभाव से या तो गर्भपात होता है या यदि गर्भपात नहीं होता एवं पुत्र की उत्पत्ति होती है तो वह पुत्र को ज्यादा आयु नहीं देता।

किसी भी जन्म-कुण्डली की आत्मा सूर्य-ग्रह होती है। अतः पुत्र प्राप्ति में भी उसके अल्पायु होने या किसी जातक विशेष के निःसंतान, विशेष कर पुत्रविहीन रहने में इस ग्रह की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

चूंकि मेघा की कुण्डली में सूर्य पंचम स्थान पर था अतः उसके संतान होने की कोई सम्भावना नहीं थी।

इस बात पर मेघा को तनिक हंसी भी आई कि जब तक डॉक्टर ने यह घोषित नहीं कर दिया कि वह निःसंतान है, तब तक ज्योतिषियों ने भी यह स्पष्ट घोषणा नहीं की कि वह निःसंतान है और आज सभी ज्योतिषी यही कहते हैं कि उसकी जन्म-कुण्डली में संतान का योग है ही नहीं।

समाज में बांझ होना कितना खौफनाक होता है! निःसंतान औरत को समाज में एक तिरस्कृत औरत की तरह समझा जाता है।

सास को जब इस बात का पता चला तो उसे काटो तो खून नहीं। उसने मेघा को दुःख देने चालू किये। सौरभ जो कि मां-बाप की इच्छा के विरुद्ध उसे ब्याहकर लाया था, आज उसे हिकारत की निगाहों से देखता है।

मेघा के दुःखों का कोई अन्त नहीं था।

उसकी सास उसे कई तांत्रिकों, ओझाओं, साधुओं, फकीरों के पास ले गई। उसने कई जतन करवाये। लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ा। फर्क पड़ता भी कैसे, आखिर उसकी जन्म कुण्डली में कोई योग था ही नहीं।

अब वह दुखी थी कि कोई भी उससे बोलता तक नहीं था। सौरभ ने भी उससे बोलना छोड़ दिया था।

मेघा पुरानी यादों के सहारे अपनी जिंदगी को काटती रही। उसे प्यार में बिताये वे क्षण बार-बार याद आते। अब उसे अपना अतीत ही अच्छा लगता। वर्तमान तो कटुता भरा था। वर्तमान में जीवन में कोई रस नहीं रहा। भविष्य में भी इसकी कोई आशा नहीं थी।

अब उसकी सास ने यह सोचना प्रारम्भ कर दिया था कि किस तरह मेघा से छुटकारा पाया जाय।

अब मेघा अपने कमरे में बैठी रहती। ज्यादातर वह बीमार रहने लगी थी। सास उससे काम लेने के अतिरिक्त और कोई वास्ता नहीं रखती थी।

सारे दिन वह काम करके दो रोटी खाकर अपना जीवन काटने लगी। वह जाये भी तो कहां जाये।

उसके मम्मी पापा दो अब दुनिया में रहे नहीं थे। एक भाई था तो वह उससे कोई नाता नहीं रखता था। उसने इस विवाह का अत्यधिक विरोध किया था और अब वह कहां चला गया कोई नहीं जानता था।

वह नौकरी करके अलग रह सकती थी लेकिन उसकी सास ने उसे कभी नौकरी नहीं करने दी। सौरभ भी नौकरी के पक्ष में नहीं था।

और अब तो नौकरी भी मिलना सम्भव नहीं था। आखिर एम. ए. ही तो किया था। एक शिक्षिका बनने के लिये भी बी. एड. आवश्यक था।

वह इतनी होनहार भी नहीं थी कि मैरिट में उसका नम्बर आ सके। उसके पति ने कभी उसे कोई और कोर्स करने नहीं दिया।

आजकल केवल पोस्ट ग्रेजुएट के लिये स्कोप कहां है। इसे अच्छा तो वह कोई डिप्लोमा कोर्स कर लेती।

वह तो एक साधारण सी घरेलू स्त्री थी। वह कभी सास-ससुर का विरोध नहीं कर पाई। सौरभ तो कभी उसका साथ देता ही नहीं था।

उसके पास भी चारा नहीं था सिवाय इसके कि वह पूर्णतया अपने पति पर निर्भर रहे।

आज के युग में इस तरह जीना कितना कठिन है।

आज उसके सन्तान होती तो इसे इस तरह के कष्ट नहीं झेलने पड़ते। सास के दृष्टिकोण में बदलाव आ जाता।

लेकिन नियति पर किसका वश चलता है। वह अपने भाग्य को तो नहीं बदल सकती।

उसके जीवन में घोर निराशा के बादल छा गये थे। उसे चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा नजर आया। उसे इस घने अंधकार में कहीं हल्की सी भी रोशनी की किरण नजर नहीं आती।

यों जीवन का समय-चक्र गुजरने लगा। वह केवल सपनों में ही बच्चे की कल्पना का सन्तोष कर लेती। लेकिन सपना तो सपना ही होता है। कितना समय सपने के सहारे काटा जा सकता है। एक ऐसा सपना जिसका कोई अस्तित्व नहीं।

लेकिन एक दिन चमत्कार हो गया। विज्ञान का यह अजूबा ही था। उसने सुना कि डॉ० रिचर्ड सीड ने मानव-क्लोन के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता हासिल की है और अब उन्होंने पूरी एक टीम तैयार की है जो निःसंतान औरतों के लिए आशा की एक किरण होंगे।

इस प्रक्रिया में किसी डिम्ब की जरूरत नहीं होगी।

अब सवाल यह था कि लड़का उत्पन्न किया जाये या लड़की। तब उसके सास-ससुर तथा सौरभ ने लड़का ही उत्पन्न कराना चाहा। उन्हें आशा की एक हल्की किरण नजर आई।

डॉ० सीड की टीम के एक होनहार डॉक्टर थे डॉ० नेन्सी फ्रीडमैन। और वे भारत आये तथा दिल्ली के अपोलो अस्पताल में निःसंतान औरतों का इलाज करने लगे। खासतौर पर उन औरतों का जिनके टेस्ट ट्यूब से भी बच्चे नहीं होते थे।

डॉ० फ्रीडमैन इन औरतों के लिये वरदान साबित हो रहे थे।

लेकिन ये सब बच्चे क्लोन थे। डॉ० फ्रीडमैन क्लोन की इच्छा रखने वाले वयस्क की एक कोशिका लेते थे। इसके अतिरिक्त वह विशेष रूप से परिष्कृत दाता-महिला के अण्डाणु से जीन निकाल देते थे। इसके पश्चात् वह वयस्क कोशिका के जीन को परिष्कृत दाता-महिला के खाली अण्डाणु से संयुक्त कराते थे। यह क्रिया विद्युत के झटकों के साथ होती थी। यह संयुक्त कोशिका प्रयोगशाला में भ्रूण के रूप में विकसित होती थी। इसके बाद उसे प्रतिनियुक्त-माता के गर्भ में स्थापित कर दिया जाता था।

डॉ० फ्रीडमैन से क्लोन-शिशु उत्पन्न करने के लिये तारीख लेनी पड़ती थी। सौरभ तथा मेघा दोनों ही नियत तारीख पर डॉ० फ्रीडमैन के पास पहुंचे। डॉ० फ्रीडमैन ने सौरभ की एक कोशिका निकाली तथा अनेक परीक्षण किये। तब एक जटिल प्रक्रिया चालू हूई। कुछ क्लोनिंग तकनीक के जरिये उन्होंने सौरभ का क्लोन उत्पन्न किया। मेघा की इसमें कहीं आवश्यकता ही नहीं थी।

सौरभ को वह क्लोन-शिशु सौंप दिया गया। मेघा के सास-ससुर की खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। अब मेघा के प्रति उनका दृष्टिकोण भी बदल गया होगा। मेघा के प्रति जितने गिले-शिकवे थे, अब दूर हो चुके होंगे।

लेकिन मेघा का यह सोचना गलत था। सास-ससुर उसके प्रति और निष्ठुर हो गये थे। सच है भड़काने वाले रिश्तदारों की भी कमी नहीं और फिर सास के पीहर वालों तथा पड़ोसियों ने उसे इतना भड़काया कि वह उसे त्यागने के लिये तैयार हो गई।

कारण स्पष्ट था। क्लोन उसके गर्भ से नहीं जना था। उसकी तो कोई भूमिका ही नहीं थी। क्लोन-शिशु तो आखिर सौरभ की कोशिका से उत्पन्न हुआ था। शीघ्र ही सास-ससुर को यह महसूस हो गया कि अब घर में उसकी कोई आवश्यकता नहीं रही।

क्लोनिंग का यह रूप सामने आयेगा यह तो उसने सोचा ही नहीं था।

सौरभ तो उसे प्यार करता था। माना कि उसका प्यार तो कभी का समाप्त हो चुका था लेकिन क्या बच्चा होने के बाद उसका प्यार पुनः नहीं उमड़ा था। क्या मात्र वह एक छलावा था। वह प्यार क्या वास्तव में ऊपरी प्यार था।

हां, वह प्यार एक मात्र छलावा था। सौरभ ने सास-ससुर के साथ मिलकर उसे घर से बाहर निकाल दिया था। उसे इस बात का घमंड था कि वह बिना स्त्री के भी शिशु उत्पन्न कर सकता है। उसे मेघा की अब कोई जरूरत नहीं रही थी। अब वह एक परित्यक्त स्त्री की तरह जीवन यापन कर रही थी। नितान्त अकेली ...... घर-परिवार ..... पति .... सास-ससुर ..... से दूर ... बहुत दूर .... अश्रुओं के अतिरिक्त अब उसके पास क्या रह गया था। वह इतनी धनी भी नहीं थी कि क्लोनिंग के जरिये वह स्वयं भी बच्ची को प्राप्त कर सके। सचमुच चिकित्सा भी एक व्यापार है।

दुनिया की बेहतरीन चिकित्सा भी केवल धनिकों के लिये उपलब्ध है। ओपन हार्ट सर्जरी क्या कोई निर्धन करवा सकता है ? ऐसा ही क्लोनिंग के साथ भी है।

समय-चक्र घूमता रहा। क्लोनिंग के दुष्परिणाम सामने आने लगे। स्थिति समाज में बहुत भयावह हो गई थी। सभी निःसंतान वयस्क केवल नर-क्लोन शिशु ही चाहने लगे। खास-तौर से सास-ससुर और पति-पुरुष।

नतीजा यह हुआ कि नर-क्लोनों की बाढ़ सी आ गई।

पुरुष प्रधान समाज में स्त्री-क्लोन कोई उत्पन्न नहीं करना चाहता था। इससे स्त्रियों की उपेक्षा होने लगी। शारीरिक सम्बन्धों का ह्रास हो गया था। यौन सम्बन्ध अब महत्वहीन हो चुके थे।

इसका परिणाम यह हुआ कि वैवाहिक स्त्री-पुरुषों के बीच जो प्रेम की रसधारा बहती थी, वह क्षीण हो गई और तो और, वैवाहिक जीवन भी कोई अर्थ नहीं रखता था क्योंकि अब यौन-सम्बन्ध आवश्यक नहीं रह गये थे।

अब व्यक्ति बिना किसी यौन-सम्बन्धों के क्लोन उत्पन्न कर सकता है तो उसे विवाह की क्या आवश्यकता रह गई। न ही समाज में बदनामी का डर था क्योंकि स्त्री में गर्भपात कराने जैसी भी कोई समस्या नहीं रह गई थी।

धीरे-धीरे परित्यक्त स्त्रियों की संख्या बढ़ी। चारों तरफ पुरुष ही पुरुष नजर आते थे। समाज में स्त्रियों की संख्या घट गयी। वैवाहिक जीवन की आवश्यकता नहीं रहने से स्त्रियों की भी अब आवश्यकता नहीं रह गई थी। अतः किसी ने उसकी परवाह भी नहीं की।

यह क्रम न जाने कितने समय तक जारी रहा। और आगे भी जारी रहेगा। यह आने वाले भयावह समय की कल्पना कर ही सिहर उठती थी।

फ्रीडमैन चले गये तो उसका स्थान किसी दूसरे चिकित्सक ने ले लिया। समाज में यौन ह्रास का क्रम जारी रहा। आज मेघा के बाल सफेद हो गये हैं लेकिन कृत्रिम तरीके से बाल श्वेत नहीं होते और अब तो बुढ़ापे में झुर्रियां भी नहीं पड़ती क्योंकि इसका भी इलाज हो गया था। और तो और, अब कलोनिंग से व्यक्तियों की उम्र में भी इजाफा हो गया था। शरीर के किसी अंग के क्षतिग्रस्त होने पर उसे बदला जा सकता था। क्लोनिंग से उत्पन्न भ्रूण से विकसित अंगों से यह सम्भव था।

मेघा ने भी अपने फेफड़ों का प्रत्यारोपण करवाया था और उसने दीर्घजीवन प्राप्त किया था। लेकिन मन में एक टीस थी। उसकी जन्म-कुण्डली बदल गई थी लेकिन मानव स्वभाव का क्या किया जाये, वह तो नहीं बदलता। उसके सास-ससुर ने तो अपना स्वभाव नहीं बदला। अतः उसकी जन्म-कुण्डली वैज्ञानिक तौर पर बदल कर भी नहीं बदली। सौरभ ने भी क्लोनिंग द्वारा बदली जन्म-कुण्डली से मुख मोड़ लिया। कुंठाओं से ग्रस्त होकर कठोरता धारण कर ली। आज भी उसे सौरभ की याद सताती है, चाहे सौरभ उसे भूल चुका हो।

उसके प्रति प्यार आज भी हृदय में जिन्दा है। हां, वह आजन्म उसे याद करती रहेगी .... समय उसके प्रति प्यार को कभी नहीं धो सकता है। उसे फिर याद हो आये वो बीते हुए पल .... प्यार में संग-संग बिताये पल ... ।

59, शास्त्री नगर, अजमेर

(पृष्ठ 11 का शेषांश)

महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि "जैवाणु क्रान्ति" से जनित "मानव क्लोनिंग" और कम्प्यूटरों की "कृत्रिम बुद्धि" ऐसी सम्भावनाओं और चुनौतियों ने समाज के लिए अत्यन्त गम्भीर समस्याओं को सामने ला कर खड़ा कर दिया है।

डा० कोठारी जी को राजस्थान विश्वविद्यालय से तो स्वाभाविक ही विशेष लगाव था। इसका आभास व्यक्तिगत रूप से सन् 1968-69 में मिला जब मैं विश्वविद्यालय के कुलपति के नाते उन्हें फरवरी 1969 के दीक्षांत-भाषण के लिए आमंत्रित करने गया। जिस स्नेह तथा सहृदयता से उन्होंने मेरा निमंत्रण स्वीकार किया उससे मेरे मानस पर उनके बड़प्पन की विशेष छाप पड़ी। दुर्भाग्यवश समारोह में विद्यार्थियों ने 'काले गाउनों' के विरोध में कुछ देर अप्रत्याशित आन्दोलन किया, परन्तु कुलाधिपति माननीय हुकुम सिंह की चिंता को भी शान्त करने हेतु मुझे विद्यार्थियों को यह समझाने का अवसर दिया कि यह उनका दुर्भाग्य होगा कि वे राजस्थान के ही ऐसे सपूत के उद्‌बोधन से अपने को वंचित कर लें, सौभाग्य से बात विद्यार्थियों की समझ में आ गयी और कुल समारोह पूर्ण-शान्ति से सम्पन्न हो गया।

–प्रो० राम चरण मेहरोत्रा

छुट्टियाँ चाँद पर

गौरव त्रिपाठी

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद द्वारा अभिप्रेरित एवं समर्थित वॉयस संस्था द्वारा दिनांक 3 से 6 जून 1999 को बाराबंकी में आयोजित विज्ञान लेखन एवं पत्रकारिता कार्यशाला में डॉ० शिवगोपाल मिश्र, डॉ० विजय कुमार श्रीवास्तव, डॉ० जगदीप सक्सेना एवं डॉ० दिनेश मणि (स्रोत विद्वानों) तथा संजय मिश्र महासचिव, वॉयस के निर्देशन में वहाँ के छात्रों द्वारा तैयार चार रचनाएं – छुट्टियाँ चाँद पर (विज्ञान नाटक), अंधविश्वासों की खुलती पोल (आलेख), अब बच सकते हैं जहरीली गैस से (आलेख), सेहत का दुश्मन है मोटापा (आलेख) प्रकाशित की जा रही हैं।
नवोदित विज्ञान लेखकों/लेखिकाओं की ये रचनाएं मौलिकता एवं विशिष्ट शैली से युक्त हैं। इन रचनाओं से इन लेखकों की सृजनशीलता एवं कल्पनाशक्ति का परिचय भी मिलता है। भविष्य में इन नवोदित लेखकों/लेखिकाओं से काफी आशाएं हैं।

पात्र परिचय : विकास – 1 वर्ष, विजय – 13 वर्ष, प्रकाश – 25 वर्ष

(दृश्य : एक व्यवस्थित कमरा, जिसमें दो बालक बैठे हैं।)

विकास : भैय्या ! तुम्हें पता है, पड़ोस वाले नन्दू और बबलू अपने माता-पिता के साथ नैनीताल गये हैं, और सोनू-मोनू भी गर्मी की छुट्टियाँ मनाने अपनी नानी के घर देहरादून गये हैं। भैय्या ! पापा से कहो हमें भी कहीं घुमाने के लिये ले चलें।

विजय : हाँ, तुम सही कह रहे हो। मेरे भी सभी दोस्त घूमने के लिये बाहर गये हैं। सभी लौट कर हम पर रौब जमायेंगे। क्यों न हम ऐसी जगह चलें जहाँ कोई न जाता हो, बिल्कुल नई जगह, फिर देखेंगे इन सबको। लेकिन चलें कहाँ?

विकास : भैय्या क्यों न चाँद पर चला जाये, कैसा रहेगा?

विजय : चाँद पर ? क्या ऐसा हो सकता है ? काश.! ऐसा संभव होता कि हम गर्मी की छुट्टियाँ चाँद पर बिताते।

(प्रकाश का प्रवेश)

दोनों बच्चे : (समवेत स्वर में) नमस्ते चाचा !

प्रकाश : नमस्ते बच्चो। क्या हो रहा है बच्चो, गर्मी की छुट्टियाँ कैसे बीत रही हैं ?

विकास : हम लोग भी गर्मी की छुट्टियों के बारे में बात कर रहे थे।

विजय : चाचा हम चाँद पर छुट्टियाँ मनाने के बारे में बात कर रहे थे।

विकास : ढीला है (माथे पर अँगुली घुमाते हुए)

प्रकाश : नहीं विकास, विजय सही कर रहा है। ये सही है कि अभी तुम इसकी बात पर हँस रहे हो लेकिन 20-25 वर्ष बाद हम लोग गम्भीरता से चाँद पर छुट्टियाँ मनाने के बारे में सोचेंगे।

विकास एवं विजय : (आश्चर्य से) अच्छा!

प्रकाश : मैं बताता हूँ तुम्हें यह कैसे संभव है ?

दोनों : हाँ-हाँ जरूर बताइये।

प्रकाश : तुम्हें यह तो पता ही होगा कि अंतरिक्षयान की सहायता से मानव अंतरिक्ष में प्रवेश कर चुका है। जानते हो सबसे पहला अंतरिक्ष यात्री रूस का यूरी गागरिन था और फिर तो अंतरिक्ष में जाने की होड़ सी मच गई। इसके बाद अमरीकी यात्री नील आर्मस्ट्रांग ने चाँद पर कदम रखा है। और फिर शुरुआत हुई अंतरिक्ष में स्टेशन स्थापित करने की।

विकास : अंतरिक्ष स्टेशन क्या होता है ?

प्रकाश : बताता हूँ। पहले पानी तो पी लूँ।

प्रकाश : (पानी पीकर) अंतरिक्ष स्टेशन अंतरिक्ष में बना एक कृत्रिम स्थान होता है जहाँ अंतरिक्ष यात्री ठहरकर अनुसन्धान एवं अन्य ग्रहों की खोज का कार्य करते हैं। यहाँ पर कृत्रिम जीवनानुकूल वातावरण का निर्माण किया जाता है, जिसके अन्दर वायुशोधन, तापनियन्त्रक एवं दिशा नियन्त्रण यन्त्र होते हैं।

विजय : अन्तरिक्ष स्टेशन बनाने की दौड़ में सफल कौन हुआ ? अमरीका या रूस ?

प्रकाश : सबसे पहले अंतरिक्ष स्टेशन रूस ने बनाया और इसका नाम 'सेल्यूट-6' था। इसके बाद स्थापना हुई 'मीर' नामक स्टेशन की 1986 में, जो अभी तक कार्य कर रहा है किन्तु अब यह बूढ़ा हो चला है और अब नये अन्तरिक्ष स्टेशन की आवश्यकता महसूस हो रही है। इसका निर्माण भी शुरू हो चुका है।

विकास : कौन बना रहा है यह स्टेशन ?

प्रकाश : यह स्टेशन सभी देशों के प्रयास से अमरीका में बनाया जा रहा है। इसका नाम 'इंटरनेशनल स्पेस स्टेशन' रखा गया है।

विकास : क्या सारा पैसा अमरीका खर्च कर रहा है ?

प्रकाश : नहीं, इस पर लगभग 40 अरब डालर व्यय होंगे। जिसमें अमरीका 17.4 अरब डालर, रूस 10 अरब डालर, यूरोपियन स्पेस एजेंसी 3.77 अब, जापान3.1. अरब, कनाडा 85 करोड़ तथा इटली 55 करोड़ डालर खर्च करेगा।

विकास : लेकिन बात तो चाँद पर छुट्टी मनाने की हो रही थी, यह अंतरिक्ष स्टेशन बीच में कहाँ से आ गया ?

प्रकाश : अंतरिक्ष स्टेशन भी इसी का एक अंग है। रही चाँद पर छुट्टी मनाने की बात तो इसकी घोषणा तो सैसन ने 1971 में ही कर दी थी कि लोग इस सदी के अंत तक अंतरिक्ष में उसी प्रकार छुट्टियाँ बिता सकेंगे जैसे वे पृथ्वी के ही किसी हिस्से पर हों।

विकास : लेकिन हम वहाँ पर रुकेंगे कहाँ ? कितना पैसा खर्च करना होगा वहाँ जाने में?

प्रकाश : वैसे को एक अन्तरिक्ष यात्री का खर्चा एक करोड़ रु० आता है किन्तु इस दिशा में लगातार प्रयास किये जा रहे हैं और अंतरिक्ष यात्रा को अधिक सफल, सुरक्षित, सुखद और सस्ता बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं। हालांकि फिर भी यह केवल धनी वर्ग तक ही सीमित होगी। वैसे तो विश्व का पर्यटन समुदाय अंतरिक्ष यात्रा को भी पर्यटन का अंग बनाना चाहता है। अंतरिक्ष यात्रा के पर्यटन से जुड़ने के साथ ही विश्व पर्यटन की कुल आय 50 गुना बढ़ जायेगी जो अभी3300अरब रुपये है। जापान की एक कंपनी ने तो इसके लिये 50 लाख रु० प्रति व्यक्ति के हिसाब से 'टूरिज्म पैकेज' भी तैयार कर लिये हैं और शिमजू कंपनी तो चाँद पर अंतरिक्ष यानों के लिये 'लैंडिंग ट्रैक' बनाने की तैयारी भी शुरू कर चुकी है।

विजय : लेकिन चाँद पर तो बाद को जायेंगे। इन छुट्टियों में कहाँ जायें ?

प्रकाश : मैं तुम्हें अपने साथ शिमला ले जाऊँगा। बोलो कैसी रही ?

दोनों : बड़ा मजा आयेगा। वाह !

अंधविश्वासों की खुलती पोल

अंचल जायसवाल

"अरे यह क्या.... फिर दूध उबालते-उबालते गिरा दिया.... कर दिया न अपशकुन।"

हमें अपने आसपास अक्सर ऐसे वाक्य सुनाई देते हैं। क्या दूध का उबल कर गिरना अपशकुन या अनिष्ट का संकेत होता है ? या किसी ने छींका तो समझो खतरे का संकेत दिया और अगर बिल्ली ने रास्ता काट दिया तो समझो आपत्ति आने वाली है। इसी तरह की और भी कुछ भ्रांतियाँ समाज में अपनी पकड़ जमाये हैं, जैसे किसी को हिचकी आई तो कहा जायेगा जरूर कोई याद कर रहा होगा इत्यादि।

वास्तव में दूध का उबल कर गिरना किसी घटना का सूचक नहीं होता बल्कि उसके पीछे एक वैज्ञानिक रहस्य है। जैसा कि हम जानते हैं कि पानी की तरह दूध एक साधारण पदार्थ नहीं होता अपितु वह एक मिश्रण है विभिन्न वस्तुओं का जैसे प्रोटीन, विटामिन, स्टार्च, वसा, खनिज आदि। जब हम दूध को धीरे-धीरे गर्म करते हैं तो वसा और प्रोटीन जो कि दूध से हल्के होते हैं वे ऊपरी सतह पर क्रीम या मलाई के रूप में एकत्रित हो जाते हैं।

गर्म होने पर पानी का कुछ अंश भाप के रूप में परिवर्तित हो जाता है और क्रीम की सतह के नीचे फँसा रह जाता है और जैसे-जैसे तापमान बढ़ता है भाप फैलने लगती है और ऊपरी भाग में झाग उत्पन्न होता है, अतः भाप जो बीच में होती है वो इस प्रक्रिया से बाहर निकलने के लिए फूट पड़ती है और ढेर सारा दूध फेने के साथ गिर पड़ता है। संभवतः दूध को नष्ट होने से बचाने के लिए यह विधा अपशकुन से जोड़ दी गयी होगी। वैसे दूध को गिरने से बचाने के लिए उसमें एक ऐसा चम्मच डाल दें जिसके हैण्डल के द्वारा भाप निकल सके और दूध नष्ट होने से बच सके।

ऐसे ही छींकने को दुर्घटना का संकेत बताया जाता है। लोग छींकने वाले आदमी से कहते हैं 'भगवान भला करे।' पर यह बात सही नहीं है क्योंकि शरीर विज्ञान के अनुसार छींकना एक ऐसी अनैच्छिक प्रक्रिया है जिसमें हमारा शरीर उन बाहरी तत्त्वों से छुटकारा पाना चाहता है जो हमारे शरीर अर्थात् नाक में प्रवेश करके उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। छींक आने के भी कई कारण होते हैं जैसे जब हमें ठण्ड लग जाती है, एलर्जी के कारण अथवा और भी कारण हो सकते हैं। इससे हमें यह पता चलता है कि छींक आने से उलटा हमारा लाभ ही होता है क्योंकि इस प्रक्रिया से हमारा शरीर उन बाहरी तत्वों से छुटकारा पा जाता है जिनके कारण हमें परेशानी हो सकती है।

इसी प्रकार सुनने में आता है कि साँप बीन की धुन सुन कर नाचता है, यह भी हमारा भ्रम है जिससे सपेरे हमें बेवकूफ बना कर लूटते हैं। वास्तव में साँप की सुनने की क्षमता न के बराबर होती है इसीलिए साँप हवा में ध्वनि को नहीं सुन सकता लेकिन साँप भूमि से उत्पन्न कंपन के प्रति काफी संवेदनशील होता है, इसीलिए सपेरा अपनी बीन को पहले भूमि पर पटकता है जिससे कंपन उत्पन्न होता है और साँप इसी कंपन का अनुभव करते ही सपेरे की ओर आकर्षित हो उठता है। वास्तव में वह नाचता नहीं बल्कि बीन पर नजर रखे रहता है।

इसी प्रकार एक और विचित्र धारणा विश्वसनीय है खासकर विदेशों में जहाँ 'बुल फाइटिंग' में आदमी साँड़ को लाल रंग के कपड़े से उकसाता है। पर ऐसा अनुभव किया गया है कि अगर हम साँड़ के आगे लाल के अलावा और किसी रंग के कपड़े को फहराते हैं तो भी वो उत्तेजित हो उठता है। तो तात्पर्य यह है कि अगर हम लाल की जगह सफेद,

हरा या काला कपड़ा फहराते हैं तो भी साँड़ क्रोधित हो उठता है। इसलिए कपड़े का फहराना साँड़ को उकसाता है न कि उसका रंग। कुछ लोगों ने यह अनुभव किया है कि साँड़ को वास्तव में रंगों की पहचान भी नहीं होती।

अंत में हमने यही देखा कि वास्तव में हर घटना के पीछे कहीं न कहीं विज्ञान छिपा है। दरअसल हमें हर चीज के पीछे छिपे विज्ञान को खोजना चाहिए न कि उसे अंधविश्वास या ढकोसलों के आवरण में लिपटा रहने देना चाहिए।

अब बच सकते हैं जहरीली गैस से

शुचि श्रीवास्तव

बढ़ती आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिये तथा आज के आधुनिक औद्योगिक युग में बेहतर जीवन जीने की चाह ने पर्यावरण को पूरी तरह जहरीला बना दिया है। आज के युग में बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों से निकलने वाली जहरीली गैसें मनुष्य जाति के लिए अभिशाप बन गई हैं। फैक्ट्रियों, पावर स्टेशनों, यातायात साधनों जैसे मोपेड, कार, स्कूटर, ट्रेन, जहाज आदि से निकलते धुएं के कारण जीवनदायिनी हवा भी जहरीली बनती जा रही है। वायु प्रदुषण के कारण ही कलकत्ता में 10,647, मुम्बई में 7,023, कानपुर में, 3,639 और अहमदाबाद में 3,006 लोगों की मौत हुई। 80 प्रतिशत से ज्यादा, कार्बन मोनोआक्साइड, वाहनों के द्वारा बनती है और जानलेवा गैस हमारे फेफड़ों को क्षतिग्रस्त करके मृत्यु का कारण बन सकती है।

अतः इस खतरे से बचने के लिये अमरीका की अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' के लैंग्ले रिसर्च सेण्टर ने 'प्लेटिनाइज्ड टिन ऑक्साइड' नाम के उत्प्रेरक की खोज की है जो निश्चित ही मनुष्य जाति के लिये वरदान सिद्ध होगी। इस उत्प्रेरक का विकास 'नासा' ने लेजर एटनोस्कोरिक विंड साउंडर नामक वैज्ञानिक उपग्रह को ध्यान में रख कर किया है। यह प्रेरक इस उपग्रह में उपयोग किये जाने वाले लेजर को शक्ति प्रदान करेगा। कार्बन डाइ-ऑक्साइड जो स्वतः कार्बन मोनो ऑक्साइड में परिवर्तित हो जाती है को 'प्लेटिनाइज्ड टिन आक्साइड' पुनः कार्बन डाइ-ऑक्साइड में परिवर्तित करने का कार्य करेगा। यह उत्प्रेरक कार्बन मोनोऑक्साइड की आहट पाते ही सक्रिय हो जाता है। अपनी इस विशेषता के कारण अब अमरीकी घरों में अनिवार्य रूप से कार्बन मोनो ऑक्साइड सूचक यंत्र भी लगाये जाने लगे हैं। इस उत्प्रेरक को पोस्टरों तथा कैलेण्डरों पर भी पोता जा सकता है। इस उत्प्रेरक की सफलता के कारण 'नासा' एवं रेचेस्टर गैस एण्ड इलेक्ट्रिक कार्पोरेशन ने संयुक्त रूप से इस उत्प्रेरक का सहोदर भी विकसित किया है जो फार्मेल्डिहाइड से निजात दिलाने में समर्थ है। इतना ही नहीं, गर्म हवा को शुद्ध करने वाले फिल्टर में भी इस नये उत्प्रेरक को बखूबी लगाया जा सकता है। मतलब यह है कि अपने घरों में 'प्लेटिनाइज्ड टिन ऑक्साइड' लगाइये और जानवेला गैसों से छुटकारा पाइये।

सेहत का दुश्मन है मोटापा

हिमांशु श्रीवास्तव

"शर्मा जी कहाँ भागे जा रहे हैं, जरा सुनिये तो।"
"नहीं-नहीं इस समय मैं योग के लिए जा रहा हूँ, शाम को आकर आपसे मिलता हूँ।"

हमारे पड़ोसी शर्माजी एक फर्म में मैनेजर हैं। पिछले कुछ समय से उन्हें बढ़ते हुए पेट से बड़ी कोफ्त हो रही है। मिसेज शर्मा भी उन्हें इसके लिए टोकती रहती हैं। यह समस्या अकेले शर्माजी की नहीं वरन् शहरों में रहने वाले

हजारों लोगों की है जिससे कि जिमनेजियम, व्यायामशाला आदि अच्छी-खासी आमदनी का जरिया बन गए हैं।

युवा वर्ग मोटापे को लेकर आजकल काफी सचेत नजर आता है। स्कूल-कालेज में मोटे विद्यार्थी परिहास का कारण बने रहते हैं। हास-परिहास तक तो ठीक है परन्तु कभी-कभी इसका विपरीत परिणाम भी देखने को मिलता है। मोटा विद्यार्थी कभी-कभी बहुत निराश और अपमानित महसूस करता है, जिससे उसमें हीन भावना भी उत्पन्न हो सकती है। लड़कियाँ इस बारे में ज्यादा सचेत पायी गयी हैं। "आजकल मैं डाइट पर चल रही हूँ" सुनना आम बात हो गयी है। परन्तु हमें मोटापे के बारे में तथ्य जान लेना बहुत आवश्यक है।

सबसे पहले हमें यह जान लेना अति आवश्यक है कि हम किस व्यक्ति को मोटा कह सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी ऊँचाई के हिसाब से आदर्श भार से बीस प्रतिशत अधिक वजन वाला होता है तो उस व्यक्ति को मोटा कहा जाता है।

अधिक भोजन खाना निःसंदेह मोटापे का एक प्रमुख कारण है, परन्तु इसके अलावा और भी कई कारण हैं। मोटापे के कारण मनुष्य की आनुवंशिक संरचना में रचे-बसे होते हैं। खाते रहना और हर समय आराम पसंद जीवन व्यतीत करना भी मोटापे का प्रमुख कारण है। शारीरिक रूप से चुस्त रहने वाले व्यक्तियों में मोटापा नहीं पाया जाता है क्योंकि वे जितना भी खाते हैं उसे ऊर्जा के रूप में जला लेते हैं। परन्तु जो व्यक्ति चुस्त नहीं है उनमें अधिक वसा खाल के नीचे जमा होती रहती है, जिसका परिणाम होता है यह मोटापा। तनावग्रस्त रहना भी मोटापे के कारणों में गिना जाता है।

मोटापे से होने वाली प्रमुख बीमारियों में मधुमेह, रक्तचाप, हृदय रोग आदि हानिकारक हैं। अधेड़ उम्र के लोगों में प्रायः जोड़ों का दर्द देखने में आता है। कई लोग मोटापा कम करने के लिए भूखे रहना प्रारम्भ कर देते हैं, जिससे कि ऊतक के अलावा पेशीय प्रोटीन में भी ऊर्जा प्राप्त की जाती है। भूखा रहने वाले व्यक्तियों में पोटेशियम की भी कमी होने लगती है और इसका परिणाम होता है हृदय सम्बन्धी समस्याएँ।

मोटापे के कारण तो अनेक हैं परन्तु इनसे निराश होने की आवश्यकता नहीं है। अपने मोटापे को कम करना आपके अपने हाथ में है। बस आवश्यकता है केवल कुछ सावधानी अपने दैनिक जीवन में अपनाने की, उन्हें अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी का जरूरी हिस्सा बनाने की। मोटापा कम करने का सबसे प्रमुख उपाय है संतुलित आहार का सेवन। संतृप्त वसा का सेवन कम करना। तेल-घी तथा अन्य दुग्ध उत्पादों को अधिक मात्रा में सेवन से परहेज रखिए। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि आप एक वक्त का खाना छोड़ दें। इससे आप पतले नहीं वरन् कमजोर जरूर हो जायेंगे। यदि आप अधिक समय तक बैठे रहते हैं, तो रोजाना व्यायाम अथवा सैर अथवा कोई भी शारीरिक श्रम करने का प्रयत्न करें। तैराकी उत्तम व्यायाम माना जाता है क्योंकि इसमें शरीर के हर अंग को क्रियाशील होना पड़ता है। जॉगिंग भी बहुत सहायक प्रमाणित हुई है। अनेक वैज्ञानिकों व डॉक्टरों का मत है कि दिल खोल कर हँसने से ही आधे रोग गायब हो जाते हैं। अतः प्रयत्न करें कि आप तनावरहित रहें।

अन्ततः यह शरीर आपका है, आपको इसका ध्यान रखना है। यह मोटापा आपने धीरे-धीरे चढ़ाया है, अतः धैर्य रखें वह धीरे-धीरे ही जाएगा। मोटापा यदि वरदान नहीं तो इसे अभिशाप न बनने दें।

(पृष्ठ 3 का शेष भाग)

अथवा पिता का इनके पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा तथा देखरेख के लिए किस प्रकार का दायित्व होगा ? ऐसे और भी बहुत से प्रश्न हैं जिनका उत्तर देना आसान नहीं है। इसलिए 'मानव क्लोन' तैयार करने संबंधी शोध पर अविलम्ब प्रतिबंध लगा देना चाहिए। क्या हमारे समाज में ऐसे ही कुछ कम समस्यायें हैं ? मानव क्लोन तैयार करने का अर्थ है 'आ बैल मुझे मार'।

अतएव किस प्रकार के अनुसंधानों को बढ़ावा देना चाहिए, इसका निर्धारण शीघ्र होना चाहिए वरना समाज का एक ऐसा वर्ग उठ खड़ा होगा जो जैव-प्रौद्योगिकी के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ देगा। कुछ भी हो विवादों के बावजूद भी जैव-प्रौद्योगिकी अगली शताब्दी में निश्चित रूप से धूम मचा देगी। जैव-प्रौद्योगिकी से संबंधित अनुसंधान निश्चित रूप से मानवता के हित में हैं।

—पूर्व सम्पादक, 'विज्ञान'

विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद

समीक्षा

पुस्तक : फल

लेखक : इन्दिरा गोपालन और एम. मोहन राम

हिन्दी रूपान्तरण : डॉ० अंजू शर्मा और डॉ० कृष्णानन्द पाण्डेय

प्रकाशक : भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्, अंसारी नगर, नई दिल्ली-110029

पृष्ठ : 68+8, प्रथम संस्करण : 1998, मूल्य : 22.00 रुपये

समीक्ष्य पुस्तक "फल" में अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारियाँ समाविष्ट हैं। आमतौर से एक सामान्य भारतीय आदमी के भोजन में रोटी , चावल, दाल और सब्जी पर तो बल दिया जाता है, किन्तु फलों पर नहीं। फल साधारणतया किसी बीमारी में भोजन बंद कर दिए जाने पर रोगियों के खाने की वस्तु समझी जाती है, किन्तु पुस्तक में न केवल भोजन में इसकी उपयोगिता पर बल दिया गया है वरन् फलों से बनाये जाने वाले अचार, जैम, जैली जैसी अनेक वस्तुओं पर भी आवश्यक जानकारियाँ दी गई हैं।

"पोषण की दृष्टि से फल अनेक विटामिनों, खनिज लवण और आहारीय रेशों का बहुत अच्छा स्रोत होते हैं। और ये सभी चीजें अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। सामान्यतः फल विटामिन-सी के अच्छे स्रोत होते हैं।"

पुस्तक में आंवला, सेब, केला, अंगूर, अमरूद, कटहल, जामुन, आम, खरबूजा एवं तरबूज, संतरा एवं नीबू, पपीता, अन्ननास, अनार, सपोटा, शरीफा और टमाटर के विषय में मूहत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध हैं। परिशिष्ट में फलों पर आधारित व्यंजन, विभिन्न मौसमों में उपलब्ध फल आदि पर अलग से जानकारियाँ दी गई हैं। कुल मिलाकर पुस्तक अत्यंत उपयोगी है। अनुवाद की भाषा सरल है। लेखक द्वय एवं अनुवादक द्वय को साधुवाद।

पत्रिका : सूझ बूझ

(अन्वेषण व रचनात्मक जीवन यापन पर त्रैमासिक पत्र)

कार्यकारी सम्पादक : शालिनी शर्मा

प्रकाशक : सृष्टि इन्नोवेंशस, पोस्ट बाक्स- 15050, अम्बावाडी पोस्ट, अहमदाबाद- 380015 (गुजरात)

लेजर सेटिंग : अर्चना प्रिन्टोग्राफिक्स, 178-सी, डी-डी ए फ्लैट्स, शाहपुर जट, नई दिल्ली-110049

मुद्रण : सिस्टम्स विजन, ए-199 ओखला-1, नई दिल्ली-110020

पृष्ठ संख्या : 20 (कवर सहित), वर्ष : बसंत अंक 12, 1999

समीक्ष्य पत्रिका "सूझ-बूझ" का यह अंक पिछले अंकों से बेहतर है। पत्रिका प्रगति पथ पर अग्रसर है। वैज्ञानिक अन्वेषणों को संक्षेप में देकर पाठक की रुचि पूरी पत्रिका को पढ़ने में निरंतर बनी रहती है। वैसे तो घास-फूस से चला यंत्र, जैवविविधता मेला, टर्मिनेटर (आत्मघाती) बीज, खुरपका-मुहपका रोग, विविधता में एकता, गोमूत्र से खुजली भागी शीर्षकों के अंतर्गत् प्रकाशित सामग्री अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु इनके अतिरिक्त भी पत्रिका में ढेरों महत्वपूर्ण सामग्री दी हुई है।

विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि अधिक से अधिक वैज्ञानिक खोजों को शामिल करके संपादक ने "गागर में सागर" वाली कहावत को चरितार्थ किया है। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री यथा सुन्दर, छपाई, बढ़िया कागज,

वैज्ञानिक खोजों का चयन, सभी कुछ प्रशंसनीय हैं। सम्पादन और प्रकाशन से जुड़ें सभी व्यक्ति बधाई के पात्र हैं।

पत्रिका : 'गाँव की नई आवाज' (पर्यावरण पर विशेष सामग्री)

सम्पादक : विजय चितौरी

प्रकाशक : ग्रामोदय प्रकाशन, घूरपुर, इलाहाबाद-10, पृष्ठ संख्या : 42; वर्ष 5; अंक 1; जून 1999 : मूल्य : एक प्रति 7 रु० (मासिक) : वार्षिक 80 रु०, दो वर्ष 150 रु०, आजीवन 500 रु०।

इस अंक को देखने के बाद ऐसा लगता है कि अपनी सीमित आर्थिक व्यवस्था के बावजूद पत्रिका में सुधार हो रहा है। पर्यावरण से संबंधित डॉ० शिवगोपाल मिश्र का लेख "पर्यावरण : हमारे आस पास", ज्योतिभाई का "रासायनिक कीटनाशकों के देशी विकल्प", डॉ० दिनेश मणि का "माटी कथा : आदि काल से अब तक", डॉ० ओम प्रकाश 'प्रकाश' का "धूम्रपान से सावधान", "गिद्धों के गायब होने से पर्यावरण को खतरा" (लेखक का नाम नहीं) लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

पत्रिका सुधार पर है यह शुभ लक्षण है, किन्तु मुद्रण की त्रुटियों, चित्रों विशेष रूप से फोटो की छपाई पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

समीक्षक : प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
पूर्व सम्पादक, "विज्ञान"

डॉ० विष्णु दत्त शर्मा पुरस्कृत

सुप्रसिद्ध विज्ञान लेखक एवं विज्ञान परिषद् प्रयाग के आजीवन सभ्य डॉ० विष्णु दत्त शर्मा को बिहार सरकार राजभाषा विभाग द्वारा उनके मौलिक ग्रन्थ "राम चरित मानस : मूल्यांकन एवं युद्ध पद्धति" के लिए वर्ष 1994-95 के अखिल भारतीय ग्रन्थ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। पुरस्कार-स्वरूप दस हजार रुपये की सम्मान राशि सादर अर्पित की गई है।

डॉ० शर्मा की प्रशस्ति में कहा गया है कि "डॉ० विष्णु दत्त शर्मा ने हिन्दी में अब तक अछूते विषयों पर अनेक मौलिक ग्रन्थों का सृजन कर हिन्दी के विकास में नूतन अध्याय जोड़ा है। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के भण्डार को समृद्ध करने में इनका अवदान महत्वपूर्ण है। हिन्दी में विज्ञान-लेखन के अतिरिक्त इन्होंने रामचरित मानस से सम्बन्धित नये विषयों पर अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों का अध्ययन किया है।"

विज्ञान परिषद् परिवार की ओर से डॉ० शर्मा को हार्दिक बधाई।

पर्यावरणीय संकट के हल की तलाश में

डॉ० दिनेश मणि

हमारे चारों ओर का वातावरण एवं परिवेश जिसमें हम आप और अन्य जीवधारी रहते हैं सब मिलकर पर्यावरण (Environment) बनाते हैं, किन्तु "पर्यावरण" बड़ा व्यापक शब्द है। पर्यावरण का तात्पर्य उस समूची भौतिक एवं जैविक व्यवस्था से है, जिसमें जीवधारी रहते हैं, बढ़ते-पनपते हैं और अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास करते हैं।

बढ़ते हुये औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, मनुष्य के भौतिकवादी दृष्टिकोण तथा विज्ञान और तकनीकी की निरन्तर प्रगति के फलस्वरूप हमारा पर्यावरण आज तरह-तरह के प्रदूषण की चपेट में आ गया है, जिससे वनस्पतियों, जीव-जन्तुओं, यहाँ तक कि स्वयं मनुष्य का जीवन संकटग्रस्त होता जा रहा है। पर्यावरण प्रदूषण के लिए उत्तरदायी कारकों में औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण के अतिरिक्त बढ़ती जनसंख्या, अशिक्षा और गरीबी भी शामिल हैं। एक ओर जहाँ अशिक्षित तथा गरीब जनता स्वच्छता को पर्याप्त महत्व न देकर पर्यावरण को दूषित करती है, वहीं दूसरी ओर अमीरों के अत्यधिक भौतिकवादी विचारधाराओं और उनके ऐशो-आराम की चीजों की आपूर्ति के लिये भी प्राकृतिक सम्पदाओं का दोहन होता है।

वैसे तो प्रकृति ने वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं सबको अपने तौर पर एक संतुलित स्थिति में बना रखा है किन्तु मनुष्य अपनी सुख-सुविधा जुटाने के लिये प्रकृति के घटकों का दोहन कर रहा है। प्रकृति के साथ अनेक वर्षों से की जाने वाली छेड़-छाड़ के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली असंतुलन की स्थिति ने अन्य जीवों के साथ स्वयं उसके अस्तित्व को भी खतरे में डाल दिया है। आज यह बात स्पष्ट से स्पष्टतर होती जा रही है कि जीव-जन्तुओं और प्रकृति के साधनों का अंधा-धुंध इस्तेमाल करके मनुष्य अपने अस्तित्व को बचाये नहीं रह सकता। प्रकृति और उसके घटकों के विनाश के साथ मनुष्य का विनाश सुनिश्चित है।

आज पर्यावरण का प्रश्न हमारी पीढ़ी के लिए एक नई चुनौती के रूप में हमारे सामने आ खड़ा हुआ है। यही कारण है कि आज अनेक सरकारी और गैर-सरकारी संगठन इस बात का विशेष प्रयत्न कर रहे हैं कि दुनिया के आम आदमी को इस चुनौती के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराया जाये ताकि उसके अस्तित्व को संकट में डालने वाले तथ्यों की उसे समय रहते जानकारी हो जाये और स्थिति को सुधारने के उपाय गंभीरता से किये जा सकें।

पर्यावरण के विभिन्न प्रदूषणों के कारण आज पारिस्थितिकीय असंतुलन का खतरा बढ़ता जा रहा है। वैसे तो प्रकृति अपने सभी संघटकों का अनुपात बिगड़ने नहीं देती, किन्तु मनुष्य के प्रकृति के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार से आज प्रकृति को भी विरोधी रवैया अपनाना पड़ गया है, जिसे हम लोग निकट भविष्य में शायद ही बर्दाश्त कर पायेंगे। योग्य और बुद्धिमान होने के कारण मनुष्य शायद इस सृष्टि में स्वयं के अस्तित्व को आवश्यकता से अधिक महत्व दे रहा है और अन्य जीवधारियों की स्थिति को ध्यान में न रखकर प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहा है। तभी तो हम निरन्तर अपनी सुख-सुविधा को अधिक महत्व देकर वर्तमान सभ्यता के प्रतिफल के रूप में प्रदूषण को जन्म दे रहे हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं कि अन्य राष्ट्रों की तरह भारत के प्राकृतिक पर्यावरण पर भी हिंसा के निशान हैं इसी से भारत

को भी पर्यावरणीय समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। भारत में पर्यावरणीय समस्याओं को दो व्यापक वर्गों में रखा जा सकता है।

1. गरीबी और अवविकास की अवस्थाओं से पैदा होने वाली समस्यायें।

2. विकास की प्रक्रिया के नकारात्मक प्रभावों के कारण पैदा होने वाली समस्यायें।

पहले वर्ग का सम्बन्ध हमारे प्राकृतिक संसाधनों --मृदा, जल, वन, वन्य जीवन के स्वास्थ्य और अखण्डता के प्रभाव से है। यह गरीबी और अपर्याप्त उपलब्धता के कारण हमारी अधिकांश जनसंख्या की बुनियादी मानवीय आवश्यकताओं-रोटी, ईधन, मकान, रोजगार को पूरा न कर पाने के कारण है। दूसरे वर्ग का सम्बन्ध तेज आर्थिक वृद्धि और विकास करने के अनुदृश्य सहप्रभावों से है। दूसरे वर्ग में अनियोजित विकास परियोजनाओं और कार्यक्रमों से और व्यापारिक और निहित स्वार्थों द्वारा दीर्घकालीन हितों पर ध्यान न देने के कारण प्राकृतिक संसाधनों की क्षति होती है।

गरीबी के कारण उत्पन्न होने वाली समस्यायें अपेक्षाकृत ज्यादा विस्तृत हैं और इनकी ओर तत्काल ध्यान देना आवश्यक है। लोगों को अनाज उगाने और जीविका अर्जित करने के लिए पर्याप्त उपजाऊ भूमि उपलब्ध कराने की चुनौती और वनों, वन्य पशुओं तथा मृदा और जल के आपसी सम्ब्रन्धों के संरक्षण की आवश्यकता, एक दूसरे का अतिक्रमण करती हैं। दूसरी ओर विकास की प्रक्रिया में पानी, सफाई, बिजली और सड़कों जैसी आधारभूत सेवायें उपलब्ध कराने के लिये बड़े स्तर पर पूँजी व्यय करने की जरूरत होती है।

यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि जिस भौतिक वातावरण में गरीब रहते हैं उसका निश्चित रूप से दुरुपयोग होता है। अपने अस्तित्व के कगार पर खड़े लोग भविष्य के लिये संरक्षण करने की विलासिता का बोझ नहीं उठा सकते। उनके लिये तो चाहे कहीं से भी हो ईंधन के लिए लकड़ी जुटाना अत्यन्त आवश्यक है जिस धरती पर भी घास मौजूद हो, उन्हें वहीं अपने पशु चराने पड़ते हैं, खाने के लिए भोजन जुटाने की प्रक्रिया में जमीन के बंजर होने तक उस पर खेती करते रहना उनकी मजबूरी है। उनकी आवश्यकता और मजबूरी के कारण जंगल कटते जाते हैं, भूमि का क्षरण होता है और पानी अपशिष्ट पदार्थों से प्रदूषित हो जाता है। ये पर्यावरणीय समस्यायें गरीबी के कारण पैदा होने वाली समस्यायें हैं। इनका समाधान गरीबी को धीरे-धीरे कम करने से ही हो सकता है और इसके लिये ऐसे विकास कार्यों का सहारा लेना जरूरी है जिनकी योजना तैयार करते समय इस बात का ध्यान रखा गया हो कि वे पर्यावरण की दृष्टि से निर्दोष हैं। पर्यावरण और पारिस्थितिकी पर विचार करने वालों के एक वर्ग ने इस सम्पूर्ण समस्या का कारण वैज्ञानिक क्रान्ति को स्वीकार किया। परन्तु विज्ञान के प्रकृति के रहस्यों की जानकारी ही प्रदान की है, उसके उपयोग की दिशा को राजनीतिक, व्यापारिक अथवा दूसरे कारक निश्चित करते हैं। मनुष्य अक्सर यह नहीं जानता कि उसके लिये क्या वरदान है और क्या अभिशाप। जब अणुशक्ति का अनुसंधान हुआ तो किसने सोचा था कि विश्व का अद्वितीय वैज्ञानिक अनुसंधान एक दिन हिरोशिमा और नागासाकी के विध्वंस का कारण बनेगा। कोई भी वैज्ञानिक अनुसंधान, प्रक्रिया, प्रणाली और प्रयोग अपने आप में वरदान या अभिशाप नहीं होता। उसकी उपादेयता इस बात पर निर्भर करती है कि हम उसका उपयोग कैसे करते हैं। इसी कारण फरवरी 1995 में फ्रान्स में वैज्ञानिकों के एक सम्मेलन में निम्न प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये -

1. हम उन समस्त सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप से ठुकराते हैं जिनके अनुसार वैज्ञानिक खोज और तकनीकी प्रगति मानव जाति के लिये लाभदायक कम और हानिकारक अधिक है।

2. व्यापक संहारकारी अस्त्रों को उन्नत किये जाने की जिम्मेदारी विज्ञान पर नहीं है।

3. करोड़ों मजदूरों पर लादी गयी काम की असहनीय परिस्थितियों से पैदा होने वाली शारीरिक और स्वाभाविक थकान में वृद्धि की जिम्मेदारी विज्ञान पर नहीं है।

4. उत्पादन के निरन्तर गति से और तीव्रता के साथ बढ़ने के बावजूद काम के घंटे पहले की तरह बनाये रखने का दोषी विज्ञान नहीं है।

5. विज्ञान का अर्थ प्रत्येक प्रकार के प्रदूषकों से प्रकृति को प्रदूषित किया जाना नहीं होता।

6. इसके विपरीत विज्ञान समाज के समक्ष वह समाधान

प्रस्तुत करता है जो काम की बेहतर शर्तें और बिना प्रदूषण के उत्पादन की परिस्थितियाँ पैदा करे। यदि इन समाधानों को लागू नहीं किया जाता तो यह विज्ञान की गलती नहीं है।

7. उत्पादन की अराजकता की जिम्मेदारी विज्ञान पर नहीं है वह न तो पूँजीवादी संचय के लिये जिम्मेदार है और न उसके परिणामों के लिए।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पर्यावरणीय समस्याओं के लिये विज्ञान दोषी नहीं है। अक्सर यह देखा गया है कि किसी भी समस्या के सामधान में प्रशासन आड़े आ जाता है। जब कभी हमें समय पर वांछित प्रशासनिक सहायता नहीं मिलती है, हमारी नीतियाँ सफल नहीं हो पातीं। अतः पर्यावरण के प्रश्न पर भी प्रशासन का यह दायित्व बनता है कि वह उन अल्पसंख्यक सुविधाभोगियों से देश के वर्तमान कानूनों के अनुसार कड़ाई से पेश आये जो अपना लाभ बढ़ाने के चक्कर में पर्यावरणीय असंतुलन पैदा कर रहे हैं।

यह कैसी विडम्बना है कि प्रकृति का अभाव उन्हीं लोगों पर सर्वाधिक पड़ा है जो शायद विकास के मायने से भी परिचित न हो। यह कितने दुख की बात है जो लोग अपनी विलासिता के लिए अपने स्तर को बढ़ाने के लिए प्राकृतिक सम्पदाओं की लूट में लगे हुये हैं वे तो एकदम पाक-साफ और बेदाग हैं। किसी भी कानून के हाथ इतने लम्बे नहीं जो उन तक पहुँच सकें। परन्तु यह विचित्र है कि दो जून की रोटी के प्रयास में लगे लोग, चाहे वे मजदूर हों या किसान, ईंधन के लिये लकड़ी जुटाना उनकी आवश्यकता है। अपने दो-चार पशुओं के लिये चारा जुटाना और खाने के लिये भोजन जुटाने की कोशिश में जमीन के बंजर होने तक खेती करते रहना उनकी विवशता है। और इस तरह पर्यावरण के बिगड़ने के लिये सबसे अधिक उत्तरदायी कारक बनने का श्रेय हासिल करने के बाद पर्यावरण संरक्षण कानून के अन्तर्गत सजा पाना उनका पारितोषिक है। क्या इस वास्तविकता पर चिन्तन करना हम सबका कर्तव्य नहीं है ?

यह कहाँ की बुद्धिमत्ता है कि हम पत्थर जैसी सामग्री को छोड़कर ईंटों के इस्तेमाल में लगातार उपजाऊ मिट्टी को नष्ट कर रहे हैं, जिसके बनने में प्रकृति को न जाने कितने सहस्र वर्ष लगे। हम जंगलों को काटकर, कागज, टिम्बर इत्यादि उद्योग के लिये कच्चे माल की आपूर्ति की जरूरत तो महसूस करते हैं, किन्तु नये वृक्षों को लगाकर पुनः जंगल बनाने की बात को सोचते ही नहीं। क्या हमने कभी सोचा है कि यह हमारा स्वार्थी, लोभलाभ से परिपूर्ण दृष्टिकोण हमें कहाँ ले जायेगा ?

जहाँ तक पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान की बात है तो उचित यही होगा कि हम पहले यह अच्छी तरह समझ लें कि पर्यावरण की समस्या परोक्ष या अपरोक्ष रूप से गरीबी और अशिक्षा से सम्बन्धित है, साथ ही हमारी विलासी तथा स्वार्थी प्रवृत्ति भी इसके लिये उत्तरदायी है। अतः इससे छुटकारा पाने के लिये पर्यावरणीय शिक्षा (पारिस्थितिकीयुक्त) बहुत जरूरी है। साथ ही हमें अपने दृष्टिकोणों में सृजनात्मक परिवर्तन लाकर स्वैच्छिक रूप से मिल जुलकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना है।

पिछले कुछ वर्षों से पर्यावरण संरक्षण जन-सामान्य की चर्चा का विषय बन गया है क्योंकि जब पर्यावरण परिवर्तन के परिणाम स्पष्ट दिखायी देने लगे हैं और इन्हीं परिवर्तनों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक तनाव तथा क्षेत्रीय विवाद भी उत्पन्न हुये हैं। पर्यावरण के लगभग सभी घटकों-जल, थल, वायु इत्यादि पड़े अनावश्यक दबाव के परिणामस्वरूप भारत सहित अनेक देशों में गरीबी, असुरक्षा, अपर्याप्त विकास दर, संसाधनों की कमी, संसाधनों के उपयोग में कमी, जनसंख्या का दबाव तथा आर्थिक विषमताओं जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हुयी हैं।

अन्ततः यही विषम परिस्थितियाँ अनेक देशों में राजनैतिक तनाव तथा क्षेत्रीय विवाद के लिये उत्तरदायी हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि पृथ्वी पर रहने वाले प्रत्येक सात व्यक्तियों में से एक भारतीय है। हमारे यहाँ विश्व की 16 प्रतिशत जनसंख्या के लिये पृथ्वी का केवल 2.4 प्रतिशत भू-भाग है। इसलिये प्राकृतिक संसाधनों का माँग होना स्वाभाविक है। यह स्थिति तो तब है जब विकासशील देशों की तुलना में औसत भारतीय बहुत कम संसाधनों का उपयोग करता है।

भारत द्वारा जून 1990 में ''पर्यावरण और विकास'' पर कुछ विकसित राष्ट्रों का सम्मेलन आयोजित किया गया था। उसके बाद जून 1991 में चीन द्वारा बीजिंग में मंत्री स्तर का सम्मेलन बुलाया गया। अप्रैल, 1992 में दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संघ (दक्षेस) के पर्यावरण मंत्रियों का

सम्मेलन भारत में आयोजित किया गया ताकि महत्वपूर्ण मुद्दों पर क्षेत्रीय आधार पर सहमति हो सके। इन सम्मेलनों में हुये विचारों के आदान-प्रदान के फलस्वरूप उत्पन्न सहमति के आधार पर भारत चाहता है कि निम्नलिखित मूल सिद्धान्तों के अनुरूप विश्वव्यापी कार्यवाही की जानी चाहिये।

1. पर्यावरण संरक्षण को विकास की सामान्य समस्याओं से अलग नहीं किया जा सकता। पर्यावरण संरक्षण विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग समझा जाना चाहिये। विश्व के समस्त राष्ट्रों को मिल जुलकर विकासशील राष्ट्रों को विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं पर ध्यान देने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण का प्रयास करना चाहिये।

2. निर्धनता, अविकास और पर्यावरण प्रदूषण के कुचक्रों को तोड़ने के लिये विकासशील राष्ट्रों में भारत को निर्धनता से डटकर मुकाबला करना जरूरी है।

3. विकासशील देशों में इस समय संरक्षणवाद की प्रवृत्ति बढ़ रही है, ऋण का भार बढ़ता जा रहा है, व्यापार की शर्तें बिगड़ती जा रही हैं और वित्तीय संसाधनों का प्रवाह विपरीत दिशा में हो रहा है इसलिये ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण पैदा करना चाहिये जिससे विकासशील देशों में विशेष रूप से आर्थिक प्रगति और विकास की प्रक्रिया को समर्थन मिल सके।

4. राष्ट्रीय अधिकार क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों पर प्रत्येक राष्ट्र का सम्पूर्ण अधिकार है।

5. सतत् विकास के लिये रणनीति तैयार करने के मामलों पर राष्ट्रीय सरकारों द्वारा निर्णय लिया जाना चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा इन प्रयासों का समर्थन किया जाना चाहिये न कि अवरोध पैदा किये जायँ।

6. आर्थिक विकास सम्बन्धी नीति और कार्यक्रमों में पर्यावरणीय समस्याओं को शामिल किया जाना चाहिये और इसके लिये दी जाने वाली सहायता के साथ कोई शर्त नहीं लगायी जानी चाहिये तथा पर्यावरण संरक्षण के नाम पर किसी प्रकार का व्यापारिक प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाये।

7. पृथ्वी पर प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं। विकसित राष्ट्र अन्य राष्ट्रों की तुलना में अपने हिस्से से कहीं ज्यादा संसाधनों का उपयोग कर रहे हैं। यह असन्तुलन समाप्त होना चाहिये और विकासशील राष्ट्रों की वहन क्षमता के अनुसार उन्हें संसाधनों में बराबरी का हिस्सा देने के उपाय किये जाने चाहिये ताकि उनका पर्याप्त विकास हो सके।

8. मुख्यतः विकसित राष्ट्र प्रदूषण फैला रहे हैं जिनमें प्रदूषणकारी तत्वों के अलावा खतरनाक और विषालु अपशिष्ट भी हैं। अतः पर्यावरण सुधार के लिये आवश्यक उपाय करने का प्रमुख दायित्व भी इन्हीं राष्ट्रों का है।

इन उपायों के अतिरिक्त हमें यह भलीभाँति समझ लेना चाहिये कि हमारे लिये स्थानीय पर्यावरणीय समस्यायें भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी कि अन्य विश्व समस्यायें। वन क्षेत्रों में कमी, उपजाऊ भूमि का ह्रास तथा पीने के पानी की कमी जैसी स्थानीय समस्याओं की गम्भीर चिन्ता होनी चाहिये जिनका सभी के लिये पीने का पानी उपलब्ध कराने, भोजन और आवास जैसी मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति सम्बन्धी समस्याओं से सम्बन्ध है। इससे पहले कि हमें प्रदूषण के अन्य भयावह परिणाम देखने को मिले, हम शपथ लें कि हम आजीवन प्रकृति के साथ तालमेल स्थापित करके जियेंगे और अपने साथ-साथ अन्य जीवधारियों के अस्तित्व को भी उतना ही महत्व देंगे जितना स्वयं को देते हैं।

विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग,
इलाहाबाद -2

परिषद् का पृष्ठ

प्रस्तुति : प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

(1) परिषद् की सभापति डॉ०मंजु शर्मा का आगमन

विज्ञान परिषद् प्रयाग की सभापति श्रीमती डॉ० मंजु शर्मा परिषद् की सभापति चुने जाने के बाद 24-7-99 को परिषद् में पहली बार दिल्ली से पधारीं। परिषद् के पदाधिकारियों की एक मीटिंग में उन्होंने यह आश्वासन दिया कि विज्ञान परिषद् प्रयाग की उन्नति के लिए वह हर संभव प्रयास करेंगी। उन्होंने परिषद् की समस्याओं को ध्यानपूर्वक, सहानुभूतिपूर्वक सुना और समाधान भी सुझाये।

डॉ० मंजु शर्मा भारत सरकार के डिपार्टमेंट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, दिल्ली की सचिव हैं और देश की जानी-मानी वैज्ञानिक हैं। वे इस वर्ष "भारतीय विज्ञान कांग्रेस" की अध्यक्ष भी थीं और उनका बायोटेक्नालॉजी से संबंधित अध्यक्षपदीय व्याख्यान वैज्ञानितकों के बीच चर्चा का विषय रहा और सर्वत्र प्रशंसित हुआ।

उन्होंने यह भी बताया कि उनके विभाग ने "विज्ञान" पत्रिका के सुधार के लिए एक लाख रुपयों की राशि स्वीकृत किया है। यही नहीं, बायोटेक्नालॉजी पर हिन्दी भाषा के माध्यम से एक अखिल भारतीय संगोष्ठी कराने के लिए परिषद् को 60,000/- रूपयों की एक और राशि स्वीकृत किया है। यह संगोष्ठी संभवतः दिसम्बर माह तक हो सकेगी।

(2) परिषद् द्वारा श्री श्यामनारायण कपूर एवं अन्य हिन्दी विज्ञान सेवियों का सम्मान सम्पन्न

25-7-99 को विज्ञान परिषद् प्रयाग में हिन्दी विज्ञान लेखकों/सम्पादकों एवं परिषद् की अन्य सेवाओं के लिए एक सम्मान समारोह का आयोजन हुआ। इस समारोह में श्री श्याम नारायण कपूर को उनकी हिन्दी विज्ञान लेखन की विशिष्ट सेवाओं के लिए उन्हें "विज्ञान भास्कर" उपाधि से विभूषित कर उनकी दीर्घायु होने की कामना की गई। इस अवसर पर "विज्ञान" पत्रिका के 'श्री श्याम नारायण कपूर सम्मान अंक' (मई-जून 1999 अंक) का विमोचन मुख्य अतिथि कानपुर के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री एवं भाषा-विज्ञानी डॉ० ब्रज लाल वर्मा के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

प्रारंभ में संचालक प्रेम चन्द्र श्रीवास्तव ने परिषद् की ओर से और अपनी ओर से सभी का स्वागत किया। इसके बाद डॉ० प्रभाकर द्विवेदी जी ने सस्वर वाणी वंदना प्रस्तुत की। इसके पश्चात् मंचासीन सभाध्यक्ष डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी, श्री श्याम नारायण कपूर एवं डॉ० ब्रजलाल वर्मा का माल्यार्पण द्वारा स्वागत डॉ० दिनेश मणि, डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय, श्री देवव्रत द्विवेदी ने किया।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने मुख्य अतिथि डॉ० वर्मा का स्वागत करते हुए कहा कि 77 वर्षीय डॉ० वर्मा देश के जाने-माने साहित्यकार और हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी एवं अंग्रेजी के विद्वान हैं। डॉ० वर्मा डी० बी० एस० महाविद्यालय, कानपुर के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश, लोक सेवा आयोग के सदस्य, उत्तर प्रदेश शिक्षा आयोग के अध्यक्ष रह चुके हैं। कानपुर से निकलने वाली पत्रिकाओं - "दैनिक विश्वामित्र", "सहयोगी", "रामराज्य", "उपमा", का कुशल सम्पादन किया है, 15 चोटी की संस्थाओं से सम्बद्ध रहे हैं और कनवोकेशन ऐड्रेसेज भी दिए हैं। आपके लेख देश की सम्मानित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। समाज सेवा के क्षेत्र में भी अग्रणी रहे हैं। अपनी जन्मभूमि प्रेमपुर (कानपुर नगर) का समग्र निर्माण तथा पूरे अंचल का ग्राम विकास स्वयं किया है।

श्री श्याम नारायण कपूर जी का परिचय देते हुए

परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० मिश्र ने कहा कि श्री कपूर की उत्कृष्ट सेवाओं के लिए परिषद् ने उनके सम्मान में "विज्ञान" का मई-जून 1999 अंक प्रकाशित किया और उन्हें "विज्ञान भास्कर" की उपाधि से सम्मानित करने का निर्णय लिया। (देखें "विज्ञान" का यह अंक)।

श्री वर्मा ने कहा कि कानपुर के साधक को इलाहाबाद में सम्मानित किया जाना सरस्वती और विज्ञान का सम्मान है। उन्होंने कहा कि बाबू श्याम नारायण कपूर जी ने विज्ञान के प्रचार-प्रसार में अहम् भूमिका अदा की। श्री कपूर ने अपने संपादन, लेखन से उत्कृष्ट कार्य किया है। श्री वर्मा ने कहा कि श्री कपूर को विज्ञान परिषद् ने 'विज्ञान भास्कर' उपाधि से विभूषित करके वास्तव में विज्ञान के सूर्य को सम्मान दिया है।

उन्होंने कहा कि विज्ञान लेखकों को संस्कृत पढ़ना चाहिए। इस भाषा के अध्ययन के बिना ज्ञान अधूरा होता है। संस्कृत में लिपिबद्ध पुराणों में विज्ञान की सामग्री प्रचुर मात्रा में है जिसे खोज कर देश के विकास के लिए बाहर लाना होगा और यह संस्कृत के अभाव में सम्भव नहीं हो सकता।

अपने सम्मान में आयोजित समारोह में बोलते हुए 'विज्ञान भास्कर' उपाधि से सम्मानित लेखक श्यामनारायण कपूर ने कहा कि मैं विज्ञान को लिखने के लिए अपने को योग्य नहीं मानता था। किन्तु विज्ञान के सम्पादक ने आत्म विश्वास बढ़ाया और 60 साल बाद मेरा पता लगाकर "विज्ञान भास्कर" की जो उपाधि दी है वह विज्ञान परिषद् की सदाशयता है। उन्होंने कहा कि मेरे पास जो विद्या थी उसे खर्च करता गया और ज्ञान बढ़ता गया। इसी प्राप्त ज्ञान को मैंने तमाम प्रबुद्ध, वैज्ञानिकों, लेखकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए प्रोफेसर हनुमान प्रसाद तिवारी ने कहा कि श्री श्याम नारायण कपूर जैसे प्रख्यात लेखक को सम्मानित करके विज्ञान परिषद् सम्मानित हुई है। उन्होंने कहा कि वैज्ञानिक होने के लिए केवल विज्ञान विषय पढ़ना ही जरूरी नहीं है, किसी विषय का सही विश्लेषण करने की क्षमता वाला हर व्यक्ति वैज्ञानिक होता है। उन्होंने कहा कि भाषा का समग्र अध्ययन करने वाला भाषा विज्ञानी होता है।

इस अवसर पर डॉ० चन्द्रिका प्रसाद जी, (इलाहाबाद) को "विज्ञान भास्कर"; डॉ० श्रवण कुमार तिवारी (वाराणसी), डॉ० रमेश चन्द्र तिवारी (वाराणसी), डॉ० गिरीश पाण्डेय (फैजाबाद), श्री शुकदेव प्रसाद (इलाहाबाद), डॉ० दिनेश मणि (इलाहाबाद) को लेखन/सम्पादन/विज्ञान लोकप्रियकरण के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए "विज्ञान वाचस्पति" उपाधि से विभूषित कर सम्मानित किया गया। डॉ० प्रभाकर द्विवेदी (इलाहाबाद) को "विज्ञान" में प्रकाशित उनके लेख पर वर्ष 1998 का "डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार" प्रदान किया गया।

इस समारोह में प्रो० पूर्ण चन्द्र गुप्त, डॉ० जे० एस० चौहान, डॉ० आर० के० दुबे, डॉ० ए० के० गुप्त, डॉ० एम० एम० राय, श्री डी० एम० श्रीवास्तव, श्री कपूर की पत्नी श्रीमती कपूर एवं उनके पुत्र श्री मनोज कपूर एवं नाती सहित अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

अंत में डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी ने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

पूर्व सम्पादक, "विज्ञान"

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पताः

डॉ० दिनेश मणि, डी० एस -सी०

संपादक विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग,

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

ISSN : 0373-1200

अंक : सितम्बर 1999

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

यह प्रति 5 रु०

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 85 अंक 6

सितम्बर 1999

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत, 1000 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

■

प्रकाशक
डॉ० शिव गोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

■

सम्पादक
डॉ० दिनेश मणि, डी० एस–सी०

■

मुद्रक
अरुण राय
कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

■

सम्पर्क
विज्ञान परिषद प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद - 211002

विषय सूची

सम्पादकीय

कुछ ही समय पहले जहाँ पूरा इलाका सूरज की तेज किरणों में तप रहा होता है, वहीं अचानक रात की काली चादर पूरी धरती को अपने आगोश में खींच लेती है। तापमान में तेजी में गिरावट आती है। पंछी चहचहाना बंद कर देते हैं और चमगादड़ शिकार की खोज में उड़ने लग जाते हैं। इतना ही नहीं, कुत्ते रोना शुरू कर देते हैं और गायें बेसमय सोने लगती हैं। समझिए कुछ देर के लिए तो जिंदगी ही थम जाती है। वास्तव में पूर्ण सूर्यग्रहण मानव इतिहास की एक हैरतअंगेज घटना है।

किंतु इसका यह आशय नहीं कि प्रकृति अपनी नियमबद्धता का अनुपालन करना बंद कर देती है। हम देखते हैं कि सूर्यग्रहण के पश्चात् भी सूर्य प्रतिदिन निश्चित समय पर उदित और अस्त होता है, जिससे बराबर दिन और रात का समय-चक्र चलता है। चन्द्र की कलाएँ निर्धारित गति के अनुसार ही विकसित होती हैं पूर्णिमा की रात तक और घटते-घटते अमावस्या पर पूर्णान्धकार बिन्दु तक पहुँच जाती हैं।

महासागर में ज्वार-भाटे की तीव्रता से लहरों का उत्ताल नर्तन विस्तृत और संकीर्ण होता है, लेकिन वह अपनी सीमाओं से कभी आगे नहीं बढ़ता। यथासमय ऋतुओं का आना-जाना होता है और तदनुसार वन-सम्पदा का विकास होता है एवं वन्य प्राणी पर्यावरण की रक्षा करते हैं; यह समझिए कि प्रकृति के राज्य में स्वचालित ढंगसे नियमबद्धता का अनुपालन होता है।

जरा सोचिए ! यदि ऐसा न हो–कई दिनों तक सूर्य उगे ही नहीं, चन्द्र अंधकार से निकल ही न पावे, महासागर अपनी सीमाएँ छोड़ दे या ऋतुएँ अपना क्रम भूल जायँ तो क्या हो ? मनुष्य ने इस स्थिति का अनुमान लगाया है और उसे ही प्रलय का नाम दिया है।

फिर भी क्या मनुष्य ने प्रकृति की नियमबद्धता से कोई शिक्षा ली है ? क्या वह अपनी भीतरी आवाज को सुनता है ? क्या वह अपनी परंपराओं और मर्यादाओं को मानता है ? क्या वह अपने ही बनाये नियमों और कानूनों का निःसंकोच उल्लंघन नहीं करता है ? शायद इसीलिए प्रकृति दंडित करती है अकाल फैलाकर, बाढ़ें लाकर, वनस्पतियों को सुखाकर और अन्य तरीकों से कि मनुष्य अपनी नियमहीनता को रोके। फिर भी क्या मनुष्य समझ रहा है ? भविष्य के खतरों को देख रहा है ? या फिर अनजान होकर प्रलय की ही प्रतीक्षा कर रहा है !

अब भी समय है यदि हम सँभल जायँ और प्रकृति से अपना नाता मजबूत कर लें तो इस प्रलय से बचा जा सकता है। कविवर जयशंकर प्रसाद ने बहुत ठीक कहा है—

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय।
समन्वय उसका करें समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।

दिनेश मणि

कृषि विकास में जैव-प्रौद्योगिकी

डॉ० अशोक कुमार गुप्त

वैज्ञानिक अनुसंधानों और प्रौद्योगिकी के विकास ने कृषि के क्षेत्र में अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। हरित क्रान्ति की अभूतपूर्व सफलता में विज्ञान का योगदान और प्रौद्योगिकी का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है अन्यथा जनसंख्या के विस्फोट के बावजूद खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता कदापि न होती। अगली शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में कृषि की दशा या दिशा क्या होगी यह अब किसानों व वैज्ञानिकों के सामने चुनौती के रूप में खड़ी है। वैज्ञानिक अनुसंधान व जीन आधारित तकनीकी की नवीन सफलताओं ने नये आयाम खोल दिये हैं और अब वैज्ञानिकों का दावा है कि अगली शताब्दी के कुछ ही वर्षों में सम्पूर्ण कृषि का परिदृश्य बदल जावेगा। कृषि पैदावार के साथ-साथ जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा सब्जियों की पोषकता भी कई गुना बढ़ाई जा सकती है। नई तकनीकी को किसान अपनाने में अभी संकोच कर रहे हैं पर इनकी पैदावार व गुणवत्ता को देख कर वे इन्हें भी अपनायेंगे। वैज्ञानिकों को ऐसा विश्वास है कि आगे आने वाले 10 वर्षों में कृषि क्षेत्र में व्यापक बदलाव आ जायेंगे और आनुवंशिक अभियान्त्रिकी एक क्रान्ति का रूप धारण कर लेगी।

जैव-प्रौद्योगिकी की उपलब्धियों के दूरगामी परिणामों तथा उनसे सम्बद्ध पारिस्थितिकीय संतुलन को दृष्टि में रख कर वैज्ञानिक जन ऐसी शोध में रत हैं जो तमाम पहलुओं से परिपूर्ण हों। यूरोप तथा अमेरिका में जीन आधारित सब्जियाँ और फल अब बाजारों में धूम मचा रहे हैं। इन्हें आनुवंशिकी द्वारा रूपान्तरित खाद्य की संज्ञा दी गई है। जैव-प्रौद्योगिकी से तैयार शाक-सब्जियाँ अनेक देशों जैसे अमेरिका, स्पेन, फ्रांस, कनाडा, मैक्सिको, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टीना आदि के बाजारों में खूब प्रचलित हो गई हैं। वहाँ बिकने वाली लगभग 55% सब्जियाँ तथा फल इसी तकनीकी से उगाये गये हैं।

भारत में भी कई स्थानों पर सफल परीक्षण किये गये हैं और भारतीय कृषि वैज्ञानिक इस ओर अनुसंधानरत हैं। हरियाणा में बहुराष्ट्रीय कम्पनी ''प्रो एग्रो'' के वैज्ञानिकों ने सरसों, टमाटर, बंदगोभी, फूलगोभी, बैंगन जैसी सब्जियों पर अनेक प्रयोग किये हैं। एक जीवाणु के अन्दर से जीन निकाल कर सब्जियों के बीजों में प्रत्यारोपित करने में भारतीय वैज्ञानिकों ने अभूतपूर्व सफलता पायी है। ये विकसित बीज कीटरोधी हैं तथा पैदावार भी अपेक्षाकृत कई गुना है। बाजारों में आने से पूर्व सरसों पर परीक्षण अभी भी चल रहा है। टमाटर, गोभी, बैंगन जैसी सब्जियों में कीट का प्रकोप अधिक होता है, जिन्हें जीन प्रत्यारोपण तकनीकी के माध्यम से कीटरोधी बनाया गया है। वैज्ञानिक जन चावल, गेहूँ, गन्ना, तम्बाकू, सोयाबीन को भी कीट व रोगरोधी बनाने में लगे हैं। सरसों की फसल को फफूँदरोधी बनाने में दिल्ली विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक लगे हैं। बंगलौर में एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी, मोनसेंटो के अनुसंधान केन्द्र में गन्ना और चावल में जीन प्रत्यारोपण तकनीकी से कीटरोधी व इनके पैदावार बढ़ाने वाले गुण विकसित करने हेतु अनुसंधान चल रहे हैं।

आधुनिक आनुवंशिक अभियान्त्रिकी द्वारा पौधे, पशुओं तथा अन्य जीवों को रूपान्तरित कर चयनात्मक प्रजनन द्वारा केवल एक ही प्रकार की फसल को संकर किया जाता है जैसे कि एक किस्म के आलू को ही दूसरी किस्म या फिर कथित जंगली आलुओं के साथ संकरित किया जाता है जिससे उत्पादकता व गुणवत्ता में सुधार किया जा सके। पुनर्योजित डी० एन० ए० के प्रयोग से आनुवंशिक अभियान्त्रिकी तकनीकों द्वारा पौधों में प्रत्यारोपित किया जाता है।

आनुवंशिक अभियान्त्रिकी का आविर्भाव 1980 के आरम्भ में हुआ जब कैलीफोर्निया के वैज्ञानिकों ने रेस्ट्रिक्शन एन्जाइमों द्वारा जीनों को काट कर रेस्ट्रिक्शन डी० एन० ए० (आर-डी० एन० ए०) प्राप्त किया। अनेक देशों में आर-डी० एन० ए० द्वारा किसी भी विशेषता या ट्रेट वाले जीन को एक जीव से निकाल कर दूसरे जीव में प्रत्यारोपित करने तथा उनसे ऐच्छिक उत्पादन प्राप्त करने की होड़ लगी है।

मौसम परिवर्तन तथा आनुवंशिक और कायिक प्रतिबन्ध जो जीवों की क्षमताओं को अपने पर्यावरण के अनुकूल परिवर्तित होने से रोकते हैं, उनसे हम आनुवंशिक अभियान्त्रिकी द्वारा जीवों की स्पर्धा करने, उत्तरजीविता और प्रजनन की क्षमता को बढ़ाने में सफल हुये हैं। जुगनू की जीन वाली मक्का, चूहे की जीन वाली तम्बाकू, फ्लाउन्डर की जीन वाली शीतरोधी साल्मन मछली, जो समुद्र में हिमांक ताप पर भी जीवित रह सकती है, आदि अनेक उदाहरण हैं।

फसलों को अनेक उद्देश्यों से अभियांत्रिकी द्वारा रोग और कीटरोधी बनाया गया है जैसे कैनोला में तेल अंश को परिवर्तित करना, टमाटरों को लम्बे समय तक यथावत् बनाये रखना। दलहनी फसलों की जड़ों में पायी जाने वाली ग्रन्थियों में उपस्थित जीवाणु "राइजोबियम" द्वारा बहुमूल्य नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्रिया होती है। इन जीवाणुओं में उपस्थित जीनों का गैर-दलहनी फसलों में समावेश कर अधिक प्रोटीनयुक्त फसलों का उत्पादन करना अब सम्भव हो गया है। आर-डी० एन० ए० द्वारा मक्का की जड़ों में जीवाणु स्थापित कर तथा उनसे नाइट्रोजन स्थिरीकरण किये जाने का प्रयास चल रहा है।

पौधों में ट्यूमर कोशिकायें बनाने वाले जीवाणु **ऐग्रो-बैक्टीरियम ट्यूमेफेसियन** के डी० एन० ए० में उपस्थित प्लासमिड जब पौध की कोशिका में पहुँचते हैं तो सक्रिय हो कर कोशिका विभाजन व अपने प्रसार की क्रिया को उत्तेजित करते हैं। परिणामस्वरूप जीवाणु की कोशिकाओं का संश्लेषण तेजी से होने लगता है जिससे संक्रमित स्थान ट्यूमर के रूप में तेजी से बढ़ने लगता है। इस **ऐग्रोबैक्टीरियम**जीवाणु को वैज्ञानिकों ने पौधों में ऐच्छिक जीन को प्रत्यारोपण करने के लिये वाहक के रूप में उपयोग करने में सफलता प्राप्त की है। **ऐग्रोबैक्टीरियम** को रिस्ट्रिक्शन एन्जाइम के साथ उपचारित किया जाता है, जो जीवाणु के डी० एन० ए० की कुण्डली को खोल कर डी० एन० ए० को टुकड़ों में बाँट देता है। इन टुकड़ों को सेम की कोशिका में प्रविष्ट किया जाता है जिससे डी० एन० ए० पुनर्योजित होकर फेसोलिन नामक प्रोटीन को संश्लेषित करने वाले नये डी० एन० ए० का निर्माण होता है। इस नये संश्लेषित डी० एन० ए० को जीवाणु के कोशिका द्रव के माध्यम से मिलाया जाता है। यह नया डी० एन० ए० जीवाणु के डी० एन० ए० के अणुओं से पुनर्योजन की क्रिया द्वारा अनेक समान डी० एन० ए० की रचना करता है। इस नये डी० एन० ए० में प्रोटीन-संश्लेषण का गुण होता है जिसे सूर्यमुखी के पौधे में प्रविष्ट किया जाता है। जब जीवाणु की वृद्धि होती है तब सूर्यमुखी के कोशिका द्रव में इस ऐच्छिक डी० एन० ए० के प्रभाव से प्रोटीन के संश्लेषण में अभूतपूर्व वृद्धि होती है तथा पौधे में प्रोटीन का उत्पादन कई गुना बढ़ जाता है। इसी सफलता के बाद अभी हाल में ही वैज्ञानिकों ने मटर की जीन को तम्बाकू में स्थानान्तरित किया है।

एक दूसरी विधि में वायरस का उपयोग किया जाता है। पौधों में रोग पैदा करने वाले वायरस आर० एन० ए० या डी० एन० ए० के बने होते हैं जिसमें प्रोटीन का कवच होता है। जब ये वायरस जीवित कोशिका में पहुँचते हैं तब इनके प्रोटीन का कवच घुल जाता है तथा वायरस के डी० एन० ए० या आर० एन० ए० सक्रिय होकर पूरे कोशिका की उपापचयी क्रिया पर अपना नियंत्रण कर लेते हैं और अपने आर० एन० ए० के समान अनेक आर० एन० ए० व प्रोटीन का संश्लेषण कर अपने समान असंख्य वायरसों का निर्माण करते हैं। वैज्ञानिक इस क्रिया को नियंत्रित कर लाभकारी व रोगरोधी आर० एन० ए० को कम अहितकारी वायरस के माध्यम से इच्छित डी० एन० ए० को कोशिका में प्रविष्ट करा कर पौधों में रोगरोधी जीन पैदा करने में सफल हुये हैं। किसी जीव में जीनों का पहचान करना, उनको ऐच्छिक लाभ के लिये काटना-छाँटना तथा पुनर्योजन विधि द्वारा नये डी० एन० ए० का संश्लेषण व उनको किसी पौध या कोशिका में प्रविष्ट कर ऐच्छिक लाभ लेना एक दुरूह कार्य है। एक छोटी सी असावधानी पूरे प्रयत्न को व्यर्थ कर सकती है। इस तकनीकी का समुचित उपयोग कर पौधों में सुधार लाना ही एकमात्र उद्देश्य होना चाहिये।

विश्व में अनेक स्थानों व प्रयोगशालों में जैव-प्रौद्योगिकी के परीक्षणों की होड़ सी लगी है। जैव-विविधता को सँजोये रखकर इन विविधताओं के उपयोग से अधिक उत्पादन करने वाले व अधिक गुणवत्ता वाले खाद्यान्नों, फल और सब्जियों की भरमार अगली शताब्दी में वरदान सिद्ध होगी, ऐसा अनुमान है।

विभागाध्यक्ष, कृषि जैव-रसायन,
इलाहाबाद एग्रीकल्चर इंस्टीट्यूट, नैनी, इलाहाबाद

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के पुरोधा—विक्रम साराभाई

डॉ० सुबोध महन्ती

> "न कोई नेता होता है और न किसी का नेतृत्व किया जाता है। फिर भी यदि कोई नेता की पहचान करता है तो इसके लिए जरूरी है कि वह व्यक्ति निर्माता न होकर सृजनकर्ता हो। उसे बीज के विकास के लिए भूमि उपलब्ध करानी पड़ती है और इसके अनुकूल वातावरण का विकास करना पड़ता है। नेतृत्व के लिए जरूरी है कि उसे अपने आप को बार-बार यह आश्वासन न देना पड़े कि वह नेता है।"
>
> —विक्रम साराभाई

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के साथ साराभाई का नाम सदैव जुड़ा रहेगा। साराभाई ही अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में भारत को विश्व मानचित्र पर लाए थे। लेकिन उनका कार्यक्षेत्र अंतरिक्ष कार्यक्रम तक ही सीमित नहीं था। अन्य क्षेत्रों में भी उनका योगदान समान रूप से महत्वपूर्ण है। कपड़ा, ओषधि, नाभिकीय ऊर्जा, इलेक्ट्रॉनिक्स आदि क्षेत्रों में वे जीवनपर्यंत कार्य करते रहे।

साराभाई के व्यक्तित्व में दो प्रमुख बातें झलकती हैं। एक तो यह है कि उनकी रुचि काफी विस्तृत थी। उनके व्यक्तित्व की दूसरी मुख्य बात थी, अपने विचारों को संस्थागत रूप देने की क्षमता। साराभाई एक सृजनशील वैज्ञानिक के साथ-साथ एक सफल और अग्रद्रष्टा उद्यमी, शिक्षाविद्, कला के पारखी, सामाजिक परिवर्तन के प्रखर समर्थक तथा अग्रणी प्रबंध शिक्षक भी थे।

लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इतने गुणों के साथ-साथ वे एक अच्छे इंसान भी थे। दूसरों के प्रति वे हमेशा सहानुभूति रखते थे। वे ऐसे व्यक्ति थे जो अपने संपर्क में आने वाले हर व्यक्ति को खुश कर उसका दिल जीत लेते थे। किसी भी अजनबी से वे थोड़े समय में ही घुलमिल जाते थे। ऐसा इसलिए संभव था क्योंकि वे हर व्यक्ति का सम्मान करते थे। दूसरों के प्रति सम्मान उनकी बातचीत और उनके बर्ताव में साफ झलकता था।

साराभाई एक स्वप्रद्रष्टा थे। कठोर परिश्रम करने की उनकी क्षमता अतुलनीय थी। एक स्वप्रदर्शी के रूप में वे न सिर्फ अवसरों को ढूँढ निकालते थे, बल्कि अवसरों की सृष्टि भी करते थे। जैसा कि अपनी पत्नी मेरी क्यूरी (1867-1934) के साथ पोलोनियम और रेडियम का आविष्कार करने वाले फ्रांसीसी भौतिकविद प्येअर क्यूरी (1859-1906) ने कहा था, उनके लिए जीवन का उद्देश्य था "जीवन को एक स्वप्र बनाना और उस स्वप्र को वास्तविकता में बदलना।" यही नहीं, साराभाई ने अनेक लोगों को स्वप्रदर्शी बनने और फिर सपनों को साकार करने का तरीका सिखाया। भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की सफलता इसका एक अच्छा उदाहरण है। साराभाई के व्यक्तित्व में एक सृजनशील वैज्ञानिक के साथ-साथ दूरदर्शी उद्यमी तथा देश के आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक विकास के लिए आवश्यक संस्थानों के कल्पनाशील निर्माता का मिश्रण था। उनके जीवन का अधिकांश समय अनुसंधान संबंधी गतिविधियों में बीता। अपनी असामयिक मृत्यु तक वे अनुसंधान कार्यों का निरीक्षण करते रहे। उनकी देख-रेख में 19 लोगों ने पीएच डी की। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में उनके 86 शोधपत्र प्रकाशित हुए।

इनमें कुछ शोधपत्र उन्होंने अकेले लिखे थे तथा कुछ अपने सहयोगियों के साथ। साराभाई जिस संगठन में कार्य करते थे, वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति को उनसे सीधे मिलने की छूट थी। साराभाई संगठन के सभी कर्मियों को समान सम्मान देते थे और अपने पास बिठाते थे। उनका मानना था कि हर व्यक्ति की अपनी प्रतिष्ठा होती है। दूसरों की प्रतिष्ठा को बरकरार रखने का वे भरसक प्रयत्न करते थे।

साराभाई किसी कार्य को अंजाम देने के लिए हमेशा बेहतर और प्रभावी उपाय तलाशते थे। युवाओं की उन्हें विशेष चिंता थी। उन्हें उनकी क्षमता पर अगाध विश्वास था। युवाओं और अवसर देने के लिए वे हमेशा तत्पर रहते थे।

विक्रम अंबालाल साराभाई का जन्म 12 अगस्त, 1919 को अहमदाबाद के एक संपन्न परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम अंबालाल साराभाई और माता का नाम सरलादेवी साराभाई था। उनका बचपन अहमदाबाद स्थित पैतृक निवास 'द रिट्रीट' में बीता। हर क्षेत्र से जुड़े मशहूर लोगों का उनके घर आना-जाना था। साराभाई के व्यक्तित्व पर इसका गहरा असर हुआ। मैडम मारिया मांटेसरी के विचारों से प्रभावित होकर सरलादेवी ने एक स्कूल खोला था। साराभाई की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा यहीं हुई। अहमदाबाद के गुजरात कॉलेज से इंटर साइंस करने के बाद उन्होंने 1937 में कैंब्रिज (ब्रिटेन) के सेंट जॉन्स कालेज में दाखिला लिया। यहाँ से 1940 में उन्होंने प्राकृतिक विज्ञान में ट्राइपोस पास किया। दूसरा विश्व युद्ध शुरू होने पर वे भारत लौट आए तथा यहां बेंगलूर स्थित भारतीय विज्ञान संस्थान से जुड़े। यहाँ चंद्रशेखर वेंकट रामन् की देख-रेख में उन्होंने ब्रह्मांड किरणों का अध्ययन शुरू किया। 'प्रोसीडिंग्स ऑफ इंडियन अकादमी ऑफ साइंसेज' में उनका पहला शोधपत्र "टाइम डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ कॉस्मिक रेज़" शीर्षक से प्रकाशित हुआ। सन् 1940 से 1945 के बीच साराभाई ने ब्रह्मांड किरणों पर जो अध्ययन किया, उनमें गाइगर मुलर गणित्र के साथ ब्रह्मांड करणों के समय-विचरण का अध्ययन भी शामिल है। यह अध्ययन उन्होंने बेंगलूर के अलावा कश्मीर में भी किया था।

विश्वयुद्ध समाप्त होने पर साराभाई पुनः कैंब्रिज गए और वहां ब्रह्मांड किरण भौतिकी में पी-एच० डी० की। कैंब्रिज विश्वविद्यालय से उन्हें 1947 में "उष्णकटिबंधीय अक्षांशों में ब्रह्मांड किरणों की जांच" शोध-प्रबंध पर पीएच डी की डिग्री मिली। उन्होंने 6.2 MeV की गामा किरणों की मदद से यूरेनियम-238 के फोटोजन विखंडन के अनुप्रस्थ काट का सही माप बताया। यह उनके शोध-प्रबंध का ही एक अंश था। पी-एच० डी० की डिग्री मिलने के बाद वे भारत लौट आए तथा ब्रह्मांड किरणों पर अनुसंधान जारी रखा। भारत आकर उन्होंने अंतराग्रहीय अंतरिक्ष, सौर-भौमिक संबंध तथा भू-चुंबकत्व का अध्ययन किया।

साराभाई एक महान संस्थान निर्माता थे। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में संस्थानों की स्थापना में मदद की। अहमदाबाद टेक्सटाइल इंडस्ट्रीज रिसर्च एसोसिएशन उनकी मदद से बनने वाला पहला संस्थान था, हालांकि उन्होंने वस्त्र प्रौद्योगिकी में कोई औपचारिक शिक्षा नहीं ली थी। कैंब्रिज से पीएच. डी. की डिग्री लेकर लौटने के बाद ही उन्होंने इस कार्य को अंजाम दिया था। इस एसोसिएशन का गठन भारत में कपड़ा उद्योग के आधुनिकीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। इसके गठन से पहले अधिकतर कपड़ा मिलों में गुणवत्ता नियंत्रण की कोई तकनीक नहीं थी। इस एसोसिएशन में साराभाई ने विभिन्न दलों और विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े लोगों में आपसी तालमेल का वातावरण तैयार किया। इससे सभी लाभान्वित हुए। एसोसिएशन से लोगों का चयन करते समय साराभाई ने अनुभव की आवश्यकता का ध्यान नहीं दिया। उन्होंने अनेक संस्थानों की स्थापना की। ये संस्थान एक-दूसरे के अनुभवों से लाभान्वित होते थे। उनके द्वारा स्थापित कुछ विख्यात संस्थान हैं-

1. भौतिकी अनुसंधान प्रयोगशाला, अहमदाबाद
2. भारतीय प्रबंध संस्थान, अहमदाबाद
3. सामुदायिक विज्ञान केन्द्र, अहमदाबाद
4. अभिनय कला दर्पण अकादमी, अहमदाबाद, (पत्नी मृणालिनी के साथ मिलकर)
5. विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र, तिरुअनंतपुरम
6. अंतरिक्ष अनुप्रयोग केन्द्र, अहमदाबाद (साराभाई द्वारा स्थापित छह संस्थाओं/केन्द्रों के विलय से यह संस्थान अस्तित्व में आया)।
7. फास्ट ब्रीडर टेस्ट रिएक्टर, कल्पक्कम
8. परिवर्ती ऊर्जा साइक्लोट्रॉन परियोजना, कलकत्ता
9. भारतीय इलेक्ट्रॉनिक्स निगम लिमिटेड, हैदराबाद
10. भारतीय यूरेनियम निगम लिमिटेड, जदूगुड़ा, बिहार

जनवरी 1966 में होमी जहाँगीर भाभा की मृत्यु के बाद साराभाई से परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष पद की जिम्मेदारी लेने का आग्रह किया गया। साराभाई उस समय तीन प्रमुख क्षेत्रों में रत थे। उनके अपने शब्दों में (अध्यक्ष पद स्वीकार करते हुए तत्कालीन प्रभानमंत्री के लिखे पत्र के मुताबिक): "इस समय मुझपर तीन महत्वपूर्ण कार्यों की जिम्मेदारी है। मेरी पहली जिम्मेदारी भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला में निदेशक और ब्रह्मांड किरण भौतिकी के प्रोफेसर के रूप में है। यहाँ मेरा अनुसांधान कार्य जारी है तथा यहाँ मैं पीएच डी कर रहे छात्रों का निर्देशन भी करता हूं। मेरी दूसरी जिम्मेदारी अंतरिक्ष कार्यक्रम से जुड़ी राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष में रूप में है। यहाँ मुझे रॉकेट तथा अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी की विकास-परियोजनाओं पर नजर रखनी पड़ती है। इनके अलावा मुझपर रसायन और ओषधि से जुड़े व्यापारिक घरानों के लिए नीति निर्धारण, परिचालन, अनुसंधान और मूल्यांकन की भी जिम्मेदारी है।" साराभाई अमेरिका स्थित मैसाच्युसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी की नाभिकीय विज्ञान प्रयोगशाला से भी जुड़े हुए थे। इतनी जिम्मेदारियों के बावजूद साराभाई ने देशहित में अपने कंधों पर एक और जिम्मेदारी लेने से इनकार नहीं किया, हालांकि इसके लिए उन्हें पारिवारिक व्यवसाय से अलग होना पड़ा। मई 1966 से मृत्यु तक वे भारत के परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम और अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम, दोनों के केन्द्र में रहे।

साराभाई ने अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी में अग्रणी स्थान बना लिया था। साराभाई भारतीय रॉकेट प्रौद्योगिकी तथा देश में उपग्रह के जरिए टेलिविजन प्रसारण कार्यक्रम के भी अगुवा रहे।

अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में शीर्ष स्थान हासिल करने वाले साराभाई की दवा उद्योग में भी गहरी पैठ थी। वे दवा उद्योग से जुड़े उन थोड़े लोगों में शुमार थे जो इस उद्योग में गुणवत्ता नियंत्रण लागू करने और उसे किसी भी कीमत पर कायम रखने के पक्षधर थे। साराभाई ने ही दवा उद्योग में 'इलेक्ट्रॉनिक डाटा प्रोसेसिंग' और 'ऑपरेशंस रिचर्स टेकनीक' की शुरुआत की। भारतीय दवा उद्योग को आत्मनिर्भर बनाने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

साराभाई ऐसे व्यक्ति थे जो विज्ञान के साथ-साथ कला व संस्कृति में दखल रखते थे। संगीत के अलावा फोटोग्राफी, पुरातत्व व ललित कला में भी उनकी रुचि थी। पत्नी मृणालिनी के साथ उन्होंने 'दर्पण' नामक संस्था की स्थापना की थी जो अभिनय कला के प्रति समर्पित थी। साराभाई का मानना था कि वैज्ञानिक को कभी एकांत में नहीं रहना चाहिए। वे इस बात के भी खिलाफ थे कि कोई वैज्ञानिक समाज की समस्याओं को सिर्फ अकादमिक नजरिये से देखे। देश में विज्ञान की शिक्षा के प्रति वे हमेशा चिंतित रहते थे। विज्ञान-शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए ही उन्होंने सामुदायिक विज्ञान केंद्र की स्थापना की थी। उनमें विलक्षण प्रतिभा थी। किसी व्यक्ति से कुछ मिनट बात करके ही वे उसकी योग्यता जान लेते थे। वे अक्सर कहा करते थे कि मैं व्यक्ति की आंखों की चमक से उसके बारे में जान सकता हूँ। वह व्यक्ति के व्यवस्थित विकास में विश्वास करते थे। लोगों को विकास का पूर्ण अवसर देने के लिए वे हर तरीके से उनकी मदद करते थे। उनका व्यक्तित्व काफी प्रीतिकर था। कहा जाता है कि अपनी हँसी मात्र से वे अपने साथ काम करने वालों में प्रेरणा भर देते थे।

30 दिसंबर, 1971 को तिरुअनंतपुरम के कोवल नामक स्थान में साराभाई का देहांत हो गया। उनके सम्मान में सिडनी स्थित अंतर्राष्ट्रीय खगोल-विज्ञान संघ ने 1974 में सी ऑफ सेरेनिटी में चंद्रमा के बेसल ज्वालामुखी विवर को 'साराभाई क्रेटर' नाम दिया था।

विज्ञान प्रसार, दिल्ली

"विज्ञान और टेक्नोलॉजी की कोई सीमाएं नहीं हैं। कोई भी अंग्रेजी विज्ञान, फ्रांसीसी विज्ञान और अमेरिकी विज्ञान और चीनी विज्ञान की बात नहीं कहता। विज्ञान देशों से बड़ा है। अतः भारतीय विज्ञान जैसी कोई चीज नहीं होनी चाहिए। टेक्नोलॉजी पर भी ऐसी ही बात लागू होती है। इन प्रश्नों पर संकुचित राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखने से आपका विज्ञान, आपकी टेक्नोलॉजी और आपका काम भी संकीर्ण हो जाएगा।"

—पं० जवाहर लाल नेहरू

लुप्त होने वाला है पर्यावरण का सफाईकर्मी 'गिद्ध'

विजय चितौरी

प्रदूषण आज की विश्वव्यापी समस्या है। धरती का अधिकांश जल, स्थल और वायुमण्डल आज कमोबेश प्रदूषण की चपेट में है। सबसे बड़ी विडंबना तो यह है कि प्रकृति द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिये बनाई गयी प्राकृतिक व्यवस्था भी छिन्न-भिन्न होती जा रही है। गिद्धों का लुप्त होना कुछ ऐसी ही समस्या है। मृत जानवरों को कुछ ही मिनटों में चट करके खत्म कर देने वाले गिद्धों का समूह अब कहीं दिखता नहीं। जानवरों के शव कई-कई दिन तक सड़ते रहते हैं। कुत्ते और कौवे उन्हें नोच-नोच कर कई-कई दिन तक प्रदूषण फैलाते रहते हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप में गिद्धों की आठ प्रजातियाँ पाई जाती हैं। यूँ तो सभी लुप्त होने की स्थिति में हैं लेकिन अभी तक केवल दाढ़ी वाले गिद्ध की प्रजाति को ही वन्य जीव संरक्षण कानून की अनुसूची में शामिल किया गया है।

गिद्ध एक सामुदायिक प्राणी है और समूह में ही रहता और खाता है। ऐसा देखा गया है कि दो सौ गिद्धों का एक समूह 80 किलो वजन के मृत पशु को सिर्फ 20 मिनट में समाप्त कर देता है। गिद्ध ऐसे स्थानों में भी मृत जानवरों तक पहुंच सकते हैं जहाँ लकड़बग्घे और भेड़िये जैसे अन्य पशुपक्षी जानवर नहीं पहुँच सकते। यही नहीं, गिद्ध पानी में तैरती मृत देह को भी चट कर जाते हैं। इनकी एक खासियत यह है कि अन्य मुर्दाखोरों की तरह ये सिर्फ रात को ही शव नहीं खाते बल्कि दिन में भी खाते हैं। गिद्धों की सूँघने की इन्द्रिय बेहद कमजोर होती है। शायद यही वजह है कि गिद्ध सड़े-गले मुर्दों को भी खा जाते हैं, जबकि अन्य मुर्दाखोर जानवर ऐसे मांस के पास भी नहीं फटकते।

गिद्धों ने मृत पशुओं के अनवरत खोज के लिए ऊर्जा बचाने वाले तरीके विकसित कर लिये हैं। शारीरिक ऊर्जा खर्च करके पंखों को फड़फड़ाकर उड़ने के बदले वे इत्मिनान से पंख फैलाये उठती वायु धाराओं पर तैरते रहते हैं। सुबह के वक्त वे पेड़ों, चट्टानों या ऊँचे मकानों पर बैठे रहते हैं। जब सूरज आसमान पर चढ़ जाता है और जमीन को गर्म कर देता है, तो जमीन से गर्म हवा ऊपर उठने लगती है। इस उठती हवा को गिद्ध बड़ी सूक्ष्मता से भाँप लेते हैं और दोपहर होते-होते उसकी सहायता से गोल-गोल उड़ते हुए वे आसमान पर इतना ऊँचा पहुँच जाते हैं कि कोरी आंखों से वे धूल के कण जैसे लगते हैं।

आँधी, तूफान, चक्रवात आदि के प्रकट होने से पहले हवा ऊपर की ओर बड़े वेग से बढ़ने लगती है, इन धाराओं का उपयोग करते हुए गिद्ध ऊपर बढ़ने लगते हैं, तब उन्हें सूर्य द्वारा गर्मायी गयी वायु पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। इसी प्रकार समुद्र की ओर निकली हुई चट्टान भी गिद्धों को बहुत प्रिय है, क्योंकि वायु समुद्र से टकराकर ऊपर की ओर उठती है।

गिद्ध को आमतौर पर मनहूस और खून का प्यासा पक्षी समझा जाता है और इसके बारे में एक और अंधविश्वास यह भी है कि जहाँ गिद्ध का बसेरा होता है वह स्थान वीरान हो जाता है। अर्थात् वहाँ का जीवन समाप्त हो जाता है। विशेषज्ञों का कहना है कि इन बातों में कोई सच्चाई नहीं है। लोगों का ख्याल है कि गिद्ध खाने का सामान और मांस झपटकर ले जाते हैं इसी कारण से गिद्ध को गोश्तखोर जैसे नामों से भी पुकारा जाता है। इस बारे में वैज्ञानिकों का कहना है कि गिद्ध के पंजे इतने मजबूत नहीं होते कि वह कोई वजनी चीज उठा सके और गिद्ध का अपना वजन ही इतना ज्यादा होता है कि उसके पंख उससे ज्यादा वजन उठाने पर उड़ान नहीं भर सकते।

यह माना जाना भी गलत है कि गिद्ध मनहूस होता है और वीराने में रहता है। दरअसल गिद्ध मुर्दों का मांस खाता है इसलिए अनजाने में ही उसके बारे में इस तरह के बेबुनियाद अंधविश्वास पाल लिए गये हैं। वैसे भारी पक्षी होने के कारण गिद्ध इंसानों से और आबादी वाले इलाकों से कुछ दूरी बनाये रखता है। गिद्ध को उड़ान भरने में कुछ समय लगता है और अगर उस पर अचानक कोई हमला कर दे तो उसका बचना मुश्किल हो जाता है। शायद यही वजह है कि गिद्ध इंसानों

से दूरी बनाये रखते हैं। वैसे गिद्ध की चोंच, पंजों और शरीर के बाकी भागों को आरोग्यकारी माने जाने का भी अंध-विश्वास है और इस बारे में फैले अंधविश्वासों के कारण इनका बड़ी संख्या में शिकार किया गया है और इनसे भी इनकी संख्या में कमी आयी है।
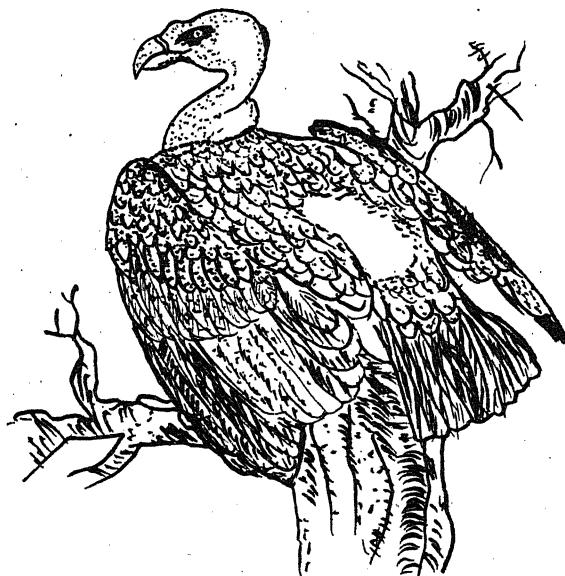
80 के दशक तक देश के सभी हिस्सों में गिद्धों की कोई कमी नहीं थी। लेकिन उसके बाद देश के हर हिस्से में इनकी संख्या लगातार घटती गयी है। विश्व वन्य जीव कोष के एक वरिष्ठ प्रोग्राम अधिकारी एम० एस० स्थीसन के अध्ययन के अनुसार 1980 के दशक के शुरू में दिल्ली में पाँच हजार से ज्यादा गिद्ध थे। आज इनकी संख्या घटकर एक सौ से भी कम हो गयी है। गिद्धों की संख्या में यह गिरावट मुख्यतः शहरी इलाकों में गिद्धों के लिए भोजन की कमी होने से आयी है। इसके अलावा शहरों में गिद्धों से टकराने के कारण विमानों के दुर्घटनाग्रस्त होने की कई घटनाएँ होने के बाद इन्हें यहाँ से खदेड़ने के अभियान के कारण भी इनकी तादाद कम हो गयी है।

90 के दशक में शहरों में आबादी का जमाव बेहद बढ़ा। आबादी बढ़ने के साथ यहाँ डेरी फार्मों का विस्तार हुआ। इस दौरान गोश्त के लिए जानवरों को अंधाधुंध काटकर उनके बेकार भागों को खुले में फेंक दिया जाता था। गिद्ध चूँकि मृत मांस या यूँ कहें कि सड़ा मांस खाने वाले प्राणी हैं, इसलिए इस दौरान दिल्ली में इनकी संख्या में काफी इजाफा हुआ। इसकी संख्या बढ़ने का नतीजा यह हुआ कि 80 के दशक में और 90 के दशक के शुरू में पक्षियों के टकराने से विमानों के दुर्घटनाग्रस्त होने की कई घटनाएं हुई। इन घटनाओं के चलते अधिकारियों ने इस कानून का सख्ती से पालन करवाना शुरू किया कि हवाई अड्डे के दस कि० मी० के घेरे में ऐसी कोई भी चीज खुले में न फेंकी जाय, जिससे पक्षी आकर्षित होते हों। स्थीसन कहते हैं कि इस आदेश के पालन के साथ ही शहरी क्षेत्रों में गिद्धों की भुखमरी का दौर शुरू हो गया।

बांबे नेचुरल सोसाइटी और दिल्ली के विज्ञान और पर्यावरण संस्थान ने अभी हाल ही में एक अध्ययन किया है, जिससे पता चला है कि भारत में गिद्ध जैसे अनेक मांसभक्षी पक्षी धीरे-धीरे विलुप्त होते जा रहे हैं। इसका मुख्य कारण कीटनाशकों का बढ़ता प्रयोग पाया गया है। कीटनाशक पदार्थ घास-चारे के माध्यम से गाय-बकरियों और अन्य शाकाहारी प्राणियों के शरीर में जमा हो जाते हैं। इन जानवरों के मरने पर जब गिद्ध उनके शवों को खाते हैं, तो ये कीटनाशक इन पक्षियों के शरीर में चले जाते हैं। इससे उनकी प्रजनन क्रिया गड़बड़ा जाती है और उनकी नयी संतति पैदा नहीं होती। इससे धीरे-धीरे उनकी संख्या घट रही है। एक अन्य कारण से भी आज गिद्ध आदि पक्षी कम होने लगे हैं। मनुष्य ने उनके घोसला बनाने लायक बड़े पेड़ों को काट डाला है। हमारे देहातों में ऐसा बहुत हुआ है। हर उपलब्ध जमीन पर अब खेती की जाने लगी है। इससे गिद्धों के लिए एक विडंबनापूर्ण स्थिति पैदा हो गयी है।

गिद्धों के लुप्त होने के कुछ अन्य कारण भी हैं। जैसे आंध्र प्रदेश के गुंटुर और प्रकाशम जिलों में आदिवासी मांस खाने के लिये गिद्धों का शिकार करते हैं। कुछ स्वार्थी लोग बूढ़े और अशक्त जानवरों को जहर देकर मार डालते हैं। ऐसा वे उनका चमड़ा प्राप्त करने के लिए करते हैं। ऐसे जानवरों का मांस खाने के बाद गिद्धों की बड़ी संख्या में मौतें हुई। बहरहाल कारण कुछ भी हो लेकिन सच्चाई यह है कि यदि उपाय नहीं किये गये तो शीघ्र ही पर्यावरण का यह नायाब सफाईकर्मी गिद्ध लुप्त हो जायेगा।

संपर्क : घूरपुर, इलाहाबाद

जल-प्लावन–सिंचित क्षेत्रों की गम्भीर समस्या

डॉ० डी० डी० ओझा एवं गोविन्द शर्मा

विश्व के शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में सिंचित कृषि के आरम्भ होने से जल-प्लावन या जलमग्नता तथा मृदा लवणीयता जैसी दोहरी समस्याओं का विकास हुआ है। लवणयुक्त मृदाएँ लगभग सभी प्रकार की प्राकृतिक दशाओं एवं विश्व के सभी उपमहाद्वीपों में पाई जाती हैं, यद्यपि लवण ग्रसित मृदाएँ सिंचित एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में अधिक पाई जाती हैं। हमारे देश में इन समस्याओं के कारण मृदा की उपयोगिता में ह्रास को पिछली सदी में पहली बार पहचाना गया। इस समस्या के बारे में अन्वेषण करने पर विदित हुआ कि नहर द्वारा सिंचाई करने पर किए गए खर्च का अधिक समय तक अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए हर सिंचाई परियोजना के साथ-साथ जल निकास की योजना भी बनानी चाहिए। अतः यह अत्यन्त ही आवश्यक हो गया है कि जल निकास से सम्बन्धित समस्या की जानकारी तथा उनके संभावित हलों की जानकारी कृषि-स्तर के कार्यकर्त्ताओं, प्रसार अधिकारियों एवं किसानों को भी हो, जिससे राष्ट्रीय स्तर पर इस समस्या का समाधान किया जा सके।

हाल ही में अन्तर्राष्ट्रीय संस्था, एफ० ए० ओ० द्वारा किए गए अध्ययन से विदित हुआ है कि विश्व की लगभग 7 प्रतिशत मृदाएँ किसी न किसी स्तर पर लवण से प्रभावित हैं। हमारे देश में उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार 2.5 मिलयन हेक्टर सिंचित लवणीय मृदाएँ हैं। इसके साथ ही लगभग सारी सिंचाई परियोजनाओं में जल-प्लावन अथवा जल-मग्नता तथा मृदा लवणीयता का स्तर लगातार बढ़ने से मृदाएं खराब हो रही हैं। यदि हम समस्याग्रस्त क्षेत्रों का सांगोपांग मानचित्र तैयार करें तो यह क्षेत्र कहीं अधिक होगा। ऐसे शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में जहाँ सतही एवं अधो सतही जल निकास व्यवस्था अच्छी नहीं है, वहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध होने से भूमिगत जल का स्तर ऊपर आ गया है।

कई नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्रों में भूमिगत जलस्तर इतनी तेजी से ऊपर उठ रहा है कि इन क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर भूमि जलमग्न हो जाने के कारण कृषियोग्य नहीं रही है। यह दशा फसल की बढ़वार हेतु बिल्कुल ही उपयुक्त नहीं होती क्योंकि विषम परिस्थितियों के कारण या तो भूमि खेती योग्य नहीं रही हैं तथा यदि खेती योग्य हैं तो उनकी उत्पादन-क्षमता बहुत घट गई है।

यदि वर्ष में कुछ समय तक भूमिगत जलस्तर सतह के एकदम करीब अथवा सतह पर बना रहता है तो इस दशा को जलप्लावन, जलमग्नता या Water logging कहा जा सकता है। कृषि सम्बन्धी राष्ट्रीय आयोग के अनुसार जलप्लावित मृदाएं वे होती हैं जिनमें भूमिगत जल का स्तर, इतना ऊपर आ जाता है जिससे जड़मण्डल के सारे मृदा छिद्र भर जाते हैं तथा वायु के सामान्य आवागमन को अवरुद्ध कर देते हैं और मृदा में ऑक्सीजन गैस के स्तर को कम करके कार्बन डाइ-ऑक्साइड बढ़ा देते हैं।

मृदा में अधिक नम दशाओं का फसलों की बढ़वार पर प्रभाव मृदा के प्रकार पर भी निर्भर करता है। देश-विदेश में किए गए विभिन्न अध्ययनों द्वारा विभिन्न प्रकार की फसलों के लिए विभिन्न प्रकार की मृदाओं में आवश्यक भूमिगत जल स्तर का पता किया जा चुका है जो सारणी-1 में दर्शित है।

यह देखा गया है कि भू-जल स्तर ऋतुओं के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है तथा इसकी अधिकतम गहराई वर्षा ऋतु से पूर्व (पूर्व मानसून) होती है जो वर्षा के साथ कम होनी आरम्भ हो जाती है। भूमिगत जल स्तर की मानसून से पूर्व गहराई 3 मीटर होनी आवश्यक है जिसमें वर्षा के पानी को सोखने के बाद एक मीटर क्षेत्र जड़ों के विकास हेतु बना रहे। ऐसे क्षेत्र जिनमें भूमिगत जलस्तर 3 से 6 मीटर के बीच में

सारणी-1 आवश्यक न्यूनतम औसत भूमिगत जल स्तर की गहराई (मृदा सतह नीचे) मीटर

फसल	बलुई	मृदा दुमट/सिल्ट	चिकनी मिट्टी
घास	0.5	0.6	0.7
खाद्यान्न	0.6	0.7	0.8
चारे की फसलें कंद एवं जड़ वाली फसलें, रेशे वाली फसलें, तिलहन, गन्ना, सब्जियाँ	0.7	0.8	0.9
बगीचे एवं वृक्ष	0.8	0.9	1.0
शुष्क एवं खाली छोड़ी गई मृदाएं जिनमें लवणीय जल का ऊपर की ओर रिसाव होता है।	1.0	1.2	1.4

है, उनके लिए भविष्य में तुरन्त ही जल निकास एवं जल प्रबन्ध की योजना बनाना आवश्यक है। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ भूमिगत जलस्तर 6 से 10 मीटर के बीच है, उनमें तुरन्त ही बचाव के उपाय जैसे कि फार्म स्तर पर जल प्रबन्ध, अच्छी मजबूत नालियों तथा सतही जल निकास की व्यवस्था का प्रबन्ध करना चाहिए। हमारे देश में कृषि के राष्ट्रीय आयोग के अनुसार जलमग्न क्षेत्रों का विवरण सारणी-2 में दिया गया है।

सारणी-2 भारत में राज्यवार जलमग्न क्षेत्र

राज्य		क्षेत्र (लाख है०)
पश्चिमबंगाल	...	18.50
पंजाब	...	10.90
उत्तर प्रदेश	...	8.10
हरियाणा	...	6.20
गुजरात	...	4.84
राजस्थान	...	3.48
आंध्रप्रदेश	...	3.39
बिहार	...	1.17
महाराष्ट्र	...	1.11
केरल	...	0.61
उड़ीसा	...	0.60
मध्य प्रदेश	...	0.57
तमिलनाडु	...	0.18
कर्नाटक	...	0.10
जम्मू-कश्मीर	...	0.10
दिल्ली	...	0.01
कुल योग	...	59.86

राजस्थान के इंदिरा गांधी कमान क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में लवणीयता (राजस्थान में सेम) की समस्या

इंदिरा गांधी नहर कमान क्षेत्र में सेम की समस्या का आभास वर्ष 1976 से होने लगा है। वस्तुतः इन कमान क्षेत्र में जलप्लावन की समस्या अनेक कारणों से उत्पन्न हुई, जिनमें मुख्य निम्न हैं -

(1) प्रथम चरण में जल अलाउन्स 5.23 क्यूसेक प्रति एक हजार एकड़ है जो बहुत अधिक है। अधिक जल अलाउन्स एवं समुचित सिंचाई प्रबन्धन के अभाव के कारण सिंचाई में प्रयोग किये जाने वाले जल में से काफी मात्रा रिस कर भू-जल में वृद्धि करती है।

(2) कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जो आसपास के क्षेत्रों से तथा नहरों से बहुत नीचे हैं। ऐसे क्षेत्रों में प्राकृतिक जल निकास के अभाव में भू-जल स्तर में वृद्धि होना भी स्वाभाविक है।

(3) कृषकों द्वारा सिंचाई में अत्याधिक जल का उपयोग।

(4) भू-जल क्षारीय होने के कारण उसके दोहन का अभाव।

(5) कम गहराई पर कठोर स्तर का पाया जाना।

(6) घग्घर नदी से घग्घर डाईवर्जन चैनल द्वारा सूरतगढ़ एवं बड़ोपल के पास स्थित डिप्रेशनों का भरा जाना।

(7) फील्ड ड्रेन एवं भू आकरिकी का अभाव।

राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले के बड़ोपल, मानकथेड़ी, जाखड़ावाली, भैरूसरी गाँवों में यह समस्या अधिक है। इसी प्रकार रावतसर कमान क्षेत्र में भी अधिक सिंचाई के कारण बढ़ते हुए भू-जल स्तर ने लगभग 3900 हैक्टेयर में सेम की समस्या उत्पन्न कर दी है। इस कमान क्षेत्र के गंधेली, दासूवाली, कमवानी, रावतसर, कच्ची एवं पक्की डबली क्षेत्र सेम की समस्या से अधिक त्रस्त हैं।

निराकरण के उपाय : मनुष्य द्वारा विकसित दो प्रकार की अधोस्तरी जल निकास पद्धतियाँ समानांतर एवं ऊर्ध्वाधर जल निकास, प्रचलन में हैं।

ऊर्ध्वाधर जल निकास द्वारा अधिकांशतः भू जल को नलकूप द्वारा निकाला जाता है, जबकि समानांतर जल-निकास में यांत्रिक संरचनाएं जो कि सतह के समानान्तर बनाई जाती हैं और वे समानान्तर नलकूप की तरह कार्य करती हैं। दोनों प्रकार की जल निकास विधियों का उद्देश्य भूमिगत जल स्तर को वर्षा, सिंचाई एवं निक्षालित जल द्वारा बढ़ने से रोकना तथा उसे अधिक गहरे स्तर तक ले जाना ही होता है।

जलप्लावित भूमियों में जल निकास पद्धति प्रयुक्त करने से निम्न दो सीधे प्रभाव होते हैं–

(i) मृदा के ऊपर अथवा अन्दर एकत्रित जल की औसत मात्रा में कमी।

(ii) जल का पद्धति द्वारा निकास। जल निकास पद्धति के भौतिक गुणों, भूमि के हाइड्रोलिक लवण एवं भू-जल वैज्ञानिक दशाओं पर इन सीधे प्रभावों का प्रसार निर्भर करता है। ये सीधे प्रभाव कई अपरोक्ष प्रभावों को भी उत्पन्न करते हैं, जिन्हें जलवायु, मृदा, कृषि क्रियाओं, सामाजिक-आर्थिक तथा पर्यावरण की दशाओं द्वारा निर्धारित किया जाता है।

ऊर्ध्वाधर जल निकास पद्धति की सफलता भूमिगत जल के भण्डार का 12 से 20 मीटर की गहराई पर उपलब्ध होने तथा भू-जल की गुणवत्ता के उपयुक्त होने पर निर्भर करती है जिससे लगातार जल का पम्पिंग एवं सिंचाई में उपयोग संभव हो पाता है।

राजस्थान के इस क्षेत्र में सेम की समस्या को हल करने हेतु विश्व बैंक के सलाहकारों की राय के अनुसार भू-जल स्तर में उतार-चढ़ाव की गणना हेतु वर्ष 1979-80 में जल-स्तर के मॉनीटरन हेतु एक परियोजना स्वीकृत की गयी थी जिसके तहत अभी तक 761 पीजोमीटरों का निर्माण किया जा चुका है। क्षेत्र की भू-जल वैज्ञानिक संरचना एवं रासायनिक गुणवत्ता के बारे में जानकारी प्राप्त करने हेतु 20 रिकार्डिंग कुएँ एवं 18 परीक्षण कुएँ भी बनाये गए हैं जिनका समय-समय पर पम्पिंग परीक्षण किया जाता है। इस प्रकार मॉनीटरन से प्राप्त आँकड़ों का संकलन कर महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

सेम की समस्या के निवारण हेतु जैव-निकास या बायोड्रेनेज को भी इस क्षेत्र में बढ़ावा दिया जा रहा है जिसमें वन विभाग कृषकों की सहभागिता से उनके खेतों एवं मेड़ों पर पेड़ लगाकर इस समस्या को कम करने में प्रयासरत हैं।

"गुरु कृपा", ब्रह्मपुरी, 'हजारी चबूतरा', जोधपुर

केवल विज्ञान ही भूख, गरीबी, निरक्षरता और अन्धविश्वास की समस्या को हल कर सकता है और बेकार पड़ी हुई विशाल सामग्री को उपयोगी बनाकर देश की भूखी जनता की पीड़ा हर सकता है। क्या आज कोई विज्ञान की उपेक्षा कर सकता है ? हमको कदम-कदम पर उसकी सहायता लेनी पड़ती है। भविष्य का निर्माण विज्ञान और उन लोगों पर निर्भर है जिन्होंने विज्ञान को अपनाया है। **–पं० जवाहर लाल नेहरू**

विभिन्न ग्रहों पर ग्रहण

संकलित

सूर्य ग्रहण

प्राचीन काल में लोगों को सूर्य ग्रहण की वास्तविकता का ज्ञान नहीं था, लेकिन सूर्य ग्रहण तो लगते ही थे। इसीलिए दुनिया भर के प्राचीन ग्रन्थों में सूर्य के छिपने या लुप्त होने का उल्लेख है। हमारे देश के प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद' में कहा गया है कि स्वरभानु नामक राक्षस सूर्य को निगलकर धरती को अंधकारमय कर देता है। सूर्य के इस संकट से छुड़ाने के लिए देवताओं द्वारा ऋषि अत्रि को बुलाया जाता था। वे कुछ श्लोक पढ़कर सूर्य को स्वरभानु से मुक्त करा देते थे। मुक्त होने की प्रक्रिया के दौरान सूर्य के बदलते रूप का जो वर्णन किया गया है, वह ग्रहण-मुक्त होते सूर्य से बिल्कुल मिलता-जुलता है।

'बाल्मीकि रामायण' में भी सूर्य ग्रहण का वास्तविक जैसा वर्णन है, इसके अनुसार सूर्य ग्रहण तब लगा था, जब भगवान राम और खर नामक राक्षस के बीच घनघोर युद्ध चल रहा था। 'महाभारत' में सूर्य ग्रहण का उल्लेख कई बार किया गया है। कहा जाता है कि जयद्रथ वध के समय दिन में ही चंद पलों के लिए जो अंधकार हुआ था, वह वास्तव में सूर्य ग्रहण था। पाडंवों के बनवास जाते समय महाभारत युद्ध से एक माह पूर्व, और दुर्योधन की मृत्यु पर भी सूर्य ग्रहण लगने का उल्लेख किया गया है। इतनी जल्दी-जल्दी सूर्य ग्रहण लगने की संभावना नहीं होती, इसलिए विद्वानों का मानना है कि 'महाभारत' में कवि ने सूर्य ग्रहण का उल्लेख कल्पना से किया है। उस समय सूर्य ग्रहण को अनिष्टकारी घटना माना जाता था इसलिए प्रत्येक अनिष्ट से पूर्व कवि ने सूर्य ग्रहण का उल्लेख कर दिया। चीन के प्रसिद्ध प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ 'शु चिंग' में सूर्य ग्रहण का उल्लेख है। कहा जाता है कि चीन के तत्कालीन सम्राट याओ ने सी और हो नाम के दो खगोल विज्ञानियों को सूर्यग्रहण की सही भविष्यवाणी की जिम्मेदारी सौंप रखी थी। सूर्य को सही मार्ग पर चलाते हुए ग्रहण न लगने देना भी उनकी जिम्मेदारी में शामिल था। परंतु ग्रहण तो लगना ही था। अतः उन दोनों को राजा ने मृत्युदंड दे दिया। 'सो चुआन', 'शिव विंग' आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी सूर्य ग्रहण का उल्लेख है। 'चुन चियु' में ग्रहणों का बांकायदा वैज्ञानिक रिकार्ड रखा गया है।

असीरिया के सरकारी दस्तावेजों में 763-762 ईसा पूर्व में लगे सूर्यग्रहण का उल्लेख है। यह ग्रहण 15 जून, 763 ईसा पूर्व को लगा था। इस ग्रहण का उल्लेख 'बाइबिल' में भी मिलता है। 'कुरान' में भी सूर्य ग्रहण का जिक्र आता है। पैगंबर मोहम्मद साहब के बालक इब्राहिम की मृत्यु सूर्य ग्रहण वाले दिन हुई थी। इस दिन तारीख 22 जनवरी, सन् 632 थी। इसी साल 2 जुलाई को भी सूर्य ग्रहण लगा था। यूनान के प्रसिद्ध प्राचीन ग्रंथ 'ओडिसी' (होमर रचित) में भी एक पूर्ण सूर्य ग्रहण का उल्लेख है। इसे 16 अप्रैल 1178 ई० पू० में लगे सूर्य ग्रहण के रूप में पहचाना गया है। इसी प्रकार साहित्य में 6 अप्रैल, 648 ई० पू० और 30 अप्रैल, 463 ई० पू० को लगे सूर्य ग्रहण का भी जिक्र मिलता है। प्राचीन रोम के गौरवशाली इतिहास में भी कई सूर्य ग्रहण दर्ज किए गए हैं।

सूर्य, चंद्र और ग्रहों की चाल का पक्का रिकार्ड रखने की सबसे दुरुस्त व्यवस्था प्राचीन बेबीलोन में थी। ईसा से कोई 1800 वर्ष पूर्व से ही वहाँ मिट्टी की छोटी ईंटें मिली हैं। इनमें मौसम और प्राकृतिक आपदाओं समेत सूर्य ग्रहण दर्ज किए गए हैं। वैसे सम्पूर्ण मानव इतिहास में पक्की तरह से दर्ज किए गए पहले सूर्य ग्रहण का उल्लेख चीनी इतिहास में मिलता है। यह सूर्य ग्रहण 22 अक्टूबर, 2136 ई० पू० को लगा था।

अन्य ग्रहों पर ग्रहण

किसी ग्रह पर सूर्य या चंद्र ग्रहण लगना कई प्राकृतिक स्थितियों पर निर्भर करता है जैसे उस ग्रह से सूर्य और उपग्रह (चंद्रमा) की दूरी, इन तीनों के आकार के बीच संबंध, तीनों के बीच आपसी दूरी, परिक्रमा कक्षों के बीच कोण।

धरती से सूर्य और चंद्र ग्रहण दिखने के लिए ये सभी स्थितियाँ अनुकूल हैं। इसलिए हम ये अद्‌भुत दृश्य देख पाते हैं पर हमारे सौर-मंडल के अन्य ग्रहों पर ग्रहणों की स्थिति जानने के लिए वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किए गए हैं। कारण यह कि ऐसे अध्ययनों का कोई व्यवहारिक और मूलभूत महत्व नहीं है। पर अनुमान लगाया जाता है कि कुछ ग्रहों पर सूर्य या चंद्र ग्रहण अवश्य लगते होंगे।

धरती से बृहस्पति ग्रह के कुछ उपग्रहों का ग्रहण देखा जा सकता है। खगोल विज्ञान में ग्रहण जैसी दो स्थितियाँ और देखी गई हैं-'ऑकल्टेशन' (अपगूहन या लोप) और 'ट्रांसिट' (पारगमन)। जब कोई बड़ा आकाशीय पिण्ड अपने बहुत छोटे आकार के पिण्ड के पीछे छिपा दिखाई देता है तो इसे ऑकल्टेशन कहते हैं– जैसे चंद्रमा के पीछे किसी तारे, नेबुला या ग्रह का छिप जाना। ट्रांसिट वह अवस्था कही जाती है, जिसमें कोई छोटा आकाशीय पिण्ड किसी बड़े आकाशीय पिण्ड की चकती के ऊपर से गुजरता हुआ दिखाई देता है। बुध और शुक्र ग्रह सूर्य के प्रति इसी प्रकार का ट्रांसिट प्रदर्शित करते हैं। बृहस्पति के कुछ उपग्रहों में ये तीनों स्थितियाँ दिखाई जा सकती हैं।

बृहस्पति के चार भीतरी उपग्रहों का ग्रहण धरती से देखा गया है। इनके नाम हैं-आई ओ, युरोपा, गेनीमीडी और कैलिस्टो। ये सभी उपग्रह बृहस्पति की लगभग उस तल में परिक्रमा करता है। इसलिए पहले तीन उपग्रहों में हर बार बृहस्पति का चक्कर काटने पर ग्रहण लगता है, लेकिन कुछ कारणों से चौथे उपग्रह पर यदा-कदा ही ग्रहण लगता है। हर बार ग्रहण लगने पर चार स्थितियाँ दिखाई देती हैं : बृहस्पति की छाया में से गुजरने पर उपग्रहों का ग्रहण, परग्रहों के बृहस्पति के पीछे छिपने से ऑकल्टेशन, बृहस्पति की चकती के ऊपर से गुजरने पर उपग्रहों का ट्रांसिट, और उपग्रहों की छाया का ट्रांसिट।

जिस तरह सूर्य ग्रहण के दौरान किए गए वैज्ञानिक अध्ययनों से उपयोगी जानकारियाँ मिली हैं उसी तरह बृहस्पति के उपग्रहों के ग्रहण पर किए गए अध्ययनों से भी

भविष्य के सूर्य ग्रहण

दिन		ग्रहण का प्रकार		अवधि
21 जून, 2001	...	पूर्ण ग्रहण	...	चार मिनट 56 सेकेंड
14 दिसम्बर, 2001	...	आंशिक	...	तीन मिनट 53 सेकेंड
10 जून, 2002	...	आंशिक	...	एक मिनट 13 सेकेंड
4 दिसम्बर, 2002	...	पूर्ण ग्रहण	...	दो मिनट चार सेकेंड
23 नवम्बर, 2003	...	पूर्ण ग्रहण	...	एक मिनट 57 सेकेंड
8 अप्रैल, 2005	...	आंशिक-पूर्ण	...	कुल 42 सेकेंड
29 मार्च, 2006	...	पूर्ण ग्रहण	...	चार मिनट 7 सेकेंड
1 अगस्त, 2008	...	पूर्ण ग्रहण	...	दो मिनट 27 सेकेंड
22 जुलाई, 2009	...	पूर्ण ग्रहण	...	छह मिनट 39 सेकेंड
11 जुलाई, 2010	...	पूर्ण ग्रहण	...	पांच मिनट 20 सेकेंड
20 मई, 2012	...	आंशिक	...	पांच मिनट 46 सेकेंड
13 नवम्बर, 2012	...	पूर्ण ग्रहण	...	चार मिनट दो सेकेंड
3 नवम्बर, 2013	...	आंशिक-पूर्ण	...	एक मिनट 39 सेकेंड
20 मार्च, 2015	...	पूर्ण ग्रहण	...	दो मिनट 47 सेकेंड

नोट - इनमें से सिर्फ 22 जुलाई, 2009 को पड़ने वाला सूर्य ग्रहण भारत में दिखाई देगा।

हमारा वैज्ञानिक ज्ञान समृद्ध हुआ है। इस अध्ययन के द्वारा ही पहली बार यह प्रमाण मिला कि प्रकाश एक सीमित गति से यात्रा करता है। 1675 में एक डेनिश खगोलविद ओले रोमर ने देखा कि ग्रहण के आकलित समय और ग्रहण देखे जाने वाले वास्तविक समय के बीच अंतर होता है। उसने बताया कि यह अंतर प्रकाश की यात्रा में लगने वाले समय के अंतर के कारण होता है। जब धरती बृहस्पति ग्रह के पास होती है तो कम समय लगता है और जब दूर होती है तो ज्यादा।

धरती से दूरबीन द्वारा बुध ग्रह का ट्रांसिट देखा जा सकता है। जब धरती और सूर्य के बीच बुध ग्रह अपने परिक्रमा कक्ष (नोड) के बहुत समीप होता है तो धरती से देखने पर ऐसा लगता है जैसे सूर्य चमकदार चकती के ऊपर से कोई छोटा काला और गोल पिण्ड गुजर रहा हो। इसे ही बुध का ट्रांसिट कहा जाता है। हर 7 मई और 9 नवंबर को धरती बुध की कक्षा के पातों के पास से गुजरती है। इसीलिए इन्हीं तारीखों के आसपास बुध का ट्रांसिट के बीच का न्यूनतम अंतराल सात वर्ष हो सकता है।

शुक्र ग्रह का ट्रांसिट बिना दूरबीन के भी देखा जा सकता है। शुक्र ग्रह के मध्यवर्ती ट्रांसिट में लगभग आठ घंटों का समय लगता है। शुक्र के परिक्रमा कक्ष के पास से धरती दो बार गुजरती है- 7 जून और 8 दिसंबर को। इसी से लगभग शुक्र का ट्रांसिट जोड़े में दिखाई देता है। पहले और दूसरे ट्रांसिट के बीच आठ वर्ष का अन्तराल होता है पर दो ट्रांसिट जोड़ों के बीच 100 वर्ष से भी ज्यादा का अन्तराल देखा गया है। शुक्र के ट्रांसिट के दौरान भी वैज्ञानिक अध्ययन किए गए हैं।

सन् 1679 में प्रसिद्ध ब्रिटिश खगोलविद् एडमंड हैली ने बताया था कि शुक्र के ट्रांसिट के दौरान पैरेलेक्स का अध्ययन करके सूर्य की सटीक दूरी ज्ञात की जा सकती है। इसी उद्देश्य से जून 1761 और 1769 और दिसंबर 1870 व 1882 के ट्रांसिट का व्यापक अध्ययन किया गया है। शुक्र के अलग दो ट्रांसिट 8 जून, 2004 और 6 जून, 2012 दो देखे जाएंगे। उस दौरान भी कुछ महत्वपूर्ण वैज्ञानिक अध्ययन किए जाने की योजना है।

जानवरों पर ग्रहण का असर

जर्मनी में किए गए अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि ग्रहण के दौरान बिल्ली व कुत्ते जैसे-पालतू जानवर इतने सुस्त हो जाते हैं कि ठेले जाने पर भी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते। ठीक यही स्थिति ग्रहण जैसे कृत्रिम परिवेश में भी होती है। इसके लिए शोधकर्ता हाई फ्रीक्वेंसी की नियोन ट्यूब लाइटों से उजाला कर वहाँ कंप्यूटर के जरिये धीरे-धीरे छाया बढ़ाते हुए अंधेरा कर देते हैं। अंधेरा होने पर वहां की हलचल दूसरे कमरे में स्थित वीडियो स्क्रीन पर देखी जा सकती है।

घोड़े, हाथी, शेर या खच्चर जैसे बड़े जानवरों पर ग्रहण का कुछ अलग प्रभाव दिखाई देता है। स्वभाव से नियमित और अनुशासित ये जानवर दिन में अंधेरा होने से बौखला जाते हैं और घबरा कर इधर-उधर भागने लगते हैं। वैसी ही दशा कृषि प्रयोज्य जानवरों का होता है, जो ग्रहण के अंधेरे में बेचैन हो उठते हैं। इससे साबित होता है कि इन जानवरों की रोशनी पर निर्भरता इनकी दैनिक चर्या से कम प्रभावी होती है।

अब तक के शोधों से ग्रहण के पशु-व्यवहार पर दीर्घकालिक प्रभाव या उनके यौन-व्यवहार पर दुष्प्रभाव की आशंकाएँ निराधार साबित हुई हैं। वस्तुतः ग्रहण जानवरों की दुनिया में थोड़ा-सा विभ्रम पैदा करने के अलावा कुछ नहीं करते।

जैसे ही अंधेरा छंटता है, जानवर तुरंत सामान्य हो फिर से चहकने लगते हैं।

भू-गर्भीय जल में प्रदूषण

राकेश पाठक

जल एक ऐसी प्रकृतिप्रदत्त सम्पदा है जो प्रत्येक जीव-जन्तु, पशु-पक्षी तथा मानव को सुलभ है। 500 ई० पूर्व पिण्डारोज नामक एक ग्रीक कवि ने जल की महिमा का गुणगान 'जल सभी वस्तुओं में सर्वोत्तम है', कहकर किया है। इसी सम्बन्ध में गेटे का कथन है कि प्रत्येक वस्तु जल से ही उद्भूत, पालित और पोषित है। ये उक्तियाँ वर्तमान पारिस्थितिक ज्ञान के प्रकाश में और भी अधिक सत्य प्रतीत होती हैं।

इस समय कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है जो प्रदूषण की चपेट न आ चुका हो। वायु-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण, भूमि-प्रदूषण, रेडियोधर्मिता-प्रदूषण एवं जल-प्रदूषण विकराल रूप धारण करते जा रहे हैं। भारत की प्रायः सभी नदियों का जल प्रदूषित हो गया है। झील, तालाब और समुद्री जल भी प्रदूषण की चपेट में आ गया है, यहाँ तक कि भूमिगत जल भी प्रदूषण की चपेट में आ गया है। भूमिगत जल का प्रदूषित होना बहुत गम्भीर समस्या है। भूमिगत जल के प्रदूषित होने के कारणों में उद्योगों से निस्सृत कचरा, घरेलू मल-जल, भूमि का अपरदन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

अनुमानतः उपयोग के बाद जल का 80 प्रतिशत अंश कचरा-युक्त होकर बाहर निकलता है, जिसे मल-जल कहा जाता है। यह जल ही नदी-नालों, झील-तालाबों एवं समुद्र में मिलकर तथा भूमि के अन्दर प्रवेश करके भूमिगत जल को प्रदूषित करता है।

पेय जल के दो प्रमुख स्रोत हैं- नदियों का जल एवं भूमिगत जल। हमारे देश में 113 स्वतंत्र नदियाँ हैं। इन स्वतंत्र नदियों की सैकड़ों सहायक नदियाँ भी हैं। यह सर्व-विदित है कि नदियों का जल प्रदूषित होता है क्योंकि इसमें विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट पदार्थ मिलते रहते हैं, लेकिन भूमिगत जल को सर्वाधिक शुद्ध और सुरक्षित माना जाता है। कारण यह जल भूमि में बहुत गहराई में प्राप्य है। लेकिन दुर्भाग्य है कि यह जल भी प्रदूषित होता जा रहा है।

मिट्टी की ऊपरी सतह पर अनेक प्रकार के बैक्टीरिया पाये जाते हैं जो प्रदूषणकारी पदार्थों को विखण्डित करके उन्हें प्रभावी नहीं होने देते; फलतः ये पदार्थ जमीन के ऊपर ही नष्ट हो जाते हैं, जमीन के अन्दर प्रवेश नहीं कर पाते। परन्तु अनेक स्थायी रसायनों एवं भारी रसायनों एवं भारी तत्वों के यौगिकों के प्रयोग से मिट्टी की ऊपरी सतह पर प्राप्त बैक्टीरिया का प्रभाव इन पर नहीं पड़ता। फलसवरूप ये भूमि में जल के रिसाव के साथ भू-गर्भीय जल में पहुँच जाते हैं।

हरित क्रान्ति के तहत अधिक एवं शीघ्र उत्पादन के उद्देश्य से रासायनिक खादों, कीटनाशकों एवं खरपतवार नाशक दवाओं का अन्धाधुन्ध प्रयोग हुआ है। नाइट्रोजनी उर्वरक का 50 प्रतिशत अंश ही फसल को पोषण प्रदान करता है, 25 प्रतिशत अंश मिट्टी में मिलकर नाइट्रोजन गैस में परिवर्तित हो जाता है तथा शेष 25 प्रतिशत भाग भूमिगत जल में मिल जाता है। कीटनाशकों का 50 प्रतिशत से ज्यादा भाग केवल 5 राज्यों पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश एवं तमिलनाडु में होता है। इन प्रदेशों में कीटनाशकों तथा खरपतवार नाशक दवाओं का अधिकांश भाग धीरे-धीरे भूमि में प्रवेश करके भूमिगत जल को प्रदूषित कर रहा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार रासायनिक तत्वों के मिलने से भूमिगत जल के प्रयोग से शरीर में कई तरह के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इसके अलावा प्रदूषित जल में कैडमियम, एल्युमिनियम, जस्ता एवं सीसे की अधिकता से डायरिया, हैजा एवं क्षय जैसे भयंकर रोग आम बात हो गये हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार नाइट्रेट से पेट के कैन्सर होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

हमारे देश में पर्याप्त संख्या में ताप विद्युत-गृह हैं जिनसे

हजारों-लाखों टन फ्लाई ऐश या राख प्रतिदिन उत्पन्न हो रही है जिसका कोई उपयोग नहीं हो रहा है; यह राख वर्षों तक जमीन पर पड़ी रहती है। इस राख में भारी धातुओं के अलावा अन्य प्रदूषणकारी पदार्थ उपस्थित रहते हैं; इनमें से कुछ प्रदूषणकारी पदार्थ बैक्टीरिया द्वारा विखण्डित कर दिये जाते हैं; जिससे भारी धातुएं धीरे-धीरे जमीन में प्रवेश करती रहती हैं; फलस्वरूप भूमिगत जल विषाक्त होता जा रहा है। अकेले दिल्ली में तीस ताप विद्युतघर हैं जिससे सैकड़ों टन फ्लाई-ऐश प्रतिदिन निकलती है और इसका समुचित निस्तारण नहीं हो रहा है।

प्रदूषित भूमिगत जल से देश भर में प्रतिवर्ष लगभग 15 लाख बच्चे काल-कवलित हो रहे हैं। पंजाब के ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिगत जल के प्रदूषण में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

भूमिगत जल सम्पदा प्रतिवर्ष होने वाली वर्षा से 10 गुना अधिक अनुमानित है। 300 मीटर की गहराई पर लगभग 3 अरब 70 करोड़ हैक्टर मीटर जल का भण्डार विद्यमान है; इस भू-गर्भीय जल में से मात्र 33 प्रतिशत जल का ही उपयोग हो रहा है। बढ़ती जनसंख्या तथा औद्योगिकीकरण से भूमिगत जल के दोहन में तीव्र वृद्धि होती जा रही है, साथ ही इसके विषाक्त होने की दर भी बहुत तेजी से बढ़ रही है। यह कहना गलत नहीं होगा कि भविष्य में समस्त भूमिगत जल विषैला हो सकता है।

राजस्थान में जोधपुर, पाली, बालोतरा के लघु उद्योग में क्षेत्रों में लगभग 1500-1600 कपड़ा छपाई केन्द्र कार्य कर रहे हैं, जिनसे प्रतिदिन 1.5 करोड़ लीटर गंदा जल नदियों के पाटों, खुली नालियों एवं तालाबों में डाला जा रहा है। यहाँ की मिट्टी रेतीली होने के कारण विषाक्त रासायनिक कण भी जल के साथ छनकर तालाबों, जलाशयों, कुओं आदि में मिलते रहते हैं। कुओं का जल रंगीन हो गया है। इनमें उपस्थित जल का 10 लाख लोग उपयोग कर रहे हैं, जिससे वे विभिन्न प्रकार के उदर रोगों, चर्म रोगों का शिकार होते जा रहे हैं। इसके साथ ही इनकी शरीरक्रिया पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। पशु भी इसकी चपेट में आने से नहीं बचे हैं। फसलों के ऊपर इसका प्रभाव उत्पादन एवं सुरक्षा की दृष्टि से स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है।

तमिलनाडु में चर्मशोधक कारखानों तथा केरल में रेशा उद्योग भी भूमिगत जल को प्रदूषित करने की ठान बैठे हैं। केरल में नारियल रेशा उद्योग में रेशे को पानी में डुबोकर रखा जाता है। इस प्रक्रिया में रेशे को हाइड्रोजन सल्फाइड और कार्बनिक अम्लों से उपचारित करते हैं; ये रसायन जल की सहायता से जमीन में प्रवेश करके भूमिगत जल को जहरीला कर रहे हैं। चर्मशोधक उद्योग के कचरे से भारी मात्रा में क्रोमियम नामक रसायन रिसता है जो कि भूमिगत जल को प्रदूषित कर रहा है।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा एक सर्वे के अनुसार उ० प्र०, बिहार के कुछ क्षेत्रों में भूमिगत जल में रेडियोधर्मी तत्व पाये जाते हैं। इसी तरह गाजीपुर, बलिया, जौनपुर तथा मिर्जापुर जिलों के भूमिगत जल में नाइट्रोजन, पोटैशियम, फास्फेट, सीसा, जस्ता तथा मैंगनीज जैसी विषाक्त धातुएँ पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं।

कर्नाटक में धारवाड़ जिले के हरिहर शहर में पॉली फाइबर फैक्ट्री का जल तुंगभद्रा में फेंका जाता है जिससे इसके पानी का रंग काला, भूरा, लाल व दुर्गन्धयुक्त हो गया है। गंदे जल में सल्फर डाई ऑक्साइड और हाइड्रोजन सल्फाइड जैसी गैसें लोगों के फेफड़ों को छलनी कर रही हैं। यहाँ पर पहले 6 से 7 टन ज्वार प्रति हैक्टर होता था; इसके प्रभाव के कारण घटकर मात्र 2 टन हो गयी है।

श्रीनगर से गुजरने वाली झेलम नदी का भाग शहर के 51,000 किलोमीटर अनुपचारित मल-जल के मिलने के कारण वह जल न रह कर एक प्रकार का मल-जल ही हो गया है। 1951-56 में यमुना नदी के भारी प्रदूषण के कारण दिल्ली में 40 हजार लोगों को पीलिया हुआ था और सैकड़ों मारे गये थे।

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने प्रदूषण की दृष्टि से देश में 22 समस्याग्रस्त क्षेत्रों को चुना। 1994 में सर्वे से पता चला कि उपर्युक्त सभी स्थानों पर भूमिगत जल प्रदूषित हो गया है।

भारत में डी० डी० टी० की खपत कृषि क्षेत्र में 3500 टन और सार्वजनिक स्वास्थ्य क्षेत्र में 4000 टन होती है। 1958 से 1965 के बीच भारत के अनेक क्षेत्रों के जनसमुदाय में 25 से 30 पी० पी० एम० तक डी०डी० टी० पायी गयी; बाद में इसकी मात्रा और बढ़ी। साथ ही इस कीटनाशक का अधिकांश भाग भूमि में बिना उपयोग के पड़ा रहता है,

फलस्वरूप भूमिगत जल में मिल जाता है। इन्हीं कारणों से भारत सरकार ने डी० डी० टी० के उपयोग को पूर्णतया प्रतिबन्धित कर दिया है। फिर भी अज्ञानवश लोग इसका कीटनाशक के रूप में धड़ल्ले से उपयोग कर रहे हैं। इसके अलावा डाई ब्रोमोक्लोरोप्रोपेन नामक रसायन का कीट-नाशक के रूप में उपयोग हो रहा है; इसके कारण कैन्सर एवं नपुंसकता जैसे भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं।

तालाबों, झीलों, नदियों यहाँ तक कि समुद्र के जल को तो प्रदूषण मुक्त किया जा सकता है परन्तु जब भूमिगत जल एक बार प्रदूषित हो जाता है तो इसको साफ करने में कई दशक लग जाते हैं।

भूमिगत जल को प्रदूषित होने बचाया जाना बहुत जरूरी है। अपशिष्ट जल, कचरा तथा मल-जल को यहाँ वहाँ न फेंक कर उसे उपचारित करके ठिकाने लगाना चाहिए। ऐसा न होने पर आने वाले समय में भूमिगत जल पूर्णतया विषाक्त हो जायेगा और अमृत समान मीठा और स्वच्छ जल प्रदान करने वाली हमारी पृथ्वी सिर्फ विषाक्त जल ही उगलेगी; जीना दूभर हो जायेगा क्योंकि जल के बिना जीवन की कल्पना असम्भव है।

ई-416 हुडको कालोनी, कमला नेहरू नगर, जोधपुर

पृष्ठ 26 का शेष

3. सणि अंगारउ अन्नु रवि ति थाइउ नक्खत्तु।
   भद्दह सहियउ भड्डली एहुति पुक्खक वुत्तु।।83।।

4. फग्गि उग्गिउ करइ दुब्भिक्खु बहुतारउ भड्डली चितमासि बलि राय तुल्लउ
   वइसाहह उग्गियउ चउपायहं सो नाहि भल्लउ
   कत्तिय मासह उग्गियउ तिल विरहियहं विणासु
   मग्गसिरहं बुहु उग्गियउ खउ चोरहं कप्पासु।।1।।

5. पोस माहिणं डमरू दक्खइ जिट्ठेण विनइ भरइ आसोय असुहाइं भंजइं
   आसाढहं सावणह उग्ग मंतु दुब्भिक्ख पिक्खइ
   भद्दवइइ बुह उग्गियउ भद्दसयाइं करेइ
   मेइणि हरिया भद्दली घणु वरसंतु धरेइ।।2।।

6. बुह उग्गमु सुक्कत्थमणु जइ हुइ सावण मासि
   ता जाणिज्जहु भड्डली जणुयउ पियइ न छासि।।98।।

नाहटों की गुवाड़, बीकानेर
–''नवनीत'' दिसम्बर 1978 से साभार

विज्ञान की न्यायालयीय भूमिका

डॉ० आर० बी० सिंह

विज्ञान परिषद् की काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शाखा द्वारा, 2 अगस्त 1999 को भौतिकी विभाग में आयोजित "प्रो० नन्दलाल सिंह स्मृति व्याख्यान" का सार-संक्षेप

मानव-सभ्यता के विकास के साथ-साथ अपराध और अन्याय भी पनपते रहे हैं। सभ्य समाज ने शांति और समरसता के लिए समय-समय पर नियम, कानून एवं विधान बनाया और न्यायिक प्रक्रिया आरंभ की परन्तु समाज अपराधियों एवं नियम विरोधियों से कभी मुक्त नहीं हो सका है। आज तो यह कहना तनिक भी अनुचित नहीं है कि ज्ञान-विज्ञान एवं सभ्यता के इस विकसित युग में अपराध एवं अन्याय की घटनाओं में छल, प्रपंच, चतुराई और कुटिलता के साथ-साथ विज्ञान एवं बुद्धि का अधिकाधिक उपयोग होने लगा है। ऐसी स्थितियों में न्यायालयों के लिए, किसी अपराधिक घटना के साक्ष्य जुटाने में भी विज्ञान का उपयोग अपरिहार्य हो गया है। विज्ञान की यही शाखा जिसमें अपराध एवं अन्यायपूर्ण घटनाओं के परिवेश से न्यायालयों के लिए साक्ष्य जुटाने या साक्ष्यों का असंदिग्ध रूप से निर्धारण करने में विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकों और युक्तियों का अनुप्रयोग किया जाता है, "फोरेंजिक साइन्स" के नाम से जानी जाती है। इनका उपयोग विश्व के लगभग सभी देशों में होने लगा है। हमारे देश में इसे "विधि-विज्ञान" या "अपराध-विज्ञान" भी कहा जाता है परन्तु "फोरेन्जिक साइन्सं" के ये पर्याय उपयुक्त नहीं हैं। चूँकि इस विज्ञान में न्याय के लिए असंदिग्ध साक्ष्यों की खोजबीन की जाती है अतः इसे "न्यायिक विज्ञान" या "न्यायालयिक विज्ञान" कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

वर्तमान समय में न्यायिक विज्ञान समाज की सेवा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। अपराधियों का पता लगाने, उनका दोष निर्धारित करने, अपराध-स्थल से प्राप्त वस्तुओं की खोजबीन करने तथा न्यायी प्रक्रिया में सहयोग देने में यह विज्ञान एक अनिवार्य तंत्र बन गया है। न्यायिक विज्ञान के क्रिया-कलापों का संचालन करने के लिए हमारे प्रदेश, देश तथा संपूर्ण विश्व के देशों में अनेक प्रयोगशालाएँ बनाई गई हैं जिनमें विविध प्रकार की जाँच-परख के प्रयोग किए जाते हैं। इन प्रयोगशालाओं में मूल रूप से निम्नलिखित प्रकार के कार्य सम्पादित किए जाते हैं :–

1. अपराध-स्थल से जाँच-परख के लिए विविध प्रकार के भौतिक साक्ष्य एकत्र करने में जाँच-अधिकारियों और एजेन्सियों का मार्गदर्शन करना और उन्हें सहयोग प्रदान करना।
2. अपराध स्थल से प्राप्त साक्ष्यों का परीक्षण करना और उस पर अपनी राय देना।
3. अपराध के स्वरूप की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने में सहायता करना।
4. न्यायिक निर्णय (विशेषज्ञ-मत) निर्धारित करने में न्यायालय की सहायता करना।
5. विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नई उपलब्धियों के न्यायिक विज्ञान के क्षेत्रों में अनुप्रयुक्त करने के लिए शोध कार्य करना।
6. अपराधिक-न्याय के लिए वैज्ञानिक युक्तियों का उपयोग करने के लिए अन्वेक्षक एवं न्यायिक अधिकारियों को प्रशिक्षण देना।

7. भौतिक साक्ष्यों का परीक्षण करने के लिए नए विश्लेषक यंत्रों और नई विश्लेषक विधियों का विकास करना।
8. न्यायिक-विज्ञान की प्रयोगशालाओं में आने वाले वैज्ञानिकों को भौतिक साक्ष्यों के व्यवहार एवं परीक्षण का प्रशिक्षण देना।
9. अपराध स्थल से साक्ष्य के रूप में प्राप्त होने वाले सामानों, वस्तुओं एवं भौतिक पदार्थों के लाक्षणिक गुणों एवं उपयोगी पहचान के आँकड़े तैयार करना और इन आँकड़ों का संरक्षण करना।
10. न्यायिक विज्ञान के क्षेत्र में बेहतर सहयोग एवं समझदारी स्थापित रखने के लिए अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय न्यायिक विज्ञान एवं सम्बद्ध संस्थानों से सम्बन्ध बनाए रखना।

अपराधों की खोज-बीन के सिलसिले में अपराध-स्थल का निरीक्षण तथा प्राप्त भौतिक साक्ष्यों का वैज्ञानिक विधियों से परीक्षण, दोनों ही प्रक्रियाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, अतएव न्यायिक विज्ञान के समस्त कार्य-क्रम इन्हीं दो क्रिया-कलापों पर विशेष रूप से निर्भर होते हैं।

अपराध-स्थल का अन्वीक्षण

अपराध-स्थल का निरीक्षण बड़ी सावधानी एवं बुद्धिमत्ता के साथ किया जाना चाहिए। इसके लिए सर्वथा तर्क-संगत एवं वैज्ञानिक विधियाँ अपनाई जाती हैं। सर्वप्रथम तो अपराधिक घटना की प्रकृति का गहन विवेचन करके एक प्रश्नावली तैयार की जाती हैं और तदनुसार उन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने की दृष्टि से अपराधस्थल का निरीक्षण किया जाता है जिसमें स्थल की फोटोग्राफी, साक्ष्य संबंधी वस्तुओं के नमूनों का संग्रह, अपराधी द्वारा प्रयुक्त सामानों का संग्रह, घटना-स्थल से प्राप्त केश, रक्त, प्रसाधन सामग्री एवं अन्य पदार्थों का संग्रह तथा स्थल पर उपलब्ध या संदिग्ध व्यक्तियों से पूछ-ताछ शामिल हैं।

अपराध-स्थल के प्रारंभिक निरीक्षण में प्रकाश और प्रतिबिम्ब-तकनीक का उपयोग बहुतायत से होता रहा है। इस क्षेत्र में, स्फुर-दीप्ति वाले पदार्थों के परीक्षण के लिए 'लेसर' प्रकाश का उपयोग अत्यंत लाभदायक पाया जाता है। किन्तु उच्च कोटि के व्यतिकरण-फिल्टरों के विकास के चलते आजकल प्रकाश के प्रखर स्रोतों जैसे जेनान लैंपों का उपयोग होने लगा है जिनसे लघु तरंग दैर्ध्य-परास के विशिष्ट प्रकाश-बैंडों का उपयोग किया जाता है। विभिन्न "सबस्ट्रेटों" पर पड़े अंगुलि-छापों (फिंगर प्रिटों) को प्रवर्धित करने तथा उनको संसूचित करने के लिए लघु तरंग दैर्ध्य वाली पराबैंगनी परावर्तन फोटोग्राफी का भी सफलतापूर्वक उपयोग किया जाता है।

अपराध-स्थल से प्राप्त भौतिक साक्ष्यों को एकत्र करने के लिए कई प्रकार के "संग्रह-किट" काम में लाए जाते हैं, जैसे– फिंगर प्रिंट-किट, फुट प्रिंट-किट, रक्त-परीक्षण-किट, ड्रग-परीक्षण-किट, विस्फोटक-परीक्षण-किट, गनशाट-अवशिष्ट के लिए सैम्पलिंग किट, साक्ष्य संरक्षण किट, स्थिर-वैद्युत डस्ट-लिफ्टर, और ऐसे ही अन्य कार्यों के लिए विभिन्न प्रकार के रंग, पैड आदि।

इसी प्रकार कुछ विशेष प्रकार के यंत्र और उपकरण भी अपराध-स्थल का निरीक्षण करने के लिए ले जाए जाते हैं जो बहुधा "पोर्टेबल" होते हैं जैसे– माइक्रो-प्रोसेसर, गैस क्रोमैटोग्राफ आदि। आजकल तो नए एवं उन्नत किस्म के पोर्टेबल-उपकरण उपलब्ध हैं। डिजिटल-इमेजिंग सिस्टम का भी प्रचलन आरंभ हो गया है जिसकी सहायता से "क्राइम सीन" का सीधा छायांकन किया जा सकता है।

अपराध-स्थल से पकड़े गए संदिग्ध व्यक्तियों से पूछताछ द्वारा साक्ष्य एवं सुराग प्राप्त करने के लिए पुलिस तथा सक्षम जाँच अधिकारी अब तक धमकी, घुड़की, मार-पीट और यहाँ तक कि तरह-तरह की यातना का उपयोग करते रहे हैं। परन्तु वर्तमान समय में न्यायालयों तथा मानवाधिकार आयोग द्वारा इस प्रकार के व्यवहार का कड़ा विरोध किया जा रहा है। अतः न्यायिक विज्ञान ऐसे यंत्रोपकरण विकसित कर रहा है जिसकी सहायता से सत्य का पता लगाया जा सके। इन उपकरणों द्वारा रक्तचाप, धड़कन-रेट, मुखमंडल विकृति आदि के आधार पर काम करने वाले उपकरण बनाए गए हैं जैसे "लाई-डिटेक्टर"।

अपराध-स्थल से प्राप्त भौतिक-साक्ष्यों का परीक्षण

अपराध स्थल से अनेक प्रकार के पदार्थ प्राप्त होते हैं जो परीक्षण हेतु न्यायिक-विज्ञान प्रयोगशाला में लाए जाते हैं,

जैसे– बन्दूक, पिस्तौल, गोली के खोखे, बंदूक की नाल से प्राप्त कजली-धुआँ, तरह-तरह के कागजात, अफीम, गांजा, भांग, हेरोइन आदि नशीले पदार्थ, मानसिक विकृति उत्पन्न करने वाले पदार्थ, नशीले पेय, वार्निश, पेट्रोल, डीज़ल, किरासिन, ज्वलनशील द्रव और ठोस अल्कोहली औषधियाँ रंग-रोगन, मिट्टी, बिजली के तार, कपड़े-लत्ते, लाटरी के टिकट, औजार, मल, मूत्र, रक्त, वीर्य, थूक, केश, अस्थिशेष, पौधों के बीज, पत्ते, फूल और काष्ठ आदि।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त नमूने अनगिनत किस्म के होते हैं। इतना ही नहीं, बहुधा ये अत्यंत अल्पमात्रा में होते हैं। कुछ नमूने तो रंचमात्र ही होते हैं, और वे भी बहुधा अन्य पदार्थों के संसर्ग से दूषित रहते हैं। अतः इनका निरीक्षण-परीक्षण करने के लिए अनेक सूक्ष्मग्राही उपकरणों एवं विधियों का उपयोग किया जाता है। इन परीक्षणों के लिए विशेष प्रकार के सुग्राही विश्लेषणात्मक उपकरण तथा न्यायिक-विज्ञान के लिए विशेष प्रकार की विधियाँ विकसित की गई हैं। इनमें से कुछ आधुनिक तकनीकें निम्नलिखित हैं–

प्रकाशीय माइक्रोस्कोपी (फोरेन्जिक विश्लेषण के लिए), इन्फ्रारेड परावर्तन माइक्रोस्कोपी, कन्फोकल लेसर स्कैनिंग माइक्रोस्कोपी, ऊर्जा-विक्षेपी एक्स-रे विश्लेषक युक्त स्कैनिंग इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोपी, उच्च-सक्रियतायुक्त सूक्ष्म पर्त क्रोमैटोग्राफी, गैसद्रव क्रोमैटोग्राफी, उच्च शक्तियुक्त द्रव क्रोमैटोग्राफी, आयन-क्रोमैटोग्राफी, मास-स्पेक्ट्रोमीट्री, एक्स-रे विवर्तन, केथोड-ज्योतिदर्शी, परमाणु-अवशोषण-स्पेक्ट्रास्कोपी, परमाणु उत्सर्जन-स्पेक्ट्रास्कोपी, रासायनिक विश्लेषण के लिए इलेक्ट्रान-स्पेक्ट्रास्कोपी, ऑगर इलेक्ट्रान स्पेक्ट्रास्कोपी, स्थिर वैद्युत-संसूचन तकनीक, FT-रामन एवं FT-इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रास्कोपी, कैपिलरी इलेक्ट्रोफोरेसिस, DNA-प्रोफाइलिंग, डिजिटल इमेज प्रोसेसिंग और अव्यवहार्य नमूनों की रोबोट-प्रोसेसिंग आदि। उन्नत न्यायिक प्रयोगशालाओं में इनमें से प्रमुख विधियों एवं तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

भौतिक साक्ष्यों में बहुधा तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता होती है, जैसे सही और जाली हस्ताक्षर या ऐसे ही फिंगर-प्रिंट, फुट-प्रिंट, खाली कारतूस, उन पर बने मार्क, औजारों की रगड़ से बने खरोंच आदि। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन के लिए विशेष प्रकार के बने उपकरणों वाले कम्प्यूटरों का उपयोग होने लगा है। हाल ही में दो अन्य विशिष्ट उपकरणों का विकास हुआ है जो न्यायिक-बैलिस्टिक्स (बुलेट और बैरेल की गतिकी संबंधी परीक्षण) के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन में प्रयुक्त होते हैं। इनमें से एक है– IBIS : इन्टीग्रेटेड बैलिस्टिक आइडेन्टिफिकेशन सिस्टम और दूसरा है– FFIS : फोरेन्जिक फायर आर्म्स आइडेन्टिफिकेशन सिस्टम।

अंत में इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि उपकरणों द्वारा की गई जाँच-पड़ताल और उनसे प्राप्त आंकड़े आदि पूछ-ताछ के लिए ही सहायक होते हैं। किसी साक्ष्य के संबंध में अंतिम निर्णय उस विषय के विशेषज्ञ की अनुभवी राय पर ही निर्भर होते हैं।

निदेशक, विधि विज्ञान प्रयोगशाला,
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

श्री एन० एस० त्यागी को "राजभाषा श्री"

विज्ञान परिषद् प्रयाग के आजीवन सभ्य और केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की में तकनीकी अधिकारी के पद पर कार्यरत इंजी० एन० एस० त्यागी को केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद्, नई दिल्ली की राजभाषा स्वर्ण जयन्ती पर्व समिति द्वारा 10 जुलाई 1999 को एक समारोह में 'राजभाषा श्री' सम्मान से अलंकृत किया गया। श्री त्यागी को यह सम्मान समर्पित भाव से राजभाषा की सेवा के फलस्वरूप प्रदान किया गया है। परिषद्-परिवार की ओर से श्री त्यागी को ढेरों बधाई।

वैज्ञानिक राजकुमारी

जीशान हैदर ज़ैदी

एक तेज फुफकार ने उसे ठिठकने पर विवश कर दिया। हालांकि इस घने जंगल में इस प्रकार की फुफकार अप्रत्याशित नहीं थी लेकिन यह आवाज ठीक उसके सामने से आयी थी, और यह निश्चित था कि सामने स्थित घनी झाड़ियों के दूसरी ओर वह खतरनाक जीव मौजूद है।

उसका नाम सिंकदर था। एक आयुर्वेदिक डॉक्टर, जिसे जड़ी बूटियों की तलाश यहाँ इस जंगल में ले आयी थी। वह जड़ी बूटियों का विशेषज्ञ था और स्वयं चिर युवा रहने का नुस्खा जानता था। यही कारण था कि पचास वर्ष की आयु होने पर पच्चीस से अधिक जान नहीं पड़ता था। उसका स्वास्थ्य दुश्मनों में ईर्ष्या का विषय था। इस समय दस घण्टों की लगातार मेहनत भी उसके चेहरे पर एक शिकन भी नहीं ला पायी थी।

उसने सावधानी से रास्ता बदला और जब वह घने झुरमुट को पार करके दूसरी ओर पहुँचा तो वहाँ वह अजीब जीव मौजूद था जिसकी फुफकार वह इतनी देर से सुन रहा था। अजीब इन अर्थों में था कि उसने इस प्रकार का जीव अपने जीवन में पहली बार देखा था। एक दैत्याकार छिपकली-नुमा जीव जो आकार में किसी चीते के बराबर था। रह- रहकर उसके मुँह से फुफकार के साथ सफेद रंग की भाप निकल रही थी।

अभी वह जीव को देखकर उसकी ओर घूम गया। लगा, मानो जीव को उसकी उपस्थिति का आभास हो गया है। इससे पहले कि सिंकदर अपने बचाव का कोई उपाय करता, एक तीव्र फुफकार के साथ जीव के मुँह से निकलने वाली भाप उसके चेहरे से टकराई और उसका सर तेजी से चकराने लगा। दूसरे ही पल वह चेतनाशून्य हो चुका था।

जब उसे होश आया तो एक नर्म बिस्तर उसके शरीर को आराम पहुँचा रहा था। किन्तु यह बिस्तर आधुनिक न होकर किसी नर्म घास की चटाई था। वह आँखें मलता हुआ उठ बैठा। जब उसने माहौल का जायजा लिया तो मन यही चाहा कि दोबारा बेहोश हो जाये। कमरे में थोड़ी दूर बैठी युवती इतनी ही खूबसूरत थी कि बड़े से बड़ा मानव अपने होश खो बैठता। किन्तु उस युवती से भी अधिक आश्चर्यजनक उस अनोखे जीव की उसकी बगल में उपस्थिति थी जिसके सर पर वह युवती हौले-हौले हाथ फेर रही थी।

"आप कौन हैं ? और यह सब क्या है ? मैं कहां हूँ ?" सिकन्दर के मुँह से जब बोल फूटे तो बहुत से प्रश्नों में एक साथ परिवर्तित हो चुके थे।

"तुम इस समय मेरे महल में हो और तुम्हें लाने वाला मेरा यह इकलौता दोस्त है।" युवती की आवाज भी उसके बाह्य सौन्दर्य की तरह खूबसूरत थी।

"मैं इस तिलिस्मी वातावरण को किसी भी तरह नहीं समझ पा रहा हूँ। आखिर यह सब क्या है ?" सिकन्दर के चेहरे से उलझन साफ पढ़ी जा सकती थी।

"अभी तुम्हें सब मालूम हो जायेगा। मेरा नाम सोफिया है। अफ्रीका के इस घने जंगल में तुम्हारे आने से पहले मैं एकमात्र मनुष्य थी।"

"लेकिन इस जंगल में कहाँ से आयी हो ? यहाँ आने का कारण क्या है ?"

"मैं इस जंगल में कब आयी, यह मुझे अब याद नहीं। यहां मैं अपने बाप के साथ आयी थी। मेरा बाप बहुत बड़ा वैज्ञानिक था। एक प्रोजेक्ट पर कार्य करने के लिए यहाँ आया था, उस समय मेरा बचपन था। फिर धीरे-धीरे वर्ष बीतते

गये और वह प्रोजेक्ट चलता रहा। मेरे बाप ने मुझे भी वैज्ञानिक बनाकर उस प्रोजेक्ट पर लगा दिया। अब मेरे बाप की मृत्यु हो चुकी है, लेकिन यहाँ एक गुप्त लैब में अभी भी उस लम्बे प्रोजेक्ट पर कार्य चल रहा है जिसे केवल मेरे हाथ अंजाम दे रहे हैं।''

''ऐसा कौन सा प्रोजेक्ट है जिसने तुम्हें अकेले इस वीरान जगह में जीवन व्यतीत करने पर मजबूर कर दिया है ?'' सिकन्दर ने पूछा।

''मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें दिखाती हूँ।'' सोफिया ने उठते हुए कहा।

सिकन्दर सोच भी नहीं सकता था कि ऊपर से छोटी से झोपड़ीनुमा दिखने वाली वह इमारत अन्दर से इतनी विशाल और आधुनिक होगी। सोफिया ने केवल बटन दबाया था और झोपड़ी के फर्श का एक भाग किसी दरवाजे की तरह खुल गया था। उन्होंने वहाँ बनी सीढ़ियों से नीचे कदम रखा और जब उस तहखाने में पहुँचे तो सिकन्दर को महसूस हुआ कि वह किसी साइंस फिक्शन फिल्म के दृश्य का एक भाग बन गया है। इस तरह रखी विभिन्न प्रकार की भारी भरकम मशीनें तारों के जाल द्वारा एक दूसरे से जुड़ी हुई थीं।

''माई गॉड। मैं तो सोच भी नहीं सकता था कि इस वीरान में इतनी आधुनिक प्रयोगशाला होगी।'' सिकन्दर ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई।

''अब मैं अपने प्रोजेक्ट के बारे में बता रही हूँ। क्या तुम ऐसी मशीन की कल्पना कर सकते हो जो अपनी तरंगों द्वारा किसी जानवर के मस्तिष्क को प्रभावित कर दे और वह जानवर उन तरंगों के सम्मोहन में बँधा हुआ किसी पालतू पशु की तरह हर आज्ञा का पालन करता हुआ उस मशीन के मालिक तक पहुँच जाये।''

''मुझे तो यह असंभव लगता है।''

''विज्ञान की दुनिया में असंभव कुछ नहीं। यह देखो, यह रही वह मशीन।''

सोफिया ने सामने की ओर संकेत किया जहां एक विशालकाय मशीन दिखायी पड़ रही थी।

''इस मशीन द्वारा किसी भी जानवर को विशेष प्रकार की तरंगों द्वारा वश में किया जा सकता है।''

''तो क्या वह अजीब सा जीव .....''

''उसका नाम मैगना है। वह एक अद्‌भुत जीव है जो अपने मुँह से निकलने वाली फुफकार से किसी को भी बेहोश कर सकता है। मैं इन्हीं मशीनों की सहायता से उसे अपना पालतू बना लिया है।''

''अद्‌भुत ! आश्चर्यजनक ! कहीं मैं कोई तिलिस्मी कहानी तो नहीं पढ़ रहा हूँ और तुम उस तिलिस्मी कहानी की राजकुमारी हो !''

''हाँ। मैं राजकुमारी हूँ। लेकिन तिलिस्मी कहानी की न होकर इस वैज्ञानिक दुनिया की राजकुमारी हूँ।''

''और राजकुमार कौन है इस राज्य का ?''

''जल्दी ही तुम्हें मालूम हो जायेगा।'' उसके बाद सिकन्दर को विस्मित कर गये क्योंकि इससे पहले सोफिया स्वयं कह चुकी थी कि वह इस स्थान पर एकमात्र मनुष्य है।

रात का न जाने कौन सा पहर था जब एकाएक सिकन्दर की आँख खुल गयी। मस्तिष्क में विभिन्न विचारों की उथल-पुथल के कारण बहुत देर बाद उसे नींद आयी थी। इसलिए एकाएक आँख खुलना अप्रत्याशित था। किसी विशेष कारण से उसकी नींद उचटी थी।

और फिर उसे वह कारण दिख गया। कोई साया था जो उसके सिरहाने बैठा हुआ था।

''कौन हो तुम ?'' सिकन्दर ने जल्दी से उठने की कोशिश की।

''मैं हूँ।'' यह आवाज सोफिया की थी।

''तुम ! लेकिन तुम इस समय यहाँ क्या कर रही हो ?'' सिकन्दर चौंक पड़ा।

''आज तुमने पूछा था कि इस वैज्ञानिक दुनिया का राजकुमार कौन है। मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने आयी हूँ।''
''लेकिन इस समय ! यह उत्तर तो कल भी दिया जा सकता है।''

''अब तो मैं इसे सुनने के लिए बहुत अधिक उत्सुक

हो गया हूँ।" सिकन्दर अब उठकर बैठ चुका था। "इस दुनिया के राजकुमार तुम हो सिकन्दर। मैंने पति के रूप में तुम्हें चुन लिया है।" सोफिया के वाक्यों ने मानो वहाँ धमाका किया।

"यह तुम क्या कह रही हो ? कहाँ तुम जैसी उच्च कोटि की वैज्ञानिक और कहाँ में के मामूली आयुर्वेदिक डॉक्टर !"

"लेकिन तुम मेरे लिए महत्वपूर्ण हो। क्योंकि प्यार छोटा-बड़ा नहीं देखता। मैंने तुम्हें उसी समय पसन्द कर लिया था जब तुम जड़ी बूटियों की तलाश में इस क्षेत्र में पहुँचे थे। फिर अपने पालतू जानवर मैगना को भेजा तुम्हें लाने के लिए।

"सोफिया, हालाँकि मैंने अभी शादी नहीं की है किन्तु मेरी आयु तुम से बहुत ज्यादा है। मैं पचास वर्ष पूरे कर चुका हूँ जबकि तुम्हारी आयु मुश्किल से बीस के आसपास है। फिर कैसे हमारा तुम्हारा जोड़ बैठ सकता है।"

"तुमने मेरे बारे में, मेरी आयु के बारे में गलत अनुमान लगाया है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि आयु हमारे बीच रुकावट नहीं बनेगी।"

सिकन्दर के लिए यह अत्यन्त हर्षमिश्रित आँश्चर्य था कि एक ऐसी युवती उसके प्रेम-पाश में बँध गयी थी जो न केवल सुंदर थी बल्कि उच्चकोटि की वैज्ञानिक भी थी। कोई कारण नहीं था कि वह उसके निमन्त्रण को अस्वीकार कर देता।

फिर उस सुनसान स्थान पर सिकन्दर को सोफिया के साथ रहते हुए तीन माह बीत गये। अब तक वह प्रयोगशाला और वहाँ की मशीनों के बारे में लगभग सम्पूर्ण जानकारी हासिल कर चुका था। किन्तु अभी भी एक रहस्य ऐसा था जिसके पर्दे उसके सामने से नहीं हटे थे। वह रहस्य था प्रयोगशाला से सटा एक कमरा जो सदैव बन्द रहता था।

कई बार सिकन्दर ने सोफिया से उस कमरे के बारे में पूछा किन्तु सोफिया ने न केवल बताने से मना कर दिया बल्कि सख्ती से उस कमरे को खोलने की मनाही कर दी।

किन्तु मानव मन का स्वभाव है कि जिस कार्य से उसे रोका जाता है उसी को करने में सबसे अधिक उतावला रहता है। सिकन्दर की खोजी प्रकृति उसे कमरा खोलने के लिए उकसाती रहती थी।

फिर एक दिन उसे अवसर मिल गया।

उस दिन सोफिया अपने पालतू मैगना के साथ प्रयोगशाला से दूर निकल गयी थी और सिकन्दर को मालूम था कि उसकी वापसी दो घंटे से पहले नहीं होगी।

सिकन्दर ने सोफिया के कमरे की तलाशी ली और जल्द ही उसे वह रिमोट मिल गया जो विभिन्न कमरों के लाक खोलने और बन्द करने के लिए प्रयुक्त किया जाता था। रिमोट लेकर वह उस बन्द कमरे के पास पहुँचा और रिमोट का वह स्विच दबा दिया जिससे उस कमरे का लाक सम्बन्धित था।

कमरा खोलकर वह अन्दर प्रविष्ट हुआ और चारों ओर दृष्टि दौड़ाई।

कमरे में ऐसी कोई वस्तु मौजूद नहीं थी जो रहस्यपूर्ण कही जा सकती।

केवल कमरे के बीचोबीच एक टी वी रखा हुआ था। इसके अतिरिक्त सामने दीवार पर एक बूढ़ी औरत की पुरानी पेंटिंग लटक रहीं थी जो शायद सोफिया की माँ थी।

"फिर आखिर सोफिया ने उसे इस कमरे में आने से क्यों मना किया है ?"

कुछ देर वह इसी उधेड़बुन में खड़ा रहा। फिर आगे बढ़कर टी वी ऑन कर दिया।

उसे स्क्रीन पर सोफिया दिखायी दी। उसने देखा कि सोफिया के बाल धीरे-धीरे सफेद हो रहे हैं, चेहरे पर झुर्रियां पड़ रही हैं। फिर यह झुर्रियां धीरे-धीरे बढ़ती गयीं और लगभग दस मिनट बाद स्क्रीन पर सोफिया की बजाय एक बहुत बूढ़ी औरत दिखायी पड़ रही थी। उसने चौंक कर दीवार पर टँगा चित्र देखा, जिसका चेहरा स्क्रीन पर दिखने वाले चेहरे से पूर्णतः मेल खा रहा था।

उसी समय उसे पीछे से एक आवाज़ सुनाई दी, "यह तुमने क्या किया सिकन्दर ?"

वह चौंककर पीछे की ओर घूमा और आश्चर्यचकित रह गया। स्क्रीन पर दिखने वाली औरत सशरीर उसके पीछे खड़ी थी। और उसकी बगल में मैगना खड़ा था। "आप कौन हैं ?" उनके मुंह से प्रश्नात्मक स्वर फूटा।

"मैं सोफिया हूँ। लेकिन अब तुम मुझे नहीं पहचान पाओगे। मैंने तुम्हें इस कमरे में आने से मना किया था लेकिन तुमने मेरी बात नहीं मानी।"

"सोफिया ! तुम ! तुम !! तुम्हारी ये हालत कैसे हुई?" सिकन्दर आतुरता से उसकी ओर बढ़ा।

"अब तो मुझे सब कुछ बताना पड़ेगा।" सोफिया एक कुर्सी पर बैठते हुए बोली, "मैंने तुमसे एक बार कहा था कि तुमने मेरी आयु के बारे में गलत अनुमान लगाया है।"

"हाँ ! कहा तो था।"

"तुम विश्वास नहीं करोगे, लेकिन यह वास्तविकता है कि मेरी आयु इस समय एक सौ बीस वर्ष है। और यह सामने टँगी तस्वीर मेरी ही है। आज से दस साल पहले की।"

सिकन्दर की पलकों ने मानो झपकना छोड़ दिया और वह सोफिया को एकटक देखने लगा। सोफिया ने कहा जारी रखा, "यह टी वी नुमा मशीन मेरा एक अनोखा आविष्कार है जो किसी भी व्यक्ति को यौवन लौटा सकती है। आज से दस वर्ष पहले मेरी चालीस वर्षों की कड़ी मेहनत के बाद यह तैयार हुई थी। इसका पहला प्रयोग मैंने अपने ऊपर किया जो पूरी तरह सफल रहा। और मैं पच्चीस वर्ष की युवती में परिवर्तित हो गयी।" सोफिया पल भर को रुकी।

"यह अनोखी मशीन कार्य कैसे करती है ?"

"वास्तव में बुढ़ापा शरीर की कोशिकाओं के कमजोर पड़ जाने के कारण आता है। मेरी यह मशीन विशेष प्रकार की रेडियोऐक्टिव किरणों के द्वारा ऐसी कोशिकाओं को पुनः शक्तिशाली बना देती है और ये शक्तिशाली कोशिकाएँ व्यक्ति को यौवन की ओर लौटा देती हैं। लेकिन शायद मेरे भाग्य में पुनः युवा होने की अवधि बहुत कम लिखी थी इसीलिए तुम इस मशीन तक पहुँच गये।"

"लेकिन मशीन के ऑन करने का तुम पर बुरा प्रभाव क्यों पड़ा ? जबकि यह मशीन यौवन की ओर ले जाती है।"

"जो बटन तुमने दबाया, वह मशीन को ऑन नहीं करता बल्कि मशीन से निकलने वाली रेडियोऐक्टिव शक्ति की सप्लाई रोक देता है। जैसे ही यह सप्लाई मेरी कोशिकाओं को मिलना बन्द हुई, मेरी कोशिकाएँ पूर्व रूप में आने लगीं और कुछ ही पलों में मैं अपना यौवन खो चुकी थी।"

"इस समय तुम पहले वाली अवस्था में लौट चुकी हो। तो क्यों न मैं इस मशीन को पुनः ऑन करके तुम्हें फिर युवा बना दूँ ?" सिकन्दर ने पूछा।

"ऐसा संभव नहीं है। क्योंकि इस मशीन द्वारा जो कोशिकाएँ शक्तिशाली बनने के बाद पुनः कमजोर हो गयी हैं उन्हें दोबारा शक्ति देने पर वे नष्ट हो जायेंगी और फिर मेरी मृत्यु हो जायेगी।"

"ओह। तो ये बात है। यानि अब तुम्हें इसी रूप में जीवित रहना होगा।" सिकन्दर ने एक ठण्डी साँस ली।

"हाँ। अब तुम पच्चीस वर्ष की सोफिया को भूल जाओ और वापस अपनी दुनिया में लौट जाओ। मेरे भाग्य में अकेलापन ही लिखा हुआ है। मैंने किसी से प्रेम करने में भी बहुत देर कर दी। इसी की सजा शायद मुझे मिली है। उफ़ इतनी देर बातें करने के बाद कमजोरी महसूस होने लगी है। शायद मैं बेहोश हो जाऊँ। सोफिया की आँखें धीरे-धीरे बन्द होने लगीं।

"नहीं सोफिया, मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा। मैं तुमसे प्यार करता हूँ। वह प्यार जो केवल दो शरीरों का मिलन नहीं है बल्कि दो दिलों का मिलन है। मैं यहीं रहूँगा तुम्हारा सहारा बनकर।" सिकन्दर ने बेहोश होती सोफिया को बाहों में लेकर कहा।

सोफिया ने सिकन्दर की आवाज़ पर आँखें खोलीं। उसे सिकन्दर की आंखों में आँसू दिखायी पड़ रहे थे। उसने धीरे से हाथ उठाकर उसकी आँखों से आंसू पोंछे और फिर बेहोशी की गहरी गर्त में पहुँच गयी।

सिकन्दर उसे सोफे पर लिटाकर उठा। वह उसे फिर से होश में लाने के लिए पानी की तलाश में जा रहा था।

390/39 K, बाग वाली मस्जिद,
रुस्तम नगर, लखनऊ-3

भड्डरी :
कुछ विशेष जानकारी

स्व० अगरचंद नाहटा

भविष्य जानने का तीव्र कुतूहल सभी मनुष्यों में सदा ही रहा है। वर्षा कब होगी, कम होगी या अधिक होगी, या दुष्काल पड़ेगा–ये सब बातें ग्रह-नक्षत्रों के आधार पर जानना कृषि-प्रधान भारत के निवासियों के लिए बहुत जरूरी भी रहा है। प्राचीन ज्योतिषग्रंथों में इस विषय में काफी विवरण मिलता है। परंतु घाघ-भड्डरी या डाक-भड्डरी के कहे हुए पद्य भी जनसाधारण में विशेषतः ग्रामीण जनता में बहुत प्रचलित रहे हैं। राजस्थान से लेकर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बंगाल, बिहार और असम तक सर्वत्र ये पद्य लोगों की जीभ पर चढ़े हुए हैं।

डाक, भड्डरी और घाघ कब और कहाँ हुए, इस संबंध में काफी मतभेद रहा है। अनेक प्रांतों का दावा है कि ये उन्हीं के यहाँ हुए। कारण, एक तो इनके मूल पद्यों की भाषा प्रांतीय भाषाओं में परिवर्तित होती रही है; फिर इन्हें लोग अपने बुजुर्गों के मुँह से सुनते चले आये हैं। इसलिए सभी का उनसे लगाव है। परिणामतः असम वाले डाककवि और भड्डरी को अपने यहाँ हुए मानते हैं, और राजस्थान वाले अपने यहाँ। उत्तर प्रदेश आदि में डाक की जगह घाघ का नाम प्रचलित है और भड्डरी का सम्बन्ध उसी के साथ जोड़ा जाता है। अनेक विद्वानों ने इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं और उनमें से कौन-सा सही है, यह बतलाना बहुत कठिन हो गया है।

श्री कामता कमलेश ने अपने एक लेख 'घाघ कहे सुन भड्डरी' (कादम्बिनी, जनवरी 1978) में घाघ-भड्डरी-संवाद के रूप में कुछ पद्य भी दिये हैं और घाघ को सन् 1696 में जन्मा कन्नौज-वासी दुबे ब्राह्मण बताया है। उनका यह भी कहना है कि घाघ के सम्बन्ध में सर्वाधिक पुष्ट मत पं० रामनरेश त्रिपाठी का है। पर वास्तव में स्व० त्रिपाठीजी ने सुनी-सुनायी बातें लिखी हैं; उनकी अपेक्षा डा० उमेश मिश्र और प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने अधिक अच्छा प्रकाश घाघ पर डाला है।

डा० उमेश मिश्र का लेख 'हिन्दुस्तानी पत्रिका' में 1934 में 'मैथिली साहित्य' शीर्षक से छपा था। उसमें उन्होंने ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर आदि का प्रसंग देते हुए, डाक को अहीर जाति का बतलाया है और अनुमान किया है कि उनका समय पंद्रहवीं शताब्दी के बाद तथा अठारहवीं शताब्दी के पूर्व रहा होगा।

सन् 1946 में 'राजस्थान-भारती' के प्रथम अंक में 'राजस्थानी की वर्षा-संबंधी कहावतें' शीर्षक लेख 'सरस्वती कुमार' के नाम से नरोत्तमदासजी स्वामी ने लिखा था। उसमें उन्होंने घाघ-भड्डरी के राजस्थान-निवासी होने के पक्ष में दो प्रबल प्रमाण दिये हैं।

1. राजस्थान में 'डाकोत' नाम की एक याचक जाति है। डाकोत लोग अपने पास पत्रा रखते हैं, तिथि, वार आदि बताया करते हैं और राशि आदि का शुभाशुभ फल, दिशासूल आदि ज्योतिष की छोटी-मोटी बातें भी सुनाते हैं। अपने को ये डाक की संतान कहते हैं। 'डाकोत' शब्द है भी 'डाक-पुत्र' का अपभ्रंश, जिसका अर्थ होता है–डाक के वंशज (डाक-पुत्र > डाक-पुत > डाक-उत > डाकौत > डाकोत)। 'पुत्र' का अपभ्रंश 'उत' राजस्थानी भाषा में संतान-वाचक प्रत्यय बन गया है। जहां तक हमें पता है, डाकोत लोग राजस्थान के बाहर नहीं पाये जाते। अतः हमारा अनुमान है कि राजस्थानी जनता में प्रचलित इस विश्वास में तथ्य है कि डाक राजस्थान का ही निवासी था।

2. डाक की स्त्री का नाम भड्डली था, जिसके भडली, भडरी, भड्डरी, भांड़रि आदि अनेक रूप मिलते हैं। डाक की बहुत-सी उक्तियाँ भड्डली को संबोधन करके लिखी गयी हैं। इस प्रकार अनेक कहावतों में भड्डली का नाम आया है। राजस्थान में पद्यों के अंदर उनके वक्ता की जगह संबोधित व्यक्ति का नाम देने की प्रथा है, अर्थात् रचयिता अपना नाम न देकर जिसे वह संबोधन कर रहा हो, उसका नाम दे देता है। राजिया, भैरिया, किसनिया, जेरुवा आदि के सोरठे इस बात के प्रमाण हैं। इसी प्रकार डाक की उक्तियों में कहीं तो दोनों का नाम मिलता है, जैसे– **डक्क कहै सुण भड्डली, जळ बिन प्रिथमी जोय;** और कहीं केवल भड्डली का नाम मिलता है, जैसे– **असाढ़ में भड्डली बरखा चोखी होय।** ऐसे पद्यों में 'भड्डली' शब्द का अर्थ 'हे भड्डली' होगा।

घाघ-भड्डली या डाक-भड्डली के नाम से प्रसिद्ध पद्य अधिकांश विद्वानों ने अन्य ग्रंथों से लेकर या इधर-उधर से सुनकर प्रकाशित किये हैं। इनकी हस्तलिखित प्राचीन प्रतियों की खोज और पाठभेद-सहित इनके संपादन का कार्य किसी ने नहीं किया है। गत पचास वर्षों से मैं हस्तलिखित प्रतियों की खोज एवं संग्रह में निरंतर लगा रहा हूँ। 'भड्डली-वाक्य' की जितनी हस्तलिखित प्रतियाँ विभिन्न ग्रंथ-भंडारों से मैंने देखी हैं, उतनी अन्य किसी ने भी नहीं देखी होंगी। बीस हस्तलिखित प्रतियाँ मेरे अपने संग्रह में हैं और सबसे प्राचीन प्रति भी मुझे ही प्राप्त हुई है। मैंने इन पद्यों का पाठभेद-सहित संपादन भी कर रखा है।

घाघ वास्तव में डाक का ही प्रांतीय भेद से प्रचलित हुआ नामांतर है। डाक का पुराना अपभ्रंश-नाम 'डक' मिलता है। वह ब्राह्मण था और उसने अपनी पत्नी भड्डली को संबोधित करके वर्षा आदि विषयों पर दोहे आदि पद्य समय-समय पर बनाये। डाक और भड्डली (या भड्डरी) का समय चौदहवीं शताब्दी से पीछे का नहीं है। सं० 1429 में खरतरगच्छ के आचार्य लोकहित सूरि लिखित 'ज्योतिष-संग्रह' की एक प्रति मुझे मिली है। उसमें भड्डरी के नामोल्लेख वाले पांच पद्य हैं। इससे यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि भड्डली सं० 1429 से काफी पहले हो चुकी थी। चूंकि उन पद्यों की भाषा अपभ्रंश है, इसलिए संभव है, उनकी रचना दसवीं-बारहवीं शताब्दी में हुई हो।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में एक जैन विद्वान की लिखी हुई 'मेघशाला' की एक पुरानी हस्तलिखित प्रति है। उसके तीन पद्य यहाँ पर दे रहा हूँ, जो सिद्ध करते हैं कि डाक ब्राह्मण था, उसकी पत्नी का नाम भड्डली था और डाक ने भड्डली से ज्योतिष-संबंधी पद्य कहे थे :

तियसिंद नदिंद नय पणमितु जिणेसरं महावीरं।

वुच्छामि मेघमालां जे कहीयं जिणवरिदेणं।

गगनस्यच्छलग्राही पुरा डाकाभिधो द्विजः।

भडल्या निजभार्यायाः पुरो ज्योतिषमब्रवीत्।।

भडल्याग्रे पुरा प्रोक्तं ज्योतिर्ज्ञानमनेकधा।

योवगच्छति मेधावी स प्राप्नोति यशो धनम्।।

अब अंत में सं० 1429 के माघ में लोकहिताचार्य द्वारा लिखित 'ज्योतिष-संग्रह' नामक पुस्तिका में भड्डली पुस्तिका में भड्डली के जो पद्य हमें मिले हैं, उन्हें नीचे दिया जा रहा है। उनसे विद्वानों को इसकी जानकारी मिलेगी कि डाक के रचे पद्यों की भाषा मूलतः कैसी थी और कौन-से पद्य प्राचीनतम हैं।

1. अक्कि फट्टइ सोमि जल बालु अंगारउ कळहणउ थावरि मइलउ होइ।
   वह गुरु सुक्क विवज्ञियउ जो कप्पड़ पहिरेइ
   इय जाणिज्जइ भड्डली बहुया दुक्ख सहेइ।।91।। इति वस्त्रे
2. चित्तह मासह भड्डली जा पहिली तिहि होइ।
   सा जोइज्जहु सव्वहिणी कउणिहिं वारिहिं होइ।।54।।

(शेष पृष्ठ 17 पर देखें)

सेहत बनाती-बिगाड़ती हैं किरणें

डॉ० वी० के० श्रीवास्तव

सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर जीवन का आधार है। यद्यपि सूर्य की किरणें हमारे स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हैं, लेकिन इनकी जरूरत से अधिक मात्रा कई प्रकार के रोगों को जन्म देती हैं। हमारे शरीर में सूर्य किरणों के घातक प्रभाव से अपने को सुरक्षित रखने की व्यवस्था तो है पर इसकी भी एक सीमा है।

प्राचीन काल से ही हमारे देशवासियों ने सूर्य के प्रकाश में छिपे जीवनदायी गुणों को पहचान लिया था। इसलिए सेहत और सूर्य किरणों के बीच अटूट रिश्ते की बात उनकी समझ में आ गई थी। फलतः सूर्य की किरणों को बलवर्धक माना गया है जो शरीर को स्वस्थ बनाकर उसे बीमारियों से लड़ने की शक्ति प्रदान करती हैं। सूर्य की किरणें बलवर्धन के अलावा अनेक बीमारियों और परिस्थितियों में औषधि का भी काम करती हैं। इसलिए रोगों की चिकित्सा में भी सूर्य की भूमिका महत्वपूर्ण हैं।

सूर्य की किरणें दो तरह की होती हैं। दृश्य किरणें जो हमें दिखाई देती हैं तथा अदृश्य किरणें जो दिखाई नहीं देतीं। जो किरणें हमें दिखाई देती हैं वे देखने में केवल एक रंग की होती हैं, परन्तु इनमें वास्तव में सात रंग होते हैं—बैंगनी, आसमानी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल। सूर्य की किरणों के ये रंग इन्द्रधनुष में दिखाई देते हैं और प्रिज्म की सहायता से भी देखे जा सकते हैं।

सूर्य की अदृश्य किरणें इन रंगदार किरणों के दोनों ओर होती हैं। ये किरणें भी दो प्रकार की होती हैं। जो किरणें लाल रंग के बाहर की ओर होती हैं उन्हें इन्फ्रारेड किरणें कहते हैं और वे गर्मी देती हैं और जो किरणें बैंगनी किरणों के बाहर की ओर होती हैं उन्हें अल्ट्रा वायलेट या पराबैंगनी किरणें कहते हैं।

सूर्य की किरणें हानिकारक और रोग पैदा करने वाले जीवाणुओं को मारती हैं। भोजन तथा खाद्य पदार्थों को परिरक्षित करती हैं। घावों को विसंक्रमित करती हैं। लोगों को रोगों का सामना करने की शक्ति देती हैं और बीमार होने पर शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ में सहायक होती हैं। गठिया जैसे रोगों में सूर्य की किरणें दर्द को कम करती हैं और बढ़े हुए रक्तचाप को कम करने में सहायक होती हैं।

सूर्य की किरणें विशेष रूप से अल्ट्रा वायलेट (पराबैंगनी) प्रकाश के कारण स्वास्थ्य-दृष्टि से लाभदायक होती हैं। अल्ट्रावायलेट किरणें ही शरीर को नुकसान पहुँचाने वाले कीटाणुओं को मारती हैं। रोगी के शरीर पर इन किरणों की बौछार करने पर उसको स्थानीय लाभ होता है। त्वचा के क्षय में कम जहरीले घावों, जलन के घावों, इसी प्रकार की अन्य बीमारी में इन किरणों के सेवन से काफी लाभ होता है। सूर्य की किरणें व्यक्ति की मानसिक अवस्था को प्रभावित करती हैं।

मैंनहीम मेडिकल स्कूल के वैज्ञानिक अर्न्सट जंग के अनुसार अल्ट्रावायलेट किरणों के प्रभाव में शरीर हानिकारक पदार्थों को शरीर से निकाल बाहर करने में सक्षम हो जाता है। दसेलदार्फ यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक गुन्तर ग्वेयर्ज ने अभी हाल ही में यह घोषणा की है कि यकृत के कुछ एंजाइम जो पदार्थों को नष्ट करने में सहायक होते हैं, अल्ट्रावायलेट किरणें उन्हें और उत्प्रेरित करती हैं। आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिक फ्रैंज और उनके सहयोगियों के अनुसार शरीर में मौजूद प्राकृतिक स्थापक बीटा-एंडार्फिज स्तर अल्ट्रावायलेट किरणों के प्रभाव में अधिक बढ़ जाता है। धूप स्नान के पश्चात् प्रसन्नचित्त अनुभव होने का कारण संभवतः यही है।

अल्ट्रावायलेट किरणों का एक लाभ और भी है। हमें पता है कि विटामिन हमारे शरीर में हड्डियों के निर्माण एवं विकास के लिए बहुत आवश्यक है। शरीर के लिए आवश्यक अधिकांश विटामिन डी का निर्माण हमारी त्वचा में होता है। एक ऐसा समय होता है जब हमारी त्वचा 220-315 नैनोमीटर तरंग दैर्ध्य की अल्ट्रावायलेट किरणों के प्रभाव में आती हैं।

अल्ट्रावायलेट किरणों के प्रभाव में रक्त में कैल्शियम और फास्फोरस के अंश भी बढ़ते हैं। विटामिन डी की कमी से बच्चों में रिकेट नाम की बीमारी हो जाती है। इस रोग में हड्डियाँ कमजोर और टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती हैं। यह बीमारी विटामिन डी के अभाव में कैल्शियम और फास्फोरस की कमी से पैदा होती है।

बच्चों के शरीर पर सरसों के तेल की मालिश करके उन्हें धूप स्नान कराना अथवा धूप में लिटाना भारतीय परंपरा रही है। सूर्य की बेकार किरणें तेल की सतह से टकरा कर लौट जाती हैं परन्तु अल्ट्रावायलेट किरणें शरीर में अवशोषित हो जाती हैं। ऐसे बच्चों के शरीर की हड्डियाँ मजबूत और शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है।

हड्डियों और जोड़ों के दर्द में धूप की सेंक लाभदायक होती है। प्राचीन काल से ही इन्फ्रारेड किरणों के इस प्रभाव का चिकित्सा में इस्तेमाल होता आया है। मोच खाई और जख्मी मांसपेशियों में इन्फ्रारेड किरणों की सेंक से दर्द कम हो जाता है। इनसे शरीर की पसीने की ग्रन्थियाँ अधिक काम करती हैं और अधिक पसीना निकलता है। इस पसीने के साथ शरीर के व्यर्थ पदार्थ भी शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

बढ़ते प्रदूषण के कारण ओजोन की छतरी में छेदों ने और वातावरण में ओजोन की लगातार घटती मात्रा ने वैज्ञानिक जगत में हलचल मचा रखी है। पर्यावरण से संबंधित यह मुद्दा इस समय विश्व स्तर पर वैज्ञानिकों के बीच बहुचर्चित मुद्दों में इसलिए प्रमुख हैं क्योंकि इसका संबंध पूरे मानव समाज के कल्याण से है। यह सीधे मनुष्य के स्वास्थ्य से जुड़ा है।

ओजोन अल्ट्रावायलेट स्पेक्ट्रम के बीच के हिस्से को इतने जबरदस्त तरीके से अवशोषित कर लेती है कि इस तरंगदैर्ध्य की अल्ट्रावायलेट किरणें (200 से 300 नैनोमीटर) पृथ्वी पर बिलकुल भी नहीं पहुँच पातीं। आक्सीजन तथा अन्य गैसें केवल 200 नैनोमीटर से कम तरंगदैर्ध्य की किरणों को ही अपने में अवशोषित कर पाती हैं। इसलिए केवल ओजोन ही बीच की अल्ट्रावायलेट किरणों के विरुद्ध हमें सुरक्षा प्रदान करती हैं। अल्ट्रावायलेट किरणों का यही अंश जीवित प्राणियों के लिए सबसे खतरनाक होता है। इस हिस्से की अल्ट्रावायलेट किरणों का जो जरा सा अंश पृथ्वी पर पहुँच पाता है वही पृथ्वीवासियों में त्वचा के कैंसर का प्रमुख कारण है।

अल्ट्रावायलेट प्रकाश प्राणियों पर अपना हानिकारक प्रभाव मुख्य रूप से जीवित कोशिकाओं के दो मौलिक पदार्थों को नुकसान पहुँचाकर डालता है। ये दो पदार्थ हैं प्रोटीन और डी एन ए अणु। प्रोटीन 280 नैनोमीटर तरंगदैर्ध्य की अल्ट्रावायलेट किरणों को अपने में अवशोषित कर लेती है। इनमें छिपी ऊर्जा प्रोटीन के श्रृंखलाबद्ध अणुओं को अव्यवस्थित कर देने के लिए पर्याप्त होती है। ऐसा करके वह प्रोटीन के एंजाइमी गुणों को नष्ट कर देती है।

कोशिकाएँ साधारण परिस्थितियों में डी एन ए में छिपे हुए आनुवंशिक निर्देशों के अनुसार कार्य करके प्रोटीन अणुओं को फिर से गढ़ लेती हैं और इस प्रकार नुकसान की भरपाई कर लेती हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश डी एन ए स्वयं अल्ट्रावायलेट किरणों की मार से क्षतिग्रस्त हो जाता है। डी एन ए भी अल्ट्रावायलेट प्रकाश के उसी हिस्से को अवशोषित करता है जिसे प्रोटीन अणु करते हैं। अल्ट्रावायलेट किरणों के प्रभाव में प्रकाश रसायन प्रक्रिया द्वारा डी एन ए के दो पास-पास के बेस आपस में जुड़ जाते हैं। इस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जीन काम करना बन्द कर देती है और यदि क्षति ठीक न की जाए तो कोशिका मर सकती है अथवा उसमें कैंसर हो सकता है।

अल्ट्रावायलेट प्रकाश का हानिकारक प्रभाव यहीं नहीं समाप्त होता। त्वचा में होने वाली घटनाएँ शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को भी प्रभावित कर सकती हैं।

(सम्प्रेषण से साभार)

समीक्षा/साहित्य परिचय

पुस्तक : **वैज्ञानिकों के वैज्ञानिक डॉ० आत्माराम**

लेखक : दुर्गा प्रसाद नौटियाल

प्रकाशक : किताबघर प्रकाशन, 24 अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002

मुद्रक : एस० एन० प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली- 110 032

प्रथम संस्करण : जनवरी 1999

मूल्य : दो सौ पचहत्तर रुपये

समीक्ष्य पुस्तक के विद्वान लेखक श्री दुर्गादत्त नौटियाल जी पत्रकार के रूप में पहले ही अत्यधिक ख्याति अर्जित कर चुके हैं। इसके पूर्व आप हिन्दी और अंग्रेजी में ''वरिष्ठ कांग्रेस नेता और स्वतंत्रता सेनानी नारायणदत्त तिवारी का जीवन चरित्र'' पुस्तकें लिख चुके हैं। नौटियाल जी के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पहले वह विषय पर पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त करते हैं, तब लेखनी उठाते हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में धारावाहिक रूप से 'डॉ० आत्माराम जी का जीवन चरित्र' नौटियाल जी लिख चुके हैं और मुझे पढ़ने का सौभाग्य भी मिला था। 1984 में हम लोग 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' से डॉ० आत्माराम जी के स्वर्गवास के बाद एक स्मृति अंक भी प्रकाशित कर चुके थे। किन्तु वर्तमान पुस्तक की तो बात ही कुछ और है।

250 पृष्ठों की पुस्तक के प्रारंभ 'निवेदन' के अँतर्गत् लेखक ने डॉ० आत्माराम जी से परिचय और फिर घनिष्ठता का उल्लेख किया है। पूरी पुस्तक आठ अध्यायों में विभक्त है। यथा प्रारंभिक जीवन; उच्च शिक्षा और गृहस्थ जीवन में प्रवेश; आजीविका के लिए सतत संघर्ष; वैज्ञानिक क्षेत्र में पदार्पण की पृष्ठभूमि; कलकत्ता में दो दशक; पुनः 1966 में दिल्ली वापस; व्यक्तित्व के विविध आयाम; जीवन-दर्शन और विचार।

इसके अतिरिक्त परिशिष्ट के अंतर्गत् डॉ० आत्माराम का जीवन-क्रम, पेटेन्टों की सूची, शोधपत्रों का विवरण (अंग्रेजी में), चुने हुए भाषणों की सूची (अंग्रेजी में), फेलोशिप पुरस्कार, सम्मान आदि (अंग्रेजी में), विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित पत्रिका ''विज्ञान'' मासिक में प्रकाशित लेख (1931-1976), कतिपय सम्मतियाँ, शब्दावली (Glossary), वंश-वृक्ष, अनुक्रमणिका पुस्तक की उपादेयता बढ़ाते हैं।

पुस्तक की भाषा सरल और शैली रोचक है। इसमें संदेह नहीं कि लेखक अपने प्रयास में पूर्णतः सफल हुए हैं क्योंकि पुस्तक निश्चित रूप से युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा स्रोत है। स्वर्गीय डॉ० आत्माराम जी का जीवन एक खुली किताब है। किस प्रकार देहात में पैदा हुआ बालक कठिनाइयों और बाधाओं पर विजय प्राप्त करता हुआ विज्ञान जगत् में शीर्ष पर पहुँच गया और सी०एस०आई०आर० के महानिदेशक पद को जो गरिमा प्रदान की वह स्तुत्य है। डॉ० आत्माराम जी 'सादा जीवन उच्च विचार' की प्रतिमूर्ति थे।

पुस्तक मात्र डॉ० आत्माराम का जीवन चरित ही नहीं है बल्कि उनके समय के बनते विज्ञान इतिहास का भी लेखा-जोखा है। किन लोगों ने, किन वैज्ञानिकों ने, किन संस्थाओं ने डॉ० आत्मा राम को वैज्ञानिकों का वैज्ञानिक बनाया, इसका भी उल्लेख है।

आकर्षक मुख पृष्ठ, मनभावन 20 चित्र पुस्तक में 'चार चाँद' लगाते हैं। पुस्तक का मुद्रण अच्छा है, कागज बढ़िया है, मुद्रण की त्रुटियाँ नहीं के बराबर हैं और मूल्य उचित है।

कुल मिलाकर पुस्तक पठनीय, संग्रहणीय है और पुस्तक का स्वागत वैज्ञानिक और साहित्यिक दोनों क्षेत्रों में समान रूप से होगा। पुस्तक के लेखक के साथ ही साथ प्रकाशन से जुड़े सभी व्यक्ति साधुवाद के पात्र हैं।

पत्रिका : **क्योर बुलेटिन**-99 अंक 5

सम्पादक : प्रमिला अस्थाना

प्रकाशक : सेक्रेटरी क्योर 3-अशोक मार्ग, न्यू कैण्ट, इलाहाबाद

कांग्रीगेशन ऑफ अर्बन एण्ड रूरल इन्वायर्नमेंट (क्योर) ने अपने सफल कार्यकाल के पाँच वर्ष पूरे कर लिए हैं। क्योर बुलेटिन 99 अंक-5 में सदैव की भाँति इस वर्ष की जाने-माने विज्ञान लेखकों की ज्ञानवर्द्धक एवं रोचक रचनाओं को प्रकाशित किया गया है। इनमें सुप्रसिद्ध विज्ञान लेखक डॉ० शिवगोपाल मिश्र का विशेष आमंत्रित लेख ''भोजन या भोज्य पदार्थों की विषाक्तताः कारण एवं निवारण'' अत्यन्त सामयिक एवं सारगर्भित है। इसी प्रकार डॉ० शेखर श्रीवास्तव, डॉ० श्रद्धा द्विवेदी के अंग्रेजी आलेख भी क्रमशः वन्य जीवों एवं पारिस्थितिकी संतुलन और वन-स्वास्थ्य नुकसान को रोकने के उपाय भी जन सामान्य के लिए उपयोगी हैं। पत्रिका का सम्पादकीय हमारी संवेदनशीलता पर प्रश्न-चिन्ह लगाने में सक्षम है और आत्म विश्लेषण के लिए प्रेरित करता है। 'क्योर' संस्था के अध्यक्ष की 'पहाड़'/'जंगल'/'नदी' शीर्षक युक्त कविताएं प्रकृति के विभिन्न घटकों के उपकारों का अहसास कराती हैं। आनन्द बिल्थरे की कविताएं-'मापदंड' हमारे स्वार्थी दृष्टिकोण की बेबाक व्याख्या करती हैं।

कुल मिलाकर पत्रिका हर दृष्टिकोण से रोचक एवं आकर्षक है। पत्रिका के सम्पादक, प्रकाशक और सभी लेखक साधुवाद के पात्र हैं।

—प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
पूर्व सम्पादक 'विज्ञान'

पुस्तक का नाम : **पंच तत्वों की कहानी**

लेखक : श्री कंवल नयन कपूर

प्रकाशक : जगत राम एण्ड सन्स, 24/4855, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली- 110002

संस्करण : 1998, मूल्य : 35.00, पृष्ठ संख्या : 80, सचित्र

भारतीय दार्शनिक परम्परा में वैदिक काल से ही पंच तत्वों को सृष्टि रचना का आधार माना जाता रहा है। ''भूमिरापोऽनलोवायुःखं'' अथवा ''क्षिति जल पावक गगन समीरा'' आदि से स्पष्ट है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश ये पाँच मूल तत्व माने गये हैं। लेखक ने इस पुस्तक में अग्नि के स्थान पर प्रकाश को इस पंचतत्वों की सूची में स्थान दिया है, यद्यपि प्रकाश मूल तत्व न होकर ऊष्मा की भाँति अग्नि तत्व का एक गुण मात्र है।

पुस्तक में पाँच अध्याय हैं जिनमें क्रमशः ''धरती की कहानी'', ''पानी की कहानी'', ''प्रकाश की कहानी'', ''हवा की कहानी'', और ''आकाश की कहानी'' शीर्षकों के अन्तर्गत् पंच तत्वों द्वारा अपनी-अपनी कहानी आत्म परिचय के रूप में दी गई है। सरल, सुबोध व मुहावरों के अत्यधिक प्रयोग वाली भाषा पुस्तक को रोचक व ज्ञानवर्धक बनाती है। यद्यपि कुछ स्थानों पर कथ्य मूल विषय से भटकते हुए प्रतीत होते हैं, किंतु कुल मिलाकर बच्चों व किशोरों के लिये लिखी गई पुस्तक अपने उद्देश्य में सफल प्रतीत होती है।

पुस्तक में कुछ स्थानों पर तथ्य व उद्धरण त्रुटिपूर्ण हैं। पृष्ठ 54 पर प्रकाश की गति 3,00,000 किमी०/से० के० के स्थान पर 30,00,000 किमी०/से०, पृष्ठ 57 का सूत्र $E = MC^2$ में C को ''प्रकाश के वेग'' के स्थान पर ''प्रकाश'' के लिये प्रयुक्त करना आदि तथ्यात्मक भूलें हैं। पृष्ठ 5 पर गोस्वामी तुलसीदास जी का उद्धरण ''राम प्रकाशक जगत् प्रकासू'' के स्थान पर ''जगत् प्रकाश्य प्रकाशक रामू'' होना चाहिए। पृष्ठ 47 पर कबीर का दोहा ''जब मैं था जब हरि नाही जब हरि हैं जब मैं नाहि'' के स्थान पर ''जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं'' होना चाहिए। आशा है आगामी संस्करणों में इन त्रुटियों को सुधार लिया जाएगा।

पुस्तक की छपाई, रेखाचित्र व आवरण आकर्षक है। एतदर्थ लेखक व प्रकाशक दोनों धन्यवाद के पात्र हैं।

—देवव्रत द्विवेदी
विज्ञान परिषद्, प्रयाग

(1) स्वामी जी के जन्म दिन पर संगोष्ठी

24 अगस्त को स्वर्गीय स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी के जन्म दिन पर "विज्ञान परिषद्" में एक संगोष्ठी "स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व" के माध्यम से सम्पन्न हुई।

प्रारम्भ में संगोष्ठी के आयोजक और संचालक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने सभी का अभिनन्दन किया। डॉ० प्रभाकर द्विवेदी "प्रभामाल जी" ने सरस्वती वन्दना प्रस्तुत की। सभाध्यक्ष प्रो० चंद्रिका प्रसाद जी ने स्वामी जी के चित्र पर माल्यार्पण किया और अन्य लोगों ने पुष्प अर्पित किए।

संगोष्ठी का विषय प्रवर्तन करते हुए प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती (24 अगस्त 1905-18 जनवरी 1995) को हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत भाषाओं का अधिकारी विद्वान बताया। उनके द्वारा रचित साहित्य को 3 भागों में बाँटा जा सकता है– आर्य समाज से संबंधित साहित्य, पाठ्य पुस्तकें और लोकप्रिय लेख। स्वामी जी पर उनके आर्य समाजी परिवार का प्रभाव था और वेष-भूषा में गांधी जी का। 'सादा जीवन उच्च विचार' की तो वे प्रतिमूर्ति ही थे। जब सत्यप्रकाश जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे तब भी वे मन से सन्यासी थे। उन्होंने आजीवन सत्य को आलोकित कर अपने नाम को चरितार्थ किया।

पहले वक्ता, प्रो० पूर्णचन्द्र गुप्त, अवकाशप्राप्त अध्यक्ष, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने स्वामी जी को रसायनज्ञ, सहृदय अध्यापक, खाने के शौकीन, और उच्च विचारों से युक्त बताया। डॉ० विमलेश, अवकाशप्राप्त प्राचार्य, डी० ए० वी० इंटर कॉलेज, ने स्वामी जी के पारिवारिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए बताया कि उनका जीवन सादा था,समय पर पहुँचते थे, जूते में पालिश है या नहीं, कपड़ा प्रेस किया हुआ है या नहीं, इसकी परवाह नहीं करते थे। प्रो० ईश्वर चन्द्र शुक्ल, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने बताया कि कैसे स्वामी जी कक्षा में आसान तरीके से जटिल बातें बता देते थे और विद्यार्थी सदैव उनके पास ही समाधान के लिए जाते थे। आर्य समाज के मूर्धन्य विद्वान श्री आनन्द प्रकाश गुप्त ने स्वामी जी की आर्य समाज से सम्बन्धित सेवाओं का उल्लेख किया और कहा कि आर्य समाज के उत्थान के लिए उनके द्वारा किया गया कार्य सदैव याद किया जायेगा। देश की प्रथम महिला पी० सी० एस० आदरणीया माधुरी श्रीवास्तव ने स्वामी जी को श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए उनके योगदान को अत्यंत महत्वपूर्ण बताया।

परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने स्वामी जी के जीवन से संबंधित अनेक संस्मरण सुनाये और बताया कि किस प्रकार स्वामी जी विज्ञान परिषद् से गहरा लगाव रखते थे। 1958 से स्वामी जी ने "विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका" का प्रकाशन प्रारंभ किया। हिन्दी से उन्हें विशेष अनुराग था। डॉ० प्रभाकर द्विवेदी ने बताया कि किस प्रकार स्वामी जी ने उनके विश्वविद्यालय में प्रवेश में सहायता की और कितनी आत्मीयता से मिले। उन्होंने स्वरचित एक कविता भी सुनाई। प्रो० चंद्रिका प्रसाद जी ने अपने अध्यक्ष-पदीय उद्बोधन में बताया कि स्वामी जी को वे बचपन से ही निकट से जानते थे। उन्हें चाचा जी कहते थे। बाद में वे भी गणित में प्रवक्ता हो गए। किन्तु रुड़की विश्वविद्यालय में जाने के बाद भी स्वामी जी से मिलना होता रहा क्योंकि स्वामी जी रुड़की विश्वविद्यालय की सीनेट के नामित सदस्य थे। स्वामी जी उनके पिता स्वर्गीय डॉ० गोरख प्रसाद के अभिन्न मित्र थे।

अंत में प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

इस संगोष्ठी में डॉ० राजकुमार दुबे, डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय सर्वश्री श्रीप्रकाश, सुरेन्द्र मिश्र, चन्द्र भान सिह, अरुण कुमार राय, देवव्रत द्विवेदी, हरिओम सिंह, कुँवर विवेक सिंह, कु० श्रीवास्तव आदि उपस्थित थे।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
पूर्व सम्पादक "विज्ञान"

(2) विज्ञान का व्यावहारिक परिभाषा कोश-प्रगति की ओर अग्रसर

विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली ने जून मास में विज्ञान परिषद प्रयाग को **व्यावहारिक विज्ञान परिभाषा कोश** तैयार करने का एक प्रोजेक्ट सौंपा जिसमें लोकप्रिय विज्ञान लेखकों, पत्रकारों, छात्रों तथासामान्य पाठकों के लिए विज्ञान विषयक ऐसे सारे शब्दों की परिभाषाएँ एक जगह उपलब्ध हों, जो सामान्य में नहीं मिल पाती या ऐसे प्रचलित जिनके विषय में अधिक जानकारी अपेक्षित लगती है। इस कोश में विज्ञान की सभी शाखाओं यथा भौतिकी, रसायन, गणित, जीव विज्ञान के साथ कृषि शास्त्र, ओषधि विज्ञान, इंजीनियरी, जैव प्रौद्योगिकी, ऊर्जा, पारिस्थितिकी, आनुवांशिकी, मात्स्यिकी, कम्प्यूटर तथा अन्तरिक्ष विज्ञान के 10 हजार शब्द सम्मिलित किये जाने हैं। इस कार्य के लिए विभिन्न शाखाओं के विशेषज्ञों के एक मंडल की स्वीकृति मिली है जिसमें डॉ० चन्द्रिका प्रसाद (गणित), प्रो० चन्द्रमोहन भंडारी (भौतिकी), प्रो० अशोक कुमार (कम्प्यूटर, अन्तरिक्ष विज्ञान), प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी (रसायन), श्री डी० एम० श्रीवास्तव (इंजीनियरी), प्रो० श्रद्धा द्विवेदी (औषधि विज्ञान), डॉ० दिनेश मणि, डॉ० प्रभाकर द्विवेदी, डॉ० शिव गोपाल मिश्र (कृषि) तथा श्री प्रेम चन्द्र श्रीवास्तव (जीव विज्ञान) सम्मिलित किये गये हैं। यह विशेषज्ञ मंडल अपनी अपनी शाखा के व्यावहारिक शब्दों का चुनाव कर चुका है और शोध सहायक उसके कार्ड तैयार कर रहे हैं। कुछ शाखाओं के शब्दों की परिभाषाएँ भी लिखी जा रही हैं जिनका संशोधन भी उनसे सम्बन्धित विशेषज्ञ लगातार कर रहे हैं।

विज्ञान प्रसार दिल्ली ने इस प्रोजेक्ट का भार विज्ञान परिषद के प्रधानमंत्री को सौंपा है और श्री गुणाकर मुले सारे कोश कार्य के विशेष परामर्श-दाता हैं।

विज्ञान परिषद ने 19 जून 1999 को **विज्ञान प्रसार** से आये डॉ० सुबोध महन्ती तथा गुणाकर मुले की उपस्थिति में विशेषज्ञों के साथ कोश के विषय में आवश्यक दिशा निर्देश तैयार किए हैं। शब्दावलियों एवं अंग्रेजी के विश्वकोशों की पर्याप्त संख्या एकत्र कर ली गई है जिनके आधार पर हिन्दी में मानक परिभाषाएँ तैयार की जानी हैं।

विज्ञान प्रसार ने विज्ञान परिषद के द्वारा पूर्व कार्यों को दक्षतापूर्वक सम्पन्न किये जाने के आधार पर ही यह कार्य सौंपा है। इस प्रोजेक्ट को 18 मास में पूर्ण होना है।

यह व्यावहारिक परिभाषा कोश अपनी तरह का नया कोश होगा अतः इसके लिए शब्दों के चयन तथा उनकी सरल एवं उपयुक्त परिभाषा प्रस्तुत करने के लिए समय समय पर कार्यशालाएँ आयोजित करके तब तक सम्पन्न हुए कार्य का मूल्यांकन किया जायेगा। इसके विशेषज्ञ मंडल के सदस्यों को अन्त में यथासम्भव मान देय दिये जाने की व्यवस्था है।

विगत मासों में विज्ञान परिषद ने एन० सी० एस० टी० सी० द्वारा स्वीकृत विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विषयक लोकप्रिय हिन्दी पुस्तकों की विस्तृत सूची पूरी कर ली है। उसके पूर्व के प्रोजेक्ट "हिन्दी में विज्ञान लेखक के सौ वर्ष" के अन्तर्गत 1500 पृष्ठों की सामग्री पुस्ताकाकार होकर शीघ्र ही **विज्ञान प्रसार** से छपने वाली है।

डॉ० नरेन्द्र सहगल, डॉ० सुबोध महन्ती, श्री टी० के० मंडल तथा श्री गुणाकर मुले (फेलो) के सौजन्य एवं सहयोग से विज्ञान परिषद इस अनुपम यज्ञ में जुटा हुआ है।

विज्ञान के पाठकों से अनुरोध है कि वे जैव प्रौद्योगिकी, फोरेंसिक साइंस, समुद्र विज्ञान, भूकम्प विज्ञान, अन्तरिक्ष विज्ञान सम्बन्धी ऐसे प्रचलित नवीन शब्दों की सूची हमें भेजें जिनके विषय में उन्हें जानने की उत्सुकता है जिससे उन्हें इस कोश में सम्मिलित किया जा सके।

शिवगोपाल मिश्र
प्रधान मंत्री

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पताः

डॉ० दिनेश मणि, डी० एस -सी०
संपादक विज्ञान
विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 85 अंक 7
अक्टूबर 1999

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत

1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

सम्पादक

डॉ० दिनेश मणि, डी० एस-सी०

मुद्रक

अरुण राय
कम्प्यूटर कम्पोजर; बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

विषय-सूची

निगाहें अब जैव-धात्विकी की ओर

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मानव सहित सभी प्राणियों का जीवन पेड़-पौधों पर ही निर्भर है। पादपों के अभाव में धरती नामक इस ग्रह पर जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। सब पूछिए तो हमारा अस्तित्व इन्हीं पेड़-पौधों पर टिका हुआ है। "जन-संख्या विस्फोट" के दबाव के कारण जंगल कटते जा रहे हैं, शहरों का विस्तार हो रहा है, मरुस्थलीकरण बढ़ रहा है। मौसम में परिवर्तन के कारण कहीं बाढ़ तो कहीं सूखे की विभीषिका का आये दिन सामना करता पड़ रहा है, इन सबके कारण हो रही पर्यावरण की क्षति के प्रति समय रहते सचेत होना अत्यंत आवश्यक है।

हम सभी जानते हैं कि हरे पौधे प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया में प्राणवायु ऑक्सीजन गैस निकालते हैं, जो हमारे श्वसन और जीवित रहने के लिए परमावश्यक है। और तो और, ऊपर जाकर यह गैस ओज़ोन की पर्त का निर्माण करती है, जो धरती के समस्त जीवधारियों के लिए रक्षा कवच का कार्य करती है। ओज़ोन की यह छतरी सूर्य की पराबैंगनी किरणों को धरती पर आने से रोक देती है। ये पराबैंगनी किरणें पेड़-पौधों सहित सभी जीव-जन्तुओं के लिए घातक होती हैं। ये पराबैंगनी किरणें यदि धरती पर पहुँच जायें तो ऐसी तबाही मचायेंगी, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

अंग्रेज़ी की एक कहावत है-"आल फूड इज ग्रास" (All food is grass) अर्थात् सभी भोजन घास है। प्रकृति में भोजन की एक श्रृंखला है, जिसके कारण मांसाहारी जानवर भी भोजन के लिए शाकाहारी जानवरों पर निर्भर रहते हैं। हमारी मूलभूत आवश्यकतायें— भोजन, आवास, कपड़ा, ओषधियाँ सभी पेड़-पौधों से ही पूरी होती हैं। फिर पेड़-पौधों के विषय में हमारी उदासीनता मानव जीवन के लिए कितनी भयावह सिद्ध हो सकती है ये समझना आज हमारा परम उत्तरदायित्व है।

वस्तुतः पेड़-पौधों के विषय में अभी भी हमें बहुत कुछ जानना शेष है। किन्तु जैव-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रहे नवीनतम शोधों के फलस्वरूप पादपों के अनेकानेक नये उपयोग सामने आ रहे हैं।

आम तौर से ऐसा देखने में आता है कि प्रदूषित मृदा वाली भूमियाँ पादपविहीन होती हैं। इसका कारण यह होता है कि बहुत से पादप मिट्टी में धातुओं (प्रदूषकों) की उपस्थिति को सहन नहीं कर पाते और अंततः मर जाते हैं। वास्तविकता यह है कि पेड़-पौधों की जड़ें मिट्टी को बाँधे रहती हैं और भू-क्षरण रोकती हैं। अब कुछ ऐसे पादपों को ढूँढ़ा जा चुका है जो धातुओं (प्रदूषकों) की भारी मात्रा को अपने अंदर संग्रहीत कर लेते हैं और धातुओं द्वारा प्रदूषित मृदा वाले क्षेत्रों में फूलते-फलते हैं। किन्तु यहाँ इस बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि पादप विशेष, धातु विशेष का ही अवशोषण कर सकने की क्षमता रखते हैं।

ऐसे पौधों से दो लाभ हैं। एक तो वे धातुओं का शोषण करके मृदा को प्रदूषणमुक्त करके दूसरे पादपों को उगने और पुष्पित-पल्लवित होने के योग्य बनाते हैं और दूसरा लाभ यह है कि धातुयें जब जड़ों द्वारा अवशोषित होकर तनों से होते हुए कोंपलों और पत्तियों में पहुँचती हैं, तो उन्हें जलाकर राख से व्यावसायिक रूप में इन धातुओं को प्राप्त किया जा सकता है। यहीं जैव-प्रौद्योगिकी की उपयोगिता उजागर होती है। जैव-प्रौद्योगिकी की ऐसी नयी विधियाँ विकसित की जा चुकी हैं, जिनकी सहायता से एक तो धातुओं के अवशोषण को बढ़ाया जा सकता है और दूसरे पारम्परिक विधियों की अपेक्षा कम लागत से धातुओं की अधिक मात्रा प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार इन धातुओं का एक ओर जहाँ आर्थिक महत्व अधिक है, वहीं दूसरी ओर मृतप्राय मिट्टी पुनः जीवंत होकर कृषि योग्य हो जाती है।

भारत सरकार का जैव-प्रौद्योगिकी विभाग प्रदूषित मृदा को प्रदूषणमुक्त करने के लिए कृतसंकल्प है और समस्या से निपटने के लिए नई नियंत्रण नीति विकसित कर रहा है। ऐसी तकनीकें उपलब्ध हैं, जिनके प्रयोग से मिट्टी से भारी धातुएँ प्राप्त की जा सकती हैं। इस काम के लिए चुने हुए और विशेष रूप से निर्मित सूक्ष्मजीव इस्तेमाल किए जा सकते हैं।

1947 में पहली बार अमेरिकी सूक्ष्मजीव विज्ञानियों ने इस बात का पता लगाया कि ताम्र (Copper) को एक जीवाणु, *थायोबैसिलस फेरॉक्सीडैंस* *(Thiobacillus ferroxidans)* की मदद से कच्ची धातु से प्राप्त किया जा सकता है। ये जीवाणु पूरे तौर से सल्फाइड्स पर निर्भर रहते हैं और अम्लीय पर्यावरण में वृद्धि करते हैं। अब *T. ferroxidans* और *T. thiooxidans* दोनों की मदद से ताँबा और यूरेनियम (Copper and Uranium) को अघुलनशील खनिजों से निकालते हैं। इसी प्रकार इस विज्ञान द्वारा 1970 में, कनाडा में यूरेनियम और दक्षिण अफ्रीका में सोने (Gold) का निष्कर्षण संभव हुआ। ताँबे के विषय में दो तथ्य उभर कर सामने आये। एक तो ताँबा अपेक्षाकृत सस्ता हुआ और दूसरे सल्फर डाइऑक्साइड गैस का हवा में उत्सर्जन नहीं हुआ। *T. ferroxidans* जीवाणु कोयले से सल्फर कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन में कमी करने में प्रभावी पाया गया। भारत जैसे विकासशील देश निश्चित रूप से इससे लाभ उठा सकते हैं। जीवाणुओं और शैवालों की मदद से जलमार्गों, नालों से धातुओं को हटाया या निकाला जा सकता है। यही नहीं, मिट्टी में रहने वाले कुछ विशेष जीवाणु सोने-चाँदी को जमा कर सकते हैं। अब वह दिन दूर नहीं जब अभियांत्रिक विधियों से निर्मित जीवाणु खनन-कम्पनियों को खनन और धातु-निष्कर्षण के लिए उपलब्ध कराये जा सकेंगे।

सूक्ष्मजीवों के अतिरिक्त बहुत से ऐसे पुष्पी पादप भी प्रकाश में आये हैं जो भारी धातुओं की अधिक मात्रा को अपनी जड़ों द्वारा अवशोषित करके मृदा को धातु-प्रदूषण से छुटकारा दिलाते हैं। *सेबेर्टिया अक्रूमिनाटा* ऐसा ही पादप है जो निकेल को भारी मात्रा में अवशोषित कर लेता है। ब्रैसिकेसी (*Brassicaceae*) कुल का एक पादप *थलैस्पी सीरूलेसेन्स* (*Thlaspi caerulescens*) अपने ऊतकों में 4 प्रतिशत जस्ता (Zinc) संग्रहीत कर सकता है।

किन्तु सर्वाधिक चौंकाने वाला तथ्य यह है कि अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में चलने वाला, महिलाओं को आभूषण के रूप में अतिप्रिय, कीमती सोना भी मिट्टी से पादपों द्वारा अवशोषित किया जा सकता है, और यह पादप भारतीय सरसों की एक प्रजाति *ब्रैसिका जुंसिया (Brassica juncea)* है, जो आसानी से सोने का अवशोषण कर सकता है। इस खोज का श्रेय न्यूज़ीलैण्ड के वैज्ञानिक रॉबर्ट ब्रूक्स (Robert *Brooks*) और उनके सहयोगियों को जाता है।

"नेचर"(NATURE) नामक विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति की पत्रिका के हवाले से न्यूज़ीलैण्ड के वैज्ञानिक क्रिस्टोफर एण्डरसन (Cristopher Anderson) ने बताया है कि सरसों की एक किस्म *(Brassica juncea)* को यदि ऐसी ज़मीन पर बोया जाय, जहाँ मिट्टी में सोना उपलब्ध हो तो मिट्टी का सोना सरसों की कोंपलों और पत्तियों में जमा होने लगता है। बस करना यह होता है कि मिट्टी में थोड़ा-सा अमोनियम थायोसाइनेट (Ammonium thiocyanate) मिला दिया जाता है। इससे ज़मीन में अघुलनशील रूप में उपलब्ध सोना घुलनशील हो जाता है और पानी के अवशोषण के साथ ही जड़ों के माध्यम से पत्तियों तक पहुँच जाता है। प्रयोगों के दौरान यह पाया गया कि मिट्टी में इस रसायन की जितनी मात्रा मिलाते गये, उसी अनुपात में सोने की मात्रा सरसों के पौधें में बढ़ती गई।

किन्तु अमोनियम थायोसाइनेट की बहुत अधिक मात्रा से पौधे का विकास रुकने लगता है और पौधा अंततः मर जाता है। इस मरे हुए पौधे को जलाकर राख से सोना प्राप्त किया जा सकता है।

श्री एण्डरसन का कहना है कि प्रयोगों के दौरान कुछेक बार प्रति किलोग्राम सूखे हुए पौधों से 57 माइक्रोग्राम तक सोना प्राप्त किया जा सका। यह भी ज्ञात हुआ कि 6 अन्य पौधों की तुलना में सरसों का पौधा 5000 गुना अधिक मात्रा में ज़मीन से सोना अवशोषित कर सकता है। किन्तु वर्तमान में सोना जिस भाव बिक रहा है, उसके अनुसार अधिक लालच करने की आवश्यकता नहीं। प्रति किलोग्राम सूखे पौधे से 17 माइक्रोग्राम सोना निकालना व्यावहारिक लाभ-प्रदता के लिए पर्याप्त है। यहाँ यह जान लेना उचित होगा कि सरसों का पौधा तेज़ी से बढ़ता है और जैवमात्रा (बायोमास-Biomass) भी अधिक है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी में निश्चित रूप से इस प्रकार के अनुसंधानों को अधिक गति दी जायेगी। जैव-प्रौद्योगिकी ने हमारे सामने संभावनाओं के अनेक द्वारा खोल दिए हैं। आवश्यकता है युवा वैज्ञानिकों के इस क्षेत्र में रुचि लेने की, और सरकारी सहयोग तो अपेक्षित है ही।

–पूर्व सम्पादक, "विज्ञान"
विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद

सिद्धांत दर्पण के सौ साल

डॉ० सुबोध महन्ती

आज से करीब एक सौ साल पहले खगोल विज्ञान पर एक प्रबंध प्रकाशित हुआ था — **सिद्धांत-दर्पण**। यद्यपि इसे एक ऐसे व्यक्ति ने लिखा था जिसने उड़ीसा के पहाड़ों और जंगलों के बीच स्थित एक जगह पर आजीवन निवास किया तथा जो पारंपरिक शिक्षण गतिविधियों से कोसों दूर था। फिर भी इस प्रबंध को भास्कर-द्वितीय द्वारा 1150 ई० में रचित **सिद्धांत-शिरोमणि** के बाद भारत में प्रकाशित सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत ग्रंथ माना जाता है। इसके रचयिता महामहोपाध्याय पंडित सामंत चंद्रशेखर हरिचंदन महापात्र को स्थानीय लोग प्यार से 'पठाणि सामंत' कहकर पुकारते थे। प्राचीन भारत के खगोलशास्त्रियों को खगोल विज्ञान के बारे में जो कुछ ज्ञात था, पठाणि सामंत ने उनमें कुछ की ही पुष्टि की। ज्यादातर सिद्धांतों को उन्होंने नया रूप दिया या उनकी जगह नए सिद्धांत प्रतिपादित किए। उन्होंने कई खगोलीय घटनाओं की जानकारी दी। उनके साथ नए सूत्र भी दिए। पठाणि सामंत पहले भारतीय खगोलशास्त्री थे जिन्होंने चंद्रमा की तीनों असंगतियों को पहचाना था। ये असंगतियाँ हैं-तुंगांतर या चंद्रकक्षा क्षोभ, पाक्षिक या विचरण और दिगंश। उनकी उपलब्धियाँ आश्चर्यजनक थीं। यह जानकर उनकी उपलब्धियाँ अविश्वसनीय लगती हैं कि उन्होंने कोई औपचारिक शिक्षा नहीं ली थी। मातृभाषा उड़िया और संस्कृत के अलावा उन्हें और कोई भाषा नहीं आती थी। खुला आकाश ही उनकी वेधशाला थी। यह जानकर तो और आश्चर्य होता है कि उन्होंने हमेशा कोरी आंखों से ही आकाश को देखा। उनके पास दूरबीन जैसा कोई यंत्र नहीं था। दूरबीन रखने की बात दूर, मृत्यु से कुछ समय पूर्व तक उन्होंने दूरबीन देखी ही नहीं थी। घड़ी तो उनके पास कभी थी ही नहीं।

भारत में लिखे गए अन्य सिद्धांतों की शैली में ही पठाणि सामंत ने **सिद्धांत-दर्पण** भी लिखा। यहाँ इस बात का उल्लेख प्रासंगिक होगा कि 400 ई० या इससे कुछ समय पूर्व खगोल विज्ञान पर नए ग्रंथ लिखे गए। इन्हें सिद्धांत नाम दिया गया। इनमें खगोलीय समस्याओं का सही जवाब देने की कोशिश की गई। संस्कृत के सिद्धांत शब्द का अर्थ है 'अंतिम निष्कर्ष' या 'समाधान'। कहा जाता है कि मूल रूप से 18 सिद्धान्त लिखे गए। लेकिन हमें उन पांच सिद्धांतों की ही जानकारी है जिनका जिक्र अवंति (आधुनिक उज्जैन) के ज्योतिषी वराहमिहिर (जन्म 505 ई०) ने अपने ग्रंथ **पंचसिद्धांतिका** में किया था। ये हैं : पैतामह सिद्धांत, वासिष्ठ सिद्धांत, पौलिश सिद्धांत, रोमक सिद्धांत और सूर्य सिद्धांत। सूर्य सिद्धांत को सौर सिद्धांत नाम से भी जाना जाता है। कालांतर में अनेक लेखकों ने इन सिद्धांतों में सुधार किए। इनमें गणना पर विशेष जोर दिया गया है। इस प्रकार विश्लेषण की एक नई विधि का विकास हुआ। इस काल के प्रख्यात खगोलशास्त्रियों में आर्यभट-प्रथम (जन्म 476 ई०), वराहमिहिर (छठी सदी), भास्कर-प्रथम (जन्म 600 ई०), ब्रह्मगुप्त (जन्म 598 ई०) और भास्कर-द्वितीय (जन्म 1114 ई०) प्रमुख हैं। वराहमिहिर के संकलन के अलावा इस काल के अन्य प्रसिद्ध ग्रंथ हैं—आर्यभट-प्रथम का आर्यभटीय, ब्रह्मगुप्त का ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत और भास्कर-द्वितीय का सिद्धांत-शिरोमणि।

पठाणि सामंत का जन्म 11 जनवरी, 1836 को पश्चिमी उड़ीसा के खंडपाड़ा गांव में हुआ था। उन्हें बचपन से ही संस्कृत व्याकरण, स्मृति, पुराण, न्याय, आयुर्वेद और प्रमुख काव्यों की शिक्षा दी गई। जब वे दस वर्ष के थे तब पिता ने उन्हें फलित-ज्योतिष की कुछ शिक्षा दी। हम जानते

हैं कि जन्म–कुंडली में लग्न ज्ञात करना अत्यावश्यक है। आकाश में तारों की स्थिति हर रात बदलती रहती है। अतः उनकी सही स्थिति जाने बिना ज्योतिष–भविष्यवाणियाँ नहीं की जा सकतीं। इस तथ्य ने पठाणि सामंत को तारों का लगातार अवलोकन करने के लिए प्रेरित किया। तारों को देखने की यह उत्सुकता धीरे–धीरे खगोलशास्त्र के अध्ययन में बदल गई। सिद्धांतों के अलावा उनका कोई मार्गदर्शन करने वाला नहीं था। ये सिद्धांत उनके घर के पुस्तकालय में ही थे। सामंत ने इन ग्रंथों का अध्ययन करने के लिए टीकाओं की मदद ली। मात्र 15 वर्ष की उम्र में उन्होंने पंचांग की गणना करने की विद्या में महारत हासिल कर ली थी। पंचांग के जरिए ग्रहों की स्थिति का अध्ययन करने पर उन्होंने पाया कि न तो तारे क्षितिज के निर्दिष्ट स्थान पर दिखते थे और न ग्रह सही जगह पर नजर आते थे। अतः उन्होंने रात को खगोलीय पिंडों की गतिविधियों का आकलन शुरू कर दिया। तेईस वर्ष की उम्र में उन्होंने अपने प्रेक्षण–परिणामों को व्यवस्थित तरीके से लिखना शुरू किया।

पठाणि सामंत के दादा स्थानीय राजा (खंडपाड़ा के राजा) थे। तत्कालीन राजा मर्दराज भ्रमरावर राय उनके सबसे बड़े चचेरे भाई का पुत्र था। मर्दराज से उन्हें कोई सहयोग नहीं मिला। बल्कि राजा तो उनकी उपेक्षा ही करता था। उसे पठाणि सामंत का तारों का अध्ययन करना पसंद नहीं था। राजा को लगता था कि चाचा का यह काम उसकी (राजा की) गरिमा के अनुकूल नहीं है। अतः वे जीवनपर्यंत सामंत (राजा के परिवार का एक सदस्य) ही बने रहे। उन्हें कभी किसी तरह की सुविधा नहीं मिली। कुछ गाँवों से उन्हें 500 रुपए की सालाना आय होती थी। असामियों से उन्हें थोड़ा–बहुत अनाज मिल जाता था। अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए उनके पास यही संसाधन थे।

सिद्धांत–दर्पण मूलतः संस्कृत में उड़िया लिपि में ताड़पत्र पर लिखा गया था। अठमल्लिक और मयूरभंज के राजाओं की आर्थिक मदद से 1899 ई० में इसे कलकत्ता के एक प्रेस से देवनागरी लिपि में प्रकाशित कराया गया। कटक कॉलेज (इस समय रैवेनशॉ कॉलेज) में भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर योगेशचंद्र राय ने इसकी विस्तृत भूमिका लिखी। छपाई का काम उन्हीं की देख–रेख में पूरा हुआ। इस प्रबंध में विभिन्न छंदों में 2500 श्लोक हैं। इनमें से 2284 श्लोक सामंत ने लिखे। बाकी 216 श्लोक पुराने सिद्धांतों से लिए गए हैं। ज्यादातर श्लोक **सूर्य–सिद्धांत** और **सिद्धांत–शिरोमणि** से लिए गए हैं। **सिद्धांत–दर्पण** लिखने में पठाणि सामंत ने भास्कर–द्वितीय का अनुसरण किया था। लेकिन वे अपने गुरु के अंध–समर्थक नहीं थे। उन्होंने भास्कर–द्वितीय द्वारा दी गई ग्रहों संबंधी सूचनाओं को अस्वीकार कर दिया।

सिद्धांत–दर्पण का साहित्यिक महत्व भी कम नहीं है। प्रोफेसर राय ने लिखा है : "हिंदू खगोलशास्त्र को **सिद्धांत–दर्पण** का योगदान तो अमूल्य है ही। छंद रचना की दृष्टि से भी यह अतुलनीय है। इस ग्रंथ की छंद रचना पठाणि सामंत को वर्तमान काल के संस्कृत श्लोक रचनाकारों में श्रेष्ठ स्थान दिलाती है।" इस प्रबंध को मूलतः दो भागों में विभक्त किया गया है– पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। प्रकाश शीर्षक के तहत 24 प्रकरणों में सिद्धांत गणना के जरिए पंचांग रचना की पूरी विधि बताई गई है। पूर्वार्ध में 15 और उत्तरार्ध में नौ प्रकरण हैं। इन प्रकरणों के पांच खंड भी बनाए गए हैं। ये हैं–मध्यमाधिकार, स्फुटाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, गोलाधिकार और कालाधिकार।

प्रबंध की समीक्षा करते हुए **नॉलेज** पत्रिका ने 1899 में लिखा था : "हाल के कुछ वर्षों में खगोलशास्त्र पर जितने भी ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, यह उन सबमें असाधारण है। कुछ अर्थों में यह सर्वाधिक शिक्षाप्रद भी है। उड़ीसा के खंडपाड़ा के एक हिंदू ने इसकी रचना की है। कोरी आंखों के अवलोकन पर आधारित यह पूर्ण खगोलशास्त्र है। लेखक ने यह अवलोकन स्वनिर्मित यंत्रों के जरिए किया है...हिंदुओं की धार्मिक प्रथाएँ खगोलीय गतिविधियों के अनुसार तय होती हैं। इस ग्रंथ की रचना एक ऐसे हिंदू ने की है जो स्वयं हिंदू धर्म का कट्टर समर्थक है। उसने ग्रंथ लिखने में पारंपरिक हिंदू विधियों का ही इस्तेमाल किया है। इस प्रकार यह ग्रंथ हिंदुओं के लिए अति महत्त्वपूर्ण है। यह ग्रंथ धर्म में व्याप्त अनेक भ्रमों को दूर करता है। लेकिन ऐसा करने में पश्चिमी विज्ञान का तनिक भी सहारा नहीं लिया गया है। फिर भी यह ग्रंथ पश्चिमवासियों के लिए काफी महत्व का है। इस ग्रंथ से पता चलता है कि दूरबीन की खोज से पहले खगोलीय अवलोकन किस हद तक सटीक था।

खगोलशास्त्र की चार विधाओं को पठाणि सामंत का योगदान अमूल्य है। ये विधाएँ हैं : (1) वेध (2) गणित (3) मापन विधि और ज्योतिष–यंत्र तथा (4) सिद्धांत और प्रतिरूप।

प्रख्यात अंतरराष्ट्रीय पत्रिका **नेचर** ने भी **सिद्धांत–दर्पण** की समीक्षा की थी। पठाणि सामंत की उपलब्धि पर टिप्पणी करते हुए इसने लिखा था :

"ज्योतिष के कुछ स्थिरांकों के उन्होंने जो मान दिए थे और उन स्थिरांकों के आधुनिक मान के अंतर के विश्लेषण से हम उनकी प्रवीणता का अंदाजा लगा सकते हैं। इस विश्लेषण से उनके ग्रंथ की सफलता को भी आँका जा सकता है। सूर्य के नाक्षत्र–काल में अंतर 206 सेकंड का है। इसी प्रकार चंद्र के नाक्षत्र–काल में अंतर एक सेकंड का, बुध में 79 सेकंड का, शुक्र में दो मिनट का, मंगल में नौ मिनट का, बृहस्पति में एक घंटे का और शनि के नाक्षत्र–काल में आधे दिन से कुछ ज्यादा का अंतर है। क्रांतिवृत्त पर ग्रहों के झुकाव का उन्होंने जिस शुद्धता से आकलन किया, वह भी काबिले-गौर है। सबसे अधिक अंतर बुध में है, वह भी सिर्फ दो मिनट का। सौर कक्षा के संदर्भ में केंद्र समीकरण का अंतर 14 सेकंड का है। चंद्र सिद्धांत में पात– परिक्रमा में 5.5 दिन का अंतर है। यह परिक्रमा के कुल समय के हजारवें भाग से भी कम है। तुंगांतर, विचरण और दिगंश के मान भी आधुनिक विधि से निर्धारित मान के काफी करीब हैं।"

सूर्य–सिद्धांत–शिरोमणि और **सिद्धांत–दर्पण** में सूर्य, चंद्रमा तथा पांच ग्रहों की नाक्षत्र स्थितियाँ और क्रांतिवृत्त पर ग्रहों के झुकाव के मान दिए गए हैं, साथ में 1899 में ज्ञात इनके यूरोपीय मान और आधुनिक मान भी दिए गए हैं।

रात्रिकालीन आकाश को देखने के लिए पठाणि सामंत ने स्वयं उपकरण बनाए थे। उनके ज्यादातर यंत्र बाँस और लकड़ियों के बने होते थे। इन यंत्रों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :

1. काल–निर्धारण यंत्रः इसमें तरह–तरह की धूप–घड़ियाँ शामिल हैं।

चक्रयंत्रः इसमें एक अंशांकित चक्र होता है। इसका अक्ष केंद्र पर होता है। इससे पूरे दिन का समय देखा जा सकता है।

चापयंत्रः यह भी एक अंशाकित चक्र होता है और इसका अक्ष भी केंद्र पर होता है। लेकिन इससे आधे दिन का समय देखा जा सकता है।

गोलार्ध यंत्रः यह एक अर्धगोलाकार घड़ी है। उनके पास स्वयंवह नामक जल–घड़ी भी थी।

2. बहुपयोगी यंत्र : इसमें मुख्यतः शंकु और मानयंत्र होते हैं। शंकु निर्धारित लंबाई का एक दंड होता है। इसे समतल जमीन पर सीधा खड़ा कर दिया जाता है। सूर्य की रोशनी से बनने वाली दंड की छाया की लंबाई मापकर स्थानीय समय, उन्नतांश, खमध्य दूरी और सूर्य की क्रांति तथा राशिचक्र में इसके स्थान का निर्धारण किया जा सकता है। इससे किसी स्थान पर अक्षांश और उसकी दिशा भी ज्ञात की जा सकती है।

मानयंत्र मूलतः एक स्पर्शरेखा–दंड है। इसे पठाणि सामंत ने स्वयं बनाया था। लकड़ी के एक लंबे टुकड़े को एक अन्य टुकड़े के साथ 'T' आकार में जोड़कर इसे बनाया जाता है। दोनों टुकड़ों के बीच 90° का कोण बनता है। क्षैतिज टुकड़े के दोनों भाग असमान होते हैं। इस यंत्र के जरिए किसी पहाड़ या दूरस्थ वस्तु की ऊँचाई तथा दूरी ज्ञात की जा सकती है।

सिद्धांत–दर्पण में इस यंत्र का विस्तृत विवरण दिया गया है। इस यंत्र की तीनों भुजाएँ अंशांकित होती हैं तथा लंबवत् टुकड़े पर छिद्र बने होते हैं।

3. गोलयंत्र : प्राचीन भारत के खगोलशास्त्री ग्रहों की स्थिति और गति निर्धारण के लिए इस यंत्र का प्रयोग करते थे। इसके अलावा खगोलशास्त्र के छात्रों को विशाल आकार के वृत्त दिखाने में भी इस यंत्र का प्रयोग होता था। पठाणि सामंत ने इस यंत्र में कुछ सुधार किए थे। विकसित यंत्र की मदद से वे ग्रहों के रेखांश और क्रांति का निर्धारण करते थे।

सिद्धांत–दर्पण की भूमिका में प्रोफेसर योगेशचंद्र राय ने पठाणि सामंत और टाइको ब्राहे (1546-1601 ई०) में कुछ समानताएँ स्थापित की हैं। टाइको ब्राहे ने कई उन्नत यंत्रों का निर्माण किया था। इनकी मदद से किए गए अवलोकनों से ब्राहे ने खगोलीय सारणियों की त्रुटियाँ ठीक की थीं। कोपरनिकस के सिद्धांत को खारिज कर उन्होंने अपना सिद्धांत प्रतिपादित किया था। इसमें तालेमी के साथ–साथ कोपरनिकस के सिद्धांत के भी कुछ तत्व शामिल थे।

प्राचीन खगोलशास्त्री भूकेंद्री सिद्धांत को ही मानते थे अर्थात् सूर्य तथा सभी ग्रह पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं।

(शेषांश पृष्ठ 9 पर)

भारतीय प्रेस : समस्यायें और चुनौतियाँ

डॉ० भुवनेश्वर सिंह गहलौत

आधुनिक भारतीय समाचार-पत्र जगत् दो सौ वर्ष से अधिक पुराना हो चुका है। आज़ादी हासिल करने के बाद से देश में समाचारपत्र-पत्रिकाओं में आमूल परिवर्तन हुये हैं। भारत में प्रेस ने संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों ही दृष्टि से प्रगति की है, किन्तु देश की आवश्यकताओं को देखते हुए यह प्रगति अब भी अपर्याप्त तथा विकसित देशों के मुकाबले काफी पीछे है।

भारत में चाहे कोई कितनी भी समानता की बात करे किन्तु यह सच है कि समाचारपत्र का प्रकाशन आरंभ करना आसान नहीं है और अगर कोई किसी तरह इसमें कामयाब हो गया तो उसे जारी रख पाना और भी मुश्किल काम है। अधिकतर समाचारपत्र व्यक्तिगत समूहों द्वारा इस तरह नियंत्रित किये जाते हैं कि उनकी संपादकीय नीतियाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनके व्यावसायिक हितों से प्रभावित होती हैं। यही हाल कमोबेश इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का है। 'जहाँ न कहने की छूट नहीं वहाँ हाँ का मतलब सिर्फ चापलूसी होता है'। इस उक्ति से आकाशवाणी और दूरदर्शन दोनों प्रभावित रहते हैं।

हमारे देश में सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ कुल मिलाकर ऐसी हैं जिसमें मध्यम श्रेणी तथा छोटे अखबार निकालना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। ऐसे पत्र कुछ दिन निकलने के बाद या तो बंद हो जाते हैं अथवा अपना अस्तित्व बचाने के लिए खर्चों में इस कदर कटौती करते हैं कि उसमें काम करने वाले लोगों का जीना दूभर हो जाता है। ऐसे समाचारपत्रों की संपादकीय नीतियाँ भी इतनी सशक्त नहीं होतीं कि वे पाठकों को जागरूक बना सकें और विशिष्ट सामाजिक समस्याओं के बारे में जन-चेतना की एक लहर-सी पैदा कर सकें। विज्ञापन और अन्य संसाधनों के अभाव में ऐसे अखबारों को अपनी गुणवत्ता कायम रख पाना मुश्किल हो जाता है। हमारे देश में बड़े अखबार मध्यम श्रेणी और छोटे अखबारों के अस्तित्व पर हमेशा चोट करते रहते हैं। अखबार का लागत से भी कम मूल्य रखकर वे घाटे की भरपाई विज्ञापन से कर लेते हैं, किन्तु इसका खामियाजा मध्यम श्रेणी और छोटे अखबारों को भुगतना पड़ता है। वे चाहकर भी मूल्य काफी कम नहीं कर सकते। इस कारण उनका होड़ में टिके रह पाना मुश्किल हो जाता है। राष्ट्रीय अखबारों को क्षेत्रीय अखबारों से प्रायः कड़ी चुनौती मिलती है, लेकिन क्षेत्रीय अखबार और तमाम बातों में उनसे पिछड़ जाते हैं। 1940 में इंडियन न्यूजपेपर सोसायटी के केवल 14 सदस्य थे, आज उनकी संस्था बढकर 800 के करीब हो गयी है। देश में औसतन 20 प्रतियाँ ही प्रति हज़ार व्यक्तियों तक पहुँच पाती हैं जबकि विकसित देशों में यह कम से कम औसत संख्या135 के करीब है।

अखबारी काग़ज़ पर अब भी सरकार का नियंत्रण है। कुछ काग़ज़ तो सरकारी दरों पर मिलता है जबकि कुछ खुले बाज़ार में भी उपलब्ध है। पिछले दस वर्षों में अखबार का मूल्य नहीं बढ़ा जबकि अखबारी काग़ज़ का मूल्य आसमान छूने लगा। इससे भी मध्यम और छोटे अखबारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अपने संसाधन बढ़ाने के लिए उन्हें कई तरह के समझौते करने पड़ते हैं। दूरसंचार, डाक, कस्टम सहित अनेक विभाग ऐसे हैं जो सरकारी हैं। न चाहकर भी अखबारों को इन विभागों के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है।

भारतीय समाचारपत्रों के बीच 'कट थ्रोट कम्पटीशन' के कारण अनेक अखबारों ने उपभोक्ता वस्तुओं की तरह

व्यवहार करना शुरू कर दिया है। पत्रकारों का दृष्टिकोण व्यावसायिक हो रहा है। सारी योजनायें अखबार को उपभोक्ता वस्तु मानकर बनाई जा रही हैं। इससे अखबारों की गुणवत्ता में कमी आयी है। पाठक एक अखबार छोड़कर दूसरे को और फिर दूसरे को छोड़कर तीसरे को अपना रहे हैं। इस तरह वे किसी एक अखबार से जुड़कर नहीं रह पातें। हैरत और चिंता की बात यह है कि जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में पाठकों की संख्या नहीं बढ़ रही है। समाचारपत्रों के आकर्षण का स्रोत तकनीक बनकर रह गयी है न कि उनकी विश्वसनीयता। भारतीय प्रेस में अदूरदर्शी व्यावसायिक दृष्टिकोण दबे पाँव प्रवेश कर गया है। अखबार घाटे को पूरा करने के लिए सरकारी विज्ञापन एजेन्सियों, डी० ए० वी० पी० तथा डी० आई० पी० आर० पर निर्भर करने लगते हैं। इन एजेन्सियों के नियम भी बड़े और कई संस्करणों वाले अखबारों के पक्ष में जाते हैं।

समाचारपत्रों को अनेक समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। आज़ादी के समय देश में केवल छह रेडियो स्टेशन थे। अब राष्ट्रीय चैनल, एकीकृत उत्तर-पूर्व सेवा तथा वैदेशिक सेवा को छोड़कर भारत में आकाशवाणी के 185 केन्द्र हैं। इनमें तीस केन्द्रों का विज्ञापन प्रसारण के लिए अलग चैनल हैं। दूरदर्शन की शुरुआत देश में 1959 में बतौर प्रायोगिक सेवा के रूप में की गयी थी जहाँ से सप्ताह में तीन दिन प्रसारण किया जाता था। 1965 में नियमित सेवायें शुरू की गयीं। 1974 में टी० वी० को आकाशवाणी से अलग कर दिया गया। 1984 में दूरदर्शन के प्रसारण केन्द्रों का जाल सारे देश में बिछ गया। 25 फरवरी 1996 तक देश में दूरदर्शन के कुल 582 ट्रांसमीटर थे। इनमें 81 उच्च शक्ति तथा और 402 कम शक्ति के ट्रांसमीटर थे। 1997 में प्राप्त आँकड़ों के अनुसार अब दूरदर्शन की पहुँच 88.2 प्रतिशत जनसंख्या तक हो गयी है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विकास से समाचारपत्रों की प्रसार-संख्या ही प्रभावित नहीं हुई बल्कि विज्ञापन भी प्रभावित हुआ है। 1984 में अखबारों को लगभग 80 प्रतिशत विज्ञापन मिलता था जो 1996 में घटकर 61 प्रतिशत रह गया था। सरकारी और गैर सरकारी चैनल दिन भर में अनेक बार न केवल समाचार देते हैं अपितु बौद्धिक चर्चाओं, वार्ताओं तथा शिक्षाप्रद कार्यक्रमों से टी० वी० के दर्शकों को व्यस्त रखते हैं। निश्चय ही तात्कालिक रूप से दूरदर्शन का प्रभाव अधिक पड़ता है। समाचारपत्र के पाठक तक पहुँचने और अगले दिन के पहले तक दूरदर्शन अखबारों में दी सूचना, जानकारी को पुराना कर देता है। अखबार इस चुनौती का सामना उन्नत तकनीक अपनाकर और पाठकों को बेहतर सेवायें प्रदान करके कर सकते हैं, क्योंकि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अखबारों को क्षति तो पहुँचा सकता है, उनका विकल्प नहीं बन सकता।

सरकार की काग़ज़ संबंधी नीति संतोषजनक नहीं है। 1992 में भारत सरकार ने गैर सरकारी मिलों को अखबारी काग़ज़ के उत्पादन की स्वीकृति दे दी, फिर भी देश में काग़ज़ की कमी है। उसके मूल्य आसमान छू रहे हैं। सरकार अखबारी काग़ज़ का मूल्य बढ़ने से रोकने में पूरी तरह विफल रही है।

विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश होने के बाद भी भारत में पत्रकारों को सूचना पाने का अधिकार नहीं है। विश्व के अनेक देशों में पत्रकारों को सूचना पाने का अधिकार मिला हुआ है। सूचना पाने के कानूनी अधिकार से वंचित रहने के कारण प्रेस पर जबरदस्त दबाव बना रहता है। भारतीय संविधान में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी गयी है तथापि यह प्रेस की स्वतंत्रता की विशेष रूप से गारंटी नहीं देता। यह उल्लेखनीय है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में भी अनुच्छेद 19 में संशोधन करके कटौती कर दी गयी है, जिससे भारत की प्रभुसत्ता और अखंडता पर कोई आँच न आये। इसके अतिरिक्त वैदेशिक संबंधों, कानून और व्यवस्था, शालीनता, नैतिकता, अदालत की अवमानना, मानहानि या अपराध की स्थिति में भी इस अधिकार पर राज्य द्वारा अंकुश लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पत्रकारों को विभिन्न नियमों यथा-ऑफीसियल सीक्रेट्स एक्ट, टेलीग्राफ एक्ट, आई० पी० सी०, सी० पी० सी० आदि के अधीन भी काम करना पड़ता है। पत्रकारों को सूचना पाने का अधिकार मिलने से ग़लत खबरें छपने की संभावना समेत अनेक परेशानियाँ दूर हो जातीं। सूचना पाने के अधिकार के लिए संविधान में संशोधन जरूरी है और इसके लिए आवश्यक बहुमत वाली सरकार केन्द्र में एक अरसे से नहीं बनी है। यह दुःख की बात है कि जब भारत में दो तिहाई बहुमत वाली केन्द्र सरकार थी और उसके शीर्ष नेता अंतर्राष्ट्रीय स्तर के नेता बनने और प्रेस की आज़ादी का पक्षधर होने का दम भरते थे, उन्होंने भी पत्रकारों को सूचना पाने का अधिकार दिलाने के बारे में कोई पहल नहीं की।

समाचारपत्रों को लोकतंत्र का चतुर्थ स्तम्भ कहा जाता है। आज़ादी के बाद जब नौकरशाहों तथा राजनेताओं में भ्रष्ट होने की होड़ लग गयी तो उन्हें नियंत्रित रखने की बड़ी जिम्मेदारी प्रेस तथा न्यायपालिका पर आ गयी। न्यायपालिका तो भ्रष्ट नौकरशाहों तथा राजनेताओं पर अंकुश लगाने में अपनी भूमिका सही ढंग से निभा ले गयी किन्तु प्रेस अपनी भूमिका सही ढंग से नहीं निभा सका। भारत में जनप्रतिनिधियों, विशेषकर विधायकों तथा सांसदों को विशेषाधिकार हनन का आरोप लगाने जैसे कवच मिले हुए हैं। कई जगहों पर राजनेता-नौकरशाह प्रेस के खिलाफ एकजुट हो जाते हैं। प्रेस द्वारा सरकार के दोष तथा कमजोरियाँ बताये जाने पर सरकार सेंसर व्यवस्था लागू करके, जलापूर्ति-विद्युत आपूर्ति वाधित कराके, अखबार के मालिक की घेराबंदी करके, पत्रकारों को फर्ज़ी मुकदमों में फँसाकर उसे अपने खिलाफ न जाने के लिए बाध्य करने का प्रयास करती है। ज़िला स्तर के प्रशासन के पास इसके लिए दूसरे तरह के हथकंडे होते हैं।

ऐसा नहीं है कि सारे दोष दूसरों में ही हैं। अनेक बार वरिष्ठ पत्रकार राजनेताओं तथा शीर्ष अधिकारियों के इशारों पर नाचने लगते हैं। बहुत से पत्रकार राजनीतिज्ञों, अधिकारियों तथा अन्य संगठनों द्वारा दिये गये प्रलोभनों और उपहारों के शिकार हो जाते हैं जिससे उनकी खबरें और विचार पत्रकारिता के मूलभूत सिद्धान्तों से काफी दूर चले जाते हैं। राष्ट्रीय तथा कुछ अन्य विशिष्ट अखबारों को छोड़कर अधिकांश में सरकार द्वारा घोषित वेतनमान सही तरह से नहीं लागू किये जाते। सेवा शर्तें बद से बदतर होती जा रही हैं। अब बड़े अखबार भी नियुक्ति पत्र देने से कतराते हैं। दीर्घ कालिक देयों से बचने के लिए 'कान्ट्रेक्ट' पर रखने की परंपरा चल पड़ी है। अपेक्षा और आवश्यकता से बहुत कम वेतन होने के कारण कुशाग्र तथा तेज़तर्रार युवक पत्रकारिता में नहीं आते। यह एक कडुवा सच है कि दशकों पहले इस पेशे में आने वाले लोग कुछ भी बन सकने का सामर्थ्य रखते थे किन्तु अब जिनके लिए तमाम और रास्ते बंद हो जाते हैं, वे पत्रकारिता में आ जाते हैं। इसके अपवाद संभव हैं, किन्तु अधिकांश सीमा तक यह पूरी तरह सच है। भूखे तथा टूटे मनोबल वाले पत्रकारों से विशेष अपेक्षा भी नहीं रखनी चाहिए। कर्तव्य पालन करते हुए कोई पत्रकार अगर मार डाला गया तो अखबार मालिक उसे व्यक्तिगत रंजिश का परिणाम करार देते हैं।

पत्रकार जगत् के लोगों ने खुद अपने लिये कोई आचार संहिता भी नहीं बनायी। अखबारों के मालिक योग्यता और अयोग्यता पर विचार किये बिना जिसे चाहें पत्रकार बना देते हैं। ऐसे लोगों की लेखनी में निष्पक्षता, ईमानदारी तथा दूरदृष्टि नहीं होती। इससे 'पीत पत्रकारिता' को बढ़ावा मिलता है। इसकी शिकायतें गाँवों से अधिक आती हैं जहाँ कई और तरह के दबाब भी होते हैं। पत्रकारों को जनचेतना जाग्रत करने के गुरुतर दायित्व का निर्वाह करना आना चाहिये। प्रेस को राष्ट्र हित और समाज हित को ध्यान में रखकर ही अपनी नीतियाँ बनानी चाहिए। खेद है कि बड़े अखबार उद्योग-धंधों में परिवर्तित होते जा रहे हैं, जिनका उद्देश्य केवल धन कमाना रह गया है और मध्यम तथा छोटे अखबार समझौतों के माध्यम से अपना जीविकापार्जन करने में लगे हैं।

भारतीय प्रेस के सामने एक चुनौती विदेशी मीडिया की भी है। भारतीय पत्रकारों, राजनीतिज्ञों तथा बुद्धिजीवियों का विश्वास है कि यदि विदेशी समाचार कंपनियों को भारत में व्यवसाय करने की इजाजत दे दी गयी तो प्रेस की आज़ादी तथा देश के हितों को खतरा हो सकता है। वे भारतीय लोकमत को अपने अनुसार बदलने का प्रयास कर सकते हैं। वैसे टी० वी० के विदेशी चैनलों के माध्यम से किया जा रहा सांस्कृतिक हमला कम हानिकारक नहीं है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि जब अन्य क्षेत्रों में विदेशी कंपनियों पर रोक नहीं लगायी गयी तो विदेशी मीडिया पर रोक नहीं लगायी जानी चाहिये। इससे स्वस्थ प्रतिस्पर्धा में भारतीय समाचारपत्रों का स्तर अच्छा होगा। यह दृष्टिकोण व्यावहारिक नहीं है। विदेशी मीडिया के एक बार भारत में आने के बाद उसके दुष्प्रभावों को रोक पाना संभव नहीं हो पायेगा और उसके दूरगामी घातक परिणाम होंगे।

'हिन्दी दिवस' पर हिन्दी पत्रकारिता का उल्लेख न करना अनुचित होगा। देशभर के सात-आठ हिन्दी अखबारों को छोड़कर हिन्दी के शेष समाचारपत्रों की स्थिति खराब है। वे अंग्रेज़ी अखबारों के दुष्प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाये हैं। उनमें पाठकों को अंग्रेज़ी अखबारों की जूठन परोसी जाती है। कहने को 'वार्ता' तथा 'भाषा' हिन्दी समाचार एजेन्सियाँ हैं किन्तु उसमें अधिकतर यू० एन० आई० और पी० टी० आई० के अंग्रेज़ी से अनूदित समाचार होते हैं। जिन संस्थानों से हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं के अखबार

निकलते हैं वहाँ भी हिन्दी के पत्रकारों से भेदभाव किया जाता है। उन्हें अंग्रेज़ी के पत्रकारों की तुलना में श्रेष्ठ नहीं माना जाता है। हिन्दी के प्रमुख समाचारपत्रों के संपादक तथा नीति निर्धारकों ने अपनी कुर्सी बचाने में ही समय व्यतीत किया। उन्होंने इस भेदभाव को दूर करने का प्रयास करना तो दूर अंग्रेज़ी के पत्रकारों के समक्ष आत्मसर्मपण कर दिया। उनकी 'श्रेष्ठता' स्वीकार कर ली। हिन्दी के पत्रकारों में व्याप्त हीन भावना को दूर करने का कोई सार्थक प्रयास नहीं किया। आज़ादी के बाद अंग्रेज़ी की तुलना में हिन्दी के अखबारों तथा पत्रिकाओं की बाढ़-सी आ गयी, किन्तु उन्हें अंग्रेज़ी के पत्र-पत्रिकाओं के मुकाबले मज़बूती से खड़े रहने के लिए तैयार नहीं किया गया। इस कारण हिन्दी के अनेक प्रतिष्ठित समाचारपत्र- पत्रिकाओं सहित अधिकांश का प्रकाशन बंद हो गया। हिन्दी पत्रकारिता को अन्य भाषाओं की पत्रकारिता के समक्ष लाने तथा ऊपर ले जाने का काम सरकार या अन्य भाषाओं के अखबारों के पत्रकार नहीं करेंगे। इसके लिए एकजुट प्रयास हिन्दी के पत्रकारों को ही करने होंगे। हाल के दशक में हिन्दी पत्रकारिता के लिए एक नई समस्या खड़ी हो गयी है। अपने ग़लत-सही धंधों तथा हितों की रक्षा के लिए उन उद्योगपतियों ने भी अखबार खोल दिये जिनका पत्र-कारिता से दूर-दूर तक कोई रिश्ता नहीं था। ये गैर-पत्रकार अखबार-मालिक खुद संपादक बन गये और मनमानी समाचार छापने लगे। इससे न केवल अखबारों का स्तर गिर गया अपितु ऐसे अखबारों से जुड़े श्रमजीवी पत्रकारों की गरिमा खत्म हो गयी। कुल मिलाकर अखबार छोटे हों या बड़े, उनमें वही छपता है जो उनके मालिक चाहते हैं। उनके मालिकों के हितों के अनुरूप उनकी प्रतिबद्धता बदलती रहती है। प्रख्यात पत्रकार अरुण शौरी का यह कथन अक्षरतः सत्य है- ''हम उतने ही स्वतंत्र हैं जितना हमारे मालिक चाहते हैं। उसका विरोध करने पर हम न केवल बेरोजगार हो जाते है अपितु रोजगार के अयोग्य बना दिये जाते हैं।'' वसीम बरेलवी ने शायद यह शेर पत्रकारों की विवशता पर ही लिखा है --

बड़े शौक से तू मेरा घर जला, कोई आँच तुझ पे न आयेगी।
ये कलम किसी ने खरीद ली, ये ज़ुबां किसी की ग़ुलाम है।

—वरिष्ठ पत्रकार, चर्चलेन, इलाहाबाद

(पृष्ठ 5 का शेषांश)

लेकिन पठाणि सामंत ने अपने अवलोकन के आधार पर सिद्धांत–दर्पण में नया सिद्धांत दिया। उन्होंने कहा कि बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि, सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इन पांचों ग्रहों के साथ सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है। टाइको ब्राहे ने भी यही सिद्धांत दिया था। सिद्धांत–दर्पण की समीक्षा करते हुए **नेचर** पत्रिका ने लिखा था :

''प्रोफेसर राय ने लेखक की तुलना टाइको ब्राहे से की है। यह ठीक भी है। लेकिन हमें उन्हें टाइको ब्राहे से भी बड़ा मानना चाहिए। डेनिश खगोलशास्त्री को अन्वेषण कार्य में पर्याप्त मदद मिली थी। लेकिन पठाणि सामंत को ऐसी कोई मदद नहीं मिली। न तो राजा ने उनका उत्साह बढ़ाया और न उनके साथियों ने। चंद्रशेखर अंततः जिस निष्कर्ष पर पहुँचे और इसकी उन्होंने जो व्यवस्था की, वह टाइको ब्राहे के विचारों से मेल खाती है। लेखक कभी इस बात से सहमत नहीं हुए कि पृथ्वी भी अपनी धुरी पर घूमती है। पृथ्वी के सूर्य की परिक्रमा करने की बात को भी वे नहीं मानते थे। लेकिन टाइको की तरह अन्य ग्रहों के बारे में उन्होंने यही बताया कि सूर्य को केंद्र में रखकर वे पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं।

11 जून, 1904 को पठाणि सामंत का निधन हो गया।

पठाणि सामंत के लिए खगोलशास्त्र का अध्ययन ही सब कुछ था। योगेशचंद्र राय ने उनके बारे में लिखा है कि ब्रिटिश सरकार द्वारा सम्मानित किए जाने के बाद वे एक दिन के लिए भी कटक में रहने को तैयार नहीं हुए, क्योंकि कुछ ही दिनों बाद सूर्यग्रहण लगने वाला था और वे उस घटना को देखने के लिए जाना चाहते थे। खगोलशास्त्र में उनके योगदान के लिए ब्रिटिश सरकार ने उन्हें 3 जून 1893 को 'महामहोपाध्याय'-की उपाधि दी थी।

ई-कॉमर्स : कम्पयूटर ने दी वाणिज्य जगत को नयी दिशा

कपिल त्रिपाठी

आज समस्त प्रौद्योगिकियों में सूचना प्रौद्योगिकी को प्रमुख स्थान दिया जाता है। यह वह प्रौद्योगिकी है जिसे विश्व के लगभग सभी व्यक्ति प्रयोग में ला रहे हैं। इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करते ही कम्पयूटर ने ई० कॉमर्स के रूप में वाणिज्य जगत को नयी दिशा प्रदान की है।

आज ई-कॉमर्स या इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स इंटरनेट के जरिये बड़े स्तर पर होने वाला व्यापार बन गया है। इंटरनेट कम लागत पर कुशलता के साथ हर दिन हर पल व्यापार में उत्पाद, प्रबंधन, भुगतान, आपूर्ति आदि को विश्व बाज़ार के लिए उपलब्ध कराता है। इंटरनेट द्वारा आज व्यापार को भौगोलिक सीमाओं से परे सारे भूमंडल में पहुँचाया जा सकता है।

जापान, अमेरिका, इंगलैण्ड व अन्य यूरोपीय देशों के बाद भारत में भी इसका प्रचलन शुरू हो चुका है। इंटरनेट की सहायता से उन सभी व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है, जो अब तक संचार के पारस्परिक साधनों द्वारा उपलब्ध करायी जा रही थी। परम्परागत विज्ञापनों के विपरीत वेब विज्ञापन तीव्र गति से फीड बैक उपलब्ध कराता है जिसके चलते व्यापार प्रबंधन तथा उपभोक्ता संम्बन्धों को बेहतर बनाने में मदद मिलती है। इंटरनेट की सहायता से कंम्पनियाँ अपने उत्पादों का प्रचार करती हैं और बेंचने के लिए एक सकारात्मक दिशा प्रदान करती हैं। आज बहुत सी कम्पनियाँ अपने व्यापारिक उद्देश्यों के लिए प्राथमिक तौर पर इंटरनेट का उपयोग कर रही हैं। इंटरनेट ऑन लाइन उपभोक्ताओं के न केवल ऑर्डर बुक करने बल्कि बिलों के भुगतान-निपटारे भी कर रहा है। वित्तीय संस्थाओं को इलेक्ट्रॉनिक फंड स्थान्तरण का सुरक्षित ढाँचा प्रदान करती है। इस प्रकार ई-कॉमर्स के माध्यम से विज्ञापन, विपणन और बिक्री तथा उसके बाद भुगतान, वसूली आदि प्रक्रियायें सम्पन्न की जा सकती हैं। इस प्रक्रिया को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है–

एक व्यक्ति वेब साइट के माध्यम से एअर लाइन (हवाई जहाज़) तथा होटल में कमरा आरक्षित कराने के लिए अपना परिचय एवं अन्य विवरण क्रेडिट कार्ड अंक सहित देता है। यह विवरण देते समय यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति सीक्योर सॉकेट लेयर (एस० एस० एल०) का प्रयोग करे ताकि उसके द्वारा दी गयी सूचनायें "कोडेड" हो जायें और उसे दूसरा जान न पाये या उसका दुरुपयोग न हो सके। कुछ यूरोपीय देशों में "सीक्योर इलेक्ट्रॉनिक ट्रांजैक्शन" का प्रयोग होने लगा है। किन्तु एस० एस० एल० में जटिलता कम होने के कारण इसका अधिक प्रचलन है।

अगले स्तर पर उस किसी व्यक्ति द्वारा दी गयी सूचनाओं का सत्यापन एक 'वेरिफाइंग साफ्टवेयर' से किया जाता है जहाँ व्यक्ति द्वारा दी गयी सूचनाएँ 'डिकोड' करके पढ़ी जाती हैं। यदि उसके द्वारा उपलब्ध करायी गयी जानकारी सही है तथा क्रेडिट कार्ड अंक भी सही है और उसके खाते में धन उपलब्ध है तो सत्यापित होने पर सूचनायें पुनः कोडेड होकर अगले स्तर पर चली जाती हैं। अन्यथा पिछले स्तर पर पुनः सूचनायें प्रेषित करने हेतु लौटा दी जाती हैं। सही सूचनायें बिलिंग एजेन्सी से होते हुए मर्चेण्ट एकाउंट में पहुँचती हैं और तभी ई-मेल द्वारा भुगतान, यात्रा मार्ग विवरण या होटल में बुक कमरे का विस्तृत ब्यौरा मिल जाता है। ये सभी गतिविधियाँ इलेक्ट्रॉनिक माध्यम द्वारा ही पूरी की जाती हैं। इस तरह लम्बी कतार में खड़े होने की झंझट से बचकर टिकट बुक कराया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र की ताज़ा मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार इंटरनेट आज तक का सबसे तेज़ी से फैलता संचार माध्यम है जिसका उपयोग करने वालों की संख्या इस समय 15 करोड़ है। यह संख्या

सन् 2001 तक बढ़कर 90 करोड़ हो जायेगी। "निसकॉम" की रिपोर्ट का अनुमान है कि अकेले भारत में 2002 तक 80 लाख इंटरनेट उपभोक्ता होंगे। जबकि वर्तमान में इसके 10 लाख उपभोक्ता हैं। अधिकांश भारतीय विक्रेता स्थानीय स्तर पर ई-कॉमर्स कर रहे हैं।

इंटरनेट के बढ़ते उपयोग से ई-कॉमर्स की शुरुआत से बोलचाल में अनेक तकनीकी शब्दों का प्रयोग होने लगा है। साधारणतः प्रयोग में लाये जाने वाले कुछ शब्द निम्न हैं–

साइबर स्पेस : साइबर स्पेस एक आभासी आकाश है जिसमें विश्व के लाखों कम्पयूटर व उनमें एकत्र सूचनाओं का परिवहन तंत्र होता है। इसमें दुनिया के कम्प्यूटर अपनी संग्रहीत सूचनाओं तथा आँकड़ों को शीघ्रताशीघ्र संप्रेषित करते हैं। साइबर स्पेस को प्रायः इसमें उपयोग करने वाले "इंफार्मेशन हाइवे" के नाम से पुकारते हैं।

प्रोटोकॉल : इंटरनेट से संबंधित एक महत्वपूर्ण शब्द है। प्रोटोकॉल पारिभाषित शब्दों में वर्जित नियमों का समूह है जिसके द्वारा यह सुनिश्चित होता है कि कोई निर्दिष्ट कार्य कैसे सम्भव होता है। उदाहरणस्वरूप यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को ई-मेल भेजता है तो अन्य सभी व्यक्ति भी उसी प्रारूप में ई-मेल भेजते हैं।

मोडेम : इंटरनेट के प्रयोग के लिए टेलीफोन लाइन, पी-सी कम्प्यूटर के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण हार्डवेयर (वह उपकरण जिसे हम छूकर अनुभव कर सकते हैं) मोडेम तथा सॉफ्टवेयर की आवश्यकता होती है। कम्प्यूटर डिजिटल फार्मेट में आँकड़े एकत्रित करता है जब कि टेलीफोन लाइन आँकड़े को एनालॉग फार्मेट में संचालित करता है। मोडेम उपकरण कम्प्यूटर और फोन लाइन के बीच अंतरापृष्ठ की भूमिका निभाता है। इसमें से सूचनाओं का आदान-प्रदान "वाइट्रस" प्रति सेकण्ड के रूप में आँका जाता है। 14.4 किलो वाइट्रस प्रति सेकण्ड से 28.8 किलो वाइट्रस प्रति सेकण्ड के मोडेम प्रायः प्रयोग किये जाते हैं।

इंटरनेट एक्सप्लोरर और नेटस्केप कम्यूनिकेटर : यह एक प्रचलित सॉफ्टवेयर है जिसके माध्यम से आप इंटरनेट का प्रयोग कर पाने में सक्षम हो पाते हैं। वैसे तो अनेक साफ्टवेयर बाज़ार में उपलब्ध हैं किन्तु इंटरनेट एक्सप्लोरर व नेटस्केप कम्यूनिकेटर ज़्यादा प्रचलित है।

डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू (www) : वर्ल्ड वाइड वेब विश्वव्यापी सूचना जाल कहलाता हैं। इस वेब पर कोई भी व्यापारी अपने उत्पाद, सूचना, कूपन, प्रेस विज्ञप्ति आदि के लिए विज्ञापन देने के अलावा साथ ही भुगतान भी प्राप्त कर सकते हैं।

होम पेज या वेब साइट (Home page or Web site) : कोई भी संस्था या विश्वविद्यालय अपनी सूचनायें बेव द्वारा प्रसारित कर सकता है। वेब पर उसके लिए नियत स्थान ही होम पेज कहलाता है।

ई-मेल (e-mail) : यह इंटरनेट पर उलपब्ध सर्वोत्तम सुविधाओं में से एक है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपनी सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजता है और उसका उत्तर भी तुरन्त प्राप्त कर सकता है। ई-मेल भेजने अथवा प्राप्त करने के लिए ई-मेल पता होना आवश्यक है जो आप किसी भी वेब साइट के जरिये अनुमति लेकर बना सकते हैं। इसके लिए शुल्क देना पड़ता है। लेकिन कुछ वेब साइट ऐसे भी हैं जहाँ आप मुफ्त ई-मेल खोल सकते हैं। कुछ ऐसे वेब साइट हैं –हॉटमेल, याहू, एक्साइट आदि।

सर्फिंग और ब्राउजिंग : इंटरनेट के इस सूचना भण्डार से नेट की भाषा में एक साइट से दूसरे साइट पर जाना सर्फिंग कहलाता है जबकि एक ही वेबसाइट के अनेक वेब पेजों को देखना ब्राउजिंग कहलाता है।

सर्च इंजिन (Search engine) : इंटरनेट पर वेब साइट ढूँढने के लिए एक सुविधा होती है जिसे "सर्च इंजिन" कहा जाता है। उदाहरण के लिए गोफर, लाइकॉस, याहू आदि सर्च इंजिन काफी प्रचलन में हैं।

हाइपर टेक्स्ट : इंटरनेट की सामग्री एक विशेष रूप में लिखी जाती है जिसे हाइपर टेक्स्ट कहते हैं। यह किस भाषा में इंटरनेट पर लिखी जाती है उसे हाइपर टेक्स्ट मार्क अप लेगुएज (एच टी एम एल) कहते हैं। इसके जरिए लेख एवं ग्राफिक्स को इंटरनेट पर उतारा जा सकता है। चलायमान तस्वीरें, ध्वनि आदि भी इंटरनेट पर उतारी जा सकती हैं। इसके लिए एसिन्क्रोनस ट्रांसफर मोड यानी ए० टी० एम० नामक सुविधा होती है जो टेक्स्ट/ग्राफिक/ऑडियो-वीडियो आदि में अखंडता बनाये रखती है।

इस तरह की ई-कॉमर्स की शब्दावली इंटरनेट की शब्दावली से काफी हद तक मिलती-जुलती है।

विज्ञान प्रसार

सी-24, कुतुब इंस्टिट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-16

गामा-इन्टरफेरोन का वाणिज्यिक उत्पादन

डॉ० प्रभाकर द्विवेदी "प्रभामाल"

जेनेटिक इन्जिनियरिंग के विकास के साथ ही साथ विश्व के वैज्ञानिक अनेक प्रकार की उपलब्धियाँ प्राप्त करने में समर्थ होते जा रहे हैं। भारतीय वैज्ञानिकों की उपलब्धियाँ अपने सीमित साधनों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

अभी हाल ही में इन्टरनेशनल सेन्टर फार जेनेटिक इन्जिनियरिंग एण्ड बायोटेक्नोलॉजी (आई० सी० जी० ई० वी०) के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ० बी० एस० रेड्डी ने गामा-इंटरफेरोन के निकालने की एक नई पद्धति को जन्म दिया है जिसमें उनके सहयोगी वैज्ञानिकों का भी अमूल्य योगदान रहा है। इस नई विधि का प्रयोग गामा इन्टरफेरोन के वाणिज्यिक उत्पादन के लिए करना लाभकारी होगा क्योंकि इस विधि से गामा इन्टरफेरोन की प्राप्ति कई गुना बढ़ जायेगी तथा इसके उत्पादन में भी आसानी रहेगी। डॉ० रेड्डी ने इस प्रौद्योगिकी को पेटेन्ट कराने के लिए आई० सी० जी० ई० वी० के माध्यम से योरोपीय पेटेन्ट के लिए आवेदन भी कर दिया है।

गामा-इण्टरफेरोन एक विशेष प्रकार का प्रोटीन है जो पादप कोशिका के केन्द्रक रूपान्तरण से प्राप्ति की जाती है। किन्तु डॉ० रेड्डी के अनुसंधानों के पश्चात् अब गामा-इण्टरफेरोन केन्द्रक के अलावा पादप कोशिका में उपस्थित समस्त क्लोरोप्लास्टिड्स के रूपान्तरण से प्राप्त किया जा सकता है। अभी तक बाह्य जीन को केन्द्रक में प्रवेश करा कर ही गामा-इण्टरफेरोन प्राप्त किया जा सकता था। केन्द्रक कोशिका का मस्तिष्क माना जाता है। क्लोरोप्लास्टिड कोशिका का वह भाग होता है जहाँ पत्तियाँ क्लोरोफिल पिगमेंट बनाती हैं तथा जिनका उपयोग पौधों का भोजन-निर्माण के समय पत्तियों के माध्यम से होता है। इस तरह अब क्लोरोप्लास्टिड रूपान्तरण के माध्यम से गामा-इण्टरफेरोन की प्राप्ति अपेक्षाकृत काफी बहुलता एवं सरलता से सम्भव हो गयी है।

गामा-इण्टरफेरोन एक बहुत ही लाभदायक प्रोटीन है जिसका उपयोग अनेक प्रकार के रोगों से बचाव के लिए एन्टीजन एवं एन्टीबाडीज पैदा करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार जीवों के शरीर में प्रतिरक्षण क्षमता बढ़ाने वाली ओषधियों के निर्माण में इसका उपयोग होता है। फेफड़े का कैन्सर, गुर्दे का कैन्सर, दमा, गठिया, एलर्जी, तथा जीन से सम्बन्धित अन्य अनेक रोगों एवं परेशानियों को दूर करने में गामा-इण्टरफेरोन का उपयोग होता है। अनेक प्रकार के संक्रामक रोगों की रोकथाम एवं उनसे बचाव में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान होता है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण जीवन-रक्षक ओषधि है।

इस प्रौद्योगिकी के विकास के क्रम में डॉ० रेड्डी एवं उनके सहयोगी वैज्ञानिकों ने तम्बाकू, धान, कपास एवं आलू की नई-नई किस्में निकाली हैं, जिनसे अधिक मात्रा में गामा-इन्टरफेरोन एवं अन्य प्रोटीन बहुलता से प्राप्त होते हैं। इन नई पद्धति से इन नई किस्मों की मात्रा 50 ग्राम पत्तियों से 700 से 800 मि० ग्राम प्रोटीन प्राप्त हो जाता है। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। कच्चे माल की इतनी कम मात्रा से इतने अधिक प्रोटीन की प्राप्ति निश्चय ही एक उत्साहवर्धक एवं महत्वपूर्ण उपलब्धि है, जो अभी तक अन्य किसी भी विधि से सम्भव नहीं थी।

इस विधि की तकनीक यह है कि इसमें पादप-कोशिका के क्लोरोप्लास्टिड जीन क्रम में (जीनोम) इन्टरफेरोन जीन का प्रवेश कराकर उसका रूपान्तरण कराया जाता है। बाहर से

(शेषांश पृष्ठ 14 पर)

वन्यजीवों की तस्करी से अनेक जीव-प्रजातियाँ संकटापन्न

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

इनका दोष यही है कि ये अपनी मौत का समान लिए फिरते हैं। किन्तु यह कितनी अजीब बात है कि हम इन बेजुबान वन्यजीवों को बड़ी बेरहमी से अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु मारते चले जा रहे हैं। ध्यान रहे ये बेजुबान तो हैं, किन्तु बेजान नहीं। सिद्धहस्त विज्ञान लेखक एवं 'विज्ञान' के पूर्व संपादक के प्रस्तुत आलेख में वन्यजीवों पर महत्वपूर्ण जानकारी दी जा रही है।

पिछले अनेक वर्षों से हम 2 अक्टूबर को महात्मा गाँधी के जन्म दिवस को अभिनव तरीके से मनाते आ रहे हैं। इस दिन क्या, पूरे सप्ताह वन्यजीव संरक्षण से संबंधित अनेक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, फिर भी नष्ट की जा रही अथवा मारी जा रही वन्यजीव प्रजातियों की संख्या हर वर्ष घटने के बजाय बढ़ती ही जा रही है। परिणामस्वरूप अनेक जीव-प्रजातियाँ संकट के घेरे में आ गई हैं।

वर्ल्ड वाइड फण्ड फॉर नेचर-इण्डिया (WWF) की एक ताज़ी सूचना अत्यधिक चौंकाने वाली है। वन्य जीवों और उनसे तैयार की जाने वाली वस्तुओं के अवैध व्यापार में अत्यधिक तेज़ी आ गई है। और तो और, इसकी तस्करी विदेशों में भारतीय मार्गों से हो रही है।

आर्थिक आँकड़े बताते हैं कि प्रतिवर्ष, 25 बिलियन डॉलर का विश्व वन्यजीव व्यापार हो रहा है। यह राशि केवल स्वापक (नारकोटिक्स) और हथियारों के अवैध व्यापार से कुछ ही कम है। वास्तविकता यह है कि वन्यजीवों का यह व्यापार भारत की छिद्रिल सीमाओं के कारण चल रहा है। और जब तक पड़ोसी देशों का पूरा सहयोग नहीं मिलेगा, यह व्यापार अबाधगति से चलता ही रहेगा।

वन्यजीवों के संरक्षण के लिए भारत में 1972 में कानून-वाइल्ड लाइफ प्रोटेक्शन एक्ट-बनाया गया और 1991 तक समय-समय पर इसमें आवश्यक संशोधन भी किए गए। इसके अनुसार वन्यजीवों को मारना, बेचना-खरीदना, क़ैद में रखना प्रतिबंधित है, फिर भी अवैध व्यापार फूलता-फलता रहा है। ऐसी जन्तु-प्रजातियाँ जो संकटापन्न हैं और विलुप्ती-करण की ओर अग्रसर हैं, उनमें बाघ, गैंडा, कस्तूरी मृग, भालू, हाथी, बाज़, ढेलहरा आदि प्रमुख हैं।

विश्व व्यापार में 40,000 नरवानर (प्राइमेट्स); हाथी-दाँत के लिए 90,000 अफ्रीकी हाथी, एक मिलियन से अधिक ऑर्किड, 4 मिलियन जीवित पक्षी, चमड़े के लिए 10 मिलियन रेंगने वाले जन्तु, 15 मिलियन फर और 350 मिलियन से अधिक उष्णकटिबंधी मछलियाँ शामिल हैं। इस अवैध धन्धे में भारत सहित अर्जेन्टीना, आस्ट्रेलिया, बोलिबिया, ब्रेज़िल, चीन, कोलम्बिया, कांगो, हाण्डुरास, इण्डोनेशिया, नेपाल, फिलीपीन्स, दक्षिण कोरिया, ताइवान, थाइलैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका अग्रणी हैं।

उपभोक्ता देशों में कनाडा, चीन, यूरोपीय संघ, हाँग-काँग, जापान, सिंगापुर, ताइवान, यमन, ब्रिटेन, अमेरिका और संयुक्त अरब अमीरात प्रमुख हैं। प्रकाशित "न्यूजलेटर" (समाचार-पत्र) में यह बात साफ़ तौर से लिखी गई है कि शाही बाघ सहित अनेक वन्यजीव प्रजातियाँ खतरे के घेरे में ढकेल दी गई हैं।

हिम चीता (स्नोलेपर्ड) और सुस्त चीते से लेकर मरुस्थलीय बिल्ली, लोमड़ी और भेड़िया सहित स्तनपायी जन्तुओं की लगभग 20 प्रजातियों की "फर कोट" के लिए विश्व माँग अत्यधिक है।

90 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में काठमाण्डू "फर-कोट" का मुख्य व्यापारिक केन्द्र था, गोकि फर का अधिकांश भाग भारत से ही एकत्र किया जाता था। इसी प्रकार भारत की विश्वविख्यात "कस्तूरी" भी आमतौर से भारत द्वारा ही

बाहर भेजी जाती रही है। "न्यूज लेटर" के सम्पादक सी० शेखर नाम्बियार के अनुसार लाल पण्डा, सुनहरी लंगूर, हलूक, गिबन और शेर पुच्छ मैकाक (वानर) का व्यापार धड़ल्ले से होता रहा है। जीवित पक्षियों का व्यापार कई तरह से होता रहा है। 300 प्रजातियों की एक से डेढ़ लाख चिड़ियाँ पकड़ी और बेची-खरीदी जाती हैं। देशहरा, मैना, बटेर, मुनिया, बत्तख, पथरचिटा, कबूतर, लक़-लक़, पानी में चलने वाले लम्बी टाँगों वाले पक्षी आदि खाने के लिए, बाज़ शिकार के लिए, और कितने ही बुलबुल लड़ाकर मार दिए जाते हैं। कितने ही नदी वाले कछुए और समुद्री या हरे कछुए मांस के लिए मौत के घाट उतार दिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त पिजड़ों में शौक के लिए पाले जाने वाले अनेक प्रजातियों के पक्षी असमय काल के गाल में समा जाते हैं।

शार्कों के विषय में तो हमीदा हानफी के सर्वेक्षणों के परिणाम चिंताजनक हैं। समुद्री कछुए के कवच (शेल) से निर्मित अनेक वस्तुयें उड़ीसा में उपलब्ध हैं। गोह को उसके त्वचा के लिए और गुजरात तथा राजस्थान में हज़ारों की संख्या में सांडा को कामोत्तेजक तेल प्राप्त करने के लिए, उनकी बलि चढ़ा दी जाती है। ओषधीय पादपों का व्यापार तो शोषण की सीमा ही पार कर गया है, क्योंकि इनका अत्यधिक महत्व है।

"ट्रैफिक-इण्डिया" के सम्पादक मनोज मिश्र के अनुसार इस प्रकार के व्यापार के, समझदारी के अभाव में, दूरगामी परिणाम होंगे और यदि संरक्षण के प्रभावी तरीकों को शीघ्र लागू न किया गया तो कुछ प्रजातियाँ तो पूरी तौर से विलुप्त ही हो जायेंगी।

चंदन की लकड़ी, लाल चंदन, ऑर्किड, *साइकस (Cycas)*, कीटभक्षी या मांसाहारी पौधों और भारत के विभिन्न राज्यों के सुगंधित पौधों की पर्याप्त उपज येन केन प्रकारेण विदेशों को भेज दी जाती है।

वर्तमान स्थिति को देखते हुए आने वाली इक्कीसवीं सदी में वन्य जीवों की कैसी दुर्दशा होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अब हम क्षीण होती जैव-विविधता की और उपेक्षा नहीं कर सकते। उपेक्षा का अर्थ होगा मानव अस्तित्व को संकट में डाल देना। अतएव नयी सदी में संरक्षण के नए उपाय ढूँढ़ने होंगे, नयी तकनीकें विकसित करनी होंगी, नये कानून बनाने होंगे, नयी आचार संहिता बनानी होगी और सख्ती से उनका पालन करना होगा। मानववता के हित में यही श्रेयस्कर होगा और हमें ऐसा ही करना होगा।

पूर्व संपादक, "विज्ञान", विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलालाबाद-211002

(पृष्ठ 12 का शेषांश)

प्रवेश कराये गये इण्टरफेरोन जीन के लिए क्लोरोप्लास्टिड के अन्दर का वातावरण अत्यन्त उपयुक्त एवं सहयोगी होता है। डॉ० रेड्डी एवं उनके सहयोगियों ने इन्टरफेरोन जीन भी अपनी ही प्रयोगशाला में तैयार किया तथा इस रूपान्तरण के पश्चात् गामा-इण्टरफेरोन की प्राप्ति सम्भव हुई।

सामान्य रूप से प्रत्येक कोशिका में लगभग 100 क्लोरोप्लास्टिड होते हैं तथा प्रत्येक क्लोरोप्लास्टिड में लगभग 100 ही जीनेन्द्रम (जीनोम) होते हैं। इस प्रकार एक बार में इन्टरफेरोन के प्रवेश होने पर उसके रूपान्तरण के लिए लगभग दस हज़ार जीनोम मिल जाते हैं। इस प्रकार एक बार में दस हज़ार ग्राम इन्टरफेरोन की प्राप्ति सम्भव हो जाती है जैसे फोटोस्टेट मशीन से एक प्रति से दस हज़ार प्रतियाँ बनाना अथवा एक बीज से दस हज़ार बीज मात्रा फल प्राप्त कर लेना। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि डॉ० रेड्डी और उनके सहयोगी वैज्ञानिकों ने गामा-इन्टरफेरोन की वाणिज्यिक उपलब्धता में जिस विधि का प्रयोग और आविष्कार किया है, वह निश्चय ही मानव ही नहीं, बल्कि जीवमात्र के कल्याण के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि है। वे इस उपलब्धि के लिए निश्चय ही बधाई के पात्र हैं। भारत के इस कर्मठ एवं महान वैज्ञानिकों से मान्यता को भविष्य में बड़ी आशा और विश्वास है।

अवकाशप्राप्त रीडर एवं विभागाध्यक्ष
कुलभास्कर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद

अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट

डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय

आज से दो सौ वर्षों पूर्व, 5 जून 1799 को उत्तर-पश्चिमी स्पेन के ला- कोरूना नामक स्थान से अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट ने अमेरिका केउष्ण-प्रदेशीय क्षेत्रों के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु यात्रा प्रारम्भ की थी। यह अभियान 5 वर्षों का था, फलस्वरूप, इस विलक्षण मेधासंपन्न जरमन विद्वान के अनुभवों, सूचनानों एवं भूगोल संबंधित गणनाओं, वनस्पतियों, जीवों के विवरणों से भरे 34 खण्डों में प्रकाशित ''अमेरिकन-जर्नी'' जो फ्रेंच भाषा में प्रकाशित हुयी थी, ने समस्त विश्व को चौंका दिया।

इस प्रसिद्ध पुस्तक के 12 खण्ड इन क्षेत्रों के भूगोल संबंधी अध्ययन से भरे पड़े हैं, तो दो खण्डों में संबंधित वैज्ञानिक गणनायें हैं। वनस्पतिशास्त्र से संबधित 18 खण्डों में उत्तरी अमेरिकी यात्रा के अवसर पर एकत्र की गयी वनस्पतियों के विषय में विविध सूचनायें अंकित हैं तथा जीवों से संबद्ध-जीव विज्ञान युक्त विवरण दो खण्ड मे संकलित हैं। इस पुस्तक में मात्र भूगोल संबंधी सूचनाओं तथा अन्य तथ्यों का संकलन ही नहीं है वरन् अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट की लेखनी से उनका प्रसिद्ध लेख पादप समुदाय, विविधताओं युक्त एवं अतीव वैज्ञानिक तथ्यों युक्त है।

अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट की इस विश्व प्रसिद्ध कृति में उस युग के प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्र चित्रकार फ्रैकुआ टुरपिन, मैडम इचूलालिया, डेलीले, फ्रैकुआ गेरार्ड, जासेफ ऐन्टोन कॉख, वरलेट थारवाल्डेसेन के बनाये हुये चित्र संग्रहीत हैं। इसी प्रकार उनके परिचित वैज्ञानिकों, जीवविज्ञानविदों तथा गणितज्ञों ने भी इस कृति में योगदान दिया था। इसी प्रकार का सहयोग अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट को अपनी अंटाक्टिक यात्रा में, अनेक विवरणों एवं गणनाओं हेतु इन सहयोगियों से प्राप्त हुआ था।

अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट (1769-1859) का जन्म एक संपन्न एवं प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। उनके पिता जीवन का आनन्द उठाने वाले व्यक्ति थे, तथा अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट की आयु जब मात्र 9 वर्षों की थी तो उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। परन्तु उन्हे योग्य शिक्षकों द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने में कोई व्यवधान नहीं पड़ा। उनके शिक्षक प्रसिद्ध यहूदी चिकित्सक मार्क्स हर्ज़ थे, जिन्होने उन्हें मात्र विज्ञान, चिकित्सा तथा अन्य संबंधित विषयों की ही शिक्षा नहीं प्रदान की वरन् उन्हें राजसी संस्कारों और व्यवहारों से परिचित कराया।

अक्तूबर 1787 से 1792 तक अलेक्जैन्डर ने फ्रैंकफुर्ट विश्वविद्यालय में तदुपरान्त गोटिंनजन विश्वविद्यालय में 6 मास तक अध्ययन कर आठ मासों तक हैम्बर्ग के ''कामर्शियल एकादमी'' में शिक्षा प्राप्त की। फ्राईबर्ग की ''माइनिंग एकादमी'' में उन्होंने एक वर्ष से कम अवधि तक अध्ययन किया। इस अध्ययन के बाद उन्हे ''प्रूशियन माइनिंग सर्विस'' में चुन लिया गया तथा वहीं पर उनकी विलक्षण प्रतिभा के कारण 1792 ई० में वे प्रूशियन साम्राज्य के खान-निरीक्षक नियुक्त हो गये। उसी वर्ष वे इस संगठन के मुख्य निरीक्षक बने। उनकी प्रतिभा को देखते हुये तथा उनकी खानों की गुणवत्ता, लाभ एवं संबंधित पक्षों के विचारों से प्रभावित होकर उन्हें 1 मई 1795 में ''सीनियर माइनिंग कॉउन्सिलर'' बना दिया गया। परन्तु अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट को चैन नहीं था। उन्होंने अपने धन से ''फ्रैंककोनिया'' जहाँ पर अनेक खानें थीं, मई में कार्यरत

मजदूरों की शिक्षा हेतु ''फ्री स्कूल ऑफ माइनिंग'' की स्थापना की तथा वे इस प्रकार मानव कल्याण की ओर अग्रसर हुये। यहाँ पर खदान में लगे मजदूरों को अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट द्वारा खुदाई संबंधी सूचनाओं को एकत्र कर, वैज्ञानिक पक्ष युक्त शिक्षा ने तत्कालीन प्रूशियन सरकार को इतना प्रभावित किया कि सरकार ने अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट को उनकी इस कार्य के निमित्त व्यय हुयी राशि ही नहीं वापस कर दी वरन् उन्हें सम्मानित भी किया। युवा अलैक्जैन्डर को अंग्रेज, फ्रेन्च, स्पैनिश अन्वेषकों ने प्रारम्भ से ही प्रभावित करना शुरू कर दिया था, परन्तु जेम्स कुक की इसकी विश्व यात्रा (1772- 1775) जिसमें दो जरमन अंनुसंधानकर्त्ता जोनाथन राइन होल्ड एवं जार्ज फास्टर भी सम्मिलित थे, से मिलने के उपरान्त, उनसे यात्रा विवरण सुन कर, युवा हम्बोल्ट का मन इस प्रकार की यात्रा हेतु योजना बनाने में लग गया।

उस समय के विख्यात जर्मन चिन्तक एवं दार्शनिक इमैनुएल कॉन्ट ने अनेक भौगोलिक प्रश्नों का समाधान करते हुये भौतिक-भूगोल (फिजिकल जियोग्राफी) की महत्ता को अपने भाषणों में बारम्बार प्रतिपादित किया था। यह शब्द समस्त दृष्ट जगत के अर्थ में व्यवहृत किया गया था। इसी के प्रभाव में जेम्स कुक ने अपनी विश्व यात्रा में विभिन्न देशवासियों, उनकी जैविक एवं वानस्पतिक संपदा के विषय में चर्चा की थी।

अमेरिका द्वय के ऊष्ण कटिबंधीय देशों की यात्रा की इच्छा अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट के मन में प्रारम्भ से ही थी। वे इसको स्वरूप देने में 1797 से ही लग गये थे जब उन्होंने वियना में जाकर ऊष्णकटिबंधीय वनस्पतियों का अध्ययन प्रारम्भ किया था। उस समय वियना विश्वविद्यालय का वनस्पति संग्रहालय सारे योरप में विख्यात था। कुछ समय बाद वे साल्जकुर्ग गये और वहाँ पर उन्होंने यात्रा में प्रयुक्त होने वाले स्वनिर्मित विविध उपकरणों की शुद्धता और सूक्ष्मग्राहिता का अध्ययन किया।

5 जून 1799 ई० को अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट अपने वनस्पतिशास्त्री मित्र वोनप्लान्ड के साथ, स्पेन के सम्राट और साम्राज्ञी से मिलकर उनकी स्वीकृति एवं संस्तुति सहित, स्पेन के ला-कोरूना नामक बन्दरगाह से, अपनी प्रसिद्ध यात्रा पर निकले। इस यात्रा में अलेक्जैन्डर ने अपने यंत्रों से अनेक गणनायें प्रारम्भ की तथा एटलान्टिक महासागर की वनस्पतियों, जीवों आदि का सारगाजो-समुद्र में, अध्ययन किया। उन्होने समुद्र की जलधाराओं का भी सूक्ष्मता से अध्ययन कर उनके गति विषयक नियमों का प्रतिपादन किया। इन तरंगों को हमबोल्ट-तरंगें कहा जाता है।

ला-कोरूना से प्रस्थान कर अलेक्जैन्डर-फान- हमबोल्ट का जहाज कैनेरी आइलैन्ड पर रुका। यहाँ पर टैनीरीफे में रुक कर, उसके सबसे ऊँचे पर्वत की ठीक ऊंचाई की गणना के बाद वहाँ की वनस्पतियों, जीवों, मानवों का विषद वर्णन अलेक्जैन्डर ने अपनी पुस्तक में अंकित किया है। जरमनी के विख्यात कवि, चिन्तक, दार्शनिक गेटे के साथ पत्राचार द्वारा विचार विमर्शो-परान्त अलेक्जैन्डर ने वनस्पतियों के एक विशिष्ट पर्यावरण में वितरित होने, विकसित होने के ऊपर जो टिप्पणी की थी वही कालान्तर में 1866 ई० में ''इकॉलॉजी'' के विकास का कारण बनी।

16 जुलाई 1799 को अलेक्जैन्डर और वानप्लान्ड ने अपने जलपोत ''पिजारो'' को जिस स्थल पर रोका था, उसे आज वेनेजुयेला कहा जाता है। यहाँ पर उसी दिन उन्हें उस क्षेत्र का वासी, जो कि प्रथम दक्षिण अमेरिकी इन्डियन था, तथा जो अपने ईसाई नाम कार्लोसन्डेलपिनों के नाम से जाना जाता था, से भेंट हुयी। उसकी शारीरिक रचना तथा शक्ति को देखकर अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट, प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने योरोपवासियों की अवधारणा कि यह दक्षिण अमेरिका वासी, मन्द बुद्धि एवं शक्तिहीन होते हैं, का जोरदार शब्दों में, निराकरण किया। मानवता का सम्मान करने वाले वे प्रथम योरोपीय विद्वान थे।

वेनेजुयेला में रहते हुये अलेक्जैन्डर ने वहाँ की वनस्पतियों, वनों, जीवों का विशेष कर ''इलेक्ट्रिक-ईल'' का, सर्पों की प्रजातियों का, विशालकाय घड़ियालों का, शाकाहारी घड़ियालों का मैनाटीस का (जल-गाय), पक्षियों का, विशेषकर गुआकारो-कन्दरावासी पक्षी, जिनको मार कर स्पैनिश लोग तेल निकालते थे, तथा नदियों की जलधाराओं का ऑक्सीजनयुक्त (श्वेत जलधारा) तथा ऑक्सीजन विहीन (काली जलधारा) का अध्ययन ही नहीं किया वरन् समस्त वेनेजुयेला के घने जंगलों-पहाड़ों की अनेक बार यात्रायें करने के बाद 24 नवम्बर 1800 ई० को यहाँ से प्रस्थान कर 19 दिसम्बर 1800 ई० को आधुनिक क्यूबा पहुँचे। गन्ने के खेतों को देखते, शर्करा-उत्पादन का निरीक्षण तथा जैविक विविधताओं युक्त इस द्वीप से इन लोगों ने 15 मार्च 1801

ई० को प्रस्थान कर ट्रिनीडाड होते हुये 30 मार्च 1801 ई० को कोलम्बिया (कार्टगेना) पहुँचे। टुर्बाको नगर में अलेक्जैन्डर ने "मड-वालकैनो" या "भूमि-ज्वालामुखी" का अध्ययन किया। कोलम्बिया की यात्रा में ही अलेक्जैन्डर ने बगोटा स्थित पर्वत का, तथा ऐन्डीज पर्वत श्रृंखला का विस्तृत अध्ययन किया। वहीं बगोटा में रह कर उन लोगों ने प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री जोसे सिलेस्टीनो मूटिस का वनस्पति संग्रहालय देखा। मूटिस ने ही प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री लीने को अनेक नवीन वनस्पतियाँ प्रदान की थीं।

अलेक्जैन्डर और वोनप्लान्ड ने कोलम्बिया से पेरू और वहाँ के पर्वतों, जीवों, वनस्पतियों तथा अमेजन में मिलने वाली अनेक नदियों का अध्ययन करने के उपरान्त 23 अक्तूबर 1802 में पेरू के दक्षिणी भागों की यात्रा की। पेरू में ही उन्होंने चाँदी के खानों का निरीक्षण किया तथा अनेक रसायनिक क्रियाओं का, धातु युक्त प्रस्तर खण्डों का अध्ययन किया।

24 दिसम्बर 1802 को हमबोल्ट, वोनप्लान्ड एवं एक दक्षिण अमेरिकी सहयोगी मानटूफार ने एक छोटी नौका "ला-कास्टर" से पेरू के नगर कालाओं से ईक्वाडोर के लिये प्रस्थान किया। वहाँ उनकी नौका 4 जनवरी 1803 को पहुँची। इस क्षेत्र के "कानरोपैम्सी" ज्वालामुखी का विस्फोट 4 जनवरी को ही हुआ था-इसी का विस्तृत विवरण उन्होने अपनी पुस्तक में किया है। ज्वालामुखी के आस-पास के भौगोलिक विवरण भी इस पुस्तक में अंकित हैं।

अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट 22 मार्च 1803 को मैक्सिको के बन्दरगाह आकापुलको पहुँचे तथा वहाँ से यात्रा कर 12 अप्रैल 1803 ई० में इनका कारवां मैक्सिको सिटी पहुँचा। अनेक खानों, उनकी धातुओं का, वनस्पति एवं जीवों का, मरुस्थल का तथा संबंधित आर्द्रता, वर्षा का, मानव-प्रकर, विविधताओं का वर्णन मैक्सिको संबंधित अलेक्जैन्डर की पुस्तक खण्ड में प्राप्त है।

यहीं मैक्सिको सिटी में इसके मूल वासियों द्वारा निर्मित प्राचीन भवनों का, पिरामिडों का, जल निकासी प्रणाली का, उसकी विलक्षणता का विस्तृत वर्णन फान- हमबोल्ट ने अपनी पुस्तक में किया है। वे मैक्सिको के आदिवासी इवेरो-इन्डियन लोगों से, उनकी बुद्धिमत्ता, सभ्यता एवं उनके स्पैनिश शासकों की तुलना में उनकी सुशीलता एवं सहृदता से अतीव प्रभावित थे। मैक्सिको की विभिन्न पर्वत श्रृंखलाओं का विस्तृत अध्ययन भी अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट ने किया था।

अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट ने मैक्सिको के बेराक्रूज नगर से क्यूबा की यात्रा 7 मार्च 1804 को प्रारम्भ की। इस यात्रा मे 12 दिन लगे थे तथा क्यूबा की राजधानी हवाना पहुँचने पर वहाँ के अमेरिकन कॉउलेट की सलाह मानकर वे 21 अप्रैल 1804 को प्रस्थान कर, समुद्री झंझावात झेलते हुये 20 मई 1804 को अमेरिका के फिलाडेल्फिया नामक नगर में पहुँचे। वहाँ से चेस्टर, चार्ल्सटाउन, बाल्टीमोर होते हुये वाशिंगटन 1 जून को पहुँचे। अमेरिका के प्रत्येक नगर में हमबोल्ट का अभूतपूर्व स्वागत हुआ था तथा अमेरिकन प्रेसीडेन्ट थामस जैफरसन ने उनसे कई बार दक्षिणी अमेरिका के भूचित्रों हेतु भेंट की थी। उस समय कैलीफोर्निया, ऐरीजोना तथा न्यू-मैक्सिको प्रदेश अमेरिका के भाग नहीं थे। अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट ने अमेरिकी राष्ट्रपति के बार-बार अनुरोध पर उस समय के मैक्सिको का भूचित्र प्रदान किया था। इस घटना ने अमेरिका के उपर्युक्त तीनों नये प्रदेशों की उत्पत्ति में सहायता की थी। अमेरिका के डेलवर नदी से, अमेरिकी पोत "फेवरिट" पर 30 जून 1804 को सवार होकर एटलान्टिक महासागर की एक मास की यात्रा के उपरान्त वे सभी 1 अगस्त 1804 ई० को फ्रांस के बन्दरगाह बोर्डो पहुँचे। यह दोनों वैज्ञानिक 27 अगस्त 1804 को पेरिस पहुँचें जहाँ पर इन दोनों वैज्ञानिकों का अभूतपूर्व स्वागत हुआ था।

अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट अपने समय के प्रसिद्ध भूगोलविद्, अन्वेषक, फिजिकल जियोग्राफी, इकॉलोजी (पारिस्थितकी), तथा वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार भूचि-त्रांकन के प्रणेता थे। इसके साथ-साथ वे मानवता के पुजारी, गुलामी (स्लेवरी) के प्रबल विरोधी तथा मानव अधिकारों की घोषणा करने वाले प्रथम योरोपीय विद्वान थे। जरमनी के चाँसलर रोमान हजोग के शब्दों में– "अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट ने वैज्ञानिक विद्वता तथा सामाजिक चेतना को इस प्रकार से संयोजित किया था, कि वे अपने समय में ही युवा वैज्ञानिकों, चिन्तकों, विचारकों तथा विद्वानों के प्रेरणास्रोत बन गये थे।" उन्हीं के कृत्यों के स्मरण हेतु जरमनी के वोल नगर स्थित "अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट न्यास" विश्व भर में विद्वानों को, वैज्ञानिकों को "फेलोशिप" प्रदान कर शोध के विविध आयामों के वर्धन के लिए कृतसंकल्प है।

अलेक्जैन्डर-फान-हमबोल्ट फेलो

परिसर कोठी काके बाबू, देवकाली मार्ग
फैजाबाद –224001.

संकटग्रस्त हिमालयी पर्यावरण

शिवनंदन पांडेय

सैकड़ों वर्षों से, पर्वतराज हिमालय भारतीय ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों एवं जनसामान्य मनीषियों को अत्यधिक आकर्षित करता रहा है। कारण यह था कि इन उत्तुंग शिखर वादियों में शांति एवं निस्तब्धता, ओजस्विता एवं यौगिक साधना हेतु स्वच्छ वातावरण, आत्मकेन्द्रित तथा मंत्रमुग्ध करने वाले अनेकानेक दृश्यपूर्ण स्थल, अत्यधिक आध्यात्मिकता एवं जीवन सत्य की ओर ले जाने वाले मनमोहक प्रकृति से आवृत्त वातावरण का होना था। इन सभी अलौकिक संपादाओं एवं अमूल्य प्राकृतिक स्रोत को बनाये रखने में हिमालयाच्छादित पर्यावरण के वाहक तरह-तरह के वृक्ष, पर्वत शिलाएं, उनकी संरचना तथा नदियों के प्रवाह का आपसी संतुलन सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक थे। हमारी आज की पीढ़ी तथा इनका अत्यधिक भौतिकवादी जीवन हमारे इन अप्रतिम स्रोतरूपा हिमालय के जीवन एवं पर्यावरण से खिलवाड़ करता प्रत्यक्षतः महसूस कराने लगा है। हमारे जीवन की विषमता एवं अपरिपक्वतापूर्ण आवश्यकता ने आज हिमालय श्रृंखला के अधिकांश पर्वत शिखरों एवं वादियों को जहाँ वृक्षहीन, पादपविहीन कर दिया है, वहीं इनसे जनित भूक्षरण की समस्या ने अत्यधिक विकराल रूप धारण करने में सहयोग प्रदान किया है।

पृथ्वी में जीवन संचार के लक्षणों के साथ ही हिमालय श्रृंखला के निर्माण की परत दर परत कहानी प्रारंभ होती है। विश्व की अधिकांश पर्वत श्रृंखलाओं में वह विशिष्टता एवं अलौकिकता नहीं प्राप्त होती है जो कि हिमालय श्रृंखला में प्राप्त होती है। हिमालय श्रृंखला की कुल लंबाई लगभग 2400 किलोमीटर तथा चौड़ाई कुल लगभग 320 किमी० है वहीं इसका समस्त क्षेत्रफल लगभग पाँच लाख वर्ग किमी० में विस्तृत रूप में आवृत है। विश्व के अधिकांश पर्वत श्रृंखलाओं में हिमालय सर्वाधिक कम उम्र पर्वतराज है और इसकी संरचना कुछ इस तरह से है कि मानवजनित लघु नुकसान के प्रयास मात्र से इसका कोई न कोई हिस्सा क्षतिग्रस्त होने लगता है। संभवतया विश्व की अधिकांश पर्वतमालाओं में हिमालय भूसंरचना में सर्वाधिक कमजोर एवं संवेदनशील है। यही कारण है कि मानवजनित दखलंदाज़ी को हिमालयी संरचना बिल्कुल सहन नहीं कर पाती है।

भूवैज्ञानिकों तथा भूभौतिकविदों ने भारतीय परिक्षेत्र के हिमालय पर्वत क्षेत्र में लगभग सवा चार लाख हेक्टेयर क्षेत्र को अतिसंवेदनशील एवं भूस्खलन योग्य माना है। भूस्खलन की भयावहता एवं दिन प्रतिदिन इसके द्वारा होने वाले नुकसान का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आज लगभग 48 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष की हानि तथा लगभग 200 से 300 लोगों की असामयिक मृत्यु, मात्र हिमालयी भूस्खलन के कारण होती है जो कि संपूर्ण संसार के भूक्षरण के 32 प्रतिशत हिस्से को व्यक्त करता है। भूक्षरण की इस गंभीर समस्या से निजात पाने एवं विभिन्न भूसंरक्षण कार्यों तथा आर्थिक विकास कार्यक्रमों में प्रतिवर्ष लगभग 20 से 25 करोड़ रुपयों का व्यय आता है। आज संसार में अधिकांश देश पर्यावरण के प्रति इसी कारण सचेत हो रहे हैं क्योंकि पर्वत श्रृंखला आधारित पर्यावरण से छेड़छाड़ का मतलब विशाल आर्थिक नुकसान तथा अनवरत अनेक समस्याओं का बुलाना एवं राष्ट्र के विकास में सर्वथा बाधक बनना है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक भूवैज्ञानिकों एवं भूभौतिकविदों, पर्यावरण प्रेमियों तथा मृदासंरक्षण चेतनावादियों के प्रयास से वर्ष 1990 से 2000 के मध्य दशक को इसीलिए 'नेचुरल डिजास्टर रिडक्शन' के रूप में घोषित कर भूक्षरण की समस्या को वृहदाकार समस्या मानकर व्यापक अनुसंधान एवं निवारण के उपाय किये जा रहे हैं।

भूक्षरण की शुरुआत मुख्यतया प्रकृतिजनित धूप, वर्षा, ओलावृष्टि, भूकंप आदि से होती है वहीं मानवजनित, पशु-पक्षीजनित एवं पृथ्वी की बाह्य संरचनाजनित घटकों से

भी होती है। भूस्खलन बहुधा मानसूनी वर्षा के द्वारा होती है। यद्यपि वर्ष के अधिकांश भाग में भारी वर्षा नहीं होती फिर भी मानसूनी वर्षा के मात्र तीन महीनों में 80-90 प्रतिशत भूक्षरण हो जाता है। जबकि शेष 9 महीनों में मात्र 10 से 20 प्रतिशत ही भूक्षरण होता है। हिमालय पर्वतमाला चूंकि अधिकांश नुकीली एवं सीधी खड़ी होने की संरचना वाली है अतः जाड़ों में अत्यधिक ऊँचाई वाले शिखरों में जब लगातार वर्फबारी होती है तो उसके भार को न सह सकने के कारण हिमशिला खंड नीचे ढलान पर तेज़ी से फिसलते हैं तो भूक्षरण भी उसी अनुपात में साथ होती है। ज्वालामुखी केंद्रों की सक्रियता तथा अधिकांश स्थलों में पर्वत के नीचे सुसुप्त ज्वालामुखी की हलचलों से एक ओर हिमालय राज जहाँ प्रतिवर्ष 15 से 25 मिमी०, आगे-पीछे खिसक रहा है, वहीं पर्वत श्रृखंला की भीतरी परतों के बीच दरार पैदाकर उनकी पकड़ तथा स्थिरता के खतरा पैदा करता रहता है। इन समस्याओं के कारण अधिकांश वृक्ष पादप वर्षा के प्रचण्ड वेग, तेज़ हवा, हिमस्खलन एवं मानवजाति समस्या से हजारों की संख्या में प्रतिमिनट क्षतिग्रस्त होते रहते हैं और इन्हीं वृक्षों पादपों के सहारे ही हिमालय पर्यावरण संरक्षित है। नवीन सड़कों का निर्माण, असंवेदनशील तथा त्रुटिपूर्ण वास्तुभवन कला से भवन निर्माण भी हिमालयी भूसंरचना को अत्यधिक क्षरित करने में सहयोग करता रहा है।

पर्यावरण जनित जो भी क्षति है वह या तो मानव जनित है या फिर प्रकृति की विनाशलीला जनित रही है। पर हिमालय की संवेदनशीलता को देखते हुए जो निष्कर्ष निकाले गये हैं उनसे सिद्ध होता है कि अत्यधिक त्रुटिपूर्ण एवं विवेकहीन ढंग से हिमालय क्षेत्र में सड़कों का निर्माण करना रहा है। चूंकि सड़क निर्माण की आवश्यकता विकास से जुड़ी है और नित नये नये विकासात्मक क्षेत्रों के पहचान तथा उनकी प्रतिस्थापना सड़क निर्माण कार्य की मजबूरी बन जाती है अतः इस कार्य की व्यापकता तथा इनसे जनित अप्रत्यक्ष नुकसान की भरपाई किसी भी सूरत में भविष्य में नहीं हो पाती, उल्टे सड़कों की चौड़ाई तथा सही ढलान देने हेतु डायनामाइट द्वारा पर्वतों के भीतर जब पर्वत तोड़े जाते हैं तो वहाँ उस पर्वतखंड का हृदय विदीर्ण होता ही है आस पास स्थित पर्वतों में भी अनवरत डायनामाइड विस्फोट से जबर-दस्त भूकंपन होता है और इन सबका परिणाम यह होता है कि पर्वतश्रृंखलाएं स्थान-स्थान से खोखली एवं आंतरिक बुनावट में अस्थिर हो चुकी होती हैं। हिमालय पर्वत श्रृंखला में सड़क निर्माण में एक किमी की लंबाई वाले क्षेत्र बनाने में लगभग 60.90 घनमीटर मिट्टी-पत्थर ढेर नीचे की ओर गिराया जाता है जिससे नीचे अवस्थित हज़ारों वनस्पतियों, जलस्रोतों को जहाँ नुकसान होता है वहीं नदियों या लघु जलधाराओं का बहाव तक रुक जाता है और धारा के बहाव में जब परिवर्तन होकर अत्यधिक वेग के साथ जल प्रवाहित होता है तब पर्वत स्थित कच्चे पत्थर-मिट्टी इतने तेज़ी से जल के साथ बहते हैं कि पलक झपकते गांव के गांव एवं हज़ारों पेड़ों को काल के गाल में जाते देर नहीं लगती। सरकार द्वारा विवेकपूर्ण तथा हिमालय पर्वत की संवेदनशीलता के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझते हुए सड़क निर्माण कार्य किया जाये या भूसंरक्षण कार्य किया जाये तो शायद अभी इन सभी कार्यों में लगभग 120 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष जो परिव्यय आता है वह घटकर 80 करोड़ रुपये पर तत्काल आ जायेगा। साथ ही बाँधों, सड़कों, पुलों, शक्ति गृहों, अभियांत्रिकी प्रोजेक्ट्स आदि के निर्माण की स्वीकृति तभी दी जानी चाहिये जब वैज्ञानिक रूप से यह सिद्ध कर लिया जाये कि इनके निर्माण से पर्वत श्रृंखला प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष कहीं भी क्षतिग्रस्त नहीं होगा। विशाल स्तर पर औद्योगीकरण, जनसंख्या दबाव, पर्यटन वृद्धि के फलस्वरूप पर्वतों पर सर्वत्र आवागमन, पशुओं का अवैज्ञानिक चराना, फसलचक्र में अवैज्ञानिकता तथा स्थान स्थान पर पर्यटन केंद्र, होटल आदि के निर्माण से हिमालयाच्छादित वनस्पतियाँ इतनी तेज़ी से तिरोहित होती जा रही हैं कि आज उत्तर प्रदेश के हिस्सेवाले हिमालय प्रक्षेत्र मात्र 38 प्रतिशत भूभाग ही वनस्पति आवृत रह गये हैं।

मानव की आवश्यकता जैसे जैसे बढ़ती गयी, उसने सर्वप्रथम अपने आस पास के पर्यावरण रक्षक वृक्षों को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया और यह प्रक्रिया हिमालय पर्वत तक जा पहुँची है। आज आंकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि यदि भविष्य में हिमालय में उगने वाली वनस्पतियों का कटान रोका नहीं गया एवं लगभग दस करोड़ वृक्ष रोपित नहीं किये गये तो शायद गोमुख का स्रोत एक किमी और पीछे चला जायेगा एवं हिमालयी गांवों तथा शहरों में पेयजल की अत्यंत गंभीर समस्या पैदा हो जायेगी। हिमालय में वृक्षों वनस्पतियों की अत्यधिक होती कमी से पहाड़ों में पानी सोखकर उन्हें अपने अंदर रोककर जगह-जगह झील बनाने एवं वर्षभर छोटी छोटी जलधाराएं बनाकर तथा चश्में द्वारा स्थानीय लोगों की दिन प्रतिदिन की जलापूर्ति को धक्का पहुँचा है। गर्मी के तीन महीनों में हिमालय निवासियों को अपने घरों से सैकड़ों मीटर दूर जाकर स्वजलापूर्ति करना जंगलों को नष्ट करने का दुष्परिणाम स्वरूप ही उपजा है।

उदाहरण के तौर पर आज मसूरी पर्वत श्रृंखला को देखा जा सकता है। आज से पचास साल पहले मसूरी अधिकाशतः वृक्षाच्छादित थी किंतु संपूर्ण वर्ष मिट्टी पत्थर व भूस्खलित पर्वत साफ दिखाई पड़ते हैं कि हर प्रकृति प्रेमी इन दृश्यों को देखकर बिना दुखी हुए नहीं जा सकता है।

मसूरी पर्वत श्रृंखला की यह हालत अवैज्ञानिक ढंग से सड़क निर्माण, भवन निर्माण, होटल, व्यावसायिक संस्थान तथा चोरी छिपे अनवरत जारी खनन कार्य द्वारा उद्भूत हुई है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा स्पष्ट आदेश देने के बावजूद आज भी मसूरी में भवन निर्माण कार्य जारी हैं तो वहीं स्थानीय लोगों की सहायता से चोरी छिपे अवैध खनन एवं देहरादून स्थित चूना भट्टों में उनका अवैध उपयोग जारी है। हमारी इन छोटी लालच एवं समाज तथा प्रकृति के प्रति अनुत्तरदायी हरकतों से हिमालय की जीवनलीला के साथ क्या हम खिलवाड़ नहीं कर रहे हैं ? सहस्त्रधारा पर्वत श्रृंखला, मसूरी पर्वत श्रृंखला की नंगी पीठ को देखकर भला कौन इस बात से इन्कार कर सकता है ? साक्षी हम सभी हैं पर मूकदर्शक बने रहकर हिमालय पर्वत श्रृंखला के प्रति इतने बर्बर व्यवहार होते रहने एवं अमानवीय संवेदनहीनता प्रदर्शित करने के प्रति हम सभी अपराधी हैं। हिमालय का क्षरण वास्तव में हमारा क्षरण है। उत्तरभारत की जीवनदायिनी नदियों एवं शस्य श्यामला धरती में उत्पन्न अन्न प्राप्ति हमें इसी हिमालय की गोद से प्राप्त होता है। अगर हमारे द्वारा पर्वतों को वृक्षविहीन कर इसी तरह नंगा किया जाता रहा तो शायद गंगा भी एक दिन नाले का रूप उसी तरह ले लेगी जिस तरह यमुना नदी दिल्ली में गर्मियों में नाले का रूप धारण कर लेती है।

मसूरी पर्वत श्रृंखला के साथ ही साथ गंभीरतम समस्या एवं भूरक्षण की समस्या आवृत्त नैनीताल शहर, नैनी झील एवं भीमताल झील, सप्तताल झील आदि झीलों के किनारे स्थित पर्वत श्रृंखला पर बसा है, अतः स्वाभाविक है कि लोग मकान बनाने के लिए पेड़ जंगल साफ करेंगे, हज़ारों टन मलबा नीचे गिरायेंगे और वह धीरे-धीरे गिर कर झील में ही जायेगा। वृक्षों की जड़ें चूंकि मिट्टी एवं पत्थरों को उसी प्रकार जकड़े रहती हैं जिस तरह लोहे की सरिया पिलर में कंक्रीट के साथ लगकर मज़बूती प्रदान करती है और जब इन पेड़ों को काटा जाता है तो उससे पेड़ ही नहीं कटते अपितु नीचे अवस्थित मिट्टी एवं पत्थरों के अंदर तक समाहित पेड़ की जड़ें सूखकर उस स्थान विशेष की पकड़ ढीली कर देती है जिससे अंदर पानी का रिसाव होकर उस स्थान विशेष में गर्भस्थ हो जाता है और उस स्थान विशेष पर भवन निर्माण या सड़क निर्माण होता है तो ऊपरी दबाव से जमीन नीचे धसकती है और कुछेक वर्षों में मकानों में दरार पैदा होकर मकान नीचे धसकने लगते हैं और प्रत्यक्षतः जानमाल का नुकसान होता है। इधर नैनीताल में नैनीताल भूस्खलन के कारण अनेक मकान क्षतिग्रस्त हुए वहीं नैनीताल में इतना अधिक मलबा जा गिरा कि झील के टूटने का खतरा पैदा हो गया।

हिमालय पर्वत श्रृंखला के उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में ही छेड़छाड़ नहीं है अपितु जम्मू कश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश में भी यह विनाशलीला प्रक्रिया जारी है। हिमाचल प्रदेश के विलासपुर जिले में स्थित नैना देवी का भूस्खलन इतना जबरदस्त था कि वहाँ नीचे से होकर बहने वाली व्यास नदी का पानी का प्रवाह ही रुक गया। यह पूर्णतया वृक्षविहीन क्षेत्र था, मिट्टी एवं पर्वत खंडों की पकड़ अत्यधिक कमजोर होने के कारण बरसात में पहाड़ का विशाल शिलाखंड लाखों टन मलबे के रास्ते में अवरोध बन छा गया। सन् 1978 में घटित इस घटना में आर्थिक क्षति के साथ साथ अनेक लोग अपनी जीवनलीला से हाथ धो बैठे। अगस्त 1998 में उत्तर प्रदेश में गढ़वाल एवं कुमायूँ क्षेत्र में भयंकर मूसलाधर मानसूनी वर्षा के कारण लगभग 450 जानें गईं, वहीं व्यापक जानमाल का नुकसान हुआ। यह नुकसान मुख्यतया उन्हीं स्थानों पर हुआ जहाँ भूकंप प्रभावित क्षेत्र एवं वृक्षविहीन वातावरण था। यदि इन क्षेत्रों में घने वन लगे होते तो शायद भूस्खलन भी न होता और न जानमाल की क्षति होती।

भूंकप द्वारा विशाल बाँधों के जल भराव क्षेत्र के वजन सृजित होने से जो क्षति पहुँचाई जाती है, उससे बाँधों की दीवालें फटकर विशाल मात्रा में जल निकासी करती हैं जिससे मृदाक्षरण की समस्या गंभीरतम हो जाती है। इस तरह की घटनाएँ बेलूकुची बांध भूस्खलन घटना 1970 में तथा किन्नौर में सन् 1975 में परासू बांध भूस्खलन घटनाओं के रूप में हो चुकी हैं। उत्तरकाशी भूस्खलन की घटना 1978 में हिमाचल प्रदेश स्थित सतलज नदी पर स्थित झाकरी बांध के भूस्खलन की घटना 1993 में तथा गढ़वाल क्षेत्र में गोविंदघाट बांध के भूस्खलन की घटना जून 1998 में बांध दुर्घटना के रूप में अत्यधिक विनाशक सिद्ध हो चुका है। टांगरी भूस्खलन, पातालगंगा भूस्खलन एवं हेलांग घाटी का भूस्खलन जो कि गढ़वाल हिमालय के अलखनन्दा घाटी में अवस्थित है, ने यह प्रमाणित कर दिया है कि अवैज्ञानिक सड़क, भवन, बाँध का निर्माण तथा वृक्षविहीन पर्वत रखने का दुष्परिणाम कितना भयंकरतम होता जा रहा है।

अक्टूबर सन् 1991 में उत्तरकाशी में जो विनाशकारी भूंकप आया उसमें लगभग 1200 से अधिक जानें गयीं, हज़ारों मकान क्षतिग्रस्त हुए एवं लाखों रुपये की आर्थिक क्षति उठानी पड़ी। अप्रत्यक्ष रूप में इस भूकंप द्वारा 800 गांवों के भवन क्षतिग्रस्त या प्रभावित हुए। सन् 1921 से

लेकर अब तक इस भूकंप के कारण 126 छोटे-बड़े भूस्खलन हो चुके हैं। उत्तरकाशी का अधिकांश क्षेत्र आज भूस्खलन की लपेट में है। एक तो हिमालय भूकंप क्षेत्र तथा ज्वालामुखीय संवेदनशील प्रक्षेत्र में आता है। दूसरी तरफ हिमालय बेल्ट ऐसी टेक्टानिक प्लेट पर अवस्थित है जो निरंतर खिसकती रहती है। इसके हल्के खिसकने मात्र से उत्तरकाशी जैसे भूकंप आ जाते हैं तो वही विशाल भूस्खलन प्रारंभ हो जाता है। पिथौरागढ़ स्थित मालपा गांव में विगत एवं कैलाश मानसरोवर जाने वाले तीर्थयात्री अत्यंत विशाल भूस्खलन के कारण ही तीस से अधिक लोग पलक झपकते मलबे में दब गये और कइयों का तो पता तक न चला। हिमालय क्षेत्र में अब इस तरह की घटनाएं आम हो चली हैं।

हिमालय पर्वत श्रृंखला को वस्तुतः हम विनाश की ओर ले जाने के लिए उत्तरदायी हैं तो इसे रोकने के उपाय भी हमीं को करने होंगे। वास्तव में आज सर्वप्रथम सड़कों का, भवनों का बाँधों का, व्यावसायिक भवनों, कारखानों, शक्ति केंद्रों एवं पर्यटन केंद्रों की स्थापना उन्हीं स्थापना उन्हीं स्थानों पर की जानी चाहिये जहाँ भूस्खलन की संभावना न हो, भूकंप आने की संभावना न हो, जीवित ज्लावामुखी न हो और न ही वृक्षविहीन वातावरण हो। इन सभी दृष्टियों को निर्माण पूर्व ही परखा जाना चाहिये। निर्माण संबंधी मशीनों के प्रयोग, उनके अनियंत्रित उपयोग से उत्पन्न नुकसान, न्यूनतम नुकसानवाले यंत्रों के प्रयोग, कम से कम वृक्ष वनस्पतियों को नष्ट करके निर्माण कार्य कराने वाली तथा भूकंपरोधी निर्माण सामग्री एवं भवन कला के उपयोग का प्रशिक्षण स्थानीय लोगों को देकर हिमालय स्थित संपूर्ण निर्माण कार्य हिमालय वासियों से ही कराया जाना चाहिये। नदी घाटी, पर्वत किनारे एवं सड़क मकान के किनारे विशाल स्तर पर स्थानीय उपयोगिता के वृक्षारोपण कर भूस्खलन को रोका जा सकता है।

स्थानीय जनता को सरकारी एवं सामाजिक स्तर पर वृक्षारोपण करने हेतु जागृत किया जाना चाहिये तथा इस हेतु प्रत्येक व्यक्ति पर सौ-सौ पेड़ लगाने पर ग्राम सभा की तरफ से दस पेड़ का मालिकाना हक दिया चाहिये ताकि लोग अपनी आवश्यकता के लिए अपने हिस्से के दस पेड़ का उपयोग कर सकें और दस पेड़ समाप्त होने से पहले पुनः सौ पेड़ लगाने की श्रृंखला पूरी करते चलें। यह योजना हिमालय क्षेत्र के लिए अत्यधिक वरदानी सिद्ध होगी, वहीं मैदानी क्षेत्रों में भी इस योजना की ग्रामसभा की भूमि एवं वन विभाग की भूमि में वृक्षारोपण प्रोत्साहन योजना हेतु लागू की जा सकती है। पेड़ों का अवैध कटान तथा जनता की रोज लकड़ी की आवश्यकता की समस्या का एक साथ निदान हो जावेगा और इसी के साथ पर्यावरण संरक्षण के प्रति युद्धस्तर पर जनभागिता भी प्रारंभ हो जायेगी। सरकार द्वारा हिमालयी पर्यावरण भूस्खलन के कारण निवारण, जल स्रोतों को बचाना, वृक्ष काटने से बचना या जलाऊ लकड़ी का ही उपयोग करने की पहचान आदि का विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। गाँवों में हिमालय क्षेत्र में अधिकांश महिला आधारित अर्थव्यवस्था है अतः इनके सामाजिक उत्थान हेतु प्रत्येक शुभकार्य में वृक्ष लगाने की योजना को भी अपनी अमली जामा पहनाना चाहिये। वन विभाग को अपने व्यवहार में शिष्टता तथा ग्रामीण जनता के साथ पूर्ण सहभागिता रखते हुए हिमालय-क्षेत्र में जितनी शीघ्रता से हो सके, लाखों वृक्ष लगवाने में विलंब नहीं करना चाहिये। स्थानीय आवश्यकतानुसार फलदार वृक्षों तथा उनसे उपजे फलों को प्रसंस्कारित कर धनोपार्जन करने हेतु हिमालय क्षेत्र में सहकारिता के आधार पर फल खाद्य प्रसंस्करण संस्थान खोले जाने चाहिये, इससे स्थानीय जनता को रोजगार मिलेगा, धन प्राप्ति होगी। हिमालय वृक्षाच्छादित तो होगा ही फलाच्छादित एवं धनाच्छादित भी हो जायेगा और जब करोड़ों वृक्ष पर्वत के सीने पर होंगे तो भूक्षरण भी रुक जायेगा। अगर इन उपायों पर ध्यान दिया जायेगा तो निश्चित ही हिमालय को क्षरित होने से हम समय रहते बचा लेंगे और हमारा सिरोभाल हिमगिरि सब प्रकार से सुरक्षित रहेगा तो हमारा देश समृद्धिशाली एवं गौरवशाली बनेगा। पर्यटन की अपार संभावनाएं बनेंगी एवं स्थानीय जनता का असंतोष एवं निर्धनता समूल नष्ट हो जायेगी। वर्षा एवं मानसून का अस्पष्ट चक्र भी सही हो जायेगा जिससे समय-समय पर चक्रवाती वर्षा एवं ओलावृष्टि से जनित प्राकृतिक आपदा से मुक्ति मिलेगी। देश हर प्रकार से खुशहाल रहेगा। ''वृक्ष एक खुशियाँ अनेक'' इस उक्ति को सर्वप्रथम हिमालय क्षेत्र में शीघ्रातिशीघ्र लागू किया जाना आज अति आवश्यक है।

पुस्तकालयाध्यक्ष

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, देहरादून, उत्तर प्रदेश
('नागरी पत्रिका' से साभार)

नीम से बना पहला भारतीय हर्बल गर्भ-निरोधक

डी० एन० भटनागर

नीम से गर्भ-निरोधक बनाने में भारतीय वैज्ञानिकों को एक उल्लेखनीय सफलता ऐसे समय में मिली है जब विदेशों में नीम जैसे उपयोगी देशी संसाधनों को पेटेंट करा कर हथियाने के प्रयास तेज़ी से चल रहे हैं। देश की बढ़ती आबादी को रोकने में कारगर रूप से सहायक होने के अलावा यह प्रौद्योगिकी उनके नापाक इरादों को भी विफल करने में मददगार होगी, ऐसी आशा की जा रही है। स्वदेशी संसाधनों से देश की समस्याओं को सुलझाने का यह एक प्रशंसनीय प्रयास है जिसका अन्य क्षेत्रों में भी अनुकरण किया जाना चाहिए।

स्त्रियों के लिये उपयोगी भारत का पहला हर्बल गर्भ-निरोधक भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों और देश के रक्षा वैज्ञानिकों के एक संयुक्त दल ने हाल ही में सफलतापूर्वक विकसित किया है। इसकी विशेषता यह है कि इसे नीम के तेल में से निकाला गया है। इसे बनाने की जानकारी नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कॉरपोरेशन ने हैदराबाद की एक फर्म को दी है जो व्यापारिक स्तर पर इसका उत्पादन करेगी।

आशा की जा रही है कि नया निरोधक अगले वर्ष के शुरू में बाज़ार में उपलब्ध हो जाएगा। वैज्ञानिकों को विश्वास है कि देशी स्रोत से प्राप्त होने के कारण इस गर्भ-निरोधक को बहुत कम मूल्य पर लोगों को सुलभ करा पाना संभव होगा।

नया निरोधक क्रीम या पेसरी के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इसे सुरक्षित और प्रभावी पाया गया है। भारत के ओषधीय महानियंत्रक ने चिकित्सीय परीक्षणों के लिए इसे मंजूरी दे दी है। अब वैज्ञानिक हैदराबाद के केयर अस्पताल और मैसूर के जे० एस० एस० आयुर्वेदिक कॉलेज में एक हज़ार महिलाओं पर इसका चिकित्सीय परीक्षण शुरू करने की तैयारी कर रहे हैं।

देश में व्यापक रूप से उगाए जाने वाले नीम के ओषधीय गुणों से आम तौर पर न केवल सभी भारतीय परिचित हैं बल्कि घरों में विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इसका उपयोग परम्परा से करते आए हैं। अपने घर के सामने उगे नीम की टहनी तोड़कर दातुन करने का अनुभव कोई बहुत पुरानी बात नहीं है। सदियों से ही नीम भारत की संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। इसीलिए वैज्ञानिक यह आशा कर रहे हैं कि नीम पर आधारित इस निरोधक को देश में व्यापक स्वीकृति मिलने में कोई अड़चन नहीं आएगी और उनका प्रयास सफल होगा।

वास्तव में इसकी खोज भी इसी कारण हो सकी कि नीम से वैज्ञानिकों की पुरानी जान पहचान थी। वैज्ञानिकों को नीम के तेल के कीटनाशक गुण का पहले ही पता था, उन्होंने ग्रामीणों को नीम के तेल का उपयोग एक प्रभावी कीटनाशी के रूप में करते देखा था। इसी आधार पर उन्होंने वीर्य को नष्ट करने के लिए इसका उपयोग करने की बात सोची। परीक्षणों में उन्होंने इसे ऐसा ही प्रभावी पाया भी।

प्राप्त परिणामों से उत्साहित होकर उन्होंने चूहों, खरगोश और बन्दरों पर इसका परीक्षण किया। इन परीक्षणों ने सिद्ध कर दिया कि नीम का तेल कीटनाशी तो है ही, एक प्रभावी गर्भ-निरोधक भी है। यह वीर्य में मौजूद शुक्राणुओं के बाहरी त्वचीय आवरण पर क्रिया करके उसे छिद्रिल बना देता है जिससे उसके भीतर का कोशिकीय द्रव बाहर निकल

जाता है और वह नष्ट हो जाता है। उन्होंने नीम उत्पादों को उपयोगकर्ता के लिए तो हानिरहित पाया ही, इसे उपयुक्त सफाई का ध्यान न रखने वाली महिलाओं को हो जाने वाले कैंडिडा रोग के विरुद्ध भी प्रभावी पाया।

इसके उपयोग में एक प्रमुख कठिनाई केवल यही थी कि इसे अधिक समय तक सुरक्षित रूप से भंडारित नहीं रखा जा सकता था, भंडारण से इसकी कार्यक्षमता घट जाती थी। कठिन प्रयासों के बाद इस समस्या का हल ढूँढ़ निकाला गया और नीम के तीन प्रभावी घटक अलग कर लिए गए। वैज्ञानिकों ने इन्हें प्राप्त करने की विधि सहित नीम उत्पादों के विकास के लिए पांच पेटेंट आवेदन दाखिल किए हैं।

भारतीय वैज्ञानिकों का यह कदम महत्वपूर्ण है क्योंकि विदेशों में नीम के उत्पादों पर एकाधिकार करने के लिए उन्हें पेटेंट कराने के प्रयास चल रहे हैं। यदि हमारे वैज्ञानिक इन्हें पहले पेटेंट नहीं कराते तो भारतीयों को इनका लाभ मिलना कठिन होगा।

नीम की उपयोगिता और भविष्य में इसकी मांग बढ़ने की बात को ध्यान में रखकर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अंतर्गत कार्य कर रहे हैदराबाद स्थित केन्द्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिक नीम की बढ़िया किस्म की पौध परखनली में तैयार करने की एक तकनीक पहले ही सफलतापूर्वक विकसित कर चुके हैं।

इस तकनीक की विशेषता यह है कि नीम की पत्ती के एक बारीक टुकड़े को परखनली में पनपा कर उससे जन्मी कोशिकाओं को अलग-अलग परखनलियों में उगाकर एक ही टुकड़े से सालभर तक पचास हज़ार से अधिक नीम की पौध तैयार की जा सकती है। इस विधि की विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इस प्रकार उगाए गए नीम के पौधों की पत्तियों और निबोरियों में एजाडिरेक्टिन यौगिक की मात्रा अन्य प्रकार से उगे नीम के पौधे में मिलने वाले एजाडिरेक्टिन की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। वास्तव में यही कड़ुआ यौगिक कीटनाशक तैयार करने के लिए उपयोगी होता है। नीम के इस प्रकार उगाए गए पौधे की व्यापारिक उपयोगिता अधिक होती है। इस तकनीकी सफलता के परिणास्वरूप कच्चे माल के रूप में नीम की उपलब्धता लगातार बनी रह सकेगी।

वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगों के आधार पर प्राप्त की गई जानकारी के अनुसार नीम की पत्तियों में पाया जाने वाला कीटनाशक 300 से अधिक कीटों की प्रजातियों को नियंत्रित करने में सक्षम है। यही नहीं, नीम से बनाए गए उत्पादों से फ़सलों के लिए हानिकारक सूत्रकृमियों की एक दर्जन से अधिक प्रजातियों और कुछ फफूंदों को भी नियंत्रित किया जा सकता है। केवल भारत में ही 110 से अधिक ऐसी कीट प्रजातियां पाई जाती हैं जिन्हें फैलने से रोकने में नीम के उत्पाद कारगर हैं। नीम मिट्टी को सुधारने और उसे उपजाऊ बनाने में भी उपयोगी है। नीम की खली से पशुओं के आहार बनाए गए हैं। नीम की पत्तियां बकरियों, भेड़ों, मुर्गियों और ऊटों को खिलाई जाती है। अपने कीटनाशी गुणों के कारण नीम का उपयोग अनेक प्रकार की दवाओं, साबुन, सौंदर्य प्रसाधनों और कृषि रसायनों में होता है।

इसके गुणों को देखते हुए आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, फिजी, मौरिशस, मध्य और दक्षिण अफ्रीका, कैरिबियाई द्वीप समूह, प्योर्टोरिको, वर्जिन द्वीप समूह और हाइती इत्यादि अनेक देशों में नीम के पेड़ लगाए जा रहे हैं। भारत से नीम के पदार्थों का निर्यात निरंतर बढ़ रहा है।

यही कारण है कि अन्य देशों में नए गर्भ-निरोधक के उपयोग की सम्भावनाओं के प्रति उत्साहित वैज्ञानिकों के विदेशों में भी इसे पेटेंट कराने के लिए आवेदन दाखिल किए हैं। इनमें चीन, अमेरिका और कुछ चुने हुए योरोपीय देश शामिल हैं। विदेशों में पेटेंट प्राप्त कर लेने के बाद इस प्रौद्योगिक विकास का लाभ निश्चित रूप से देश को मिल सकेगा। अफ्रीकी देशों में जहां भारत के ही समान जनसंख्या तेज़ी से बढ़ रही है, नया निरोधक उपयोगी सिद्ध होगा और इन देशों में इसे बड़ी संख्या में निर्यात किया जा सकेगा।

बी-2, वेलकम अपार्टमेंट, रोहिणी,
नई दिल्ली-110085

विज्ञान समाचार

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

(1) एक चमत्कारी जैव-उर्वरक की खोज

बेंगलूर से प्राप्त एक समाचार के अनुसार "टेरी" (TERI-टाटा एनर्जी रिसर्च इंस्टीट्यूट) ने एक ऐसे जैव-उर्वरक को तैयार करने में सफलता प्राप्त कर ली है, जिसके उपयोग से अनेक प्रकार के फल, फूल, सब्ज़ी, और वृक्षों की पैदावार को 30-50 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। सब्ज़ियों में आलू, प्याज; फूलों में गुलाब, ऐस्टर, मारीगोल्ड; वृक्षों में बलूल, सफेदा (यूकेलिप्टस), पॉपलर के अतिरिक्त जानवरों के लिए चारे वाली फ़सलों में यह जैव-उर्वरक प्रभावी पाया गया है।

वैज्ञानिकों ने यह आश्चर्यजनक उपलब्धि पेड़-पौधों की जड़ों पर उगने वाले कवकों (माइकोराइज़ी -Mycorrhizae) की सहायता से प्राप्त की। किन्तु यह खोज इतनी आसान नहीं थी। वैज्ञानिकों ने यह जैव-उर्वरक तैयार करने के लिए नई तकनीक विकसित करने में 8 वर्ष तक कड़ा परिश्रम किया।

ऐसी भूमियों में जहाँ फॉस्फोरस बहुत कम मात्रा में पाया जाता है, वहाँ पेड़-पौधों की जड़ों पर विशेष प्रकार के कवक उगाकर मिट्टी में फॉस्फोरस की मात्रा में 50 प्रतिशत तक की वृद्धि की जा सकती है। होता यह है कि ऐसा करने से आमतौर से जिन पौधों की जड़ें फॉस्फोरस का अवशोषण भूमि से करने में सक्षम होती हैं, माइकोराइज़ा के प्रयोग से भूमि से फॉस्फोरस शोषित करने में सक्षम हो जाती हैं।

किन्तु यहाँ एक बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इस तकनीक में सर्वाधिक आवश्यक है विशेष प्रकार के कवक का सही चुनाव।

इस संस्थान के वैज्ञानिकों का कहना है कि इस प्रकार के जैव-उर्वरक का निर्माण करने वाली विश्व में मात्र एक ही "कम्पनी" और है। आशा है भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा जैव-प्रौद्योगिकी की नयी विकसित तकनीक से निमित जैव-उर्वरक अगले साल तक बाज़ारों में बिकने के लिए उपलब्ध हो जायेगा और इसे बाज़ार में लायेगी कैडिला फार्मास्युटिकल लिमिटेड, क्योंकि अगले वर्ष तक प्रयोगशाला में इस जैव-उर्वरक का भली भाँति परीक्षण पूरा हो चुकेगा।

(2) जीनोपचार से बूढ़ी मस्तिष्क कोशिकाओं का जीर्णोद्धार

वाशिंगटन (अमेरिका) से प्राप्त समाचार के अनुसार बूढ़ों को जवान करने का अभिनव तरीका ढूँढ़ लिया गया है। इसे क्या कहें ? कमाल या चमत्कार ?

वैसे कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय (सैन डियेगो) के वैज्ञानिक मार्क एच. टुसुजिंस्की का कहना है कि अभी प्रयोग रीसस बंदरों पर किए गये हैं, किन्तु प्राप्त सफलता से ऐसा लगने लगा है कि इस प्रकार के परीक्षणों को मनुष्यों पर करने पर भी ऐसा ही अभूतपूर्व सफलता प्राप्त होगी।

डॉ० मार्क का निश्चित मत है कि मस्तिष्क के विषय में अब तक हम भ्रमवश ऐसा समझते रहे हैं कि 20 वर्ष की वय के बाद प्रतिदिन हमारी लगभग 10,000 मस्तिष्क कोशिकायें (न्यूरॉन) नष्ट हो जाती हैं, यह ग़लत है। ऐसा नहीं होता। फिर क्या होता है ? सच्चाई यह है कि मस्तिष्क के सक्रिय मुख्य भाग कॉर्टेक्स, जिससे हम चिंतन या सोच-विचार करते हैं, की मात्र थोड़ी सी ही कोशिकायें बढ़ती उम्र के साथ नष्ट होती हैं। इसके विपरीत मस्तिष्क के एक अन्य भाग बेसल फोरब्रेन की कोशिकायें नाटकीय ढंग से बुढ़ापे से प्रभावित होती हैं। टुसुजिंस्की का कहना है कि चिंतनशील कॉर्टेक्स की कोशिकायें आकार में सिकुड़ जाती हैं, क्योंकि बढ़ती वय में नियमन करने वाले रसायनों का बनना बंद हो जाता है और परिणामस्वरूप कोशिकायें सिकुड़ जाती हैं। रीसस बंदरों में 60 प्रतिशत कोशिकाओं में 10 प्रतिशत सिकुड़न आ जाती है। किन्तु इन कोशिकाओं की मृत्यु नहीं होती है। इन सिकुड़ी कोशिकाओं में तंत्रिका वृद्धि के लिए उत्तरदायी जीनों (Genes) का प्रवेश कराने से ये कोशिकायें अपनी पुरानी अवस्था में वापस लौट आती हैं और फिर से पूरी ओजस्विता प्राप्त कर लेती हैं।

(शेष पृष्ठ 29 पर)

पुस्तक समीक्षा/साहित्य परिचय

पुस्तक : **लोक प्राणि-विज्ञान**

लेखक : डॉ० सतीश कुमार शर्मा

प्रकाशक : हिमांशु पब्लिकेशंस

464 हिरण मगरी, सेक्टर II, उदयपुर-313002

वितरक : आर्य बुक सेण्टर, हॉस्पिटल रोड, उदयपुर-313001

पृष्ठ संख्या : 19 + 147

प्रथम संस्करण : 1998 मूल्य : 350 रुपये

डॉ० सतीश कुमार शर्मा की पुस्तक "लोक प्राणि विज्ञान" जब डॉ० दिनेश मणि जी ने मुझे समीक्षार्थ दी तो अचानक आज से लगभग 12-13 वर्षों पूर्व का वह दृश्य आंखों के सामने आ गया जब "विज्ञान" पत्रिका के सम्पादक की हैसियत से मैंने उन्हें 1986 का "डॉ० गोरख प्रसाद विज्ञान लेखन पुरस्कार" के प्रमाण-पत्र और माल्यार्पण द्वारा सम्मानित किया था। संभवतः उसी समय के आस पास उन्होंने हिन्दी विज्ञान लेखन की श्रीवृद्धि का बीड़ा उठाया था। किन्तु कम समय में ही उन्होंने जितनी अधिक प्रगति की है, वह निश्चित रूप से प्रशंसनीय है।

डॉ० शर्मा की यह पुस्तक मेरी अपनी जानकारी में संभवतः लोक प्राणि विज्ञान पर हिन्दी भाषा में लिखी गई पहली पुस्तक है। किन्तु इससे मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि इसके पूर्व 1995 में उनकी पुस्तक "ऑर्निथो-बॉटनी ऑफ इण्डियन वीवर बर्ड्स" प्रकाशित और प्रशंसित हो चुकी थी। इस पुस्तक की रचना से डॉ० शर्मा ने प्राकृतिक विज्ञान की नई शाखा—पक्षी वनस्पति विज्ञान—को जन्म दिया था।

समीक्ष्य पुस्तक के विषय में अपनी ओर से कुछ कहने के पूर्व मैं डॉ० शर्मा के ही शब्दों को उद्धृत करना चाहूँगा, जिनसे मैं पूरी तरह सहमत हूँ–

"जिस तरह नृ-वनस्पति विज्ञान (Ethnobotany) आदिवासियों एवं वनस्पतियों के सम्बन्ध का विषय है, उसी तरह नृ-प्राणि विज्ञान या लोक प्राणि-विज्ञान (Ethnoz-oolozy or Folk Zoology) भी आदिवासियों एवं प्राणियों एवं प्राणियों के सह-सम्बंध का विषय है। इन संबंधों पर यदि सुव्यवस्थित अध्ययन किया जाये तो विपुल संभावनाओं वाला नया क्षेत्र अध्येताओं हेतु खुल सकता है। इसी संभावना को ध्यान में रखकर राजस्थान के पूरे भू-प्रदेश तथा गुजरात व मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों के भील, भील मीणा, कथोडी, सहारिया, गरासिया, डामोर आदि जनजातियों का वन्य प्राणि परिप्रेक्ष्य में 1986 से 1996 तक अध्ययन किया गया, जिसे पुस्तकाकार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। ऐसे ही अध्ययन भिन्न-भिन्न आदिवासी समुदायों पर किए जायें तो विपुल जानकारियाँ इकट्ठी हो सकती हैं, जिनका उपयोग न केवल सस्ती टेक्नोलॉजी के रूप में मानवता की भलाई में किया जा सकेगा अपितु वन्य प्राणियों के संरक्षण, संवर्धन एवं प्रबंधन में भी नई दिशा मिल सकेगी। साथ ही धीरे-धीरे नष्ट हो रहे हमारे परम्परागत ज्ञान का संरक्षण भी हो सकेगा।"

पुस्तक कुल 12 अध्यायों—परिचय, वन्य प्राणियों से सुरक्षा, वन्य प्राणियों का दैनिक जीवन में उपयोग, वन्य प्राणियों से कृषि सुरक्षा, शिकार विधियाँ, कृन्तक नियंत्रण, मत्स्य आखेट विधियाँ, वन्य प्राणि एवं लोक चिकित्सा, वन्य प्राणि एवं लोक साहित्य, मुर्गी पालन, पशु पालन एवं वन्य प्राणि प्रबंध एवं आदिवासी— में विभक्त है। इनके अतिरिक्त

प्रारंभ में सारणियों की सूची (16), चित्रों की सूची (45) और पुस्तक के अंत में हिन्दी में 16 और अंग्रेजी में 33 संदर्भ, प्राणियों की सूची (वैज्ञानिक और स्थानीय नामों सहित), वनस्पतियों की सूची (वैज्ञानिक नाम व कुल सहित), सामान्य अनुक्रमणिका, भौगोलिक अनुक्रमणिका और लेखक अनुक्रमिका दी गई है। इससे पुस्तक की उपादेयता बढ़ गई है।

पुस्तक की भाषा सरल है । शैली को रोचक बनाने के प्रयास साफ दिखाई देता है। चित्र विषय को समझने में सहायक हैं। रेखाचित्र तो स्पष्ट हैं किंतु कुछेक छाया चित्र साफ नहीं उभरे हैं– उदाहरण के लिए पृष्ठ 24 पर चित्र 3.3 (गुब्रेला), पृष्ठ 80 पर चित्र 7.3 मछली पकड़ना। छपाई अच्छी है। काग़ज़ बढ़िया है, किन्तु प्रूफ देखने में अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता थी। छापे की भूलें खटकती हैं यथा पृष्ठ viii पर नीचे से छठवीं पंक्ति में **एसी तरह** की जगह **उसी तरह** होना चाहिए। पृष्ठ 24 पर चित्र 3.3 (अंतिम पंक्ति) **जानने** की जगह **जाने** होना चाहिए। इस प्रकार की और भी गलतियाँ हैं। आशा है, अगले संस्करण में मुद्रण की त्रुटियों का परिहार हो जायेगा।

कुल मिलाकर आकर्षक मुखपृष्ठ वाली यह पुस्तक अपने कलेवर में ''गागर में सागर'' की युक्ति चरितार्थ करती है। लेखक इस ''शोधग्रंथ'' के लिए विशेष रूप से साधुवाद के पात्र हैं। इतनी विविध सामग्री को एकत्र करना और उसे पुस्तक का रूप देना दुरूह कार्य है, जिसके लिए कठिन परिश्रम और लगन की आवश्यकता होती है। प्रकाशन से जुड़े अन्य लोग भी बधाई के पात्र हैं। पर पुस्तक का मूल्य कुछ अधिक लगता है। अच्छा हो यदि प्रकाशक इसका सस्ता संस्करण निकालें ताकि पुस्तक आम पाठकों तक पहुँच सके।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

पूर्व संपादक, ''विज्ञान''

विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद-211002 (उ० प्र०)

पुस्तक : नाभिकीय ऊर्जा

लेखक : डॉ० दुर्गा दत्त ओझा

प्रकाशक : विद्या विहार, 1685 कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

संस्करण : प्रथम, 1999, मूल्य : 150.00 रुपये

आई एस बी एन : 81-85828-81-4, पृष्ठ सं० : 160, सचित्र

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास के साथ आज मनुष्य नित नई ऊँचाइयों को पार करता प्रगति के पथ पर तीव्रगति से अग्रसर हो रहा है। इसी के साथ मानव के जीवन में ऊर्जा का महत्व तथा उपयोग भी बढ़ रहा है। वर्तमान युग में विश्व की ऊर्जा-आवश्यकताओं की पूर्ति में नाभिकीय ऊर्जा की महत्वपूर्ण भूमिका है। अब तक ज्ञात वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार पृथ्वी पर ऊर्जा के सबसे बड़े स्रोत सूर्य के अन्दर भी नाभिकीय संलयन एवं विखण्डन की प्रक्रिया सतत् चल रही है।

नाभिकीय ऊर्जा का प्रयोग मानव ने सृजन एवं संहार दोनों के ही लिये किया है। एक ओर विद्युत्-उत्पादन, चिकित्सा, कृषि, उद्योग विश्लेषण आदि में इसके सदुपयोग से मानवता का कल्याण हुआ है तो दूसरी ओर हिरोशिमा और नागासाकी जैसे नरसंहारों के भी उदाहरण मिलते हैं, जिनके दुष्प्रभावों से आधी सदी बीत जाने के उपरान्त भी वहाँ के निवासी पीड़ित हैं। लोकप्रिय विज्ञान लेखक डॉ० ओझा ने प्रस्तुत पुस्तक में नाभिकीय ऊर्जा के प्रायः सभी पक्षों को समेटने का प्रयास किया है। वे हैं– नाभिक की संरचना, नाभिकीय अभिक्रियाएँ, नाभिकीय रिएक्टर, परमाणु ऊर्जा के विभिन्न उपयोग आदि। इन पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। भारत के परमाणु कार्यक्रम का विशेष उल्लेख, जिसमें भारत द्वारा पोखरण में किये गये प्रथम एवं द्वितीय परमाणु विस्फोटों तथा परमाणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण उपयोग द्वारा प्राप्त की गई उपलब्धियों का वर्णन है। चित्रों, रेखाचित्रों, तालिकाओं एवं आँकड़ों के माध्यम से विषयवस्तु को अधिकाधिक रोचक एवं ग्राह्य बनाया गया है। पुस्तक के अन्त में नाभिकीय ऊर्जा से सम्बंधित प्रमुख तकनीकी शब्दों की पारिभाषिक शब्दावली भी दी गई है। सरल एवं सुबोध भाषा में लिखी यह पुस्तक संग्रहणीय एवं पठनीय है।

पुस्तक के आकर्षक कलेवर, उत्तम संयोजन एवं परिमार्जित छपाई के लिये लेखक तथा प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

देवव्रत द्विवेदी

शोध सहायक, विज्ञान परिषद् प्रयाग

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

(1) जैव-प्रौद्योगिकी पर विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा 4 एवं 5 दिसम्बर को संगोष्ठी का आयोजन

जैव-प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार के आर्थिक सहयोग से आगामी 4 एवं 5 दिसम्बर 1999 को विज्ञान परिषद् "इक्कीसवीं सदी में जैव-प्रौद्योगिकी के नये आयाम" विषय पर एक दो-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन करने जा रहा है।

इस संगोष्ठी का उद्घाटन जैव-प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली की सचिव डॉ० मंजू शर्मा के कर कमलों द्वारा 4 दिसम्बर को पूर्वान्ह 9.00 बजे होगा। उद्घाटन-सत्र में ही डॉ० वी० पी० शर्मा (नई दिल्ली) का व्याख्यान, और इसके बाद शोध-निबंधों का प्रस्तुतिकरण, द्वितीय सत्र में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के डॉ० बी० डी० सिंह का व्याख्यान और बाद में शोध-निबंधों का प्रस्तुतिकरण।

5 दिसम्बर को तृतीय सत्र में इफको, लखनऊ के डॉ० एस० के० ओझा के व्याख्यान के पश्चात् शोध-निबंधों का प्रस्तुतिकरण। चतुर्थ सत्र में इलाहाबाद के प्रो० उमाशंकर श्रीवास्तव के व्याख्यान के बाद शोध-निबंधों का प्रस्तुतिकरण और पाँचवें सत्र में मेरठ (अब हरियाणा) के डॉ० पी० के० गुप्ता के व्याख्यान के बाद शोध-निबंधों का प्रस्तुतिकरण और समापन समारोह।

संगोष्ठी के विषय हैं-

- जैव-प्रौद्योगिकी की उपलब्धियाँ एवं समस्यायें
- मलेरिया एवं अन्य संक्रामक रोगों में जैव-प्रौद्योगिकी की भूमिका
- जैव-प्रौद्योगिकी और कृषि
- जैव-प्रौद्योगिकी एवं उद्योग
- आनुवंशिक अभियांत्रिकी
- पादप कोशिका एवं ऊतक संवर्धन
- आनुवंशिक रोगों की पहचान में जैव-प्रौद्योगिकी
- आण्विक जैविकी : जीन क्लोनिंग
- जैव-उर्वरक, जैवीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं जैव-प्रौद्योगिकी
- जैव-प्रौद्योगिकी एवं पेटेंट्स
- जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा अपशिष्टों का निवारण
- जैव-प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण
- जैव-प्रौद्योगिकी पर कोई अन्य विषय

इस संगोष्ठी में देश के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों और विज्ञान लेखकों के भाग लेने की सूचना प्राप्त हुयी है। संगोष्ठी में शोध निबंध वाचन करने वाले सभी विद्वानों से निवेदन है कि यदि अपने शोध-निबंध की एक प्रति (जो छपकर 3-4 पृष्ठों में आ जाये) संगोष्ठी की तिथियों के पूर्व ही हमें भेज दें तो उन्हें व्यवस्थित करके एक साथ प्रकाशित करने में सुविधा होगी।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि सदैव की भाँति हमें आपका सहयोग प्राप्त होगा और आप इस संगोष्ठी में भाग लेकर, अपने विचारों को शोध-निबंधों के माध्यम से व्यक्त करके संगोष्ठी को सफल बनायेंगे।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संयोजक, संगोष्ठी

(2) हिन्दी दिवस पर व्याख्यान सम्पन्न

14 सितम्बर को "हिन्दी दिवस" के अवसर पर 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' द्वारा आयोजित "भारतीय प्रेस : समस्यायें एवं चुनौतियाँ" विषय पर वरिष्ठ पत्रकार डॉ० भुवनेश्वर सिंह गहलौत ने सूचनाप्रद, विचारोत्तेजक और ऑकड़ों से सुसज्जित व्याख्यान दिया। सभा की अध्यक्षता प्रो० चन्द्रिका प्रसाद जी और संचालन "विज्ञान" पत्रिका के पूर्व संपादक श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने किया। कार्यक्रम का प्रारम्भ डॉ० प्रभाकर द्विवेदी जी द्वारा राष्ट्रभाषा वंदना से हुआ। तत्पश्चात् श्री देवव्रत द्विवेदी ने मुख्य वक्ता का स्वागत माल्यार्पण द्वारा किया।

डॉ० गहलौत ने बताया कि समाचार-पत्र का प्रकाशन आरम्भ करना आसाना नहीं है और अगर कोई किसी तरह इसमें कामयाब हो गया तो उसे जारी रख पाना और भी मुश्किल काम है। विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश होने के बाद भी पत्रकारों को सूचना पाने का अधिकार नहीं है जबकि सूचना पाने का अधिकार मिलने से गलत खबरें प्रकाशित होने सहित अनेक परेशानियाँ दूर हो जाती हैं। भारतीय प्रेस के समक्ष एक चुनौती विदेशी मीडिया की भी है। "हिन्दी दिवस" के अवसर पर हिन्दी-पत्रकारिता का उल्लेख करना भी उन्होंने आवश्यक बताया। उन्होंने कहा कि देश के सात-आठ समाचार पत्रों को छोड़कर शेष की स्थिति अच्छी नहीं है। पत्रकारिता के क्षेत्र में विवशता का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि अरुण शौरी का यह कथन अक्षरशः सत्य है– "विरोध करने पर हम न केवल बेरोजगार हो जाते हैं, अपितु रोजगार के अयोग्य बना दिए जाते हैं।"

इस अवसर पर अन्य उपस्थित विद्वानों ने भी विचार व्यक्त किये।

विज्ञान लेखक श्री शुकदेव प्रसाद ने कहा कि हिन्दी का इतिहास आज़ादी के इतिहास से जुड़ा हुआ है। हिन्दी भाषा क संक्रमणकाल समाप्त हो चुका है। लेखक में विशेषज्ञता की जरूरत है, एक लेखक को अधिक विषयों पर लिखने से बचना चाहिए।

रसायन विज्ञान विभाग के आचार्य डॉ० ईश्वर चन्द्र शुक्ल ने अपने विदेश भ्रमण के अनेक संस्मरणों को सुनाते हुए बताया कि वहाँ भारतीय लोग हिन्दी में बात करना पसंद करते हैं तथा भारतीयता को जीवन्त रखे हुए हैं, जबकि भारत में लोग हिन्दी में बोलने में संकोच करते हैं अतएव हमें अपनी मानसिकता को परिवर्तित करना होगा।

'विज्ञान' के सम्पादक डॉ० दिनेश मणि ने व्यंग्य चित्रों का उदाहरण देते हुए कहा कि हमें अंग्रेज़ी मिश्रित हिन्दी बोलने से बचना चाहिए और भाषायी गुलामी की मानसिकता को छोड़कर आत्मावलोकन करते हुये हिन्दी लेखन को उचित दिशा देनी होगी।

डॉ० प्रभाकर द्विवेदी, पूर्व विभागाध्यक्ष (कुलभास्कर महाविद्यालय) ने कहा कि भाषा सरल, सुबोध व एकरूपता वाली होनी चाहिए। हिन्दी का प्रयोग सदैव से विचारों के आदान-प्रदान में होता रहा है। हिन्दी भाषियों को हीन भावना से ग्रसित नहीं होना चाहिए, बल्कि गौरवान्वित होना चाहिए।

विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री एवं वरिष्ठ विज्ञान लेखक डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने कहा कि हम हिन्दी दिवस को मात्र पारम्परिक रूप से मनाने के लिए एकत्र न होकर कुछ सीखने के लिए एकत्र हुए हैं। उन्होंने कहा कि पारिभाषिक शब्दावली बनने से पहले भी हिन्दी विज्ञान की भाषा थी और आज भी है। अनुवाद करना गलत नहीं है तथा जहाँ भी अच्छी वस्तु हो उसे लेना चाहिए। उन्होंने कहा कि इक्कीसवीं सदी हमारी सदी है, विज्ञान परिषद् की सदी है और हिन्दी विज्ञान लेखकों की सदी है।

गोष्ठी में अन्य भाग लेने वाले लोगों में मुख्य थे - श्री धीरेन्द्र मोहन श्रीवास्तव, डॉ० राजकुमार दुबे, देवव्रत द्विवेदी, डॉ० सुनील कुमार पांडेय, नरेन्द्र प्रताप सिंह, व सन्तोष कुमार सिंह।

गोष्ठी के अध्यक्ष प्रो० चन्द्रिका प्रसाद ने वक्ताओं को अपनी तथा परिषद् की ओर से, नपे-तुले सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करने के लिए, धन्यवाद दिया। उन्होंने हिन्दी के मार्ग में आने वाली अनेक व्यावहारिक कठिनाइयों का भी ज़िक्र किया और संतोष व्यक्त किया कि आज वक्ताओं ने अनेक विचारणीय सुझाव प्रस्तुत किए हैं।

अन्त में श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा कि विज्ञान परिषद् तो प्रतिदिन 1913 से हिन्दी की सेवा करता आ रहा है।

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय
संयुक्त मंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

प्रो० नन्दलाल सिंह स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

परिषद् की काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शाखा की नए सत्र की गतिविधि, परिषद् द्वारा प्रायोजित "प्रो० नन्दलाल सिंह स्मृति व्याख्यान" के साथ आरंभ हुई जिसे 2 अगस्त सोमवार 1999 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के "प्रो० एस० एन० बोस कक्ष" में आयोजित किया गया। इस वर्ष व्याख्यान के लिए उत्तर-प्रदेश विधि-विज्ञान प्रयोगशाला के निदेशक डॉ० आर० बी० सिंह को आमंत्रित किया गया था जो इस विश्वविद्यालय के भौतिकी-स्पेक्ट्रा-स्कोपी विभाग के प्राचीन छात्र तथा प्रो० नन्दलाल सिंह के शिष्य रहे हैं। डॉ० आर० बी० सिंह ने "विधि-विज्ञान" को रोचक ढंग से परिभाषित किया और बताया कि अंग्रेजी में "फोरेन्ज़िक साइन्स" के नाम से जाना जाने वाला यह विज्ञान वास्तव में अपराधों की खोजबीन के संदर्भ में न्यायालयी प्रक्रिया को साक्ष्य जुटाने में सहायता देने वाला विज्ञान है अतः इसे "विधि-विज्ञान" न कह कर "न्यायालयीय विज्ञान" कहना ही उचित है। डॉ० सिंह ने इस विज्ञान के विभिन्न तकनीकों और क्षेत्रों की जानकारी दी तथा इसके विकास-क्रम के विभिन्न बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हुए अपराधों के विभिन्न क्षेत्रों में न्यायिक प्रक्रिया को सहयोग देने के लिए विज्ञान की भूमिका तथा उसकी सीमाओं की चर्चा की। इस आयोजन में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा विशेषतः विज्ञान संकाय के अनेक अध्यापकों एवं छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। कार्य-क्रम की अध्यक्षता लब्धप्रतिष्ठ भौतिकीविद् एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय कार्यकारिणी समिति के सदस्य प्रो० देवेन्द्र कुमार राय ने की। आरंभ में विज्ञान-संकाय प्रमुख प्रो० सूर्यनारायण ठाकुर ने व्याख्याता का स्वागत किया, 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के प्रधान-मंत्री प्रो० शिवगोपाल मिश्र ने परिषद् के कार्यक्रमों का विवरण दिया और प्रो० देवेन्द्र कुमार राय ने व्याख्याता का परिचय दिया। शाखा परिषद् के अध्यक्ष प्रो० बी० आर० दास गुप्त ने कार्यक्रम के अंत में व्याख्याता तथा उपस्थित लोगों को धन्यवाद दिया। कार्यक्रम का संचालन शाखा परिषद् के संयोजक डॉ० श्रवण कुमार तिवारी ने किया।

डॉ० श्रवण कुमार तिवारी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221005

(पृष्ठ 24 का शेषांश)

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑव एजिंग के डॉ० ब्रैडले का कहना है कि इस खोज से एक बात स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती है कि बुढ़ापे के बावज़ूद सिकुड़ी कोशिकाओं में पुनः ओज वापस आ सकता है। किन्तु इसी के साथ डॉ० ब्रैडले चेतावनी भी देते हैं कि मनुष्यों में इस प्रकार के प्रयोग करने के पहले इस बात का अच्छी तरह से परीक्षण हो जाना आवश्यक है कि जीनोपचार कितनी अवधि के लिए प्रभावी होता है।

वैज्ञानिकों ने जिन 8 रीसस बंदरों पर प्रयोग किए उनकी औसत आयु 23 वर्ष थी। रीसस बदरों की यह आयु मानवों की 60-70 वर्ष के बराबर होगी। प्रयोग में प्रत्येक बंदर की त्वचा से कोशिकायें ली गईं। इनमें शोध करने वाले वैज्ञानिकों ने मनुष्यों के नये ग्रोथ फैक्टर (NGF Gene) प्रवेश कराने के बाद 8 में 4 बंदरों के मस्तिष्क में इन विशेष प्रकार से परिवर्तित कोशिकाओं को प्रविष्ट किया। परिणाम चौंकाने वाला प्राप्त हुआ। बूढ़ी कोशिकायें फिर से जवान हो उठीं।

इस तथ्य में तनिक भी संदेह नहीं कि जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा प्रदत्त जीनी किमियागिरी (जेनेटिक इंजीनियरिंग) की इस नयी तकनीक के अगली शताब्दी में दूरगामी परिणाम होंगे, जो निश्चित रूप से मानवता के हित में होंगे। बुढ़ापे में स्मरणशक्ति क्षीण न हो और हमारा मस्तिष्क ठीक-ठाक काम करता रहे, इससे बढ़कर नियामत और क्या हो सकता है ?

पूर्व संपादक, "विज्ञान"
विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग,
इलाहाबाद-211002

जैव प्रौद्योगिकी के पारिभाषिक शब्द

संकलित

हाल ही के वर्षों में विज्ञान के क्षेत्र में जो क्रान्ति हुई है उसमें जैव प्रौद्योगिकी का बहुत योगदान है– विशेषतया पशु-क्लोनिंग तथा टर्मिनेटर जीव ने जनसामान्य तक को आन्दोलित किया है। वैज्ञानिक पत्रिकाओं तथा साप्ताहिक पत्रों में लगातार ऐसे निबन्ध एवं समाचार प्रकाशित हो रहे हैं जिनमें प्रयुक्त शब्दों से परिचित होना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। इसी उद्देश्य से 'विज्ञान' में जैव प्रौद्योगिकी के कुछ पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है। आशा है पाठकवृन्द इससे लाभान्वित हो सकेगा।

अंग कल्चर (Organ culture) : अंगों या उनके अंशों को इस प्रकार **पात्रे** (in vitro) कल्चर करना कि वे **जीवे** (in vivo) अंगों के समान बने रहें अंग कल्चर कहलाता है।

अंग कल्चर के कुछ विशेष गुण बतलाये गये हैं। (1) ऊतक अपने प्राकृतिक शरीरक्रियात्मक लक्षणों को बनाये रखते हैं (2) गर्भ ऊतकों में संरचना विकास ठीक जीवे जैसा होता है (3) एपीथिलियम युक्त ऊतकों की नई वृद्धि में एपीथीलियम ठीक जीवे जैसी होती है और (4) ऊतकों की संरचना में परिवर्तन नहीं होता।

सम्पत्ति अंग कल्चर की अनेक विधियाँ प्रचलित है।

अंग कल्चरों से सबसे बड़ा लाभ यह है कि इन्हें संपूर्ण जन्तुओं के स्थान पर काम में लाया जा सकता है किन्तु अंग कल्चर केवल कुछ माहों तक ही रखे जा सकते हैं। दीर्घ अवधि के लिये अंगों का जीवे प्रतिरोपित करना होता है।

रोगियों में प्रतिरोपण के लिए कृत्रिम अंगों का उत्पादन सबसे आकर्षक अनुप्रयोग है।

आण्विक चिन्हक (Molecular markers) : जो अणु (डी. एन. ए. खण्ड/क्रम) क्रोमोसोम चित्रण में चिन्हक जीन की तरह उपयोग किये जायँ। प्रारम्भ में आइसोएंजाइमों का प्रयोग किया जाता था किन्तु अब डी एन ए खण्ड होते हैं।

इंटरफेरान (Interferon) : वाइरससंक्रमित कोशिकाओं द्वारा उत्पादित वे प्रोटीन जो अन्य स्वस्थ कोशिकाओं को वाइरसों से सुरक्षा प्रदान करते हैं। इनकी खोज 1957 में दो वैज्ञानिकों-वाइसैक्ट या लिंडेनमान द्वारा की गई।

इम्यूरमेंट कल्चर (Immurement culture) : कोशिकाओं को किसी पारगम्य कोष्ठ में परिरुद्ध करते हैं और पोषपदार्थ इस कोष्ठ से बाहर रहता है किन्तु पारगम्य झिल्ली से कोष्ठ में विसरित होता रहता है।

उपकल्चर (Subculture) : किसी कल्चर में से ऊतक के एक भाग या कोशिकाओं के एक समूह को विलग करके नए पोषपदार्थ पर कल्चर करने को उपकल्चर कहते हैं।

ऊतक इंजीनियरी (Tissue engineering) : कृत्रिम अंगों का उत्पादन ऊतक इंजीनियरी का विषय है। इसके कई उद्देश्य हो सकते हैं– रोगियों में विभिन्न अंगों के प्रतिरोपण के लिए ऊतक उत्पादन। कृत्रिम त्वचा का अल्सर के रोगियों, आग से जले रोगियों में प्रतिरोपण सामान्य घटना है।

ऊतक कल्चर (Tissue culture) : उपयुक्त पोषपदार्थ में सम्पूर्ण अंगों (organs), ऊतक खंडों तथा परीक्षित कोशिकाओं को संवर्धित करना।

कायिका कोशिका संगलन (Somatic cell fision) : कायिक कोशिकाओं के संगलन से संकर कोशिकाएँ प्राप्त होती हैं।

सामान्य: मानव रेशा कोशिकाओं या श्वेत कोशिकाओं को मूषक सतत कोशिका लाइनों से संगलित करते हैं। कोशिका संगलन के लिए पराबैंगनी किरणित सेन्डेई वाइरस या पाली एथिलीन ग्लाइकाल का उपयोग करते हैं। दो कोशिकाओं के संगलन से बनी संकर कोशिका में प्रारम्भ में दो केन्द्रक रहते हैं जो बाद में संगलित हो जाते हैं। इस तरह से संकर कोशिकाओं का उत्पादन **कायिक कोशिका संकरण** (hydridization) कहलाता है।

कोशिका कल्चर (Cell culture) : ये दो प्रकार के हो सकते हैं (1) वे जिनमें केवल एक प्रकार की कोशिकाएँ हों। (2) जिनमें तीन प्रकार की कोशिकाएँ रहती हैं– स्तंभ कोशिकाएँ, पूर्ववर्ती कोशिकाएँ तथा विभेदित कोशिकाएँ।

वैसे कोशिका कल्चर के दो रूप मान्य हैं– (1) एकल परत तथा (2) निलम्बन। एकल परत में कोशिकाएँ कल्चर पात्र की सतह पर एक कोशिका मोटी परत के रूप में वर्धित होती हैं। निलम्बन कल्चरों में कोशिकाएँ द्रव ठोस पदार्थ में लटकी रहती हैं।

कोशिका लाइनें (Cells lines) : प्राथमिक कोशिका कल्चरों के उपकल्चर से प्राप्त कल्चर कोशिका लाइन कहलाते हैं। सीमित आयु (कई उपकल्चरों तक) वाली कोशिका लाइनें **परिमित** (finite) कहलाती हैं और सामान्य ऊतकों से प्राप्त होती हैं। सतत कोशिका लाइनें (continuous) वे हैं जो हमेशा जीवित रह सकती हैं। प्राय: ऐसी लाइनें अर्बुदी ऊतकों या सामान्य ऊतकों के उत्परिवर्तन से प्राप्त होती हैं।

प्राथमिक कल्चरों से प्राप्त सभी कोशिका लाइनों में 8-10 उपकल्चरों तक (12 सप्ताह कल्चर अवधि तक) वृद्धि होती है। इसके बाद या तो वे मर जाती हैं या उनसे सतत लाइनें प्राप्त होती हैं।

सतत लाइनों की उत्पत्ति को **पात्रे रूपान्तरण** कहा जाता है। पात्रे रूपान्तरण स्वत: या रसायनों या वाइरसों द्वारा प्रेरित होता है।

कृत्रिम त्वचा (Artificial skin) : पात्रे कल्चरों में उत्पन्न की गई त्वचा कृत्रिम त्वचा कहलाती है।

सुधरी विधियों से लगभग सम्पूर्ण त्वचा (बाह्य त्वचा तथा चर्म) का पात्रे उत्पादन किया जा सकता है। इसे **जीवित त्वचा तुल्य** कहते हैं।

कृत्रिम त्वचा के उत्पादन हेतु नवजात शिशुओं के लिंग की अग्र त्वचा का उपयोग किया जाता है।

कृत्रिम त्वचा के प्रतिरोपण के 5 वर्ष बाद सभी अवयव पुनरुत्पादित हो जाते हैं।

क्रियाधार (Substrate) : कल्चर पात्र की सतह जिससे कोशिकाएँ संलग्न रहती हैं क्रियाधार कहलाती है।

काँच, प्लास्टिक या धातु विभिन्न क्रियाधार हैं। स्लाइडों, परखनलियों तथा फ्लास्कों के रूप में काँच के क्रियाधार दीर्घकाल से प्रयुक्त हो रहे हैं। प्लास्टिक पात्र भी स्वच्छ एवं विभाजित दशा में उपलब्ध होते हैं किन्तु इनका प्रयोग केवल एक बार हो सकता है। धातुओं में निष्कलंक इस्पात तथा टाइटेनियम मुख्य हैं।

काँच तथा धातु सतहें प्राकृतिक रूप से ऋणावेशित होती हैं। प्लास्टिक को उपचारित करके ऋणावेशित बनाया जा सकता है।

जिनोम चित्रण (Genome map) : जिनोम के सभी क्रोमोसोमों का संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक संगठन।

सम्प्रति दो प्रकार के क्रोमोसोम चित्र उपलब्ध हैं– आनुवंशिक चित्र तथा भौतिक चित्र।

निलम्बन कल्चर (Suspension culture) : ये कई प्रकार के होते हैं : बैच कल्चर, भरित बैच कल्चर, पर्फ्यूजन कल्चर, अर्ध सतत प्रवास कल्चर तथा सतत प्रवाह कल्चर।

पोषपदार्थ की निरन्तर आपूर्ति हो रही है कि नहीं और वह किस प्रकार दी जा रही है इसी के अनुसार ये विभेद हैं।

(क्रमशः)

सम्पादकीय

कभी-कभी देखने-समझने के ढंग इस प्रकार बदलते हैं कि मनुष्य उन्हें आसानी से स्वीकार नहीं करता क्योंकि वह स्वभावतः परम्परावादी है, चिन्तन-शैली में वैसे परिवर्तन या विकास विस्तार होता रहता है किन्तु यह इतनी धीमी गति से और अनजाने में होता है कि लोगों को प्रायः पता भी नहीं चलता।

निश्चय ही संसार की तमाम प्रयोगशालाओं और वेधशालाओं में अनेक वैज्ञानिक विचारों एवं सिद्धान्तों को खोजा व परखा गया और वे प्रचार माध्यमों के द्वारा जनसाधारण तक पहुँचे। इसे एक विडम्बना ही कहा जाएगा कि जनसाधारण के लिए आज विज्ञान का अर्थ मात्र 'तकनीक' रह गया है, क्योंकि इसके द्वारा उपलब्ध सुख-सुविधाएँ लोगों को नजर आती हैं और प्रभावित करती हैं, जबकि शुद्ध विज्ञान के मानसिक उत्पाद लोगों के मस्तिष्क में चुपचाप सचेत या अवचेतन रूप से प्रवेश करते हैं।

वास्तव में मनुष्य एक साथ दो जगतों में रहता है। एक बाहरी वस्तुपरक जगत है जो ठोस वस्तुओं और व्यक्तियों की दुनियां है। और दूसरा उसकी मान्यताओं और भावनाओं का निजी आत्मपरक जगत है। यदि इन दोनों में सामंजस्य न हो तो वह परेशान रहता है। अतः मनुष्य इस असामंजस्य को दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। ये प्रयत्न मोटे तौर पर दो प्रकार के होते हैं। पहला तो यह कि बाहरी जगत को अपने भीतरी जगत के अनुरूप बदल लो। यह काम विज्ञान करता है। या फिर, अपने भीतरी जगत को बाहरी जगत के अनुरूप बना लो। यह काम धर्म करता है, कला करती है।

प्रायः प्रत्येक आविष्कार मनुष्य की किसी क्षमता को बढ़ा देता है और इस बढ़ी हुई क्षमता का मानव सदुपयोग करता है या दुरुपयोग, यह तो उसी पर निर्भर करेगा। हमारे पास हर तरह के अनुभव एवं उदाहरण हैं। 'परमाणु-विखण्डन' की खोज की ही तरह 'क्लोन' सम्बन्धी प्रयोग भविष्य के प्रति आशाएं और आशंकाएं दोनों जगाते हैं।

कोई भी वैज्ञानिक विचार, सिद्धान्त या उत्पाद सर्वप्रथम वैज्ञानिक या तकनीशियन द्वारा प्रयोगशाला में शोध किया जाता है। तत्पश्चात् विज्ञान लेखकों/प्रचारकों द्वारा इनका लोकप्रियकरण किया जाता है। वैज्ञानिक भी मनुष्य है। वैज्ञानिक खोजों व सिद्धान्तों के प्रति निर्णय में पूर्वाग्रहों का दखल संभव है। यहाँ विज्ञान के लोकप्रियकरण में संलग्न लेखकों/प्रचारकों की अहम् भूमिका है क्योंकि वे न सिर्फ नई खोजों व आविष्कारों को आसान व समझने योग्य रूप में प्रस्तुत करते हैं बल्कि उसे सही परिप्रेक्ष्य में भी रखते है ताकि जन साधारण द्वारा उनका गलत अर्थ न लगाया जाए।

निस्सन्देह, समाज की निरंतर मांगों के दबाव से विज्ञान की विशुद्धता को गंभीर क्षति हुई है। यह स्थिति विज्ञान और समाज दोनों के लिए खतरनाक है। यदि समाज को नये वैज्ञानिक युग में सुरक्षित प्रवेश करना है, तो प्रकृति के विश्वसनीय निर्देशक के रूप में विज्ञान की क्षमता, विज्ञान की विशुद्धता को दृढ़ करने के लिए हमें कदम उठाने होंगे। कविवर जयशंकर प्रसाद ने भी यही कामना की थी—

> "चेतना का सुन्दर इतिहास, अखिल मानव भावों का सत्य।
> विश्व के हृदय पटल पर दिव्य, अक्षरों से अंकित हो नित्य।"

ISSN : 0373–1200

अंक 8 नवम्बर 1999

यह प्रति 5 रु०

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका

विज्ञान परिषद् प्रयाग

// विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 85 अंक 8
नवम्बर 1999

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत

1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

सम्पादक

डॉ० दिनेश मणि, डी० एस-सी०

मुद्रक

अरुण राय
दी कम्प्यूटर कम्पोजर,7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002
फोन : 460001

विषय-सूची

विज्ञान का रोमांच

प्रो० एम० जी० के० मेनन

विज्ञान और प्रौद्योगिकी मानव क्रिया-कलापों के उस पक्ष का द्योतक है जिसमें सृजनात्मकता है, उद्बोधनमय रोमांच है, मौलिकता और नवीनता है, और उत्कृष्ट अनुप्रयोग समाहित हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की यही विशिष्टताएं इसके वर्तमान स्वरूप में विकसित होने में सहायक बनी हैं। विगत शताब्दियों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास बहुत तेजी से हुआ है। यह समाज में आए उन बदलावों के तरीकों का प्रतिफल है, जिनमें अधिक स्वतंत्रता की, क्रम परम्परा और अधिकारवाद में कमी की, और अधिक वस्तुपरक सोच की आवश्यकता का अनुभव किया गया और इस कारण भी कि मानव समाज में सूचना एवं ज्ञान का चतुर्दिक प्रसार सम्भव हुआ है और ये सभी को सुगम हो गए हैं। आधुनिक सूचना युग के सूत्रपात के बाद विगत वर्षों में यह विकास कुछ अधिक प्रमुख बन गया है। मैं पहले इसी पहलू पर चर्चा करूँगा।

विगत शताब्दी में हमने विज्ञान की अनवरत प्रगति और गणित, भौतिकी, रसायन शास्त्र, जीव-विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में आश्चर्यजनक उपलब्धियों को देखा है। मेटेरियल्स टेक्नोलॉजी, इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी, बायोटेक्नोलॉजी आदि विज्ञान से सम्बन्धित हैं और इसी से उत्पन्न हैं। उद्योग, कृषि, स्वास्थ्य और पर्यावरण के कई आधारभूत अनुप्रयोग क्षेत्रों में अभूतपूर्व विकास हुआ है।

भारतवर्ष मानव सभ्यता के उद्‌गमों में से एक महत्वपूर्ण उद्‌गम है। विश्व के तीन महान धर्मों- हिन्दू, बौद्ध, जैन- का प्रादुर्भाव भारतवर्ष में हुआ। पूर्व एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में बौद्ध-धर्म का प्रसार भारत से ही हुआ। विश्व में अधिकांश लोग भारतवर्ष को इसके दर्शन, रहस्यवाद, वास्तु, शिल्प, अभिनव कलाओं आदि से जानते हैं। बहुत कम लोगों को विदित है कि भारतवर्ष महत्वपूर्ण आधारभूत वैज्ञानिक विकास और दृष्टिकोणों का मूल स्रोत भी था। इस अज्ञानता का कारण यह है कि ऐसा कोई बड़ा शोधकार्य नहीं हुआ और न ही इस विज्ञान-कार्य के परिदृश्य और सिंहावलोकन का लेखा-जोखा प्राप्त है, जो भारतीय परम्परा का अंग बन सका हो और हमारी आज की संस्कृति को पोषित करता हो।

शून्य और नौ संख्याओं के आधार पर दशमलव स्थान-मान गणना प्रणाली से लेकर पश्चिम के मेडिकल सिस्टम से बिल्कुल भिन्न आयुर्वेद तक जिसमें आयुर्विज्ञान के अतिविकसित एकीकृत समग्र दर्शन और अनुपालन-विधियाँ वर्णित हैं, भारतवर्ष से उद्‌भूत हैं और विज्ञान के लिए महत्वपूर्ण देन हैं। भविष्य में उन सहक्रियात्मक विधाओं (Synergistic approaches) की समझ बहुत महत्वपूर्ण होगी जो समग्र तंत्रों (Systems) और उनके बीच पारस्परिक क्रिया प्रभावों का संसाधन अथवा निरूपण एकीकृत आधार पर करें।

गणित की अनेक उपलब्धियाँ, जिनके आविष्कर्ता आजकल पश्चिमी वैज्ञानिक माने जाते हैं, भारतवर्ष में बहुत पहले से ज्ञात थीं। भारत में खगोल-विज्ञान, रसायन-विज्ञान, धातु-विज्ञान, पादप-विज्ञान में कई आविष्कार और भारतीय दर्शन के अंग के रूप में तर्क, भाषा-विज्ञान और व्याकरण के अति परिष्कृत पहलुओं पर कार्य हुए। 12वीं से 18वीं सदी के बीच के केवल 600 वर्षों में भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर 10 हज़ार से अधिक पुस्तकें लिखी गयीं।

डॉ० आत्माराम स्मृति व्याख्यान माला के अंतर्गत 5 अक्टूबर 1999 को विज्ञान परिषद् में दिया गया व्याख्यान

प्रो० एम० जी० के० मेनन : संक्षिप्त परिचय

कर्नाटक राज्य के मैंगलोर में 28 अगस्त 1928 को जन्मे माम्बिल्लि क्लाथिल गोविन्द कुमार मेनन ने 1953 में पीएच डी० यूनिवर्सिटी ऑव ब्रिस्टल, यू० के०, 13 विश्वविद्यालयों से डी० एस-सी० की मानद उपाधियाँ, दो आई० आई० टी० और अमेरिका के सात टेक्नालॉजी इंस्टीट्यूट्स के सम्मानों द्वारा अंलकृत हो चुके हैं। कॉस्मिक रे और पार्टिकल फ़िजिक्स आपके शोध के मुख्य विषय हैं, जिनके आप अंतर्राष्ट्रीय स्तर के विशेषज्ञ हैं और समय-समय पर आप विदेशों में बुलाये जाते रहे हैं।

भारत की पांडुलिपियों का अनुवाद अरबी और फारसी में हुआ, बहुतेरा ज्ञान भारत से बाहर गया। इसी प्रकार भारत ने भी बाहर से वैज्ञानिक विचारों, तरीकों और प्राविधियों को लिया और आत्मसात किया जो वैज्ञानिक परम्परा की उदारता और तर्कसंगत व्यवहार की विशिष्टताओं का परिचायक है। हम गर्व से स्मरण करें कि हम इसी "परम्परा" के अंग हैं। इसमें यह बसी हुई है। इसको प्रस्फुटित होने के लिए उपयुक्त वातावरण और प्रोत्साहन की आवश्यकता है। फिर भी, अपने इतिहास पर आत्मसंतोष करके बैठना नहीं चाहिए। जैसे-जैसे हम भविष्य की ओर बढ़ें, हमें अग्रिम पंक्ति में होना चाहिए, अग्रणी बनकर नेतृत्व देना चाहिए।

स्वाधीनता संग्राम के अन्तः क्षोभ और पुनर्जागरण ने विज्ञान के पुनरुत्थान के लिए एक ऐसा ही वातावरण दिया था। जहाँ एक ओर पश्चिम में हो रही बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक उन्नतियों के बारे में सूचना मिल रही थी, वहीं ऐसे महान् भारतीय वैज्ञानिक भी थे, जिन्होंने बिल्कुल मौलिक तरीके से सोचने और काम करने का साहस किया।
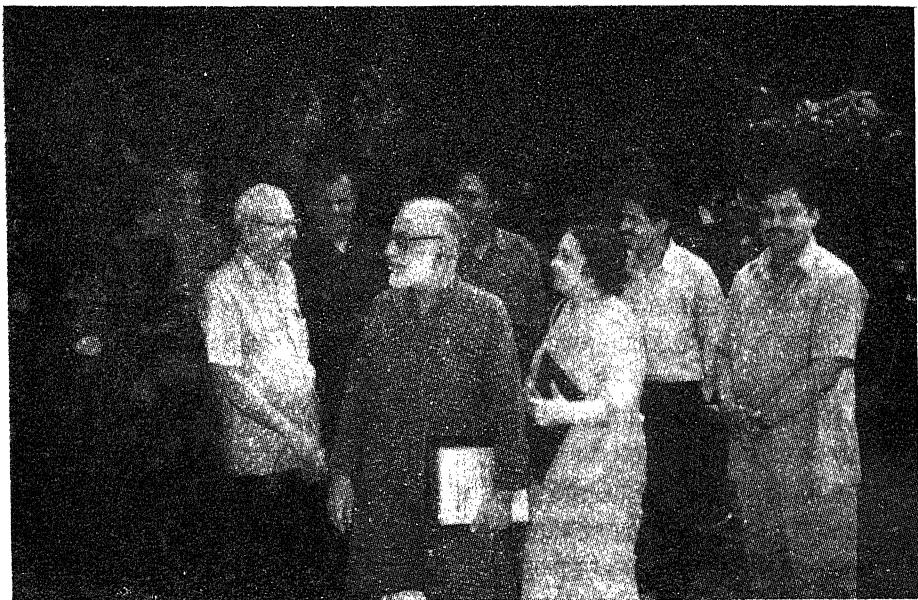
शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जगदीश चन्द्र बोस, मेघनाद साहा, चन्द्रशेखर वेंकट रामन, श्रीनिवास रामानुजन के महान कार्य प्रमुख हैं। निकट अतीत में होमी भाभा, एस० चन्द्रशेखर और हरगोविन्द खुराना के कार्य उल्लेखनीय हैं, और इसी उपमहाद्वीप में अब्दुस सलाम जैसी महीन हस्ती ने जन्म लिया। रामन, चन्द्रशेखर, खुराना और सलाम जैसे कई वैज्ञानिकों को उनके कार्य क्षेत्रों में 'नोबल पुरस्कार' भी मिले। इसमें कोई शक नहीं कि अन्य वैज्ञानिकों ने भी उच्चतम स्तर के कार्य किए जिन्हें 'नोबेल पुरस्कार' की कोटि में रखा जा सकता है।

इनमें से प्रत्येक वैज्ञानिक ने उत्कृष्ट योगदान किया, लेकिन किसी पद, संपदा अथवा शक्ति-प्रयोग की लोलुपता के लिए नहीं किया। इनमें से किसी को भी इस विश्व की शक्तिसम्पन्न और समृद्ध हस्तियों की कोटि में नहीं रखा जा सकता। वे प्रकृति को समझने के लिए अन्तर्प्रेरित थे, अभिनव ज्ञान की खोज और विज्ञान-प्रयोगों के प्रति उत्साहन के लिए अभिप्रेरित थे। उन्हें अपने ही भावातिरेक से

आपने विभिन्न उच्च पदों पर आसीन होकर देश की महती सेवा की है। आप 1989-90 में केन्द्र सरकार में साइंस एण्ड टेक्नालॉजी के मंत्री, 1982-89 तक योजना आयोग के सदस्य, 1986-89 तक प्रधानमंत्री के विज्ञान के सलाहकार रहे। 1982-85 तक कैबिनेट के विज्ञान सलाहकार समिति के अध्यक्ष, 1978-82 तक डी० एस० टी० के सचिव, 1980-81 तक पर्यावरण विभाग के सचिव, 1978-81 तक सी० एस० आई ० आर० के महानिदेशक, 1974-78 तक रक्षामंत्री के सलाहकार 1972 में "इसरो" के अध्यक्ष, 1966-75 तक टाटा इंस्टीट्यूट ऑव फंडा-मेंटल रिसर्च, मुम्बई के निदेशक रह चुके हैं। वर्तमान में आप नेशनल एकेडेमी ऑव साइंसेज, इंडिया के प्रो० एम० एन० साहा विशिष्ट फेलो हैं।
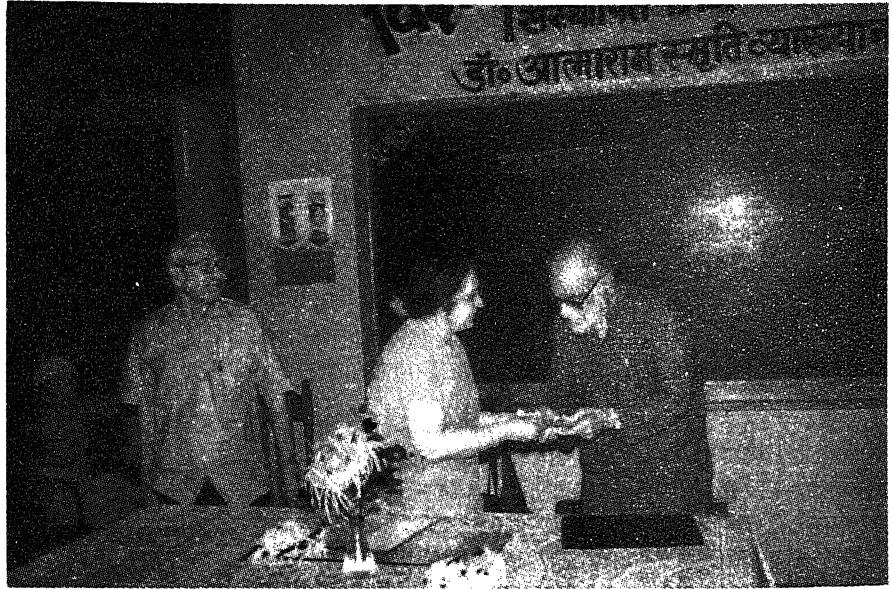
अनुप्रेरणा मिली जो विज्ञान का महत्वपूर्ण गुण है। अपने आसपास की अनन्त सृष्टि और प्रकृति के बारे में "क्या", "क्यों", "कैसे" प्रश्न करने की इच्छा और मानव सुलभ जिज्ञासा से यह विज्ञानोन्मुखी अन्तर्प्रेरणा बढ़ी। इनके लिए "कौन" प्रश्न अहम् नहीं था जो साधारण स्तर के लोगों के लिए महत्वपूर्ण होता है। विज्ञान के विकास के लिए हमें सभी को, खासतौर से नई पीढ़ी को, प्रोत्साहित करना होगा, जिनमें ऊर्जस्विता है, कर्मशक्ति है, जिनमें बालसुलभ जिज्ञासा है, और जो अपने चतुर्दिक हरेक चीज़ के बारे में लगातार पूछने और "क्या", "कैसे", "कहाँ" और "क्यों" प्रश्न करने के किसी प्रकार के निषेध से ग्रसित नहीं हैं। इस प्रकार रोमांच (Excitement) की अनुभूति करता है, जो समझ और खोज के मार्ग पर चलते समय सदैव उनका साथी रहेगा।

मैं विज्ञान में व्याप्त रोमांच को समझाने के लिए इस देश के वैज्ञानिकों के काम से कुछ ज्वलंत उदाहरण देता हूँ। मेरा इरादा इनका विस्तृत विवरण देने का नहीं है। मेरा मात्र एक प्रयोजन है कि आपको इस कार्य में निरूपित अन्तर्प्रेरणा और रोमांच को समझाऊँ। निकट अतीत के प्रारंभिक महान भारतीय वैज्ञानिकों में से एक वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस थे। मई, 1895 में सर्वप्रथम कतिपय मिलीमीटर तरंगदैर्घ्य की विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें पैदा कीं। प्रेसीडेंसी कॉलेज, कलकत्ता में 20 वर्गफुट छोटे से कमरे में उन्होंने आवश्यक उपकरण का निर्माण किया, तरंगें उत्पन्न कीं और उनके गुणों का अध्ययन किया। भारत में यह प्रायोगिक भौतिकी (Experimental Physical Sciences) का प्रारम्भ था। इसने नये विषय "माइक्रोवेव फ़िज़िक्स" को जन्म दिया। बोस उन वैज्ञानिकों में से एक थे जो क्लार्क मैक्सवेल के काम से बहुत अधिक प्रभावित हुए। 1888 में उन्हें हर्ट्ज के द्वारा प्रायोगिक संरूपण (Experimental Conformation) की जानकारी मिली कि विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों को प्रयोगों से पैदा कर सकते हैं और पता लगा सकते हैं। रदरफोर्ड, मारकोनी जैसे विश्वविख्यात वैज्ञानिकों की विशिष्ट मंडली में बोस अग्रणी थे। वास्तव में, बोस ही ने 1899 में टेलीफोन के साथ मर्करी कोहेरर का आविष्कार किया। यह 'रॉयल सोसायटी' को सूचित किया गया और मुख्यरूप से इसी को मारकोनी ने

आप देश-विदेश की चोटी की अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं से जुड़े रहे हैं। इनमें इण्डियन एकेडेमी ऑव साइंसेज के फेलो (सभापति 1974-76) ; लंदन की रॉयल सोसाइटी, नेशनल एकेडेमी ऑव साइंसेज के ऑनरेरी फेलो (सभापति 1987-88); अमेरिकन एकेडेमी ऑव आर्ट्स एण्ड साइंसेज के विदेशी आनरेरी सदस्य; पोंटिफिकल एकेडेमी ऑव साइसेंज, रोम के सदस्य; रशियन एकेडेमी ऑव साइंसेज के विदेशी आनरेरी सदस्य; इंस्टीट्यूशन ऑव इलेक्ट्रिकल एण्ड इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियर्स के ऑनरेरी सदस्य ; एशिया · इलेक्ट्रॉनिक्स यूनियन के आनरेरी सभापति; इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑव एस्ट्रोफ़िजिक्स के ऑनरेरी फेलो; नेशनल इंस्टीट्यूट ऑव एजूकेशन, नई दिल्ली के फेलो ; प्रेसिडेन्ट इन्सा (INSA), 1981-82 ; थर्ड वर्ड एकेडेमी ऑव साइंसेज के फाउण्डिंग फेलो प्रमुख हैं।

आपको इतने अधिक पुरस्कार एवं सम्मान मिले हैं जिनको, पूछे जाने पर संभवतः आप भी न गिना सकें।

अभी कुछ समय पूर्व ही आपको अब्दुससलाम प्राइज (TWAS) और शताब्दी पुरस्कार (ISCA) मिले हैं।

आपने अपने अनेक व्याख्यानों के माध्यम से भारतीय विज्ञान को न केवल भारत में वरन् विदेशों में भी लोकप्रिय बनाया है। इससे जहाँ एक ओर आपकी अपनी वैज्ञानिक प्रतिभा की धाक जमी है, वहीं आपने भारत को गौरवान्वित किया है। उदाहरण के लिए ब्लैकेट मेमोरियल लेक्चर (इंसा रायल सोसाइटी, 1987)।

आप अनेक सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं की पॉलिसी मेकिंग बॉडीज से भी जुड़े रहे हैं। इनमें 1988-93 तक सभापति, आई सी एस यू ; 1992 से अब तक सदस्य, इण्टरनेशनल फेडरेशन ऑव इंस्टीट्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडी; मेम्बर ऑव पार्लियामेंट (1990-1996); सभापति, इण्डियन स्टैटिस्टिकल इंस्टीट्यूट, कलकत्ता; अध्यक्ष, रामन रिसर्च इंस्टीट्यूट ट्रस्ट, बेंगलूर, 2 वर्षों के लिए सदस्य और अध्यक्ष, यू एन सेक्रेटरी जेनेरल्स एडवाइजरी कमेटी ऑन एप्लीकेशन ऑव साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी (1972-1980); सदस्य गवर्निंग कौंसिल, यू० एन० यूनिवर्सिटी, टोकियो (1986-91); सदस्य, बोर्ड ऑव गवर्नर्स, इण्टरनेशनल डेवेलपमेंट रिसर्च सेन्टर, कनाडा; अध्यक्ष, भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड; अध्यक्ष, भारत डाइनैमिक्स लिमिटेड ; सदस्य, बोर्ड ऑव डाइरेक्टर्स, हिन्दुस्तान एरोनोटिक्स लिमिटेड; अध्यक्ष, प्रिपेरेटरी कमेटी फॉर यू एन कान्फ्रेन्स ऑन साइंस एण्ड टेक्नालॉजी फॉर डेवेलपमेंट, वियेना 1979; अध्यक्ष, कमेटी II, 1979 आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

युगान्तरकारी ट्रांस अटलांटिक वायरलेस सिग्नलिंग के लिए प्रयुक्त किया।

किन्तु बोस केवल इसी क्षेत्र तक सीमित नहीं रहे। उन्होंने पौधों पर जैव-भौतिक (Biophysical) प्रयोग किए और दूरगामी निष्कर्ष निकाले। वे पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने पर्यावरण से प्रतिक्रिया समन्वयन के लिए पादप-कोशिकाओं के बीच विद्युतीय संकेत (Electrical Signalling) की महत्ता को पहचाना। इन दो भिन्न क्षेत्रों में दो महान योगदानों ने बोस को इतिहासपुरुष बना दिया।

उस समय के एक अन्य महान वैज्ञानिक चन्द्रशेखर वेंकट रामन को लें। इस देश के अधिकांश लोग रामन को 'रामन प्रभाव' (Raman Effect) के आविष्कार के लिए याद करते हैं, जिसके लिए उन्हें भौतिकी में 'नोबेल पुरस्कार' मिला। 'नोबेल पुरस्कार' की चर्चा करते समय कई लोग के० एस० कृष्णन के योगदान, रूस में किए गए कार्य को प्राथमिकता इत्यादि के विवाद में चले जाते हैं। किन्तु यह याद रखना चाहिए कि रामन देदीप्यमान क्लासिकल भौतिकीविद् थे, जिन्होंने क्वांटम यांत्रिकी घटना (Quantum Mechanical Phenomenon) की आश्चर्यजनक प्रायोगिक खोज की, जिसने भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और टैक्नोलॉजी को भी प्रभावित किया, जैसा कि उन्होंने अपने 'नोबेल भाषण' में बताया। हम इस दिग्गज की समग्र महानता को प्रायः भूल जाते हैं। रामन प्रखर बुद्धि के विद्यार्थी थे, उन्होंने बहुत कम आयु में शोधपत्र लिखे। वायलिन पर उनका काम आज भी अद्वितीय व क्लासिक माना जाता है। ध्वनिवेत्ता आश्चर्य करते हैं कि उन दिनों वे इस पर इतने सुन्दर प्रयोगों और सिद्धान्तों पर किस प्रकार काम कर सके। वे रैले और माइकेलसन की श्रेणी में प्रकाशिकी (Optics) में पारंगत थे। 'नोबेल पुरस्कार' वाले कार्य के बाद, क्रिस्टलों पर उनका कार्य विश्वस्तरीय कोटि का है। उनके कई मेधावी छात्र थे, उनमें एक जी० एन० रामचन्द्रन वस्तुतः महान थे। रामन भूमध्य सागर, नीला आकाश, हीरा, रत्न, खनिज और अन्य क्रिस्टलों के रंगों में, ध्वनि विज्ञान (Acoustics) और संगीत में रुचि रखते थे। वास्तव में उन्होंने अपने चारों ओर

जो भी देखा उसे बच्चे की भाँति पाने और समझने के लिए अन्वेषण की इच्छा की।

रामन ने कहा है - ''विश्लेषण करने पर विज्ञान उस प्रकृति के प्रति प्रेम और उसका अध्ययन करने के अतिरिक्त और क्या है ? अमूर्त पूजा के रूप में अभिव्यक्ति नहीं, परन्तु प्रकृति को समझने की क्रियात्मक चेष्टा है ? जितना अधिक मैं विज्ञान की खोज में लगा रहता हूँ, उतना ही अधिक विश्व के आश्चर्यों और अनंत रमणीयता से प्रभावित होता हूँ।'' उनका कहना था- ''भारतीय संस्कृति का एक पहलू प्रकृति की गहरी समझ है। अधिकांश भारतीय दर्शन प्राकृतिक घटनाओं के अर्थ और तार्किक आधार को समझने से संबंधित हैं।''

आइए ! अब एक अन्य महान भारतीय सपूत सुब्रमण्यम चन्द्रशेखर को लें, जो अपने समय के शीर्ष वैज्ञानिक थे। उनके योगदान की गहराई और विविधता की पहुँच की बराबरी विरले ही कर सकते हैं। वास्तव में वह आइज़ेक न्यूटन के आध्यात्मिक अवतार थे, उनके बेहिचक प्रशंसक थे और उन्होंने उनकी ''प्रिंसिपिया'' नामक पुस्तक पर अनुरक्त होकर भाषण दिए। यहाँ फिर से कोई भी 'नोबेल पुरस्कार' जैसे सांसारिक पुरस्कारों के बारे में विस्मित हो जाता है। अधिकतर लोग श्वेत वामन (White dwarfs) पर उनके आरम्भिक कार्यों से और उनकी इस सनसनीखेज खोज से ही परिचित हैं कि इनका द्रव्यमान सौर-द्रव्यमान के 1.4 गुणा से अधिक नहीं हो सकता। ''चन्द्रशेखर लिमिट'' सभी को याद है। लेकिन वह इन सबसे और अधिक बढ़कर एक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। जब वे 18 वर्ष के थे, उनका पहला शोधपत्र रॉयल सोसाइटी में प्रकाशित हुआ था। एक वर्ष बाद कैम्ब्रिज गए और श्वेत वामनों पर खोज की। अगले पाँच वर्षों में उन्हें आश्चर्यजनक परिणाम मिले जिसके आधार पर आजकल हम लोग न्यूट्रॉन स्टार, ब्लैक होल इत्यादि की चर्चा करते हैं। वे एक क्षेत्र से हटकर दूसरे क्षेत्रों में गए और सभी क्षेत्रों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्मरणीय योगदान दिया, जिसे हम चिरस्थायी कीर्तिस्तम्भ के रूप में देख सकते हैं। संगीत, साहित्य और कला के प्रति उनका रुझान चौंकाने वाला था, और इसी तरह गद्य और काव्य की उनकी समझ थी। उनके 50 से अधिक शोध-पत्र विश्व-ख्याति प्राप्त थे। उनमें से एक छात्र की टिप्पणी है, - ''चन्द्रशेखर उत्साह का संचरण करते हैं।'' उन्होंने स्वयं कहा है- ''विज्ञान के अनुशीलन की तुलना प्रायः ऊँचे, मगर बहुत ऊँचे नहीं, पर्वतों को मापने से की जाती है। लेकिन इसमें से कितने एवरेस्ट को मापने और उस चोटी पर पहुँचने की आशा तो क्या कल्पना भी कर सकते हैं जहाँ आकाश नीला है, वायु शान्त है और वायु के इस सूनेपन में अनन्त तक फैली चकाचौंध करने वाली धवल हिम से आच्छादित हिमालय की सभी चोटियों का सर्वेक्षण करने की क्या कल्पना भी कर सकते हैं ? हममें से किसी में भी हमारे इर्द गिर्द व्याप्त ब्रह्माण्ड और प्रकृति की दिव्यदर्शन की तुलना में दृष्टि नहीं है। लेकिन घाटी के तल पर खड़े होकर कंचनजंगा की चोटी पर अरुणोदय की प्रतीक्षा करने में तो कोई क्षुद्रता नहीं है।''

विज्ञान और प्रौद्योगिकी : उदीयमान सूचना समाज का नया आधार

पिछले तीन दशकों के दौरान सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय विकास हुए हैं जैसे कि अंकीय प्रौद्योगिकी तथा माइक्रोइलेक्ट्रॉनिकी, लेसर तथा प्रकाशिक तंतु (Optical fibre) प्रणालियाँ, बहुप्रचलित वायरलेस, मोबाइल/ सेलुलर प्रणालियों में वृद्धि, अंतरिक्ष-संचार में विकास- कार्य आदि। मेरा मानना है कि निकट भविष्य अर्थात् शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश तक इस प्रकार के विकास होते रहेंगे। यह वैज्ञानिक कार्यों के एक समृद्ध विषय क्षेत्र का परिचायक है। यह समाज के लिए प्रासंगिक अनुप्रयोगों का एक बहुत ही महत्वपूर्ण क्षेत्र भी है।

सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) एक बहुत ही प्रचलित पारिभाषिक शब्द बन गया है। अधिकांश लोगों के लिए इसका अर्थ है कम्प्यूटर तथा वर्कस्टेशन। बहुत कम लोग इसमें अन्तर्निहित भौतिकी, रसायन शास्त्र, पदार्थ विज्ञान एवं इंजीनियरी, और विशेष रूप से माइक्रो-इलेक्ट्रॉनिकी पर ध्यान देते हैं, जो हमारे द्वारा वास्तव में प्रयोग में लाई जाने वाली प्रणालियों के मुख्य अंग हैं और न ही कोई सॉफ्टवेयर तथा प्रोग्रामिंग के गणितीय आधार पर ध्यान देता है। इस तथ्य की विवेचना बहुत ही कम की जाती है कि सूचना प्रौद्योगिकी का वर्तमान स्वरूप संयोजन (Connectivity) पर आधारित है। कम्प्यूटर तथा वर्कस्टेशन, जो सूचना को भण्डारित करते हैं और उन पर कार्य करते हैं, उनका आपस में अन्तर-सम्पर्क होना जरूरी है। इंटरनेट और वर्ल्ड वाइड वेब (www) की विशेषता है सम्पर्क और सभी

के द्वारा उसका लाभ उठाना, जो आज हमें मिल रहा है। दूरसंचार प्रौद्योगिकी पर आधारित सूचना सुपरहाइवे, सूचना प्रौद्योगिकी का एक अनिवार्य अंग है। इसके अतिरिक्त, प्रसारण माध्यम अर्थात् रेडियो एवं टेलीविजन, और पाठ (text) के रूप में रखी गई सभी सूचना भी समग्र एकीकृत सूचना प्रौद्योगिकी प्रणाली में एकरूप हो गई है और उनका आपस में अन्तर-सम्पर्क है। इस अबाधित अभिसारिता (Convergence) के कारण ही सूचना से संबंधित सभी उपकरणों का आपस में सम्पर्क हो गया है और इसके परिणामस्वरूप आज सूचना प्रौद्योगिकी की उल्लेखनीय प्रगति संभव हुई है।

इस व्याख्यान के माध्यम से मेरा अभिप्राय सूचना प्रौद्योगिकी के आर्थिक, वित्तीय, सामाजिक और अन्य प्रभाव के बारे में बताना नहीं है। हमें यह महसूस करना चाहिए कि सूचना प्रौद्योगिकी मानव कार्यकलापों का केवल एक क्षेत्र नहीं है बल्कि यह सर्वव्यापी है जो उस परिवेश का परिचय देती है जिसमें हम रहते हैं जैसे कि वातावरण और हवा जिसमें हम सांस लेते हैं। मेरा अभिप्राय इस व्याख्यान के विषय पर बात करना है अर्थात् विज्ञान और प्रौद्योगिकी के वे महान् आविष्कारोन्मुखी विकासकार्य जिनके कारण सूचना युग का प्रादुर्भाव संभव हुआ है।

सूचना युग का आधार एक सार्वभौम भाषा है जो द्विअंकीय प्रणाली 0 तथा 1 से तैयार हुई है। गणितज्ञ इसे बूलियन बीजगणित कहते हैं। इसे समझने के लिए मैं आपको दैनिक जीवन के कुछ उदाहरण देता हूँ। हम सभी इलेक्ट्रिक स्विचों से परिचित हैं। उनकी दो स्थितियाँ होती हैं : ''ऑन'' तथा ''ऑफ''। जब उन्हें ''ऑन'' किया जाता है तो बिजली का प्रवाह होता है और आप बत्ती, पंखा, मोटर आदि जैसे बिजली के सामान चला सकते हैं। ''ऑफ'' की स्थिति में बिजली का प्रवाह नहीं होगा। हममें से अधिकांश लोगों ने टेलीग्राम भेजा है। हम इन्हें सामान्य रूप से प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा अंग्रेजी, हिन्दी आदि में लिखते हैं, लेकिन अक्सर यह नहीं जानना चाहते हैं कि इन्हें कैसे भेजा जाता है। इसे टेलीग्राफ की तारों पर एक कुंजी का प्रयोग करके भेजा जाता है, जिसमें केवल दो संकेत हैं – बिन्दु (dot) तथा डैश (dash)। पूरे संदेश को, जिसमें वाक्य, शब्द तथा वर्ण होते हैं। डॉट तथा डैश में तोड़ा जा सकता है। प्राप्त करने वाले स्थान पर इसे पुनः प्राकृतिक भाषा में बदल लिया जाता है, जिसे प्राप्तकर्ता समझ सकता है। अंकीय प्रौद्योगिकी इसी प्रकार बूलियन बीजगणित पर आधारित है, अर्थात् प्रत्येक ऐसी सामग्री को 0 तथा 1 की प्रणाली में परिवर्तित किया जा सकता है, जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना पड़ता है। संचार प्रणाली में इसी 0 तथा 1 का सम्प्रेषण किया जाता है। अधिकांश लोग सूचना युग के जिस मुख्य आधार से परिचित हैं वह है अंकीय कम्प्यूटर। उसकी संकल्पना मूल रूप में बैबेज द्वारा की गई थी और उसका विकास टूरिंग ने किया। ये दोनों इंग्लैण्ड के थे। इसका पहला निर्माण वॉन न्यूमैन ने संयुक्त राज्य अमेरिका में किया। अंकीय कम्प्यूटर आज वास्तव में सर्वव्यापी बन गया है।

मैंने पहले ही बताया है कि अधिकांश लोगों के लिए सूचना प्रौद्योगिकी का तात्पर्य कम्प्यूटर तथा वर्कस्टेशन से है। पहले इलेक्ट्रॉनिकी कम्प्यूटर का निर्माण टूरिंग द्वारा इंग्लैण्ड में और वॉन न्यूमैन द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रिंसटन में किया गया। ये इलेक्ट्रॉनिक वाल्व पर आधारित थे। इस अवधि की प्रौद्योगिकी की विशेषता थी सीमित क्षमता, बहुत बड़ा स्थान, अत्यधिक ऊर्जा तथा ताप का सृजन। उसके बाद 1947 में कोकले बारडीन तथा ब्राटेन ने ट्रांजिस्टर का विकास किया। यह पहला अवसर था जब माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक युक्तियाँ वाल्व का स्थान लेने में सक्षम बन गई। उसके बाद हमने तेज़ गति से माइक्रोइलेक्ट्रॉनिकी के कई चरण पार किए हैं और सिंगल ट्रांजिस्टर से चलकर हम एकीकृत परिपथ के स्तर तक पहुँच गए हैं। परिपथ पहले बहुत ही सीमित मात्रा में थे, लेकिन बाद में सिलिकन की एक ही बहुत छोटी चिप पर ट्रांजिस्टरों की संख्या बढ़ाना संभव हो गया। यह आशा की जाती है कि वर्ष 2020 तक एक चिप पर (10^{11}) यानी 10,000 करोड़ के बराबर ट्रांजिस्टर होंगे। इस विकास कार्य के परिणामस्वरूप कम्प्यूटरों का आकार बहुत छोटा हो गया है, बहतु कम ऊर्जा की जरूरत होती है, ताप का सृजन बहुत कम होता है और विश्वसनीयता का स्तर बहुत अधिक होता है (क्योंकि इसके आसपास कोई लूज वायरिंग नहीं होती) और साथ ही ये बहुत जटिल कार्य कर सकते हैं। विश्व में वर्ष 1972 में लगभग 150,000 कम्प्यूटरों से आरम्भ करके अगले वर्ष तक केवल इन्टेल द्वारा ही 100 मिलियन से भी ज्यादा कम्प्यूटर बेचे जाने की संभावना है। मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि आई-बीएम के अध्यक्ष, थॉमस वाटमन ने 1943 में कहा था- ''मेरे ख्याल से विश्व बाज़ार में लगभग 5 कम्प्यूटरों की जरूरत

है।" माइक्रो इलेक्ट्रॉनिकी के कारण बड़े पैमाने पर यह परिवर्तन आया है। पिछले 30 वर्षों के दौरान, प्रत्येक 18 महीने में अभिकलन शक्ति दुगनी हुई है और प्रत्येक 18 महीने में कीमत आधी हुई है (मूर का नियम, Moor's Law)। ऐसा कोई अन्य विषय क्षेत्र नहीं है जहाँ इसके आसपास भी कोई विकास हुआ है। प्रमुख विकास- कार्य दूरसंचार के क्षेत्र में हुआ है। दूरसंचार के लिए पहले प्रयोग में लाई गई स्विचन प्रणालियां यांत्रिक (mechanical) थीं, और बाद में विद्युत्-यांत्रिक (electromechanical)। ये बहुत ही धीमी गति वाली एवं बोझिल प्रणालियाँ थीं। इस शताब्दी के विगत चतुर्थांश के दौरान ये इलेक्ट्रॉनिक बन गई हैं। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसका स्वरूप एनालॉग से बदलकर द्वि-अंकीय प्रणाली के आधार पर हो गया है, जो वर्तमान कम्प्यूटरों की भाषा बन गई है। इसके परिणाम्-ास्वरूप, जिस "शून्य" एवं "एक" पर सूचना को परिवर्तित करके कम्प्यूटर के स्मृतिकोश में रखा जा सकता है और जिस पर अभिकलन का कार्य किया जाता है तथा जिस सूचना का प्रयोग किया जा सकता है, उसे अब इलेक्ट्रॉनिक अंकीय स्विचन प्रणालियों के जरिए दूरसंचार की लाइनों पर आसानी से भेजा जा सकता है। पहले अधिकांश संचार धातु की केबिल वाली सम्प्रेषण लाइनों, माइक्रोवेव लाइन ऑफ साइट लिंक तथा कम प्रभावी बेतार प्रणालियों पर आधारित थे। आज सूचना के सम्प्रेषण के लिए तथा प्रकाशिक तंतु केबिल शामिल हैं जिन पर संकेत का सम्प्रेषण विद्युत् द्वारा नहीं बल्कि प्रकाश द्वारा होता है। प्रकाशिक तंतु केबिल के सूचना के प्रवाह के लिए पट्ट चौड़ाई (band width) का प्रचुर विस्तार हुआ है। लगभग 45 वर्ष पहले लेसर (Laser) की खोज से यह संभव हुआ है। व्यापक रेंज के चैनलों की इस विस्तृत क्षमता को ही सूचना सुपरहाइवे कहा जाता है, जिन पर अब सूचना का प्रवाह हो सकता है।

हमने जितने आसान तरीके से यह सब कहा है, उससे कोई भी इस बात का अनुमान नहीं लगा सकता कि इसे मूर्त रूप देने में कितना श्रम करना पड़ा होगा। प्रकाशिक तंतुओं के माध्यम से संकेत भेजने के लिए सही किस्म के लेसरों का विकास करना आवश्यक होता है। ऐसी प्रकाशिक तंतुओं का विकास करने की आवश्यकता हुई थी जिनके माध्यम से प्रकाश बिना प्रत्यावर्तित हुए और सघनता में कमी के बिना जा सके। आरम्भिक स्तर पर सघनता में कमी आ जाती थी जिसमें पूरी केबिल प्रणाली में कई रिपीटर स्टेशनों की आवश्यकता होती थी। आज प्रकाशिक तंतु के केबिल लेसर युक्तियों का प्रयोग करके सागर की गहराइयों तक इन प्रकाश संकेतों को पहुँचाते हैं। एक मनोरंजक लेकिन गंभीर समस्या शार्क मछलियों की थी जो केबिलों को काट देती हैं। इसके लिए निदान ढूँढ़ने पड़े। वर्तमान मूलभूत खोज एवं व्यावहारिक समाधान इस महान उद्यम के भाग हैं।

अन्तरिक्ष कार्यक्रम एक अन्य उल्लेखनीय विकास कार्य है जिसकी नींव विज्ञान और प्रौद्योगिकी है। ऐसा रसायन प्रौद्योगिकी, सामग्री प्रौद्योगिकी, अभिकलनात्मक क्षमताओं, नियंत्रण प्रणालियों, सौर प्रकाश वोल्टीय बैटरियों, रेडियो प्रौद्योगिकियों की क्षमताओं में तेज़ी से वृद्धि तथा कई अन्य कारणों से संभव हुआ है। 1957 में स्पूतनिक के प्रक्षेपण से आरम्भ करके, जो एक छोटी सी वस्तु थी, जिससे केवल यह संकेत मिलता था कि यह पृथ्वी की परिक्रमा कर रही है, आज हमारे पास बृहद बहुप्रयोजनमूलक उपग्रह हैं। अंतरिक्ष कार्यक्रम ने हमें बाह्य अन्तरिक्ष की खोज करने, सौर-मण्डल के अन्य ग्रहों में पहुँचने, चाँद पर मनुष्य को उतारने, तथा अन्तरिक्ष संबंधी विभिन्न प्रकार की खोज करने की क्षमताएँ उपलब्ध कराई हैं जैसे कि पृथ्वी के बाहरी वातावरण से इन्फ्रा-रेड, एक्स-रे तथा माइक्रोवेव पृष्ठभूमि विकिरण। इन सभी के परिणामस्वरूप खगोल भौतिकी तथा ब्रह्माण्ड विज्ञान में उन्नति हुई है और ब्रह्माण्ड के बारे में हमारे ज्ञान में विशेष वृद्धि हुई है।

सूचना सुपरहाइवे के माध्यम से अब हमारे पास सूचना से संबंधित सभी युक्तियों को संयोजित करने की क्षमता है, चाहे वे कहीं भी स्थित क्यों न हों। इन्टरनेट का जन्म और विकास कैसे हुआ, मैं उसके विस्तार में नहीं जाऊँगा। यह अपने आप में एक एक रोचक कहानी है जो एक नम्य केन्द्रीय नेटवर्क हासिल करने के प्रयास के रूप में वर्ष 1970 से शुरू हुई और वर्ष 1990 से वास्तविक रूप में एक व्यावसायिक उद्यम बन गया है, जिसमें बड़ी संख्या में इन्टरनेट सेवा प्रदानकर्ता शामिल हैं। वर्ष 1971 में केवल 4 इन्टरनेट प्रयोगकर्ता थे, 1981 में 21,000, 1991 में 7,30,000 और अगली शताब्दी में पहुँचते-पहुँचते यह संख्या 5 करोड़ से भी ज़्यादा हो जायेगी।

उसके बाद वर्ल्ड वाइड वेब की शुरुआत हुई। इसके फलस्वरूप हाइपर लिंक के माध्यम से दस्तावेजों को देखना और विभिन्न दस्तावेजों तथा कम्प्यूटरों का संचालन सम्भव

हो गया है। वर्ष 1993 में वेब साइटों की संख्या 600 थी जो तेज गति से बढ़कर दस लाख हो गई है।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में वास्तव में बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ है। उच्चस्तरीय विज्ञान के नोबेल तथा समस्तरीय पुरस्कारप्राप्त आविष्कारों और अनेक सम्बद्ध क्षेत्रों की उन्नत प्रौद्योगिकियों के द्वारा इसे नया आधार मिला है। इन प्रौद्योगिकियों का सम्मिलन इस प्रकार हो रहा है जैसे सरिताएँ एक नदी में मिलती हैं और नदियाँ एक साथ प्रवाहित होकर सागर तथा महासागर में जाकर मिलती हैं (प्रयाग)। यही परिवेश पूरे विश्व में सूचना के निर्बाध प्रवाह का है, जिसकी लागत बहुत कम है और जिसमें इस पृथ्वी पर रहने वाले छह बिलियन तथा उससे भी अधिक लोगों को आपस में जोड़ने की क्षमता है और यह सूचना के नए युग की विशेषता होगी। विज्ञान की इन नई शक्तियों के प्रयोग से नई समस्याएँ पैदा होंगी, और समाज को इनसे अभ्यस्त होना तथा इनका सामना करना होगा। लेकिन इनसे ऐसे अवसर भी पैदा होंगे जिनकी कल्पना भी नहीं की गई होगी। ये विज्ञान और प्रौद्योगिकी के रोमांच एवं मौलिकता हैं जिससे इस महान अभियान को ऊर्जा मिली है, जो सभ्यता के एक नए युग में ले जाएगा।

मैंने सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के बारे में अपने कुछ विचार व्यक्त किए हैं। इतना ही मान लेना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि वैज्ञानिक दृष्टि से यह उत्साहप्रेरक है, प्रत्युत उच्चस्तरीय अन्तर-विषयी समाहार के बिना इसका उद्भव सम्भव नहीं था। हाल ही में हुए वैज्ञानिक विकास-कार्यों की अति असाधारण विशेषताओं में से एक है : किस प्रकार वर्तमान विषय-क्षेत्रों का मिलन बिल्कुल नए विषय को जन्म देता है। गहन अन्तर-विषयी स्वरूप के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विस्मयकारी असाधारण उदाहरण है– जैव-प्रौद्योगिकी (बायो टेक्नोलॉजी)। मैं इसके बारे में नहीं बोलूँगा, क्योंकि इसके साथ न्याय करने के लिए एक और भाषण देना आवश्यक हो जाएगा।

अन्तर-विषयी समाहरण की प्रवृत्ति न केवल विज्ञान के विविध विषय-क्षेत्रों के बीच विकसित हो रही है, प्रत्युत मौलिक एवं अनुप्रयुक्त विज्ञान-विषयों के बीच भी बढ़ते हुए नज़दीकी पारस्परिक क्रिया-प्रभावों में, और इंजीनियरिंग, कृषि, ओषधि/आयुर्विज्ञान, पर्यावरण इत्यादि के अनुप्रयोग के विषय-क्षेत्रों के बीच भी समाहरण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। भविष्य में हमें आशा है कि नैसर्गिक और सामाजिक विज्ञान क्षेत्रों के बीच और अधिक अन्तर-विषयी समाहरण की प्रवृत्ति दिखाई देगी। अभिनव विकसित विषय अव्यवस्था, असंतुलन, अरैखिक गति विज्ञान से संबंधित है, और पारस्परिक क्रियाएँ उन विषय-क्षेत्रों में प्रमुख भूमिका अदा करेंगी जो समाज से सीधे सम्बद्ध हैं जैसे अर्थशास्त्र, पर्यावरण, पारिस्थितिकी, शहरी समस्याएँ इत्यादि।

पुनश्च, जब कोई मानव मस्तिष्क और मानव के मन के अनुशीलन से संबंधित विज्ञान के किसी एक उभरते हुए महान सीमान्त विज्ञान-विषय पर नज़र डालता है तो स्पष्ट हो जाता है कि न्यूरोसाइंस, कम्प्यूटेशनल साइंस, फ़िज़िक्स और आधुनिक बायोलॉजी की तकनीकों, मनोविज्ञान, संज्ञानात्मक विज्ञान, भाषा, व्यवहार विज्ञान इत्यादि का सम्मिलन व समाहार आवश्यक है। यह अन्तर-विषयी समाहरण उन विभिन्न विषयों से सम्भव नहीं हुआ है जिनमें अपनी अलग विशिष्ट भाषा में अपने-अपने विषय-क्षेत्र का वर्णन है। उन सभी को किसी एक स्वीकार्य भाषा के माध्यम से एक-दूसरे को समझना होगा जिस प्रकार सूचना प्रौद्योगिकी में समाहरण एक द्वि-अंकीय भाषा के माध्यम से समझना संभव हो सका है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निरन्तर आश्चर्य-जनक प्रगति हो रही है और यह बहुत तेज़ी से उभरते हुए बिल्कुल नए विषयों को मिलाकर बड़े व्यापक विषय-क्षेत्र को निरन्तर उत्प्रेरित कर रही है। आवश्यकता है जिज्ञासा की, उस सहज प्रवृत्ति को जीवन्त रखने की जो मानव को परिभाषित करे और जानने की कोशिश करने के लिए और लालसापूर्वक समझने के लिए अन्तःअभिरुचि को प्रेरित करे।

रामन ने कहा था– "यदि कभी मुझसे पूछा गया कि मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ या नहीं, तो मैं कहूँगा कि यदि ईश्वर है तो वह इस विश्व में हमारे सामने है।" यही वह वास्तविकता है जिसे हमें समझने का प्रयास करने की आवश्यकता है।

ट्रांसजीनिक पादप : शोध में सावधानी आवश्यक

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

ट्रांसजीनिक पादप ऐसे पौधों को कहते हैं जिन्हें कोशिका, ऊतक अथवा अंग-संवर्धन द्वारा जेनेटिक इंजीनियरी विधियों के माध्यम से विकसित किया गया हो। ट्रांसजीनिक पादपों में इनके नैसर्गिक जीनों (Genes) के अतिरिक्त अन्य जीन बाहर से प्रवेश कराकर इन्हें विकसित करते हैं। ये रोगरोधी, कीटरोधी, विषाणुरोधी तो होते ही हैं साथ ही साथ इनमें अन्य प्रकार के कुप्रभावों के विरूद्ध प्रतिरोध की क्षमता भी होती है। ट्रांसजीनिक फ़सलों से अधिक उपज भी प्राप्त की जाती है। इस प्रकार ट्रांसजीनिक पादप साधारण पादपों की तुलना में अच्छे होते हैं। इनमें अच्छे प्रकार के प्रोटीनों का संग्रह भी होता है। अब तो ट्रांसजीनिक फ़सलें अत्यधिक लोकप्रिय हो रही हैं और यह विज्ञान, जिसे 'आण्विक खेती' (Molecular Farming) का नाम दिया गया है, दिन दूनी रात चौगुनी गति से प्रगति कर रहा है।

प्रारंभ में केवल द्विबीजपत्री पौधे इसके लिए उपयुक्त समझे जाते थे, किन्तु अभ एक बीजपत्री पादपों यथा गेहूँ, मक्का, धान और जई (जुई) की भी ट्रांसजीनिक फ़सलें धड़ल्ले से तैयार की जा रही हैं।

अब ऐसे ट्रांसजीनिक पौधे तैयार कर लिए गये हैं जो खाद्य संसाधन के लिए उपयुक्त होते हैं उदाहरण के लिए टमाटर में कड़ापन और देर में पकाना अर्थात् काफी समय तक खराब न होना। दूसरा उद्दीपित उदाहरण है पौधों में नर बंध्यता (barnas gene के कारण) और जननक्षमता को फिर से चालू करना (barstar gene के कारण)।

इसके अतिरिक्त ट्रांसजीनिक पौधों का एक और महत्वपूर्ण उपयोग है और वह यह कि कारखानों (factories) अथवा जैव-रिएक्टरों (bioreactors) में विशेष प्रकार के रसायनों या ओषधियों का उत्पादन। ट्रांसजीनिक पादपों से संबंधित इस क्षेत्र को, जैसा पहले कहा गया है, 'आण्विक खेती' (Molecular Farming या Molecular Pharming) की संज्ञा दी गई है।

ट्रांसजीनिक पौधों के अतिरिक्त कुछ ट्रांसजीनिक प्राणियों को भी तैयार किया गया है, जिनके विषय में फिर कभी चर्चा की जायेगी।

कुछ ऐसे पादपों के नाम दिए जा रहे हैं, जिनके ट्रांसजीनिक पादप विभिन्न विधियों द्वारा तैयार किये जा चुके हैं।

किन्तु यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि ट्रांसजीनिक फ़सलों पर नवीन शोधों से प्राप्त जानकारियों में खतरों के भी समाचार मिल रहे हैं।

पिछले कुछेक वर्षों में ट्रांसजीनिक फ़सलों को तैयार करने में जैव-प्रौद्योगिकी-विज्ञानियों को काफी सफलतायें मिली हैं। बात तीन वर्ष पहले की है। कुछेक अमेरिकी कम्पनियों के आनुवंशिक अभियांत्रिकी विधियों द्वारा मक्के के ऐसे बीज तैयार करके बाज़ार में प्रस्तुत किये जिनके आनुवंशिक गुणों में थोड़े बदलाव कर दिए गए थे। इन बीजों की यह विशेषता थी की इन पर फ़सल को नष्ट करने वाले कीटों का प्रकोप नहीं होता था, क्योंकि इनमें एक विशेष प्रकार के विष (रसायन) को ऊतकों में उत्पन्न करने की क्षमता विकसित हो गई थी। अमेरिका में 10-20 मिलियन एकड़ कृष्यभूमि पर इनकी खेती की गई। इन बीजों को बोने के लिए देते समय आश्वस्त किया गया था कि ये बीज अदुःखदायी कीटों के लिए निरापद हैं, उन्हें किसी प्रकार का नुकसान नहीं होगा। किन्तु कॉर्नेल विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के 'नेचर' (Nature) नामक विश्वविख्यात पत्रिका में प्रकाशित शोधपत्र (जिल्द 399, पृष्ठ 214) से पता चला है कि ट्रांसजीनिक मक्के के पौधों से कम से कम एक अदुःखदायी कीट प्रजाति को क्षति पहुँचती है। यह कीट 'सम्राट तितली' (Monarch butterfly) है, जिसका वैज्ञानिक नाम (*Danaus plexippus*) है। यह पाया गया कि मक्के का पराग हवा के माध्यम से कम से कम 60 किलोमीटर तक उड़कर पहुँच जाता है और मक्के के खेत के निकट उगने वाले अन्य पादपों पर निक्षेपित हो जाता है। इस प्रकार जब ये पराग उन कीटों, जिनसे मक्के की फ़सल को हानि पहुँचती है, के अतिरिक्त दूसरे

ट्रांसजीनिक पादपों की सूची

वानस्पतिक नाम	अंग्रेज़ी नाम	हिन्दी नाम
1. *Nicotiana tabacum*	Tobacco	तम्बाकू
2. *N. plumbaginifolia*	Wild tocacco	जंगली तम्बाकू
3. *Petunia hybrida*	Petunia	पेटूनिया
4. *Lycopersicon esculentum*	Tomato	टमाटर
5. *Solanum tuberosum*	Potato	आलू
6. *Solanum melongena*	Eggplant	बैगन
7. *Arabidopsis thaliana*	Arabidopsis	एरैबिडॉप्सिस
8. *Lactuca sativa*	Lettuce	सलाद
9. *Apium graveolens*	Celery	सेलेरी (अजमुद)
10. *Helianthus annuus*	Sunflower	सूर्यमुखी
11. *Linum usitatissimum*	Flax	अलसी
12. *Brassica napus*	Oilseed rape : canola	रेपसीड
13. *Brassica oleracea var. botrytis*	Cauliflower	फूलगोभी
14. *Brassica oleracea var. capitata*	Cabbage	पत्तागोभी (बंदगोभी)
15. *Brassica rapa Sny. B. campestris*	Mustarad	सरसों
16. *Gossypium hirsutum*	Cotton	कपास
17. *Beta vulgaris*	Sugarbeet	चुकन्दर
18. *Glycine max*	Soybean	सोयाबीन
19. *Pisum sativum*	Pea	मटर
20. *Medicago sativa*	Alfalfa	अल्फा अल्फा
21. *M. varia*	Medicago	मेडिकैगो वारिया
22. *Lotus comiculatum*	Lotus	कमल
23. *Vigna aconitifolia*	Moth	मोथ
24. *Cucumis sativus*	Cucumber	खीरा
25. *Cucumis melo*	Muskmelon	खरबूजा
26. *Cichorium intybus*	Chicory	चिकोरी
27. *Annoracia sp.*	Horse radish	घोड़मूली
28. *Glycorrhiza glabra*	Licorice	मूलेठी
29. *Daucus carota*	Carrot	गाजर
30. *Digitalis purpurea*	Foxglove	फाक्सग्लोब
31. *Ipomoea batatas*	Sweet potato	शकरकन्द
32. *Imomoea purpurea*	Morning glory	मार्निंग ग्लोरी
33. *Fragaria sp.*	Strawberry	स्ट्रबेरी

वानस्पतिक नाम	अंग्रेज़ी नाम	हिन्दी नाम
34. *Actinidia sp.*	Kiwi	किवी
35. *Carica papaya*	Papaya	पपीता
36. *Vitis vinifera*	Grape	अंगूर
37. *Vaccinium macrocarpon*	Cranberry	क्रैनबेरी
38. *Dianthus caryophyllus*	Carnation	कारनेसन
39. *Chrysanthemum sp.*	Chrysanthemum	गुलदाउदी/क्राइसनथेमम्
40. *Rosa sp.*	Rose	गुलाब
41. *Populus sp.*	Poplar	पॉपलर
42. *Malus sylvestris*	Apple	सेब
43. *Pyrus communis*	Pear	नाशपाती
44. *Azadirachta indica*	Neem	नीम
45. *Juglans regia*	Walnut	वालनट
46. *Asparagus sp.*	Asparagus	सतावर
47. *Dactylis glomerata*	Orchard grass	आर्चर्ड घास
48. *Secale cereale*	Rye	राई
49. *Oryza sativa*	Rice	धान
50. *Triticum aestivum*	Wheat	गेहूँ
51. *Zea mays*	Corn	मक्का
52. *Avena sativa*	Oats	जई
53. *Festuca anundinacea*	Tall fescue	टालफेस्क्यू
54. *Picea glauca*	White spruce	सफेद स्प्रूस

स्रोत : एलीमेंट्स ऑव बायोटेक्नोलॉजी, लेखक : डॉ. पी. के. गुप्ता, प्रथम संस्करण का पुनर्मुद्रण, 1999, पृष्ठ 369-370

कीट या जीव-जन्तुओं के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, तो उन्हें क्षति होती है। शोध करने वालों ने यह भी पता लगाया कि जब सम्राट तितली के लारवे (larvae) 'मिल्क वीड' (Milkweed) की ऐसी पत्तियों पर पाले गए जिन पर ट्रांसजीनिक मक्के के पराग का छिड़काव किया गया था, तो लारवों ने भोजन कम खाया, अपेक्षाकृत धीमी गति से पले-बढ़े और मृत्युदर भी अधिक थी।

उपरोक्त खोज से एक बात जो उभर कर स्पष्ट रूप से सामने आती है वह यह है कि ट्रांसजीनिक पौधों के बीजों को बाज़ार में बिक्री के लिए लाने के पूर्व उनसे उगे पौधों पर अधिक शोध की आवश्यकता है अन्यथा लेने के देने पड़ जायेंगे और मानवहितकारी जैव-प्रौद्योगिकी की शोधों को भारी झटका लगेगा। और तो और, जैव-प्रौद्योगिकी से मानवता के हित में होने वाली ढेरों उपलब्धियाँ भी विवाद के घेरे में आकर जहाँ की तहाँ, धरी की धरी रह जायेंगी। अतएव ट्रांसजीनिक पादपों अथवा जानवरों को विकसित करने की दिशा में बहुत समझदारी और विवेक से काम लेने की आवश्यकता है।

—पूर्व सम्पादक, "विज्ञान"
विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद-211002

ऊर्जा जागरण शताब्दी की ओर भारत

रामचन्द्र मिश्र

सतत विकास, आर्थिक वृद्धि तथा मानव जीवन की गुणवत्ता में निर्णायक सुधार हेतु ऊर्जा की बहुआयामी भूमिका में अभूतपूर्व विस्तार हो रहा है। भारत जैसा विकासशील देश, जो विकसित देश होने के निकट है, ऊर्जा संबंधी नाटकीय परिवर्तनों का अग्रणी देश बन सकता है। वैसे सामान्य आशंका यह है कि वर्तमान में चल रहा ऊर्जा-संकट हो न हो महासंकट में परिणत हो जाय। इस अवधारणा के अपने ही कारण हैं। विगत एक सौ वर्षों में मनुष्य ने जितने ऊर्जा - संसाधनों का दोहन किया है वह मात्रा उसके पूर्व की कई शताब्दियों में हुई कुल ऊर्जा खपत से कहीं ज्यादा है। सारांशतः यह क्रम भयावह है।

वस्तुतः ऊर्जा आपूर्ति का स्वरूप प्रत्येक देश के 'खाद्य-ईंधन-वन-चक्र' पर विभिन्न परिमाण में निर्भर रहा है और उसी रूप में वहां की अर्थव्यवस्था एवं पर्यावरण का नियंत्रण करता रहा है। इस प्रकार अविकसित, विकासशील तथा विकसित देशों पर ऊर्जा-प्रभाव भिन्न-भिन्न रूपों में होता रहा है, उनकी औद्योगिक, विकासात्मक एवं आर्थिक व्यवस्था या तो छिन्न- भिन्न हुई है या उसमें कठिन असंतुलन आए हैं, या फिर मात्र अल्पकालीन प्रभाव ही पड़े हैं।

गत वर्षों में अत्यधिक ऊर्जा-खपत के कारण उत्पन्न अनिष्टकर पर्यावरणीय कुप्रभाव और विशेषतः भूमंडलीय उष्णन जैसी दूरगामी क्षति एवं इसके समयबद्ध नियंत्रण हेतु अंतर्राष्ट्रीय माध्यताओं के चलते ऊर्जा प्रबंधन-कार्य जटिल से जटिलतम होता जा रहा है। स्पष्ट है कि ऊर्जा-संतुलन प्राप्त करना हर देश का और पूरे विश्व का एक संयुक्त लक्ष्य बन गया है और यह राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय नीतियों का हिस्सा है।

आधारभूत ऊर्जा-तत्वों, कार्बन तथा हाइड्रोजन के स्रोत यानी हाइड्रोकार्बन के दो प्रमुख साधनों-कोयला और पेट्रोलियम की मांग में भारी वृद्धि और इसके साथ ही अव्यापारिक ईंधन स्रोतों की खपत पर आश्रित ऊर्जा आपूर्ति की निर्भरता, इन दो दशाओं को ध्यान में रखते हुए ''ऊर्जा-सक्षम एवं पर्यावरणीय-अनुकूल भारत'' का विकास करना 21वीं शताब्दी की एक बड़ी चुनौती है। जनसंख्या में उत्तरोत्तर विस्फोट के कारण सीमित ऊर्जा संसाधनों द्वारा असीमित ऊर्जा का संभरण करना वर्तमान प्रणाली में असंभव कार्य प्रतीत होता है। हां, इस संबंध में एक बात जो प्रायः भुला दी गई है वह यह है कि हमारे पास ऐसी प्रणाली की भी जानकारी है जिसकी बदौलत ऊर्जा संबंधी नव जागरण एवं ऊर्जा-संकट का युक्तियुक्त समग्र समाधान संभव हो सकता है। तो आइए, भारत को ऊर्जा जागरण शताब्दी की ओर ले चलने वाली युक्तियों के बारे में संभावनाओं को खोजें।

विश्व ऊर्जा परिदृश्य

सर्वप्रथम विश्वमंडलीय ऊर्जा परिदृश्य का एक विहंगावलोकन उपयोगी होगा, जो ऊर्जा समस्या के समाधान में मार्गदर्शक होगा।

- विश्व की आबादी जो अभी 6 अरब है, वर्ष 2050 में 12 अरब 50 करोड़ के लगभग हो जाएगी और तब ऊर्जा-मांग को वर्तमान प्रणाली के रहते पूरी करना असंभव सा होगा।
- विश्व में कोयले की उपलब्धि आगामी शताब्दी में कायम रहेगी किन्तु तेल की उपलब्धि 2025 के बाद संवेदनशील उपयोगों के लिए छोड़कर अन्य सामान्य कार्यों हेतु नियमित रूप से यह अनुपलब्ध होगा।
- विश्व की आधी आबादी के लिए नवीकरणीय ऊर्जा का स्रोत फिलहाल जलावन लकड़ी तथा अन्य अव्यापारिक ईंधन हैं और यह विश्व की कुल ऊर्जा आपूर्ति का 15 प्रतिशत हिस्सा प्रदान करते हैं।

- जलविद्युत् को छोड़कर अन्य नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों की भागीदारी प्रायः नगण्य है।
- जलविद्युत् जनन 6 प्रतिशत तथा नाभिकीय ऊर्जा का निर्माण 5 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है।
- व्यापारिक ऊर्जा का हिस्सा 80 प्रतिशत जिसका 75 प्रतिशत हिस्सा जीवाश्म ईंधनों के रूप में है, और विश्व के कुल ऊर्जा-स्रोतों में 60 प्रतिशत हिस्सा जीवाश्म ईंधनों का है।
- वायु-प्रदूषण तथा भूमंडलीय उष्णन पैदा करने के लिए यही जीवाश्म ईंधन जिम्मेदार हैं जिसके कारण मनुष्य के लिए रहने के योग्य स्वस्थ अप्रदूषित क्षेत्र दिनों दिन घटते जा रहे हैं।

अब भारत की स्थिति पर नज़र डालें । सालाना 1.6 करोड़ की मौजूदा वृद्धि दर पर 2050 में भारत की आबादी वर्तमान में 1 अरब से बढ़कर 1.6 अरब हो जायेगी जो चीन की आबादी से ज़्यादा होगी, यानी भारत विश्व का सर्वाधिक आबादी वाला देश होगा। अतः ऊर्जा-स्रोतों के संबंध में भारत की स्थिति औसत से ऊपर होने के बावजूद प्रति कैपिटा ऊर्जा उपलब्धि के रूप में चिंतनीय है। भारत में कोयला की राशि 20,624 करोड़ टन तथा भूरा कोयला लिग्नाइट की राशि 2,750 करोड़ टन है। ऊर्जा-आपूर्ति में कोयले का हिस्सा 67 फीसदी है और अगले 120 वर्षों तक कोयला उपलब्ध रहेगा। अपेक्षाकृत पेट्रोलियम तेल की उपलब्धि अत्यल्प है, अतः तीन-चौथाई से ज़्यादा खपत की पूर्ति आयात किए गए कच्चे तेल द्वारा होती है। भारत में विद्युत्-निर्माण की क्षमता 89,167 मेगावाट है जिसमें 2 1,891 मेगावाट जल विद्युत्, 64,151 ताप विद्युत्, 900 मेगावाट पवन विद्युत् एवं 2,225 मेगावाट नाभिकीय विद्युत् के रूप में हैं। आगामी वर्ष तक विद्युत् क्षमता में 3,300 मेगावाट की वृद्धि की आशा है। विद्युत् की खपत में 2.8 प्रतिशत की वृद्धि-दर स्थिर है किन्तु आगामी वर्षों में विद्युत् की मांग घरेलू क्षेत्र में 8.8 तथा औद्योगिक क्षेत्र में 2.2 प्रतिशत दर से बढ़ सकती है। प्रति कैपिटा कुल ऊर्जा खपत में भारत का स्थान कुछ विकासशील देशों से भी नीचे है।

ऊर्जा-संकट, कारण एवं निवारण

विचारणीय समस्या यह है कि भारत में विभिन्न क्षेत्रों में ऊर्जा की उपलब्धि में कई विषमताएं एवं असमानताएं हैं और साथ ही ईंधन-दहन की निम्नतर दक्षता, विद्युत्-निर्माण एवं उपयोग की निम्न दक्षता, उपयोग में ऊर्जा की भारी क्षति आदि के कारण ऊर्जा-परिदृश्य उत्साहजनक नहीं है। 'तेल बचाओ', 'बिजली बचाओ', 'ऊर्जा बचाओ' आदि नारे प्रायः मौखिक संकल्प बन कर रह जाते हैं। ऊर्जा प्रबंधन में ढील और उपयोग के स्तर पर लापरवाही के कारण ऊर्जा के आयोजन एवं वास्तविक स्थिति की बीच खाई चौड़ी होती गई है। वैसे इसके लिए चार प्रमुख कारण जिम्मेदार हैं, जिनके समाधान करने पर एक उत्साहजनक ऊर्जा-परिदृश्य प्राप्त हो सकता है।

(1) कोयले के उत्पादन एवं उपयोग की दक्षता में वृद्धि करता तथा इसकी आपूर्ति एवं मूल्य में स्थायित्व लाना संपूर्ण ऊर्जा क्षेत्र में सुधार हेतु अपेक्षित है। कोयले का 60, 20 एवं 10 प्रतिशत उपयोग क्रमशः ताप विद्युत्-जनन, इस्पात-निर्माण एवं सीमेंट कारखानों में होता है। शेष 10 प्रतिशत कोयले का उपयोग रेलवे, रासायनिक खाद एवं रसायन निर्माण, ईंट-निर्माण एवं कोक-उत्पादन हेतु किया जाता है। कोयला-प्रौद्योगिकी, जैसे - कोयला गैस निर्माण, सुधरी हुई दक्ष दहन तकनीकों का विकास एवं व्यापक प्रयोग, अधूम कोक-निर्माण आदि की ओर निर्णायक प्रयास अविलंब होने चाहिए।

(2) पेट्रोलियम तेल की प्राप्ति हेतु मात्र खाड़ी-क्षेत्र पर निर्भरता पूरे ऊर्जा-क्षेत्र में आए दिनों असुरक्षित दशाएं करती हैं। प्रथम आवश्यकता तो यह है कि ऊर्जा-नीति द्वारा आयातित तेल पर निर्भरता घटाई जाए तथा विदेश नीति में समुचित परिवर्तन कर आयातित तेल के अन्य स्रोत ढूंढ़े जाएं और पड़ोसी देशों के प्राकृतिक गैस की प्राप्ति सुनिश्चित की जाए। साथ ही कोयले से तेल-निर्माण के विकल्प को निकट भविष्य में गंभीरता से लिया जाए। वाहनों के लिए एलको-हॉल, मीथेन, हाइड्रोजन आदि पर आधारित वैकल्पिक ईंधनों के प्रयोग को व्यावहारिक बनाएं। डीजल तेल पर दबाव घटाने के लिए रेलों तथा सिंचाई पंपों का विद्युतीकरण अपेक्षित है। निजी वाहनों की बेशुमार बढ़ती संख्या को एक समय-बिन्दु पर नियंत्रित करना अपरिहार्य है।

(3) विविध ऊर्जा आपूर्ति संगठनों की निम्न प्रबंधकीय दक्षता एवं आर्थिक दशा में सुधार लाना नितांत आवश्यक है। राज्य विद्युत् मंडलों को घाटे पर चलाना ऊर्जा प्रबंधन की कमी का परिणाम है। कई ताप-विद्युत् 20 प्रतिशत दक्षता से भी नीचे कार्य कर रहे हैं जो दर्शाता है कि ऊर्जा प्रबंधन की अवहेलना की जा रही है। अतः विद्युत्-जनन प्रौद्योगिकी को प्रोन्नत करने के साथ ही प्रबन्धन एवं आर्थिक स्थिति को

भी प्रोन्नत करना होगा। विद्युत्-संयंत्रों के अधिका- धिक विस्तार हेतु पूंजी निवेश की चुनौतियों से निपटना सबसे कठिन समस्या है।

(4) ऊर्जा क्षेत्र प्रदूषण का सबसे बड़ा स्रोत है। ताप-विद्युत्-जनन तथा वाहनों द्वारा सर्वाधिक प्रदूषण हो रहा है। इसकी रोकथाम के लिए कानून, तकनीकी एवं प्रोत्साहन की व्यवस्थाएं मौजूद हैं किंतु इनका कार्यान्वियन कारगर एवं निर्णायिक रूप से प्रभावी नहीं हो पाया है। इन उपायों को लागू करने वाले तंत्रों को दक्ष बनाना और सख्ती से जवाबदेही सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। ऊर्जा के क्षेत्र में दी गई कुछ रियायतों एवं छूट के कारण भी अपव्यय एवं प्रदूषण दोनों को जाने-अनजाने बढ़ावा मिल रहा है, इसे रोकना होगा।

उपरोक्त समस्याओं का समाधान करते हुये भारत के लिए वर्तमान प्रणाली के अंदर ऊर्जा-परिदृश्य बनाया जा सकता है, जो ऊर्जा-संकट से निपटने के लिए अविलंब जरूरी है। वर्ष 2020 तक के लिए 'ऊर्जा-सक्षम, पर्यावरण-अनुकूल भारत'' का परिदृश्य यों है :

- ईंधन के लिए लकड़ी की खपत घटाते हुए वर्ष 2020 तक नगण्य स्तर तक लाया जाए,
- नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों की भागीदारी में सर्वाधिक वृद्धि लाई जाए,
- स्वदेशी ऊर्जा संसाधनों के प्रयोग की दक्षता एवं आर्थिक स्थिति में अधिकाधिक सुधार हो,
- ऊर्जा के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी आधारित उच्च प्रबंधन क्रिया लागू की जाए, तथा देश में उपलब्ध कोयला, तेल एवं प्राकृतिक गैस की राशि तथा इनकी उपलब्धि की अवधि को देखते हुए दीर्घकालीन ऊर्जा-नीति का विकास हो।

ऊर्जा जागरण की ओर

वस्तुतः ऊर्जा के क्षेत्र में नव जागरण की सबसे ज्यादा आशाएं गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा समुद्रीय ऊर्जा, भूव्यावर्ती ऊर्जा, हाइड्रोजन आधारित ऊर्जा प्रणालियां, जैव अवशिष्ट आदि से हैं। विशेषतया सौर ऊर्जा के क्षेत्र में भारत की स्थिति संभावनाओं से युक्त है। यह नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत सतत उपलब्धहै तथा प्रदूषणमुक्त है। इन स्रोतों के विकास में एक अच्छा आधार बन चुका है। सौर ऊर्जा द्वारा विद्युत् -निर्माण की रोमांचकारी सफलताएं मिलेंगी। वस्तुतः सिलिकॉन सौर बैटरी के क्षेत्र में भारत चोटी के तीन देशों में एक है। यह ऊर्जा स्रोत प्रचुर परिमाण में सर्वत्र उपलब्ध है, किन्तु इसके विकास की तकनीक उच्च-स्तरीय एवं मंहगी है। गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोत का अलग मंत्रालय केन्द्र सरकार के अंतर्गत कार्यरत है। इस मंत्रालय की देखरेख में अनुसंधान एवं विकास की अधुनातन सुविधाएं स्थापित की गई हैं। सौर ऊर्जा का प्रयोग भारत में तेज़ी से बढ़ रहा है और निकट भविष्य में 'सौर-समाज' की चिरसंचित अभिलाषा साकार रूप ले सकेगी। नवीकरणीय ऊर्जा विकास संबंधी देश की कुछ उपलब्धियाँ तालिका में दर्शाई गई हैं।

भारत में नवीकरणीय ऊर्जा : संभावनाएं एवं उपलब्धियां

स्रोत/प्रणाली	संभावनाएं	उपलब्धि
जैवसंयंत्रों की संख्या	120 लाख	27 लाख
सुधरे हुए अधूम चूल्हे	12 करोड़	285 लाख
जैवमात्रा-गैस संयंत्र	17,000 मेगावाट	30 मेगावाट
खोई आधारित सह-जनन संयंत्र	3,500 मेगावाट	85 मेगावाट
सौर प्रकाशवोल्टीय विद्युत्	20 मेगावाट/वर्ग किमी	32 मेगावाट (योग)
सौर-तापीय विद्युत्	35 मेगावाट/वर्ग किमी	3,80,000 वर्ग मी०
सौर जल उष्मा प्रणाली	3 करोड़ वर्ग मी० संग्रहण क्षेत्र	—
पवन ऊर्जा	20,000 मेगावाट	970 मेगावाट
लघु जल विद्युत् संयंत्र	10,000 मेगावाट	155 मेगावाट

समन्वित ग्रामीण ऊर्जा प्रणाली	—	860 विकास-खंड
ऊर्जाग्राम परियोजना	—	256
ऊर्जा-उद्यान	—	140
पवन-पंप	—	452
मिश्र विद्युत् प्रणाली	—	35 किलोवाट
सौर-पंप	—	2,481
सौर-चूल्हे	—	4,56,674
कचरे से विद्युत्	—	4.75 मेगावाट इ.
बैटरीचालित वाहन	—	207
ऐलकोहॉलचालित वाहन	—	578

आशा की जाती है कि भविष्य में अधिक गहराई के भूस्तरों से कोयला और पेट्रोलियम की नई राशि मिलेगी। किन्तु सबसे ज्यादा नाटकीय उपलब्धि नियंत्रित ताप नाभिकीय ऊर्जा की प्राप्ति होगी, जो 21वीं सदी के ऊर्जा-परिदृश्य को आसान बना सकती है। सौर-मंडल के अन्य पिंडों से भी ऊर्जा प्राप्ति की आशाएं संजोई गई हैं। एक परिकल्पना के अनुसार चंद्र-तल से ऊर्जा संग्रह कर धरती पर भेजने की संभावनाएं खोजी गई हैं। अंतरिक्ष में विशाल दर्पण-यंत्रों द्वारा सौर ऊर्जा को बटोरने और उसे सूक्ष्म-तरंगों के रूप में धरती पर पहुंचाने की भी संभावना बताई गई है। सैद्धांतिक तौर पर यह भी आशा है कि द्रव्य को ऊर्जा में तथा ऊर्जा को द्रव्य में बदलने की क्रिया का इस्तेमाल कर अंततः ऊर्जा समस्या को सुलझाया जा सकेगा। फिलहाल यह सब सैद्धांतिक स्तर पर ही सही है। सीमित स्रोतों से असीमित ऊर्जा-दोहन की असंभावना से मनुष्य आशंकित है। इस आंशका का हल संभवतः प्रौद्योगिकी में नहीं बल्कि जीवन-प्रणाली में सुधार की बदौलत संभव है।

ऊर्जा का संपूर्ण रामायण

आज की खाऊ उपभोक्ता (अप) संस्कृति ऊर्जा स्रोतों के अतिशय दोहन पर आश्रित है, जो तीव्र गति से क्षीण हो रहे हैं। अनावश्यक कार्यों एवं भोग-विलास के लिए ऊर्जा का अवांछनीय उपभोग एवं बरबादी तक की जा रही है। उपभोग में लिप्त अविवेकी मनुष्य भावी पीढ़ियों के लिए संसाधनों के संरक्षण की बात सोचता भी नहीं हैं। इस प्रकार अति उपभोगी जीवन प्रणाली ने मनुष्य को ऐसे चौराहे पर ला खड़ा कर दिया है जहां से विवेक, मितव्ययिता एवं नैतिकता का रास्ता दूभर दीखता है तथा आंख मूद कर भोग-विलास करने का रास्ता सरल प्रतीत होता है, यद्यपि इस रास्ते का अंतिम पड़ाव महासंकट और अतंतः जीवपोषी तंत्र का विनाश है। स्पष्ट है कि ऊर्जा - खपत में जब तक हम विवेक द्वारा नियंत्रित नहीं होंगे तब तक सिर्फ अल्पकालिक या अस्थाई हल ही संभव होंगे।

ऊर्जा समस्या का संपूर्ण हल बगैर गांधी-दर्शन के असंभव होगा। महात्मा गांधी ने संसाधनों के न्यायपूर्ण बँटवारे और प्राणि मात्र के कल्याण हेतु अपरिग्रह पर जोर दिया था, यानीं जरूरत से ज्यादा चीजों के लिए लोभ का वरण करना। उन्होंने कहा था कि सभी की आवश्यकता के लिए प्रकृति के पास सब कुछ है किंतु लोभ के लिए कुछ नहीं। अतः सतत विकास को लक्ष्य बना कर संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग तक ही हमें सीमित रहना है। इसके लिए उपभोग संबंधी असमानताओं को दूर करना तथा जनसंख्या-नियंत्रण पूर्व-आवश्यकताएं हैं। यदि कोई कहे कि विवेकपूर्ण उपभोग के दिन लद गए हैं तो यह विनाश को आलिंगन करने जैसा होगा।

ज्ञातव्य है कि औद्योगिक क्रांति के पूर्व दो अन्य क्रांतियां भी हो चुकी है। पहली पाषाण-युग में और दूसरी दस हजार वर्ष पूर्व की कृषि क्रांति के रूप में। अगर भविष्य में चौथी क्रांति संभव होगी तो वह निश्चय ही गांधी-दर्शन पर आधारित अपरिग्रह एवं मितव्ययिता के साथ संसाधनों के विवेकपूर्ण एवं सतत सुप्रयोग की संस्कृति होगी, जिसमें ऊर्जा और पर्यावरण समस्या का समग्र समाधान निहित होगा। ऐसी संस्कृति को लाना बड़ा ही कठिन कार्य है, इसके रास्ते में बड़े-बड़े रोड़े हैं, किन्तु अंततः यह संस्कृति आएगी अवश्य, और तभी ऊर्जा का संपूर्ण रामायण लिखा जाएगा।

हिंदी में कंप्यूटर के भाषिक अनुप्रयोग

विजय कुमार मल्होत्रा

इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक कंप्यूटर का उपयोग सर्वप्रथम दूसरे महायुद्ध के दौरान जर्मन सेना के गुप्त संदेशों को जानने के लिए किया गया था और एटम बम से संबंधित गणनाओं के लिए भी इसका उपयोग किया गया था; किंतु उसी युग में लगभग सन् 1949 के आसपास प्रसिद्ध गणितज्ञ वारेन वीवर यह महसूस करने लगे थे कि कंप्यूटर की तार्किक प्रणाली का उपयोग अंकीय गणनाओं के अलावा भाषा संबंधी संश्लेषण, विश्लेषण और संसाधन के लिए भी किया जा सकता है। किंतु भाषा के संदर्भ में कंप्यूटर का समुचित और सफल उपयोग तभी संभव था जब भाषाविद् एक ऐसी कलनविधि (algorithm) विकसित कर लें जिसकी सहायता से भाषिक सिद्धांतों और प्राकृतिक भाषाओं की प्रक्रियाओं को सही तौर पर वर्णित किया जा सकता हो। वीवर के युग में भाषा-संरचना के नियम इतने रीतिबद्ध (formalised) नहीं थे कि उनकी सहायता से प्राकृतिक भाषाओं का ध्वन्यात्मक, रूपात्मक और शब्दात्मक विश्लेषण असंदिग्ध रूप से किया जा सके। किंतु पिछले तीन दशकों में कंप्यूटर और भाषा-विज्ञान दोनों ही क्षेत्रों में इतनी बड़ी क्रांति आई है कि अब कंप्यूटर की ही सहायता से भाषा संबंधी नियमों को विश्लेषित और परिभाषित करके एक ऐसी कलनविधि का विकास किया जा सकता है, जिससे भाषा संबंधी संश्लेषण और संसाधन का कार्य सरलता से किया जा सके।

यह एक ऐतिहासिक संयोग ही है कि कंप्यूटर का विकास सर्वप्रथम ऐसे देशों में हुआ जिनकी भाषा मुख्यतः अंग्रेजी या रोमन लिपि पर आधारित कोई यूरोपीय भाषा थी। कदाचित् यही कारण है कि रोमनेतर भाषाओं मं कंप्यूटर साधित भाषा विश्लेषण का कार्य देरी से आरंभ हुआ। इस बात में भी कोई संदेह नहीं है कि रैखिक (linear) लिपि के कारण रोमन के माध्यम से सूचना संसाधन का कार्य अपेक्षाकृत सरल भी है। यह भी सत्य है कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार और व्यवहार की प्रमुख भाषा होने के कारण गैर रोमन लिपियों के लिए विकसित अधिकांश कंप्यूटरों में रोमन लिपि के माध्यम से संश्लेषण, विश्लेषण और संसाधन की सुविधा भी वैकल्पिक रूप में विद्यमान है। इसके अलावा बेसिक, कोबोल, फोर्ट्रॉन आदि उच्च स्तरीय भाषाएँ भी रोमन में ही हैं और उनके समादेश (commands) भी अंग्रेजी में ही हैं; जैसे LET, PUT, PRINT आदि। किंतु इस बात का कोई तकनीकी कारण नहीं है कि रोमन लिपि या अंग्रेजी कंप्यूटर के लिए आदर्श भाषा समझी जाए। वस्तुतः कंप्यूटर की दो संकेतों की अपनी एक स्वतंत्र गणितीय भाषा है और उसीमें वे हमारी भाषाओं को ग्रहण करके अपने सारे कार्य करते हैं। इसलिए कंप्यूटर के लिए किसी भी भाषा को अपनाने में कोई तकनीकी बाधा नहीं है।

देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक विधि है। भारतीय भाषाएँ विश्व की अनेक भाषाओं की तुलना में वाक्य विज्ञान, ध्वनि विज्ञान और रैखिक दृष्टि से अधिक सुनियोजित हैं। अमेरिकी वैज्ञानिक श्री रिक ब्रिग्ज की यह धारणा है कि संस्कृत भाषा कंप्यूटर प्रोग्राम की दृष्टि से आदर्श भाषा है। इसलिए देवनागरी लिपि में कंप्यूटर पर काम करना कठिन नहीं है। शब्द संसाधन (word processing) भाषा सं साधन का आरंभिक और महत्त्वपूर्ण सोपान है। इसके मुख्यतः तीन क्षेत्र हैं–अंकीय निरूपण (digital representation), कुंजीयन और मुद्रण। यह तो स्पष्ट ही है कि कंप्यूटर में सारी गणनाएँ केवल दो संकेतों (0 और 1) की होती हैं। केवल गणित को ही नहीं, तार्किक कथनों को भी 'हाँ' या 'नहीं' के बीजगणित में ढाला जा सकता है। यही कारण है कि तार्किक चिंतन को अपनाने में कंप्यूटर समर्थ बन गए हैं। विभिन्न लिपियों के माध्यम से भाषा के कुंजीयन के लिए द्वि-आधारी कोड

(binary code) बनाए गए हैं। रोमन लिपि के कोड को आस्की-7 कोड (American Standard Code for Information Interchange) कहा जाता है। इस 7-अंकीय कोड में रोमन लिपि के सभी अक्षर हैं, अंक और विराम चिह्न समाहित हो जाते हैं। फ्रांसीसी, जर्मन, इतालवी, पुर्तगाली और स्पेनिश आदि भाषाओं में प्रचलित विशेषक चिह्नों (diacretric marks) को भी इसमें शामिल किया गया है। जैसे 'A' के लिए 01000001 आदि। रोमनेतर भाषाओं के लिए भी रोमन लिपि पर आधारित प्रणाली ही आरंभ में विकसित हुई। इसे श्री जोजफ डी० बेकर के नेतृत्व में जीरोक्स कॉर्पोरेशन, अमेरिका द्वारा विकसित किया गया और 'स्टार' नाम से प्रख्यात इस बहुभाषी सॉफ्टवेयर में चीनी, जापानी, कोरियन, अरबी, हिब्रू और थाई भाषाओं के साथ-साथ हिंदी भाषा के पाठों को भी रोमन लिपि के माध्यम से कुंजीयन करके कंप्यूटर में डेटा निवेश (input) किया जाता था और उसका निर्गम (output) या मुद्रण अपेक्षित भाषा की लिपि में ही किया जाता था। आज भी अमेरिका में बहुभाषी शब्द संसाधन के लिए यह प्रणाली बहुत लोकप्रिय है। इतना ही नहीं, अमेरिका में बहुभाषी डेस्क प्रकाशन (Desk Top Publishing) के लिए भी इसी सॉफ्टवेयर का अधिकांशतः उपयोग किया जाता है।

रोमनेतर लिपियों में इतनी अधिक भिन्नता है कि उन्हें एक कुंजीपटल पर लाना कोई सहज कार्य नहीं है। अरबी और हिब्रू दाएँ और बाएँ लिखी जाती हैं। चीनी लिपि अधिकांशतः ऊपर से नीचे की तरफ लिखी जाती है। चीनी एक रूपमिक (morphemic) लिपि है। इसमें 65,536 भावचित्र (ideographs) हैं और प्रत्येक भावचित्र का अलग-अलग अर्थ है। ऐसी वैविध्यपूर्ण और विशिष्ट लिपि को 'स्टार' के अंतर्गत 1284 रोमन अक्षरों में लिप्यंतरित किया गया है। कोरियन लिपि में अनेक अक्षरों का गुच्छ (cluster) बन जाता है। इसे 1443 रोमन अक्षरों में समाहित किया गया है। जापानी लिपि में भी लगभग 50,000 भावचित्र हैं। इन्हें जापानी भाषा में 'कंजी' कहा जाता है। इन तमाम भावचित्रों को रोमन के 2000 से 3000 अक्षरों में समाहित किया गया है। जहाँ तक भारतीय भाषाओं का संबंध है, भारत में 18 संविधान-सम्मत भाषाएँ हैं और ये भाषाएँ 10 अलग-अलग लिपियों में लिखी जाती हैं; किंतु सभी भाषाएँ ध्वन्यात्मक हैं और उर्दू को छोड़कर शेष भाषाओं की वर्णमाला भी एक है। इन सभी लिपियों को 'स्टार' के अंतर्गत रोमन लिपि के माध्यम से निवेश (input) करने के लिए विशेष व्यवस्था की गई है। सामान्यतः कंप्यूटर में सूचनाएँ बाइट की इकाइयों में संगृहीत की जाती हैं और प्रत्येक बाइट में 8 बिट होते हैं। 7 बिट आस्की कोड एक बाइट में ही समाहित है। इसलिए रोमन लिपि में लिखित यूरोपीय भाषाओं का संसाधन एक ही बाइट में हो जाता है। एक बाइट की यह कोडिंग प्रणाली केवल उन भाषाओं पर ही लागू हो सकती है जिनके अक्षरों की संख्या 256 या उससे कम हो। किंतु सभी रोमनेतर लिपियों के अक्षरों की संख्या इससे कहीं अधिक है। यदि एक बाइट से अधिक का स्मृति कोश बनाया जाए तो रोमन, फ्रांसीसी, जर्मन, रूसी और इतालवी लिपियों के लिए कुल स्मृति कोश का दो-तिहाई हिस्सा अप्रयुक्त होने के कारण बेकार पड़ा रहेगा। इस स्थिति से निबटने के लिए लचीली आंतरिक कोडिंग प्रणाली विकसित की गई और प्रत्येक लिपि के लिए अलग-अलग द्वि-आधारित (binary) कोड संख्या दे दी गई। भारतीय भाषाओं के कुंजीयन के लिए अलग विधि अपनाई गई। इस विधि के अंतर्गत आंतरिक संसाधन के लिए संप्रतीकों (characters) को सीधे स्मृति कोश में संगृहीत करने के बजाय उनकी मूल ध्वनियों को ही संगृहीत किया जाता है। इसलिए संप्रतीकों का कोड बनाने के बजाय ध्वनियों का कोड बनाया गया है। इस प्रकार के ध्वन्यात्मक कोड के अनेक लाभ हैं। भारतीय भाषाओं में संप्रतीकों की कुल संख्या 256 से कहीं अधिक है; लेकिन मूल

इन्हें जापानी भाषा में 'कंजी' कहा जाता है। इन तमाम भावचित्रों को रोमन के 2000 से 3000 अक्षरों में समाहित किया गया है। जहाँ तक भारतीय भाषाओं का संबंध है, भारत में 18 संविधान-सम्मत भाषाएँ हैं और ये भाषाएँ 10 अलग-अलग लिपियों में लिखी जाती हैं; किंतु सभी भाषाएँ ध्वन्यात्मक हैं और उर्दू को छोड़कर शेष भाषाओं की वर्णमाला भी एक है। इन सभी लिपियों को 'स्टार' के अंतर्गत रोमन लिपि के माध्यम से निवेश (input) करने के लिए विशेष व्यवस्था की गई है। सामान्यतः कंप्यूटर में सूचनाएँ बाइट की इकाइयों में संगृहीत की जाती हैं और प्रत्येक बाइट में 8 बिट होते हैं।

ध्वनियों की संख्या 55 है। इन ध्वनियों में ही पूरी देवनागरी लिपि को समाहित किया जा सकता है। इस प्रकार किसी भी भारतीय भाषा के लिए 7-बिट आस्की कोड अपनाया जा सकता है।

यद्यपि यह प्रणाली अत्यंत सरल और सुगम है, लेकिन विभिन्न लिपियों की जटिलताओं और सूक्ष्मताओं को अभिव्यक्त करने में रोमन लिपि की सीमाओं के कारण अमेरिका के बाहर यह प्रणाली अधिक लोकप्रिय नहीं हुई। इस प्रणाली से काम करने के लिए रोमन लिपि का ज्ञान आवश्यक था, इसलिए अलग-अलग देशों में अपनी-अपनी लिपियों के माध्यम से पाठों के कुंजीयन के लिए अनेक युक्तियाँ विकसित की गईं। भारत में विभिन्न भाषाओं के माध्यम से 'डॉस' परिवेश के अंतर्गत शब्द संसाधन का कार्य करने के लिए अनेक बहुभाषी शब्द संसाधन पैकेज बाजार में मिलते हैं। इनमें प्रमुख हैं– 'अक्षर', 'शब्दमाला', 'शब्दरत्न', 'आलेख', 'भारती', 'ब्राइस्क्रिप्ट', 'मल्टी वर्ड' आदि। किंतु 'शब्द संसाधन' की सीमाओं के कारण विभिन्न भारतीय भाषाओं के माध्यम से भाषा संबंधी संश्लेषण, विश्लेषण और संपादन का कार्य इन सॉफ्टवेयर पैकेजों के जरिए करना संभव नहीं है। यही कारण है कि भारत में और विदेशों में भी भारतीय भाषाओं के अध्ययन-विश्लेषण का कार्य रोमन लिपि के माध्यम से ही चलता रहा है। डेटा संसाधन की सुविधा के बिना भाषा संसाधन का कार्य भारतीय लिपियों के जरिए व्यापक रूप में करना संभव नहीं था। इस कमी को पूरा करने के लिए दिल्ली स्थित सॉफ्टेक कंपनी ने डी-बेस-III प्लस के मानक पैकेज का द्विभाषी संस्करण 'देवबेस' के नाम से विकसित किया और बेसिक, कोबोल आदि कंप्यूटर की उच्च स्तरीय प्रोग्रामिंग भाषाओं के अनुभाषक (compiler) भी विकसित किए।

किंतु उसके बाद स्थिति बदल गई। आई० आई० टी०, कानपुर ने जिस्ट (Graphics and Indian Script Terminal) तकनीक पर आधारित एक ऐसी हार्डवेयर युक्ति का विकास किया, जिसके माध्यम से सभी भारतीय लिपियों में और साथ ही रोमन लिपि में भी हर प्रकार के पाठ का कुंजीयन और संसाधन किया जा सकता था। रोमन लिपि के लिए स्वीकृत आस्की-7 कोड भारतीय भाषाओं के लिए भी पर्याप्त था; किंतु एक ही कोडिंग प्रणाली में भारतीय भाषाओं और रोमन लिपि को एक साथ समाहित करने के लिए 8 बिटों या अंकों की जरूरत पड़ती है। इसलिए भारत सरकार के इलेक्ट्रॉनिकी विभाग ने अगस्त 1986 में 8-बिट की परिवर्धित कोड प्रणाली को अनुमोदित किया, जिसे 8-बिट इस्की कोड (Indian Script for Standard Code Information Interchange) कहा जाता है। भारत में प्रचलित अधिकांश सॉफ्टवेयर या हार्डवेयर युक्तियाँ इसी 8-बिट इस्की कोड पर आधारित हैं। कुंजीयन के लिए भी सभी भारतीय लिपियों के लिए एक ही ध्वन्यात्मक कुंजीपटल स्वीकार किया गया है; किंतु भारत सरकार ने सभी भारतीय लिपियों के लिए एक समन्वित उपागम (approach) अपनाने का निर्णय लिया है, ताकि भारतीय भाषाओं और लिपियों में अंतर्निहित समान विशेषताओं का भरपूर लाभ उठाया जा सके। वैसे तो अधिकांश रोमनेतर लिपियों के लिए आज ध्वन्यात्मक कुंजीपटल लोकप्रिय होने लगे हैं; जैसे चीनी लिपि के लिए 'पिनयिन' कुंजीपटल का निर्माण अत्यंत वैज्ञानिक और व्यावहारिक उपागम है। सभी भारतीय लिपियों के लिए समान कुंजीपटल होने के कारण और समान कोडिंग प्रणाली होने के कारण उनमें लिप्यंतरण की सुविधा भी सहज रूप से उपलब्ध हो जाती है। जैसे देवनागरी में यदि किसी पाठ का कुंजीयन किया जाए तो उस पाठ को बँगला या किसी अन्य भारतीय भाषा में भी सिर्फ एक कुंजी दबाकर लिप्यंतरित किया जा सकता है। यह सुविधा अस्की-8 कोडिंग प्रणाली पर आधारित सभी सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर युक्तियों में उपलब्ध है।

कंप्यूटर साधित भारतीय भाषा संसाधन की प्रस्तुत स्थिति से स्पष्ट है कि आज कंप्यूटर की सहायता से भारतीय लिपियों में भाषा संबंधी संश्लेषण, विश्लेषण और संसाधन का अधिकांश कार्य किया जा सकता है; किंतु मात्र शब्द संसाधन से किसी भी भाषा में कंप्यूटर संबंधी अनुप्रयोगों को संपन्न नहीं किया जा सकता। इसलिए भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के संदर्भ में कंप्यूटर संबंधी भाषा नीति की घोषणा करते हुए स्पष्ट कर दिया था कि किसी भी कंप्यूटर को तभी द्विभाषी माना जाएगा जब उसमें शब्द संसाधन के साथ-साथ डेटा संसाधन की सुविधा हिंदी-अंग्रेजी में अर्थात् द्विभाषिक रूप में उपलब्ध होगी।

डेटा संसाधन संबंधी कार्य हिंदी में संपन्न करने के लिए दो विकल्प उपलब्ध हैं–हार्डवेयर विकल्प और सॉफ्टवेयर

विकल्प। जहाँ तक हार्डवेयर विकल्प का संबंध है, इस दिशा में आई० आई० टी०, कानपुर का प्रयास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके द्वारा विकसित यह प्रणाली जिस्ट (ग्राफिक्स और इंटेलीजेंस बेस्ड स्क्रिप्ट टेक्नोलॉजी) प्रौद्योगिकी के रूप में प्रसिद्ध है और इस पर आधारित विभिन्न अनुप्रयोगों के विकास का दायित्व भारत सरकार की उसी सोसाइटी को सौंप दिया गया है जिसने 'परम' नाम से सुपर कंप्यूटर का विकास किया है। सी-डैक (सेंटर फॉर डेवलपमेंट ऑफ एडवांस्ड कंप्यूटिंग) नाम से विख्यात यह सोसाइटी पुणे (महाराष्ट्र) में स्थित है। इस कार्ड की सहायता से आई० बी० एम० पी० सी० कंप्यूटरों पर शब्द संसाधन तथा डेटा संसाधन के लिए प्रचलित रोमन के सभी पैकेजों का प्रयोग द्विभाषिक या बहुभाषिक रूप में किया जा सकता है। यूनिक्स/जेनिक्स परिचालन प्रणालियों के लिए जिस्ट कार्ड के बजाय जिस्ट टर्मिनल की आवश्यकता होती है। जिस्ट टर्मिनल की सहायता से भी रोमन के सभी सामान्य पैकेजों का द्विभाषिक रूप में प्रयोग किया जा सकता है। जिस्ट प्रौद्योगिकी के अंतर्गत यह सुविधा सभी भारतीय भाषाओं में सुलभ है और अब यह सुविधा फारसी-अरबी, सिंहली, तिब्बती और रूसी लिपि में भी उपलब्ध हो गई है।

इसके विपरीत सॉफ्टवेयर विकल्प के अंतर्गत कंप्यूटर में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती। वे पैकेज फ्लॉपी डिस्क के रूप में उपलब्ध होते हैं। ये पैकेज भी दो प्रकार के हैं – (i) समर्पित सॉफ्टवेयर प्रोग्राम (Dedicated Software Program) और (ii) सामान्य उद्देश्यीय सॉफ्टवेयर परिवेश (General Purpose Software Environment)। समर्पित सॉफ्टवेयर प्रोग्राम के अंतर्गत हिंदी में डेटा संसाधन का महत्त्वपूर्ण सॉफ्टवेयर है, 'देवबेस' (द्विभाषी डाटा बेस प्रबंधन प्रणाली)। यह सॉफ्टवेयर डी बेस-III प्लस का द्विभाषी संस्करण है और इसका निर्माण नई दिल्ली स्थित मै० सॉफ्टैक प्राइवेट लिमिटेड द्वारा किया गया है। डी बेस्ट–III प्लस के अंतर्गत हिंदी में काम करने के लिए यह एक अच्छा पैकेज है, लेकिन डी बेस के संशोधित पैकेज (जैसे डी बेस-IV या V आदि) में हिंदी में कार्य करने के लिए इसमें और संशोधन की आवश्यकता होगी।

सामान्य उद्देश्यीय सॉफ्टवेयर परिवेश वह परिवेश है, जिसके अंतर्गत रोमन लिपि के सभी सॉफ्टवेयर पैकेजों (जैसे डी बेस, लोटस, सॉफ्टबेस, क्लिपर, फॉक्सप्रो, ओरैकल आदि) में हिंदी में कार्य किया जा सकता है। इसके अलावा यह परिवेश बेसिक, कोबोल, सी, पास्कल आदि प्रोग्रामिंग भाषाओं में तैयार किए गए प्रोग्रामों में भी हिंदी में कार्य करने की क्षमता प्रदान करता है। वस्तुतः यह परिवेश जिस्ट के ही समकक्ष है। जो कार्य जिस्ट कार्ड के माध्यम से हिंदी में किए जा सकते हैं वे सभी कार्य सॉफ्टवेयर विकल्प के रूप में इस परिवेश के अंतर्गत भी किए जा सकते हैं। आर० के० कंप्यूटर रिसर्च फाउंडेशन, नई दिल्ली द्वारा विकसित 'सुलिपि' नामक यह सॉफ्टवेयर जिस्ट के समान ही सामान्य उद्देश्यीय सॉफ्टवेयर है, जिसके माध्यम से एम० एस० डॉस पर आधारित पर्सनल कंप्यूटरों पर कार्यालय स्वचालन (Office Automation) संबंधी सभी कार्य हिंदी-अंग्रेजी में साथ-साथ किए जा सकते हैं।

जिस्ट के अंतर्गत भारतीय भाषाओं में परस्पर लिप्यंतरण (Transliteration) की सुविधा मौजूद है। इनमें भारत सरकार के इलेक्ट्रॉनिकी विभाग द्वारा अनुमोदित इसकी (ISCII) कोड पर आधारित ध्वन्यात्मक इंस्क्रिप्ट (Inscript) कुंजीपटल की सुविधा भी उपलब्ध है।

शब्द संसाधन के समान डी० टी० पी० की द्विभाषी सुविधा भी अत्यंत लोकप्रिय होने लगी है। आरंभ में यह सुविधा रोमन के 'वेंचुरा सॉफ्टवेयर पर आधारित 'प्रकाशक', 'वीनस' आदि पैकेजों तक ही सीमित थी, लेकिन 'विंडोज' परिवेश में पेज मेकर में भी इसका प्रयोग बढ़ने लगा है और 'इंडिका', 'इज्म', 'ऐस्ट्रिक्स', 'सुलेजर' आदि अनेक पैकेज आज बाजार में उपलब्ध हो गए हैं। ये पैकेज कोरल ड्रॉ, फोटो शॉप जैसे पैकेजों में भी हिंदी में कार्य करने की सुविधा प्रदान करते हैं।

इलेक्ट्रो-मैकेनिकल युग से आरंभ होकर इलेक्ट्रॉनिक टेलीप्रिंटर/टेलेक्स से होते हुए आज यह प्रणाली कंप्यूटर युग तक पहुँच गई है। आज आप अपने कंप्यूटर पर टेलेक्स कार्ड लगाकर संदेशों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। इस सुविधा को हिंदी में सुलभ करने के लिए डाटा बाइट, सी० एम० सी०, एच० सी० एल० आदि अनेक कंपनियों ने द्विभाषी उपकरण विकसित किए हैं। इसके अलावा आर० के० रिसर्च कंप्यूटर फाउंडेशन ने 'सुलिपि' सॉफ्टवेयर पर आधारित एक इंटरफेस विकसित किया है, जिसकी सहायता से किसी भी कंप्यूटर पर हिंदी में संदेशों का आदान-प्रदान किया जा सकता है।

भारत में फिल्मों के उप-शीर्षक हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में लिखने का कार्य हाल ही में आरंभ हुआ है। नवंबर 1992 में नई दिल्ली में आयोजित अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह के अवसर पर दूरदर्शन द्वारा प्रसारित हिंदी फिल्म 'सलाम बॉम्बे' के उप-शीर्षक (sub-titles) विभिन्न राज्यों में उनकी अपनी भाषाओं में ही प्रदर्शित किए गए थे। लिप्स (LIPS) नाम से प्रसिद्ध इस प्रौद्योगिकी का विकास सी-डेक, पुणे के जिस्ट ग्रुप द्वारा किया गया था। इसी प्रौद्योगिकी के दूसरे चरण में वीडियो वर्क्स के कार्य को भी हिंदी में प्रदर्शित करने के लिए आवश्यक सॉफ्टवेयर का विकास कर लिया गया है, जिसकी सहायता से रेलवे आरक्षण, गाड़ियों के आवागमन, हवाई जहाजों के आगमन-प्रस्थान आदि से संबंधित सूचनाएँ टी० वी० मॉनिटर के जरिए हिंदी में भी प्रदर्शित की जा सकती हैं। मै० आर० के० कंप्यूटर रिसर्च फाउंडेशन द्वारा भी 'सुलिपि' पर आधारित एक इंटरफेस का विकास किया गया है जिसकी सहायता से वीडियो वर्क्स से संबंधित सभी कार्य हिंदी में संपन्न कर सकते हैं।

हाल ही में सी-डैक ने 'लीला प्रबोध' नाम से एक ऐसे मल्टी मीडिया स्वयं शिक्षक पैकेज का विकास किया है जिसकी सहायता से विंडोज परिवेश के अंतर्गत कोई भी व्यक्ति कंप्यूटर के माध्यम से हिंदी सीख सकता है। इसकी शिक्षण सामग्री विदेशी शिक्षण की नई विकसित तकनीकों पर आधारित है। हर पाठ पूर्णतः नियंत्रित और क्रमबद्ध है और भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक बिंदुओं पर आधारित है। पाठ रोचक हैं और प्रभावी अभ्यासों के जरिए विकसित होते हैं। छात्रों की सुविधा के लिए पैकेज के साथ एक सहायक पुस्तक भी है जिसमें जटिल संरचनाओं और व्याकरण के बिंदुओं को नियम और उदाहरणों के साथ समझाया गया है।

डेटा संसाधन संबंधी कार्य हिंदी में संपन्न करने के लिए दो विकल्प उपलब्ध हैं– हार्डवेयर विकल्प और सॉफ्टवेयर विकल्प। जहाँ तक हार्डवेयर विकल्प का संबंध है, इस दिशा में आई० आई० टी०, कानपुर का प्रयास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके द्वारा विकसित यह प्रणाली जिस्ट (ग्राफिक्स और इंटेलीजेंस बेस्ड स्क्रिप्ट टेक्नोलॉजी) प्रौद्योगिकी के रूप में प्रसिद्ध है और इस पर आधारित विभिन्न अनुप्रयोगों के विकास का दायित्व भारत सरकार की उसी सोसाइटी को सौंप दिया गया है जिसने 'परम' नाम से सुपर कंप्यूटर का विकास किया है।

इस पैकेज से आप अपने कंप्यूटर पर हिंदी वाक्यों और शब्दों का प्रामाणिक उच्चारण और वाचन भी सुन सकते हैं। इसके अलावा आप इस पैकेज से देवनागरी लिपि का लेखन भी सीख सकते हैं। यह पैकेज अंग्रेजी माध्यम से है जिसमें एक द्विभाषी हिंदी-अंग्रेजी कोश भी निहित है। ये तमाम सुविधाएँ अब तक 'डॉस' परिवेश में ही उपलब्ध थीं; किंतु अब इसे 'विंडोज' परिवेश में भी उपलब्ध करा दिया गया है।

इसके अलावा, अब 'डॉस' के बजाय 'विंडोज' का प्रचलन बढ़ गया है। इसलिए सी-डैक ने लीप ऑफिस 2.0 नाम से एक ऐसे इंटरफेस का विकास किया है, जिसके माध्यम से एम० एस० ऑफिस के अंतर्गत उपलब्ध 'वर्ड', 'एक्सेल', 'पावर प्वॉइंट' और 'पेज मेकर' आदि में भी सभी भारतीय भाषाओं में कार्य किया जा सकता है। इसीके समकक्ष आर० के० कंप्यूटर्स ने 'सुविंडोज', 'सॉफ्टैक प्राइवेट लिमिटेड ने 'अक्षर फॉर विंडोज' और ए० सी० ई० एस०, बंगलौर ने 'आकृति ऑफिस' का विकास किया है। इन पैकेजों में उक्त सुविधाओं के साथ-साथ हिंदी में इ-मेल और वैब प्रकाशन की सुविधा भी मौजूद है। इससे स्पष्ट है कि जैसे-जैसे कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के विभिन्न आयामों का विकास हो रहा है, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में भी उसके समकक्ष उत्तरोत्तर विकास हो रहा है।

निदेशक, राजभाषा, रेलवे बोर्ड, रेल मंत्रालय,

रेल भवन, नई दिल्ली – 110001

(साहित्य अमृत से साभार)

जैव प्रौद्योगिकी के पारिभाषिक शब्द

पिछले अंक से पाठकों के लाभार्थ जैव प्रौद्योगिकी के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या शुरू की गई है। उसी क्रम में यह दूसरी किस्त है।

निश्चलित कल्चर (Immobilized culture) : निश्चलित कोशिकाओं के कल्चर (संवर्धन) को निश्चलित कल्चर कहते हैं। इससे उच्च कोशिका घनत्व के कारण वृद्धि कारकों की आवश्यकता नहीं पड़ती और कल्चर दीर्घ काल तक स्थायी रहते हैं।

पुनर्योगज प्रोटीन (Recombinant proteins) : पुनर्योगज डी एन ए टेक्नालाजी द्वारा किसी चुने हुए परपोषी में स्थान्तारित किये गये जीन द्वारा उत्पादित प्रोटीन। स्तनपायी कोशिका कल्चरों में दो दर्जन से अधिक पुनर्योगज प्रोटीनों का उत्पादन किया जा रहा है।

पोषपदार्थ (Culture media) : कोशिकाओं या ऊतकों के जीवित रहने एवं उनकी वृद्धि के लिए उनके पदार्थों की आवश्यकता होती है। ये पदार्थ पोषपदार्थ कहलाते हैं। ये प्राकृतिक पदार्थ हो सकते हैं और कृत्रिम भी। सीरम सर्वाधिक प्रयुक्त प्राकृतिक पोषपदार्थ है। मनुष्य के रक्त, घोड़े के रक्त, बछड़े के रक्त का सर्वाधिक प्रयोग होता है। सीरम वस्तुतः स्कंदित रक्त से प्राप्त द्रव है। गोभ्रूण निष्कर्ष भी अन्य प्राकृतिक पोषपदार्थ है।

अतिशुद्ध कृत्रिम पोषपदार्थों में अकार्बनिक तथा कार्बनिक यौगिक प्रयुक्त किये जाते हैं। प्रोटीन से युक्त पोषपदार्थ भी तैयार किये जाते हैं।

प्रतिरक्षी (Antibodies) : एक विशेष प्रकार के प्रोटीन जो जंतुओं द्वारा प्रतिजन अणुओं की अनुक्रिया में उत्पादित किये जाते हैं। ये प्रोटीन **इम्यूनोग्लोबुलिन** (Ig) कहलाते हैं।

प्राथमिक कल्चर (Primary culture) : वे कोशिका कल्चर जिनका उपकल्चर नहीं किया गया हो, प्राथमिक कल्चर कहलाते हैं। ये विषमांगी यानी भिन्न प्रकार की कोशिकाओं के मिश्रण एवं धीमी वृद्धि वाले होते हैं।

बीज स्टाक कल्चर (Seed stock culture) : मानव तथा अन्य जंतु ऊतकों से हजारों कोशिका लाइनें विकसित की गई हैं। किसी कोशिका लाइन को उसके उत्पादन करने वाले शोधकर्ता से लेकर के कोशिकाओं का गुणन करके कल्चर को दो भागों में बाँटते हैं– बीज स्टाक कल्चर तथा कार्यकारी या वितरण स्टाक कल्चर।

बीच स्टाक कल्चर का लक्षण ज्ञात करके उसके हिम शीतित अवस्था में (द्रवनाट्रोजन में – 196° सें० पर) भंडारित करते हैं। इस कल्चर के पोषपदार्थ में कोई शीत रक्षक (हिम शीतल) मिलते हैं जिससे हिम शीतलन तथा हिम द्रवण के समय कोशिकाएं क्षतिग्रस्त न हों।

बीज स्टाक कल्चर से ही कार्यकारी या वितरण स्टाक कल्चर प्राप्त करते हैं।

संकर प्रतिरक्षी (Hybrid antibodies) : वे प्रतिरक्षी जो पुनर्योगज डी. एन. ए. टेक्नालाजी द्वारा रूपान्तरित या डिजाइन किये गये हों जिससे वे कोई विशेष प्रकार्य कर सकें। इनके निर्माण की प्रक्रिया प्रतिरक्षी इंजीनियरी (anti-body egineering) कहलाती है।

हाइब्रिडोमा टेक्नालाजी (Hybridoma technology) : एक बी-लिम्फोसाइट तथा एक माएलोमा कोशिका के संगलन से प्राप्त संकर कोशिका हाइब्रिडोमा कहलाती है। माएलोमा प्रतिरक्षा उत्पादन तंत्र की अर्बुदी कोशिकाएं हैं– जैसे बी लिम्फोसाइट की अर्बुदी कोशिकाएं। माएलोमा के स्थान पर अन्य अर्बुदी कोशिकाओं का उपयोग किया जा सकता है। हाइब्रिडोमा क्लोनों को पात्रे कल्चर करके मोनोक्लोनीय प्रतिक्रिया का उत्पादन करते हैं। इसे हाइब्रिडोमा टेक्नालाजी कहते हैं। 1975 में इस टेक्नालाजी के विकास हेतु जी. कोहलर को और 1984 में सी. मिलस्टाइन को नोबेल पुरस्कार मिले।

आणविक चिन्हक (Molecular markers) : जो अणु क्रोमोसोम चित्रण में चिन्हक जीन की तरह उपयोग में लाये जायें।

प्रारम्भ में एंजाइम इस काम में लाये गये लेकिन आजकल आणविक चिन्हक का तात्पर्य केवल डी. एन. ए. खण्डों या क्रमों से जो अज्ञात अथवा ज्ञात हो सकते हैं।

कृत्रिम वीर्य सेचन (Artificial insemination) : उत्कृष्ट नस्लों के नर पशु के वीर्य को एकत्रित करके उसका तनूकरण करके द्रव नाइट्रोजन में 196° से० पर भंडारित करना तथा इस वीर्य से निम्न कोटि की नस्लों वाली मादाओं का सेचन करना।

इस विधि से केवल 50 % संततियाँ उत्तम कोटि की उत्पन्न होती हैं।

जन्तु क्लोनन (Animal Cloning) : किसी वयस्क जंतु की कायिक (somatic) कोशिका अथवा उसके केन्द्रक से सम्पूर्ण पशु को प्राप्त करना।

जिनोम चित्र (Genome map) : जिनोम के सभी क्रोमोसोमों का संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक संघटन।

वर्तमान समय में दो प्रकार के क्रोमोसोम चित्र उपलब्ध है। आनुवंशिक तथा भौतिक चित्र। आनुवंशिक चित्र में विभिन्न चिन्हकों को उनके बीच विनिमय आवृत्ति के आधार पर दर्शाते हैं। ये चिन्हक मूल रूप से विभिन्न लक्षण नियमित करने वाले जीन होते हैं। भौतिक चित्र में विभिन्न डी-एन. ए. क्रमों की जिनोम के क्रोमोसोमों में भौतिक स्थिति दर्शाते हैं।

जीन विदारण (Gene disruption) : किसी जीन के बीच में किसी अन्य जीन या डी० एन० ए० खण्ड को समाकलित करने से प्रथम जीन का निष्क्रिय होना। उदाहरणार्थ यदि जीन का विदारण करना हो तो उसे पहले विलग करके क्लोन करते हैं। फिर क्लोन किये गये जीन A के बीच में एक वरणीय चिन्हक जीन (यथा बैक्टिरीआई जीन) समाकलित करते हैं। इससे जीन A विदारित हो जाता है।

टीका (Vaccine) : क्षीणीकृत या निष्क्रियित रोग जनकों से युक्त निलम्बन, जिसका उपयोग जंतुओं में रोग-रोधक क्षमता उत्पन्न कराने के लिए किया जाय।

किसी जन्तु के शरीर में किसी टीके का प्रविष्ट कराने को टीकाकरण (Vaccination) करते हैं।

टीका को मुँह से, शिरा, मांसपेशी या त्वचा के नीचे इंजेक्शन आदि से प्रविष्ट किया जाता है।

डी. एन. ए. अंगुली छापन (DNA figner printing) : किसी व्यक्ति या विभेद के डी. एन. ए. का आर. एफ. एल-पी पैटर्न एक अत्यन्त बहुरूपी की सहायता से बनाना।

पराजीनी जन्तु (Transgenic animal) : जिन जन्तुओं में जीन इंजीनियरी या ट्रांसफेक्शन द्वारा एक या अधिक जीन स्थानान्तरित किया गया हो, उन्हें पराजीनी जन्तु कहते हैं।

जन्तुओं की कोशिका में किसी डी. एन. ए. खण्ड के प्रवेश करने को ट्रांसफेक्शन (transfection) कहते हैं।

यह अल्पजीवी तथा स्थायी दो प्रकार का होता है।

पराजीवी सूक्ष्म इंजेक्शन द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। इस तरह से मूषक, खरगोश, सुअर, भेड़, बकरी, कुक्कुट, मछली, मेंढक प्राप्त किये जा चुके हैं।

पात्रे निषेचन (Invitro fertilization) : जंतु शरीर से बाहर किसी कल्चर पात्र में खंड और शुक्राणु के संयोग तथा इससे जाइगोट बनना।

इसके लिए स्वस्थ नव एवं मादा जंतुओं से क्रमशः शुक्राणु और अंड प्राप्त करते हैं और उनमें उपयुक्त दशा में संकलित करके जाइगोट उत्पादित करते हैं। कुछ काल तक इन जाइगोटों का पात्रे कल्चर करके तरुण भ्रूण प्राप्त करते हैं जिन्हें अन्ततः स्वस्थ एवं उपयुक्त मादाओं के गर्भाशय में

प्रतिरोपित करते हैं। इसे भ्रूण प्रतिरोपण (embryo transplantation) कहते हैं।

पुनर्योगज प्रोटीन (Recombinant protein) : किसी चुने हुए परपोषी में स्थानान्तरित किये गये जीन द्वारा उत्पादित प्रोटीन।

स्तनपायी कोशिका कल्चरों में 24 से अधिक पुनर्योगज प्रोटीनों का उत्पादन किया जा रहा है।

उदाहरणार्थ मानव वृद्धि हार्मोन (HGH), एरिथोपोएटिन, रुधिक स्कंदनकारक VIII आदि का उपयोग चिकित्सा में होने लगा है।

प्रतिरक्षा-शोधन (Immunopurification) : प्रतिरक्षी अणुओं का उपयोग करके उनके विशिष्ट प्रतिजनों का शोधन।

प्रमोटर (Promoter) : वह डी. एन. ए. खण्ड है जिसका अनुलेखन के समय आर. एन. ए. पालीमरेस सबसे अधिक आबद्ध होता है।

जीन अनुलेखन के लिए प्रमोटर क्रम की उपयुक्त दिक्विन्यास में उपस्थिति अनिवार्य है।

भ्रूण स्थानान्तरण (Embryo transfer) : उत्तम नस्ल के मादा पशुओं के तरुण भ्रूणों को प्राप्त करके उन्हें साधारण नस्लों की मादाओं में प्रतिरोपित करना।

इसका उद्देश्य उत्तम नस्ल की एक मादा से प्रति वर्ष कई संततियाँ प्राप्त करना है।

लिपोफेक्शन (Lipofection) : कोशिकाओं में लिपोसोमों द्वारा डी. एन. ए. प्रवेश कराने की क्रिया या विधि।

लिपोसोम (Liposomes) : ये फास्फोलिपिडों की बनी छोटी छोटी पुटिकाएँ होती हैं। इन्हें कई विधियों से तैयार किया जा सकता है।

लिम्फोसाइट (Lymphocyte) : जंतुओं में प्रतिरक्षा अनुक्रिया के लिए उत्तरदायी कोशिकाएँ।

ये अस्थिमज्जा में उपस्थित बहुक्षम स्तंभ कोशिकाओं से प्राप्त होती हैं। ये स्तंभ कोशिकाएँ सर्वप्रथम लसीका स्तंभ कोशिकाओं में विभाजित होती हैं जो लिंफोसाइट प्रजनक (progenitor) कोशिकाओं में विभाजित होती हैं। प्रजनन कोशिकाओं को पूर्व-B तथा पूर्व-T कोशिकाएँ कहा जाता है।

वाहक (Vector) : जंतुओं में उपयोग किये जाने वाले वाहक या तो वाइरसों या परिवर्तनशील अवयवों पर आधारित होते हैं।

कई वाहक वाइरस जैसे होते हैं कई अन्य वाहक प्लास्मिड की तरह होते हैं।

संकर प्रतिरक्षी (Hybrid antibodies) : वे प्रतिरक्षी जो पुनर्योगज डी एन ए टेक्नालाजी द्वारा रूपान्तरित या डिजाइन किये गये हों जिससे कि वे कोई विशेष कार्य कर सकें। इन्हें ही पुनर्योगज प्रतिरक्षी (Recombinant antibodies) भी कहा जाता है। इनके निर्माण की प्रक्रिया प्रतिरक्षी इंजीनियरी (antibody engineering) कहलाती है।

सूक्ष्म इंजेक्शन (Micro-injection) : डी. एन. ए. को सीधे कोशिका के केन्द्रक में अथवा अनिषेचित अंडों के नर को पूर्व केन्द्रक में प्रवेश कराना।

स्तनधारियों में नर पूर्व केन्द्रक अंडकों के नर केन्द्रकों से काफी बड़ा होता है इसलिए इसमें सूक्ष्म इंजेक्शन में सरलता होती है।

मूषक में सूक्ष्म इंजेक्शन के लिए स्वस्थ मादाओं को गर्भित घोड़ी सीरम गोनैटडो ट्राफिन से उपचारित करते हैं।

चार नई पुस्तकें और एक नई पत्रिका

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

हिन्दी में विज्ञान विषयक लोकप्रिय पुस्तकों के प्रकाशन में त्वरा आई है। दिल्ली के अनेक प्रकाशक लगभग हर मास कोई न कोई पुस्तक निकाल रहे हैं। दिल्ली में लगने वाले पुस्तक मेले से इसका पता चलता है। लेकिन ये पुस्तकें पाठकों के हाथ में कम ही दिखती हैं - कारण स्पष्ट है - उनका मँहगा होना। फिर भी समय-समय पर अच्छी और नई पुस्तकों की जाँच-परख होते रहना चाहिए। इसी उद्देश्य से मैं चार नई पुस्तकों की चर्चा करूँगा। किन्तु हिन्दी में विज्ञान विषयक पत्रिकाओं का जिस तरह अभाव है, उनकी जो न्यून संख्या है, उससे चिन्ता होना स्वाभाविक है। विगत एक सौ वर्षों में न जाने कितनी पत्रिकाएँ शुरू हुई और समाप्त हो गईं। फिर भी प्रयासों की कमी नहीं रही। यह शुभ लक्षण है। उत्साही लेखक प्रायः सम्पादक बनने की ललक में नई-नई पत्रिकाओं का कार्यभार संभालते रहे हैं और कुछेक वर्षों में आर्थिक तंगी के कारण उन्हें हथियार डाल देने पड़ते हैं। जिस समाज को ध्यान में रखकर, उसे विज्ञान युग में ले जाने के सुनहरे सपने को पूरा करने के लिए सम्पादक जी-तोड़ परिश्रम करता है वह उसे प्रशंसा के दो शब्द भी नहीं कहता तो उतना आश्चर्य नहीं होता, जितना यह देखकर कि वह उस विज्ञान पत्रिका को खरीदना तो दूर रहा हाथ लगाकर रख देता है, मानों अछूत हो। यदि समाज आर्थिक सहयोग करे, यदि वह सहभागिता में हाथ बटावे, तो कोई कारण नहीं कि नये सम्पादक का उत्साह और श्रम व्यर्थ जाय और राष्ट्र निर्माण में उसका उपयोग न हो। समाज का उत्तरदायित्व व्यक्ति के उत्साह से कहीं अधिक होता है। हम यहाँ पर एक नई त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका का उल्लेख करना चाहेंगे जो उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ से जनवरी 1998 से निकल रही है - नाम है **''विज्ञान आलोक''**। भारत के प्रधानमंत्री ''जय विज्ञान'' का नारा देने वाले माननीय अटल बिहारी वाजपेयी के कार्यक्षेत्र से निकलने वाली यह पत्रिका जिस आकर्षक रूप में विगत बीस मास से निकल कर अब अर्थाभाव में डॉ० मुकुन्द शर्मा की अग्नि परीक्षा कराकर म्लान होने वाली है उससे हम सभी विज्ञान प्रेमियों को चिन्तित होना चाहिए। यही नहीं, उसे बचाने के लिए उसका ग्राहक बनना चाहिए, उसके लिए लेख लिखने चाहिए, उसके लिए प्रचार करना चाहिए।

मैंने इस पत्रिका के सारे अंक पढ़े हैं। सामयिक विषयों पर प्रामाणिक लेखों का जैसा संकलन इसमें होता आ रहा है वह स्तुत्य है। 32 पृष्ठ की इस पत्रिका में प्रायः 10 लेख रहते हैं। आवरण पृष्ठ तो बहुत ही आकर्षक होता है। डॉ० मुकुन्द शर्मा लखनऊ के बीरबल साहनी पुरावानस्पतिक संस्थान में कार्यरत रहते हुए जितना श्रम करते हैं, उसे मैंने देखा-परखा है। मेरा विश्वास है कि हिन्दी के विज्ञान लेखकों का ध्यान इस पत्रिका की ओर जावेगा और वे तन-मन-धन से इसको जीवन्त बनाये रखने में कोई कसर नहीं उठा रखेंगे।

अब मैं **चार** नई पुस्तकों की चर्चा करूँगा। ये हैं विज्ञान प्रसार नई दिल्ली के प्रकाशित **''विज्ञान यात्रा''** तथा **''परमाणु से सितारों तक''**, किताब घर से प्रकाशित **''वैज्ञानिकों के वैज्ञानिक डॉ० आत्माराम''** तथा प्रभात प्रकाशन दिल्ली से सद्यः प्रकाशित **''अग्नि की उड़ान''** (आत्मकथा)। इन पुस्तकों का चुनाव कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। पहली बात यह कि इनमें से दो पुस्तकें भारतीय महान वैज्ञानिकों के जीवन चरित्रों से संबंधित हैं, एक ऐसे व्यक्ति से सम्बद्ध है जिसने विज्ञान के लोकप्रियकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, किन्तु उसके कार्य से कुछ ही लोग परिचित हैं (जबकि हम सभी को उनसे परिचित होना चाहिए था खैर ! अब सही) तथा चौथी पुस्तक अमेरीकी विज्ञान लेखक गैमो की कृति है। यह भी स्पष्ट कर दूँ कि इन चार पुस्तकों में से तीन पुस्तकें अंग्रेजी से

हिन्दी में अनूदित हुई हैं, केवल एक (वैज्ञानिकों के वैज्ञानिक डॉ० आत्माराम) मौलिक ढंग से रचित है।

हमें प्रसन्नता है कि हिन्दी में सामयिक और उपयोगी साहित्य का अनुवाद होता चल रहा है। अपने एक लेख में मैं पहले भी लिख चुका हूँ कि हिन्दी में अनेक महान वैज्ञानिकों की कृतियों के अनुवाद उपलब्ध हैं। अनुवाद की भाषा, अनुवादक की क्षमता की न तो पहले समीक्षा हुई, न ही इन तीन अनुवादों की भाषा के विषय में कोई टिप्पणी करनी है। प्रसन्नता तो इस बात की है कि प्रकाशक न केवल अपने प्रति वरन् समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह कर रहे हैं।

''विज्ञान प्रसार'' का सम्बन्ध कहने को भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग से है किन्तु उसके सूत्रधार डॉ० नरेन्द्र सहगल हैं। उन्होंने ''विज्ञान यात्रा'' (पृष्ठ संख्या 246, मूल्य 55 रु०, 1998) पुस्तक को हिन्दी में लाने के लिए जो प्रशंसनीय कार्य किया है वह अद्वितीय है। किन्तु जितने परिश्रम से उन्होंने प्रो० रुचिराम साहनी द्वारा किये गये विज्ञान लोकप्रियकरण के प्रयासों को खोज निकाला है वह अपनी कोटि का आविष्कार है। उनके मन में पंजाब में विज्ञान के प्रचार-प्रसार करने वाले प्रो० रुचि राम साहनी के प्रति जो आदर था उसकी अभिव्यक्ति है यह कृति। वस्तुतः यह पुस्तक रुचिराम साहनी की ''आत्मकथा'' है। यह अधूरी है किन्तु इसमें जो सूचनाएँ हैं वे अत्यन्त उपयोगी हैं। रुचिराम साहनी स्वतंत्र विचार के प्रगतिशील वैज्ञानिक थे। वे लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज में 1887 से 1918 तक रसायन विज्ञान तथा भौतिकी के सहायक प्रोफेसर रहे। इस पुस्तक के परिचय के अन्तर्गत पृष्ठ 19 पर ठीक ही लिखा हुआ है - ''रुचिराम साहनी की प्रमुख उपलब्धियों में से एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी पंजाब के जन साधारण में वैज्ञानिक चेतना जागृत करना ... उन्होंने पंजाब में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने का प्रयास सबसे पहले किया पर दूसरी ओर बंगाल में भी ऐसे प्रयास किये जा रहे थे। उन्होंने विज्ञान के प्रचार-प्रसार की अपनी सारी गतिविधियाँ पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट के तत्वावधान में आयोजित की। उन्होंने प्रोफेसर जे० कैम्पबेल के साथ मिलकर इस संस्था की स्थापना की। पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट द्वारा विज्ञान के विविध पक्षों पर आयोजित लोकप्रिय व्याख्यानों ने लोगों के मन में अभूतपूर्व उत्साह उत्पन्न कर दिया ..... यह भारत में पहला अवसर था जब जन साधारण ने विज्ञान के लोकप्रिय व्याख्यानों को सुनने के लिए शुल्क अदा किया।''

यहाँ यह इंगित करना प्रासंगिक होगा कि उत्तर प्रदेश में सर सैयद अहमद ने भी मुसलमानों के जीवन स्तर को सुधारने के उद्देश्य से अलीगढ़ में ऐसी ही संस्था स्थापित की थी। बनारस में पं० सुधाकर द्विवेदी तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रयास इस आन्दोलन के अंग थे। तात्पर्य यह है कि पंजाब से लेकर बंगाल तक विज्ञान के प्रचार-प्रसार की ललक थी हमारे अध्यापकों तथा समाज सुधारकों में। और उसी का परिणाम है कि आज हिन्दी में विज्ञान की कई सहस्र लोकप्रिय पुस्तकें उपलब्ध हैं। किन्तु समाज में वह मानसिकता नहीं है - वह राष्ट्रीय भावना नहीं है जो पहले थी। उसी को पल्लवित करने की आवश्यकता है।

'विज्ञान प्रसार' द्वारा प्रकाशित दूसरी पुस्तक है ''परमाणु से सितारों तक'' (पृष्ठ संख्या 272, मूल्य 99=00 1998)। यह सुप्रसिद्ध अमेरीकी लेखक जार्ज गैमोकृत One, Two, Three ------- Infinity का हिन्दी अनुवाद है। इसके अनुवादक बिड़ला प्रौद्योगिकी संस्थान, मेसरा राँची के भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक डॉ० राकेश पोपली हैं। उन्होंने अनुवाद में अपनी ओर से टिप्पणियाँ जोड़कर इस पुस्तक को अति ग्राह्य बना दिया है। प्राक्कथन में डा० नरेन्द्र सहगल का वक्तव्य दृष्टव्य है - ''परमाणु से सितारों तक ......'' एक सैंतालीस साल पुरानी अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर है। .... इस जैसी पुस्तकों की अपनी ही एक विशेष भूमिका है : विज्ञान के क्षेत्रों में हो रही प्रगति और उनके विकास के इतिहास के रूप में। एक जमाना था जब अध्यापकों और छात्रों के हाथों में ऐसी पुस्तकें दिखा करती थीं। वर्तमान काल में छात्र तो क्या अधिकतर विज्ञान अध्यापकों की ही ऐसी किताबों में रुचि देखने में नहीं आती या फिर उन्हें इन पुस्तकों के बारे में पता नहीं है।'' मेरा अनुरोध है कि विज्ञान के लेखक इस कृति को पढ़ें और अपने लेखन में गुणात्मक सुधार लावें।

डॉ० आत्माराम का व्यक्तित्व और कृतित्व सबों को आकृष्ट करने वाला रहा है। उन्हें दिवंगत हुए अधिक समय नहीं हुआ। उन्होंने अपने जीवन की सादगी और प्रतिभा की ऊँचाई से सबों को चमत्कृत किया। श्री दुर्गा प्रसाद नौटियाल ने उनके अंतरंग सम्पर्क में रहकर यह पुस्तक लिखी है (इसके विषय में ''विज्ञान'' में विस्तृत समीक्षा छप चुकी है)। ''अग्नि की उड़ान'' आत्मकथा है ए० पी० जे० अब्दुल कलाम की, ऐसे व्यक्ति की जिन्होंने भारत देश की सुरक्षा को अप्रवेश्य बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह पुस्तक अभी-

अभी प्रकाशित हुई है। (पृष्ठ संख्या 194, मूल्य 200 रु०) उनके सहयोगी अरुण तिवारी ने अंग्रेजी में जो पुस्तक लिखी है यह उसी का अनुवाद है। लेखक ने लिखा है - "डॉ० ए० पी० जे० अब्दुल कलाम के सान्निध्य में मुझे एक दशक से भी अधिक समय तक काम करने का अवसर मिला है। हो सकता है उनके जीवनी लेखक के रूप में मेरे पास पर्याप्त योग्यता न हो, परन्तु निश्चित रूप से मेरा ऐसा बनने की इच्छा भी नहीं थी .... यह पुस्तक देश के उन लोगों के लिए लिखी गई है जिनके प्रति डॉ० कलाम का अत्यधिक लगाव है और जिनमें से एक वह स्वयं को मानते हैं। खुद मेरे लिए यह पुस्तक लिखना एक तीर्थयात्रा जैसा रहा है।"

अब्दुल कलाम ने पुस्तक के परिचय में स्वयं लिखा है - "इस पुस्तक के माध्यम से मैं अपने माता-पिता, परिवार तथा शिक्षकों एवं गुरुओं के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ और उन हुतात्माओं का आदरमय स्मरण करता हूँ जिनका मुझे अपने छात्र एवं पेशेवर जीवन में सान्निध्य मिला। यह मेरे युवा साथियों के अपार उत्साह और कोशिशों के प्रति सम्मान है, जिन्होंने सामूहिक रूप से मेरे सपनों को संजोया और साकार किया है। प्रो० विक्रम साराभाई, प्रो० सतीश धवन तथा डॉ० ब्रह्म प्रकाश जैसे वैज्ञानिकों का भी मैं ऋणी हूँ, जिन्होंने हमेशा ज्ञान एवं प्रेरणा से मुझे सराबोर किये रखा। मेरे जीवन और भारतीय विज्ञान की कहानी में इन हस्तियों की बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका रही।

"15 अक्टूबर 1991 को मैंने अपने जीवन के साठ वर्ष पूरे किये। सेवानिवृत्ति के बाद मैंने अपना समय समाज सेवा के लिए देने का फैसला किया था। पर विधि का कुछ ऐसा विधान रहा कि दो चीजें एक साथ हुई - पहली यह कि मैं अगले तीन साल के लिए और सरकारी सेवा में बने रहने के लिए राजी हो गया और दूसरी यह कि मेरे युवा सहयोगी अरुण तिवारी ने मुझसे अपने संस्मरण देने का अनुरोध किया ताकि वे इन्हें लिख तक सुरक्षित कर सकें।

"यह कहानी सिर्फ मेरे विजय और दुःखों की ही नहीं है बल्कि आधुनिक भारत के उन विज्ञान प्रतिष्ठानों की सफलताओ-असफलताओं की भी कहानी है जो तकनीकी मोर्चा पर अपने को स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यह राष्ट्रीय आकांक्षा तथा सामूहिक प्रयासों और वैज्ञानिक आत्म निर्भरता एवं प्रौद्योगिकी दक्षता हासिल करने के लिए भारत के प्रयासों की भी कहानी है।

"ईश्वर की सृष्टि में प्रत्येक कण का अपना अस्तित्व होता है। प्रत्येक को कुछ न कुछ करने के लिए परवरदिगार ने बनाया है, उन्हीं में मैं भी हूँ। उसकी मदद से मैंने जो कुछ भी हासिल किया है वह उसकी इच्छा की अभिव्यक्ति ही तो है। कुछ विलक्षण गुरुओं और साथियों के माध्यम से ईश्वर ने मुझ पर यह कृपा की ..... ये सब राकेट और मिसाइलें उसी के काम हैं जो "कलाम" नाम के एक छोटे से व्यक्ति के माध्यम से खुदा ने कराये हैं। इसलिए भारत के कई कोटि जनों को कभी भी छोटा या असहाय महसूस नहीं करना चाहिये। हम सब अपने भीतर दैवी शक्ति लेकर जन्मे हैं। हम सबके भीतर ईश्वर का तेज छिपा है। हमारी कोशिश इस तेज पुंज को पंख देने की रहनी चाहिए, जिससे यह चारों ओर अच्छाइयाँ एवं प्रकाश फैला सके।"

मेरे द्वारा समीक्षित पुस्तकें स्वतः बोलती हैं।

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

डॉ० ओझा को विज्ञान रत्न सम्मान

जोधपुर। मरु प्रदेश के लब्धप्रतिष्ठत विज्ञान लेखक एवं विज्ञान परिषद, जोधपुर शाखा के प्रधानमंत्री डॉ० दुर्गादत्त ओझा को देश की प्राचीनतम साहित्य संस्था "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" प्रयाग ने उनकी हिन्दी विज्ञान जगत् में उत्कृष्ट साहित्य सृजन की योग्यता हेतु राष्ट्र भाषा हिन्दी की पचासवीं वर्षगाँठ पर हिन्दी दिवस पर आयोजित समारोह में "विज्ञान-रत्न" के उच्च सम्मान से अलंकृत किया है।

डॉ० ओझा ने विज्ञान के विविध विषयों पर लोकोपयोगी साहित्य का सृजन कर अनेक पुस्तकें, शताधिक आलेख आदि प्रकाशित किये हैं। विगत दो दशकों से उन्होंने विज्ञान के लोकप्रियकरण में महत्वपूर्ण कार्य किया है तथा कई राज्यस्तरीय एवं राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किये हैं।

राकेश श्रीवास्तव, संयुक्त मंत्री
विज्ञान परिषद प्रयाग, (जोधपुर शाखा)

कहीं घट न जाए न्यूक्लीय दुर्घटना ! —डी० एन० भटनागर

शताब्दी का अंत समीप दिखाई देने लगा है और विश्व स्वास्थ्य संगठन से जुड़े वैज्ञानिकों विशेषज्ञों के दिल कुछ खास ही तेजी से धड़कने लगे हैं।

असल में वे इस संभावना से आशंकित हैं कि शताब्दी बीतते न बीतते दुनिया में कहीं कोई न्यूक्लीय रिएक्टर दुर्घटनाग्रस्त न हो जाए और हजारों लाखों लोग अनायास ही मृत्यु और आसन्न मृत्यु का शिकार न बन जाएं। इतने पर ही बस हो, जाए तो गनीमत है पर आमतौर पर ऐसी दुर्घटना कितनी विश्व- व्यापी हो जाएगी इसका अनुमान भी पहले से लगाया जाना असम्भव है।

विशेषज्ञों ने जो अनुमान लगाए हैं उनके अनुसार यह भयंकर दुर्घटना सन् 2000 से लेकर 2006 के बीच कभी भी और कहीं भी घट सकती है। वे इसके घटने की संभावना 67 प्रतिशत मानते हैं। उसकी भयावहता का अनुमान लगाने के लिए उनके पास उपयुक्त आंकड़े तो नहीं हैं, पर उसके खासा भयंकर होने के अंदाज से सभी सहमत दिखाई देते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के ब्रिटिश भौतिकीविद् डॉ० कीथ बेवरस्टाक के अनुसार वर्ष 1999 के अंत में नए वर्ष की पूर्व संध्या से ही इस संभावित खतरे की घंटियां बजनी शुरू हो जाएंगी। डॉ० बेवरस्टाक विश्व स्वास्थ्य संगठन के हेलसिंकी स्थित न्यूक्लीय आपात परियोजना के प्रमुख हैं।

वे किसी इंजीनियरी दोष के कारण इस दुर्घटना की संभावना नहीं देख रहे हैं बल्कि शताब्दी के अंत में कंप्यूटरों के वर्ष 2000 की समस्या से ग्रस्त हो जाने के कारण होने वाली किसी संभावित मानव भूल को इसका संभावित कारण मान रहे हैं।

उनके अनुसार वर्ष 2000 की समस्या को गंभीरता से लिया जाना चाहिए। वे ऐसी घटना घटने की संभावना पूर्वी योरोप में अधिक मानते है जहां के अधिकतर देश अपनी ऊर्जा की आवश्यकता के लिए न्यूक्लीय ऊर्जा पर पूरी तरह निर्भर हैं। ये देश इस संभावित खतरे को कैसे टालते हैं, यह देखने की बात है।

इस बीच विश्व स्वास्थ्य संगठन ने ऐसी दुर्घटना के कारण वातावरण में फैल जाने वाले विकिरण के प्रभाव के विरुद्ध उपाय करने की तैयारी शुरू कर दी है। वे आयोडीन की टिकियों को वितरित करने पर जोर दे रहे हैं जिसे विकिरणजन्य थायरायड कैंसर को रोकने के लिए एकमात्र उपाय बताया जा रहा हैं।

संगठन के सूत्रों के हवाले से बताया गया है कि बच्चे इस विकिरण से विशेषरूप से प्रभावित होते हैं जैसा कि तत्कालीन सोवियत संघ के चेरनोबिल रिएक्टर में 1986 में घटित दुर्घटना के दौरान दिखाई दिया। यूक्रेन, वालरस और रूस के लगभग 1000 बच्चे थायरायड के कैंसर से ग्रस्त पाए गए थे।

पहले यह धारणा थी कि रिएक्टर से पांच किलोमीटर के दायरे में आयोडीन टिकियों का वितरण इस खतरे को टालने के लिए काफी होगा पर यह अनुमान ग़लत निकला। अब कहा जा रहा है कि रिएक्टर से 500 किलोमीटर के क्षेत्र में इन टिकियों के वितरण की व्यवस्था शायद कारगर साबित हो।

उल्लेखनीय है कि वैसे भी न्यूक्लीय दुर्घटनाओं से जूझने का अनुभव दुनिया को नहीं है और इससे संबंधित अनुमान कभी भी सही नहीं निकले हैं। पर इन भविष्य-वाणियों के चलते हमारे अपने रिएक्टरों के संबंध में इस देश के प्रशासकों, विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों की इस दिशा में क्या सोच है, यह जानने की सबको प्रतीक्षा है।

(अभियान)

पौधे बताते हैं भूकंप का समय —दीप्ति भटनागर

क्या आप जानते हैं कि पौधों से भी भूकंप के आने का अंदाजा लगाया जा सकता है ? जी हां, यह बिल्कुल सत्य है।

एरिजोना विश्वविद्यालय के विलियम बी० बुल और येल विश्वविद्यालय के मार्क ब्रैन्डन के अनुसार पौधों के एक विशेष वर्ग 'लाइकेन' यानि शैवाल के उगने के स्थान और तरीके से भूत और भविष्य के भूकंप के आने के समय और संभावना का काफी हद तक पता चल सकता है।

पौधों के वर्ग में लाइकेन सबसे अलग और अद्‌भुत हैं। वास्तव में यह एक ही प्रकार का पौधा नहीं है, इसमें दो वनस्पति वर्ग शैवाल (एल्गी) और फफूंद परस्पर सहजीवी होते हैं। लाइकेन विश्व में हर स्थान पर पहाड़ों के गड्ढों, कन्दराओं, लकड़ी के पुराने टूटे-फूटे लट्ठों और पेड़ों के तनों पर उगते हैं।

इन अद्‌भुत पौधों में दोनों वनस्पति किस्मों का सुदृढ़ तालमेल देखा जाता है। फफूंद का कार्य पानी और पोषक तत्वों को पूरे पौधे में पहुंचाना है। शैवाल इनसे प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया करके भोजन बनाता है। इसी अजीब पौधे का सीधा संबंध भूकंप जैसी प्राकृतिक विपदा से है, जो वाकई हैरान कर देने वाली बात है। ब्रैन्डन और बुल के अध्ययनों के अनुसार तीव्रता से आए भूकंपों का प्रभाव -करीब 400 किलोमीटर की दूरी तक देखा जा सकता है।

भूकंप के आसपास के स्थानों की चट्टानों में स्खलन पैदा होता है। स्खलन से चट्टानों में बनने वाले गड्ढों में लाइकेन अपना घर बनाना शुरु कर देते हैं। लाइकेन के उगने के करीब दस से बीस साल में ही उनकी विकास की गति को समझकर कथित स्थानों में पिछले एक हजार वर्ष तक आए भूकंप के इतिहास को जाना जा सकता है।

लाइकेन के अध्ययन के लिए इन दोनों वैज्ञानिकों ने "लाइकेनोमैट्री' नामक तकनीक विकसित की है। इसके जरिए न्यूजीलैंड में साउथ आइलैंड के उन क्षेत्रों का अध्ययन किया गया, जहां भूकंप के आने की संभावना बहुत अधिक है। इन स्थानों पर लाइकेन के विकास और उगने के तरीकों को बड़ी सूक्ष्मता से परखा गया। इससे यहां पिछले कई वर्षों में आए अनेक भूकंपों की महत्वपूर्ण जानकारी इन दोनों वैज्ञानिकों को हासिल हुई।

इसी तकनीक से लास एंजिलिस में भी अनेक स्थानों पर अध्ययन किए गए हैं। यहां सन् 1690 में आए एक बड़े भूकंप की संभावना की भी इन अध्ययनों से पुष्टि हुई है। पता चला है कि इन स्थानों पर भूकंप समय समय पर काफी अधिक संख्या में आते रहे हैं। इसके साथ ही यह अनुमान भी लगाया गया है कि भविष्य में भी कैलिफोर्निया में जल्दी जल्दी भूकंप के आने की संभावना है।

दोनों वैज्ञानिकों का मानना है कि लाइकेन के अध्ययनों से मिले संकेतों से हासिल भूतकाल की जानकारी भविष्य में संभावित भूकंपों का पता लगाने में भी काफी मददगार साबित होती है।

(अभियान)

'स्ट्रिंग थियरी' पर नई खोज —श्रीमती अर्पिता मोहन

मनुष्य सदैव से खोजी प्रकृति का रहा है। अपने आस पास दिखने वाली सभी चीजों में उसकी गहरी रुचि रही है। अनेक प्रश्न तो प्रारंभ से ही उभर कर सामने आ गये थे यथा हमारे ब्रह्माण्ड का जन्म कैसे हुआ ? इसका अंत कैसे होगा ? आदि आदि। और भौतिक विज्ञानियों को इस दिशा में कुछ उल्लेखनीय सफलतायें मिली हैं।

लगभग डेढ़ दशक पूर्व ब्रिटेन के माइकल ग्रीन और अमेरिका के जान स्वार्थ ने ब्रह्माण्ड को समझने के लिए एक

''थ्योरी'' अथवा अवधारणा का प्रतिपादन किया, जिसे ''स्ट्रिंग थ्योरी'' के नाम से जाना जाता है।

मौटे तौर पर यह कह सकते हैं कि एक मीटर के मात्र खरबवें भाग के बराबर परमाणु नाभिक जिन प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों के बने होते हैं, वे स्वयं भी अतिसूक्ष्म कणों से निर्मित होते हैं। प्रोटॉन कुल 6 प्रकार के (तीन-तीन क्वार्थ के) और न्यूट्रॉन 6 प्रकार के लेप्ट्रॉन के बने होते हैं। उनके बीच की अन्योन्य क्रिया को व्याख्यायित करने के लिए वैज्ञानिकों ने ''बोसॉन'' नाम के एक ऊर्जा कण की कल्पना की है। ये बोसॉन क्वार्कों और लेप्ट्रॉनों के बीच एक तरफ से दूसरी तरफ दौड़ लगाते रहते हैं और उन्हें आपस में जोड़ते हैं। इस परिकल्पना के अनुसार बोसॉन एक निश्चित स्पन्दन वाले होते हैं और दोलनशील वलय या छल्ले का रूप ले लेते हैं। इसे स्ट्रिंग कहते हैं। ये स्ट्रिंग ग्यारह आयामों वाले होते हैं। गोकि प्रयोगशाला में इन्हें सिद्ध करना अभी भी शेष है, किन्तु गणित के आधार पर इनकी पुष्टि की जा चुकी है। इस प्रकार स्ट्रिंग क्या है, इसे स्वयं समझ सकना या किसी को समझाना अत्यंत कठिन है। किन्तु स्ट्रिंग थ्योरी पर संसार भर के भौतिकविद् अनुसंधानरत हैं। उन्होंने इसे समझने-समझाने की चुनौती को स्वीकार किया है।

गत जुलाई में स्ट्रिंग थ्योरी पर शोध करने वाले लगभग 400 भौतिक विज्ञानियों ने ''स्ट्रिंग 99'' नाम्नी सम्मेलन में ब्रह्माण्ड से संबंधित अनेक प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने के प्रयास किए।

वास्तव में स्ट्रिंग थ्योरी एक ऐसी सैद्धान्तिक परिकल्पना है जो क्वांटम थ्योरी (परमाणु स्तर पर) और गुरुत्वाकर्षण थ्योरी (ब्रह्माण्डीय स्तर पर) को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास करती है।

भौतिक विज्ञानियों का मानना है कि सृष्टि में चार मूल शक्तियाँ काम कर रही हैं। इनमें से तीन तो परमाणु स्तर पर और एक गुरुत्वाकर्षण शक्ति ब्रह्माण्ड स्तर पर काम करती हैं। परमाणु स्तर पर काम करने वाली शक्तियों में एक है परमाणु के नाभिक और उसके इलेक्ट्रॉन को बांध रखने वाली चुम्बकीय शक्ति, दूसरी नाभिक के भीतर ही एक तरह के धनावेश वाले प्रोटॉनों को बांध रखने वाली प्रबल अन्योन्य क्रिया और तीसरी है नाभिक की रेडियोधर्मी विघटन पैदा करने वाली क्षीण अन्योन्य क्रिया।

यहाँ वैज्ञानिकों की चिंता का विषय यह है कि जहाँ उपरोक्त ये तीनों शक्तियाँ चुम्बक की भाँति आकर्षित भी करती हैं और प्रतिकर्षित भी करती हैं, वहीं ब्रह्माण्ड स्तर की गुरुत्वाकर्षण शक्ति एक तरफा है। यह केवल आकर्षित करती है, खींचती है, प्रतिकर्षित नहीं करती है। इस प्रकार प्रकृति में गुरुत्वाकर्षण शक्ति को छोड़कर प्रत्येक वस्तु द्वैत (दो तरफा) है, केवल गुरुत्वाकर्षण शक्ति अद्वैत (एक तरफा) है।

लगभग 80 वर्ष पूर्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने ''सापेक्षतावाद'' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। इस सिद्धान्त के प्रकाश में भौतिक विज्ञानियों को यह आशा थी कि देर सवेर उस एक सूत्र या ब्रह्म-सूत्र को ज्ञात कर लेंगे, जिसकी सहायता से समस्त ब्रह्माण्ड की व्याख्या के लिए मात्र एक सिद्धान्त ही पर्याप्त होगा। किन्तु अभी भी आंशिक सफलता ही हाथ लगी है।

प्रोफेसर स्टीफन हॉपकिन को आइंस्टीन के बाद इस शती का सबसे महान भौतिक विज्ञानी माना जाता है। हॉपकिन केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रहे हैं, अस्वस्थता के कारण केवल बोलने वाले कम्प्यूटर की सहायता से ही बोल पाते हैं। प्रो० स्टीफन हॉपकिन का कहना है कि अगले बीस वर्षों में भी एकीकृत सूत्र या ब्रह्म-सूत्र की खोज की सफलता में संभावना पचास फीसदी ही है। किन्तु भौतिक विज्ञानी ब्रह्माण्ड को समझने में प्राणपण से जुटे हुए हैं, और ऐसी आशा है कि इक्कीसवीं सदी में भौतिक विज्ञानी ब्रह्माण्ड संबंधी खोजों को और अधिक गति देंगे और तब अनेक अनसुलझे रहस्य निश्चित रूप से सुलझाये जा सकेंगे।

द्वारा श्रीमती प्रभा देवी
224-बी, तुलाराम बाग, इलाहाबाद

डॉ० आत्माराम स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय

5 अक्टूबर को विज्ञान परिषद् में वर्ष 1999 का 'डॉ० आत्माराम स्मृति व्याख्यान सम्पन्न हो गया। इस व्याख्यान का विषय था-''विज्ञान का रोमांच'' और व्याख्यानदाता थे प्रो० एम० जी० के० मेनन।

कार्यक्रम का प्रारंभ डॉ० प्रभाकर द्विवेदी द्वारा सरस्वती वंदना से हुआ। इसके बाद प्रो० मेनन और सभाध्यक्ष डॉ० मंजु शर्मा ने स्वर्गीय डॉ० आत्माराम के चित्र पर माल्यार्पण करके श्रद्धांजलि अर्पित की।

श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव (संचालक) ने सभी का स्वागत किया। उन्होंने प्रो० मेनन और डॉ० शर्मा का स्वागत करते हुए कहा कि प्रो० मेनन अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक हैं। उन्होंने विदेशों में भारत का मान बढ़ाया है। वे अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत किए गए हैं, जिसकी सूची बहुत लम्बी है। प्रधानमंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार, केन्द्रीय मंत्री रह चुके प्रो० मेनन पद्मश्री, पद्मभूषण एवं पद्मविभूषण जैसे उच्चस्तरीय सम्मानों से अलंकृत किये जा चुके हैं। (देखें प्रो० मेनन का संक्षिप्त परिचय)। विज्ञान परिषद् की ओर से डॉ० अशोक कुमार गुप्त जी ने प्रो० मेनन का माल्यार्पण किया।

डॉ० मंजु शर्मा का स्वागत करते हुए उन्होंने कहा कि डॉ० मंजु शर्मा देश की चोटी की जीवविज्ञानी और अंतर्राष्ट्रीय स्तर की जैव प्रौद्योगिकी की विशेषज्ञा हैं और जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उनके द्वारा की गई उच्चस्तरीय शोधों के लिए उन्हें पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। प्रो० कृष्णा मिश्रा ने डॉ० मंजु शर्मा का माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया।

प्रो० मेनन ने अपने व्याख्यान में कहा कि विज्ञान के प्रति उत्साह, रोमांच व समर्पण आवश्यक है। उन्होने जे० सी० बोस, सी० वी० रमन, भाभा, खुराना, मेघनाथ साहा, चन्द्रशेखर सरीखे वैज्ञानिकों का उल्लेख करते हुए कहा कि अत्याधुनिक सुविधायें सतत् वैज्ञानिक प्रयास का परिणाम हैं। आगे बोलते हुए उन्होंने बताया कि आने वाली सदी सूचना क्रांति की सदी होगी। प्रो० मेनन के व्याख्यान पर उनके सरल, सहज, सहृदय और हृदय की विशालता जैसे मानवीय गुणों की स्पष्ट छाप है। वास्तविकता तो यह है कि अहिन्दी भाषी प्रो० मेनन ने हिन्दी में व्याख्यान देकर सभी का हृदय जीत लिया।

सभाध्यक्ष डॉ० मंजु शर्मा ने अपने अध्यक्षपदीय उद्बोधन में कहा कि देश विज्ञान के माध्यम से ही प्रगति पथ पर अग्रसर हो सकता है। उन्होंने बल देकर कहा कि विज्ञान की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से होनी चाहिए। मातृभाषा अपनाकर ही अमेरिका, चीन, जापान हमसे बहुत आगे निकल गए हैं। डॉ० शर्मा ने कहा कि अगली शताब्दी में बायोटेक्नोलॉजी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण होगा। उन्होंने कहा कि हमारी सोच वैज्ञानिक होनी चाहिए और जो भी कार्य हम करें उसे वैज्ञानिक तरीके से करें।

इसके बाद डॉ० मंजु शर्मा ने प्रो० मेनन को उनके व्याख्यान के लिए जब मानदेय की राशि (एक हज़ार रुपये) प्रो० मेनन के कर कमलों में रखा तो प्रो० मेनन ने हृदय की विशालता का परिचय देते हुए मानदेय की राशि विज्ञान परिषद् को यह कहकर लौटा दी कि इसका उपयोग परिषद् अपने किसी कार्य में कर ले।

अंत में परिषद् के प्रधानमंत्री प्रो० शिवगोपाल मिश्र ने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की विशेष रूप से प्रो० मेनन, डॉ० मंजु शर्मा, आकाशवाणी इलाहाबाद, दैनिक जागरण, राष्ट्रीय सहारा, अमर उजाला, हिन्दुस्तान आदि समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों, नेशनल एकेडेमी ऑव साइंसेज के पदाधिकारियों, विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों के आचार्यों और उपस्थित अतिथियों के प्रति।

—संयुक्त मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

विज्ञान संगोष्ठी सम्पन्न

जोधपुर। विज्ञान परिषद् की जोधपुर शाखा तथा रक्षा प्रयोगशाला जोधपुर के संयुक्त तत्वावधान में राजभाषा हिन्दी की स्वर्ण जयन्ती पर एक तकनीकी संगोष्ठी दिनांक 22 सितम्बर 1999 को आयोजित की गई। संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए परिषद् की जोधपुर शाखा के सभापति एवं रक्षा प्रयोगशाला के निदेशक डॉ० रामगोपाल ने बताया कि जब तक हिन्दी को मानसिक रूप से स्वीकार नहीं किया जाता तब तक इसका यथेष्ट विकास नहीं हो पायेगा। उन्होंने सभागार में उपस्थित वैज्ञानिक समुदाय को आगाह किया कि वे हिन्दी में अपनी लेखनी को गति दें, जिससे कि ज्ञान का प्रचार-प्रसार हो सके।

इस अवसर पर विज्ञान परिषद् की जोधपुर शाखा के प्रधानमंत्री एवं भू-जल विभाग के अधिकारी डॉ० डी० डी० ओझा ने अपने उद्बोधन में हिन्दी में विज्ञान पत्रकारिता के प्राचीन एवं अर्वाचीन पक्ष को रखते हुए बताया कि जब तक हिन्दी विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं अनुसंधान से नहीं जुड़ती, इसका विकास नहीं होगा। संगोष्ठी में प्राणि सर्वेक्षण विज्ञानी ने मरुस्थलीय क्षेत्रों में दीमक की व्याप्त प्रजातियों के बारे में जानकारी दी तथा उन्मूलन के सुझाव भी दिये। आफरी के वैज्ञानिक डॉ० योगेश चन्द्र त्रिपाठी ने मरु क्षेत्रों में व्याप्त वनस्पतियों की ओषधीय उपादेयता को प्रतिपादित किया तथा रोग उन्मूलन में इनकी महत्ता को दर्शाया। कमला नेहरू महाविद्यालय की डॉ० श्रीमती कुंजन त्रिवेदी ने बालकों की प्रारम्भिक अवस्था में की गई उपेक्षा के नकारात्मक रूप को बताया तथा बाल-विकास के अधिगम सिद्धान्तों का विवेचन किया। रक्षा प्रयोगशाला के संयुक्त निदेशक डॉ० प्रदीप भटनागर ने आयनीकरण विकिरणों के अंतरराष्ट्रीय मानक एवं दुष्प्रभावों के बारे में जानकारी दी। रक्षा वैज्ञानिक डॉ० श्रीमती सुशीला राय ने मरु क्षेत्र में छद्मावरण की सार्थकता तथा उपादेयता को प्रतिपादित किया। कार्यक्रम का संचालन संयुक्त मंत्री श्री राकेश श्रीवास्तव ने किया तथा सभी आगन्तुक वैज्ञानिकों के प्रति डॉ० दुर्गादत्त ओझा, प्रधानमंत्री ने आभार व्यक्त किया।

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

दिनांक 29-9-99 को नगर राजभाषा क्रियान्वयन समिति एवं मंडल रेल प्रबंधक जोधपुर के संयुक्त संयोजन में एक वैज्ञानिक संगोष्ठी "पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य" पर आयोजित की गई जिसमें परिषद् के सभ्यों में से डॉ० डी० डी० ओझा ने पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत प्रकाश डाला तथा पर्यावरण प्रबंधन की आवश्यकता एवं उपादेयता को बताया। डॉ० वाई० सी० त्रिपाठी ने मरु-स्थलीय वनस्पतियों की विभिन्न रोगों के शमन संबंध जान-कारी दी तथा इनके संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया। श्रीमती नीलम वासन ने भोजन में रेशे का महत्व पर अपना सारगर्भित व्याख्यान दिया। कार्यक्रम के अंत में सभी वैज्ञानिकों को स्मृति चिन्ह प्रदान कर मंडल रेल प्रबंधक, जोधपुर, श्री बुध प्रकाश ने इस तरह के व्याख्यानों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

प्रस्तुति : डॉ० डी० डी० ओझा
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् जोधपुर शाखा

सम्पादकीय

एक रचनाकार के संघर्ष का माध्यम या उसके संघर्ष का औज़ार उसकी रचना होती है। शब्दों का तार्किक-संवेदनात्मक संरचना के रूप में संयोजन कृति के अस्तित्व को जन्म देता है। यदि कोई लेखक संवेदनशील है तो यह उसके लेखकीय कर्म के लिए आधारजन्य सहूलियत कही जाएगी, किन्तु संपादक के समक्ष संतुलन की एक तुला रखी हुई होती है। उसे अपनी संवेदनाओं को तौल-तौलकर व्यक्त करना पड़ता है।

अंतःप्रेरणा केवल कवियों और कलाकारों का विशेषाधिकार नहीं है। ऐसे कुछ लोग हमेशा रहे हैं और रहेंगे जो इसे महसूस कर सकते हैं। ये वे लोग हैं जिन्होंने सोच-समझकर अपने मन से अपना काम चुना है और उसे लगाव और सूझबूझ से करते हैं। इसमें डॉक्टर, शिक्षक, वैज्ञानिक और हज़ारों किस्म के लोग हो सकते हैं। इनका काम एक अविराम जय-यात्रा बना रहता है। मुश्किलें और हार कभी इनकी जिज्ञासा से बड़ी नहीं होतीं। ऐसे महान व्यक्तित्व अपने अस्तित्व से सूरज की तरह इस दुनिया को रोशनी देते हैं और फिर जिस तरह सूरज डूबता है उसी तरह ये व्यक्तित्व नज़रों से ओझल हो जाते हैं। मगर जिस तरह सूरज डूबने के बाद भी आसमान के पर्दे से रोशनी ज़ाहिर होती रहती है, महान व्यक्तियों के कारनामें भी सुनहरी किरणों की तरह उनकी याद दिलाते रहते हैं।

भूतपूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने लिखा है- ''कभी-कभी हम प्रसन्नता की परिभाषा एक ऐसे जीवन के रूप में करते हैं जिसमें कोई समस्या न हो, जिसमें कोई चुनौती न हो, और जिसमें कोई असफलता न हो। लेकिन यदि समस्याएँ समाप्त हो जाएँ, जीवन के सामने कोई चुनौती न रह जाए, असफलता, पराजय और उदासी के कड़वे अनुभव न हों तो जीवन नीरस बन जाएगा। जब वह पीछे मुड़कर देखेगा तो उसे एक ऐसा जीवन दिखाई देगा जिसमें न कोई उत्थान-पतन होगा और न ही उसमें वास्तविक सौन्दर्य होगा।''

कार्य करने वालों के नाम भी मनुष्य की स्मृति में पीछे चले जाते हैं। इसे ख्याति या इतिहास का अत्याचार ही समझना चाहिए। समकालीन होना जीवित रहने की जमानत नहीं है। दूसरी तरह की ख्याति आकाश तक जा पहुँचती है, फिर समय की आँधी उसे उड़ा ले जाती है। लेकिन सदाबहार अक्षयवट की तरह उन लोगों की ख्याति होती है जो मानवता की आत्मा के प्रति शाश्वत मूल्यों को जीवनशक्ति देते हैं, उनको परिमार्जित करते हैं, उन्हें समृद्ध करते हैं।

इस असार संसार में अधिकांश लोग जीवन जीना सीखने से पहले ही मर जाते हैं। जीवन अपने कर्मों में जिया जाता है, मात्र श्वासों में नहीं, विचारों में जिया जाता है। हृदय की धड़कनों से तो जीवन की केवल अवधि नापी जा सकती है पर जीवन तो वास्तव में वह जीता है, जिसके विचार उत्तम हों- अनुभूतियाँ पवित्र हों तथा कर्म श्रेष्ठ हों।

इस सन्दर्भ में कविवर श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी की पंक्तियां उल्लेखनीय हैं -

''जितनी सांसे मिली मुझे वे खोई नहीं न अब खोऊँगा
बुझते-बुझते भी पूनम के बीज अमावस में बोऊँगा।''

जैव-प्रौद्योगिकी पर विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा 4 एवं 5 दिसम्बर को संगोष्ठी का आयोजन

जैव-प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार के आर्थिक सहयोग से आगामी 4 एवं 5 दिसम्बर 1999 को विज्ञान परिषद् "इक्कीसवीं सदी में जैव-प्रौद्योगिकी के नये आयाम" विषय पर एक दो-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन करने जा रहा है।

इस संगोष्ठी का उद्घाटन जैव-प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली की सचिव डॉ० मंजू शर्मा के कर कमलों द्वारा 4 दिसम्बर को पूर्वान्ह 9.00 बजे होगा। उद्घाटन-सत्र में ही डॉ० वी० पी० शर्मा (नई दिल्ली) का व्याख्यान, और इसके बाद शोध-निबंधों का प्रस्तुतिकरण, द्वितीय सत्र में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के डॉ० बी० डी० सिंह का व्याख्यान और बाद में शोध-निबंधों का प्रस्तुतिकरण।

5 दिसम्बर को तृतीय सत्र में इफको, लखनऊ के डॉ० एस० के० ओझा के व्याख्यान के पश्चात् शोध-निबंधों का प्रस्तुतिकरण। चतुर्थ सत्र में इलाहाबाद के प्रो० उमाशंकर श्रीवास्तव के व्याख्यान के बाद शोध-निबंधों का प्रस्तुतिकरण और पाँचवें सत्र में मेरठ (अब हरियाणा) के डॉ० पी० के० गुप्ता के व्याख्यान के बाद शोध-निबंधों का प्रस्तुतिकरण और समापन समारोह।

संगोष्ठी के विषय हैं-

- जैव-प्रौद्योगिकी की उपलब्धियाँ एवं समस्यायें
- मलेरिया एवं अन्य संक्रामक रोगों में जैव-प्रौद्योगिकी की भूमिका
- जैव-प्रौद्योगिकी और कृषि
- जैव-प्रौद्योगिकी एवं उद्योग
- आनुवंशिक अभियांत्रिकी
- पादप कोशिका एवं ऊतक संवर्धन
- आनुवंशिक रोगों की पहचान में जैव-प्रौद्योगिकी
- आण्विक जैविकी : जीन क्लोनिंग
- जैव-उर्वरक, जैवीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं जैव-प्रौद्योगिकी
- जैव-प्रौद्योगिकी एवं पेटेंट्स
- जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा अपशिष्टों का निवारण
- जैव-प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण
- जैव-प्रौद्योगिकी पर कोई अन्य विषय

इस संगोष्ठी में देश के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों और विज्ञान लेखकों के भाग लेने की सूचना प्राप्त हुयी है। संगोष्ठी में शोध निबंध वाचन करने वाले सभी विद्वानों से निवेदन है कि यदि अपने शोध-निबंध की एक प्रति (जो छपकर 3-4 पृष्ठों में आ जाये) संगोष्ठी की तिथियों के पूर्व ही हमें भेज दें तो उन्हें व्यवस्थित करके एक साथ प्रकाशित करने में सुविधा होगी।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संयोजक, संगोष्ठी

ISSN : 0373-1200

दिसम्बर 1999

यह प्रति 5 रु०

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 85 अंक 9
दिसम्बर 1999

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत

1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

सम्पादक

डॉ० दिनेश मणि, डी० एस-सी०

मुद्रक

अरुण राय
दी कम्प्यूटर कम्पोजर,7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002
फोन : 460001

विषय-सूची

क्लोनिंग का कमाल : डॉली की सृष्टि

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मार्च 1997 में स्काटलैण्ड में जन्मी नन्हीं 'डॉली' (मेमना) सारे दुनिया के वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं और शोध-पत्रिकाओं के माध्यम से सर्वाधिक चर्चित बच्ची सिद्ध हुई। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि डॉली विश्व की पहली ऐसी स्तनपायी है, जो बिना शुक्राणु और डिम्ब के संलयन से पैदा हुई।

डॉली वास्तव में ''क्लोन'' है। इसे एक 6-वर्षीय भेड़ (माँ) के थन की एक कोशिका से पैदा किया गया है। कहते हैं यह अपनी माँ की हूबहू हमशक्ल है।

वैज्ञानिक क्लोनिंग पर वर्षों से शोधरत हैं। पादपों के विषय में तो आशातीत सफलतायें मिली हैं, किन्तु प्राणियों पर अनुसंधान करने वाले वैज्ञानिकों की उपलब्धियाँ विशेष रूप से चर्चित रही हैं क्योंकि प्राप्त सफलताओं ने मानव-क्लोन बनाने के लिए संभावनाओं के द्वार खोल दिये हैं।

''क्लोन'' ऐसा जीव है जिसको बनाने के लिए केवल एक ही ''जनक'' माता अथवा पिता की आवश्यकता होती है और वह भी अलैंगिक तरीके से। इस प्रकार बना हुआ क्लोन अपने जनक से न केवल शारीरिक रूप से समान होता है वरन् आनुवंशिक रूप से भी उसी जैसा होता है।

लैंगिक प्रजनन में आमतौर से संतति में माता-पिता दोनों के ही आधे-आधे आनुवंशिक लक्षण आते हैं। वैसे परम्परागत रूप से क्लोनिंग उद्यानविज्ञानियों में प्रचलित रहा है जहाँ वृक्ष की एक टहनी से पूरा वृक्ष तैयार करते हैं। ग्रीक भाषा में ''क्लोन'' का अर्थ ''टहनी'' है और अब प्राणियों के लिए भी इसी शब्द का प्रयोग करते हैं।

यदि हम प्राणियों में क्लोनिंग के इतिहास पर नज़र डालें तो एक बात जो उभर कर सामने आती है वह यह है कि अपेक्षाकृत यह नया इतिहास है– लगभग 50 वर्षों का ही।

क्लोनिंग से संबंधित पहला प्रयोग 1950 में मेढक पर किया गया था। क्लोनींग तकनीक में कोशिका के केन्द्रक (न्यूक्लिअस) का स्थानांतरण या अदला-बदली की जाती है। कोशिका-केन्द्रक जीनों और गुणसूत्रों का ''संग्राहलय'' होता है, जिसमें सभी आनुवंशिक सूचनायें एकत्र रहती हैं।

केन्द्रक स्थानांतरण तकनीक में डिम्ब का केन्द्रक निकाल लिया जाता है और उसमें किसी अन्य कोशिका का केन्द्रक प्रविष्ट करा दिया जाता है। होता यह है कि केन्द्रक-विहीन डिम्ब विद्युत् स्पन्द से यह सोचने का संकेत पाता है कि वह निषेचित हो गया है और फिर दूसरा कदम यह होता है कि उसमें तेज़ कोशिका-विभाजन होने लगता है।

मेढक के बाद कुछ कीटों और चूहों के क्लोन तैयार करने से संबंधित प्रयोग किए गए। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार के प्रयोगों में वैज्ञानिकों को सफलतायें मिलीं, किन्तु वयस्क जीव बनाने में असफलता ही हाथ आयी। इससे वैज्ञानिकों की समझ में एक बात आयी कि कहीं न कहीं प्रयोग में कोई कमी अथवा कोई गड़बड़ी है। और जब इस प्रकार के क्लोनों का बारीकी से परीक्षण किया गया तो पता चला कि गड़बड़ी उनके केन्द्रकों में है। उनके केन्द्रक असामान्य थे।

प्रयोगकर्ताओं से चूक यह हो गई थी कि उन्होंने डिम्ब के लिए जिन केन्द्रकों के चुनाव किये थे वे विकसित भ्रूणों और वयस्क कोशिकाओं से लिए जाते रहे थे। और ये केन्द्रक डिम्ब में तेज़ विभाजन के लिए अपने को अनुकूलित नहीं कर पाते थे। डॉली की सफलता का रहस्य यहीं छिपा हुआ था।

एडिनबर्ग के रॉस्लिन संस्थान के डॉ० इयन बिल्मट ने डॉली की ''सृष्टि'' करके क्लोनिंग-प्रौद्योगिकी में ''चमत्कार'' कर दिया।

डॉली के सम्बन्ध में जब थन से कोशिका ली गई, तब इस तथ्य का ध्यान रखा गया कि यह कोशिका अपने जीवन-चक्र की उसी दशा में हो, जिस अवस्था में वह डिम्ब जिसमें थन-कोशिका का केन्द्रक स्थानांतरित किया जाना था।

क्लोनिंग की उपलब्धियाँ

वर्ष	वैज्ञानिक	प्रजातियाँ	विधि	परिणाम
1950	ब्रिग्स एवं किंग	मेढक	केन्द्रक स्थानांतरण, भ्रूण से डिम्ब	टैडपोल (लारवा) का जन्म, किन्तु वयस्क होने के पहले मृत्यु
1960	जॉन बी० गोर्डन	मेढक	केन्द्रक स्थानांतरण, जिगर या वृक्क की कोशिका से डिम्ब में	टैडपोल का जन्म, किन्तु वयस्क होने से पहले मृत्यु
1970	इल्मेंस	फलमक्खी	केन्द्रक स्थानांतरण, भ्रूण से डिम्ब	लारवा जन्मे, किन्तु वयस्क होने के पूर्व मृत्यु
1984	मैकॅग्राथ एवं सोल्टर	चुहिया	केन्द्रक स्थानांतरण, भ्रूण से डिम्ब	मूसों का जन्म किन्तु कोई वयस्क न बन सका
अक्टूबर 1993	हाल एवं स्टिलमान	मानव	कृत्रिम रूप से विभाजित, भ्रूण से डिम्ब	सर्वप्रथम मानव भ्रूण (कृत्रिम जुड़वाँ) असामान्य
मार्च 1996	स्काटलैण्ड का रॉस्लिन संस्थान का दल	भेड़	केन्द्रक स्थानांतरण, भ्रूणों से डिम्ब	दो भेड़ें मेगान, मॉर्गन का सामान्य जन्म
फरवरी 1997	स्काटलैण्ड का रॉस्लिन संस्थान का दल	भेड़	केन्द्रक स्थानांतरण, थन कोशिका से डिम्ब	डॉली का जन्म, सामान्य
मार्च 1997	डॉन वुल्फ दल ओरेगन	बंदर	केन्द्रक स्थानांतरण, भ्रूण से डिम्ब	2 बंदरों का जन्म, सामान्य

किया यह गया कि विशेष प्रकार के रसायनों के माध्यम से थन-कोशिका को ''बहला-फुसलाकर'' शीत-निष्क्रियता (हाइबरनेशन) की दशा में पहुँचा दिया गया। इस दशा को ''सुप्त'' या अव्यक्त दशा कहते हैं। इस प्रकार थन-कोशिकायें जीवित तो थीं किन्तु उनका विभाजन रुका हुआ था। थन-कोशिकायें अपनी पूर्व की स्थिति में ही बनी रहीं, जैसी वे थन में थीं। जब उन कोशिकाओं के केन्द्रकों को डिम्बों में स्थानांतरित किया गया तो उनमें स्वाभाविक विभाजन क्षमता बनी रही और आगे का काम प्रकृति ने स्वयं किया।

इससे यह भी ज्ञात होता है कि वैज्ञानिकों को जहाँ अन्य प्रजातियों में असफलता हाथ आई, उसका क्या कारण था। यही नहीं, जहाँ तक डॉली का संबंध है, उसमें भी 277

शेष पृष्ठ 16 पर

रेडीमेड बच्चे

रमेश दत्त शर्मा

काफी दिनों से जीवविज्ञानियों की दुनिया में ये अटकलें लग रही थीं कि ज़रूरत और माँग के हिसाब से बच्चे तैयार किये जा सकते हैं। पिछले 40 वर्षों में आनुवंशिकी और अणुजैविकी के क्षेत्र में लगातार हो रही खोजों ने इन अटकलों को सच्चाई में बदलने के द्वार खोले। जल्दी ही विश्व को यह समाचार मिलने वाला है कि 'रेडीमेड बच्चे' तैयार करने की प्रक्रिया की एक बड़ी कठिन मंज़िल तय कर ली जाएगी। उत्तरी इंगलैंड के एक दम्पत्ति को उस दिन की प्रतीक्षा है, जब परखनली में तैयार किए जा रहे उनके बच्चे के जन्म से पहले भ्रूणावस्था में उसकी कोशिकाएँ इस बात के लिए जाँची जाएँगी, कि उनमें कैंसर पैदा करने वाला वंशाणु (जीन) तो नहीं है। केवल वही भ्रूण गर्भाशय में रोपा जाएगा जो कैंसरजनक वंशाणुओं से मुक्त होगा।

लन्दन के हैमरस्मिथ अस्पताल में प्रजनन विशेषज्ञ डॉ० रॉबर्ट विल्स्टन और भ्रूणविज्ञानी ऐलन हैण्डीसाइड तथा यूनिवर्सिटी कॉलेज के आनुवंशिकीविद् डॉ० जॉय डेलहाण्टी मिल-जुल कर यह प्रयोग कर रहे हैं। जो दम्पत्ति इस प्रयोग के लिए चुने गए हैं, उनमें से महिला को आँतों का कैंसर है। यह कैंसर जिस वंशाणु के कारण होता है, उसका पता लगा लिया गया है। इस वंशाणु की एक प्रति कोशिकाओं में मौजूद हो तो वह बच्चा 40 साल का होते-होते आँतों के इस कैंसर का शिकार हो जाए, इसकी संभावना 80 से 90 प्रतिशत आँकी गयी है। हालांकि बड़ी आँत के कैंसरग्रस्त निचले हिस्से को काटकर इस रोग का इलाज किया जा सकता है, लेकिन उसके बाद कैंसर शरीर के किसी भी दूसरे हिस्से में फूट सकता है और अधिक उग्र रूप दिखा सकता है।

इस महिला के साथ यही शल्यक्रिया की गई तो उसके कारण डिंब यानी अण्डों को निषेचन के लिए लाने वाली डिंबवाहिनी नलिका का रास्ता बंद हो गया और यह महिला इस लायक नहीं रही कि बच्चे पैदा कर सके। अब तो यही हो सकता था कि उसके डिंबाशय से डिंब बाहर निकालें और परखनली में पति के शुक्राणुओं से मेल करा कर पत्नी के गर्भाशय में रोप दिए जाएँ। यही किया जा रहा है, लेकिन दम्पत्ति नहीं चाहते कि होने वाले बच्चे की कोशिकाओं में माँ का वह वंशाणु पहुँचे जो उसे भी कैंसर का शिकार बना दे।

इस तरह के तमाम प्रयोगों के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह व्यवस्था की गई है कि हर प्रयोगशाला में 'भ्रूण से छेड़छाड़' के प्रयोग तभी किए जा सकते हैं, जब इसके लिए उसे संस्थान की 'नैतिक समिति' स्वीकृति दे। यह शर्त भी पूरी कर ली गई।

लेकिन नैतिक समिति की स्वीकृति के बावजूद यह प्रयोग विवादास्पद बन गया है। जन्म से पहले भ्रूण को ठोंक बजा कर देखना कि उसमें विरासत से पहुँचने वाले किसी रोग के 'दूत' तो नहीं हैं, मानवीय दृष्टि से उचित ही लगता है। लेकिन ये दूत रोग की 'संभावना' ही व्यक्त करते हैं। सामान्य व्यक्तियों की तुलना में कैंसर के जीन कैंसर होने की संभावना दुगुनी, तिगुनी या चौगुनी बढ़ा देते हैं। तो क्या ऐसे भ्रूण नष्ट कर दिए जायें ? क्या पता जो भ्रूण नष्ट किया जा रहा है, उससे पनपने वाला शिशु तीस या चालीस की उम्र में कैंसर शिकार होने से पहले अपनी प्रतिभा का कोई ऐसा चमत्कार दिखा दे कि कैंसर या एड्स जैसे घातक रोग जड़ से मिटाने की कुंजी हाथ लग जाए ?

लन्दन के 'गाई' अस्पताल में मनोविज्ञान और आनुवंशिकी की विशेषज्ञ डॉ० थेरेसा मार्तू ने इन प्रश्नों को लेकर एक सर्वेक्षण किया तो सामान्य जनता, लेडी डॉक्टर, आनुवंशिकीविद् और नैतिक विशेषज्ञ भी मानते पाये गये कि

विविध प्रकार के कैंसर, 'सिस्टिक फाइब्रोसिस' और 'डाउन्स सिण्ड्रोम' जैसी वंशागत बीमारियों के लिए भ्रूण जाँचना कोई ग़लत नहीं है। यह तकनीक उपलब्ध होनी चाहिए।

लेकिन क्या गारण्टी है कि एक बार यह तकनीक उपलब्ध हो गयी तो उसका दुरुपयोग नहीं होगा ? जन्म से पूर्व भ्रूण-परीक्षा की एक तकनीक 'एम्नियोसेंटेसिस' का दुरुपयोग हम भुगत रहे हैं। इसे जन्मजात विकृतियों और भ्रूण की स्वस्थता परखने की बजाय 'बेटा है या बेटी' यह जाँचने के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा और 'बेटी' का पता चलते ही भ्रूणपात करवाये जाने लगे। बहुत शोर मचाये जाने पर सरकार के कानों पर जूँ रेंगी और 'गर्भ परीक्षण' पर रोक लगी, मगर चोरी छुपे यह धंधा खासतौर से छोटे शहरों और कस्बों में आज भी जारी है।

लेकिन दुरुपयोग तो किसी भी आविष्कार का किया जा सकता है। परमाणु-ऊर्जा की खोज एटम बम बनाने के लिए नहीं की गई थी। यहाँ तक कि हमारे पुरखों ने आग की खोज भी चूल्हे जलाने के लिए की थी न कि दूसरों के घर फूँकने के लिए। खोजबीन का यह सिलसिला 'दुरुपयोग' के डर से बंद कर दिया जाता, तो आज भी मानव अपने पुरखों की तरह जंगलों में भटकता घूमता।

राजधानी के आयुर्विज्ञान संस्थान में मैक्समुलर भवन के सहयोग से दो दिन की एक गोष्ठी आनुवंशिकी तथा चिकित्साशास्त्र में की गई ऐसी खोजों को लेकर संपन्न हुई। इसमें भी यही तय पाया गया कि एक 'आचार संहिता' अनिवार्य की जाए, लेकिन खोजपरख चलती रहनी चाहिए। सबसे बड़ी ज़रूरत यह समझी गई कि इन वैज्ञानिक मुद्दों पर जनचेतना जागृत की जाए।

मुद्दे अनेक हैं। इनको अनेक खोजों ने पैदा किया है। शुरुआत परखनली शिशु से हुई, जब डिंबाणु और शुक्राणु परखनली में मिलाकर गर्भाशय में रोपना और इस तरह औरत या मर्द या दोनों को बाँझपन की 'शर्म' से छुटकारा दिलाने की तकनीक सफल हुई। यहाँ पर अगर डिंबाणु नहीं बनते तो वे भी किसी 'दूसरी' औरत से ले सकते हैं। अगर शुक्राणु नहीं बनते तो वे भी किसी 'पराये' मर्द के हो सकते हैं। अगर गर्भाशय काम नहीं करता तो 'कोख' भी किराये पर ली जा सकती है। हाल में एक 'माँ' ने अपने 'बेटी' का 'बच्चा' जना, क्योंकि बेटी का गर्भाशय जन्म से ही गायब था। अब इस बच्चे का रिश्ता तय करने के लिए जरा माथापच्ची कीजिये। किराये पर 'कोख' के करार के बाद माँ बच्चे को जन्म देने के बाद उसे 'असली माँ' को सौंपने से मुकर गई, क्योंकि नौ महीने तक अपने गर्भ में रखने के बाद उस बच्चे से उसे मोह हो गया था। यह मुकदमा चला और जीत 'असली माँ' की ही हुई, क्योंकि अदालत करारनामा पहचानती है ममता वमता नहीं।

डिंबाणु और शुक्राणु दोनों को अब शून्य से 190 डिग्री सेल्सियस नीचे के तापमान पर तरल नाइट्रोजन में रखा जा सकता है– एक सौ से डेढ़ सौ साल तक भी। इस तरह कोई चाहे, और ऐसे चाहने वाले बहुत हैं, तो उस दम्पत्ति की संतान डेढ़ सौ साल बाद भी पैदा हो सकती है। फिर वसीयत का और जायदाद बगैरह पर संतानों के अधिकारों का क्या होगा ?

अब बहुत से लोग अकेले रहने लगे हैं। वीर्य-बैंक से अनाम शुक्राणु लेकर अकेली स्त्री गर्भाधान करा सकती है। बिना बाप का बच्चा या इसी तरह बिना माँ का बच्चा जन्म ले सकता है। समलैंगिक पुरुष और स्त्री इस अधिकार की माँग करने लगे हैं। क्या यह कुछ ऐसा ही नहीं है कि आप बाज़ार में जाकर बच्चे खरीद रहे हैं !

इसी बीच दो हज़ार के करीब वंशागत रोगों में से एक हज़ार के वंशाणु पहचान लिए गए हैं। इन वंशाणुओं को मनुष्य के गुणसूत्रों में से छाँटकर अलग करने की तकनीक भी खोजी गई। मनुष्य के 23 जोड़ी गुणसूत्रों में मौजूद करीब 60 हज़ार से एक लाख वंशाणुओं का एक कोष भी बन रहा है। फिर तो यह भी पता लग जाएगा कि गोरा या श्याम रंग, कजरारे या मतवारे नैन, घुँघराली या बलखाती लटें और मनमोहक नाक-नक्श जुटाने वाले वंशाणु कौन से हैं ? एक बार भ्रूण में वंशाणु निकालने-डालने की तकनीक पक्की हो गई तो बहुत से माँ-बाप अपनी संतान में विश्व सुदंरी के प्रतिमान डालने के लिए बेचैन होने लगेंगे। तकनीक दोषमुक्त वंशाणु से भ्रूण को मुक्त करने के लिए खोजी गई है और सिलसिला शुरू हो जाएगा सर्वगुणसम्पन्न संतान पैदा करने का।

–पूर्व निदेशक (प्रकाशन)
भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद, दिल्ली-12

जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा दुग्ध उत्पादन वृद्धि

के० के० सिंघल

जैव-प्रौद्योगिकी के आज अनेक लाभ हैं, यहां तक कि इससे गाय-भैंसों के दूध की मात्रा में बढ़ोतरी की जा सकती है। —सम्पादक

जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा पशुधन उत्पादन में वृद्धि की संभावनाएं व्यक्त की गई हैं। इस प्रौद्योगिकी द्वारा पशुओं की आनुवंशिकी, पोषण, भार वृद्धि तथा दूध उत्पादन में वृद्धि/फेरबदल, रोगों की पहचान व निवारण, भ्रूण प्रस्थापन तथा पारजीनी पशुओं द्वारा मूल्यवान ओषधीय पदार्थ उत्पादन संभव हुआ है। यहां हम दुग्ध उत्पादन वृद्धि हेतु जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा उत्पादित देह प्रभावी हॉर्मोन (सोमैटोट्रोफिन) की चर्चा करेंगे। यह हॉर्मोन सामान्यतः बोवाइन सोमैटोट्रोफिन हॉर्मोन (बी० एस० टी०) के नाम से जाना जाता है। सोमैटोट्रोफिन लैटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है दैहिक वृद्धि। अतः इसे वृद्धिकारक हॉर्मोन के नाम से भी जाना जाता है।

पिछले वर्षों में हॉर्मोन के प्रति खिलाड़ियों में इनके दुरुपयोग के कारण जनता में दुर्भावना पैदा हुई है। वस्तुः हॉर्मोनों के रसायन उतने ही विविध हैं जितनी कि जैविक प्रक्रियाएं। सोमैटोट्रोफिन का उत्पादन उस अवटु ग्रंथि द्वारा होता है जो मस्तिष्क के आधार पर स्थित होती हैं। यह रुधिर द्वारा विभिन्न अंगों में पहुंच कर विभिन्न कोशिकाओं तथा अंगों में रासायनिक संपर्क बनाए रखता है। यह हॉर्मोन प्रकृति में प्रोटीन के समान होते हैं और अन्य प्रोटीनों की भांति प्रकृति में उपलब्ध लगभग 20 अमीनो अम्लों के विभिन्न क्रमों में संयुग्मित होकर इसका निर्माण करते हैं। इन अमीनो अम्लों की तुलना वर्णमाला के वर्णों से की जा सकती है जो विभिन्न क्रमों में मिलकर विविध शब्द बनाते हैं। विभिन्न जातियों के सोमैटोट्रोफिन का संघटन भिन्न-भिन्न होता है और एक जाति का सोमैटोट्रोफिन अन्य जाति के लिए अप्रभावी होता है। गोपशुओं सहति अनेक पशुओं के सोमैटोट्रोफिन का अमीनो अम्ल क्रम व संघटन ज्ञात किया जा चुका है। गोपशुओं के सोमैटोट्रोफिन में 191 अमीनो अम्लों की श्रृंखला होती है जिसमें दो विभिन्न अमीनो अम्ल (ल्यूसीन तथा वैलिन) 126वां स्थान ग्रहण करते हैं। फलतः प्राकृतिक रूप से चार प्रकार के सोमैटोट्रोफिन (बी. एस. टी.) होते हैं। सामान्यतः अवटु ग्रंथि 190 तथा 191 अमीनो अम्ल युक्त बी० एस० टी० समान मात्रा में उत्पादित करती है जिससे कुल बी० एस० टी० के दो तिहाई भाग में 126वें स्थान पर ल्यूसीन तथा बाकी में वैलिन होता है। पुनः संयोजित तकनीकी द्वारा बी० एस० टी० का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन करने में सफलता प्राप्त कर ली गई है जो अवटु ग्रंथि द्वारा उत्पादित बी० एस० टी० से कुछ भिन्न होता है। इस प्रकार उत्पादित बी० एस० टी० के छोर पर कुछ अतिरिक्त अमीनो अम्ल जुड़े होते हैं।

बी० एस० टी० के टीकाकरण से यह जैविक रूप से सक्रिय होती है। आहारीय बी० एस० टी० अन्य प्रोटीनों की भाँति पाचन तंत्र में पच जाता है और इसका पशु उत्पादकता पर प्रभाव नहीं होता। सातवें दशक के अंतिम चरण में इंग्लैंड व अमेरिका में बी० एस० टी० टीकाकरण परीक्षणों में दर्शाया गया कि आनुवंशिक दृष्टि से उन्नत गायों में टीकाकरण के पश्चात् अवशोषित पोषक तत्वों का दक्षतापूर्वक उपयोग हुआ और परिणामस्वरूप दूध उत्पादन में वृद्धि हुई। पुनर्योजित बी० एस० टी० की उपलब्धता ने पशु उत्पादन वृद्धि की दिशा में नये द्वार खोल दिए हैं। फलतः वैज्ञानिक व्यावहारिक स्तर पर इसके प्रयोग हेतु कार्यरत हैं।

उत्पादन पर प्रभाव

जहां तक बी० एस० टी० टीकाकरण द्वारा दूध उत्पादन में मात्रा मूलक प्रभाव का प्रश्न है, इसमें बी० एस० टी० टीकाकरण के साथ-साथ गायों के प्रबंध का भी प्रमुख महत्व है। प्रबंध में निम्नलिखित घटक महत्वपूर्ण योगदान देते हैं :

- पशुओं का स्वास्थ्य
- दोहन की विधि
- पोषणिक स्तर
- पर्यावरण/जलवायु

अकुशल प्रबंधन की स्थिति में बी० एस०टी० टीकाकरण की प्रभावशीलता नगण्य होती है। एक परीक्षण में बी० एस० टी० की दूध उत्पादन प्रभावशीलता वसंत ऋतु में सर्वाधिक (+18%) दर्शायी गई, जबकि ग्रीष्म ऋतु में प्रभाव नगण्य दर्शाया गया। इसका कारण चारे की उपलब्धता व गुणवत्ता में कमी होना था। अन्य परीक्षणों से भी स्पष्ट हुआ कि बी० एस० टी० कोई जादू नहीं वरन् पोषक तत्वों को उत्पादकता हेतु प्रयुक्त करने का एक साधन है। कुपोषण अथवा असंतुलित आहार दोनों ही स्थितियों में बी० एस० टी० का प्रभाव तदनुसार निम्न हो जाता है। बी० एस० टी० टीकाकरण के उपरांत दूध उत्पादन में क्रमिक वृद्धि होती है और लगभग छठे दिन शिखर उत्पादन होता है। बी० एस० टी० का अंतःपेंशीय टीका दैनिक लगाना होता है क्योंकि इसका द्रुतगति से रुधिर प्रवाह के साथ समस्त शरीर में संचार होता है तथा यह शरीर में भंडारित नहीं होता। दैनिक टीकाकरण की समस्या को दृष्टि मे रखते हुए 2 से 4 सप्ताह तक निर्मुक्त होने वाले बी० एस० टी० के टीकों का भी विकास किया गया है जिन्हें दैनिक टीकों के समान अंतःपेशीय रूप से प्रविष्ट कराया जाता है।

व्यांत के तुरंत बाद बी० एस० टी० टीकाकरण का प्रभाव सूक्ष्म रहता है। वास्तविक प्रभाव शिखर दूध उत्पादन के पश्चात् टीकाकरण से होता है। यहां यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि दूध उत्पादन वृद्धि हेतु पशुओं को अतिरिक्त आहार अथवा किसी विशिष्ट पोषक तत्व की आवश्यकता नहीं होती। बी० एस० टी० टीकाकरण से पशुओं में भोज्य अंतर्ग्रहण बढ़ जाता है। यह वृद्धि टीकाकरण करने के कुछ सप्ताह बाद आरंभ होती है और जब तक टीकाकरण कार्यक्रम चलता रहता है भोज्य वृद्धि बनी रहती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि टीकाकरण के परिणामस्वरूप हुई दूध उत्पादन वृद्धि के अनुपात में ही पोषक तत्वों की मांग बढ़ जाती है जिसका दूध उत्पादन को देखते हुए पूर्वानुमान लगाया जाता है। राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान में हुए परीक्षणों में दर्शाया गया है कि संकर गायों व भैंसों में बी० एस० टी० टीकाकरण के फलस्वरूप 18 से 20 प्रतिशत दूध उत्पादन बढ़ जाता है। बी० एस० टी० का दुधारू गायों के ऊतकों व विशिष्ट शरीर क्रियात्मक क्रियाओं पर प्रभाव सारणी में दर्शाया गया है।

सारणी : बी० एस० टी० (B. S. T.) का दुधारू गायों में विशिष्ट ऊतकों और क्रियात्मक क्रियाओं पर प्रभाव

ऊतक		प्रभाव
ऊतक	:	आपूर्ति के प्रथम कुछ दिनों और सप्ताहों में प्रभावित होने वाली प्रक्रिया
स्तन	:	स्रवण सक्रियता और स्तन ग्रंथियों का अनुरक्षण ↑
		रुधिर प्रवाह और पोषक तत्व अंतर्ग्रहण ↑
		सामान्य संघटन के दूध का संश्लेषण ↑
यकृत	:	ग्लूकोस उत्पादन ↑
वसा	:	संचित वसा की गतिशीलता ↑
		पोषक तत्वों का वसा रूप में संचय जिससे वह दूध संश्लेषण में प्रयुक्त हो सके ↑
		इन्सुलिन व अन्य हॉर्मोन O
मांसपेशी	:	ग्लूकोस अभिग्रहण ↑
अग्न्याशय	:	ग्लूकोस स्तर के परिवर्तन का इन्सुलिन और ग्लाइकोजन स्रवण रूप में अनुक्रिया O
गुर्दा	:	1.25 विटामिन डी का उत्पदान ↑

आंत : दूध हेतु अनिवार्य कैल्शियम, फॉस्फोरस व अन्य खनिजों का अवशोषण ↑

1,25 विटामिन D_3 की कैल्शियम अनुबंधित प्रोटीन को प्रेरित करने की सामर्थ्य ↑

संपूर्ण देह : कुछ अंगों द्वारा ग्लूकोस का उपयोग, जिससे वह दूध उत्पादन वृद्धि हेतु प्रयुक्त हो सके ↑

पोषक तत्वों की अपर्याप्त की स्थिति में संचित वसा का ऊर्जा रूप में प्रयोग ↑

पोषक तत्वों की अपर्याप्त आपूर्ति की स्थिति में पोषक तत्वों का दैहिक वसा संचय हेतु प्रयोग ↑

अनुरक्षण हेतु ऊर्जा की खपत O

दूध उत्पादन वृद्धि के कारण ऊर्जा की खपत ↑

उत्पादन क्षमता (दूध कि०/प्रति इकाई ऊर्जा अंतर्ग्रहण) ↑

↑ वृद्धि, ↑ कमी, O अपरिवर्तित

संघटन सामान्यतः अप्रभावित रहता है। कुछ परिस्थितियों में टीकाकरण के प्रथम सप्ताह में दुग्ध वसा प्रभावित होती है जिसका कारण भोज्य अंतर्ग्रहण तथा पोषक तत्वों के चयापचय में शीघ्र समन्वय स्थापित न होना है। यह परिवर्तन सामान्य अवस्था में दूध उत्पादन के दौरान होने वाले परिवर्तनों की तुलना में अस्थायी व नगण्य होता है। दुग्ध लैक्टोस घटक सामान्यतः स्थिर रहता है जबकि वसा और कुछ सीमा तक प्रोटीन में आंशिक बदलाव आता है जिसका कारण बी० एस० टी० न होकर आनुवंशिक नस्ल, दूध उत्पादन की स्थिति, आयु, भोज्य संघटन, पोषणिक स्थिति तथा जलवायु-जैसे अनेक घटक हो सकते हैं। वैसे भी ये घटक सामान्य पशुओं में दूध, वसा व प्रोटीन को प्रभावित करते हैं। जहाँ तक मांस का प्रश्न है बी० एस० टी० टीकाकृत गायों में वसा अपेक्षाकृत निम्न होती है। अन्य दृष्टि से यह मांस सामान्य मांस के समकक्ष होता है।

सामान्यतः दूध व मांस दोनों में ही बी० एस० टी० के अतिरिक्त अन्य हॉर्मोन, जैसे एस्ट्रोजन, प्रोजेस्ट्रोन, ग्लूकोकोर्टिकोयड, थायरोक्सिन, प्रोलैक्टिन सूक्ष्म मात्रा में विद्मान रहते हैं। बी० एस० टी० टीकाकरण से दूध व मांस में बी० एस० टी० का स्तर अप्रभावित रहता है। दूध में बी० एस० टी० स्तर इसकी रुधिर सांद्रता का सूक्ष्म अंश मात्र होता है। बी० एस० टी० टीकाकरण द्वारा रुधिर सांद्रता 30 गुना बढ़ाने पर (जो सामान्यतः बढ़ाई नहीं जाती) दूध में सूक्ष्म किंतु सार्थक बी० एस० टी० स्तर वृद्धि होती है। यह तथ्य तर्कसंगत भी है क्योंकि स्तनीय उपकला कोशिकाएं सोमेटोट्रोफिनग्राही नहीं होती। दूसरी ओर दूध की पास्तुरीकरण प्रक्रिया में 8.5 से 95 प्रतिशत इम्यूनोसक्रिय बी० एस० टी० नष्ट हो जाता है।

सोमेटोट्रोफिन की कुछ जैविक प्रक्रियाओं में इन्सुलिन-जैसे वृद्धिकारक घटक (IGF-I) की मध्यस्थता होती है। यह घटक सामान्यतः दूध में मौजूद होता है और इसका स्तर गाय के दूध में मानव दूध की अपेक्षा अधिक होता है। टीकाकरण से दुग्ध IGF-I स्तर बढ़ जाता है किंतु यह उसी परास के भीतर रहता है जो ब्यांत के पश्चात् प्रारंभिक चरण में होता है। स्मरणीय रहे कि मुँह द्वारा अंतर्गृहीत IGF-I में जैव सक्रियता नहीं होती और इसका चयापचय सामान्य आहारिक प्रोटीन के समान होता है। इसका दूसरा पहलू यह भी है कि IFG-I की जितनी मात्रा टीकाकृत गाय के एक लीटर दूध में होती है उतनी ही मात्रा एक वयस्क मानव अपने लार द्वारा प्रतिदिन अंतर्गृहीत करता है। अतः बी० एस० टी० टीकाकृत गाय/भैंस का दूध मानव हेतु सुरक्षित है।

बी० एस० टी० का प्रयोग विश्व के कई देशों में दूध उत्पादन वृद्धि हेतु किया जा रहा है। किंतु भारत में अभी भी इस उत्पाद पर परीक्षण हो रहे हैं और आशा की जा रही है कि शीघ्र ही यहां भी इसके प्रयोग की अनुमति दे दी जाएगी। आशा है कि इसके प्रयोग से भारत का वार्षिक दूध उत्पादन 6.4 करोड़ टन से बढ़कर लगभग 7.1 करोड़ टन हो जाएगा।

(विज्ञान गरिमा सिन्धु से)

राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान,
करनाल-132001 (हरियाणा)

जैव-प्रौद्योगिकी के पारिभाषिक शब्द

संकलित

पिछले दो अंक से पाठकों के लाभार्थ जैव-प्रौद्योगिकी के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या शुरू की गई थी। उसी क्रम में यह तीसरी किस्त है।

अन्वेषी (Probes) : ये 15-30 क्षारक लम्बे डी० एन० ए० या आर० एन० ए० क्रम होते हैं। इनका उपयोग नमूनों में अन्वेषी के पूरक क्रमों की उपस्थिति ज्ञात करने के लिए की जाती है।

इंटरफेरॉन (Interferons) (IFN) : ये साइटोकाइन नामक प्रोटीनों के समूह के सदस्य हैं। ये अपना प्रभाव लक्ष्य कोशिकाओं की सतह पर उपस्थित विशिष्ट ग्राही अणुओं से आबद्ध होने के कारण उत्पन्न करते हैं।

इन्टरफेरॉनों की खोज इनकी प्रति-वाइरसी क्रिया के कारण हुई थी।

ये तीन प्रकार के होते हैं α, β, γ।

इनमें ऐमीनो अम्लों की संख्या क्रमशः 166-172, 166 तथा 143 पाई गई है।

उत्परिवर्तन (Mutation) : किसी नये उत्पाद के चिकित्सीय परीक्षणों के परिणाम उत्साहवर्धक होने पर संबंधित सूक्ष्मजीव का प्ररूप सुधार बड़े पैमाने पर शुरू किया जाता है। किसी जीव के किसी लक्षण में आकस्मिक एवं वंशागत परिवर्तन उत्परिवर्तन कहलाता है।

प्राकृतिक कारणों से अपने आप होने वाले उत्परिवर्तन स्वतः उत्परिवर्तन (spontaneous mutation) कहलाते हैं।

मानव द्वारा विशिष्ट भौतिक एवं रासायनिक उपचारों द्वारा उत्पन्न किये गये परिवर्तन प्रेरित उत्परिवर्तन (induced mutations) कहलाते हैं।

उपापचयी इंजीनियरी (Metabolic engineering) : किसी जीव के उपापचय में पराजीनों के स्थानान्तरण द्वारा किया जाने वाला रूपान्तरण।

औद्योगिक सूक्ष्मजैविकी (Industrial microbiology) : सूक्ष्मजीवों के उपयोग द्वारा आर्थिक महत्व के उत्पाद या सेवा की प्राप्ति। सूक्ष्मजीवों के उपयोग से आर्थिक महत्व के उत्पाद प्राप्त करने को किण्वन कहते हैं।

औषधि-डिजाइनन (Drug designing) : ऐसी औषधियाँ जिडाइन करना जो लक्ष्य अणुओं के क्रांतिक स्थलों से आबद्ध होकर उन्हें निष्क्रिय कर दें।

लक्ष्य अणु रोग उत्पत्ति में महत्त्वपूर्ण कोई एन्ज़ाइम हार्मोन ग्राही या कोई अन्य अणु होता है।

औषधि डिजाइनन या मूल उद्देश्य उच्च दक्षता एवं अत्यन्त कम या बिना पार्श्व प्रभाव वाली दवाएँ विकसित करना है।

जीन उपचार (Gene therapy) : जीन उपचार उन रोगों के लिए चुना जाता है जो प्राणघातक हों, रोग उत्पन्न करने वाला जीन क्लोन किया जा चुका हो, जीन का बहुत परिशुद्ध नियमन जरूरी न हो तथा जीन विमोचन की युक्ति विकसित की जा चुकी है।

जीन उपचार में चार चरण बताये गये हैं– आनुवंशिक रोग उत्पन्न करने वाले जीन की पहचान , इस जीन के उत्पादन की रोग में भूमिका का पता लगाना, जीन का विलगन एवं क्लोनन तथा जीन उपचार की उपयुक्त युक्ति का विकास।

जीन उपचार दो प्रकार का है– जनन लाइन तथा कायिक कोशिका जीन उपचार।

जैव-रिऐक्टर (Bio-reactors) : वे पात्र या युक्तियाँ जिनका उपयोग निम्न मूल्य के सबस्ट्रेटों से सूक्ष्मजीवों या एन्जाइमों द्वारा अधिक मूल्यवान उत्पादों में रूपान्तरण के लिए किया जाता है।

इनका उपयोग खाद्य प्रसंस्करण, किण्वन, अपशिष्ट उपचार में होता है।

जैव-रूपान्तरण (Bio-transformation) : कोशिकाओं में उपस्थित एन्जाइमों द्वारा प्रेरित रसायन परिभाषित अभिक्रियाओं से किसी यौगिक का प्राप्ति योग्य उत्पाद में रूपान्तरण।

डी० एन० ए० टीके (DNA vaccines) : वे टीके जिनमें रोगजनकों के प्रतिरक्षाजनी प्रोटीन कोडित करने वाले जीन होते हैं।

निर्जर्मीकरण (Sterilization) : किसी पदार्थ में या सतह पर उपस्थित सभी जीवो का निर्जीव करना या निष्कासित करना।

निर्जलीकरण के लिए उष्मन, विकिरण, रसायन या फिल्टर का उपयोग किया जाता है।

परीक्षण कल्चर (Assay culture) : जिन कल्चरों का सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पादित उत्पादों के जैविक प्रभावों का अध्ययन करने या उनके सन्निरीक्षण के लिए उपयोग होता है उन्हें परीक्षण कल्चर कहते हैं।

पुनर्योगज टीके (Recombinant vaccines) : वह टीका जिसमें रोगजनक (pathogen) का कोई ऐसा प्रोटीन या ऐसा प्रोटीन कोडित करने वाला जीव उपस्थित होता है जो कि प्रतिरक्षाजनी एवं रोगजनक के लिए अपरिहार्य भी हो तथा यह पुनर्योगज टेक्नालाजी द्वारा उत्पादित भी हो।

उदाहरणार्थ इंसुलिन, इंटरफेरान आदि।

पुनर्योगज डी० एन० ए० टेक्नालॉजी (Recombinant DNA Technology) : किसी जीव से वांछित जीनों का विलगन, क्लोनन तथा उनका किसी अन्य जीव में स्थानान्तरण एवं अभिव्यक्ति।

इसका उपयोग पुनर्योगज प्रोटीनों का उत्पादन करने तथा सूक्ष्मजीवों के उपायचय पथों में परिवर्तन करके नये या रूपान्तरित उत्पादों की प्राप्ति या उत्पादकता में वृद्धि के लिए किया जाता है।

पुनर्योजन (Recombination) : विभिन्न विभेदों में उपस्थित जीनों में नए संयोजन (Combination) उत्पन्न करना। इससे वांछनीय विकल्पियों (alleles) को एकसाथ एक ही विभेद में एकत्र किया जा सकता है।

वृद्धिकारक (Growth factors) : ये सभी साइटोकाइन समूह के प्रोटीन हैं। ये जन्तुओं में कोशिका उत्पादन, अंग जनन तथा रोगग्राहिता को प्रभावित करते हैं।

ये कई तरह के होते हैं – इन्सुलिन सदृश वृद्धिकारक, तंत्रिका वृद्धिकारक, अधिचर्म वृद्धिकारक, प्लेटलेट अवकलित वृद्धिकारक, हिपैटोसाइट वृद्धिकारक, तंतुकोरक वृद्धि कारक, रूपांतरक वृद्धि कारक, रक्तोत्पादन वृद्धिकारक।

विधि चिकित्सा (Forensic medicine) : चिकित्सा विज्ञान के ज्ञान एवं तकनीकों का अपराधों, कानूनी झगड़ों आदि को सुलझाने में उपयोग विधि चिकित्सा कहलाता है।

इस चिकित्सा द्वारा अपराधियों या अपराधों के शिकार व्यक्तियों की पहचान पैतृकता के झगड़ों में पिता की पहचान की जाती है।

इसके लिए डी० एन० ए० अंगुली छाप अत्यन्त विश्वसनीय विधि है।

सन्निरीक्षण (Screening) : बहुत से प्रारूपों एवं खोजों, क्लोनों या व्यक्तियों का किसी लक्षण के लिए मूल्यांकन।

स्व-प्रतिरक्षी (Auto-antibodies) : जन्तु के अपने स्वयं के प्रतिजन स्वप्रतिजन (auto antigen) कहलाते हैं। सामान्यतया इनके विरुद्ध जन्तु शरीर स्वयं प्रतिरक्षी उत्पन्न नहीं करता किन्तु कुछ दशाओं में जिन्हें स्वप्रतिरक्षकता कहते हैं, स्वप्रतिजनों के विरुद्ध भी प्रतिरक्षी उत्पादन होता है।

स्वप्रतिरक्षी कोशिका विशिष्ट या अविशिष्ट हो सकते हैं। ये डी० एन० ए० अनुलेखन, आर० एन० ए० प्रक्रमण आदि के अवयवों/घटकों के विरुद्ध भी उत्पादित हो सकते हैं।

उपयोगी हिमालय क्षेत्र की वनोषधियाँ

डॉ० पी० सी० पन्त

वनोषधियों द्वारा स्वास्थ्य-लाभ हमारे देश की लोक-परम्परा रही है। वनस्पतियों का ओषधिय रूप में प्रयोग करने का प्राचीनतम विवरण ऋग्वेद में मिलता है। अथर्ववेद में इनकी उपयोगिता का सारगर्भित विवेचन किया गया है। वनोषधियों के सुनिश्चित गुणों एवं उपयोग का उल्लेख ''अष्टांगहृदय'' नामक प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथ में किया गया है। महर्षि चरक, महर्षि सुश्रुत तथा महर्षि आत्रेय द्वारा ओषधीय पौधों के गुणधर्म एवम् मानव शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों का विस्तृत अध्ययन किया गया।

केन्द्रीय हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं में वनोषधियाँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। उत्तर प्रदेश में स्थित ''उत्तरा-खंड'' क्षेत्र के आधे से अधिक भू-भाग वनस्पतियों से आच्छादित है। यदि इस क्षेत्र को ''जड़ी बूटियों की खान'' कहा जाय तो आश्चर्य की कोई बात नहीं होगी। इस क्षेत्र की भौगोलिक एवं जलवायु की अत्यन्त विभिन्नता के कारण एक ओर जहाँ बर्फीली तथा ऊँची पहाड़ियाँ हैं, वहीं दूसरी ओर गर्म घाटियाँ भी विद्यमान हैं। भौगोलिक और जलवायु की विभिन्नता के कारण इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की मूल्यवान तथा दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

अधिक ऊँचाई वाले सुदूर पर्वतीय स्थानों पर हमारी सेना प्रतिरक्षा कार्यो में तैनात रहती है। यहाँ विषम जलवायु होने से प्रतिरक्षा में तैनात सैनिकों की शारीरिक क्रियाओं में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक ठंडक व ऊँचाई के लगातार प्रभाव से प्रतिरक्षा कार्यों में तैनात सैनिकों में मानसिक एवं भौतिक विकृतियाँ तक जन्म ले सकती हैं। इन दोनों प्रकार की विकृतियों को दूर करने के लिए ''परिस्थिति अनुकूलक ओषधियाँ'' अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध हुई हैं। कम ऊँचाई वाले स्थानों से अधिक ऊँचाई वाले स्थानों में स्थापित होने से शरीर के कोशीय संस्थान में कुछ वर्षों बाद परिवर्तन होने लगते हैं, परिणामस्वरूप माँस-पेशियों में तनाव और मानसिक अवस्था में प्रतिकूल परिवर्तन होने लगते हैं। **एडेप्टोजेनिक** पौधों से इन विकृतियों का निदान संभव माना गया है। इनमें मुख्यतः **जिनसेड पेनेक्स** तथा **इलियूथिरो-कोकोस** पौधे प्रभावकारी माने जाते हैं। ये पौधे चीन, जापान, रूस तथा दक्षिणी कोरिया देशों में पाए जाते हैं। इन पौधों से बनाई गयी ओषधि से भौतिक तथा मानसिक विकृतियों का निदान संभव माना गया है। परन्तु इन पौधों को हमारे देश में उगाया जाना संभव नहीं हो सकता है।

हमारे पर्वतीय क्षेत्रों में कई वनोषधियाँ उपलब्ध हैं जिनके गुणधर्म ''जिनसेड'' के समतुल्य हैं। इन वनोषधियों में नामतः सतावरी (**एस्पारेगस एडस्केडन्स**), शतमूली (**एस्पारेगस रेसीमोसम**), आंवला (**इम्बलिका फीसिनिलिस**), ब्राम्ही (**वेकोपा मानइरा**), मंडूकपर्णी (**सेन्टिला एसियेटिका**), अश्वगंधा (**विदानिआ सोम्नीफेरा**), वच (**एकोरस केलेमस**), तुलसी (**ओसीमम सेंक्टम**), मुलहठी (**ग्लायसिरहिजा ग्लेब्रा**), जटामांशी (**नारडोस्टेकस जटामांसी**) इत्यादि प्रमुख हैं। इन वनोषधियों के संक्षिप्त गुणधर्मों का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

एस्पारेगस स्पीशीज :– इन पौधों के अन्तर्गत सतावरी, शतमूली नामक वनोषधियाँ आती हैं। आयुर्वेदिक गुण की दृष्टि से यह कड़वी, मधुर, पित्तनाशक, कफ व बात व्याधि को दूर करने वाली, वीर्यवर्धक व कामोद्दीपक हैं। शतावरी के कंदों में जल घुलनशील पदार्थ 5.3 % पाया जाता है जिसमें 7 शर्कराएं होती हैं। सतावरी की कोमल कोपलों में अनेक आवश्यक ऐमिनो-अम्ल, जैसे लाइसीन तथा मिथीओनीन पाए जाते हैं। इन कोपलों में माल्टेज व फ्रुक्टोज शर्कराएं

पाई जाती हैं। इनका प्रयोग शाक के रूप में किया जा सकता है।

इम्बलिका आफिसिनिलिस :– यह पूरे भारतवर्ष में सर्वत्र पाया जाता है। आयुर्वेदिक मतानुसार यह रक्तशोधक, वात रक्त, अजीर्ण, अरुचि, दाह, अम्ल पित्त को दूर करने वाली होती है। महर्षि चरक के अनुसार आँवले में सभी प्रकार के रोग-निवारक द्रव्य हैं। यह रसायन व वल्य माना गया है। इसके फलों में प्रचुर मात्रा में विटामिन-सी (600-929 मि० ग्राम प्रति 100 ग्राम), गैलिक अम्ल, टैनिन व ग्लूकोज पाया गया है। सूखे फ़लों में टैनिन की उपस्थिति के कारण विटामिन-सी नष्ट नहीं होता है। इसमें पेक्टिन भी पाया जाता है।

वेकोपा मोनइरा :– यह नम व आर्द्र स्थानों में सर्वत्र पाई जाती है। आयुर्वेदिक मतानुसार ब्राह्मी, मस्तिष्क, नाड़ी दौर्बल्य, उन्माद व अपस्मार हेतु उपयोगी है। मानसिक दुर्बलता को दूर करने में उत्तम ओषधि मानी गयी है। ब्राह्मी के पत्तों में एक क्षाराभ (ब्राह्मीन) पाया गया है, जिसके गुण रासायनिक यौगिक स्ट्रिकनीन के समतुल्य हैं।

सेन्टिला एसिएटिका :– यह (ब्राह्मी) से मिलती जुलती वनस्पति है। इसकी पत्तियों में उड़नशील तेल विद्यमान रहता है। आयुर्वेदिक मतानुसार यह मृदु विरेचक, पौष्टिक धातु-वर्धक व ज्वरनाशक गुण युक्त होती है। इसकी पत्तियों में हाइड्रोकोटाइलिन नामक एक क्षाराभ व एक ग्लूकोसाइड पाया जाता है।

विदानिआ सोम्नीफेरा :– यह वनस्पति भारतवर्ष में सर्वत्र पाई जाती है। इसके कंदों का ओषधीय रूप में प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेदिक मतानुसार यह एक नशीली और विषयुक्त वनस्पति होती है। मज्ञा, तन्तुओं पर इसकी अवसादक क्रिया होती है। इसकी जड़ पौष्टिक, धातु-वर्धक और कामोद्दीपक है। यह तिक्त, कषाय, रसयुक्त, उष्णवीर्य, बलकारक, शुक्र-वर्धक, वात, कफ, श्वेत कुष्टनाशक व क्षय निवारक है। इसकी जड़ों में विदेनिआल, विदेनीन, हेन्ट्री-कान्टेन तथा फाइटोस्टेराल पाए जाते हैं।

एकोरस केलेमस :– यह वनस्पति नम व आर्द स्थानों पर उगती है। इस पौधे की जड़ों को ओषधीय रूप में प्रयुक्त किया जाता है। आयुर्वेदिक मतानुसार यह वामक, कफ निवारक, वातानुलोमक, उद्दीपक, पाचक व कृमिनाशक होती है। मलेरिया आदि ज्वरों में यह लाभकारी है। इसकी जड़ों में एक उड़नशील तेल 1.5% से 2.0% पाया जाता है। केलमीन केलेमिनिआल, केलेमोनिआन तथा बीटा एसारोन नामक रासायनिक यौगिक भी पाए जाते हैं।

ओसीमम सेंक्टम :– भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में प्रत्येक हिन्दू परिवार में पूजा के लिए तुलसी का पौधा घर घर में उगता है। आयुर्वेद में तुलसी को समस्त रोगों की एक दवा कहा जाता है। गुणधर्म की दृष्टि से यह उष्ण, कफनिस्सारक, शीतहर, वातहर, प्रतिदूषक तथा कृमिनाशक है। इन पौधों में एक उड़नशील तेल (0.50 % 0.68 %) तक पाया जाता है, जिसमें यूजीनाल (71 %), यूजीनाल मिथाइल ईथर (20 %), कार्बाक्रोल (3%) व अन्य रासायनिक यौगिक पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त पत्तों में टैनिन, ग्लाइकोसाइड व क्षार भी पाए जाते हैं।

ग्लिसराइजा ग्लेब्रा :– इसकी जड़ को ओषधि रूप में प्रयोग किया जाता है। मुलहठी की जड़ें पीली रेशेदार, सुगन्धित व तीव्र मिठास युक्त होती हैं। आयुर्वेदिक मतानुसार यह शीतल, स्नेहक, वल्य, दाह एवं पिपासानाशक है। मुलहठी की जड़ों में ग्लिसराइजिन नामक रासायनिक यौगिक होता है, जो चीनी से पचास गुना अधिक मीठा होता है। इसके अतिरिक्त ग्लिसराइजिक अम्ल, सुक्रोज, ग्लूकोज, रेजिन, स्टार्च व उड़नशील तेल भी पाए जाते हैं।

नारडोस्टेकस जटामांसी :– जटामांसी की जड़ें अत्यन्त सुगन्धित होती हैं। आयुर्वेदिक मतानुसार यह मानसिक व नाड़ी तन्तुओं की चिकित्सा में अत्यन्त उपयोगी है। गुण-धर्म के अनुसार यह शीतल, सुगन्धित, दीपक, पाचक, वल्य, मूत्रल, वात-नाड़ीशामक और वातानुलोमक होती है। जटा-मांसी की जड़ों में उड़नशील तेल पाया जाता है जो कि सूक्ष्म-जैविक प्रतिरोधी शक्ति रखता है। इसकी जड़ों में एक रवेदार रासायनिक यौगिक ''जटामान्सिक अम्ल'' पाया जाता है।

अधिक ऊँचाई वाले एवं विषम भौगोलिक व जलवायु वाले क्षेत्रों में जहाँ हमारी सैनिक टुकड़ियाँ देश की प्रतिरक्षा में तैनात हैं, आपातकाल की स्थिति में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध वनोषिधियों को प्राथमिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य लाभ के लिए काम में ला सकते हैं। इस प्रणाली को सैनिकों

को प्रशिक्षण दे कर प्रारंभ किया जा सकता है। ओषधीय बाटिकाएँ भी स्थापित की जा सकती हैं। इन स्थानों में अत्यधिक हिमपात के कारण पूर्ति सेवा बंद हो जाती है। फलस्वरूप कभी-कभी सामान्य ओषधियों की आपूर्ति भी प्रभावित हो जाती है। इस प्रकार यह वनोषधियों की "नवीन प्रणाली" एक कारगर उपाय सिद्ध हो सकती है। प्राथमिक चिकित्सा में काम में आने वाली कुछ महत्वपूर्ण वनोषधियों का संक्षिप्त विवरण किया जा रहा है।

1.	डोलू	मोच व चोट में उपयोगी
2.	द्रोण पुष्पी	मवाद निकालने केलिए
3.	अतीस	बाल रोगों में उपयोगी, दस्त निरोधक
4.	चिरायता	ज्वर में तथा रक्तशोधक
5.	तिमूर	दाँत दर्द दूर करने के लिए
6.	केलेण्डयूला	कीटाणुनाशक, एण्टीसेप्टिक
7.	पुदीना	उदर रोगों में
8.	मुलहठी, वच	कंठ रोगों में
9.	तुलसी	प्रायः सभी रोगों मे
10.	ब्राह्मी	सर दर्द व मानसिक रोगों में
11.	लटजीरा	दाँतों व मसूढ़ों के दर्द में
12.	सोआ, कुटकी	पेट दर्द, वायुनाशक
13.	इन्द्रायन	वायु दोष नाशक, बाल रोगों में उपयोगी
14.	रीठा	विरेचक, वामक, विषहर

कुछ वनोषधियाँ दैनिक स्वास्थ्य लाभ हेतु प्रयोग में लायी जा सकती हैं जिनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

1. बालों के लिये	भृंगराज
2. दाँतों व मसूढ़ों के लिये	बज्रदन्ती, कायफल, कटेरी
3. आँखों के लिये	ममीरा
4. त्वचा सम्बन्धी विकार के लिये	मंडूकपर्णी
5. हृदय एवं रक्तवाही संस्थान	पुनर्नवा, शंखपुष्पी, मजीठा
6. पाचन संस्थान एवं यकृत	ब्राह्मी, शंखपुष्पी, वच, मकोय
7. मस्तिष्क एवं मन संस्थान	ब्राह्मी, शंखपुष्पी, वच
8. निचला पाचन संस्थान एवं कृमि	हरड़, वायविडंग, सोम
9. रक्त शोधक, संक्रमणनाशक	चिरायता, तुलसी, मजीठा
10. बलदायी, पौष्टिक, रसायन	अश्वगंधा, शतावरी, शतमूली, जटामांसी
11. समस्त रोगों में उपयोगी	तुलसी

नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ इम्युनोलाजी, नई दिल्ली द्वारा वनोषधियों द्वारा "एड्स" जैसी घातक बीमारी के इलाज के लिए दवा तैयार करने की परियोजना प्रारंभ की गई है। "एड्स" जैसी घातक बीमारी को दूर करने के लिए अश्वगंधा, तुलसी, मंडूकपर्णी, ब्राह्मी, पुनर्नवा, अत्यन्त लाभकारी मानी गयी हैं।

–डी. एम. एस. आर. डी. ई., कानपुर

प्राचीन चिकित्सा पद्धति के बारह अनमोल रत्न

शिवानी चतुर्वेदी

हमारी चिकित्सा पद्धति हमें अपने ऋषियों-मुनियों से धरोहर के रूप में मिली है। हम अपनी इस विरासत से अनजान दूसरे देशों से चिकित्सा का ज्ञान ग्रहण कर रहे हैं जबकि आज से कई सौ साल पूर्व हमारा आयुर्वेदिक ओषधि ज्ञान, शल्य-चिकत्सा पद्धति, शारीरिक विकास विज्ञान, पशु चिकित्सा का ज्ञान कहीं अधिक था। अश्विनी कुमार से भावमिश्र तक इन विज्ञान स्तम्भ माने जाने वाले बारह ऋषियों ने समय-समय पर अपना योगदान दिया। –सम्पादक

जिस तरह एक वर्ष में बारह माह होते हैं, बारह राशियाँ होती हैं, बारह प्रमुख ग्रह ज्योतिष विद्या में होते हैं उसी तरह आयुर्वेद व चिकित्सा के क्षेत्र में भी बारह रत्न हैं जो आज की चिकित्सा पद्धति की नींव हैं—अश्विनी कुमार, धन्वन्तरि, भारद्वाज, पुनर्वसु अत्रेय, चरक, सुश्रुत, जीवक, शालिहोत्र, वाग्भट्ट, माधवाकर, दृढ़बल और भावमिश्र।

अश्विनीकुमार दो जुड़वाँ भाई थे। इन्हें देवताओं का चिकित्सक माना जाता है। ऋग्वेद में भी इनका वर्णन है। ओषध, शल्य चिकित्सा में इनके ज्ञान की वजह से इन्हें ओषधियों का स्वामी कहा जाता है। ''च्यवन प्राश'' नामक औषध (जड़ी बूटी से निर्मित) आज भी प्रसिद्ध है। देवताओं के गुरु बृहस्पति के एक पुत्र शंभु को नीरोग करना, ऋषि च्यवन को नवयुवक बनाना, घोड़े का सिर (यज्ञ के कटे) पुनः जोड़ देना, पूषा के दाँत टूटने पर लगा देना, कटे हाथ जोड़ देना आदि इनकी प्रमुख उपलब्धियों में से कुछ हैं। देवराज इन्द्र, राम, कृष्ण, भीम, ऋषि च्यवन, शंभु आदि महापुरुष इनके बताये मार्ग का अनुसरण कर दीर्घ जीवन जिये। देवराज इन्द्र ने इनसे आयुर्वेद शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की।

धन्वन्तरि को आयुर्वेदिक औषध विज्ञान का देवता माना जाता है। उनकी स्मृति में हर साल दिवाली से पहले कार्तिक मास की त्रयोदशी (कृष्ण पक्ष) के दिन देश भर में ''धन्वन्तरि-दिवस'' बड़े ही धूम-धाम से मनाया जाता है। इनके जन्म की अनेक कथाएँ हैं जिनमें से एक कथा के अनुसार देवताओं और दानवों ने सागर को मथा जिसमें से चौदह रत्न निकले थे। उन्हीं में से एक धन्वन्तरि जी थे। एक अन्य कथानुसार ऋषि गलवान के आशीष से घास के पुतले में मंत्र पढ़ने से धन्वन्तरि जी का जन्म हुआ। इन्होंने अश्विनीकुमारों की तीन पुत्रियों से विवाह कर चौदह संतानें पैदा कीं और इनके सबसे प्रसिद्ध शिष्य सुश्रुत थे।

आयुर्वेद के ज्ञान का क्रम कुछ इस प्रकार पुराण व कथाओं में दिया गया है कि आयुर्वेद का ज्ञान ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम दक्ष प्रजापति को दिया था। यह ज्ञान दक्ष प्रजापति से अश्विनीकुमारों से इन्द्र व इन्द्र से भारद्वाज को मिला। चरक-संहिता नामक ग्रंथ में इसका विस्तृत विवरण है। इसके अतिरिक्त विष्णु पुराण व महाभारत में भारद्वाज की कथा मिलती है।

पुनर्वसु अत्रेय ऋषि अत्रि के पुत्र व भारद्वाज के शिष्य थे। इनके द्वारा अनेक ग्रन्थ रचे गये जिनमें ''अत्रेय संहिता'' प्रमुख है। 465001 श्लोकों का यह ग्रन्थ आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र का विशाल ज्ञान कोश है। अत्रेय ने रोगों के लक्षण, नाड़ी व श्वास की गति, साध्य असाध्य रोगों का श्रेणी विभाजन, मौसम (हवा, मिट्टी व ऋतु) का प्रभाव, खाद्य व पेय पदार्थों के गुण अवगुण व सेवन विधि बताई। पश्चिम में हिप्पोक्रेट थे तो हमारे देश में अत्रेय चिकित्सक थे। अत्रेय के प्रमुख शिष्य कश्यप, भेल, हरीत हैं।

चरक आयुर्वेद के आचार्य कहे जाते हैं। ''चरक-

संहिता'' नामक ग्रन्थ इन्हीं द्वारा रचित है। ''चर'' शब्द का अर्थ है चलना। अतः दूर-दूर भ्रमण कर लोगों को शिक्षा देने की वजह से इनका नाम चरक पड़ा। चरक संहिता में बालक की उत्पत्ति और विकास का वर्णन वैज्ञानिक ढंग से दिया गया है। इसमें शरीर की अंगों की रचना एवं कार्य, रोगों के लक्षण व उपचार, जड़ी-बूटियों के नाम गुण व औषध गुण आदि विस्तार से बताये गये हैं।

सुश्रुत ऋषि विश्वामित्र के वंशज थे। ''सुश्रुत-शल्य तंत्र'' शल्य चिकित्सा का प्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसकी रचना ईसा पूर्व छठी शताब्दी में हुई। इनका ''शल्य-चिकित्सा'' का परिष्कृत ज्ञान सर्वप्रथम देन माना जाता है। युद्ध में चुभे तीरों व अन्य शस्त्रों से घायलों का इलाज, पट्टी बांधने की विधियाँ, अंगों के ऑपरेशन, जीव-विज्ञान व वनस्पति विज्ञान की पूर्ण विवेचना, अनेक अंगों का ऑपरेशन में प्रयोग आदि इनकी देन माने जाते हैं। 800 ई० में ''सुश्रुत संहिता'' का अनुवाद अरबी भाषा में ''किताबे सुश्रुत'' के नाम से हुआ।

जीवक 600-500 ईसा पूर्व सालावती नाम आधुनिक पटना (राजग्रह) की गणिका के गर्भ से जन्में व तक्षशिला से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। राजकुमार अभय ने इनका लालन-पालन किया था। अतः शिक्षा पूर्ण कर व साकेत (फैजाबाद के निकट) से धन अर्जित कर पुनः राजकुमार अभय के पास आ गये। जीवक भगवान बुद्ध के समकालीन थे। भगवान बुद्ध, उनके भिक्षुओं, राजकुमार अभय के पिता बिंबसार, उज्जयिनी नरेश प्रद्योत व राजा बिंबसार के उत्तराधिकारी अजातशत्रु तक के वैद्य जीवक थे। ये औषध-विज्ञान, शल्यविज्ञान व बाल रोगों के विशेषज्ञ थे। इसलिए इन्हें ''कोमारभच्च'' भी कहते थे।

शालिहोत्र हयघोष ऋषि के पुत्र थे। इनका जन्मस्थान श्रावस्ती (बहराइच ज़िले के निकट) माना जाता है। शालि-होत्र व अग्निवेश दोनों एक ही गुरु के शिष्य थे। कहा जाता है कि ब्रह्माजी ने इन्हें ज्ञान दिया। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ ''हय आयुर्वेद'' या ''शालिहोत्र संहिता'', ''अश्व- लक्षण शास्त्र'' तथा ''अश्व-प्रशंसा'' आदि हैं जिनमें मुख्य रूप से घोड़ों के रोगों, लक्षण, विभिन्न जातियों के गुण इत्यादि का विस्तृत वर्णन है। अतः पशुचिकित्सक के रूप में इनका योगदान अद्वितीय माना गया है।

प्राचीन भारतीय चिकित्सा-विज्ञान के तीन महान आचार्य अत्रेय, सुश्रुत और **वाग्भट्ट** माने जाते हैं, जिन्हें ''वृद्ध-त्रय'' के नाम से प्रसिद्धि मिली। वाग्भट्ट का जन्म सिन्धु नदी के किनारे वैदिक ब्राह्मण परिवार के सिंहगुप्त के घर हुआ था। इन पर बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव था। इनके द्वारा रचित दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ ''अष्टांग संग्रह'' व ''अष्टांग हृदय संहिता'' में आयुर्वेदिक दवा, बीमारी की उत्पत्ति, खाद्य पदार्थों के गुण-दोष, ज़हरीले खाद्य पदार्थों की पहचान व उपचार, व्यक्तिगत सफाई, मानव शरीर रचना, रोग व उपचार, चर्म रोग, बाल रोग, पागलपन, जानवरों के काटे का इलाज इत्यादि शामिल हैं।

माधवाकर नवीं या दसवीं शताब्दी में इंदुकर के यहाँ जन्मे थे। गोलकुंडा (किष्किंध्या) इनका जन्म स्थान था। इन्हें ''विद्यारण्य'' की उपाधि दी गयी। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ माधव निदान, हिन्दू दर्शन, धर्म और ज्योतिष शास्त्र, रूग्वि- निश्चय आदि प्रमुख हैं। इन्होंने चेचक पर विस्तृत अध्याय लिखा है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने भाई साधन की सहायता कर संस्कृत साहित्य की महत्त्वपूर्ण टीका ''ऋग्वेद'' लिखने में मदद की।

भावमिश्र सं० 1550 में वाराणसी में पिता लटकामिश्र के साथ निवास करते थे। इन्हें भारतीय ओषधिशास्त्र का अंतिम महापुरुष भी कहते हैं। वास्तव में ये शिक्षा देते थे। इनके द्वारा लिखी पुस्तक ''भावप्रकाश'' में निजी अनुभवों पर आधारित चिकित्सा संबंधी ज्ञान व विधाएं हैं। भावमिश्र वे प्रथम भारतीय व्यक्ति हैं जिन्हें विदेशी ओषधियों को भारत में प्रयोग करने का भी गौरव प्राप्त है। इन्होंने खास तौर से पुर्तगाली दवाओं को प्रयुक्त किया।

दृढ़बल सं. 1000 में पंजौर में कपिलबाला के घर जन्में। ये कश्मीर के महान आयुर्वेदिक चिकित्सक माने जाते हैं। इनका आयुर्वेद जगत के लिए किया गया महान कृत्य है नष्ट भ्रष्ट ''चरक संहिता'' को पुनः नए सिरे से संकलन व संपादित करना जिसके लिए आयुर्वेद जगत इनका चिर ऋणी है। इसे ''अग्निवेश-तंत्र'' भी कहते थे।

–ए-709, इन्दिरा नगर, लखनऊ-226016

उड़ीसा चक्रवात : शताब्दी की महानतम त्रासदी

देवव्रत द्विवेदी

अक्टूबर 1999 के अंतिम सप्ताह में बंगाल की खाड़ी में उठे समुद्री चक्रवात ने अपनी भयंकर विनाशलीला से उड़ीसा के तटीय एवं मध्यवर्ती भागों को एक विशाल श्मशान में परिवर्तित कर दिया है। 20 से 30 फीट ऊँची समुद्री लहरों, 250 से 300 किमी प्रति घंटे की गति से चलती हवाओं एवं मूसलाधार वर्षा ने चार दिनों के अंदर ही पूरे क्षेत्र को तहस-नहस कर दिया। इस चक्रवात से उड़ीसा के तटीय ज़िले पारादीप, जगतसिंहपुर, जाजपुर केंद्रपाड़ा आदि सर्वाधिक प्रभावित हुए। अब तक प्राप्त नवीनतम सूचनाओं (15 नवंबर तक) के आधार पर इस चक्रवात के कारण मरने वालों की संख्या 9524 तक जा पहुँची है जिसके अभी और बढ़ने की संभावना है। इसके अतिरिक्त लाखों की संख्या में पशु कालकवलित हो गये, खेतों में खड़ी फ़सलें डूब गयीं तथा भवनों एवं मकानों के गिरने से लोगों को खुले आसमान के नीचे रहने को विवश होना पड़ा है। बड़ी मात्रा में शवों के सड़ने, अनाज की कमी, शुद्ध पेयजल की अनुपलब्धता आदि के कारण पूरे क्षेत्र में डायरिया फैल गया है। संचार एवं परिवहन तंत्र को हुये नुकसान के कारण सामग्री के वितरण में प्रशासन तथा सेना को भी भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

यद्यपि मौसम विभाग के वैज्ञानिकों ने उपग्रहों एवं अन्य स्रोतों से प्राप्त जानकारियों के आधार पर कुछ दिनों पूर्व ही चक्रवात के आने तथा संभावित मार्ग की भविष्यवाणी कर दी थी किंतु चक्रवात की भयंकरता ने सभी पूर्वानुमानों को झुठलाते हुए अपनी दिशा उड़ीसा के तटीय क्षेत्रों पर केंद्रित कर दी। प्रशासन ने भी समय रहते हुए पर्याप्त सुरक्षात्मक उपाय नहीं किये जिससे विनाश से होने वाली हानि में वृद्धि ही हुयी।

चक्रवात की उत्पत्ति एवं प्रकार

तापमान और मौसम के परिवर्तन के कारण हवा के विभिन्न दबाव क्षेत्र, जो प्रायः निम्नदाब क्षेत्र होते हैं वायुमंडल में शक्तिशाली पवन विक्षोभ उत्पन्न करते हैं जिसे चक्रवात कहते हैं। इसके केंद्र में न्यूनतम वायुदाब तथा बाहर की ओर क्रमशः बढ़ते हुए सम वायुदाब क्षेत्र होते हैं। चक्रवात के भीतर वायु संचार की दिशा उत्तरी गोलार्द्ध में वामावर्त तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणावर्त होती है।

चक्रवात दो प्रकार के होते हैं– (1) शीतोष्ण कटिबंधीय तथा (2) उष्ण कटिबंधीय।

शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में ध्रुवीय प्रदेशों से आने वाली ठंडी तथा भारी हवा और इसके लंबवत आने वाली पश्चिमी हवा के मिलने पर ताप तथा आर्द्रता के अंतर के कारण पवनों के बीच वाताग्र का निर्माण हो जाता है और इसी से शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात उत्पन्न होते हैं। ये पूरब से पश्चिम दिशा की ओर बढ़ते हैं, जिनकी औसत गति जाड़ों में 48 किमी./घंटा तथा ग्रीष्मकाल में 32 किमी. प्रति घंटा होती है। हवाएँ चक्रवात के बाहर से केंद्र की ओर गति करती हैं तथा केंद्र से ऊपर की ओर उठ कर बाहर की ओर चली जाती हैं। इसके केंद्रीय निम्न वायुदाब क्षेत्र के उत्तर पूर्व में उष्ण वाताग्र तथा उत्तर पश्चिम में शीत वाताग्र होते हैं। इन दोनों विपरीत प्रकृति के वाताग्रों के कारण इन क्षेत्रों में हिमपात तथा भारी वर्षा होती है। आकाश में श्वेत बादलों की लंबी पंक्ति ऐसे चक्रवातों का पूर्व संकेत देती हैं।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात कर्क एवं मकर रेखा के मध्य दोनों गोलार्धों से आने वाले व्यापारिक पवनों के अभिसरण के कारण उत्पन्न होते हैं। महासागर के उष्ण क्षेत्रों में वायुराशियों में उच्च तापमान की ऊर्ध्वाधर ह्रास दर की अधिकता के कारण वायु में असंतुलन बढ़ जाता है जिससे संवहन की गति तीव्र हो जाती है। इन चक्रवातों का व्यास 150 से 750 किमी तक होता है। समदाब रेखाएँ अत्यधिक पास-पास होने के कारण उच्च ताप प्रवणता और तीव्र वेग की हवाएँ उत्पन्न होती हैं। वायु की अधिकतम गति केंद्र के निकट होती हैं। ये सागर क्षेत्रों में तीव्र गति से संचरण करते हुए स्थलीय क्षेत्रों में पहुँच कर कमजोर पड़ जाते हैं तथा जलवाष्प की आपूर्ति के अभाव में ये समाप्त हो जाते हैं। इन चक्रवातों का प्रभाव सर्वाधिक विनाशकारी होता है विशेषकर समुद्र तटीय क्षेत्रों तथा द्वीपों में क्षति अधिकतम होती है।

चक्रवातों को विश्व के विभिन्न भागों में हरीकेन, टायफून, साइक्लोन, विली-विलीज आदि नामों से जाना जाता है। चक्रवात का केन्द्रीय भाग जहाँ, वायु दाब न्यूनतम होता है, चक्रवात की आँख कहलाता है। यह क्षेत्र क्रमशः छोटा होता जाता है तथा वायु वेग क्रमशः बढ़ते हुये 250 से 300 किमी प्रति घंटे तक पहुँच जाता है। इसकी ऊर्जा 5000 खरब अश्व शक्ति के बराबर होती है। यही विनाशलीला के लिए उत्तरदायी है।

अब अंतरिक्ष में घूम रहे उपग्रहों के द्वारा प्राप्त चित्रों के आधार पर यह पूर्वानुमान लगाना तो संभव हो गया है कि सागर के किस क्षेत्र में चक्रवात उत्पन्न होने जा रहे हैं तथा उसकी गति व दिशा क्या हो सकती है, किन्तु चक्रवात के तटीय क्षेत्रों तक पहुँचते ही इसके कारकों में सहसा होने वाले तीव्र परिवर्तनों के कारण इनका व्यवहार अप्रत्याशित हो जाता है जिसका पूर्वानुमान लगाने की प्रविधि अभी तक मौसम वैज्ञानिकों द्वारा विकसित नहीं हो सकी है।

हमारे देश के मौसम वैज्ञानिकों ने देश में मौसम विज्ञान विभाग का एक विशाल आधारभूत ढाँचा तैयार कर लिया है। पिछले कुछ वर्षों में आँकड़ों के संग्रह एवं विश्लेषण के क्षेत्र में तेजी से प्रगति हुयी है।

आशा है कि निकट भविष्य में समुद्री जल के तापमान में होने वाले बदलाव तथा चक्रवात की दिशा, तीव्रता एवं व्यास के बीच एक गणितीय सह-संबंध ज्ञात करने में वैज्ञानिक सफल होंगे जिससे उपग्रहों से प्राप्त आँकड़ों का सुपर कम्प्यूटर द्वारा आकलन और विश्लेषण करके चक्रवात के व्यवहार की भविष्यवाणी पर्याप्त समय रहते की जा सकेगी तथा सुरक्षात्मक उपायों द्वारा इस त्रासदी से मानव जाति की रक्षा की जा सकेगी।

नवीनतम सूचनाओं के अनुसार यद्यपि उड़ीसा में आये इस चक्रवात ने अपने पूरे मार्ग में भयंकर विनाश किया परंतु यह एक सुखद आश्चर्य है कि पूर्वी भारत की अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त एकमात्र प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर कोणार्क का सूर्य मंदिर इसके प्रभाव से सुरक्षित बचा रहा। मंदिर के आसपास के पेड़ों के उखड़ने के अलावा मंदिर की प्रस्तर संरचना पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

—परियोजना सहायक
विज्ञान परिषद् प्रयाग

पृष्ठ 2 का शेष

केन्द्रकों की अदला-बदली में मात्र एक बार ही सफलता मिल पायी। इससे सफलता की दर का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। डॉली तो जीवित है, किन्तु उसकी 276 ''बहनें'' असमय ही काल के गाल में समा गईं।

डॉली से पूर्व की अन्य प्रजातियों के प्रयोगों की सफलता का रहस्य यह रहा कि प्रयोगों में कोशिकायें भ्रूण से ले ली गईं थीं। अब यह तथ्य भली-भाँति समझा जा चुका है कि शुक्राणु और डिम्ब को छोड़कर शरीर की सभी कोशिकायें आनुवंशिक रूप से समान होती हैं। फिर भी त्वचा का रंग, आँखों की पुतलियों का काला, भूरा, नीला होना, अथवा हृदय और जिगर में भिन्नता कुछ जीनों पर निर्भर करता है, जो अलग-अलग समय में अपना विशिष्ट लक्षण प्रकट करते हैं। विकासशील भ्रूण-कोशिकाओं में पूर्ण क्षमता (टोटल पोटेन्सी) होती है और डॉली के जन्म ने यह सिद्ध कर दिया है कि सभी कोशिकायें पूर्ण क्षमता ('टोटिपोटेन्सी') की वाहक हो सकती हैं।

अभी डॉली के जन्म की खबर की उत्तेजना चल ही रही थी कि एक हफ्ते के अंतराल में एक अन्य प्राणि प्रजाति, बंदर की क्लोनिंग की खबर ने चौंका दिया। बंदर की क्लोनिंग का मतलब यह निकाला जा रहा है कि क्लोनिंग-प्रौद्योगिकी ने मानव क्लोनिंग का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। मानव-क्लोनिंग की जाय या नहीं इस विषय में आम जन तो क्या वैज्ञानिक भी एकमत नहीं हैं।

मानव क्लोनिंग के संभावित दुष्परिणामों को लेकर सभी चिंतित हैं। अनेक प्रकार की आशंकायें व्यक्त की जा रही हैं। किन्तु मानव को छोड़कर चूँकि अन्य जीव प्रजातियों से अनेक प्रकार के असाध्य रोगों के उपचार के लिये ओषधियाँ तैयार करने के प्रयास हो रहे हैं अतएव इस प्रकार के क्लोनिंग से संबंधित तो प्रयोग और अनुसंधानों को जारी रखने की आवश्यकता है, किन्तु विवाद के घेरे में आ जाने के कारण प्रतिबंध मात्र मानव-क्लोनिंग पर किया जाना चाहिए। आने वाली सदी पुकार-पुकार कर कह रही है कि अगली शताब्दी में क्लोनिंग द्वारा मानव- कल्याण के लिए ''कैन्सर'' जैसे असाध्य रोगों की दवायें निश्चित रूप से ढूँढ़ ली जायेंगी।

पूर्व संपादक ''विज्ञान''
विज्ञान परिषद् प्रयाग

राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला की अर्धशताब्दी की विकास यात्रा

(संकलित)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के चहुँमुखी विकास के साथ-साथ समाज और मानव कल्याण के प्रयत्न भी प्रारंभ हुए। देश को विकास के मार्ग पर अग्रसर करने हेतु विज्ञान के विकास को प्राथमिकता दी गई। इस क्रम में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के अधीन देश में राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं एवं शोध संस्थानों की स्थापना का सिलसिला प्रारंभ हुआ और 3 जनवरी, 1950 को राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला (एन० सी० एल०) की स्थापना की गई। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इसका उद्घाटन किया था। हमारे देश के वैज्ञानिक विकास की दिशा में वह एक ऐतिहासिक क्षण था। भारत के वैज्ञानिक कायाकल्प हेतु अस्तित्व में आई सी० एस० आई० आर० की प्रयोगशालाओं की श्रृंखला में स्थापित की गई एन० सी० एल० पहली प्रयोगशाला थी। पंडित नेहरू के शब्दों में एन० सी० एल० का घोषवाक्य था— 'ज्ञान का प्रचार-प्रसार करना एवं मानव-कल्याण हेतु रसायन विज्ञान का प्रयोग करना।'

प्रो० जे० डब्ल्यू० मैकबेन एन० सी० एल० के प्रथम निदेशक बने थे। उन्होंने जनकल्याण हेतु मौलिक अनुसंधान एवं विकास को एन० सी० एल० का ध्येय बनाया था। उनके बाद प्रो० जी० आई० फिंच ने निदेशक पद का कार्यभार सम्हाला। उन्होंने अपने कार्यकाल में विभिन्न अनुसंधान सुविधाओं एवं मौलिक अनुसंधान को बढ़ावा दिया। सन् 1957 में प्रो० के० वेंकटरमण की नियुक्ति एन० सी० एल० के प्रथम भारतीय निदेशक के रूप में की गई। उन्होंने एन० सी० एल० में उच्चस्तरीय मौलिक अनुसंधान की नींव रखी। तत्पश्चात् 1966 में प्रो० बी० डी० टिळक ने इस प्रयोगशाला के निदेशक का पदभार सम्हाला। उन्होंने मौलिक अनुसंधान के साथ-साथ औद्योगिक अनुसंधान का महत्व समझकर एन० सी० एल० को उस दिशा में अग्रसर किया। उनके बाद डॉ० एल० के० दोरैस्वामी निदेशक बने और उन्होंने अनुप्रयुक्त अनुसंधान पर अधिक बल देते हुए मानव जीवन के लिए आवश्यक उद्योगपरक अनुसंधान का विकास किया। वर्ष 1990 में डॉ० आर० ए० माशेलकर ने इस प्रयोगशाला के निदेशक पद का कार्यभार सम्हाला। उन्होंने प्रयोगशाला के स्वरूप को आकर्षक बनाते हुए उसे एक नई दिशा प्रदान की। डॉ० माशेलकर ने एन० सी० एल० को भारतीय एवं विदेशी उद्योग जगत् से जोड़कर उसे स्वावलंबी बनाने का सफल प्रयास किया। उनके कार्यकाल में एन० सी० एल० ने ड्यू पॉन्ट, जनरल इलेक्ट्रिक जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साथ करार किया। वर्ष 1995 में डॉ० माशेलकर सी० एस० आई० आर० के महानिदेशक बने और उनके स्थान पर डॉ० पॉल रत्नसामी ने एन० सी० एल० के निदेशक के पद का कार्यभार सम्हाला। डॉ० रत्नसामी ने भी एन० सी० एल० की गौरवशाली परम्परा को अपने कुशल नेतृत्व से जारी रखा है। इस उद्योगोन्मुखी नीति के फलस्वरूप एन० सी० एल० ने गत वित्तीय वर्ष में 17 करोड़ रु० की आय प्राप्त की है।

पूरे भारत में सी० एस० आई० आर० की 40 प्रयोगशालाओं/संस्थानों में एन० सी० एल० अपने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी के कारण अग्रणी बनी हुई है। एन० सी० एल० ने अपने प्रारंभ से ही अग्रणी अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में शोधपत्र प्रकाशित करके ख्याति प्राप्त की है। उदाहरण के लिए 1950 में एन० सी० एल० के शुरुआती दौर के प्रकाशनों में से एक 'नेचर' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। तब से एन० सी० एल० के प्रकाशित

शोधपत्रों एवं उनकी गुणवत्ता में लगातार सुधार हुआ है। एन० सी० एल० का अभिनव एकस्व अन्वेषण का कीर्तिमान भी बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है। आपको यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि एन० सी० एल० की स्थापना के पहले ही वर्ष सन् 1950 में इसके वैज्ञानिकों ने 6 एकस्व आवेदन प्रस्तुत किए थे। उस समय भी भारतीय वैज्ञानिकों में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की रक्षा के सम्बन्ध में पर्याप्त जागरूकता थी। अपने प्रारंभकाल से ही एन० सी० एल० रसायन विज्ञान एवं रासायनिक प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उपयुक्त ज्ञान के अर्जन एवं योगदान तथा तकनीकी अन्वेषण करने में अग्रणी रही है। आज चाहे अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में शोधपत्रों के प्रकाशन द्वारा वैज्ञानिक ज्ञान के भण्डार में योगदान हो या फिर अभिनव वैज्ञानिक एवं तकनीकी अन्वेषण अनुसंधान हो- एन० सी० एल० (राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय एकस्वों की संख्या के अनुसार) सी० एस० आई० आर० की प्रयोगशालाओं में सबसे आगे रही है। वस्तुतः हाल ही के वर्षों में भारतीय एवं अमेरिकी पेटेन्टों (एकस्व) के मामले में भारत की सभी अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशालाओं की तुलना में एन० सी० एल० का योगदान सबसे अधिक रहा है। इसके अलावा एन० सी० एल० की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस प्रयोगशाला ने अपने ज्ञान एवं अनुसंधान द्वारा अर्थार्जन करने में सफलता प्राप्त की है। एन० सी० एल० की कुल आय में 50 प्रतिशत से अधिक आय उद्योगों से प्राप्त होती है। एन० सी० एल० की एक असाधारण विशेषता यह भी है कि आज इसकी 70 प्रतिशत से अधिक की आय अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग जगत् से प्राप्त होतीं है। अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों के साथ परस्पर सम्बन्धों से एन० सी० एल० को बहुत लाभ हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग जगत् के साथ व्यापारिक सम्बन्धों से आर्थिक लाभ के अलावा सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ यह हुआ है कि विश्व रसायन उद्योग की आवश्यकताओं तथा भविष्य में आने वाली उसकी प्रवृत्तियों से हम निरन्तर अवगत रहते हैं। इस हेतु हम अपने अनुसंधान की दिशा, कार्यप्रणाली एवं स्वरूप निरन्तर रूप से अद्यतन बनाए रखते हैं ताकि विश्व की कुछ उत्कृष्ट अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशालाओं के बीच हम अपना स्थान बनाए रख सकें। निःसन्देह यह हमारे वैज्ञानिकों का विश्वस्तरीय ज्ञान, विशेषज्ञता एवं कौशल तथा वर्षों से इस प्रयोगशाला में निर्माण की गई उत्कृष्ट कोटि की अनुसंधान-सुविधाओं का ही परिणाम है। प्रति वर्ष एन० सी० एल० के लगभग 40-50 शोधछात्र रसायनशास्त्र से सम्बन्धित विधाओं में पुणे विश्वविद्यालय से पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त करके देश में रसायनशास्त्र में अग्रणी शिक्षा संस्थानों में एन० सी० एल० का गौरव बढ़ाते हैं। यह एन० सी० एल० का सौभाग्य है कि यहाँ लगभग 300 शोधछात्र पीएच० डी० हेतु अनुसंधान कार्य में लगे हुए हैं। इस प्रयोगशाला ने प्रकाशन, एकस्व, औद्योगिक अनुबन्ध एवं विकसित की गई प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उत्कृष्ट निष्पादन हेतु प्रमाणपत्र, अनुसंधान अनुदान एवं व्यक्तिगत नकद लाभ के रूप में पुरस्कार स्थापित किए हैं। यद्यपि रासायनिक प्रौद्योगिकी, विशेष रूप से उत्प्रेरण एवं बहुलक जैसे क्षेत्रों में एन० सी० एल० की विशेषज्ञता को विशिष्ट मान्यता प्राप्त हुई है, परन्तु भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में किए गए उसके योगदान को अभी उतना नहीं सराहा गया है।

रासायनिक अभियांत्रिकी विज्ञान एवं रासायनिक प्रक्रिया विकास दो ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें एन० सी० एल० की सफलता का कीर्तिमान रहा है। वर्तमान प्रवाह यह दर्शाते हैं कि सूक्ष्मइलेक्ट्रॉनिकी के अनुप्रयोग, सूचना विज्ञान एवं प्रक्रिया डिज़ाइन में ठोस रासायनिक अभियांत्रिकी सिद्धान्त से युक्त सूक्ष्मअभियांत्रिकी के प्रयोग से केवल विषैले एवं खतरनाक रसायनों का निर्माण ही नहीं बल्कि किराल ओषधियों एवं विशिष्ट बहुलक जैसे उच्च निष्पादन वाले रसायनों के निर्माण की प्रक्रिया भी अधिक सुलभ हो सकती है। स्वर्णजयन्ती वर्ष में एन० सी० एल० का रासायनिक अभियांत्रिकी ग्रुप रासायनिक अभियांत्रिकी के क्षेत्र में इस प्रयोगशाला को निरन्तर अग्रणी बनाए रखने हेतु इस अपेक्षाकृत नई अन्तर्विधा के क्षेत्र में अनुसंधान गतिविधियाँ आरम्भ करने जा रहा है। आज के इस भूमण्डलीकरण के युग में सूचना विज्ञान के कारण समूचा विश्व एक छोटा सा नगर बनकर रह गया है। इस कारण विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में व्यापारीकरण आरम्भ होकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तीव्र स्पर्धा प्रारम्भ हुई है। इस स्पर्धा में भी एन० सी० एल० ने अन्तर्राष्ट्रीय मानदंडों के अनुरूप अनुसंधान करके सफलता अर्जित की है। एन० सी० एल० ने अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साथ व्यापारिक करार सम्पन्न करके आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने की दिशा में कदम बढ़ाया है।

एन० सी० एल० में मानव के दैनंदिन से सम्बन्धित अनेक विषयों पर अनुसंधान किया जाता है। चावल, दालें,

गठिया दर्द से छुटकारा

विनीता सिंघ

गठिया या संधिशोथ एक ऐसा रोग है जिसके कई कारण हो सकते हैं। वयस्कों में आम पाए जाने वाले इस रोग का मुख्य कारण किसी बीमारी या आघात के कारण शरीर में रासायनिक प्रतिक्रियाओं की पूरी एक श्रृंखला का आरंभ होता है क्योंकि इन प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप बने रसायन जोड़ों पर चढ़ी ऊतकों की परत को प्रभावित करते हैं। इस रोग से प्रभावित होने वाले पुरुषों की संख्या की तुलना में स्त्रियों की संख्या तीन गुनी होती है। लंबे इलाज के बाद भी अधिकांश रोगियों में केवल रोग की गंभीरता घटती है जबकि दर्द बराबर बना रहता है। मात्र एक चौथाई रोगी ही छः माह से वर्ष भर लंबे इलाज के बाद इस रोग से छुटकारा पाने में सफल हो पाते हैं। लेकिन एक बार ठीक हो जाने के बाद भी रोग के पुनः आक्रमण की संभावना बनी रहती है।

अब तक गठिया के दो सौ विभिन्न प्रकारों की पहचान की जा चुकी है। गठिया के कुछ आम प्रकारों जैसे गाउट और ऑस्टियोअर्थराइटिस के बारे में किए गए अध्ययनों से इस रोग के कारणों का पता लगने के साथ-साथ, इसे रोक पाने के उपाय ज्ञात करने में भी सहायता मिलेगी। शोध-कर्ताओं के अनुसार शरीर के जोड़ों के सुचारु रूप से काम करने के लिए दो प्रक्रियाएं अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं– एक तो है सूजन और दूसरी है ऊतकों की मरम्मत। रयूमेटॉइड और ऑस्टियोअर्थराइटिस वास्तव में इस प्रक्रिया में आने वाली खराबी की देन होते हैं। जोड़ों में आने वाली सूजन सूक्ष्मजीवों और अन्य बाहरी पदार्थों से छुटकारा दिलाती है लेकिन जब सूजन को नियंत्रित करने वाली प्रणाली गड़बड़ा जाती है तो एक बार सूजन आने के बाद उसका ठीक होना कठिन हो जाता है।

सूजन की तरह ही कार्टीलेज में हुई टूट फूट को ठीक करने के लिए, ऊतकों की मरम्मत करने वाली प्रणाली की मुख्य भूमिका होती है। शरीर के गठियाग्रस्त होते ही यह प्रणाली काम करना बंद कर देती है। वैज्ञानिकों के अनुसार यदि दोनों प्रणालियों को कृत्रिम रूप से ठीक किया जा सके तो गठिया से कराहते अनगिनत लोगों को राहत पहुंचाई जा सकती है।

इसके अतिरिक्ति वैज्ञानिकों ने एक ऐसे जीन व पहचान कर ली है जो क्षतिग्रस्त ऊतक से मस्तिष्क तक द का संदेश लेकर जाने वाले संदेशवाहकों और संदेश ग्राहव से संबंधित होती है। उनका कहना है कि इस जीन व गतिविधि को नियंत्रित करके दर्द की तीव्रता को कम कि जा सकता है। सभी दर्दनिवारक औषधियाँ इसी सिद्धांत प काम करती हैं अर्थात् दर्द का संदेश ले जाने वाले संदेशवाहव को कमजोर कर देती हैं जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क व तंत्रिकाओं पर दर्द का तीव्र प्रभाव नहीं होता। इस पारंपरि विधि से संदेशवाहकों को निष्क्रिय कर देने वाले दर्दनिवारव के स्थान पर अब ऐसे दर्दनिवारक बनाए जायेंगे जो तंत्रिव कोशिकाओं पर उपस्थित संग्राहकों को नियंत्रित करेंगे अभी य कहना तो मुश्किल है कि जीनथिरैपी के द्वारा दर्द व नियंत्रित करने में कितना समय लगेगा लेकिन एक बार इ थिरैपी के विकसित हो जाने के बाद रोगियों को गठिया दर्द से काफी राहत महसूस होगी।

हमारे शरीर के जोड़ किस तरह काम करते हैं, इ जानकारी का लाभ उठा कर, कृत्रिम जोड़ बनाने वाले कूल्हे एड़ी तथा शरीर के अन्य भागों के लिए अत्यंत सक्षम जो बना सकते हैं। प्राकृतिक जोड़ों के खराब होने पर इन कृत्रि जोड़ों का प्रयोग करके गठिया के दर्द के साथ-साथ उ विकृतियों से भी छुटकारा पाया जा सकता है जो गठिया कारण आ गई हों।

गठिया हमारे समाज की सबसे गंभीर स्वास्थ्य समस्य है। चिकित्सा विज्ञान में हुई प्रगति के चलते जहाँ लोगों व उम्र बढ़ी है वहीं गठिया का प्रसार भी बढ़ रहा है। दुनि भर में असंख्य लोग इस रोग के कारण दर्द से कराह रहे और न जाने कितने लोग विकलांग हो चुके हैं। गठिया उपचार के, भविष्य में जैसे तरीके विकसित किए जाने व आशा है उससे इस बीमारी की भयावहता में निश्चय ही क आएगी।

सी 4 जी/ 103 ए, जनकपुर
नई दिल्ली 1100

आर्य समाज की हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता

डॉ० संजय वर्मा 'उदय' रायवाला

ज्ञान के व्यवस्थित रूप अर्थात् विज्ञान की परंपरा भारतीय संदर्भों में बहुत प्राचीन कही जा सकती है। वेद-पुराणों व अन्य संस्कृत शास्त्रों के अवलोकन से यह तथ्य बहुत स्पष्ट रूप से उद्घाटित होता है कि समूचे विश्व में सर्वप्रथम भारत के इन्हीं पुरातन ग्रंथों ने ही वैज्ञानिक चेतना व जागरूकता का प्रचार-प्रसार किया है।

भारत में वेद-पुराणों से उद्भूत यह परंपरा तब और बलवती हुई जब यहां छापाखाने का प्रादुर्भाव हुआ। कह सकते हैं कि हिन्हीं पत्रकारिता के आरंभ के साथ-साथ हिन्दी की विज्ञान पत्रकारिता ने भी विकास के सोपान चढ़ने शुरू कर दिए थे। इसी तरह वन-जागरण के प्रणेता एवं विलक्षण व्यक्तित्व के धनी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सन् 1875 में जब आर्य समाज की स्थापना की तो विज्ञान पत्रकारिता को एक नया आधार मिला। वस्तुतः उस काल में देश भर में फैली विभिन्न सामाजिक मुद्दों को प्रखरता से उठाने वाली आर्य समाजी संस्थाओं के विविध प्रकाशनों, समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं ने सामाजिक विषयों के साथ-साथ भरपूर विज्ञान सामग्री भी अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की।

यद्यपि हिन्दी में वैज्ञानिक पाठ्य-पुस्तकों के आरंभिक लेखन व विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में गुरुकुल कांगड़ी जैसी आर्य संस्थाओं को पहले भी मान्यता दी जाती रही है किन्तु यह कतिपय आश्चर्य का विषय है कि जिन आर्य लेखकों/-संपादकों ने आर्य समाज की ही पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विज्ञान पत्रकारिता के क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य किया है, उसका सामान्यतः कहीं उल्लेख नहीं मिलता। जबकि वास्तविकता यह है कि जब "सरस्वती" और "विशाल भारत" जैसी अग्रणी पत्रिकाएँ विज्ञान-सेवा कर रही थी उसी समयावधि में आर्य समाजी संस्थाएं सद्धर्म प्रचारक श्रद्धा, श्रद्धानंद, गुरुकुल, गुरुकुल पत्रिका, आर्य सिद्धांत, आर्यभानु, आर्य-मित्र, आर्य मर्यादा, सार्वदेशिक, आर्योदय, आर्यजगत, प्रह-लाद, आर्यभट्ट, आर्यभानु, अलंकार, वेदवाणी और वैदिक संदेश आदि पत्रों में विज्ञान संबंधी सामग्री को प्रचुरता के स्थान देकर हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता की परंपरा को विकास-वान बनाने में रत थी।

विज्ञान एक ऐसा विषय है जिससे संबंधित सामग्री आर्य पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर स्थान पाती रही है। सच बात तो यह है कि स्वन्त्रता पूर्व की कालावधि में जबकि हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का सर्वथा अभाव-सा था, आर्य समाज ने अपनी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विज्ञान पत्रकारिता के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया। उल्लेख है कि गुरुकुल के दो अध्यापको क्रमशः श्री महेश्वरचरण सिन्हा तथा श्री गोवर्द्धन शास्त्री की चर्चा समग्र हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता के संदर्भ से इस नाते की जाती रही है कि सर्वप्रथम उन्होंने न सिर्फ विज्ञान विषयों से संबंधित पुस्तकें हिन्दी में लिखीं प्रत्युत् सबसे पहले हिन्दी में विज्ञान शिक्षण की परंपरा का सूत्रपात उन्होंने ही किया। श्री सिन्हा ने रसायन शास्त्र (1909), वनस्पति शास्त्र (1911) तथा विद्युत शास्त्र (1912)- ये तीन पुस्तकें हिन्दी में लिखीं तो दूसरी ओर गोवर्द्धन शास्त्री ने सन् 1908 में ब्रिटिश वैज्ञानिकों की सुप्रसिद्ध पाठ्य पुस्तकों के आधार पर "भौतिक विज्ञान" और "रसायन विज्ञान" नामक दो पुस्तकें लिखीं जो इन विषयों पर हिन्दी में पहली पुस्तकें मानी जाती हैं। इसी दौरान गुरुकुल के महामुनि विद्यालंकार ने "भौतिकी" तथा यज्ञदत्त विद्यालंकार ने दो खण्डों ने "विज्ञान प्रवेशिका" लिखकर हिन्दीं में विज्ञान लेखन की परंपरा को आगे बढ़ाया। यहाँ उल्लेखनीय है कि उक्त दोनों विद्वानों ने स्वामी श्रद्धानंद की प्रेरणा से ही हिन्दी में विज्ञान लेखन व शिक्षण की दिशा में कार्य किया।

वस्तुतः स्वामी श्रद्धानंद (महात्मा मुंशीराम) स्वयं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संपन्न व्यक्ति थे। इस शताब्दी के आरंभ में जब उन्होंने एक आर्य शिक्षण संस्था के रूप में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की नींव रखी थी तो हिन्दी में विज्ञान के प्रचार-प्रसार की बात उनके मन में अवश्य रही होगी-ऐसा

अब कहा जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में स्वामी जी द्वारा प्रकाशित पत्रों- ''सद्धर्म प्रचारक'' एवं ''श्रद्धा'' का अवलोकन किया जा सकता है जिसमें वे विज्ञान संबंधी चर्चा अकसर किया करते थे। ''सद्धर्म प्रचारक'' के अपने नियमित स्तंभों क्रमशः- ''सबके आधार और सबमें व्यापक'', ''संसार की गति'' और ''संसार समाचार पर टिप्पणी'' आदि में स्वामी जी ने विज्ञान संबंधी आविष्कारों व मान्यताओं पर जो टिप्पणियां की हैं, वह उनकी विज्ञान दृष्टि को समझने के लिए पर्याप्त हैं।

अंतरिक्ष, विमानशास्त्र और रसायन विज्ञान से संबंधित कई बातों का उल्लेख स्वामी जी ने अपने स्तंभों में बारम्बार किया।

स्वामी श्रद्धानंद जी ने विज्ञान पत्रकारिता की जिस परंपरा का सूत्रपात अपने गुरुकुल और साप्ताहिक पत्रों के माध्यम से किया, यह परंपरा अन्यान्य आर्य लेखकों/पत्रकारों व आर्य पत्रों के बलबूते और अधिक विकसित-पल्लवित हुई। इस क्रम में आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) से प्रकाशित किए जाने वाले पत्र ''आर्य मित्र'' का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। यूँ तो पहले-पहल यह पत्र सन् 1986 में ''मुहर्रिक'' नाम से उर्दू में प्रकाशित हुआ था किन्तु प्रकाशनारंभ के दो ही वर्ष पश्चात् इसे हिन्दी में ''आर्यमित्र'' के नाम से प्रकाशित किया जाने लगा। उल्लेख्य है कि आर्य पत्र-पत्रिकाओं में सर्वाधिक विज्ञान सामग्री हिन्दी में प्रस्तुत करने वाला यह अनोखा पत्र है। इसमें नियमित रूप से प्रकाशित होने वाले स्तंभ ''विज्ञान वार्ता'' में जितनी विज्ञान संबंधी जानकारियाँ प्रस्तुत की गई हैं, उतनी सभंवतः हिन्दी जगत के किसी अन्य पत्र या पत्रिका में नहीं दी गई होगी। इस स्तंभ में नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों चिकित्सकीय अनुसंधानों, अंतरिक्ष यात्राओं व संबंधित खोजों, वैज्ञानिक परीक्षणों आदि का संक्षिप्त व प्रायः सचित्र-विवेचन दिया जाता था।

'आर्यमित्र' की भांति श्रद्धानंद (स्तंभ-समाचार), सद्-धर्म प्रचारक (स्तंभ-संसार समाचार), आर्यजगत, आर्य, आर्यभट्ट वेदवाणी में भी विभिन्न स्तंभों के माध्यम से विज्ञान संबंधी नवीन आविष्कारों-अनुसंधानों की जानकारी हिन्दी के पाठ्कों तक अविरल रूप से पहुँचाई जाती रही है। यदि हम विज्ञान के विविध पहलुओं की बात करें तो आर्य समाज की विज्ञान पत्रकारिता में हमें इसके विविध आयाम देखने को मिलते हैं। वेद-विज्ञान संबंध, सृष्टि उत्पत्ति विज्ञान और अंतरिक्ष, विमान शास्त्र, स्वास्थ्य-आयुर्विज्ञान, मनोविज्ञान, पर्यावरण, भारतीय गणित, भौतिकी, रसायन शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, जीव-जंतु विज्ञान, सिनेमा, वृष्टि विज्ञान सहित विज्ञान की संभवतः कोई धारा शेष न होगी जिसकर थोड़ी-बहुत सामग्री आर्य पत्रों में न देखने को मिलें। चूँकि वेदों की महत्ता का निरूपण करना आर्य समाज का प्रमुख उद्देश्य रहा है अतः वेद और विज्ञान के संबंध पर प्रचुर सामग्री आर्य पत्रों में उपलब्ध है। वेदों में विज्ञान तथा कला-कौशल, वैदिक सृष्टि उत्पत्ति विज्ञान, वेद और पुराणों में गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त, वेदों में पृथ्वी भ्रमण, प्रश्नोपनिषद् में वैज्ञानिक विश्लेषण, वेद में मरुत और उनकी युद्धकला, भारतीय यंत्रकला का विकास, चंद्रमा के प्रकाश पर वैदिक विचार, सूर्यग्रहण : वेदों में वर्णन, वेदों में विविध विद्याओं के मूल, वेदों में भौतिक विज्ञान, वेदों में आयुर्विज्ञान आदि असंख्य लेखों का प्रकाशन का आर्य पत्र-पत्रिकाओं ने वैदिक विज्ञान की महत्ता को बहुत ही प्रामाणिक रीति से स्पष्ट किया है।

अंतरिक्ष तथा सृष्टि उत्पत्ति संबंधी वैज्ञानिक धारणाओं को भी आर्य समाज की विज्ञान पत्रकारिता में बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। एक तथ्यपरक दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि इन पत्र-पत्रिकाओं ने ''सृष्टि और उसकी उत्पत्ति'' तथा ''नक्षत्र और वेद'' जैसे शीर्षकों के अंतर्गत यदि वैदिक विज्ञान की सार्थकता सिद्ध करनी चाही तो दूसरी ओर विक्रम साराभाई जैसे उद्भट वैज्ञानिक का लेख-''अंतरिक्ष की खोज'' की प्रकाशन कर अंतरिक्ष विशषक नए सिद्धान्तों का प्रकाशन भी किया। आर्य पत्रों में प्रकाशित कुछ लेख ऐसे हैं जिनमें कहीं अंतरिक्ष में बढ़ रहे प्रदूषण पर चिंता प्रकट की गई है तो रहस्यमयी उड़ान-तश्तरियाँ भी उनकी पैनी निगाहों से बच नहीं पाई हैं। इसी तरह मानव के चन्द्रलोक पर पदार्पण से संबंधित समाचारों व लेखों को हाथों-हाथ प्रकाशित करके इन पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी तात्कालिकता का परिचय भी बखूबी दिया है।

अंतरिक्ष के समान विमान शास्त्र भी आर्य-पत्रकारिता का एक प्रिय विषय रहा है। वेदों में विमान वर्णन, विमान निर्माण का इतिहास तथा आधुनिक विमान शास्त्र से लेकर हवाई-शिक्षण संबंधी कितनी ही बातों का उल्लेख आर्य समाज की पत्र-पत्रिकाओं ने अनगिनत बार किया है।

विज्ञान की अन्य धाराओं के साथ-साथ स्वास्थ्य,

आयुर्विज्ञान तथा औषधि-विज्ञान से संबंधित सामग्री को भी आर्य समाज की पत्र-पत्रिकाओं ने भरपूर स्थान दिया। ऐसा संभवतः उस परंपरा के चलते हुआ हो जिसके अंतर्गत आर्य समाज अपनी स्थापना काल से ही अपने सदस्यों को चारित्रिक पूँजी बढ़ाने के साथ-साथ स्वस्थ रहने और शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति को बल बढ़ाने की प्रेरणा देता रहा है। इसीलिए आर्य लेखकों ने स्वास्थ्य रक्षा, व्यायाम व चिकित्सा जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर उच्च कोटि का साहित्य रचा। बल्कि आर्य समाज की विभिन्न पत्रिकाओं में स्वास्थ्य-सुधा, स्वास्थ्य-रक्षा जैसे स्तंभ तो नियमित रूप से प्रकाशित होते थे जिनमें स्वास्थ्य एवं चिकित्सा-प्रकरण को लेकर पुरातन से अधुनातन तक की जानकारियां प्रस्तुत की जाती थी। आर्य पत्र-पत्रिकाओं में स्वास्थ्य व चिकित्सा संबंधी विषयों पर कलम चलाने वालों में पं० जवाहर लाल नेहरू, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, रामेश बेदी, डॉ० सत्य-काम, प्रो० रामचरण महेन्द्र जैसे मनीषी पुरुष भी शामिल रहे हैं जिन्होंने सार्वदेशिक साप्ताहिक, सर्वहितकारी, गुरुकुल पत्रिका, आर्य-मित्र, वेदवाणी, आर्य, सद्धर्म प्रचारक, श्रद्ध- ानंद व आर्यभानु आदि पत्र-पत्रिकाओं में संबंधित विषयों पर निरंतर लिखा। स्वास्थ्य-संबंधी विज्ञान की एक अन्य धारा- ''मनो-विज्ञान'' पर भी आर्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रचुर सामग्री मिलती है।

पर्यावरण विज्ञान आज भले ही एक नवीन मुद्दा माना जाता हो किन्तु आर्य पत्रकारिता के लिए यह कोई नया विषय नहीं है। वनस्पतियों में जीव-सत्ता जैसे प्रश्नों ने आर्य समाज के विद्वानों को बहुत पहले ही उद्वेलित किया था। अतः आर्य पत्र-पत्रिकाओं ने वन प्रधान संस्कृति, वृक्षारोपण का महत्व, मौसम पर वनों के अभाव का प्रकोप, प्रदूषण : समस्या और समाधान, विश्व पर्यावरण दिवस, गंगाजल का वैज्ञानिक महत्व, पर्यावरण प्रदूषण में अग्निहोत्र का स्थान, हिमालय की पर्यावरणीय समस्याएँ एवं समाधान, शिवालिक क्षेत्र में दुर्लभ होती वनोषधियाँ आदि विषयों का भी पर्याप्त विवेचन किया।

इसी प्रकार विज्ञान के अन्य विषय जैसे भौतिकी, रसायन शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, जीव-जन्तु विज्ञान आदि भी आर्य पत्रों के लिए अछूते नहीं रहे हैं। भौतिकी के अंतर्गत यंत्रमानव अर्थात् रोबोट, अंतरिक्ष के लिए अमेरिकी आण-विक घड़ी, एक्सरे, कॉस्मिक किरणें, परमाणु के शांतिपूर्ण उपयोग, सूर्य शक्ति का उपयोग, भारत में भी सर्वप्रथम राकेटों का उपयोग अंर्तमहाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र, रडार, रंगीन छाया चित्रण तथा संवाद प्रेषण व्यवस्था जैसे विषयों पर आर्य पत्रों ने खूब सामग्री परोसी है। रसायन विज्ञान से संबंधित विषयों जैसे नए तत्वों की खोज, विज्ञान की उपयोगी खोज : प्लास्टिक, संश्लेषित रंग-पदार्थों से हानियाँ, रासायनिक क्रिया, भविष्य जल के अवयव, वनस्पति घी में रंग, प्राचीन भारत में ताँबा आदि पर ढेरों लेख प्रस्तुत कर आर्य पत्रों ने हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता की विकासधारा में विविध आयाम जोड़े हैं। वनस्पति-शास्त्र व जीव-जंतु विज्ञान से संबंधित अनेक तथ्यों व रोचक जानकारियों का भंडार विभिन्न आर्य पत्रों में यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। इसी तरह विज्ञान के एक रुपहले आविष्कार 'सिनेमा' पर भी आर्य समाज की पत्र-पत्रिकाओं ने पर्याप्त रोशनी डाली है। भारतवर्ष में बायस्कोप, स्वदेशी बायस्कोप, उजाले में सिनेमा, मस्तिष्क और टेली-विजन, उद्योग व्यापार में कैमरे का उपयोग, सागर तल के लिए कैमरा, टी वी द्वारा मरीज़ों की देखभाल और बिना ट्यूब का टेलीविजन सेट आदि विषयों पर सारगर्भित लेखों का प्रकाशन कर अन्य समकालीन पत्र-पत्रिकाओं से आगे निकलने की कोशिश की है।

उल्लेख है कि इस दौरान गुरुकुल के अध्यापक भौतिकी और रसायनशास्त्र संबंधी दो पुस्तकें हिन्दी में लिख चुके थे जो इस शताब्दी के आरंभिक 30-35 वर्ष तक माध्यमिक कक्षाओं में पढ़ाई जाती रही। बहरहाल, इसमें तो कोई संदेह नहीं है कि सरकारी प्रयासों और शब्दावली आयोग के गठन से पूर्व वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण में आर्य समाज तथा अन्य संस्थाओं का भरपूर वैयक्तिक योगदान रहा है। इसमें न सिर्फ ऐसे उल्लेख शामिल हैं जिनसे शब्दावली निर्माण के तरीकों पर प्रकाश पड़ा बल्कि विविध विषयों की शब्दावली किस प्रकार की हो, यह भी स्पष्ट हुआ।

हिन्दी की विज्ञान पत्रकारिता के क्षेत्र में आर्य समाज का कार्य कम महत्वपूर्ण नहीं है। किन्तु पर्याप्त शोध के अभाव एवं अत्यल्प प्रचार के कारण किसी की दृष्टि इस ओर गई ही नहीं कि आर्य समाज जैसी सामाजिक संस्था ने हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण ही नहीं वरन् स्तुत्य कार्य किया है।

('विकल्प' से साभार)

पर्यावरण : लोकदृष्टि में

छोटा नागपुर के तीन आदिवासी ज़िलों–पलामू, गुमला और लोहरदगा से सुदूरवर्ती इलाक़ों में एक गैर-सरकारी संगठन 'इंटवाट' लोक-गीतों के संग्रह का काम कर रहा है। इस लेख के अंश श्री अमरेन्द्र किशोर के निबन्ध से उद्धृत किये जा रहे हैं। यह निबन्ध 'साहित्य अमृत' के सितम्बर 99 अंक में छप चुका है।

लोक गीतों के प्रसंग पुरानी घटनाओं से जुड़े होते हैं। आस पास की प्रकृति, वहाँ की आबोहवा को लेकर लोकाचार की बातें इनमें चस्पाँ होती हैं। वन-बन्धु वनों के प्रेमी होते हैं। जल-संसाधनों से वे भावनात्मक जुड़ाव रखते हैं। लाल भुरभुराते खेतों की माटी की तासीर विन्ध्य क्षेत्र के पर्वतपुत्रों से पूछिए। ये पर्वतपुत्र पहाड़ों के लिए आज भी अपनी जान दे सकते हैं। स्वतंत्रता के बाद जो जनजातीय आन्दोलन सुलग रहे हैं, लहक रह हैं, उनकी भूल वजह तो जल, जमीन और जंगल हैं। इन तीनों पर आदि जनों के संस्कार समाप्त होते जा रहे हैं। बिहार के छोटा नागपुर में इन दिनों उराँव गीत गूँज रहे हैं-

मति काटु जंगल, मति काटु पाहर,
जंगल में सोना भईर गेल ला,
आदिवासी भइया जंगल बचाऊँ,
हमर राइज के हरियर करूँ।

इस गीत में अपील है, आह्वान है। आह्वान है कि पर्यावरण बचा लो किसी तरह से। हम उन आदिवासियों को मूढ समझते हैं। वे गँवार कहे जाते हैं। उन्हें हम असभ्य कहते हैं। यानी हम वैसे नहीं हैं जैसे वे हैं। अगर विज्ञान की नव्यतम तकनीक हमारे पास हैं तो फिर पर्यावरणीय असंतुलन क्यों पैदा हो रहे हैं ? इन आदिवासियों की बातें आज सुनने का समय आ गया है। सुनकर उन्हें अमल में लाने का वक्त आ चुका है। वे समाज में रहते हैं। सामाजिकता से वे अलग नहीं हो सकते। वे आह्वान करते हैं उस समूह का, जो समान समझ रखते हैं। यही आह्वान लोकदृष्टि है, जिसका मूल लक्षण है साझेदारी का नियंत्रण। इसमें वे किसी तरह का भेदभाव नहीं रखते। उन्हें पता है कि जंगल कटने के बाद क्या होगा ? पहाड़ कचनाचूर होंगे तो क्या होगा ? अतः विनाश से बचने और बचाने की ऐसी मंशा लोकदृष्टि को संवर्द्धित करती है।

वन की पुत्री जानती है कि जंगल कितने महत्व के हैं। वह आगाह करती है अपने भाइयों को कि जंगल-पहाड़ बचा लो, लूटे जा रहे खेत-खलिहान बचा लो-

खेत लुटइ जाई हो ले, जंगल-झाड़ लुटाए जाई होले।
बारहों विपरति रे भाई-बहिन, तेर हों कल्यन रे भाइया।।

इन गीतों में गँवई से लेकर आदिवासी समाज के मन-मिज़ाज़ देखने का, समझने का अवसर मिला। बेशक उस समाज को अपने कुदरती संसाधनों से बेहद लगाव है। यह लगाव स्वाभाविक है। इससे खुद के विशिष्ट सांस्कृतिक समूह होने का आत्मगौरव भी छलकता है।

लोक गीतों के संदर्भ में जो बात हमारे सामने है उसमें व्यापक गहराई है। मौजूदा संकट का सामना नैतिक सोच के जरिए करना है। कोशिश तो यही हो कि गाँव वालों का उनका गाँव नहीं छूटे। जंगलों के रहवासी इधर से उधर नहीं भटकें। गाँव की भावनाएँ समझें, वन-बंधुओं की संवेदनाएँ समझें। कहते हैं, जहाँ से लोकगीत विलुप्त होने लगें तो समझिये कि वहाँ विकास हो रहा है। वाह रे विकास! किसी को मिटाकर अपना अस्तित्व स्थापित करना कहाँ का न्याय है ?

तीन विज्ञान कथा संग्रह

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

हिन्दी में विज्ञान कथा लेखन ज्वार पर है। पिछले दशक में हिन्दी में विज्ञान कथा का क्षेत्र सूना लग रहा था किन्तु इधर कई लेखक अपनी-अपनी रचनाएँ लेकर उपस्थित हुए हैं। इनमें से तीन के नाम उल्लेखनीय हैं–श्रीशक्ति कुमार त्रिवेदी, श्री देवेन्द्र मेवाड़ी तथा डॉ० अरविन्द मिश्र। तीनों के अपने-अपने तेवर हैं–भाषा, शैली, कथावस्तु सभी में भिन्न-भिन्न होना भी चाहिए। तभी तो आशा बँध रही है कि हिन्दी में विज्ञान कथा लेखन का क्षेत्र उर्वर हो रहा है।

श्री शक्ति कुमार त्रिवेदी जाने माने हिन्दी के लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं। आपका ''विश्व के महान वैज्ञानिक उपन्यास'' नामक संकलन बहुत पहले प्रकाशित हो चुका था। 'उड़न तश्तरियों का रोमांस' आपकी बीस विज्ञान कथाओं का नया संग्रह है जो ग्रन्थ अकादमी नई दिल्ली से तीन वर्ष पूर्व (1996) प्रकाशित हुआ है। अन्तिम कथा के नाम पर इस पुस्तक का नामकरण हुआ है। विज्ञापन का रोग, जटायु का धातुपिंड, कालजयी, हरे सूरज का देश, ग्रह सुन्दरी, इच्छा शक्ति आदि अन्य कथाएँ इस संग्रह में हैं। पुस्तक की विशेषता है कि प्रत्येक कथा के पूर्व उस कथा का सारांश एक-दो पृष्ठों में दिया गया है। इससे कथा को पढ़ने के पूर्व ही उसकी कथावस्तु का पता चल जाता है। श्री त्रिवेदी जी ने साहित्यिक कहानियाँ, नाटक, उपन्यास, वार्ताएँ, रेडियो रूपक भी लिखे हैं।

श्री देवेन्द्र मेवाड़ी कृत "कोख" सात विज्ञान कथाओं का संकलन है। यह नेशनल पब्लिशिंग हाउस से 1998 में प्रकाशित हुआ है। इस संकलन की सबसे बड़ी विशेषता है इसकी 13 पृष्ठों की भूमिका जिसमें विश्वप्रसिद्ध विज्ञान कथाकारों की कृतियों का उल्लेख हुआ है और यह बताने का प्रयास किया गया है कि विज्ञान कथाओं में जिन कल्पनाओं को चित्रित किया गया था वे भविष्य में वैज्ञानिक आविष्कारों के रूप में प्रतिफलित हुई हैं। इस तरह विज्ञान कथा लेखकों को भविष्यद्रष्टा का पद दिया गया है। उसी क्रम में जयन्त विष्णु नार्लिकर की विज्ञान कथा 'धूमकेतु' का भी उल्लेख है। किन्त लेखक ने हिन्दी के किसी विज्ञान कथालेखक का नाम नहीं लिया। श्री मेवाड़ी जी ने अपनी सात कथाओं की कथावस्तु के बारे में खुलकर संकेत किया है। ''इनमें दे उपन्यासिकाएँ हैं ''कोख'' तथा 'अन्तिम प्रवचन'। कोख हमारी सामाजिक परिस्थितियों में परखनली शिशु तकनीक पर आधारित कथा है। 'अन्ति प्रवचन' एक मानव क्लोन की कहानी है।'' स्पष्ट है कि लेखक ने नवीनतम आविष्कारों को आधार बनाकर कथाओं का ताना-बाना रचा है।

श्री मेवाड़ी जी का भाषा में प्राञ्जलता एवं प्रवाह है, तो सूचना का बोझ भी है। आश्चर्य यह है कि उनकी इन कथाओं में ऐसा कुछ नहीं कहा गया जिसका लेखन ने भूमिका में प्रतिपादन किया है ''विज्ञान कथाएँ भविष्य लोक की खिड़कियाँ हैं। विज्ञान कथाकारों की कल्पना का भविष्य सुखद भी हो सकता है और भयावह भी।''

स्पष्ट है कि हिन्दी में विज्ञान कथाओं का लेखन अभी जड़ें पकड़ रहा है, अभी उसमें कलियाँ ही बन रही हैं–अर्द्ध विकच कलियाँ। हमारा विश्वास है कि मेवाड़ी जी आगे चलकर विज्ञान लेखन की इस विधा में महत्वपूर्ण योगदान कर सकेंगे।

तीसरी पुस्तक है डॉ० अरविन्द मिश्र द्वारा लिखित ''एक और क्रौंच वध तथा अन्य विज्ञान कथाएँ''। इस

संकलन में बारह कहानियाँ हैं। प्रकाशक है भारतीय कथा लेखक समिति फैजाबाद। डॉ० अरविन्द मिश्र उन कथा लेखकों में से हैं जो अपने पूर्ववर्ती प्रतिनिधि रचनाकारों का सादर उल्लेख करते हैं– ''हिन्दी के विज्ञान कथा साहित्य के प्रतिनिधि रचनाकारों में डॉ० नवल बिहारी मिश्र, यमुनादत्त वैष्णव अशोक, कैलाश शाह, देवेन्द्र मेवाड़ी, डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय, प्रभृति महानुभावों का इस विधा को समृद्ध बनाने में अप्रतिम योगदान रहा है।''

यह पहला संकलन है, डा० मिश्र की विज्ञान कथाओं का। ये कथाएँ धर्मयुग, जनसत्ता और विज्ञान प्रगति में समय-समय पर प्रकाशित हो चुकी हैं। डॉ० मिश्र की स्पष्टोक्ति प्रशंसनीय है। उनकी कथाओं में एक क्रमिक विकास मिलता है। भाव, भाषा, शैली तीनों के मामले में वे अत्यन्त मुखर हैं। बीच-बीच में काफी कथोपकथन हैं।– अंग्रजी शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग हुआ है – स्वाभाविकता लाने के उद्देश्य से। डॉ० मिश्र के सुमुख व्यक्तित्त्व और गहन अध्ययन की छाप उनकी कथाओं में सर्वत्र झलकती है।

हम देखते हैं कि विगत 2-3 वर्षों में इन तीनों कृतियों के माध्यम से लगभग 40 विज्ञान कथाएँ हिन्दी के पाठकों के आस्वादन हेतु प्रस्तुत हुई हैं। यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं है। हिन्दी में विज्ञान कथा लेखन का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है।

—प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग
इलाहाबाद – 211002

पत्रिका : शैक्षिक पलाश (द्वैमासिक)

प्रधान सम्पादक : डॉ० लवलीन कक्कड़, अध्यक्ष, राज्य शिक्षक प्रशिक्षण मडल

संपादक : रवीन्द्र मालव

प्रकाशक : म. प्र. राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, शिक्षा मण्डल परिसर, भोपाल-462011

पृष्ठ : 64, वर्ष 1, अंक 3; नवम्बर-दिसम्बर 1998

मूल्य : प्रति अंक बारह रूपये; वार्षिक 60 रू० (संस्थायें); 50 रू० (शिक्षक/विद्यार्थी)

समीक्ष्य अंक सामने पड़ते ही सुखद अनुभूति हुई। बच्चों के लिए स्वस्थ साहित्य कम ही रचा जाता है। इसलिए आकर्षक कवर, सुन्दर मुद्रण, बढ़िया कागज वाली बाल केन्द्रित एवं आनन्ददायी शिक्षा से संबंधित पत्रिका पढ़ने के बाद ऐसा लगा कि यदि कोई कार्य समर्पण की भावना से किया जाये तो निश्चित रूप से परिणाम फलदायी होता है।

इस अंक में सम्पादक रवीन्द्र मालव का आलेख बाल केन्द्रित एवं आनन्ददायी शिक्षा विचारोत्तेजक है और सोचने को विवश करता है। मालव जी से सहमत हुए बिना नहीं रहा जा सकता जब वे कहते हैं-''एक सामान्य शिक्षक पढ़ाता है, एक अच्छा शिक्षक प्रदर्शन करता है, और एक श्रेष्ठ शिक्षक प्रेरित करता है।'' यह शिक्षकों के लिए विशेष चिंतन का विषय है।

इसके अतिरिक्त विजय वैरागी, डॉ० नारायण दास जैन, दिनेश भट्ट, उदयनारायण खवाड़े, डॉ० नाथूलाला गुप्त, राजमल डांगी, डॉ० आदर्श मदान, अंजना मिश्र के आलेख बाल शिक्षा से संबंधित विविध पहलुओं पर यथेष्ठ प्रकाश डालते हैं। घनश्याम कश्यप का धारावाहिक शैक्षिक उपन्यास अंश ''अनुभवों की वर्णमाला'' अच्छा लगा। इसके आगे समाचार संदर्भ, बहस, शिक्षा लहर, शैक्षिक संवाद, शैक्षिक समाचार, दस्तावेज, दर्पण, रिपोतार्ज, शब्द सागर, मुक्त चिन्तन कालमों के अंतर्गत प्रचुर सामग्री दी गई है। रंगीन और श्वेत-श्याम चित्र अच्छे हैं।

कुल मिलाकर लेखक, प्रधान संपादक, संपादक, संपादक मण्डल, मुद्रक, प्रकाशक सभी साधुवाद के पात्र हैं। इसमें किंचित संदेह नहीं कि पत्रिका और प्रगति करेगी। ''शैक्षिक पलाश'' सफलता के नये शिखर छुए ऐसी मंगलकामना है।

—प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
पूर्व सम्पादक, ''विज्ञान''
विज्ञान परिषद् प्रयाग

आँख खोलने वाले आँकड़े

संकलन : डॉ० शिवगोपाल मिश्र

- कैसी विडम्बना है कि हमारे देश में विगत 50 वर्षों में प्राइमरी पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक की संख्या में लगातार वृद्धि होने पर भी साक्षरता दर 52.2% ही है। इसमें से पुरुषों में यह दर 64.2% तथा स्त्रियों में 39.2% है।
- 1985-86 से 1994-95 की अवधि में देश में विज्ञान के छात्रों का प्रतिशत 19.6 ही बना रहा। इसी तरह इंजीनियरी तथा प्रौद्योगिकी में छात्रों का पंजीकरण 4.9% पर स्थिर रहा।
- देश में कार्य न मिलने से या भविष्य को उत्कृष्ट बनाने के अवसर न होने से विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी कार्मिकों का 'प्रतिभा पलायन' लगातार बना हुआ है।
- यद्यपि भारत में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी कार्मिकों की संख्या विश्व में तीसरे स्थान पर है फिर भी 1000 जनसंख्या पर यह केवल 4.5 है जबकि इंडोनेशिया में यही संख्या 13, फिलिपीन्स में 17, इजराइल में 83 और संयुक्त राज्य में 122 है।
- भारत में अनुसन्धान तथा विकास (R & D) में संलग्न व्यक्तियों की संख्या प्रति 1000 पर 0.27 है जबकि कनाडा में यही संख्या 2.1, जापान में 5.24 और स्वीडन में 5.41 है।

शिक्षा की गुणवत्ता की दयनीय दशा

और तो और राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) द्वारा प्रकाशित आँकडे दिल दहलाने वाले हैं –

- (अ) 60% पाठशालाओं में श्यामपट्ट तक नहीं हैं और 30% में न तो पुस्तकालय हैं, न ही प्रयोगशालाएँ। अधिकांश इण्टर कॉलेजों में सुविधाओं का अभाव है। देश में शैक्षिक वातावरण में इस हद तक गिरावाट आई है कि हमारे विश्वविद्यालय 'अध्यापन की दूकानें' बनकर रह गई हैं– विद्या के केन्द्र तो रहे ही नहीं।
- (आ) अध्यापन (शिक्षण) की दशा यह है कि छात्रों को केवल 'सूचना' दी जाती है और वह भी घटिया और पुरानी। इस सूचना से न तो किसी प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न होती है, न शोधकार्य के लिए प्रेरणा मिलती है। सारी प्रणाली 'रटन्त विद्या' बन गई है। परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने की साधन मात्र। उनमें बौद्धिक विकास के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।
- (इ) इस ह्रास का कारण अर्थाभाव तो है, किन्तु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है अधिकाधिक राजनैतिक अडंगा, राजनैतिक इच्छा का अभाव तथा प्रशासनिक मशीनरी की अक्षमता। न जाने क्यों समानता के नाम पर प्रतिभा को नज़र-अंदाज़ करने के प्रयास होते रहे हैं। 'संरक्षण की नीति' ने शिक्षा की ऐसी रेढ़ मारी है कि न्यूनतम अंकों वाले छात्रों को प्रवेश मिल जाता है जबकि अच्छे से अच्छे होनहार छात्र रह जाते हैं।
- (ई) पुराने पाठ्यक्रम में चिपके रहने की प्रवृत्ति बनी हुई है। हमारे अध्यापक आवश्यकताओं को देखते हुए पाठ्यक्रमों को क्यों परिमार्जित नहीं करते ? क्यों नहीं नये-नये विषयों को पाठ्क्रमों में समाविष्ट करते ? आखिर शिक्षा के आदर्श में इतनी गिरावट को सहन क्यों किया जा रहा है ?

युवाओं की प्रतिभा का सदुपयोग हो, इसके लिए आवश्यक है कि 12वीं कक्षा के बाद होनहार छात्रों को चुनकर देश के उत्तम विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थाओं में प्रशिक्षित किया जाय। उन्हें पाठ्यपुस्तकों से निकाल कर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के व्यापक क्षेत्र से परिचित कराया जाय, देश के महान वैज्ञानिकों के सम्पर्क में लाया जाय, उन्हें विज्ञान की ऊँचाइयों तक ले जाने के लिए प्रेरित किया जाय।

देश में जिस तरह से 'कोचिंग' (इसे बैसाखी कह लें) का बोलबाला है उससे छात्रों में सोचने की शक्ति का ह्रास हो रहा है, अभिभावकों का धन व्यर्थ जा रहा है और वणिकवृत्ति वाले अध्यापकों का पल्लवन हो रहा है। इससे देश में रामन,

बोस, भाभा, स्वामीनाथन, अब्दुल कलाम उत्पन्न होने की कामना करना व्यर्थ है।

काश ! हम सँभल सकें।

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

मस्तिष्क के रोगियों के लिए शुभ समाचार

श्रीमती अर्पिता मोहन

अमेरिका में सेण्ट बारबरा की यूनिवर्सिटी ऑव केलिफोर्निया के वैज्ञानिकों के एक दल को जानलेवा **सालमोनेला** *(Salmonella)* नामक जीवाणु (बैक्टीरिया) से होने वाली बीमारियों से मुक्ति के लिए ऐसा टीका (बैक्सीन) बनाने में सफलता प्राप्त हो गई है, जो हैजा, प्लेग, पेचिश, सिफलिस और मस्तिष्क ज्वर (मेनेनजाइटिस) से बचाव में प्रभावी है।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि **सालमोनेला** जीवाणु भोजन को ज़हरीला बना देता है। वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात कर लिया है कि **सालमोनेला** के भीतर एक ऐसा केन्द्रीय' स्विच जैसा जीन होता है, जो मनुष्य के पाचन-तन्त्र में पहुँचने के पश्चात् जीवाणु के 40 या और अधिक जीनों *(Genes)* को उत्तेजित या सक्रिय कर देता है।

होता यह है कि यह स्विच जैसा जीन डी एन ए एडीनेन्ट मिथाइलोज नामक प्रोटीन बनाता है। यही विषाक्तता का कारण है। किन्तु यदि किसी प्रकार स्विच जैसे जीन को काम करने से रोका जा सके तो **सालमोनेला** जीवाणु हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ पायेगा।

शोधार्थियों ने **सालमोनेला** जीवाणु को निष्क्रिय करने के लिए जिस टीके को बनाने में सफलता हासिल की है उसका सफल परीक्षण चूहों में किया जा चुका है। प्रयोग में जिन 17 चूहों पर टीके का इस्तेमाल किया गया उनमें से सभी चूहों पर टीके को कारगर पाया गया।

इस अनुसंधान से यह आशा बंधती है कि मनुष्यों पर किए जाने वाले परीक्षणों में भी निश्चित रूप से सफलता प्राप्त होगी। बस आवश्यकता है इस प्रकार के अनुसंधानों को बढ़ावा देने की और थोड़े धैर्य की।

दर्द पैदा करने वाले जीन की खोज

शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो जिसे कभी दर्द न हुआ हो। दर्द होने पर छुटकारा पाना तो सभी चाहते हैं। इसलिए वैज्ञानिक दर्द का इलाज ढूँढ़ने में लगे हुए थे और अंततः अमेरिका के वैज्ञानिकों ने उस जीन को ढूँढ़ निकाला, जिसका सीधा संबंध दर्द से होता है। वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि शरीर दर्द के समय एक पीड़ाहर या वेदना निग्रह रस स्रावित करता है।

अब दर्द से संबंधित जीन एक तरह के चौकीदार का काम करता है। अर्थात् जीन का काम है कि वह वेदना निग्रह रस को कोशिकाओं के भीतर जाने दे या न जाने दे। यह जीन अफीम से बनाई गई मार्फिन या मोर्फिया के साथ मिलकर दर्द को घटाने में सहायता करता है।

इस खोज का लाभ यह है कि व्यक्ति विशेष के लिए उपयुक्त दवा बनाई जा सकती है। ऐसा इसलिए कि एक ही दवा सभी के लिए समान रूप से कारगर नहीं होती। आमतौर से ऐसा देखने में आता है कि उसी दवा से किसी को अधिक आराम मिलता है तो किसी को कम। दर्द भी किसी को कम महसूस होता है तो किसी को ज्यादा, जबकि यह जीन मानव सहित सभी छोटे-बड़े जन्तुओं में पाया जाता है।

अतएव अब जब यह ज्ञात हो चुका है कि दर्द पैदा करने वाला खास तरह का जीन होता है तो दवा भी देर-सबेर बना ही ली जायेगी।

वर्ष 1999 के नोबेल पुरस्कार

स्टाकहोम से प्राप्त ताज़ी सूचना के अनुसार रॉयल स्वीडिश एकेडेमी ऑव साइन्सेज द्वारा भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान के इस वर्ष के नोबेल पुरस्कारों की घोषणा की जा चुकी है।

भौतिक विज्ञान में कण भौतिकी (Particle Physics) से संबंधित उल्लेखनीय कार्य के लिए दो डच वैज्ञानिकों-जेरारडुस टी हूफ्ट (जन्म 1946) और मार्टिनस वेल्टमान (जन्म 1931) को दिया गया है। वैज्ञानिक द्वय के इस कार्य से कण भौतिकी सिद्धान्त को पुष्ट गणितीय आधार मिला है। इस प्रकार भौतिकीविदों को एक ऐसी "सैद्धान्तिक मशीनरी" मिल गई है जिसके अनेक उपयोगों में से एक यह भी है कि

इसकी सहायता से नये कणों के गुणों के संबंध में भविष्य-वाणी भी की जा सकती है। यह पुरस्कार लगभग एक मिलियन डॉलर का है।

रसायन विज्ञान में उल्लेखनीय शोध के लिए मिस्र में जन्मे अब अमेरिका में रह रहे रसायन विज्ञानी अहमद जेवेल को प्रदान किया गया है। इन्होंने अणु के अन्दर परमाणुओं की गति का अध्ययन किया है और विज्ञान की एक नई शाखा को जन्म दिया है।

चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पुरस्कार जर्मनी के निवासी 63 वर्षीय गुयटर ब्लोबेल (रॉकफेलर विश्वविद्यालय, न्यूयार्क) को यह पुरस्कार प्रोटीनों के अध्ययन पर दिया गया है। इनकी खोजों से अनेक मानव रोगों, जिनमें 'सिस्टिक फाइब्रोसिस' और गुर्दे की पथरी भी शामिल है, पर नई रोशनी पड़ती है। इनके शोधों से कोशिकाओं को ''प्रोटीन फैक्ट-रियों'', की तरह और अधिक प्रभावी बनाकर महत्वपूर्ण दवाइयों को बनाने का भी रास्ता खुलेगा। किन्तु इसी के साथ एक सुखद आश्चर्य हुआ। ब्लोबेल की पत्नी लारा ने बताया कि ब्लोबेल पुरस्कार राशि (7.9 मिलियन क्रोनर) जो 966,000 डॉलर के बराबर है) का अधिकांश डेस्डेनस्थित चर्च और यहूदी प्रार्थना भवन के पुनर्निमाण के लिए दान कर देंगे। ब्लोबेल की पत्नी लारा इटैलियन मूल की अमेरिकी महिला हैं, इसलिए पुरस्कार का थोड़ा भाग ''इटैलियन पीड्मॉण्ट'' में फ्रुबाइन के ऐतिहासिक केन्द्र के क्षेत्र के पुनरुद्धार के लिए भी देने की ब्लोबेल ने घोषणा की है।

—द्वारा श्रीमती प्रभा देवी,
224 बी, तुलाराम बाग, इलाहाबाद

सन् 2050 तक भारत वैज्ञानिक शक्ति के रूप में उभरेगा

(हिन्दुस्तान समाचार पत्र के धनंजय चोपड़ा को दिए गए साक्षात्कार का अंश)

प्रख्यात वैज्ञानिक व पूर्व केन्द्रीय मंत्री प्रो० एम० जी० के० मेनन का कहना है कि भारत सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति कर रहा है। इस वित्त वर्ष में अब तक 2.65 करोड़ डॉलर का साफ्टवेयर निर्यात किया जा चुका है और इसमें निरन्तर वृद्धि बनाये रखते हुए सन् 2008 तक इस निर्यात के 50 करोड़ डॉलर तक पहुँचने की पूरी संभावना है। हमारा देश साफ्टवेयर निर्माण के क्षेत्र में इतना आगे बढ़ चुका है कि अमेरिका जैसे देश को भी हमारी सेवाओं की आवश्यकता पड़ रही है। अमेरिकन बैंकिंग से जुड़ा बहुत सा कम्प्यूटेशन का कार्य गुड़गाँव में हो रहा है। इसलिए हमें दौड़ में शामिल रहने और अव्वल बने रहने के लिए इस प्रौद्योगिकी से जुड़कर संरचनागत व्यवस्था यानी इन्फ्रास्ट्रक्चर को मज़बूत बनाना होगा। इस क्षेत्र में रोज़गार की अपार संभावनायें हैं। किन्तु इन्फार्मेशन सुपर हाइवे के संदर्भ में हमारे देश में कोई इन्फ्रास्ट्रक्चर तैयार नहीं है और इस ओर ध्यान देना अति आवश्यक है।

केन्द्र सरकार ने 1998 में एक ''टास्क फोर्स'' का गठन किया था। प्रो० मेनन आशा व्यक्त करते हैं कि यदि इस 'टास्क फोर्स' की तीनों रिपोर्टों पर अमल हुआ तो सामाजिक, शैक्षणिक व आर्थिक सरोकारों को सीधे सूचना क्रान्ति से जोड़ा जा सकेगा और भारत का पिछड़ापन कुछ हद तक दूर होगा। प्रो० मेनन सूचना प्रौद्योगिकी को कृषि क्षेत्र से जोड़ने की बात को बहुत बल देकर कहते हैं। इससे हमें विकास करने में अद्भुत सफलता हाथ लगेगी। आज फल-फूल का निर्यात भी तेज़ी से बढ़ रहा है और यदि इसे सूचना प्रौद्योगिकी का आधार मिल गया तो इसमें गुणात्मक तेज़ी आयेगी।

प्रो० मेनन मानते हैं कि हमें अपनी देशी मातृ भाषाओं को सूचना प्रौद्योगिकी की भाषा बनाना होगा तभी हम अपेक्षित सफलता प्राप्त कर सकेंगे। यह किसी भी विदेशी भाषा में अनूदित हो जायेगी। वैसे भी दुनिया की भाषा अब डिजिटल हो गयी है। रोज़गार के घटते अवसरों पर प्रो० मेनन कहते हैं कि सरकार की जिम्मेदारी नहीं है कि वह हर एक के लिए नौकरी की व्यवस्था करे। विश्वविद्यालय की डिग्री से हटकर कुछ अन्य रोज़गारपरक शिक्षा प्राप्त करना होगा।

प्रो० मेनन मानते हैं कि 21वीं सदी के आधा बीतते-बीतते भारत वैज्ञानिक शक्ति के रूप में उभरेगा। हमारी प्रगति के राकेट अब छूटने को तैयार हैं, बस उल्टी गिनती शुरू होने भर की देर है।

प्रो० रामदास गौड़ स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

वर्ष 1999 का 'प्रो० रामदास गौड़ स्मृति व्याख्यान' गत 12 नवम्बर को सम्पन्न हो गया। इस अवसर पर भारत सरकार के 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग', नई दिल्ली के अध्यक्ष डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव ने "पर्यावरण प्रभाव निर्धारण : हिमालय के परिप्रेक्ष्य में" विषय पर बोलचाल की सरल, रोचक भाषा में शोधपरक, सार-गर्भित, सूचनाप्रद और चिंतनपरक व्याख्यान दिया। सभा की अध्यक्षता इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति और परिषद् के उपसभापति प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी जी ने, धन्यवाद ज्ञापन परिषद् के प्रधानमंत्री प्रो० शिवगोपाल मिश्र और संचालन "विज्ञान" पत्रिका के पूर्व सम्पादक और वर्तमान कोषाध्यक्ष प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने किया।

प्रारंभ में प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने स्व० प्रो० गौड़ की पुण्यस्मृति को नमन करते हुए सभी उपस्थित विद्वतजनों का स्वागत किया। इसके बाद स्थानीय कुलभास्कर आश्रम डिग्री कॉलेज के दुग्ध विज्ञान विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ० प्रभाकर द्विवेदी जी ने सरस्वती वंदना सुमधुर कंठ से प्रस्तुत की।

व्याख्यानदाता डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव और प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी जी ने स्व० प्रो० रामदास गौड़ के चित्र पर माल्यार्पण द्वारा श्रदांजलि अर्पित की। "विज्ञान" पत्रिका के सम्पादक डॉ० दिनेश मणि और संयुक्त मंत्री डॉ० राजकुमार दुबे ने माल्यापर्ण द्वारा डॉ० राय और डॉ० तिवारी जी का स्वागत किया।

परिषद् के दूसरे संयुक्त मंत्री डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय ने प्रो० रामदास गौड़ का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया। व्याख्यानदाता डॉ० राय का संक्षिप्त परिचय प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया।

डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव ने कहा कि पर्यावरण प्रभाव निर्धारण एक व्यवस्थित प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत् मानव व समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन किया जाता है। किन्तु इस प्रक्रिया में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि इसमें आपसी परामर्श और सक्रिय जन-सहभागिता अत्यन्त आवश्यक है।

डॉ० राय ने ज़ोर देकर कहा कि किसी भी परियोजना के क्रियान्वयन के पहले यह ज़रूरी है कि उसके प्रभावों का पूर्वानुमान कर लिया जाये। किसी भी परियोजना के नियोजन के दौरान पर्यरण पर पड़ते वाले कुप्रभावों पर विचार अवश्य कर लेना चाहिए ताकि बाद में आने वाली बाधाओं का पूर्वानुमान हो ताकि रोकथाम के उपाय भी पहले ही ढूँढ़ लिए जायें। यही नहीं, बीच-बीच में किए गए कार्यों की समीक्षा और मूल्यांकन करते रहना भी आवश्यक है।

डॉ० राय ने आगे बोलते हुए कहा कि परियोजना से पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए पर्यावरण मूल्यों को जनता की आवश्यकताओं के अनुरूप कानून के दायरे में क्रियान्वित किया जाना चाहिए। इस संबंध में डॉ० राय ने भारत व नेपाल के सहयोग से प्रस्तावित 'पंचेश्वर बाँध' का उदाहरण दिया जिसका मूल्यांकन उनकी टीम द्वारा किया गया। इसमें तीन बातों का विशेष ध्यान रखा जा रहा है। पहला इस परियोजना में समय सीमा का निर्धारण, दूसरा विस्थापित लोगों के पुनर्वास के मुआवजे का सामान रूप से वितरण और तीसरा हानि व लाभ के आँकड़ों का पूर्व निर्धारण। डॉ० राय ने कहा कि ऐसा करने से परियोजना की गुणवत्ता और कार्यक्षमता में निश्चित रूप से वृद्धि होगी। "पंचेश्वर बाँध" के विषय में उन्होंने बताया कि मूल्यांकन से पता चला कि बाँध की ऊँचाई 280 मीटर प्रस्तावित है। उस क्षेत्र की भू-वैज्ञानिक संरचना,

डूब का क्षेत्र, विद्युत्-उत्पादन क्षमता, सांस्कृतिक धरोहरों पर कुप्रभाव आदि का अध्ययन करने के लिए त्रिस्तरीय जानकारी प्राप्त की गई। 280, 120 और 80 मीटर ऊँचाई तक बाँध का क्या प्रभाव पड़ेगा इसका अध्ययन किया गया और अध्ययन अभी भी चल रहा है।

पर्यावरण प्रभाव निर्धारण की अवधारणा अति महत्वपूर्ण होती है। अमेरिका, कनाडा, न्यूज़ीलैड, जापान आदि देशों ने इस अवधारणा को अपना कर लाभ उठाया। वहाँ पर्यावरण प्रदूषण की समस्या इतनी विकराल नहीं है।

डॉ० राय ने सूचना दी कि हिमालय के समीप कई बाँध बनाने की परियोजनायें विचाराधीन हैं। हरिद्वार के निकट ऋषिकेष में भी बाँध बनाने की परियोजना प्रस्तावित है। इसके गंगा नदी के पानी को रोका जा सकेगा। ऐसीयो-योजनाओं में जनसहभागिता सुनिश्चित की जानी आवश्यक है।

प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी ने अपने अध्यक्षपदीय उद्बोधन में कहा कि पर्यावरण प्रभाव निर्धारण की उपयोगिता तभी सार्थक सिद्ध होगी जब हम देश हित को आत्महित के ऊपर रख सकेंगे। इस संगोष्ठी में प्रो० जी० एल० तिवारी, डॉ० अशोक कुमार गुप्ता, श्री देवव्रत द्विवेदी, प्रो० पी० सी० गुप्ता, डॉ० जे० एस० चौहान, हिन्दुस्तानी एकेडेमी के अध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय, हिन्दुस्तान, अमर उजाला, अमृत प्रभात, राष्ट्रीय सहारा, एन आई पी आदि समाचार पत्रों के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे।

विज्ञान परिषद् में उत्तर प्रदेश का पहला "शब्दावली क्लब" स्थापित

गत् 12 नवम्बर को विज्ञान परिषद् में भारत सरकार के "वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग" (नई दिल्ली) के अध्यक्ष डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव जी ने 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' में प्रदेश के पहले "शब्दावली क्लब" की स्थापना की घोषणा की और इस क्लब का उद्घाटन भी किया।

अपने उद्बोधन में उन्होंने कहा कि पूरे देश में कुल 100 "शब्दावली क्लब" स्थापित किए जाने हैं। इलाहाबाद के इस क्लब को उत्तर प्रदेश का पहला क्लब होने का सौभाग्य है। इसके पूर्व देश में विश्व भारती शांति निकेतन (कलकत्ता), सागर विश्वविद्यालय, पिलानी (राजस्थान) तथा इम्फाल (मणिपुर) में इस प्रकार के शब्दावली क्लबों की स्थापना की जा चुकी है।

उन्होंने बताया कि विधि को छोड़कर शेष सभी विषयों में शब्दावलियाँ तैयार की जा रही हैं। इन क्लबों के माध्यम से शब्दावली ज्ञान को जनसामान्य तक पहुँचाने में सुविधा होगी।

—पूर्व सम्पादक "विज्ञान"
विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद-2

शोक-प्रस्ताव

'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के अंतरंगियों की यह शोक सभा परिषद् के आजीवन सदस्य स्व० डॉ० गोरख प्रसाद जी के नाती श्री अरुण राय जी की धर्मपत्नी के 17 नवम्बर को प्रातः स्वर्गवास पर हार्दिक शोक व्यक्त करती है और ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वे दिवंगत आत्मा को स्वर्ग में शांति प्रदान करें और परिवार जनों को यह दुःखभार वहन करने की शक्ति दें।

डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव : संक्षिप्त परिचय

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

वर्तमान में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के अध्यक्ष डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव जी का जन्म 1 जनवरी, 1949 को बस्ती में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा गोविन्दराम केसरिया इण्टर कॉलेज, बस्ती से प्राप्त की। आपने बी० एस-सी० 1968 में और एम० एस-सी० 1970 में भू-विज्ञान विषय में तथा पी-एच० डी० 1973 की डिग्री काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राप्त किया। यहाँ एक बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है और वह यह कि आपने अपना शोध प्रबंध अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के भूविज्ञानी और लब्धप्रतिष्ठ हिन्दीसेवी प्रो० महाराज नारायण मेहरोत्रा के निर्देशन में हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने का गौरव अर्जित किया।

आपने 1974-76 तक "पूर्वी कुमाऊँ के अवसादों" पर पोस्ट डॉक्टोरल शोध किया, 1977 से "वाडिया हिमालय भू-विज्ञान संस्थान" में वैज्ञानिक के पद पर कार्य प्रारंभ किया। वाडिया संस्थान के अवसादी संभाग की स्थापना आपकी देख-रेख में हुई। आपने कश्मीर के करेवा अवसादों, हिमाचल प्रदेश की कांगड़ा घाटी, सुन्दर नगर बेसिन तथा पिंजौर के अवसादों पर उल्लेखनीय शोध किया। आपने "पंचेश्वर बाँध" का पर्यावरण प्रभाव निर्धारण संबंधी शोध भी किया। आपके 125 शोध-पत्र देश-विदेश की प्रतिष्ठित शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

छात्र जीवन से ही आपको साहित्य, नाटक, वाद-विवाद, चित्रकला, समाज सेवा, विज्ञान लेखन आदि में विशेष रुचि रही है। आपको 'बस्ती जनपद की मृदा' नामक लेख पर पुरस्कार भी मिला था। धर्मयुग जैसी पत्रिकाओं में आपके लोकप्रिय लेख भी छपते रहे हैं। आपने "अश्मिका", "दून ज्योति" पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया है और "विज्ञान गरिमा सिन्धु" में आपके कई आलेख प्रकाशित हो चुके हैं।

शोध स्तर की 4 पुस्तकें– (1) सेडिमेंट्री जियोलॉजी ऑव हिमालय, (2) ग्लूकोनाइट फार्म एण्ड फंक्शन, (3) सैण्ड प्रोडक्ट्स एण्ड प्रोसेसेस तथा (4) हिमालय भू-विज्ञान खण्ड 14 का सफल सम्पादन भी किया है। "हिमालय की आत्मकथा" नामक आपकी पुस्तक विशेष लोकप्रिय रही है।

शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित "पुरावनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश" तथा "शैल विज्ञान परिभाषा कोश" के लिए आपने विशेषज्ञ के रूप में भी कार्य किया है। आप कुशल प्रशासक हैं और आपके कुशल नेतृत्व में आयोग प्रगति पथ पर अग्रसर है। इसके साथ ही आप 'केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय' का कार्यभार भी सँभाल रहे हैं।

–विज्ञान परिषद् प्रयाग

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पता:

डॉ० दिनेश मणि, डी० एस -सी०
संपादक विज्ञान
विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

INTERADS/D/98

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पताः

डॉ० दिनेश मणि, डी० एस -सी०
संपादक विज्ञान
विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत